

(एशियाटिक सोसायटी, कलकत्ता के संस्करण से पुनर्मुद्रित)

प्रकाशक

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा विक्रेता)

३८ यू. ए., बंगलो रोड, जवाहरनगर

पो० बा० नं० २११३

दिल्ली ११०००३

दूरभाष : २३६३९१

पुनर्मुद्रित

प्रथम संस्करण १९९०

मूल्य ३११-००

THE

TATTVACINTĀMANI

OF

GAṄGEŚA UPĀDHYĀYA

ANUMITYĀDI-BĀDHĀNTA

ANUMĀNA KHAṆḌA

With the Commentary 'Rahasya' by

Shri Mathuranatha Tarkavagisha

(Volume II : Part 1)

Edited by

Pt. Kamakhyanath Tarkavagish



CHAUKHAMBA SANSKRIT PRATISHTHAN

38 U. A., Bungalow Road, Jawaharnagar

DELHI 110007

THE

TATTVACINTĀMANI

OF

GAṄGEŚA UPĀDHYĀYA

ANUMITYĀDI-BĀDHĀNTA

ANUMĀNA KHAṆḌA

With the Commentary 'Rahasya' by

Shri Mathuranatha Tarkavagisha

(Volume II : Part 1)

Edited by

Pt. Kamakhyanath Tarkavagish



CHAUKHAMBA SANSKRIT PRATISHTHAN

38 U. A., Bungalow Road, Jawaharnagar

DELHI 110007

CHAUKHAMBA SANSKRIT PRATISHTHAN
(*Oriental Publishers & Distributors*)
38 U. A. Bungalow Road, Jawaharnagar
Post Box No. 2113
DELHI 110007
Telephone : 236591

Reprint Edition
1990

This Publication has been brought out with the
financial assistance from Ministry of
Education & Culture, Govt. of India.

If any defect is found in this book, please
return the copy by V. P. P. for the cost of
postage to the publisher for free exchange.

Printed in India

शुद्धिपत्रं ।

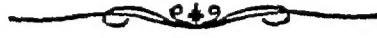


| अशुद्धं । | शुद्धं । | पृष्ठं । | पङ्क्तिः । |
|-----------------------|----------------------|----------|------------|
| परामर्शौ | परामर्शे | २ .. | २ |
| निश्चयो | निश्चये | २१ .. | २ |
| साध्यभाव | साध्याभाव | ३१ .. | २ |
| साध्यासामान्यीय | साध्यसामान्यीय | ३१ .. | ८ |
| तददृत्तित्व | तददृत्तित्व | ४० .. | २ |
| भेदेना | भेदेना | ४८ .. | १० |
| घटाद्यभावत्वेव | घटाद्यभावस्यैव | ५६ .. | २ |
| करणेत्यन्ता | करणेत्यत्यन्ता | १०५ .. | १ |
| रहस्य | रहस्ये | १२३ .. | ३ |
| योजनाभावे | योजनाभावे | १६२ .. | २० |
| सान | साधन | १६२ .. | २० |
| च | च- | १६७ .. | १ |
| च कास्तीति | चकास्तीति | १७० .. | १४ |
| तद्वा | तद्वा | १७३ .. | ७ |
| माभूत् | मा भूत् | १८८ .. | ८ |
| उपधी | उपाधी | १९६ .. | ६ |
| विद्यमान | विद्यमानः | १९९ .. | ६ |
| संसर्गाग्रहो | संसर्गाग्रहो | २०० .. | १२ |
| पाकशाकजत्व | शाकपाकजत्व | २०४ .. | ११ |
| ह्याशङ्कते. ” | ह्याशङ्कते | २३१ .. | १ |

| अशुद्धं । | शुद्धं । | पृष्ठं । | पङ्क्तिः । |
|-----------------------|-----------------------|----------|------------|
| व्याघ्राङ्गते चेति .. | व्याघ्राङ्गते च," इति | २३२ | ३ |
| व्याघातनिवृत्त्या .. | व्याघातनिवर्त्या .. | २३३ | १६ |
| पृथिवी | पृथिवी | २३७ | १० |
| स्तदुभाभ्यां | स्तदुभाभ्यां | २४० | १२ |
| सत्त्यर्थः | सत्त्यर्थः | २५३ | ७ |
| तत्पुष्पीय | तत्पुष्पीय | २५५ | १६ |
| घटकतयैव | घटकतयैव | २६६ | २१ |
| मध्यत्वञ्च | साध्यत्वञ्च | २७८ | १७ |
| भगवन् | भगवन् | २८६ | १४ |
| भावत्वन | भावत्वेन | ३३३ | ६ |
| रहस्य | रहस्ये | ३३५ | १४ |
| भिचारस्य | व्यभिचारस्य | ३५० | १३ |
| पाधित्वा | उपाधित्वा | ३५६ | १६ |
| न्यघा | न्येषा | ३५८ | १ |
| यदेत्यर्थकः' | यदेत्यर्थकः, | ३६० | ६ |
| वच्चे | वच्चे— | ३७१ | १ |
| गुणाप्यत्वे | गुणाद्याप्यत्वे | ४०४ | ४ |
| निरूपयितुं | निरूप्य | ४०८ | १६ |
| प्रमामानु | प्रमानु | ४६३ | ६ |
| व्याप्ति स्मरणा | व्याप्तिस्मरणा | ४७२ | १२ |
| तदानी | तदानी' | ४७० | १ |
| असधारणं | असाधारणं | ४७६ | १२ |
| कथ | कथं | ५१४ | १८ |
| वा नुमि | वानुमि | ५२० | १७ |
| केवलान्वयि | केवलान्वयि | ५६२ | ४ |

| अशुद्धं । | शुद्धं । | पृष्ठं । | पङ्क्तिः । |
|-------------------|-----------------------|-----------|------------|
| काशान्ता | काशात्यन्ता | ५६३ | १ |
| प्रतित्वात् | प्रतियोगित्वात् | ५७६ | ६ |
| वक्रादि | वक्रादि | ५८६ | ४ |
| श्रीद्रु | श्रीमद्रु | ६०३ | ३ |
| प्रनायक | प्रामाण्यक | ६०३ | ११ |
| परमान्व | परमाण्व | ६०५ | ६ |
| परमानु | परमाणु | ६०५ | १६ |
| तद्भूत | उद्भूत | ६०७ | २० |
| पराणु | परमाणु | ६०८ | १२ |
| विशेष्य | विशेष्य | ६२६ | ५ |
| व्यवृत्ता | व्यावृत्ता | ६३७ | ६ |
| नायत्या | नायत्या | ६४७ | १२ |
| प्रमाणति | प्रमाणेति | ६६० | १६ |
| मापाद्य | मुपपाद्य | ६७५ | १२ |
| मर्धापत्तिः | मर्थापत्तिः | ६७७ | १७ |

तत्त्वचिन्तामणौ अनुमानखण्डे अनुमित्यादि- बाधान्तभागस्य सूचीपत्रं ।



| विषयः । | पृष्ठं । |
|------------------------------------|----------|
| अनुमित्यनुमानलक्षणं | २ |
| अनुमानप्रामाण्यं | २१ |
| व्याप्तिपञ्चकं | ३० |
| सिंह-व्याघ्रव्याप्तिलक्षणं | ४६ |
| व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नाभावः | ५३ |
| व्याप्तिपूर्वपक्षः | ६६ |
| व्याप्तिसिद्धान्तलक्षणं | १०० |
| सामान्याभावः | १२४ |
| विशेषव्याप्तिः | १३० |
| अतएव चतुष्टयं | १६५ |
| व्याप्तिग्रहोपायपूर्वपक्षः | १७४ |
| व्याप्तिग्रहोपायसिद्धान्तः | २१० |
| तर्कनिरूपणं | २१६ |
| व्याप्त्यनुगमः | २४३ |
| सामान्यलक्षणापूर्वपक्षः | २५३ |
| सामान्यलक्षणासिद्धान्तः | २८३ |
| उपाधिवादपूर्वपक्षः | २८४ |
| उपाधिवादसिद्धान्तः | ३३६ |
| उपाधिविभागः | ३७८ |

विषयः ।

पृष्ठं ।

| | | | | |
|-------------------------------|----|----|----|-----|
| उपाधिदूषकतावीजपूर्वपक्षः | .. | .. | .. | ३८३ |
| उपाधिदूषकतावीजसिद्धान्तः | .. | .. | .. | ३८३ |
| उपाध्याभासनिरूपणं | .. | .. | .. | ३८८ |
| पक्षतापूर्वपक्षः | .. | .. | .. | ४०७ |
| पक्षतासिद्धान्तः | .. | .. | .. | ४३२ |
| पक्षमर्शपूर्वपक्षः | .. | .. | .. | ४४२ |
| परामर्शसिद्धान्तः | .. | .. | .. | ४८३ |
| केवलान्वय्यनुमानपूर्वपक्षः | .. | .. | .. | ५५२ |
| केवलान्वय्यनुमानसिद्धान्तः | .. | .. | .. | ५७२ |
| केवलव्यतिरेक्यनुमानपूर्वपक्षः | .. | .. | .. | ५८२ |
| केवलव्यतिरेक्यनुमानसिद्धान्तः | .. | .. | .. | ६०४ |
| संशयकरणकार्यापत्तिपूर्वपक्षः | .. | .. | .. | ६४५ |
| संशयकरणकार्यापत्तिसिद्धान्तः | .. | .. | .. | ६५६ |
| अनुपपत्तिकरणकार्यापत्तिः | .. | .. | .. | ६७३ |
| अवयवविभागः | .. | .. | .. | ६८६ |
| न्यायलक्षणं | .. | .. | .. | ६६१ |
| अवयवलक्षणं | .. | .. | .. | ६६८ |
| प्रतिज्ञालक्षणं | .. | .. | .. | ७०३ |
| हेतुलक्षणं | .. | .. | .. | ७२५ |
| अन्वयिहेतुलक्षणं | .. | .. | .. | ७३५ |
| व्यतिरेकिहेतुलक्षणं | .. | .. | .. | ७३७ |
| उदाहरणसामान्यलक्षणं | .. | .. | .. | ७४० |
| उदाहरणविशेषलक्षणं | .. | .. | .. | ७४१ |
| उपनयसामान्यविशेषलक्षणानि | .. | .. | .. | ७४६ |
| निगमनलक्षणं | .. | .. | .. | ७५२ |

| विषयः । | | | | | पृष्ठं । |
|------------------------|----|----|----|----|----------|
| हेत्वाभाससामान्यलक्षणं | .. | .. | .. | .. | ७६२ |
| सव्यभिचारपूर्वपक्षः | .. | .. | .. | .. | ७८४ |
| सव्यभिचारसिद्धान्तः | .. | .. | .. | .. | ८१६ |
| साधारणपूर्वपक्षः | .. | .. | .. | .. | ८१६ |
| साधारणसिद्धान्तः | .. | .. | .. | .. | ८२३ |
| असाधारणपूर्वपक्षः | .. | .. | .. | .. | ८२५ |
| असाधारणसिद्धान्तः | .. | .. | .. | .. | ८२६ |
| अनुपसंहारिपूर्वपक्षः | .. | .. | .. | .. | ८३२ |
| अनुपसंहारिसिद्धान्तः | .. | .. | .. | .. | ८३८ |
| विरुद्धपूर्वपक्षः .. | .. | .. | .. | .. | ८४२ |
| विरुद्धसिद्धान्तः .. | .. | .. | .. | .. | ८५५ |
| सत्प्रतिपक्षपूर्वपक्षः | .. | .. | .. | .. | ८६५ |
| सत्प्रतिपक्षसिद्धान्तः | .. | .. | .. | .. | ८७१ |
| असिद्धिपूर्वपक्षः .. | .. | .. | .. | .. | ८६७ |
| असिद्धिसिद्धान्तः | .. | .. | .. | .. | ८१६ |
| बाधपूर्व पक्षः .. | .. | .. | .. | .. | ८३८ |
| बाधसिद्धान्तः .. | .. | .. | .. | .. | ८६० |

तत्त्वचिन्तामणि-तट्टीकाकारधृतानां श्लोकानां श्रुती
नाञ्च प्रतीकस्य अकारादिक्रमेण सूची ।



अनुमानखण्डस्य ।

प्रतीकः ।

क ।

कल्याणानां त्वममि ७४६ । २२ ॥

य ।

यां यां प्रियां प्रैक्षत ७४६ । २२ ॥

व ।

व्याघातो यदि शङ्कास्ति २३३ । १ ॥

स ।

सञ्चारिणी दीपशिखेव ७४६ । २५ ॥

समानवलो हि सत्प्रतिपक्षौ ८७४ । ६ ॥

स्वर्गकामो यजेत ६२० । १५ ॥



तत्त्वचिन्तामणि-तट्टीकाकारधृतग्रन्थकारनाम्नां
अकारादिक्रमेण सूची ।

अनुमानखण्डस्य ।

प्रश्नकारनामानि ।

अ ।

अभिनवमीमांसकाः ६४६ । १२ ॥

आ ।

आचार्यः ७८ । १२ ॥ २५३ । २ ॥ ५२६ । १६ ॥

उ ।

उपाध्यायाः ६६२ । १५ ॥

ऊ ।

ऊजवः ६० । १० ॥ १६६ । ४ ॥

ए ।

एकदेशी २०३ । १५ ॥

ख ।

खण्डनकारः २३३ । ३ ॥

ट ।

टौकाकारः ८७ । १८ ॥

ड ।

द्वौधितिकृतः ५ । १४ ॥

न।

नवीनाः ६६१ । १६ ॥

नव्याः १४ । १ ॥ २२ । १० ॥ २१३ । ८ ॥ २१५ । १ ॥ २४४ । ६ ॥ २५१ ।
११ ॥ ५२३ । ६ ॥ ७८२ । ४ ॥ ७८७ । ७ ॥ ८०३ । ६ ॥ ८८८ ।
१८ ॥ ८६६ । १७ ॥

प।

पितृचरणाः १६३ । १३ ॥

प्राञ्चः ६५ । ७ ॥ १५२ । १५ ॥ २३८ । १४ ॥ ५१८ । १७ ॥ ५२० । ८ ॥
५३२ । १६ ॥ ७८१ । १३ ॥ ७८२ । ४ ॥ ७८५ । १७ ॥ ८६३ । १८ ॥
ग्रामाकरः १७४ । ४ ॥

भ।

भट्टाचार्याः २१५ । ५ ॥ ६४३ । ६ ॥

म।

मध्यमः ५२० । ६ ॥

मिश्राः ६ । ६ ॥ ४८५ । १२ ॥ ७८७ । ४ ॥ ७८ । ८ ॥ २१५ । ३ ॥
४६५ । १२ ॥ ५६८ । १२ ॥

मीमांसकः २०४ । ५ ॥ २०६ । १२ ॥ ६४५ । ७ ॥ ७२० । ६ ॥

ल।

लीलावतीकारः ८६ । १० ॥ २८४ । १५ ॥

स।

सम्प्रदायविदः २६८ । १४ ॥

साम्प्रदायिकाः ६६३ । १५ ॥ ७८६ । १५ ॥ ८६२ । १५ ॥

सोन्दङ्गः ५३ । ७ ॥ ५७५ । १० ॥

स्वतन्त्राः १२१ । १२ ॥

तत्त्वचिन्तामणि-तट्टीकाकारधृतग्रन्थनाम्नां
अकारादिक्रमेण सूची ।



अनुमानखण्डस्य ।

ग्रन्थनामानि ।

न ।

निबन्धः ८८८ । ५ ॥

व ।

वेदः ७२० । १६ ॥

ल ।

लीलावती ८६ । ६० ॥ २८४ । १५ ॥



तच्चचिन्तामणि-तट्टीकाकारोल्लिखितवैदिकशब्दानां
अकारादिक्रमेण सूची ।

—००—

अनुमानखण्डस्य ।

वैदिकशब्दाः ।

अ ।

अपूर्व ७२० । १८ ॥

य ।

यागः ७२० । १५ ॥

स ।

स्वर्गः ७२० । १५ ॥

अकारादिक्रमेण विषयसूची ।

—o—o—o—

अनुमानखण्डस्य ।

विषयः ।

अ ।

अतएव चतुष्टयं १६५ । १ ॥

अनुपपत्तिकरणकार्थापत्तिप्रामाण्यवादिमीमांसकमतं ६७३ । १ ॥

अनुपपत्तिकरणकार्थापत्तिप्रामाण्यवादिमीमांसकमतखण्डनं ६८० । १३ ॥

अनुपसंहारिदोषस्य परोक्तलक्षणदूषणं ८३१ । १ ॥

अनुपसंहारिदोषस्य सिद्धान्तलक्षणं ८३८ । १ ॥

अनुमाननिरूपणप्रतिज्ञा १ । १ ॥

अनुमानविभागः ५५२ । १ ॥

अनुमानस्वरूपकथनं २ । २ ॥

अनुमानाप्रामाण्यवादिचाव्वाकमतं २१ । १ ॥

अनुमानाप्रामाण्यवादिचाव्वाकमतखण्डनं २२ । २ ॥

अन्वय-व्यतिरेकिहेतुत्वलक्षणं ७३५ । ६ ॥

अन्वय-व्यतिरेक्युदाहरणलक्षणं ७४१ । १ ॥

अन्वयिहेतुत्वलक्षणं ७३५ । ३ ॥

असाधारणदोषस्य परोक्तलक्षणदूषणं ८२५ । १ ॥

असाधारणदोषस्य सिद्धान्तलक्षणं ८२६ । १ ॥

असिद्धिदोषस्य परोक्तलक्षणदूषणं ८६७ । १ ॥

असिद्धिदोषस्य सिद्धान्तलक्षणं ८२६ । १ ॥

उ ।

उदाहरणसामान्यलक्षणं ७४० । ३ ॥

उपनयलक्षणं ७४६ । १ ॥

उपाधिदूषकतावीजपूर्वपक्षः ३८३ । १ ॥

उपाधिदूषकतावीजसिद्धान्तः ३८३ । १ ॥

उपाधिवादपूर्वपक्षः २८४ । १ ॥

उपाधिवादसिद्धान्तः ३३६ । १ ॥

उपाधिविभागः ३७८ । १ ॥

उपाधाभासनिरूपणं ३८८ । १ ॥

क ।

केवलव्यतिरेक्यनुमानलक्षणपूर्वपक्षः ५८० । १ ॥

केवलव्यतिरेक्यनुमानसिद्धान्तलक्षणं ५०४ । १ ॥

केवलान्वय्यनुमानलक्षणपूर्वपक्षः ५५२ । २ ॥

केवलान्वय्यनुमानस्य सिद्धान्तलक्षणव्यवस्थापनं ५७२ । १ ॥

केषाञ्चिद्व्याप्तिलक्षणदूषणं ६६ । १ ॥

त ।

तर्कनिरूपणं २१ । १ ॥

न ।

निगमनलक्षणं ७५२ । ३ ॥

न्याय-तदवयवनिरूपणप्रतिज्ञा ६८६ । ॥

प ।

पक्षतानिरूपणप्रतिज्ञा ४०७ । १ ॥

पक्षतासिद्धान्तव्यवस्थापनं ४३२ । १ ॥

पञ्चलक्षणीविचारपूर्वकं व्याप्तेरव्यभिचरितत्वपदप्रतिपाद्यत्वा-
भावव्यवस्थापनं २७ । १ ॥

परामर्शपूर्वपक्षः ४४२ । १ ॥

परामर्शसिद्धान्तः ४६३ । १ ॥

परोक्षसव्यभिचारलक्षणदूषणं ७८४ । २ ॥

परोक्तोदाहरणसामान्यलक्षणनिराकरणं ७४१ । ३ ॥

परोक्तन्यायलक्षणनिराकरणं ६६१ । १ ॥

फ ।

फलीभूताया अनुमितेः तत्करणस्य च लक्षणं २ । १ ॥

व ।

बाधदोषस्य परोक्तलक्षणदूषणं ६३८ । १ ॥

बाधदोषस्य सिद्धान्तलक्षणं ६६० । १ ॥

व ।

विरुद्धदोषस्य परोक्तलक्षणदूषणं ८४२ । १ ॥

विरुद्धदोषस्य सिद्धान्तलक्षणं ८५५ । १ ॥

विशेषव्याप्तिलक्षणं १३० । १ ॥

व्यतिरेकिहेतुत्वलक्षणं ७३५ । ५ ॥

व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नाभाववादिसोन्दङ्गातं ५३ । १ ॥

व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नाभाववादिसोन्दङ्गमतखण्डनं ५४ । २ ॥

व्यापकतापरामर्शस्य हेतुतावादिमतं ५२१ । ३ ॥

व्याप्तिग्रहोपाये प्राभाकरमतं १७४ । १ ॥

व्याप्तिग्रहोपाये स्वमतव्यवस्थापनं २१० । १ ॥

व्याख्यानगमप्रणाली ३४३ । १ ॥

स ।

सत्प्रतिपक्षदोषस्य परोक्तलक्षणदूषणं ८६५ । १ ॥

सत्प्रतिपक्षदोषस्य सिद्धान्तलक्षणं ८७१ । १ ॥

संशयकरणकार्यापत्तिप्रामाण्यवादिमीमांसकमतं ६४५ । १ ॥

संशयकरणकार्यापत्तिप्रामाण्यवादिमीमांसकमतखण्डनं ६५८ । १ ॥

संशयपक्षतावादिमतखण्डनं ४०७ । २ ॥

संशययोग्यत्वरूपपक्षतावादिमतखण्डनं ४२० । १ ॥

सव्यभिचारविभागः ७८४ । १ ॥

सव्यभिचारस्य सिद्धान्तलक्षणं ८१६ । २ ॥

साधारणदोषस्य परोक्तलक्षणदूषणं ८१६ । १ ॥

साधारणदोषस्य सिद्धान्तलक्षणं ८२३ । १ ॥

सामान्यलक्षणापूर्वपक्षः २५३ । १ ॥

सामान्यलक्षणासिद्धान्तः २८३ । १ ॥

सामान्याभावविचारः १२४ । १ ॥

सिंह-व्याघ्रव्याप्तिलक्षणविचारः ४६ । १ ॥

सिद्धान्तव्याप्तिलक्षणं १०० । १ ॥

सिषाधयिषापक्षतावादिमतस्त्रण्डनं ४२३ । १ ॥

सूत्रकारीयप्रतिज्ञालक्षणनिराकरणं ७०३ । १ ॥

स्वमते न्यायलक्षणव्यवस्थापनं ६६१ । २ ॥

स्वमते प्रतिज्ञालक्षणव्यवस्थापनं ७०३ । २ ॥

ह ।

हेत्ववयवलक्षणं ७२५ । ३ ॥

हेत्वाभासनिरूपणप्रतिज्ञा ७६२ । १ ॥

हेत्वाभासविभागः ७७८ । १ ॥

हेत्वाभाससामान्यलक्षणं ७६३ । १ ॥

हेत्वाभासानां असाधकतासाधकत्वव्यवस्थापनं ६८३ । १ ॥

ॐ नमः शिवाय ।

तत्त्वचिन्तामणौ



अनुमानाख्यद्वितीयखण्डम् ।

प्रत्यक्षोपजीवकत्वात् प्रत्यक्षानन्तरं बहुवादिसम्मतत्वादुपमानात् प्रागनुमानं निरूप्यते ।

अनुमानाख्यद्वितीयखण्डरहस्यम् ।

न्यायाम्बुधिस्तप्तसेतुं हेतुं श्रीराममखिलसम्पत्तेः ।

तातं त्रिभुवनगीतं तर्कालङ्कारमादरान्नत्वा ॥

श्रीमता मथुरानाथ-तर्कवागीशधीमता ।

विशदीकृत्य दर्शयन्ते द्वितीयमणिफक्किकाः ॥

आन्विचिकीपण्डितमण्डलीषु

सत्ताण्डवैरध्ययनं विनापि ।

मदुक्तमेतत् परिचिन्त्य धीराः

निःशङ्कमध्यापनमातनुध्वम् ॥

यद्यपीदं वज्रभिर्वज्रेषु वज्रधा चर्वितं ज्ञायते च कैश्चित् सामान्यतो हेत्वाभासान्तं, तथापि तन्नानास्थानविततमशेषाप्रकाशकं वज्र-

तत्र व्याप्तिविशिष्ट-पक्षधर्मताज्ञानजन्यं ज्ञानमनु-
मितिस्तत्करणमनुमानं तच्च लिङ्गपरामर्शो न तु परा-
मृध्यमाणं लिङ्गमिति वक्ष्यते ।

तरकुतर्कसम्बलितमसाम्प्रदायिकञ्चातो व्यामोहाद्यैव केवलं सर्वेषां
भवतीति सर्वार्थजिष्टक्षया सत्तर्कमामूलव्याख्याय वैशद्याय च
ममात्र परं निर्व्वन्धः । प्रत्यक्षं निरूपितमिदानीं अनुमानं निरूप-
णीयमतः शिष्यावधानाय^(१) प्रतिजानीते^(२), 'प्रत्यक्षानन्तरमित्या-
दिना, अन्यथा^(३) अरण्यरुदितं स्यादिति भावः^(४) । 'प्रत्यक्षानन्तरं'
प्रत्यक्षनिरूपणानन्तरं, 'उपमानात् प्राक्' उपमाननिरूपणात् प्राक्,
'अनुमानं निरूप्यते' इत्यन्वयः, 'निरूप्यते' लक्षण-स्वरूप-प्रामाण्या-
दिभिर्ज्ञायते, लक्षण-स्वरूप-प्रामाण्यादिप्रकारकज्ञानानुकूलव्यापा-
रविषयोऽनुमानमित्यर्थः । व्यापारः शब्दप्रयोग एव, तद्विष-
यता व्यापारानुबन्धिन्येव । प्रत्यक्षग्रन्थानुमानग्रन्थयोरेकवाक्यताप्रति-

(१) शिष्यशुश्रूषायै इत्यर्थः ।

(२) प्रतिज्ञा च अव्यवहितोत्तरकालकर्तव्यत्वप्रकारकबोधानुकूलव्या-
पारः, तादृशव्यापारश्च प्रत्यक्षानन्तरमित्यादि निरूप्यते इत्यन्तं वाक्यं,
वर्तमानसामीप्यविहितस्तटा निष्पन्नेन निरूप्यते इति वाक्येन प्रयोगाधि-
करणकालाव्यवहितोत्तरकालीनत्वेन निरूपणबोधनात् ।

(३) निरूपणस्य प्रतिज्ञापूर्व्वकत्वाभावे ।

(४) अरण्यरोदनं यथा निष्कलं तथा तादृशनिरूपणं स्यात् ।

पक्षे प्रत्यक्षानुमानयोः सङ्गतित्वरूपेण सङ्गतिमपि दर्शयति, 'प्रत्यक्षोपजीवकत्वादिति अनुमानस्य प्रत्यक्षकार्यत्वादित्यर्थः । भवति हि व्याप्तिज्ञानात्मकमनुमानमिन्द्रियात्मकप्रत्यक्षफलमिति भावः । अत्र ज्ञानजन्यजिज्ञासाप्रयोज्यत्वं पञ्चम्यर्थः, अन्वयश्चास्य प्रत्यक्षानन्तरनिरूपणे, तथाच प्रत्यक्षोपजीवकत्वज्ञानजन्यजिज्ञासाप्रयोज्यप्रत्यक्षानन्तरनिरूपणविषयोऽनुमानमित्यर्थः । एतेन सङ्गतित्वरूपेण सङ्गतिर्दर्शिता, अनन्तराभिधानप्रयोजकजिज्ञासाजनकज्ञानविषयत्वं हि सङ्गतित्वं, तथाचानन्तराभिधाने प्रत्यक्षकार्यत्वज्ञानजन्यजिज्ञासाप्रयोज्यत्वग्रहे प्रत्यक्षकार्यत्वेऽपि अनन्तराभिधानप्रयोजकजिज्ञासाजनकज्ञानविषयत्वग्रहात् तुल्यवित्तिवेद्यत्वेन उत्तरकालं मानसबोधसम्भवात् । एकवाक्यत्वञ्च एकप्रयोजनप्रयोजनकप्रतिपत्तिविषयार्थकत्वं, पूर्वग्रन्थार्थप्रतिपत्तिप्रयोजनप्रयोजनकप्रतिपत्तिविषयार्थकत्वमिति यावत् प्रयोजनन्तु परम्परया मुक्तिरेव । एकवाक्यताप्रतिपत्तौ च सङ्गतिप्रदर्शनं लिङ्गज्ञानविधया हेतुः, यत् यत्सङ्गतिमत्यतिपादकवाक्यं भवति तत्तत्प्रतिपादकग्रन्थेनैकवाक्यं भवति यथा सन्निकर्षादिग्रन्थ एव प्रत्यक्षकार्यत्वैककार्यकारित्वादिसङ्गतिमत्यतिपादकवाक्यं भवन्ति प्रत्यक्षप्रतिपादकग्रन्थेनैकवाक्यमपि भवतीति व्याप्तेः । न चैतादृशैकवाक्यताप्रतिपत्तिर्न प्रकृतोपयोगिनीति वाच्यम् । तत्प्रतिपत्तेः प्रत्यक्षग्रन्थप्रयोज्यफलेच्छावतोऽनुमानग्रन्थप्रवृत्तावुपयोगित्वात् । नन्वनुमाने प्रत्यक्षोपजीवकत्ववच्चक्षुराद्यात्मके प्रत्यक्षेऽप्यनुमानोपजीवकत्वस्याविशिष्टतया अनुमाननिरूपणानन्तरं प्रत्यक्षनिरूपणापत्तिः । भवति हि कार्यमात्रेऽदृष्टस्य हेतुतया चक्षुरादावप्यदृष्टं हेतुः तच्चादृष्टं

दौपदानादौ प्रवृत्त्या, तद्वृत्तिश्च दौपदानादौ स्वेष्टसाधनताद्यनुमा-
नादित्यदृष्टद्वारा चक्षुरादिकमनुमानोपजीवकं। न चादृष्टाद्वारकोप-
जीवकत्वमेव सङ्गतिरिति वाच्यम्। स्वेष्टसाधनतानुमितिहेतुकप्र-
वृत्त्यादिक्रमेण घर्षणादिजनितायां खण्डचक्षुरादिव्यक्तावदृष्टद्वारापि
परम्परयानुमानोपजीवकत्वसत्त्वात्। न च प्रवृत्त्यद्वारकं जन्यत्वरूपं वा^(१)
उपजीवकत्वमेव सङ्गतिरिति वाच्यम्। मनसोऽनुमानत्वनये आत्म-
मनःसंयोगस्य निर्विकल्पादिद्वारा प्रत्यक्षप्रमितिकरणत्वेन प्रत्यक्ष-
प्रमाणरूपस्य साक्षान्मनोरूपानुमानजन्यत्वेन तादृशानुमानोपजी-
वकत्वस्यापि प्रत्यक्षे सत्त्वात्। एतेन यत्किञ्चित्प्रमितिविभाजको-
पाध्यवच्छिन्ननिरूपितफलोपधानात्मककरणत्वावच्छेदेन उपजीवकत्व-
मेव सङ्गतिः तच्चानुमान एवास्ति न तु इन्द्रियात्मकप्रत्यक्षप्रमाणे
मनःश्रवणयोरजन्यत्वात् फलोपधानात्मकत्वविवक्षणादीश्वरीयव्याप्ति-
ज्ञानस्यासदाद्यनुमितिस्वरूपयोग्यकरणत्वेऽपि^(२) अनुमाननिष्ठप्रत्य-
क्षोपजीवकत्वस्य न सङ्गतित्वहानिरित्यपि प्रत्युक्तम्। मनसोऽनुमिति-
करणत्वनयेऽनुमितिकरणत्वावच्छेदेनापि प्रत्यक्षोपजीवकत्वाभावात्
तादृशोपजीवकत्वस्यैव सङ्गतित्वे शब्दे उपमानोपजीवकत्वस्याप्यसङ्गति-
त्वापाताच्च व्यवहारादितोऽपि शक्तिग्रहात् शाब्दधीकरणत्वावच्छेदे-
नोपमानोपजीवकत्वाभावादिति चेत्। न। प्रत्यक्षानुमानयोः परस्परं
उपजीवकत्वाविशेषेऽपि यत् यदुपजीवकं तत् तन्निरूपणानन्तरनिरूप्य-
मिति नियमाभावादेव अनुमाननिरूपणानन्तरं प्रत्यक्षनिरूपण-

(१) परम्परयोपजीवकत्वं न साक्षाज्जन्यत्वमपि तु प्रयोज्यत्वमेव।

(२) स्वरूपयोग्यत्वेऽपीति ख०।

प्रसङ्गविरहात् प्रत्यक्षानन्तरमेव अनुमानं निरूपितं, न त्वनुमानानन्तरं प्रत्यक्षमिति अत्र स्वतन्त्रेच्छस्येति न्यायेन^(१) इच्छाया-
एव बीजत्वादिति दिक् ।

अनुमानग्रन्थोपमानग्रन्थयोरेकवाक्यताप्रतिपत्तयेऽनुमानोपमान-
योरपि सङ्गतिमत्रैव दर्शयति, 'वज्रवादीति । न चैतद्वदृशमनुमान-
निरूपणावसर एवोचितमिति वाच्यम् । स्वतन्त्रेच्छस्य नियन्तु-
मशक्यत्वात् । न च तथाप्यनुमानस्य वज्रवादिसम्मतत्वोत्कीर्तनात्
कथमुपमाने सङ्गतिलाभ इति वाच्यम् । 'वज्रवादिसम्मतत्वादित्य-
स्योपमाने वज्रवादिसम्मतानुमानोपजीवकत्वादित्यर्थात् । भवति च
गोसदृशो गवयपदवाच्य इत्यतिदेशवाक्यार्थज्ञानात्मकोपमाने गवा-
दिपदशक्तिग्राहकानुमानोपजीवकत्वमिति भावः । अत्रापि ज्ञान-
जन्यजिज्ञासाप्रयोज्यत्वं पञ्चम्यर्थः, अन्वयस्तस्य 'उपमानादित्यत्र उप-
मानपदार्थे उपमाननिरूपणे ।

दौधितिहृतस्तु वज्रवादिसम्मतत्वोत्कीर्तनेनावसरस्य सङ्गतित्वं
सूच्यते, तथा हि अनुमानस्य वज्रवादिसम्मतत्वेन निरसनीयाल्प-
वादिविप्रतिपत्तिकतया वज्रतरदुःखाजनकप्रतिपत्तिकत्वादत्रैव प्रथमं
व्युत्पत्तिर्जिज्ञासा न तु उपमाने तस्याल्पवादिसम्मतत्वेन निरसनी-
यवज्रवादिविप्रतिपत्तिकतया वज्रतरदुःखानुबन्धिप्रतिपत्तिकत्वात्,
तथाच अनुमाने प्रथमं प्रतिबन्धकीभूतशिष्यजिज्ञासोत्पत्तौ^(२) तन्नि-

(१) स्वतन्त्रेच्छस्य पर्यानुयोगानर्हत्वमिति न्यायेनेत्यर्थः ।

(२) उपमाननिरूपणप्रतिबन्धकीभूतशिष्यजिज्ञासोत्पत्तौ इत्यर्थः ।

रूपे च^(१) तन्निवृत्त्यैवावसरसङ्गत्या उपमाननिरूपणमिति भावः
इत्याहुः^(२) तन्नये ज्ञानप्रयोज्यप्राथमिकजिज्ञासाप्रयोज्यत्वमत्र पञ्च-
स्यर्थः, अन्वयश्चास्य उपमानात् प्राङ्गिरूपे एवञ्च वहुवादिसम्भ-
तत्वज्ञानप्रयोज्यप्राथमिकजिज्ञासाप्रयोज्योपमानप्राङ्गिरूपणविषयोऽ-
नुमानमित्यन्वय इति ध्येयम् ।

मिश्रास्तु 'प्रत्यक्षोपजीवकत्वादित्यादिः 'निरूप्यत इत्यन्तग्रन्थोऽत्र
कस्यचित् कल्पितो न तु वास्तविकः पाठः । 'अथानुमानं निरू-
प्यते' इत्येव पाठोवास्तविकः, तावतैव सिद्ध-साध्यसमभिव्याहार-
वल्लभस्य हेतु-हेतुमद्भावस्य प्रतिबन्धकौभूतजिज्ञासानिवर्त्तक-
सिद्धत्वकथनेनावसरस्य च सङ्गतित्वलाभसम्भवात्, अन्यथा शब्दखण्डे-
ष्युपमानोपजीवकत्वात् उपमानानन्तरं शब्दो निरूप्यते इत्यस्य वक्तव्य-
त्वापातादित्याहुः ।

अनुमितेः प्रत्यक्षादिप्रमितिभिन्नत्वज्ञानं विना अनुमितिकरण-
त्वेन अनुमानस्य इतरभिन्नत्वज्ञानं न सम्भवति अनुमिति-प्रत्यक्ष-
योरभेदग्रहात् प्रत्यक्षादिप्रमितिकरणे व्यभिचारज्ञानापत्तेः, अतः
प्रथमतोऽनुमितेरितरभेदानुमापकमाह, 'तत्रेति, अतो नार्थान्त-
रावकाशः ।

केचित्तु अनुमितिकरणत्वमनुमानलक्षणं करणीयं, तज्ज्ञा-
नञ्च नानुमितिज्ञानं विना सम्भवति तस्य तद्वटितमूर्त्तिकत्वा-

(१) अनुमाननिरूपणे इत्यर्थः, तन्निर्व्वचने इति ख० ।

(२) इति वदन्तीति ख० ग० ।

दतः प्रथमतोऽनुमितिं ज्ञापयति, 'तत्रेति, अतो नार्थान्तरावकाश-
इत्याहुः ।

'तत्र' कर्त्तव्ये लक्षणादिप्रकारकानुमाननिरूपणे, सप्तम्यर्थी-
विशेषणता, अन्वयस्यास्यानुमितिरित्यनेन, तथाच कर्त्तव्यलक्षणा-
दिप्रकारकानुमाननिरूपणविशेषणीभूता अनुमितिरीदृशं ज्ञान-
मित्यन्वयः । 'व्याप्तिविशिष्टेति व्याप्तिविशिष्टञ्च तत् पक्षधर्मताज्ञा-
नञ्चेति कर्मधारयः समासः, तथाच 'व्याप्तिविशिष्टं' व्याप्तिप्रकारकं,
यत् 'पक्षधर्मताज्ञानं' हेतोः पक्षे सम्बन्धज्ञानं, तज्जन्यज्ञानमनुमिति-
रित्यर्थः । भवति च पर्वतोवह्निमान् इत्याद्यनुमितिर्वह्निव्याप्यधूम-
वान् पर्वत इत्यादिव्याप्तिप्रकारक-पक्षनिष्ठहेतुसम्बन्धज्ञानजन्येति
लक्षणसमन्वयः । अत्र धूमवान् पर्वत इत्यादिकेवलपक्षधर्मताज्ञानजन्ये
तदनुव्यवसाये धूमवत्पर्वतवान् देश इत्यादिविशिष्टवैशिष्ट्यबोधादौ
चातिव्याप्तिवारणाय 'व्याप्तिप्रकारकेति । न च पक्षविशेष्यकहेतुसम्बन्ध-
ज्ञानत्वेन हेतुत्वविवक्षणेऽप्येतदोषवारणसम्भव इति वाच्यम् । असम्भ-
वापत्तेः अनुमितावपि तेन रूपेणाहेतुत्वात् । वह्निव्याप्यधूम इत्यादि-
केवलव्याप्तिप्रकारकज्ञानजन्ये वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वत इत्यादिज्ञाने-
ऽतिव्याप्तिवारणाय 'पक्षधर्मतेति । वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वत इत्यादि-
परामर्शजन्ये संस्कारेऽतिव्याप्तिवारणाय चरमज्ञानपदं । ननु तथापि
वह्निव्याप्यधूमवन्महानससदृशः पर्वतपदवाच्य इत्यतिदेशवाक्यार्थ-
ज्ञानजन्यायामयं पर्वतपदवाच्य इत्युपमितावतिव्याप्तिः तज्जनकौ-
भूतस्यातिदेशवाक्यार्थज्ञानस्यायं वह्निव्याप्यधूमवन्महानससदृशः इति
सादृश्यप्रत्यक्षस्य च व्याप्तिप्रकारकपक्षधर्मताज्ञानत्वात् । ईश्वरीय-

तादृशज्ञानमादाय घटादिशाब्दबोधादौ चातिव्याप्तिः । न च व्याप्तिप्रकारक-पक्षधर्मताज्ञानजन्यत्वमत्र तादृशनिश्चयत्वावच्छिन्नजनकताप्रतियोगिकजन्यत्वमिति नोपमित्यादावतिव्याप्तिः तत्र तादृशनिश्चयत्वेनाहेतुत्वादिति वाच्यम् । असम्भवापत्तेः वक्त्रिव्याप्यधूमः आलोकवान् पर्वतः वक्त्रिव्याप्यधूमः धूमवान् पर्वत इत्यादि ज्ञानादप्यनुमितिप्रसङ्गादनुमितावपि तेन रूपेणाहेतुत्वात् । न च व्याप्तिप्रकारकपक्षधर्मताज्ञानजन्यत्वं पक्षविशेष्यकसम्बन्धावगाहितांशे व्याप्तिप्रकारकनिश्चयत्वावच्छिन्नजन्यत्वं, पक्षविशेष्यकसम्बन्धावगाहितांशे व्याप्तिप्रकारकत्वञ्च विशिष्टवैशिष्ट्यावगाहित्वपर्यवसन्नमिति नासम्भवः, वक्त्रिव्याप्यधूम आलोकवान् पर्वत इत्यादिज्ञानस्य व्याप्तिविशिष्टवैशिष्ट्यावगाहित्वाभावादनुमितौ तेन रूपेण हेतुत्वे बाधकभावदिति वाच्यं । व्याप्तेः सामानाधिकरण्यानतिरेकितया वक्त्रिसमानाधिकरणधूमवान् पर्वत इत्यादिज्ञानादप्यनुमितिप्रसङ्गादनुमितौ तेन रूपेणाहेतुत्वादिति चेत् । न । हेतुरधिकरणे प्रकारः, अधिकरणं वृत्तित्वे, वृत्तित्वमभावे, अभावः प्रतियोगितायां, प्रतियोगित्वमवच्छेदके, अवच्छेदकमन्योन्याभावे, अन्योन्यभावश्च साध्यतावच्छेदके, तच्च साध्ये, साध्यमधिकरणे, अधिकरणं वृत्तित्वे, वृत्तित्वं हेतौ, हेतुः पक्षे इत्याकारकविलक्षणविषयताकनिश्चयत्वावच्छिन्नजनकताप्रतियोगिकजन्यताया विवक्षितत्वात् । अत एव प्रथमज्ञानपदमपि सार्थकं संशयान्यतादृशविलक्षणविषयताकत्वेन हेतुत्वप्रवेशे असम्भवापत्तेः दृष्टादितोऽपि अनुमित्युत्पादप्रज्ञात्^(१) अनुमितावपि

तेन रूपेणाहेतुत्वात् । न चानुमितावगृहीताप्रामाण्यकतादृशनिश्च-
यत्वेनैव हेतुत्वादसम्भव इति वाच्यम् । विशेषण-विशेष्यभावे विनि-
गमकाभावेनाप्रामाण्यग्रहाभावस्य पृथगेव हेतुतया कारणतावच्छेदके
तस्याप्रवेशात् तस्य प्रवेशेऽपि अधिकन्विति न्यायेन तादृशनिश्चयत्वस्य
कारणतावच्छेदकत्वानपायाच्च । अथ तथापि वक्त्रिव्याप्यधूमवत्पर्वतवान्
देश इत्यादिविशिष्ट-वैशिष्ट्यप्रत्यक्षे तादृशविशिष्ट-वैशिष्ट्यशाब्दबोधे
चातिशयिः दण्डोरक्तो न वेति संशये रक्तदण्डवानिति ज्ञानानुदयात्
तत्तद्विशिष्टवैशिष्ट्यज्ञानं प्रति तत्तद्विशेषणतावच्छेदकप्रकारक-तत्तद्वि-
शेषणनिश्चयत्वेनैव कारणतया तत्रापि यथोक्तनिश्चयत्वेन हेतुत्वादिति
चेत् । न । अभावाविषयकत्वेन प्रतियोगित्वाविषयकत्वेन वा चरम-
ज्ञानविशेषणात् यथोक्तविशिष्ट-वैशिष्ट्यप्रत्यक्षादेश्च^(१) व्याप्तिघटकतया
अभावादिविषयकत्वात् । न चैवं पक्षधर्मतापदवैयर्थ्यं तादृशविल-
क्षणव्याप्तिप्रकारताकनिश्चयत्वावच्छिन्नकारणताप्रतियोगिककार्यता-
शाल्यभावाविषयकज्ञानत्वस्यैव मस्यत्वात् वक्त्रिव्याप्यधूम इत्या-
दिकेवलव्याप्तिप्रकारकज्ञानजन्यस्य वक्त्रिव्याप्यधूमवान् पर्वत इत्या-
दिज्ञानस्य व्याप्तिघटकतया^(२) अभावादिविषयकत्वेनैव वारणा-
दिति वाच्यं । असम्भवापत्तेः अनुमितिं प्रत्यपि तेन रूपेणाहेतु-
त्वात् तादृशव्याप्तिप्रकारिताकनिश्चयत्वमपेक्ष्य लाघवेन ज्ञानत्वेन
मनस्त्वेन वानुमितिं प्रति करणत्वात् परामर्शहेतुतयैवातिप्रसङ्गभ-

(१) यथोक्तविशिष्ट-वैशिष्ट्यबोधादेरिति ख० ।

(२) व्याप्तिज्ञानात्मकतयेति क० ।

ज्ञात् । अतएव स्थानुर्न वेति संशयोत्तरं जायमानेऽयं स्थानुरिति
 प्रत्यचे इदं न रजतमिति भ्रमोत्तरं जायमाने इदं रजतमि-
 त्यादिप्रत्यचे च स्वातन्त्र्येण विशेषणज्ञानविधया वा स्थानुत्व-
 व्याप्यवक्रकोटरादिमान् रजतत्वव्याप्यचाकचक्रविशेषवानित्यादिवि-
 शेषदर्शनस्य व्याप्तिप्रकारक-पक्षधर्मतानिश्चयात्मकस्य जनकत्वेऽपि
 नातिव्याप्तिः विशेषदर्शनस्य विपरीतविश्वयविरोधित्वेन विशेषणज्ञा-
 नत्वेन वा हेतुतया एतादृशनिश्चयत्वेनाकारणत्वात् तत्र व्याप्तेरूप-
 नीतमानसामग्रीसत्त्वेन व्याप्तिघटकतया अभावादिविषयकत्वाच्च, न
 वा तमानयेत्यादौ तच्छब्देन व्याप्तादिविशिष्टोपस्थितिद्वारा जनिते
 वक्त्रिव्याप्यधूमवत्पर्वतमानयेत्यादिशब्दबोधे महावाक्यार्थज्ञानस्य
 पदार्थापस्थितिविधया अवान्तरवाक्यार्थज्ञानजन्यतयोपनर्थाज्ञान-
 जन्ये न्यायार्थज्ञाने नातिव्याप्तिः पदार्थापस्थितेः कारणतावच्छेदके-
 ऽतिरिक्तस्य पदज्ञानजन्यत्वस्य प्रविष्टतया निश्चयत्वस्याप्रविष्टतया
 च तत्रापि तादृशनिश्चयत्वेनाकारणत्वात् व्याप्तिघटकतया अभावा-
 दिविषयकत्वाच्च । नापि परामर्शानुव्यवसाये वक्त्रिव्याप्यधूमः धूमवान्
 पर्वतः वक्त्रिव्याप्यधूमः आलोकवान् पर्वत इत्यादिज्ञानानुव्यवसाये
 वा विषयविधया परामर्गस्य तादृशज्ञानस्य च हेतुत्वेऽप्यतिव्याप्तिः
 अनुव्यवसायं प्रति परामर्शदेर्विषयत्वेन तत्तद्वाक्यत्वेन वा हेतुतया
 तत्रापि यथोक्तनिश्चयत्वेनाकारणत्वात् व्याप्तिघटकतया अभावादि-
 विषयकत्वाच्च । एवमनुमितिब्रह्मापत्तावपि परामर्गस्य हेतुत्वेऽप्या-
 पत्तौ नातिव्याप्तिः तत्राप्राप्ताज्ञानास्कन्दितयथोक्तनिश्चयत्वेन
 हेतुतया कारणतावच्छेदकेऽतिरिक्तस्याप्राप्ताज्ञानास्कन्दितत्वस्य

प्रवेशात् व्याप्तेरुपनीतभानसामग्रीसत्त्वेन व्याप्तिघटकतया तस्याप्यभा-
वादिविषयकत्वाच्च । न वा वक्त्रिव्याप्यधूमवान् पर्वत इत्यादिविशिष्ट-
स्मरणे तादृशविशिष्टानुभवस्य हेतुत्वेऽपि अतिव्याप्तिः, तस्य व्याप्तिघट-
कतया अभावादिविषयकत्वात् तत्र तादृशविलक्षणविषयताकज्ञानत्वेन
ज्ञानत्वेन^(१) वा तादृशविशिष्टानुभवस्य हेतुतया तादृशविलक्षणविषय-
ताकनिश्चयत्वेनाजनकत्वाच्च । न चैवं तादृशसंशयात् स्मृत्यापत्तिः, संस्का-
राभावादेव ततः स्मरणानुत्पत्तेः संस्कारं प्रति तादृशनिश्चयत्वेनैव
हेतुत्वात् । न च विनिगमकाभावः, संशयस्थले संस्कारादिकल्पना-
गौरवस्यैव विनिगमकत्वादिति द्रष्टव्यं^(२) न चाभावाद्यविषयकत्वेन
चरमज्ञानविशेषणेऽभावादिविषयकानुमितौ अव्याप्तिः साध्य-हेत्वा-
देरननुगमात् एकोपादानेऽन्यानुमितावव्याप्तिः व्यतिरेक्यनुमितौ
चाव्याप्तिः तत्र यथोक्तविलक्षणविषयताकनिश्चयत्वेनाहेतुत्वादिति
वाच्यम् । तादृशकार्यतावद्भावाद्यविषयकज्ञानवृत्तिप्रत्यक्षासमवेत-
धर्मसमवायित्वस्य विवक्षितत्वात्, इत्यञ्च पर्वतो वक्त्रिमान् घटः
सत्तावानित्याद्यन्वयव्याप्तिज्ञानजन्याभावाद्यविषयकानुमितिव्यक्तिमा-
दायैवाभावादिविषयकानुमितौ अन्यसाध्यकानुमितौ व्यतिरेक्य-
नुमितौ च लक्षणसमन्वयः तद्वृत्तितादृशधर्मस्यानुमितित्वस्य सर्वत्र
सत्त्वात् । अत्र सत्ता-गुणत्व-ज्ञानत्वानुभवत्वमादायातिव्याप्तिवारणाय

(१) स्मरणं प्रति विलक्षणसंस्कारस्य हेतुतयैवातिप्रसङ्गवारणं सम्भ-
वतीति भावः ।

(२) संस्कारं प्रति ज्ञानत्वेन हेतुत्वे संशयोत्तरं संस्कारापत्तिरिति भावः ।

प्रत्यक्षासमवेतेति, कालिकसम्बन्धेनानुमितित्वस्यापि प्रत्यक्षवृत्ति-
 त्वादतिव्याप्तिवारणाय समवायित्वमिति । न चैवं चरमज्ञानपदं व्यर्थं
 परामर्शजन्यसंस्कारस्य व्याप्तिघटकतया अभावादिविषयकत्वेनैव वार-
 णादिति वाच्यम् । समवायेन तादृशकार्यतावदभावाविषयकज्ञान-
 वृत्तितालाभाय तदुपादानादन्यथा जन्यमात्रस्य कालोपाधितया
 कालिकसम्बन्धेन संस्कारत्व-घटत्वादेरप्यनुमितिवृत्तितया अतिव्या-
 प्त्यापत्तेः । वस्तुतस्तु तादृशकार्यताश्रयज्ञानसमवेत-प्रत्यक्षासमवेतधर्म-
 समवायित्वमेव वक्तव्यं न त्वभावाद्यविषयकत्वेन तज्ज्ञानं विशेषणीयम् ।
 दण्डोरक्तो न वेति संग्रयोत्तरमपि रक्तत्व-तदभाववद्दण्डवानिति
 रक्तत्वांगे संग्रयाकारस्य रक्तत्व-तदभावविशिष्टवैशिष्ट्यविषयताकज्ञान-
 स्थानुभवसिद्धतया लाघवात् तत्तद्विशेषणतावच्छेदकप्रकारकतत्तद्वि-
 शेषणज्ञानत्वेनैव विशिष्टवैशिष्ट्यबोधं प्रति हेतुतया वक्ष्यव्याप्यधूमवत्-
 पर्वतवान्देश इत्यादिविशिष्ट-वैशिष्ट्यशब्दबोधे अतिव्याप्तिविरहात्
 तस्य कारणतावच्छेदके निश्चयत्वस्याप्रवेशात् हेतुतावच्छेदकादिरूपेण
 हेत्वादिभिन्नविषयकभ्रमरूपपरामर्शादप्यनुमित्युत्पत्त्या अनुमितेः
 कारणवच्छेदके हेत्वादेर्न प्रवेशः, विशिष्टवैशिष्ट्यबोधस्य कारणता-
 वच्छेदके च हेत्वादेरवश्यं प्रवेशः हेतुतावच्छेदकादिरूपेण हेत्वा-
 दिभिन्नविषयकनिश्चयात् हेतुतावच्छेदकरूपेण हेत्वादिविषयक-
 विशिष्टवैशिष्ट्यबोधानुत्पत्तेरतोनिश्चयत्वस्य तत्कारणतावच्छेदके प्रवे-
 शेऽप्यतिव्याप्तिविरहाच्च अनुमितिं प्रति येन रूपेण परामर्शस्य
 कारणता तदवच्छिन्नकारणताया एव लक्षणघटकत्वात्, आपत्तेश्च
 कारणतावच्छेदकेऽप्रामाण्यज्ञानास्कन्दितत्वस्याधिकस्य प्रवेशादेव वार-

णात् प्रत्यक्षासमवेतेत्यनेनैव वारणाच्च, इत्यस्य परामर्शजन्यसंस्कार-
वारणायैव चरमज्ञानपदं । न चाभावाद्यविषयकत्वविशेषणानुपा-
दाने यत्र विषयविशेषे नियमतोवक्त्रिव्याप्यधूमवत्पर्वतनिश्चय एवो-
द्धोधकविधया हेतुः तादृशविषयविशेषे स्युतित्वमादाय स्युतिमात्रे
ऽतिव्याप्तिः तत्र लाघवात् सामान्यतोवक्त्रिव्याप्यधूमवत्पर्वतनिश्चय-
त्वेनैव उद्धोधकविधया हेतुत्वादिति वाच्यं । चरमज्ञानपदस्यानु-
भवपरत्वात् तथाच तादृशविलक्षणविषयताकनिश्चयत्वावच्छिन्नकार-
णताप्रतियोगिककार्यताश्रयानुभवसमवेतप्रत्यक्षासमवेतधर्मसमवायि-
त्वमिति लक्षणं फलितमतो न कोऽपि दोष इति सम्प्रदायविदः ।
तदस्य अनुमिति-परामर्शयोस्तत्तद्व्यक्तित्वेन हेतु-हेतुमद्भावनये अ-
नुमितावपि^(१) तादृशनिश्चयत्वेनाहेतुत्वादसम्भवापत्तेः^(२) ।

(१) हेतु-हेतुमद्भावादनुमितावपीति क० ।

(२) एतदनन्तरं ख-चिह्नितपुस्तके अधिकः पाठो वर्तते यथा,
हेतुभेदेन हेतुतावच्छेदकसम्बन्धभेदेन वानन्तकार्य-कारणभावापत्त्या परा-
मर्शानुमितिहेतुः, किन्तु यद्यल्लिङ्गकपरामर्शानन्तरं तत्तत्पक्षक-
तत्तत्साध्यकानुमितिरनुभवसिद्ध तत्तल्लिङ्गकपरामर्शाभावकूटविशिष्टात्म-
त्वमेव तत्तत्पक्षक-तत्तत्साध्यकानुमितौ समवायसम्बन्धेन प्रतिबन्धकं प्रति-
बन्धकता च सामान्यतस्तल्लिङ्गकपरामर्शाभावकूटविशिष्टत्वेन न तु विशि-
ष्टात्मत्वादेः प्रवेशः गौरवात् तेन सत्तादिमादाय न विनिगमनाविरहः ।
न च तथापि परामर्शाभावकूटानां परस्परं विशेषण-विशेष्यभावे विनिग-
मकाभावेन गुरुतरानन्तकार्य-कारणभावापत्तेर्दुर्वारत्वादिति वाच्यं । परा-
मर्शाभावानां परस्परं विशेष्यस्याभावदिशि विशेषणताघटिततया आत्मत्वे

नव्यास्तु येन परापर्शनाव्यवहितोत्तरमनुमितिरेव जनिता न
 द्वपमित्यादि तादृशपरामर्शविशेषपरं व्याप्तिप्रकारक-पक्षधर्मता-
 ज्ञानपदमिति न काप्यतिव्याप्तिः । अन्यत्वञ्च एकात्मावच्छेदेनाव्यवहि-
 तोत्तरवर्त्तितम् । अन्यथा तादृशनिश्चयत्वावच्छिन्नकारणत्वनिरू-
 पितजन्यत्वप्रवेशे उक्तरीत्या असम्भवापत्तेः, जन्यतासामान्यनिवेशे
 ज्ञानत्वेन कार्यत्वेन विशेषणज्ञानत्वेन विशिष्टबुद्धित्वेनेत्यादिरूपेण
 कार्य-कारणभावमादाय शाब्दबोधादेरपि तादृशपरामर्शविशेष-
 जन्यत्वेनातिव्याप्यापत्तेः । न चैवं परामर्शान्तरजन्यानुमितावव्याप्ति-
 रिति वाच्यम् । तादृशज्ञानवृत्ति-प्रत्यक्षासमवेतधर्मसमवायित्वस्य
 विवक्षितत्वात् समवायेन तद्वृत्तितालाभाय चरमज्ञानपदं । न चैवं
 यां काञ्चित् अनुमितिव्यक्तिमुपादाय तद्व्यक्तिसमवेतप्रत्यक्षासमवेत-
 धर्मसमवायित्वमेव लक्षणमस्त्विति वाच्यम् । तस्यापि लक्षणान्तर-
 त्वात्, प्रकृते च तस्याप्रवेशेन वैयर्थ्याभावात् । इत्थञ्च व्याप्तिविशिष्टस्य
 व्याप्तिविशिष्टे वा पक्षधर्मता व्याप्तिविशिष्टपक्षधर्मतेति षष्ठी-सप्तमी-
 तत्पुरुषाभ्यां व्याप्तिविशिष्टवृत्तिर्या पक्षधर्मता तज्ज्ञानजन्यज्ञानमनु-
 मितिरित्यर्थोऽपि सम्भवति, धूमवान् पर्वत इति ज्ञानजन्यानुव्यवसा-
 यादावतिव्याप्तेर्ज्ञानपदस्य ज्ञानविशेषपरत्वेनैव वारणात् ह्रदोवक्त्रि-

च समवायघटिततया परामर्शाभावात्मत्वयोः विशेषणता-समवायोभयघटि-
 तसामानाधिकरणस्य ततोऽपि लघुत्वादिति परस्परविशेष्य-विशेषणभावा-
 नापन्नानां परामर्शाभावकूटानां युगपदात्मत्वांश्च एव विशेषणत्वोपगमादिति
 स्वतन्त्रमतेऽपि तादृशजनकत्वस्य लक्षणघटकत्वेऽसम्भवापत्तेः इति ।

मान् इत्यादिभ्रमानुमितेर्वक्त्रिव्याप्यजलवान् पर्वतइत्यादिभ्रमजन्य-
पर्वतोवक्त्रिमानित्यादिप्रमानुमितेश्च तादृशधर्मघटनयैव संग्रहात् ।
एवं व्याप्तिविशिष्टश्चासौ पक्षधर्मश्चेति व्याप्तिविशिष्टपक्षधर्मः तस्य
भादः व्याप्तिविशिष्टपक्षधर्मतेति कर्मधारयोत्तरभावप्रत्ययेन व्याप्ति-
विशिष्टत्वसमानाधिकरणपक्षधर्मतायाः ज्ञानजन्यं ज्ञानमनुमितिरि-
त्यर्थोऽपि सम्भवति, भ्रमानुमित्यव्याप्तादेर्यथोक्तरूपेणैव वारणात् ।
एवं व्याप्तिविशिष्टश्च पक्षधर्मश्च व्याप्तिविशिष्ट-पक्षधर्मौ तयोर्भावः
तथा तज्ज्ञानजन्यज्ञानमिति द्वन्द्वोत्तरतत्प्रत्ययेन व्याप्तिविशिष्टत्व-
पक्षधर्मत्वेभयविषयकज्ञानजन्यं ज्ञानमनुमितिरित्यर्थोऽपि सम्भवति,
धूमो वक्त्रिव्याप्यः आलोकवान् पर्वत इति ज्ञानजन्ये धूमोवक्त्रिव्याप्यः
धूमवान्पर्वत इति ज्ञानजन्ये चातिव्याप्तिः ज्ञानपदस्य ज्ञानविशेष-
परत्वेनैव वारणादिति प्राज्ञः ।

केचित्तु व्याप्तिप्रकारकपक्षधर्मताज्ञानजन्यत्वमेव लक्षणं जन्यत्वञ्च
परामर्शत्वावच्छिन्नकारणताप्रतियोगिकं ग्राह्यं, परामर्शत्वञ्च अनु-
मितित्वावच्छिन्नकारणतावच्छेदकतया सिद्धोमानसत्वव्याप्यजातिवि-
शेषः, सर्वत्र मानसपरामर्शादेवानुमितिरित्यभ्युपगमात् क्षणविलम्बस्य
शपथनिर्णयत्वात् । एवञ्च न क्वाप्यतिप्रसङ्गः अन्यत्र तादृशजातिवि-
विशेषेणहेतुत्वात् । इत्यञ्च तादृशधर्मघटनापि न कर्त्तव्या वक्त्रिव्या-
प्यधूमवान्पर्वत इति निश्चयस्य परामर्शत्वावच्छिन्नकारणतानिरूपि-
तानुमितित्वावच्छिन्नजन्यताया अनुमितिमात्र एव सत्त्वात्, आपत्तेश्च
कारणतावच्छेदके अप्रामाण्यज्ञानास्कन्दितत्वस्याधिकस्य प्रवेगादेव
वारणात् आपत्तीतरत्वेन वा चरमज्ञानं विशेषणीयमित्याहुः ।

‘तत्करणमिति तत्पदं अनुमितिवजातिविशेषविशिष्टपरं तथा-
 चानुमितेः करणमनुमानमित्यर्थः । ननु तत्करणमित्यत्र तच्छब्दस्या-
 नुमितिवजातिविशेषविशिष्टपरत्वेऽनुमानमित्यत्र चानुपूर्वमाधातुना-
 यनुमितिवजातिविशेषविशिष्टस्य प्रत्यायनात् करणल्युटा च करणप्र-
 त्यायनादनुमितिकरणमनुमितिकरणतावदित्यनुमितिकरणत्वविशि-
 ष्टेऽनुमितिकरणत्वविशिष्टस्याभेदसंसर्गेणान्वयो वाच्यः तथाचोद्देश्यता-
 वच्छेदक-विधेयतावच्छेदकयोरभेदाद् घटोघट इति वत् पुनरुक्तिः ।
 न च अव्यय-निपातातिरिक्तनामार्थयोर्भेदान्वयस्याव्युत्पन्नतया तत्कर-
 णमित्यस्यानुमितिसम्बन्धभिन्नमनुमितिकरणमित्यर्थः, तच्छब्दस्यानु-
 मितिवजातिविशेषविशिष्टसम्बन्धिपरत्वात् करणतायाः कार्यघटित-
 त्वेन करणपदस्यानुमितिकरणपरत्वात् अभिन्नत्वस्य च संसर्गत्वात् अनु-
 मानमित्यत्र तु धात्वर्थस्यानुमितेः ल्युटः प्रत्ययतया तदर्थेऽनुमितिक-
 रणे करणतासम्बन्धेनैवान्वयादनुमितिमदनुमितिकरणमित्यर्थः, कर-
 णतायाः कार्यघटितत्वेन अनुमितिकरणस्य विशिष्टस्यैव ल्युडर्थत्वात् ।
 तथाचानुमितिसम्बन्धिमदनुमितिकरणं अनुमितिमदनुमितिकरणा-
 भिन्नमित्येवान्वयबोधात् विधेयतावच्छेदकतापर्यप्यधिकरणधर्मवत्त्वस्य
 उद्देश्यवाचकपदादलाभेन घटोनीलघटः नीलसधर्मा घटोनीलघट
 इत्यादाविव न पौनरुक्त्यमिति वाच्यं । तथापि करणपद-ल्युङादिप-
 दयोः करणताघटकपदार्थेषु अधिकरण-तद्भूतित्वादिषु खण्डशक्तिनये
 पौनरुक्त्यस्य दुर्वारत्वात् खण्डशक्तिनये अनुमानमित्यत्र धात्वर्थस्यानु-
 मितेः आश्रयतासम्बन्धेन ल्युडर्थेऽधिकरणेऽन्वयवत् तत्करणमित्यत्रापि
 तत्पदार्थस्यानुमितेः करणपदार्थेऽधिकरणे आश्रयत्वेनान्वयादिति

चेत् । न । तत्पदार्थस्याव्ययपद-निपातपदाद्यतिरिक्तनामार्थतया ना-
मार्थस्य भेदेनान्वयस्याव्युत्पन्नतया तत्पदार्थस्यानुमितेराश्रयतासम्ब-
न्धेन करणपदार्थेऽन्वयासम्भवात् । अन्यथा सकरणत्वं सकर्मकत्वमि-
त्यादावपि तदीयकरणत्वादिप्रत्ययापत्तेः । न चैवं घटकरणं दण्ड-
इत्यादौ खण्डशक्तिनये घटवद्बृत्त्यभावप्रतियोगितानवच्छेदकत्वघटि-
तस्य^(१) घटकरत्वस्याप्रत्ययप्रसङ्गः करणपदादधिकरण-तद्बृत्तित्वादे-
रूपस्थितत्वेऽपि घटस्य ततोऽनुपस्थितेरिति वाच्यम् । करणादिपदस्य
खण्डशक्तिनयेऽपि कार्यवत्त्वरूपेण कार्यवदंशेऽप्यवश्यं शक्तेरूपगमात् ।
अन्यथा केवलकरणादिपदात् तात्पर्यधीमत्त्वेऽपि विना कार्यवाच-
कपदाध्याहारं घटादिकरणाप्रत्ययापत्तेः । कार्यवद्बृत्त्यभावप्रति-
योगितानवच्छेदकघटितकरणत्वे गौरवादधिकरणत्वेनाधिकरणा-
प्रवेशादधिकरणं कार्यतिरिक्तस्याप्रकारतया कार्यवत्त्वरूपेणैव
कार्याधिकरणे करणादिपदस्य शक्तेरावश्यकत्वाच्च । अन्यथा पदा-
न्निर्विकल्पकोपस्थितेरनभ्युपगमेनाधिकरणस्य ततोऽनुपस्थितिप्रस-
ङ्गात् । न च कार्यवाचकघटादिपदस्यैव कार्यवति लक्षणा करणा-
दिपदस्य तु केवलवृत्तित्वादिष्वेव शक्तिः कार्यवतो निरूपकतासम्ब-
न्धेन वृत्तित्वेऽन्वयाच्च विशिष्टलाभ इति वाच्यम् । तर्हि लाघवात्
करणादिपदस्य केवलधर्मवत्येव शक्त्यापत्तेः इतरांशस्य कार्यवाचक-
घटादिपदे लक्षणयैव लाभसम्भवात् । एतेन खण्डशक्तिनये करणा-
दिपदस्य नानात्वेऽपि तदर्थानां यथा भेदेन परस्परमन्वयोव्युत्पत्ति-

(१) घटवद्बृत्त्यभावप्रतियोगितानवच्छेदकघटितस्येति क०, ग० ।

वैचित्र्यात् तथा करणादिपदसमभिव्याहृतषष्ठ्यादीतरविभक्तिगृह्यत-
दादिपदार्थस्यापि करणपदार्थं भेदान्वयो व्युत्पत्तिवैचित्र्यादिति
कस्यचित् प्रलपितमप्यपास्तम् । खण्डशक्तिनयेऽपि कार्यवदंशे शक्ते-
रावश्यकत्वे व्युत्पत्तिसङ्कोचे प्रमाणाभावात् तदादिपदस्य कार्यस-
म्बन्धिपरतया तादात्म्यसम्बन्धेनैवान्वयबोधसम्भवात् । न च खण्डशक्ति-
नये कार्यवदंशे शक्तेरावश्यकत्वे कार्यभेदेन शक्तिभेदस्याविशिष्टतया
विशिष्टशक्तिपक्षमपेक्ष्य खण्डशक्तिपक्षे किं लाघवमिति वाच्यं ।
वैशिष्ट्यांशे शक्त्यकल्पनादेव तत्र लाघवसम्भवात् । इत्यञ्च खण्डश-
क्तिपक्षेऽपि प्रकृतेऽनुमितिसम्बन्धिमदनुमितिकरणं अनुमितिमदनु-
मितिकरणाभिन्नमित्यन्वयबोधान्न पुनरुक्तिः ।

केचित्तु तत्पदं न स्वरूपतोऽनुमितित्वजातिविशेषविशिष्टपरं
किन्तु व्याप्तिप्रकारक-पक्षधर्मताज्ञानजन्यज्ञानवृत्तिप्रत्यक्षासमवेतध-
र्मरूपेण तादृशधर्मसमवायिपरं, तथाच तादृशधर्मसमवायिकरण-
मनुमानमित्यर्थः, अतो न पुनरुक्तिशङ्कापि । नन्वेवं तादृशधर्म-
समवायिकरणत्वेन इतरभेदसाधने व्यर्थविशेषणत्वं तद्वटकस्य व्याप्ति-
ज्ञानत्वस्यैव हेतुत्वसम्भवात् । न च व्याप्तिज्ञानत्वेन व्याप्तिज्ञानत्वं
न प्रविष्टमिति न वैयर्थ्यमिति वाच्यम् । तथापि तादात्म्येन
व्याप्तिज्ञानस्यैव गमकत्वसम्भवात् । न च व्याप्तेरननुगमेन एकत-
रव्याप्तिज्ञानस्य हेतुत्वे अनुमितिकरणमात्रस्य पक्षत्वात् भागासि-
द्धिरतस्तादृशधर्मसमवायिकारणत्वं सर्वसाधारणं हेतुरिति वाच्यं ।
आधर्कस्य भागासिद्धिवारकत्वेऽपि व्याप्तिग्रहानुपयुक्ततया वैयर्थ्या-

दिति चेत् । न । भिन्नधर्मिकतया धूमप्रागभाववदवैयर्थ्यात्^(१)
करणत्वनिष्ठव्याप्तेर्याप्तिज्ञानत्वानवच्छेद्यत्वादित्याहुः ।

लक्षणमुक्त्वा स्वरूपमाह, 'तच्चेति अनुमानच्चेत्यर्थः, 'लिङ्गपरा-
मर्शः' व्याप्तिज्ञानं, परामर्शस्य व्यापाराभावेनाकरणत्वात् ।

अन्ये तु नन्वेतावता अनुमितिकरणत्वमनुमानलक्षणमुक्तं भवति
तत् कथं स्यात् ज्ञायमानलिङ्गस्यानुमितिकरणत्वेन अनुमानेतरा-
प्रसिद्ध्या इतरभेदानुमापकत्वाभावात् इतरभेदानुमापकत्वस्यैव च
लक्षणपदार्थत्वादित्यत आह, 'तच्चेतीति प्राहुः ।

'वक्ष्यत इति, परामृश्यमानलिङ्गस्यानुमितिकरणत्वे अतीता-
नागतलिङ्गादनुमितिर्न स्यादिति भावः ।

लक्षणं निरूपितं^(२) इदानीं प्रामाण्यं निरूपयितुं प्रथमतश्चा-
र्वाकमतमाग्रङ्गते, 'अथेति, । 'न प्रमाणं' न प्रमितिकरणं, ननु
यदि चानुमानमनुमितिकरणं न प्रमाणमित्यर्थः तदाश्रयासिद्धिः
तन्मतेऽनुमितिकरणस्याप्रसिद्धेः, यद्यनुमानं धूमादि न प्रमाणमित्यर्थः
तदा सिद्धसाधनं व्याप्तिज्ञानस्यैव नैयायिकैः प्रमाणत्वोपगमादिति
चेत् । न । अनुमानमित्यस्य व्याप्तिज्ञानमित्यर्थात् । न च तथा-
प्याश्रयासिद्धिः तन्मते सर्वत्र व्यभिचारसंशयसत्त्वेन व्याप्तिनिश्चया-
नुत्पादादिति वाच्यं । तन्मते संशयात्मकस्य प्रसिद्धेः । न चांशतः
सिद्धसाधनं, पक्षतावच्छेदकावच्छेदेन साध्यसिद्धेरुद्देश्यत्वात् । न च

(१) तथाच व्यर्थविशेषणत्वघटक्रसामानाधिकरण्यविरहान्न दोष इति
भावः ।

(२) लक्षणमुक्तमिति ख० ।

निर्व्विकल्पकद्वारा स्वप्रत्यक्षात्मकप्रमितिं प्रति करणत्वाद्वाध इति वाच्यं । निर्व्विकल्पकं प्रति करणत्वाभावात् विशिष्टज्ञानस्य तु तन्मते असद्विषयकत्वेनाप्रमितित्वाच्च । अत्र च प्रमाजनकतावच्छेदकरूपशून्यत्वादिति हेतुरूह्यः, तच्च तन्मते इन्द्रियत्वं असन्मते व्याप्तिनिश्चयत्वादिकमपि । ननु अयं हेतुः स्वरूपासिद्धः तादृशव्याप्तिनिश्चयत्वस्यैव सर्वत्र सत्त्वादित्यत आह, 'योग्योपाधीनामिति साध्यव्यापकतया गृहीतानामिन्धनादिलक्षणयोग्यधर्माणामित्यर्थः, 'योग्यानुपलब्ध्या' योग्यतासहितया अनुपलब्ध्या, 'अभावनिश्चयेऽपीति प्रत्यक्षतोव्यभिचारितासम्बन्धेन इन्धनत्वादिरूपेण अभावस्य धूमादौ हेतौ निश्चयेऽपीत्यर्थः, तेनोपाधित्वस्य अतीन्द्रियत्वेन तदवच्छिन्नाभावस्य लौकिकप्रत्यक्षागम्यत्वेऽपि न क्षतिः । न च व्यभिचारित्वस्यातीन्द्रियघटिततया तत्सम्बन्धेन इन्धनत्वादवच्छिन्नाभावोऽपि कथं लौकिकप्रत्यक्षगम्य इति वाच्यम् । साध्याभाववद्यत्किञ्चिद्योग्यव्यक्तिवृत्तित्वरूपव्यभिचारिताविशेषसम्बन्धेन तदभावस्य प्रत्यक्षसम्भवादिति भावः । 'अयोग्योपाधिगङ्गयेति साध्यव्यापकतया गृहीतस्य मनोवाद्यादिलक्षणयोग्यधर्मस्य व्यभिचारितासम्बन्धेन धूमादौ हेतौ गङ्गयेत्यर्थः । यदा साध्यव्यापकत्वरूपायोग्यधर्मप्रकारेण साध्यव्यापकीभूतधर्मस्य व्यभिचारितासामान्यसम्बन्धेन धूमादौ हेतौ गङ्गयेत्यर्थः, 'व्यभिचारसंशयादिति सर्वत्र हेतौ साध्यव्यभिचारसंशयादित्यर्थः, व्यभिचारसंशये च व्याप्तिनिश्चयस्यैवासम्भवात् कथं तत्र व्याप्तिनिश्चयत्वमिति भावः । ननु भूयः साध्य-साधनसहचारज्ञानस्य व्यभिचारज्ञानप्रतिबन्धकतया तद्यथास्ति तत्रैव व्यभिचारसंशयासम्भवेन व्याप्ति-

अथानुमानं न प्रमाणं योग्योपाधीनां योग्यानु-
पलब्धाभावनिश्चयोप्ययोग्योपाधिशङ्कया व्यभिचार-
संशयात् शतशः सहचरितयोरपि व्यभिचारोपलब्धेश्च
लोके धूमादिदर्शनानन्तरं वज्रादिव्यवहारश्च सम्भा-

निश्चयसम्भव इत्यत आह, 'शतश इति^(१) शतशः सहचरितत्वेन
ज्ञातयोर्द्वयोरपीत्यर्थः,^(२) तथाच भूयः सहचारज्ञानस्य व्यभिचार-
ज्ञानप्रतिबन्धकत्वमेवासिद्धमिति भावः । नन्वेवं वज्रिसन्निकर्ष-
पर्वतविशेष्यकवज्रिप्रकारकसंस्काराद्यभावदशायामपि धूमदर्शनान-
न्तरं पर्वतोवज्रिमान् इत्यादिप्रयोगोऽनुभूयते स कथं स्यात् तादृ-
शशब्दप्रयोगं प्रति पर्वतविशेष्यक-वज्रिप्रकारकबुद्धेर्हेतुत्वादित्यत-
आह, 'लोक इति लोकानामित्यर्थः, 'धूमादीति, वज्रीन्द्रियस-
न्निकर्ष-पर्वतविशेष्यक-वज्रिप्रकारकसंस्काराद्यभावदशायामित्यादि,
'वज्रादिव्यवहारश्च' पर्वतोवज्रिमानित्यादिशब्दप्रयोगः ।

केचित्तु 'वज्रादिव्यवहारः' पर्वतविशेष्यक-वज्रिप्रकारकप्रवृत्ति-
रित्याहुः । तदसत् वज्रिप्रकारिका पर्वते प्रवृत्तिर्हि साध्यतया,
उद्देश्यतया वा, उपादानतया वा, नाद्यौ वज्रिमत्पर्वतस्य सिद्ध-

(१) शतशः सहचरितयोरिति ख० ।

(२) एतदनन्तरं क—चिह्नितपुस्तके अधिकः पाठो वर्तते यथा,
व्यभिचारोपलब्धेरिति यथा लौहलेख्यत्व-पार्थिवत्वयोर्हीरके इत्यर्थः इति ।

वन्नामात्रात् संवादेन च प्रामाण्याभिमानादिति नाप्र-
त्यक्षं प्रमाणमिति, न, अप्रमाणसाधर्म्येणाप्रामाण्य-
साधने दृष्टसाधर्म्यस्यानुमानत्वात् एतद्वाक्यस्य सन्दिग्ध-

त्वात्, नान्यः उपादानगोचरलौकिकसाक्षात्कारस्यैव प्रवृत्तिहेतु-
तया न्यायनयेऽप्यनुमित्यात्मकज्ञानात्तदसम्भवादिति मन्तव्यं ।

‘सम्भावनेति, ‘सम्भावना’ पर्वते वज्रसंसर्गाग्रहोवक्त्रेः पर्वतस्य
च ज्ञानम् । न च लाघवाद्भवहारं प्रति विशिष्टधिय एव हेतुत्वं न
तु असंसर्गाग्रहादेर्गौरवादिति वाच्यं । न हि वयमसंसर्गाग्रहादे-
र्व्यवहारकारणत्वं ब्रूमः, किन्तु तदुपलक्षितवज्रादिज्ञानादीनामेव
कुर्व्वद्रूपत्वेन धर्मविशेषेण, अनन्तानुमितिकल्पनापेक्षया कुर्व्वद्रूपत्वक-
ल्पनाया एव लघुत्वादिति भावः । ननु धूमदर्शनानन्तरं वज्रादि-
व्यवहारजनिका न सम्भावना तज्जनकौभूतज्ञानस्य वज्रमिति
वज्रिप्रकारकानुभवत्वेनानुभवादित्यत आह, ‘संवादेनेति, ‘संवादेन’
संवादादिव्यवहारजनकत्वादिरूपसाधारणधर्मदर्शनेन दोषेण च,
‘प्रामाण्यं’ वज्रिमिति वज्रिप्रकारानुभवत्वं, ‘अभिमानः’ पुनरगृहीता-
संसर्गकं ज्ञानद्वयमेकमेव ज्ञानं वेत्यन्यदेतत् । उपसंहरति, ‘इतीति,
‘इति’-अतो हेतोः, ‘नाप्रत्यक्षमिति प्रत्यक्षातिरिक्तं न प्रमाणमित्यर्थः,
अनुमानाप्रामाण्ये तेन घटपदं घटे शक्तं असति वृत्त्यन्तरे वृद्धैस्तत्र
प्रयुज्यमानत्वादित्यादिना प्रकारेण शक्तिग्रहे एव शब्दः प्रमाणं
स्यादिति शब्दो न प्रमाणं, शब्दस्याप्रामाण्ये तेनातिदेशवाक्यार्थज्ञान-
एव उपमानं प्रमाणं स्यादित्युपमानमपि न प्रमाणमिति भावः । न

विपर्यस्तान्यतरं प्रत्यर्थवच्चात् तयोश्च परकीययोर-
प्रत्यक्षत्वात् अनुमानमप्रमाणमिति वाक्यस्य प्रामा-

च प्रत्यक्षातिरिक्तस्याप्रामाण्ये कथमतौन्द्रियपदार्थसिद्धिरिति वाच्यं ।
तैरतौन्द्रियपदार्थानभ्युपगमादिति भावः । ननूपक्रमोपसंहारवि-
रोधः येन रूपेण प्रतिज्ञा क्रियते तेनैव रूपेण निगमनमपीति
सकलकथकसम्प्रदायसिद्धत्वात्, अत्र च अनुमानं न प्रमाणमित्य-
स्योपक्रमत्वात् नाप्रत्यक्षं प्रमाणमित्यस्य चोपसंहारत्वादिति चेत्, अत्र
मिश्राः नाप्रत्यक्षं प्रमाणमित्युपक्रमः अनुमानं न प्रमाणमित्या-
दिकन्तु हेतुरिति प्राज्ञः ।

नव्यास्तु नाप्रत्यक्षं प्रमाणमित्यपि प्रतिज्ञान्तरं न तु अनुमानं
न प्रमाणमित्यस्योपसंहारः, तथाच यतोऽनुमानं न प्रमाणं अतः
प्रत्यक्षातिरिक्तं शब्दोपमानमपि न प्रमाणमित्यर्थ इत्याहुः ।

वस्तुतस्तु नाप्रत्यक्षं प्रमाणमित्यपि नोपसंहारः अनुमानं न
प्रमाणमित्यपि नोपक्रमः उपक्रमोपसंहारयोः प्रतिज्ञा-निगमनयोस्तै-
रनङ्गीकारात्, किन्तु स्वरूपकीर्तनमात्रमित्येव तत्त्वं ।

अथानुमानस्याप्रामाण्यं केन प्रकारेण साध्यते, किं प्रमाप्रयो-
जकतावच्छेदकरूपशून्यत्वलिङ्गकेनानुमानेन, किं वा अनुमानं न
प्रमाणमिति शब्देन, तत्राद्ये आह, 'अप्रमाणेति, 'अप्रमाणसाध-
र्म्येण' अप्रमाणत्वव्याप्येन प्रमाजनकतावच्छेदकरूपशून्यत्वेन^(१) 'दृष्ट-
साधर्म्यस्य' साधर्म्यदर्शनस्य अप्रमाणत्वव्याप्यदर्शनस्येति यावत् ।

एषाप्रामाण्ययोर्व्याघाताच्च । अपिचानुमानाप्रामाण्ये
प्रत्यक्षस्याप्यप्रमाणत्वापत्तेः प्रामाण्यस्थानुमेयत्वात् स्व-
तश्च प्रामाण्यग्रहे तत्संशयानुपपत्तेः । व्याप्तिग्रहो-
पायश्च वक्ष्यते ।

इति श्रीमद्भङ्गेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ
अनुमानखण्डे अनुमितिनिरूपणं ।

अन्त्ये आह, 'एतद्वाक्यस्येति अनुमानं न प्रमाणमिति वाक्यस्येत्यर्थः,
'अर्थवत्त्वात्' प्रयोजनवत्त्वात् न तु स्वं प्रतीत्यर्थः, 'तयोः' मन्देह-
विपर्यययोः, अयमर्थः अनुमानं प्रमाणं न वेति संग्रयस्य अनुमानं
अप्रमाणमेवेति विपर्ययस्य वा निराससाधनताजानादेतद्वाक्य-
प्रयोगे तव प्रवृत्तिः तच्च ज्ञानं कथं स्यात् परकीयसंग्रय-विपर्य-
ययोरप्रत्यक्षत्वात् अतोऽनुमानं प्रमाणं अवश्योपेयमिति । 'प्रामा-
ण्याप्रामाण्ययोरिति प्रामाण्येऽप्रामाण्ये चेत्यर्थः, 'व्याघातात्' प्रत्यक्षा-
तिरिक्तस्य अप्रामाण्यव्याघातात्, अनुमानमप्रामाण्यमिति वाक्यस्य
प्रामाण्ये हि आयातं प्रत्यक्षातिरिक्तस्य शब्दस्य साक्षादेव प्रामाण्यं,
अप्रामाण्ये च अप्रामाण्यभ्रमजनकत्वमिति । अनुमानेऽप्रामाण्यस्य
भ्रम एव जननीयः, भ्रमत्वञ्च ज्ञानस्य विषयबाधाधीनमेवेत्यनु-
मानाप्रामाण्ये बाध एवेति भावः । ननु भ्रमजनकत्वलक्षणं अप्रा-
माण्यं शब्दस्य नोच्यते येन भ्रमत्वस्य विषयबाधाधीनतया प्रत्य-
क्षातिरिक्तस्थानुमानस्य प्रामाण्यस्वीकारापत्तिः, परन्तु प्रमाकर-
णत्व्यतिरेकलक्षणमित्यस्वरसादाह, 'अपि चेति, 'प्रत्यक्षस्यापि'

अथचस्यापि, 'अप्रमाणत्वापत्तेरिति प्रमात्वाभावापत्तेरित्यर्थः, प्रमात्वे प्रमाणाभावादिति भावः । कथं प्रमाणं नास्ति तदाह, 'प्रामाण्य-
स्येति प्रमात्वस्येत्यर्थः । ननु प्रत्यक्षप्रमात्वं स्वेनैव गृह्यते इति स्वय-
मेव स्वप्रमात्वे प्रमाणमतो न तत्रानुमानापेक्षेत्यत आह, 'स्वत इति,
'तत्संशयेति प्रमात्वसंशयेत्यर्थः । अयं घट इत्यादिज्ञानानन्तरं
तृतीयक्षणे^(१) इदं ज्ञानं प्रमा न वेति संशयोजायते, भवन्मते तन्न
स्यात् स्वेनैव स्वप्रमात्वस्य निश्चितत्वादिति भावः । एतच्चापाततः अयं
घट इत्यादिसविकल्पकज्ञानस्य हि तृतीयक्षणे प्रमात्वसंशयः तेन
च तत्रयेऽपि न स्वस्मिन् प्रामाण्यं गृह्यते तस्यासन्मात्रविषयत्वेन
प्रमात्वस्यैव तत्राभावात् किन्तु पारमार्थिकव्यक्तिमात्रविषयकनिर्व्वि-
कल्पकज्ञानमेव तन्मते प्रमा तेनैव स्वस्मिन् प्रामाण्यं स्वेन गृह्यते
तत्र तृतीयक्षणे प्रामाण्यसंशयोऽसिद्धः । किञ्च तन्मते संशयं प्रत्यपि
कुर्व्वद्रूपत्वेनैव निश्चयस्य प्रतिबन्धकत्वात् निश्चयसत्त्वेऽपि संशयोत्पत्तौ
विरोधाभावः । कुर्व्वद्रूपत्वस्य फलवलकल्पत्वेन यदुत्तरं संशयो
जायते तत्र तदभावात् । वस्तुतस्तु अनुमानस्याप्रामाण्ये निर्व्विकल्प-
कज्ञानस्यैवासद्विषयकत्व-स्वविषयकत्व-प्रामाण्यावगाहितसिद्धिः कथं
स्यात् सद्विषयकत्वादिहेतुकानुमानेनैव असद्विषयकत्वस्य ज्ञान-
त्वहेतुकानुमानेनैव स्वविषयकत्वस्य स्वेतराग्राह्यप्रामाण्यकत्वे सति
ग्राह्यप्रामाण्यकत्वहेतुकानुमानेनैव प्रामाण्यावगाहितस्य सिद्धेः । न
च तदपि स्वेनैव गृह्यत इति वाच्यं । विषयानवस्थाभिधा प्रामाण्य-

(१) सर्व्वत्र 'तृतीयक्षणे' इत्यत्र 'द्वितीयक्षणे' इति ख—चिह्नितपुस्तक-
पाठः ।

तद्घटकपदार्थाद्यतिरिक्तधर्मस्य स्वतो ग्राह्यत्वानभ्युपगमात् । अपि च धूमदर्शनानन्तरं जायमाने वज्रादिव्यवहारजनके ज्ञाने अनुमितिव्यातिविशेषस्यानुमिनो मीत्यवाधितानुव्यवसायसिद्धतया अप-
 क्षापासम्भवः अनुमितिवरूपजातिविशेषस्य सिद्धत्वे तदवच्छिन्नं प्रति व्याप्तिज्ञानादेः करणत्वमप्यावश्यकं, अन्यथा तदवच्छिन्नोत्प-
 त्तिनियमानुपपत्तेः । न चास्तु अनुमितिरूपोज्ञानविशेषः अस्तु च तत्र व्याप्तिज्ञानादेः करणत्वं तथापि तादृशज्ञानविशेषस्य सविकल्प-
 करूपत्वेनासन्मात्रविषयकतया प्रमात्वाभावान्न तत्करणस्य प्रमा-
 णत्वमिति वाच्यम् । सविकल्पकविज्ञानस्यासन्मात्रविषयकत्वासिद्धेः
 अनुमिति विषयीभूतानां पर्वतत्व-वह्नित्वादीनां सर्वेषां पारमार्थि-
 कत्वादित्येव दूषणं सारं । ननु व्याप्तिनिश्चयस्य स्वोत्पत्तावेव प्रामाण्यं
 सम्भवति सैव न सम्भवति उपायाभावादित्यत आह, 'व्याप्तिग्रहोपाय-
 श्चेति' (१) ।

इति श्रीमथुरानाथतर्कवागीशविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ अनु-
 मानखण्डे अनुमितिनिरूपणरहस्यम् ।

अथ व्याप्तिवादः ।

९४९

नन्वनुमितिहेतुंव्याप्तिज्ञाने का व्याप्तिः न तावद्व्यभिचरितत्वं तद्धि न साध्याभाववदवृत्तित्वम् साध्य-

अथ व्याप्तिवादरहस्यं ।

अनुमानप्रामाण्यं निरूप्य व्याप्तिस्वरूपनिरूपणमारभते, 'नखित्यादिना, 'अनुमितिहेत्वित्यस्य अनुमाननिष्ठप्रामाण्यानुमितिहेत्वित्यर्थः, 'व्याप्तिज्ञान इत्यत्र च विषयत्वं सप्तम्यर्थः, तथाचानुमाननिष्ठप्रामाण्यानुमितिहेतुव्याप्तिज्ञानविषयीभूता व्याप्तिः केत्यर्थः, अनुमाननिष्ठप्रामाण्यानुमितिहेत्वित्यनेन व्याप्तेरनुमानप्रामाण्योपपादकत्वकथनादनुमानप्रामाण्यनिरूपणानन्तरं व्याप्तिनिरूपणे उपोद्घात एव सङ्गतिरिति सूचितं । उपपादकत्वञ्चात्र ज्ञापकत्वं ।

केचित्तु अनुमितिपदं अनुमितिनिष्ठेतरभेदानुमितिपरं, तथाचानुमितिनिष्ठेतरभेदानुमितौ योहेतुः प्रागुक्तव्याप्तिप्रकारकपक्षधर्मताज्ञानजन्यत्वरूपः, तद्वटकं यद्व्याप्तिज्ञानं तदंगे विशेषणोभूता व्याप्तिः केत्यर्थः, घटकत्वार्थकसप्तमीतत्पुरुषसमासात्^(१) तथाच प्रागुक्तानुमितिलक्षणोपोद्घात एव सङ्गतिरनेन सूचिता इत्याहुः ।

(१) अनुमितिहेतौ व्याप्तिज्ञानं अनुमितिहेतुव्याप्तिज्ञानमिति सप्तमीतत्पुरुषसमासादित्यर्थः ।

‘न तावदिति, ‘तावत्’ वाक्यालङ्कारे, ‘अव्यभिचरितत्वं’ अव्य-
भिचरितत्वपदप्रतिपाद्यं, तत्र हेतुमाह, ‘तद्धीत्यादि, ‘हि’ यस्मात्,
‘तत्’ अव्यभिचरितत्वपदप्रतिपाद्यं, ‘नेति, सर्वस्मिन्नेव लक्षणे सम्ब-
ध्यते, तथाच व्याप्तिर्यतः साध्याभाववदवृत्तित्वादिरूपाव्यभिचरित-
त्वशब्दप्रतिपाद्यस्वरूपा न अतोऽव्यभिचरितत्वशब्दप्रतिपाद्यस्वरूपा
नेत्यर्थः पर्यवसितः, विशेषाभावकूटस्य सामान्याभावहेतुता च प्रसि-
द्धेवेति, अतः एतन्नञ्दयोपादानं न निरर्थकम् । ‘साध्याभाव-
वदवृत्तित्वमिति, ‘वृत्तं’ वृत्तिः, भावे निष्ठाप्रत्ययात्, वृत्तस्या-
भावः ‘अवृत्तं’ वृत्त्यभाव इति यावत्, साध्याभाववतोऽवृत्तं ‘साध्या-
भाववदवृत्तं’ साध्याभाववद्वृत्त्यभाव इति यावत्, तद्यत्रास्ति साध्या-
भाववदवृत्तौ मत्वर्थीयेनप्रत्ययात् तस्य भावः ‘साध्याभाववदवृत्तित्वं’
तथाच साध्याभाववद्वृत्त्यभाववत्त्वमिति फलितमिति प्राञ्चः, तदसत्
न कर्मधारयान्मत्वर्थीयो बङ्गब्रीहिश्वेदर्थप्रतिपत्तिकर इत्यनुशा-
सनविरोधात् तत्र कर्मधारयपदस्य बङ्गब्रीहीतरसमासपरत्वात्^(१)

(१) अत्र कर्मधारयपदस्य समासमात्रपरत्वे साध्याभाववदवृत्तित्वमि-
त्यत्र साध्याभाववत्पदस्य साधुत्वानुपपत्तिः साध्यस्याभावः साध्याभाव इति
समासोत्तरमतुप्प्रत्ययस्य अनुशासनविरोद्धत्वात् अतः बङ्गब्रीहीतरसमास-
परत्वमावश्यकं तथाच साध्यं अभावो यस्य स साध्याभावः इति बङ्गब्रीह्यु-
त्तरं मतुप्प्रत्यये नानुशासनविरोधः । बङ्गब्रीहिश्वेदर्थप्रतिपत्तिकर इत्य-
नुक्तौ कृष्णसर्पवद्वल्मीकमित्यादिप्रयोगस्य साधुत्वानुपपत्तिः कृष्णसर्पेति
पदस्य नित्यसमासतया तदुत्तरं मतुप्प्रत्यये अनुशासनविरोधः, कृष्णः
सर्पो यत्र इति विग्रहस्य विलक्षणवैजात्यावच्छिन्नसर्पवत्त्वबोधकत्वासम्भवेन
बङ्गब्रीहेश्वेदर्थप्रतिपत्तिकरत्वाभावात् तादृशप्रयोगासाधुत्वम् ।

तच्चागुणवत्त्वमिति साधर्म्यव्याख्यानावसरे गुणप्रकाशरहस्ये तद्दी-
धितिरहस्ये च स्फुटं, अव्ययीभावसमासोत्तरपदार्थेन समं तत्स-
मासानिविष्टपदार्थान्तरान्वयस्याव्युत्पन्नत्वाच्च^(१) भूतलोपकुम्भं भूत-
लाघटमित्यादौ भूतलवृत्तिघटसमीप-तदत्यन्ताभावयोरप्रतीतेः ।
एतेन वृत्तेरभावोऽवृत्तौत्यव्ययीभावानन्तरं साध्याभाववतोऽवृत्ति-
र्यत्रेति वज्रब्रीहिरित्यपि प्रत्युक्तं वृत्तौ साध्याभाववतोऽनन्वयापत्तेः
अव्ययीभावसमासस्याव्ययतया तेन समं समासान्तरासम्भवाच्च नञु-
पाध्यादिरूपाव्ययविशेषाणामेव समस्यमानत्वेन परिगणितत्वात्^(२) ।
वस्तुतस्तु साध्याभाववतो न वृत्तिर्यत्र इति त्रिपदव्यधिकरणवज्र-
ब्रीह्युत्तरं त्वप्रत्ययः साध्याभाववत इत्यत्र निरूपितत्वं षष्ठ्यर्थः,
अन्वयश्चास्य वृत्तौ, तथाच साध्याभावाधिकरणनिरूपितवृत्त्यभाव-

(१) अव्ययीभावसमासोत्तरपदार्थेन समं तत्समासानिविष्टपदार्थान्तर-
स्यान्वयस्याव्युत्पन्नत्वादित्यत्र अन्तरपदमनर्थकमिति नाऽङ्गनीयं उपकुम्भ-
मित्यादावपि तत्समासानिविष्ट-समीपादिपदप्रतिपाद्यसामीप्याद्यर्थे अन-
न्वयप्रसङ्गात् अधिकस्य अन्तरपदस्य दाने तु तत्समासानिविष्टपदाप्रति-
पाद्यार्थान्वयबोधस्याव्युत्पन्नत्वादित्यर्थकत्वसम्भवात् नानुपपत्तिगन्धोऽपि इति
ध्येयम् । तत्समासानिविष्टपदार्थान्वयस्याव्युत्पन्नत्वादित्येव ग-चिह्नितपुस्तक-
पाठः ।

(२) ननु भूतलोपकुम्भं भूतलाघटमित्यादिप्रयोगदर्शनात् कथमेतादृश-
नियमोयुक्तिसह इति चेत्, न, नञुपाध्याद्यव्ययविशेषाणां समस्यमानत्वेन
परिगणितत्वात् इत्यत्र आदिपदेन उपकुम्भादेरपि परियक्षात्मासङ्गति-
रिति ।

वद्विन्नसाध्याभाववदवृत्तित्वं साध्यवत्प्रतियोगिकान्यो-
न्याभावासामानाधिकरण्यं सकलसाध्याभाववन्निष्ठा-

वत्त्वमव्यभिचरितत्वमिति फलितं । न च व्यधिकरणवङ्गव्रीहिः
सर्वत्र न साधुरिति वाच्यं । अयं हेतुः साध्याभाववदवृत्तिरित्यादौ
व्यधिकरणवङ्गव्रीहिं विना गत्यन्तराभावेनात्रापि व्यधिकरणवङ्ग-
व्रीहेः साधुत्वात् । साध्याभावाधिकरणवृत्तित्वाभावश्च तादृशवृत्ति-
सामान्याभावोबोध्यः । तेन धूमवान् वङ्गेरित्यादौ धूमाभाववज्जल-
हृदादिवृत्तित्वाभावस्य धूमाभाववदवृत्तित्व-जलत्वोभयत्वाद्यवच्छिन्ना-
भावस्य च वङ्गौ सत्त्वेऽपि नातिव्याप्तिः । साध्याभाववदवृत्तिश्च हेतुताव-
च्छेदकसम्बन्धेन विवक्षणीया तेन वङ्गभाववति धूमावयवे जल-
हृदादौ^(१) समवायेन कालिकविशेषणतया धूमस्य वृत्तावपि न चतिः ।
साध्याभावश्च साध्यतावच्छेदकसम्बन्धेन साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रति-
योगिताकोबोध्यः । तेन वङ्गिमान् धूमादित्यादौ समवायादिसम्ब-
न्धेन वङ्गिसामान्याभाववति संयोगसम्बन्धेन, तत्तदङ्गित्व-वङ्गि-जलो-
भयत्वाद्यवच्छिन्नाभाववति च पर्वतादौ संयोगेन धूमस्य वृत्तावपि
न चतिः^(२) । तादृशसाध्याभाववत्त्वञ्च अभावीयविशेषणताविशेषेण बोध्यं

(१) धूमावयवं परित्यज्य जलहृदादिपर्यन्तानुधावनं प्रसिद्धविपक्षस्थल-
मादायाव्याप्तिसम्भवे तदप्रदर्शने न्यूनताभङ्गायेति ।

(२) ननु साध्याभावपदस्य प्रथमोपस्थिततया तदंशे विशेषणभूतस्य
साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नत्वपदस्य व्यावृत्तिं दर्शयित्वैव शेषदलोपाप्त-

भावप्रतियोगित्वं साध्यवदन्यावृत्तित्वं वा केवलान्व-
यिन्यभावात् ।

तेन गुणत्ववान् ज्ञानत्वात् सत्तावान् जातेरित्यादौ विषयित्वाव्याप्य-
त्वादिसम्बन्धेन^(१) तादृशसाध्यभाववति ज्ञानादौ ज्ञानत्व-जात्यादेर्वृत्ता-
वपि नाव्याप्तिः । जात्यत्यन्ताभाव-तद्वदन्योन्याभावयोरत्यन्ताभावो न
प्रतियोगि-प्रतियोगितावच्छेदकस्वरूपः किन्त्वतिरिक्तः तेन घट-
त्वात्यन्ताभाववान् घटान्योन्याभाववान् वा पटत्वात् इत्यादौ वि-
शेषणताविशेषसम्बन्धेन साध्याभावाधिकरणस्याप्रसिद्ध्या नाव्याप्तिः ।
अत्यन्ताभावादेरत्यन्ताभावस्य प्रतियोग्यादिस्वरूपत्वनये तु साध्यता-
वच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकसाध्याभाववृत्तिसाध्यासामान्यी-
यप्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धेन साध्याभावाधिकरणत्वं वक्तव्यम्^(२) ।

वृत्तित्वाभावाद्यंशे विशेषणीभूतस्य हेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नत्वस्य व्यावृ-
त्तिदानं पञ्चादेवोचितमिति व्युत्क्रमेण व्यावृत्तिदाने न्यूनता स्यादिति चेत्,
न, प्रथमं वृत्तित्वसामान्याभावानुक्तौ साध्याभावांशे साध्यतावच्छेदकधर्म-
सम्बन्धावच्छिन्नत्वस्य व्यावृत्तिदानं न सम्भवतीति व्युत्क्रमेण व्यावृत्तिदानं ।

(१) अव्याप्यत्वस्य वृत्त्यनियामकतया तत्सम्बन्धमादायाव्याप्तिर्न सम्भवती-
त्यत आदिपदं आदिपदेन कालिकसम्बन्धपरिग्रहः, अन्यमात्रस्य कालो-
पाधित्वे मानाभावेन वङ्गिमान् धूमादित्यादौ नाव्याप्तिसम्भावनेति प्रसिद्धो-
दाहरणं परित्यक्तं अतएव ज्ञानत्वहेतुं परित्यज्य जातेर्हेतुत्वमुक्तं तत्र
साध्याभाववति महाकाले जातेर्वर्तमानत्वादव्याप्तिर्दुर्वारैवेति ध्येयम् ।

(२) ननु तथापि गुणत्ववान् ज्ञानत्वात् सत्तावान् जातेरित्यादौ विष-
यित्वाव्याप्यत्वादिसम्बन्धेन तादृशसाध्याभाववति ज्ञानादौ ज्ञानत्व-जात्यादे-

असिद्धान्तोपाध्यायसम्मतः, अत एव चाभावविरहात्मत्वं वस्तुनः
प्रतियोगितेत्याचार्याः, अन्यथा घटभेदात्यन्ताभावप्रतियोगिनि
घटभेदे तल्लक्षणव्याप्यापत्तेः अन्योन्याभावप्रतियोगितावच्छेदक-
घटत्वात्यन्ताभावे तल्लक्षणस्यातिव्याप्यापत्तेश्च^(१) । न चैवं घटत्वत्वा-
वच्छिन्नप्रतियोगिताकघटत्वात्यन्ताभावस्यापि घटभेदस्वरूपत्वापत्ति-
रिति वाच्यं । तदत्यन्ताभावत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावस्यैव
तत्त्वरूपत्वाभ्युपगमात् तद्वत्ताग्रहे तादृशतदत्यन्ताभावाभावस्यैव
व्यवहारात् । उपाध्यायैर्घटत्वत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकघटत्वात्यन्ता-
भावस्यापि घटभेदस्वरूपत्वाभ्युपगमाच्च । न चैवं साध्यसामान्यीय-
प्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धेनैव साध्याभावाधिकरणत्वं विवक्ष्यतां
किं साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नसाध्याभाववृत्तित्वस्य प्रतियोगि-
ताविशेषणत्वेनेति वाच्यम् । कालिकसम्बन्धावच्छिन्नात्मत्वप्रकारक-
प्रमाविशेष्यत्वाभावस्य^(२) विशेषणताविशेषेण साध्यत्वे आत्मत्वादिहेता-

(१) अन्योन्याभावप्रतियोगितावच्छेदके तल्लक्षणस्यातिव्याप्यापत्तेश्चेति
ख० ग० । अयमपि पाठः समीचीनः यतः घटत्वात्यन्ताभावस्य घटभेदा-
स्वरूपत्वे घटत्वं न घटभेदप्रतियोगित्वलक्षणलक्ष्यं तदभावस्य घटभेदास्वरूप-
त्वात्, घटत्वात्यन्ताभावस्य घटभेदस्वरूपत्वे तु घटत्वं घटभेदप्रतियोगित्व-
लक्षणलक्ष्यमेव तदत्यन्ताभावस्य घटभेदस्वरूपत्वादिति ।

(२) अथात्र साध्यसामान्यीयप्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धसामान्येन सा-
ध्याभावाधिकरणत्वं, अथ वा प्रत्येकं साध्यसामान्यीयप्रतियोगितावच्छेदको
यो यः सम्बन्धस्तत्तत्सम्बन्धेन साध्याभावाधिकरणत्वं इत्याशङ्कादयी तत्र
द्वितीयाशङ्कायां प्रमाविशेष्यत्वाभावसाध्यकेऽप्याग्निर्न सम्भवति जन्याना-

व्याप्यापत्तेः कालिकसम्बन्धावच्छिन्नसाध्याभावस्य विशेषणताविशेषेण सम्बन्धेन योऽभावस्तस्यापि साध्यरूपतया कालिकसम्बन्धवद्विशेषणताविशेषोऽपि साध्यीयप्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धस्तेन सम्बन्धेनात्मत्वप्रकारकप्रमाविशेष्यत्वरूपसाध्याभाववति आत्मनि हेतोरात्मत्वस्य वृत्तेः^(१) । प्रतियोगितावच्छेदकवत् प्रतियोग्यपि अन्योन्याभावाभावः^(२) तेन तादात्म्यसम्बन्धेन साध्यतायां साध्यतावच्छेदकसम्ब-

मेव तादृशकालिक-स्वरूपोभयसम्बन्धेन साध्याभावाधिकरणत्वात् उक्तस्थले तु तादृशोभयसम्बन्धेन साध्याभावाधिकरणत्वाप्रसिद्ध्या अव्याप्तिः सम्भवति इत्युभयाव्याप्तिदानार्थं आत्मत्वप्रकारकप्रमाविशेष्यत्वाभावसाध्यकानुसरणं ।

(१) अत्र साध्याभावः साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताको बोध्यः, एतल्लाभायैव साध्यपदमिति भावः । तेन पूर्वोक्तगृहित्वविशिष्टसाध्याभाववृत्तिपूर्वोक्तगृहित्वविशिष्टसाध्याभावाभावरूपसाध्यीयप्रतियोगितावच्छेदकीभूतस्वरूपसम्बन्धेन साध्याभाववति हेतोर्दृष्टित्वेऽपि पूर्वोक्तस्थले नाव्याप्तिः । न च कपिसंयोग्येतत्त्वादित्यत्राव्याप्तिवारणाय निरवच्छिन्नसाध्याभावाधिकरणत्वे निवेशयितव्ये कालिकसम्बन्धेन निरवच्छिन्नसाध्याभावाधिकरणत्वाप्रसिद्धौवोक्तविशेषणदानेऽपि उक्तस्थले अव्याप्तेरपरीहारेण तादृशस्थले अव्याप्तिवारणाय तत्रवेशोऽनुचित इति वाच्यं । अन्योन्याभावस्य कालिकसम्बन्धेन योऽभावः तस्य विशेषणताविशेषसम्बन्धेन साध्यतायां आत्मत्वादिहेतावव्याप्यापत्तेः, अन्योन्याभावरूपसाध्याभावस्य कालिकसम्बन्धेन व्याप्यवृत्तितया निरवच्छिन्नसाध्याभावाधिकरणत्वप्रसिद्ध्या उक्तविशेषणदाने अत्राव्याप्तिपरीहारः सम्भवत्येवेति भावः ।

(२) अथैतत्कल्पे घटभिन्नं कपालत्वादित्यत्राव्याप्तिः तादृशसमवायसम्बन्धेन घटस्वरूपसाध्याभावाधिकरणे कपाले हेतोर्दृष्टेरिति चेत्, न,

वृत्त्यन्तं प्रतियोगिताविशेषणं, तादृशसम्बन्धश्च वज्रिमान् धूमा-
दित्यादिभावसाध्यकस्थले विशेषणताविशेषणव, घटत्वाभाववान्
पटत्वादित्याद्यभावसाध्यकस्थले तु समवायादिरेव, समवाय-विषयि-
त्वादिसम्बन्धेन^(१) प्रमेयादिसाध्यके ज्ञानत्वादिहेतौ साध्यतावच्छेदक-
समवायादिसम्बन्धावच्छिन्नप्रमेयाद्यभावस्य कालिकादिसम्बन्धेन यो-
ऽभावः सोऽपि प्रमेयतया साध्यान्तर्गतस्तदीयप्रतियोगितावच्छेद-
ककालिकादिसम्बन्धेन साध्याभावाधिकरणे ज्ञानत्वादेर्वृत्तेरव्या-
प्तिवारणाय सामान्यपदोपादानं, साध्यसामान्यीयत्वञ्च यावत्साध्य-
निरूपितत्वं स्वानिरूपकसाध्यकभिन्नत्वमिति यावत्^(१)। अस्यैकोक्ति-
मात्रतया गौरवस्यादोषत्वात् कारणतावच्छेदके च भावसाध्यकस्थले

वर्तमानत्वादव्याप्तिः । न च साध्याभावाधिकरणत्वमभावोयविशेषणतावि-
शेषेण विवक्षितमिति वाच्यम् । तथा सति घटत्वात्यन्ताभाववान् घटा-
न्योन्याभाववान् वा पटत्वादित्यादौ साध्याभावस्य घटत्वादेर्विशेषणतावि-
शेषसम्बन्धेनाधिकरणत्वाप्रसिद्ध्या अव्याप्तिरिति चेत् । न । साध्यतावच्छे-
दकसम्बन्धावच्छिन्नसाध्याभाववृत्तिसाध्यसामान्योयप्रतियोगितावच्छेदकसम्ब-
न्धेन साध्याभावाधिकरणत्वस्य विवक्षितत्वादिति ख० ग० ।

(१) साध्यतावच्छेदकसम्बन्धेन वृत्तिमत्साध्योयप्रतियोगिताविवक्षणे स-
मवायसम्बन्धेन प्राप्तेयसाध्यकहेतौ अव्याप्तिवारणं सम्भवति अतः विष-
यित्वसम्बन्धानुसरणमिति भावः ।

(२) अत्रानुगमस्तु साध्यतावच्छेदकसमानाधिकरणमेव प्रतियोगितानव-
च्छेदकत्वं भेदप्रतियोगितावच्छेदकत्वञ्च निरूपकत्वसम्बन्धावच्छिन्नं ग्राह्य-
मिति ।

अभावौयविशेषणताविशेषेण साध्याभावाधिकरणत्वं अभावसाध्यकस्यले
च यथायथं समवायादिसम्बन्धेन साध्याभावाधिकरणत्वसुपादेयं
साध्यभेदेन कार्य-कारणभावभेदात् । न च तथापि घटान्योन्या-
भाववान् पटत्वादित्यत्रान्योन्याभावसाध्यकस्यले घटत्वादिरूपे सा-
ध्याभावे न साध्यप्रतियोगित्वं न वा समवायादिसम्बन्धस्तदवच्छे-
दकः तादात्म्यैव तदवच्छेदकत्वादित्यव्याप्तिस्तदवस्थेति वाच्यम् ।
अत्यन्ताभावाभावस्य प्रतियोगिरूपत्वेन घटभेदस्य घटभेदात्यन्ता-
भावत्वावच्छिन्नाभावरूपतया घटभेदात्यन्ताभावरूपस्य घटभेद-
प्रतियोगितावच्छेदकौभूतघटत्वस्यापि समवायसम्बन्धेन घटभेद-
प्रतियोगित्वात् । न चान्यत्रात्यन्ताभावाभावस्य प्रतियोगिरूपत्वेऽपि
घटादिभेदात्यन्ताभावाभावो न घटादिभेदस्वरूपः किन्तु तत्प्रति-
योगितावच्छेदकौभूतघटत्वात्यन्ताभावस्वरूप एवेति सिद्धान्तइति
वाच्यं । यथा हि घटत्वावच्छिन्नघटवत्ताग्रहे घटात्यन्ताभावा-
ग्रहात् घटात्यन्ताभावाभावव्यवहाराच्च घटात्यन्ताभावाभावोघट-
स्वरूपः तथा घटभेदवत्ताग्रहे घटभेदात्यन्ताभावाग्रहात् घट-
भेदात्यन्ताभावाभावव्यवहाराच्च घटभेद एव तदत्यन्ताभावत्वावच्छिन्न-
प्रतियोगिताकाभाव इति तत्सिद्धान्तः^(१) न युक्तिसहः । विनिगम-
काभावेनापि घटत्वत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकात्यन्ताभाववद्वटभेद-
स्यापि घटभेदात्यन्ताभावाभावत्वसिद्धेरप्रत्यूहत्वाच्च । अत एव तादृ-

(१) घटान्योन्याभावात्यन्ताभावाभावस्य घटत्वात्यन्ताभावस्वरूपत्व-
सिद्धान्त इत्यर्थः ।

न्नावच्छिन्नसाध्याभाववृत्तिसाध्वीयप्रतियोगित्वस्य नाप्रसिद्धिः । इत्य-
 च्चात्यन्ताभावत्वनिरूपितत्वेनापि साध्यसामान्यीयप्रतियोगिता विशेष-
 णीया अन्यथा घटान्योन्याभाववान् घटत्वादित्यादावव्याप्तापत्तेः
 तादात्म्यसम्बन्धस्यापि साध्याभाववृत्तिसाध्वीयप्रतियोगितावच्छेदक-
 त्वात्^(१) । यद्वा साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नसाध्याभाववृत्तिसाध्य-
 सामान्यीयप्रतियोगित्व-तदवच्छेदकत्वान्यतरावच्छेदकसम्बन्धेनैव सा-
 ध्याभावाधिकरणत्वं विवक्षणीयं वृत्त्यन्तमन्यतरविशेषणं, एवञ्च
 घटान्योन्याभाववान् घटत्वादित्यादौ साध्याभावस्य घटत्वादेः सा-
 ध्यप्रतियोगित्वविरहेऽपि न क्षतिः तादृशान्यतरस्य प्रतियोगिताव-
 च्छेदकत्वस्यैव तत्र सत्त्वात् । न च तथापि कपिसंयोग्येतद्वृत्तत्वा-
 दित्याद्यव्याप्यवृत्तिसाध्यकसङ्केतावव्याप्तिरिति वाच्यम् । निरुक्तसा-
 ध्याभावत्वविशिष्टनिरूपिता या निरुक्तसम्बन्धसंसर्गकनिरवच्छिन्ना-
 धिकरणता तदाश्रयावृत्तित्वस्य विवक्षितत्वात् । गुण-कर्मान्य-
 त्वविशिष्टसत्त्वाभाववान् गुणत्वादित्यादौ सत्त्वात्मकसाध्याभावाधि-
 करणत्वस्य गुणादिवृत्तित्वेऽपि साध्याभावत्वविशिष्टनिरूपिताधिकर-
 णत्वस्य गुणाद्यवृत्तित्वान्नाव्याप्तिः । न चैवं कपिसंयोगाभाववान्

स्वावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नत्व-स्वाश्रयनिरूपितत्वेभयसम्बन्धेन तादृशप्रति-
 योगिताविशिष्टसाध्याभावाधिकरणत्वस्य विवक्षितत्वात् स्वपदं निरुक्त-
 प्रतियोगितापरं । न च निरुक्तप्रतियोगितायां अत्यन्ताभावत्वनिरूपित-
 त्वनिवेशो व्यर्थ इति वाच्यं । तद्विवक्षाया अत्रैव तात्पर्यात् ।

(१) तथाच तादात्म्येन घटत्वस्वरूपसाध्याभावाधिकरणे घटत्वे हेतो-
 र्वृत्तित्वादव्याप्तिरिति भावः ।

सत्त्वात् इत्यादौ निरवच्छिन्नसाध्याभावाधिकरणत्वाप्रसिद्ध्याव्याप्तिरिति वाच्यम् । केवलान्वयिन्यभावादित्यनेन ग्रन्थकृतैवास्य दोषस्य वक्ष्यमाणत्वात् । न च तथापि संयोगिभिन्नं गुणत्वादित्यादौ निरवच्छिन्नसाध्याभावाधिकरणत्वाप्रसिद्ध्याव्याप्तिः अन्योन्याभावस्य व्याप्यवृत्तिव्रतनियमवादिनये तस्य केवलान्वयनन्तर्गतत्वादिति वाच्यम् । अन्योन्याभावस्य व्याप्यवृत्तितानियमवादिनये अन्योन्याभावान्तरात्यन्ताभावस्य प्रतियोगितावच्छेदकस्वरूपत्वेऽप्यव्याप्यवृत्तिमदन्योन्याभावाभावस्य व्याप्यवृत्तिस्वरूपस्यातिरिक्तस्याभ्युपगमात् तच्चाग्रे स्फुटौ भविष्यति ।

ननु तथापि समवायादिना गगनादिहेतुके इदं वक्षिमद्गगनादित्यादावतिव्याप्तिः वक्ष्यभाववति हेतुतावच्छेदकसमवायादिसम्बन्धेन गगनादेरवृत्तेः । न च तल्लक्ष्यमेव हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेन पक्षधर्माभावाच्चासद्देतुत्वव्यवहार इति वाच्यम् । तत्रापि व्याप्तिभ्रमेणैवानुमितेरनुभवसिद्धत्वात्, अन्यथा धूमवान् वक्षेरित्यादेरपि लक्ष्यत्वस्य सुवचत्वात् । एवं द्रव्यं गुण-कर्मान्यत्वविशिष्टसत्त्वादित्यादावव्याप्तिः विशिष्टसत्त्वस्य केवलसत्त्वानतिरेकितया द्रव्यत्वाभाववत्यपि गुणादौ तस्य वृत्तेः गुणे गुण-कर्मान्यत्वविशिष्टसत्तेति प्रतीतेः सर्वसिद्धत्वात् । सत्तावान् द्रव्यत्वादित्यादावव्याप्तिश्च सत्ताभाववति सामान्यादौ हेतुतावच्छेदकसमवायसम्बन्धेन वृत्तेरप्रसिद्धेरिति चेत् । न । हेतुतावच्छेदकावच्छिन्नहेतुवधिकरणताप्रतियोगिक-हेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नाधेयतानिरूपितविशेषणताविशेषसम्बन्धेन निरुक्तसाध्याभावत्वविशिष्टनिरूपितनिरुक्तसम्बन्धसंसर्गकनिरवच्छिन्नाधिकरणताश्रयवृ-

त्तित्वसामान्याभावस्य विवक्षितत्वात्, वृत्तित्वञ्च न हेतुतावच्छेदक-
 सम्बन्धेन विवक्षणीयं, अस्ति च सत्तावान् द्रव्यत्वादित्यादौ सत्ता-
 भावाधिकरणताश्रयवृत्तित्वस्य हेतुतावच्छेदकसमवायसम्बन्धावच्छि-
 न्नाधेयतानिरूपितविशेषणताविशेषसम्बन्धेन सामान्याभावो द्रव्यत्वादौ,
 समवायसम्बन्धावच्छिन्नाधेयतानिरूपितविशेषणताविशेषसम्बन्धावच्छि-
 न्नप्रतियोगिताकसत्ताभावाधिकरणत्वाश्रयवृत्तित्वाभावस्य व्यधिकरण-
 सम्बन्धावच्छिन्नाभावतया संयोगसम्बन्धावच्छिन्नगुणाभावादेरिव केव-
 लान्वयित्वात् । द्रव्यं सत्तादित्यादौ च द्रव्यत्वाभावाधिकरणगुणादि-
 वृत्तित्वस्यैव समवायसम्बन्धावच्छिन्नाधेयतानिरूपितविशेषणतासम्बन्धेन
 सत्तायां सत्त्वान्नातिव्याप्तिः । द्रव्यं विशिष्टसत्तादित्यादावव्याप्तिवारणा-
 य प्रतियोगिकान्तमाधेयताविशेषणं । वस्तुतस्तु एतल्लक्षणकर्तृनये विशि-
 ष्टसत्त्वं विशिष्टनिरूपिताधारतासम्बन्धेनैव द्रव्यत्वव्याप्यं न तु समवाय-
 सम्बन्धेन, तथाच प्रतियोगिकान्तमाधेयताविशेषणमनुपादेयमेव, तदु-
 पादाने हेतुतावच्छेदकभेदेन कार्य-कारणभावभेदापत्तेः । हेतुता-
 वच्छेदकसम्बन्धेन सम्बन्धित्वे सतीत्यनेनापि विशेषणाद्विज्ञेयान्
 गगनादित्यादौ नातिव्याप्तिः । ननु तथापि उभयत्वमुभयत्रैव पर्याप्तं
 न तु एकत्रेति सिद्धान्तादरे^(१) घटत्वान् घटत्व-तदभाववदुभय-
 त्वादित्यादौ पर्याप्त्याख्यसम्बन्धेन हेतुत्वेऽतिव्याप्तिः घटत्वाभाववति
 हेतुतावच्छेदकपर्याप्त्याख्यसम्बन्धेन हेतोरवृत्तेः घटो घट-पटोभय-

(१) प्रत्येकमसतो धर्मस्य उभयत्रापि सत्ताया अयोगात् “उभयत्व-
 मुभयत्रैव पर्याप्तं न तु एकत्वं” इति सिद्धान्तस्य न सर्वजनसम्मतत्वं अत-
 उत्तं “इति सिद्धान्तादरे” इति ।

मिति वत् घटो घटत्व-तदभाववदुभयमित्यप्रतीतेरिति चेत् । न । तादृशसिद्धान्तादरे हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेन साध्यसमानाधिकरणत्वे सतीत्यनेनैव विशेषणीयत्वादिति । अत एव निविशतां वा वृत्ति-मत्त्वं साध्यसमानाधिकरणत्वं वेति केवलान्वयिग्रन्थे दीधितिकृतः ।

केचित्तु निरुक्तसाध्याभावत्वविशिष्टनिरूपिता या विशेषणतासम्बन्धेन यथोक्तसम्बन्धेन वा निरवच्छिन्नाधिकरणता तदाश्रयव्यक्त्यवर्तमानं हेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नयद्वर्मावच्छिन्नाधिकरणत्वसामान्यं तद्वर्मावत्त्वं विवक्षितं । धूमवान् वक्त्रेरित्यादौ पर्वतादिनिष्ठवद्भ्यधिकरणताव्यक्तेर्धूमाभावाधिकरणवृत्तित्वेऽपि अयोगोलकनिष्ठवद्भ्यधिकरणताव्यक्तेरतथात्वान्नातिव्याप्तिरित्याहुः ।

अन्ये तु हेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नहेतुतावच्छेदकावच्छिन्नाधिकरणताश्रयवृत्तियन्निरवच्छिन्नाधिकरणत्वं तद्वृत्तिनिरुक्तसाध्याभावत्वविशिष्टनिरूपितयथोक्तसम्बन्धावच्छिन्नाधिकरणतावत्त्वमिति विशेषण-विशेष्यभावव्याख्यासे तात्पर्यं, स्वपदं हेतुपरं, इत्यञ्च कपिसंयोगाभाववान् सत्त्वात् कपिसंयोगिभिन्नं गुणत्वादित्यादावपि नाव्याप्तिरित्याहु रिति सङ्क्षेपः ।

लक्षणान्तरमाह, 'साध्यवद्भिन्नेति साध्यवद्भिन्नो यः साध्याभाववान् तद्वृत्तित्वमित्यर्थः । कपिसंयोगी एतदृक्त्वादित्याद्यव्याप्यवृत्तिसाध्यकाव्याप्तिवारणाय 'साध्यवद्भिन्नेति साध्याभाववतो विशेषणमिति प्राञ्चः । तदसत् 'साध्याभाववदित्यस्य व्यर्थत्वापत्तेः साध्यवद्भिन्नावृत्तित्वस्यैव सम्यक्त्वात्^(१) ।

(१) साध्यवद्भिन्नावृत्तित्वमित्यस्यैव व्याप्तित्वादिति क० ।

नव्यास्तु साध्यवद्भिन्ने यः साध्याभावः साध्यवद्भिन्नसाध्याभावः
तदवृत्तित्वमिति सप्तमीतत्पुरुषोत्तरं मतुप्प्रत्ययः तथाच साध्य-
वद्भिन्नवृत्तिर्यः साध्याभावस्तदवृत्तित्वमित्यर्थः । एवञ्च साध्यवद्भि-
न्नवृत्तीत्यनुक्तौ संयोगी द्रव्यत्वादित्यादावव्याप्तिः संयोगाभाववति
द्रव्ये द्रव्यत्वस्य वृत्तेः, तदुपादाने च संयोगवद्भिन्नवृत्तिः संयोगा-
भावो गुणादिवृत्तिः संयोगाभाव एव अधिकरणभेदेनाभावभेदात्
तदवृत्तित्वान्नाव्याप्तिः । न च तथापि साध्यवद्भिन्नावृत्तित्वमित्ये-
वास्तु किं साध्याभाववदित्यनेनेति वाच्यम् । यथोक्तलक्षणे तस्या-
प्रवेशेन वैयर्थ्याभावात्^(१) तस्यापि लक्षणान्तरत्वात् । न च तथापि
साध्यवद्भिन्नवृत्तिर्यस्तदवृत्तित्वमेवास्तु किं साध्याभावपदेनेति वाच्यं ।
तादृशद्रव्यत्वादिमवृत्तित्वादसम्भवापत्तेः । साध्याभावेत्यत्र साध्यपद-
मप्यत एव द्रव्यत्वादेरपि द्रव्यत्वाभावाभावत्वात् भावरूपाभावस्य चा-
धिकरणभेदेन भेदाभावात् ।

ननु तथापि घटाकाशसंयोग-घटत्वान्यतराभाववान् गगनत्वा-
दित्यत्र घटानधिकरणदेशावच्छेदेन घटाकाशसंयोगाभावस्य गगने
सत्त्वात् सङ्घेतुतयाव्याप्तिः साध्यवद्भिन्ने घटे वर्तमानस्य साध्याभावस्य
घटाकाशसंयोगरूपस्य गगनेऽपि सत्त्वात् तत्र च हेतोर्वृत्तेः । न च साध्य-
वद्भिन्नवृत्तित्वविशिष्टसाध्यभाववत्त्वं विवक्षितमिति वाच्यम् । साध्या-
भावपदवैयर्थ्यापत्तेः । साध्यवद्भिन्नवृत्तित्वविशिष्टवदवृत्तित्वस्यैव सम्य-

(१) स्वसमानाधिकरणव्याप्यत्वावच्छेदकधर्मान्तरघटितत्वस्यैव व्यर्थविशे-
षणघटितत्वरूपत्वात् साध्यवद्भिन्नवृत्तिसाध्याभाववदवृत्तित्वत्वस्य साध्यव-
द्भिन्नावृत्तित्वत्वाघटितत्वेन नोक्तलक्षणं व्यर्थविशेषणघटितमिति भावः ।

क्त्वादिति चेत् । न । अभावाभावस्यातिरिक्तत्वमतेनैतल्लक्षण-
करणात् तथाच अधिकरणभेदेनाभावभेदात् साध्यवद्भिन्ने घटे
वर्त्तमानस्य साध्याभावस्य प्रतियोगिव्यधिकरणस्य प्रतियोगिमति
गगनेऽसत्त्वादव्याप्तेरभावात् । न चैवं साध्याभावेत्यत्र साध्यपदवैयर्थ्यं
अभावाभावस्यातिरिक्तत्वेन द्रव्यत्वादेरभावत्वाभावात् साध्यवद्भिन्न-
वृत्तिघटाभावादेस्तु हेतुमत्यसत्त्वात् अधिकरणभेदेनाभावभेदादिति
वाच्यं । यत्र प्रतियोगिसमानाधिकरणत्व-प्रतियोगिव्यधिकरणत्वं
लक्षणविरुद्धधर्माध्यासस्तत्रैवाधिकरणभेदेन अभावभेदाभ्युपगमो न
तु सर्वत्र, तथाच साध्यवद्भिन्नवृत्तिघटाभावादेर्हेतुमत्यपि सत्त्वात्
असम्भववारणाय साध्यपदोपादानात् ।

यद्वा घटाकाशसंयोग-घटत्वान्यतराभावाभावोऽतिरिक्तः घटा-
काशसंयोग-घटत्वादीनामननुगततया तथात्वस्य वक्तुमशक्यत्वात् ।
घटत्व-द्रव्यत्वाद्यभावाभावस्तु नातिरिक्तः घटत्व-द्रव्यत्वादीनामप्य-
नुगतत्वात् तथाच द्रव्यत्वादिकमादायासम्भववारणायैव साध्यपदमिति
प्राञ्जरित्यास्तां^(१) विस्तरः ।

(१) ननु घटत्व-घटाकाशतत्संयोगान्यतराभाववान् गगनत्वात् इत्यत्रा-
व्याप्तिर्दुर्व्वारैव घटत्व-घटाकाशतत्संयोगस्यानुगततया तत्र तादृशान्यतरा-
भावाभावत्वकल्पने बाधकाभावात् क्लृप्तानां तथात्वकल्पनसम्भवे अतिरिक्त-
तथात्वकल्पनानौचित्यात् इति चेत् । न । यद्वेति वाकारस्यानास्थासूचक-
त्वात् । वस्तुतस्तु घटत्व-घटाकाशतत्संयोगान्यतराभावाभावस्य घटे व्या-
प्यवृत्तित्वेन निरवच्छिन्नवृत्तिकतया घटे किञ्चिदवच्छेदेन तादृशान्यतरा-
भावो नास्तीति प्रतीतेरप्रामाणिकत्वं परन्तु तादृशान्यतराभावाभावस्य

‘साध्यवत्प्रतियोगिकान्योन्याभावेति हेतौ साध्यवत्प्रतियोगिका-
न्योन्याभावाधिकरणवृत्तित्वाभाव इत्यर्थः । अन्योन्याभावस्य प्रतियो-
ग्यवृत्तित्वेन विशेषणीयः, तेन साध्यवतोऽयमव्यवृत्तिधर्मावच्छिन्न-
प्रतियोगिकान्योन्याभाववति हेतोर्वृत्तावपि नामम्भवः^(१) । नन्वेवमपि
नानाधिकरणकसाध्यके वन्निमान् धूमादित्यादौ साध्याधिकरणी-
भूततत्तद्व्यवृत्तित्वावच्छिन्नप्रतियोगिकान्योन्याभाववति हेतोर्वृत्तेरव्या-
प्तिर्दुर्व्वारा, प्रतियोग्यवृत्तित्वमपहाय साध्यवत्तावच्छिन्नप्रतियोगिता-
कान्योन्याभावविवक्षणे तु पञ्चमेन सह पौनस्त्यमिति चेत् । न ।
वक्ष्यमाणकेवलान्वयव्याप्तिवदस्याप्यत्र दोषत्वात् । न च तथापि

तादृशान्यतरस्वरूपत्वे तादृशान्यतरान्तर्गतघटाकाशतत्संयोगस्य अवच्छिन्न-
वृत्तिकतया तत्प्रतीतिः प्रामाणिकत्वापत्तेः । अतिरिक्तत्वपक्षे घटे तादृ-
शाभावस्य व्याप्यवृत्तित्वेन निरवच्छिन्नवृत्तिकतया तत्प्रतीतेर्न प्रामाणि-
कत्वम् । घटाकाशसंयोगाभावत्वेन साध्यत्वे तादृशसाध्यस्य केवलान्वयि-
तया भेदस्य व्याप्यवृत्तितया तद्वद्भिन्नत्वस्याप्रसिद्धत्वेनाव्याप्तेरशक्यपरोहार-
त्वादतोऽन्यतराभावः साध्योक्त इति ध्येयम् ।

(१) अथात्र स्वप्रतियोग्यवृत्तित्वविशेषणदाने अन्योन्यपदं व्यर्थं साध्य-
वत्प्रतियोगिकात्यन्ताभावस्य स्वप्रतियोगिवृत्तित्वात् इति चेत् । न । धर्म्मि-
भेदस्य धर्म्मात्यन्ताभावानतिरिक्तत्वेन स्वप्रतियोग्यवृत्तिसाध्यवत्प्रतियोगि-
काभावाप्रसिद्धेः अन्योन्यपदनिवेशे च अन्योन्याभावत्वनिरूपकप्रतियोगि-
ताश्रयावृत्तित्वलाभात् नाभावाप्रसिद्धिरिति । वस्तुतस्तु अन्योन्याभावत्वस्य
अखण्डोपाधिवया अन्योन्याभावत्वनिवेशे अभावत्वापेक्षया गौरवानवका-
शादिति ध्येयम् ।

साध्यवत्प्रतियोगिकान्योन्याभावमात्रस्यैव एतल्लक्षणघटकत्वे वक्ष्यमाण-
केवलान्वयव्याप्तिरत्रासङ्गता केवलान्वयिसाध्यकेऽपि साधाधिकरणी-
भूततत्तद्वाक्यवच्छिन्नान्योन्याभावस्य प्रसिद्धत्वादिति वाच्यं ।
अत्रापि तादृशान्योन्याभावस्य प्रसिद्धत्वेऽपि तद्वति हेतोर्वृत्तेरेवा-
व्याप्तेर्दुर्वारत्वात् ।

यद्वा साध्यवत्प्रतियोगिकान्योन्याभावपदेन साध्यवत्त्वावच्छिन्न-
प्रतियोगिताकान्योन्याभाव एव विवक्षितः । न चैवं पञ्चमाभेदः, तत्र
साध्यवत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिकान्योन्याभाववत्त्वेन प्रवेशः अत्र तु तादृ-
शान्योन्याभावाधिकरणत्वेनेत्यधिकरणत्वप्रवेशाप्रवेशाभ्यामेव भेदात् ।
अखण्डाभावघटकतया च नाधिकरणत्वांशस्य वैयर्थ्यमिति न कोऽपि
दोष इति दिक् ।

‘सकलेति’ साकल्यं साध्याभाववतोविशेषणं तथाच यावन्ति
साध्याभावाधिकरणानि तन्निष्ठाभावप्रतियोगित्वं हेतौ व्याप्तिरि-
त्यर्थः । धूमाद्यभाववज्जलहृदादिनिष्ठाभावप्रतियोगित्वादङ्ग्यादावति-
व्याप्तिरिति यावदिति साध्याभाववतोविशेषणं, साध्याभावविशेषणत्वे
तत्तद्हृदावृत्तित्वादिरूपेण यो वज्ज्याद्यभावस्तस्यापि सकलमध्ये
प्रवेशात् तावदधिकरणप्रसिद्ध्या असम्भवापत्तेः^(१) । न च द्रव्यं

(१) सकलस्य साध्याभावविशेषणत्वे तत्तद्दृक्कदावृत्तित्वाद्यवच्छिन्नाभाव-
कूटाधिकरणाप्रसिद्ध्या मधुरानाथेनासम्भवो दत्तः । जगदीशेन तत्राव्या-
प्तिर्दत्ता अत्रायमाशयः स्वप्रतियोगिमत्ताग्रहविरोधिताघटकसन्बन्धेन सा-
ध्याभाववत्त्वनिवेशो मधुरानाथाभिप्रेतः तथाच तत्तद्दृक्कदावृत्तित्वाद्यव-

सत्त्वादित्यादौ द्रव्यत्वाभाववति गुणादौ सत्त्वादेर्विशिष्टाभावादि-
 सत्त्वादितिव्याप्तिरिति वाच्यं । तादृशाभावप्रतियोगितावच्छेदकहेतु-
 तावच्छेदकवत्त्वस्येह विवक्षितत्वात् । प्रतियोगिता च हेतुतावच्छेदक-
 सम्बन्धावच्छिन्ना ग्राह्या तेन द्रव्यत्वाभाववति गुणादौ सत्त्वादेः
 संयोगादिसम्बन्धावच्छिन्नाभावसत्त्वेऽपि नातिव्याप्तिः । साध्याभावस्य
 साध्यतावच्छेदकावच्छिन्न-साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगि-
 ताको बोध्यः, अन्यथा पर्वतादावपि वज्रादेर्विशिष्टाभावादिसत्त्वेन
 समवायादिसम्बन्धावच्छिन्नवज्रादिसामान्याभावसत्त्वेन च यावदन्त-
 र्गततया तन्निष्ठाभावप्रतियोगित्वाभावात् धूमस्यासम्भवः स्यात् । न
 च कपिसंयोगी एतदृचत्वात् इत्यादौ एतदृचस्यापि तादृशसाध्या-
 भाववत्त्वेन यावदन्तर्गततया तन्निष्ठाभावप्रतियोगित्वाभावादेतदृचत्व-
 स्याव्याप्तिरिति वाच्यम् । किञ्चिदनवच्छिन्नायाः साध्याभावाधि-

च्छिन्नाभावस्य स्वप्रतियोगिमत्ताग्रहविरोधिताघटकसम्बन्धेन साध्यामा-
 वाधिकरणाप्रसिद्धत्वादसम्भवसङ्गतिः, साध्यवत्ताग्रहविरोधिताघटकसम्ब-
 न्धेन साध्याभाववत्त्वनिवेशो जगदीशाभिप्रेतः तथाच कालिकसम्बन्धा-
 वच्छिन्नप्रतियोगिताकघटत्वाभावसाध्यक-आत्मत्वादिहेतौ लक्षणसमन्वयः
 साध्यवत्ताग्रहविरोधिताघटककालिकसम्बन्धेन साध्याभावकूटस्य काले
 प्रसिद्धत्वात् जगदीशेनाव्याप्तिर्दत्ता । ननु गगनत्वाभाववान् पटत्वादित्यत्र
 लक्षणगमनात् कथमसम्भवः गगनत्वाभावाभावकूटाधिकरणत्वस्य गगने
 प्रसिद्धत्वादिति चेत् । न । घटभिन्नत्वप्रकारकप्रमाविशेष्य-गगनत्वोभयत्वा-
 वच्छिन्नाभावमादाय तदोषतादवस्थायात् तदभावघटितकूटाधिकरणाप्रसिद्धे-
 रिति ।

करणताया इह विवक्षितत्वात्, इत्यञ्च किञ्चिदनवच्छिन्नायाः
 कपिसंयोगाभावाधिकरणताया गुणादावेव सत्त्वान्तत्र च हेतोरप्यभाव-
 सत्त्वान्नाव्याप्तिः । न च कपिसंयोगाभाववान् सत्त्वादित्यादौ साध्या-
 भावस्य कपिसंयोगादेर्निरवच्छिन्नाधिकरणत्वाप्रसिद्ध्याव्याप्तिरिति
 वाच्यं । केवलान्वयिन्यभावादित्यनेन ग्रन्थकृतैव एतद्दोषस्य वक्ष्यमाण-
 त्वात् । न च पृथिवी कपिसंयोगादित्यादौ पृथिवीत्वाभाववति
 जलादौ यावत्येव कपिसंयोगाभावसत्त्वादित्याप्तिरिति वाच्यं ।
 तन्निष्ठपदेन तत्र निरवच्छिन्नवृत्तिमत्त्वस्य विवक्षितत्वात्, इत्यञ्च
 पृथिवीत्वाभावाधिकरणे जलादौ यावदन्तर्गते निरवच्छिन्नवृत्ति-
 मानभावो न कपिसंयोगाभावः किन्तु घटत्वाद्यभाव एव तत्प्रतियो-
 गित्वस्य हेतावसत्त्वान्नातिव्याप्तिः । न चैवमन्योन्याभावस्य व्याप्यवृत्ति-
 तानियमनये द्रव्यत्वाभाववान् संयोगवद्भिन्नत्वादित्यादेरपि सङ्केततया
 तत्राव्याप्तिः संयोगवद्भिन्नत्वाभावस्य संयोगरूपस्य निरवच्छिन्नवृत्तेर-
 प्रसिद्धेरिति वाच्यं । अन्योन्याभावस्य व्याप्यवृत्तितानियमनयेऽन्योन्या-
 भावस्याभावो न प्रतियोगितावच्छेदकस्वरूपः किन्त्वतिरिक्तो
 व्याप्यवृत्तिरन्यथा मूलावच्छेदेन कपिसंयोगिभेदाभावमानानुपपत्ते-
 रिति संयोगवद्भिन्नत्वाभावस्यापि निरवच्छिन्नवृत्तिमत्त्वात् । वस्तुतस्तु
 सकलपदमन्त्राशेषपरं न त्वनेकपरं एतद्घटत्वाभाववान् पटत्वादित्याद्ये-
 कव्यक्तिविपक्षके साध्याभावाधिकरणस्य यावत्त्वाप्रसिद्ध्याव्याप्यापत्तेः,
 तथाच किञ्चिदनवच्छिन्नाया निरुक्तसाध्याभावाधिकरणताया व्याप-
 कौभूतो योऽभावः हेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्न-तत्प्रतियोगिताव-
 च्छेदकहेतुतावच्छेदकवत्त्वं लक्षणार्थः । न च सत्त्वादिसामान्याभा-

वस्यापि प्रमेयत्वादिना निरुक्तसाध्याभावाधिकरणताव्यापकत्वात्
 द्रव्यं सत्त्वादित्यादावतिव्याप्तिः । तद्वन्निष्ठान्योन्याभावप्रतियोगिता-
 नवच्छेदकत्वं व्यापकत्वमित्युक्तौ तु निर्धूमत्ववान् निर्व्वक्लितादि-
 त्यादावव्याप्तिः निर्व्वक्लिताभावानां वक्लिष्यक्तीनां सर्व्वामामेव चाल-
 नीन्यायेन निर्धूमत्वाभावाधिकरणतावन्निष्ठान्योन्याभावप्रतियोगिता-
 वच्छेदकत्वादिति वाच्यं । तादृशाभावाधिकरणताव्यापकतावच्छेदकं
 हेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्न-यद्धूर्मावच्छिन्नाभावत्वं तद्धूर्मवत्त्वस्य
 विवक्षितत्वात् व्यापकतावच्छेदकत्वन्तु तद्वन्निष्ठात्यन्ताभावप्रतियो-
 गितानवच्छेदकत्वं न तु तद्वन्निष्ठप्रतियोगिव्यधिकरणाभावप्रतियोगि-
 तानवच्छेदकत्वं तद्वति निरवच्छिन्नवृत्तिमान् योऽभावस्तत्प्रतियोगि-
 तानवच्छेदकत्वं वा, प्रकृते व्यापकतायां प्रतियोगिवैयधिकरणस्य
 निरवच्छिन्नत्वस्य वा प्रवेशे प्रयोजनविरहात् तेन पृथिवी कपि-
 संयोगादित्यादौ नातिव्याप्तिः कपिसंयोगाभावत्वस्य निरुक्तव्यापक-
 तावच्छेदकत्वविरहादित्येव परमार्थः ।

‘साध्यवदन्येति अत्रापि प्रथमलक्षणोक्तरीत्या हेतौ साध्यव-
 दन्यवृत्तित्वाभाव इत्यर्थः । तादृशवृत्तित्वाभावस्य तादृशवृत्तित्व-
 सामान्याभावो बोध्यः तेन धूमवान् वक्लेरित्यादौ धूमवदन्यजल-
 हृदादिवृत्तित्वाभावस्य धूमवदन्यवृत्तित्व-जलत्वोभयाभावस्य च हेतौ
 सत्त्वेऽपि नातिव्याप्तिः । साध्यवदन्यत्वञ्च अन्योन्याभावत्वनिरूपित-
 साध्यवत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावत्वं तेन वक्लिमान् धूमादि-
 त्यादौ तत्तद्वक्लिमदन्यस्मिन्धूमादेर्वृत्तावपि नाव्याप्तिः, न वा वक्लि-
 मत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिकात्यन्ताभावस्य स्वावच्छिन्नभिन्नभेदरूपस्या-

धिकरणे^(१) पर्वतादौ धूमस्य वृत्तावप्यव्याप्तिः^(२) तस्य साध्यवत्त्वावच्छि-
न्नप्रतियोगिताया अत्यन्ताभावत्वनिरूपितत्वेन अन्योन्याभावत्वनिरू-
पितत्वविरहात् । अन्योन्याभावत्वनिरूपितत्वञ्च तादात्म्यसम्बन्धाव-
च्छिन्नत्वमेव, साध्यवत्त्वञ्च साध्यतावच्छेदकसम्बन्धेन बोध्यं तेन वक्षिमान्
धूमादित्यादौ वक्षिमतत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकस्य समवायेन वक्षि-
मतोऽन्योन्याभावस्याधिकरणे पर्वतादौ धूमादेर्वृत्तावपि नाव्याप्तिः^(३) ।
सर्वमन्यत् प्रथमलक्षणोक्तदिशावसेयं^(४) । यथा चास्य न तृतीय-
लक्षणाभेदस्तथोक्तं तत्रैवेति समासः । सर्वाण्येव लक्षणानि केवलान्व-
यव्याप्त्या दूषयति, 'केवलान्वयिन्यभावादिति पञ्चानामेव लक्षणानां
इदं वाच्यं ज्ञेयत्वादित्यादिव्याप्यवृत्तिकेवलान्वयिसाध्यके कपिसंयो-

(१) स्वावच्छिन्नभिन्नभेदस्य स्वस्वरूपानतिरिक्तत्वमिति भावः ।

(२) नन्वत्र सर्वत्रासम्भवसम्भवे कथमव्याप्तिदानं सङ्गतमिति चेत् ।
न । शब्दवान् गगनत्वादित्यादौ लक्षणगमनसम्भवात् तत्र साध्यवदत्यन्ता-
भावस्य केवलान्वयितया तदवच्छिन्नभिन्नाप्रसिद्धेरिति ।

(३) अत्र तादात्म्यसम्बन्धेन गगनसाध्यक-तद्व्यक्तित्वहेतौ लक्षणगमनान्ना-
सम्भवः ।

(४) प्रथमलक्षणरीत्यावसेयमिति ख० । प्रथमलक्षणे यथा साध्या-
भावाधिकरणत्वं सम्बन्धविशेषेण विवक्षितं अत्रापि तथा साध्यवद्भेदाधि-
करणत्वं सम्बन्धविशेषेण वक्तव्यं, प्रथमलक्षणे यथा हेतुतावच्छेदकावच्छिन्ना-
धिकरणताप्रतियोगिक-हेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नाधेयताप्रतियोगिकस्व-
रूपसम्बन्धेन साध्याभाववद्वृत्तित्वाभावे विवक्षितः तथा अत्रापि साध्य-
वदन्यवृत्तित्वाभावे विवक्षणीयः अन्यथा प्रागुक्तदोषाणाम् अत्राप्यवकाशः
स्यात् इति ।

इति श्रीमद्भङ्गेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ
अनुमानखण्डे व्याप्तिवादे व्याप्तिपञ्चकं ।

गाभाववान् सत्त्वादित्याद्यव्याप्यवृत्तिकेवलान्वयिमाध्यकेऽपि चाभावा-
दित्यर्थः, साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्न-साध्यतावच्छेदकावच्छिन्न-
प्रतियोगिताकसाध्याभावस्य साध्यतावच्छेदकसम्बन्धेन साध्यवत्त्वाव-
च्छिन्नप्रतियोगिताकान्योन्याभावस्य चाप्रमिद्धत्वात् कपिमंयोगा-
भाववान् सत्त्वादित्यादौ निरवच्छिन्नसाध्याभावाधिकरणत्वस्याप्रमिद्ध-
त्वाच्च इति भावः । तृतीयलक्षणस्य केवलान्वयिमाध्यकामन्वञ्च
तद्वाख्यानावसर एव प्रपञ्चितम् । एतच्चोपलक्षणं द्वितीये कपि-
संयोगौ एतद्वृत्तत्वादित्यादावव्याप्तिः अधिकरणभेदेनाभावभेदे सा-
नाभावेन कपिमंयोगवद्भिन्नवृत्तिकपिसंयोगाभावोऽपि द्रव्यवृत्तिः
कपिमंयोगाभाव एव तद्वृत्तित्वादेतद्वृत्तत्वस्य । न च साध्यवद्भिन्न-
वृत्तित्वविशिष्टसाध्याभाववद्वृत्तित्वं वक्तव्यं एवञ्च वृत्तस्य विशिष्टाधि-
करणत्वाभावान्नाव्याप्तिरिति वाच्यं । साध्याभावपदवैयर्थ्यापत्तेः ।
साध्यवद्भिन्नवृत्तित्वविशिष्टवद्वृत्तित्वस्यैव सम्यक्त्वात् । सद्धेतौ हेत्वधि-
करणे विशिष्टाधिकरणत्वाभावादेवामम्भवाभावात् । तृतीये साध्य-
वत्प्रतियोगिताकान्योन्याभावमात्रस्य घटकत्वे चालनौन्यायेनान्योन्या-
भावमादाय नानाधिकरणकसाध्यके वन्निमान् धूमादित्यादाव-
व्याप्तिश्चेत्यपि बोध्यम् ।

इति श्रीमथुरानाथतर्कवागीशविरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये
अनुमानखण्डे व्याप्तिवादरहस्ये व्याप्तिपञ्चकरहस्यं ।

अथ सिंह-व्याघ्रोक्तव्याप्तिलक्षणरहस्यम् ।



नापि साध्यासामानाधिकरण्यानधिकरणत्वं साध्य-
वैयधिकरण्यानधिकरणत्वं वा, तदुभयमपि साध्यान-

अथ सिंह-व्याघ्रोक्तव्याप्तिलक्षणरहस्यं ।

‘नापीति, अत्र ‘साध्यासामानाधिकरणं’ न ‘साध्याधिकरणवृ-
त्तित्वाभावः, द्रव्यं सत्त्वादित्यादावतिव्याप्तापत्तेः द्रव्यत्वाधिकरण-
वृत्तित्वाभावानधिकरणत्वात् सत्तायाः । नापि साध्यवद्भिन्नवृत्तित्वञ्च
द्वितीयेन पौनरुक्त्यापत्तेः । किन्तु साध्याधिकरणत्वाभाववद्वृत्तित्वं
तदनधिकरणत्वं तद्वद्भिन्नत्वं अधिकरणत्वप्रवेशे प्रयोजनविरहात्,
तथाच साध्याधिकरणत्वाभाववद्वृत्तिभिन्नत्वं हेतावय्वभिचारित्वमिति
फलितं, अव्याप्यवृत्तिसाध्यकसङ्घेतावव्याप्तिवारणायाधिकरणत्वप्रवेशः,
अव्याप्यवृत्तेरधिकरणता तु नाव्याप्यवृत्तिः^(१), साध्याधिकरणत्वञ्च
साध्यतावच्छेदकावच्छिन्न-साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नं ग्राह्यं
अन्यथा गुणकर्मन्यत्वविशिष्टसत्तावान् जातेरित्यादौ सत्ताया एव
साध्यत्वेन साध्याधिकरणत्वाभाववत्सामान्यादिवृत्तिभिन्नत्वाज्जाते-
रित्यतिव्याप्तिः स्यात् । स्याच्च समवायेन वक्ष्यादौ साध्ये संयोगेन

(१) व्याप्यवृत्तिरिति ख० ।

धिकरणानधिकरणत्वं तच्च तत्र यत्किञ्चित्साध्यानधि-
करणाधिकरणे धूमे चासिद्धम् ।

धूमादिहेतावतिव्याप्तिः^(१) वज्र्यधिकरणत्वाभाववज्जलहृदाद्येव तद-
वृत्तित्वात् धूमादेः । इत्यञ्च साध्यतावच्छेदकसमवायसम्बन्धावच्छिन्न-
वज्र्यधिकरणत्वाभाववत् पर्वताद्यपि धूमस्य तद्वृत्तित्वान्नातिव्याप्तिः ।
वृत्तिश्च हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेन बोध्या तेन तादृशवज्र्यधिकरणत्वा-
भाववति धूमावयवे समवायेन धूमस्य वृत्तावपि न क्षतिः । न चैवं
सत्तावान् द्रव्यत्वादित्यादावव्याप्तिः सत्ताधिकरणत्वाभाववति सामा-
न्यादौ हेतुतावच्छेदकसमवायसम्बन्धेन वृत्तेरप्रसिद्धेरिति वाच्यम् ।
तादृशसाध्याधिकरणत्वाभावव्यापकान्योन्याभावप्रतियोगितावच्छेदक-
त्वमिति विवक्षितत्वात्, साध्याधिकरणत्वाभावसमानाधिकरणेत्युक्तौ
धूमवान् वज्जेरित्यादौ धूमाधिकरणत्वाभाववति जलहृदादौ वज्जि-
मदन्योन्याभावसत्त्वादतिव्याप्तिरिति व्यापकत्वानुधावनं । अन्योन्या-
भावप्रतियोगितावच्छेदकत्वं हेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नं हेतुताव-
च्छेदकावच्छिन्नञ्च ग्राह्यं अन्यथा वज्जिमान् धूमादित्यादौ वज्र्यधि-
करणत्वाभाववति धूमावयवे धूमवदन्योन्याभावासत्त्वादव्याप्तिः स्यात्,
स्याच्च द्रव्यं जातेरित्यादौ घटत्व-पटत्वादितत्त्वज्जातिमतोऽन्योन्या-
भावस्य द्रव्यत्वाधिकरणत्वाभावव्यापकत्वेनातिव्याप्तिः । अव्याप्यवृत्ति-

(१) वज्जिमान् धूमादित्यादौ च समवायेन वज्जेः साध्यत्वे संयोगेन धूमा-
दिहेतावतिव्याप्तिरिति ख० ।

मतोऽन्योन्याभावस्तु नाव्याप्यवृत्तिरिति पृथिवी संयोगादित्यादाव-
व्याप्यवृत्तिहेतुके व्यभिचारिणि नातिव्याप्तिरिति संचेपः ।

‘साध्यवैयधिकरणेति, ‘साध्यवैयधिकरणं’ साध्यवद्भिन्नवृत्तित्वं,
साध्यवदवृत्तित्वपरत्वे द्रव्यं सत्त्वादित्यादावतिव्याप्तिः, अव्याप्य-
वृत्तिमतोऽन्योन्याभावस्तु नाव्याप्यवृत्तिरित्यव्याप्यवृत्तिसाध्यकसङ्घेतौ
नाव्याप्तिः, अनधिकरणत्वमित्यत्राधिकरणत्वांशस्य प्रवेशान्न साध्य-
वदन्यावृत्तित्वमित्यनेन यथाश्रुतस्य पौनरुक्त्यं, अखण्डाभावघटकतया
चाधिकरणत्वांशस्य न वैयर्थ्यम् । साध्यवद्भिन्नत्वञ्च साध्यतावच्छे-
दकसम्बन्धावच्छिन्न-साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगितावच्छेदकता-
कभेदवत्त्वं बोध्यं तेन वक्लिमान् धूमादित्यादौ धूमस्य समवायेन
वक्लिमतोभिन्ने यत्किञ्चित्साध्यवद्भिन्ने च पर्वतादौ वृत्तित्वेऽपि
न क्षतिः तादृशसाध्यवद्भिन्नत्वव्यापकान्योन्याभावप्रतियोगितावच्छेद-
कत्वमिति तु समुदायार्थनिष्कर्षः, अन्यथा पूर्ववत् साध्यवद्भिन्न-
वृत्तित्वमित्यत्र वृत्तेर्हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेनैव वाच्यतया जातिमान्
द्रव्यत्वादित्यादावव्याप्यापत्तेः^(१) शेषं पूर्ववत् । लक्षणद्वयमेकदैव
दूषयति, ‘तदुभयमपीति, ‘साध्यानधिकरणानधिकरणत्वं’ साध्या-
नधिकरणानधिकरणत्वनियतं साध्यानधिकरणावृत्तित्वव्याप्यमिति
यावत्, ‘तच्च’ व्यापकौभूतं साध्यानधिकरणावृत्तित्वञ्च, ‘तत्र’
केवलान्वयिसाध्यके, ‘असिद्धमित्यन्वयः साध्यानधिकरणत्वस्य साध्या-
धिकरणत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदवत्त्वस्य तत्राप्रसिद्धेः, ‘यत्-
किञ्चिदिति यदि साध्यानधिकरणत्वं न तत्सामान्यभेदः किन्तु

(१) सत्तावान् द्रव्यत्वादित्यादावप्रसिद्ध्यापत्तेरिति ख० ।

इति श्रीमद्भङ्गेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ
अनुमानखण्डे सिंह-व्याघ्रोक्तव्याप्तिलक्षणम् ।

साध्याधिकरणप्रतियोगिकभेदमात्रं तदा वन्निमान् धूमादित्यत्र
यत्किञ्चिद्वज्जनधिकरणे पर्वतादौ वर्तमाने धूमेऽप्यसिद्धमित्यर्थः ।
अप्यर्थकचकारात् केवलान्वयिसमुच्चयः, तथाच व्यापकाभावाद्-
व्याप्यीभूतं तदुभयलक्षणमपि तदुभयत्रासिद्धमिति भावः । 'साध्या-
नधिकरणानधिकरणत्वमिति यथाश्रुतन्तु न सङ्गच्छते यथोक्तलक्षण-
द्वयस्य तत्त्वरूपत्वाभावादिति ध्येयं^(१) ।

इति श्रीमथुरानाथतर्कवागीशविरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये
अनुमानखण्डे व्याप्तिवादे सिंह-व्याघ्रोक्तव्याप्तिलक्षणरहस्यम् ।

(१) भट्टाचार्यानुयायिनस्तु 'तदुभयमपि' तदुभयलक्षणवाक्यमपि, 'सा-
ध्यानधिकरणानधिकरणत्वं' साध्यानधिकरणानधिकरणत्वबोधजनकं, सा-
ध्याधिकरणत्वसामान्याभावद्वृत्तित्वाभाव-साध्यवत्सामान्यभिन्नद्वृत्तित्वाभावा-
न्यतरबोधजनकमिति यावत्, 'तच्च' तादृशान्यतराभाववत्त्वञ्च, 'तत्र' केव-
लान्वयिसाध्यके, 'असिद्धमित्यन्वयः', साध्याधिकरणत्वसामान्याभावाप्रसि-
द्धत्वादिति भावः । ननु तदुभयवाक्यं न यथोक्तान्यतराभावबोधजनकं,
अपि तु साध्याधिकरणत्वप्रतियोगिकाभाववद्वृत्तित्वसामान्याभाव-साध्य-
वत्प्रतियोगिकभेदवद्वृत्तित्वसामान्याभावान्यतरबोधजनकमेव साध्याधिक-
रणत्वप्रतियोगिकाभाव—साध्यवत्प्रतियोगिकभेदौ च केवलान्वयिनि नाप्र-
सिद्धावित्यत आह, 'यत्किञ्चिदिति, शेषं पूर्ववदिति प्राज्ञः । इति खचि-
ह्नितपुस्तके अधिकः पाठः ।

अथ व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नाभावः ।



अथेदं वाच्यं ज्ञेयत्वादित्यत्र समवायितया वाच्यत्वा-
भावो घट एव प्रसिद्धः व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नप्रतियो-
गिताकाभावस्य केवलान्वयित्वात् । नचैवं घट एव व्य-
भिचारः, साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभा-

अथ व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नाभावरहस्यं ।

व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभाववादिनोऽन्यथाख्यात्य-
स्वीकारिणः सोन्दडस्य मतमादाय 'साध्यात्यन्ताभाववदवृत्तित्व-
मिति प्रथमलक्षणे केवलान्वयिन्यव्याप्तिमुद्धरति, 'अथेति, 'समवा-
यितयेति समवायित्वादिरूपेण वाच्यत्वावृत्तिधर्मेणेत्यर्थः । आदि-
पदात् समवेतत्व-घटत्व-पटत्वादेर्वाच्यत्वावृत्तिधर्ममात्रस्य परिग्रहः,
'घट एव प्रसिद्ध इति एवकारोऽप्येवं घटेऽपि प्रसिद्ध इत्यर्थः, अन्यथा
तादृशाभावस्य पदार्थमात्रे प्रसिद्धत्वादवधारणासङ्गतेः । ननु प्रति-
योगिना सममभावस्य विरोधाद्वाच्यत्ववति घटे कथं तदभाव इत्यत-
आह, 'व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नाभावस्येति स्वाधिकरणावृत्तिधर्माव-
च्छिन्नप्रतियोगिताकाभावस्येत्यर्थः, स्वपदं प्रतियोगितापरं, 'केवला-
न्वयित्वात्' सर्वत्र सत्त्वात् प्रतियोगिमत्यप्रतियोगिमिति च सत्त्वादिति
यावत्, अभावस्य प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिनेव समं

ववदृत्तित्वं हि व्यभिचारः, न च वाच्यत्वाभावस्तादृशो-
घटे, इति चेत्तर्हि तादृशसाध्याभावसामानाधिकर-
ण्याभावोव्याप्तिः । तथाचाप्रसिद्धिः प्रतियोग्यवृत्तिश्च
धर्म्मो न प्रतियोगितावच्छेदकः तद्विशिष्टज्ञानस्याभाव-

विरोधो न तु प्रतियोगिमात्रेण व्यधिकरणधर्म्मावच्छिन्नप्रति-
योगी च न कचिदप्यस्ति अप्रसिद्धत्वादतः सर्वत्रैव तदवच्छिन्ना-
भावः । न च वाच्यत्वमीश्वरेच्छा तत्र च गुणवेच्छात्वादिसमवायित्व-
भगवदात्मसमवेतत्वयोः सत्त्वेन समवायित्वं समवेतत्वं वा कुतोवाच्य-
त्वनिष्ठप्रतियोगिताव्यधिकरणमिति वाच्यं । वाच्यत्वं न ईश्वरेच्छा-
मात्रं किन्तु तद्विषयत्वमित्यभ्युपगमादिति भावः । 'समवायित-
येत्यस्य घटादिसमवायितयेत्यर्थः इत्यप्यन्ये । यद्यपि समवायि-
त्वादिना व्यधिकरणधर्म्मेण वाच्यत्वाभावस्य प्रसिद्धावपि तत्तत्साध्या-
भाव-विशिष्टाभावोभयाभावादिकमादायासम्भववारणाय साध्यताव-
च्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताकसाध्याभावस्यैव लक्षणघटकत्वात्तादृ-
शभावस्य च वाच्यत्वादिसाध्यकेऽप्रसिद्धत्वादव्याप्तिर्दुर्व्वारैव । न च
साध्यप्रतियोगिताकाभावमात्रं लक्षणघटकमिति भ्रमादियमाशङ्केति
वाच्यं । तथा सति विशिष्टाभावोभयाभावादिरूपं समानाधिकरण-
धर्म्मावच्छिन्नाभावमादायैव प्रसिद्धिसम्भवेन व्यधिकरणधर्म्मावच्छिन्न-
प्रतियोगिताकाभावपर्यन्तानुधावनवैफल्यत् । न च वैशिष्ट्य-व्यासज्य-
वृत्तिधर्म्मानवच्छिन्नप्रतियोगिताकसाध्याभावमात्रं लक्षणघटकमिति
भ्रमेण इयमाशङ्केति वाच्यं । दण्डावच्छिन्नपुरुषाभावस्यैव सम-

धीहेतुत्वात् अन्यथा निर्व्विकल्पादपि घटोनास्तीति प्रतीत्यापत्तेः, गवि शशशृङ्गं नास्तीतिप्रतीतेरप्रसिद्धेः शशशृङ्गं नास्तीति च शशे शृङ्गाभावइत्यर्थः ।

इति श्रीमद्भङ्गेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ अनुमानखण्डे व्याप्तिवादे व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नाभावः ॥

वायित्वावच्छिन्नवाच्यत्वाभावस्यापि विशिष्टाभावत्वात् समवाय-समवायित्वयोर्विशिष्टस्यावच्छेदकीभूतधर्मघटकत्वात् । तथापि साध्याभावपदेन साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्न-साध्यतावच्छेदकावच्छिन्न-प्रतियोगिताकसाध्याभावो न विवक्षणीयः किन्तु, साध्यतावच्छेदकसम्बन्धेन साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नसाध्यसमानाधिकरणत्व-व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावव्यक्तिभिन्नत्वोभयाभाववद्भावमात्रं विवक्षणीयं, तावतैव तत्तत्साध्यव्यक्त्यभाव-विशिष्टाभावादेर्वारणसम्भवात् तादृशोभयाभाववत्त्वस्य तत्र विरहात् । संयोगी द्रव्यत्वादित्यादौ द्रव्यत्व-गुणसमवेतत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावो व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकसाध्याभावश्च तादृशाभावः सुलभः, कपिसंयोगाभाववान् मत्त्वादिदं वाच्यं ज्ञेयत्वादित्यादिकेवलान्वयिसाध्यके तु व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नाभाव एव तथा । न च केवलान्वयिनि व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नाभावमादायैव प्रसिद्धुपपादने साध्याभावपदेन साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्न-साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिता-

काभाव एव विवक्ष्यतां किं तादृशोभयाभाववदभावविवक्षणेन केवलान्वयिनि च स्वरूपसम्बन्धेन वाच्यत्वत्वेन घटाद्यभावत्वेन तादृशस्य प्रसिद्धत्वादिति वाच्यम् । प्रमेयसाध्यके व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नाभावमादायापि साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्न-साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावप्रसिद्धसम्भवात्, न हि प्रमेयत्वं कस्यचिद्व्यधिकरणधर्मः, प्रमेयत्वेन घटाभावादिरूपसमानाधिकरणधर्मावच्छिन्नाभावे च मानाभावादिति पूर्वपक्षिणां निगूढाभिप्रायः, शेषमनुपद वक्ष्यामः । 'न चैवमिति, 'एवं' स्वव्यधिकरणधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावाभ्युपगमे, 'व्यभिचार इति ज्ञेयत्वस्य वाच्यत्वव्यभिचारित्वमित्यर्थः, वाच्यत्वत्वेन व्यधिकरणधर्मेण स्वरूपसम्बन्धावच्छिन्नज्ञेयत्वाद्यभावस्य साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्न-साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताकस्याधिकरणे घटे ज्ञेयत्वस्य वृत्तेरिति भावः । न च प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिव्यधिकरणतादृशाभाववद्वृत्तित्वमेव व्यभिचारः अन्यथा संयोगसाध्यकसङ्घेतावतिव्याप्तिरिति^(१) कथमियमाशङ्केति वाच्यम् । व्याप्यवृत्तिर्या साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नसाध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावाधिकरणता तदाश्रयवृत्तित्वं व्यभिचार इत्यभिप्रायेणाशङ्कनात्, व्याप्यवृत्तित्वन्तु निरवच्छिन्नत्वं । 'साध्यतेति साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्न-साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताकसाध्याभाववद्वृत्तित्वमित्यर्थः, वाच्यत्वत्वेन व्यधिकरणधर्मेण स्वरूपसम्बन्धावच्छिन्नज्ञेयत्वाद्यभावस्तु साध्य-

(१) व्यभिचारित्वलक्षणस्यातिव्याप्तिरित्यर्थः सङ्घेतोर्यव्यभिचारित्वलक्षणाक्षयत्वादिति भावः ।

तावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताकोऽपि न साध्याभाव इति भावः ।
 'तादृशः' साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्न-साध्यतावच्छेदकावच्छिन्न-
 प्रतियोगिताकः । 'तर्ही'ति साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्न-साध्यता-
 वच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताकसाध्याभाववद्वृत्तित्वस्य व्यभिचारत्वे
 इत्यर्थः, 'तादृशसाध्याभावेति साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्न-साध्य-
 तावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताकसाध्याभाववद्वृत्तित्वाभाव एव व्या-
 प्तिर्न तु निरुक्तोभयाभाववदभाववद्वृत्तित्वरूपेत्यर्थः, अव्यभिचरित-
 त्वपदार्थस्यैव व्याप्तित्वात् अव्यभिचरितत्वपदार्थस्य च व्यभिचरितत्वस्या-
 भावोऽव्यभिचरितत्वमिति व्युत्पत्त्या व्यभिचारसामान्याभावरूपत्वा-
 दिति भावः । 'अप्रसिद्धिरिति, वाच्यत्वत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकवा-
 च्यत्वाभावस्याप्रसिद्धत्वादिति भावः । ननु अव्यभिचरितत्वपदं न यौ-
 गिकं किन्तु निरुक्तोभयाभाववान् योऽभावस्तद्वद्वृत्तित्वरूपे प्राय-
 मिकलक्षणवाक्यार्थे पारिभाषिकमुख्यपदमेव, अथ एतस्याव्यभिच-
 रितत्वपदार्थत्वे असम्भव एव वज्जिमान् धूमादिदं वाच्यं ज्ञेयत्वादि-
 त्यादौ व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकवज्जि-वाच्यत्वाद्यभाव-
 वति पर्वत-घटादौ धूम-ज्ञेयत्वादेर्वृत्तेः । न च तद्वद्वृत्तित्वस्या-
 पि व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नाभाव-विशिष्टाभावोभयाभावादिमादायैव
 सर्वत्र लक्षणसमन्वय इति वाच्यम् । तथा सति धूमवान् वज्जे-
 रित्यादावपि तादृशोभयाभाववदभाववद्वृत्तित्वस्य व्यधिकरण-
 धर्मावच्छिन्नाभाव-विशिष्टाभावोभयाभावादेः^(१) वज्जादौ सत्त्वा-

(१) व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नाभाव-तत्तद्वृत्तित्वावच्छिन्नाभाव-विशिष्टा-
 भावोभयाभावादेरिति ख० ।

द्व्यभिचारिमात्रेऽतिव्याप्तेरिति चेत् । न । तद्वदवृत्तित्वपदेन तद्वन्निष्ठ-
तत्सजातीयव्याप्यवृत्त्यभावप्रतियोगित्वस्य विवक्षणात्, इत्थञ्च वक्त्रि-
मान् धूमादित्यादौ व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नवज्ज्ञाद्यभाववति पर्व-
तादौ तत्सजातीयस्य धूमादेर्व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नाभावस्य सत्त्वा-
न्नासम्भवः, धूमवान् वक्त्रेरित्यादौ च तादृशोभयाभाववदभा-
वोव्यभिचारनिरूपकतत्तदधिकरणव्यक्त्यवृत्तित्वावच्छिन्नप्रतियोगिता-
कतत्तदधिकरणव्यक्त्यवृत्त्यभावः तदधिकरणे तत्तदधिकरणव्यक्तौ
तत्तत्सजातीयस्य वज्ज्ञादेरभावस्यासत्त्वान्नातिव्याप्तिः । साजात्यञ्च न
यथाकथञ्चिद्रूपेण व्यावर्त्तकत्वाभावात्, नापि स्वसमानाधिकरणध-
र्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्व-स्वासमानाधिकरणधर्मावच्छिन्नप्रतियो-
गिताकत्वान्यतरूपेण अभावभेदेन प्रतियोगिताया भिन्नत्वात्
साध्याभावनिष्ठसमानाधिकरणधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वादेर्हेतु-
भावावृत्तित्वादसम्भावापत्तेः, किन्तु स्वव्यधिकरणधर्मावच्छिन्नप्रति-
योगिताकान्यतमत्व-स्वव्यधिकरणधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदकूट-
वत्त्वान्यतरूपेण^(१), स्वपदद्वयं प्रतियोगितापरं, धूमवान् वक्त्रे-
रित्यादौ व्यभिचारनिरूपकतत्तदधिकरणव्यक्त्यवृत्तिसामान्याभा-
वाधिकरणे तत्तदधिकरणव्यक्तावपि तत्तत्सजातीयस्य वज्ज्ञादेर्वैशिष्ट्य-
व्यासज्यवृत्तिधर्मावच्छिन्नाभावस्य समवायादिसम्बन्धावच्छिन्नाभावस्य
च सत्त्वादतिव्याप्तितादवस्थ्यमतो व्याप्यवृत्तित्वमभावविशेषणं, व्याप्य-

(१) 'स्वव्यधिकरणधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदकूटवत्त्वं' स्वव्यधिकर-
णधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकोयोयोऽभावस्तत्तद्व्यक्तित्वावच्छिन्नप्रतियोगि-
ताकभेदकूटवत्त्वमित्यर्थः ।

वृत्तित्वञ्च हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेन हेतुतावच्छेदकावच्छिन्नसमानाधि-
करणत्व-व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नाभावव्यक्तिभिन्नलोभयाभाववत्त्वं तेन
न तद्दोषतादवस्थं । द्रव्यं संयोगादित्याद्यव्याप्यवृत्तिहेतुके द्रव्यमात्र-
समवेताभाव-गुण-कर्माद्यवृत्त्यभावादेरन्ततः सर्वत्र विशेषणताविशेषेण
साध्यप्रकारकप्रमाविशेष्यत्व-साधनान्यतराभावादेश्च तादृशस्य सुल-
भत्वान्नाव्याप्तिः । इदं वाच्यं प्रमेयादित्यादौ घटत्वेन पटाभाव-पट-
त्वेन घटाभावादिमादाय प्रमेयमात्रस्यैव तादृशाभावप्रतियोगित्वान्ना-
व्याप्तिः । न च विशिष्टाभावादिवारणाय तद्वन्निष्ठतत्सजातीयभाव-
निरूपितहेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगितावच्छेदकहेतुता-
वच्छेदकवत्त्वमेव विवक्ष्यतां किं यथोक्तव्याप्यवृत्तित्वेनाभावविशेषणेन
इदं वाच्यं ज्ञेयत्वादिकेवलान्वयिहेतुके च ज्ञेयत्वत्वादिना घटाद्य-
भावमादायैव लक्षणसम्भवादिति वाच्यं । पृथिवी संयोगादित्याद्यव्या-
प्यवृत्तिहेतुके व्यभिचारिण्यतिव्याप्तेः इदं वाच्यं प्रमेयादित्यादौ तादृ-
शाभावाप्रसिद्धेश्च । एवं द्रव्यं सत्त्वादित्यादौ व्यभिचारनिरूपकतत्तद-
धिकरणवृत्तिसामान्याभावस्यापि सजातीयोऽभावः सत्तात्वादिना
सत्ताद्यभाव एव तत्प्रतियोगित्वस्य सत्त्वादौ सत्तादतिव्याप्तिताद-
वस्थं अतस्तद्वन्निष्ठेति । न च तथापि धूमवान् वक्त्रेरित्यादौ तादृ-
शोभयाभाववदभावो धूमत्वादिना धूमाद्यभाव एव तद्वति जलहृदादौ
तत्सजातीयस्य वज्रभावस्य सत्त्वादेवं तादृशाभावो द्रव्यत्वत्वादिना
धूमाद्यभावः तद्वति यावत्येव तत्सजातीयस्य वज्रादेर्व्यधिकरणधर्मा-
वच्छिन्नाभावस्य सत्त्वाच्चातिव्याप्तिरिति वाच्यम् । यावत्त्वेन प्रथमा-
भावविशेषणात्, तथाच तत्तदयोगोलकादिरूपव्यभिचारस्य लावृत्त्य-

भावोऽपि तादृशोभयाभाववत्तया यावदन्तर्गतस्तत्तदधिकरणे तत्त-
 दयोगोलकादौ तत्तत्सजातीयस्य वज्रादेरभावस्यासत्त्वान्नातिव्याप्तिः,
 इत्यञ्च यावन्तस्तादृशोभयाभाववन्तोऽभावाः प्रत्येकं तत्तद्व्यक्तीनां
 सजातीयस्य समानाधिकरणस्य व्याप्यवृत्तेरभावस्य प्रतियोगित्वम-
 व्यभिचारित्वमिति समुदितार्थनिष्कर्ष इति न कोऽपि दोषः इत्य-
 स्वरसा दाह, 'प्रतियोग्यवृत्तिश्चेति तदवृत्तिधर्मा न तन्निष्ठप्रतियो-
 गिताया अवच्छेदक इत्यर्थः, तथाच व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नप्र-
 तियोगिताकाभावस्यैवाप्रसिद्धत्वाद्यथोक्तमव्यभिचारित्वमप्रसिद्धमिति
 भावः ।

अजवस्तु केवलान्वयिनि साध्यस्याभाव एवाप्रसिद्ध इत्यव्याप्ति-
 रभिहितेति भ्रमेण तत्र यथाकथञ्चिद्रूपेण साध्याभावस्य प्रसिद्धिं
 दर्शयति, 'अथेति, 'समवायितयेति समवायित्वादिरूपेण वाच्य-
 त्वावृत्तिधर्मेणेत्यर्थः । आदिपदात्ममेतत्त्व-घटत्व-पटत्वादेर्वाच्यत्वा-
 वृत्तिधर्ममात्रस्य परिग्रहः । इदमुपलक्षणं वैशिष्ट्य-व्यासज्यवृत्ति-
 धर्मावच्छिन्नवाच्यत्वाभावोऽपि द्रष्टव्यः । भ्रमं निराकृत्य दूषयति,
 'तर्हीति साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताकसाध्याभाववद्वृत्तित्वं
 यदि व्यभिचारस्तदेत्यर्थः, 'तादृशसाध्याभावेति साध्यतावच्छेदकाव-
 च्छिन्नप्रतियोगिताकसाध्याभाववद्वृत्तित्वत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकता-
 दृशवृत्तित्वाभाव एव व्याप्तिः न तु साध्याभाववद्वृत्तित्वप्रतियोगिता-
 काभावमात्रमित्यर्थः साध्याभाववद्वृत्तित्वमात्रस्य व्यभिचारत्वे सङ्केता-
 वतिय्याप्तिरतः साध्याभाववद्वृत्तित्वप्रतियोगिताकाभावमात्रस्य व्याप्ति-
 त्वेऽपि व्यभिचारिण्यतिव्याप्यापत्तेस्तौल्यात्साध्याभाववद्वृत्तित्वसामा-

न्याभावस्य व्याप्तित्वे चासम्भवात् व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नस्य वैशिष्ट्य-
व्यासज्यवृत्तिधर्मावच्छिन्नस्य च साध्याभावस्याधिकरणे हेतोर्वृत्तेरिति
भावः । किञ्च वैशिष्ट्य-व्यासज्यवृत्तिधर्मावच्छिन्नसाध्याभावमादायैव
केवलान्वयिनि साध्याभावप्रसिद्धिसम्भवेऽपि व्यधिकरणधर्मावच्छिन्न-
साध्याभावमादाय प्रसिद्ध्यभिधानमत्यन्तमसङ्गतमेव तस्यैवाप्रसिद्ध-
त्वादित्यभिप्रायेण दूषणान्तरमाह, 'प्रतियोग्यवृत्तिश्चेति, सर्व्वमन्यत्पू-
र्व्ववदित्याहुः ।

तदवृत्तिधर्मस्य तन्निष्ठप्रतियोगितावच्छेदकत्वे मानाभावे हेतु-
माह, 'तद्विशिष्टेति 'असिद्धेरित्यन्तमेकोग्रन्थः, 'तद्विशिष्टज्ञानस्य' प्र-
तियोगिनि प्रतियोगितावच्छेदकप्रकारकज्ञानस्य, 'अभावधीहेतुत्वात्'
अभावलौकिकप्रत्यक्षहेतुत्वात्, 'गवि शशशृङ्गं नास्तीति प्रतीतेरसिद्धे-
रिति योजना, तव नयेऽपि शशीयत्वे गोवृत्तिशृङ्गाभावप्रतियोगिता-
वच्छेदकत्वप्रत्ययासिद्धेरित्यर्थः^(१), शृङ्गे शशीयत्वस्य बाधितत्वेन शशी-
यत्वप्रकारकशृङ्गज्ञानासम्भवादन्वया अन्यथाख्यात्यापत्तेरिति भावः ।
ननु अभावलौकिकप्रत्यक्षं प्रति प्रतियोगितावच्छेदकप्रकारकप्रतियो-
गिज्ञानत्वेन न हेतुत्वं किन्तु प्रतियोगितावच्छेदक-प्रतियोगिनोज्ञान-
विरहदशायां नेत्याकारकाभावप्रत्यक्षवारणाय प्रतियोगितावच्छेदक-
प्रतियोग्यभयविषयकज्ञानत्वेनैव हेतुत्वं लाघवात् तच्च प्रकृतेऽप्यस्ति
शशीयत्व-शृङ्गयोरपि खण्डशः समूहालम्बनज्ञानसम्भवात् । न च
तथापि शृङ्गे शशीयत्वस्य बाधादेव शशशृङ्गं नास्तीति प्रत्यक्षस्य

(१) गोवृत्तिशृङ्गाभावप्रतियोगितावच्छेदकत्वप्रत्यक्षासिद्धेरित्यर्थ इति
ख०, ग० ।

गृह्णे शशीयत्वप्रकारकस्य असम्भव इति वाच्यम् । बाधात्तादृश-
 प्रत्यक्षासम्भवेऽपि शशीयत्वेन गृह्णं नास्तीत्याकारकप्रत्यक्षे स्वावच्छि-
 न्नप्रतियोगिताकत्वसम्बन्धेनाभावे स्वातन्त्र्येण शशीयत्वप्रकारत्वे बाध-
 काभावात् तत्र गृह्णे शशीयत्वस्याप्रकारत्वात् । न च तादृशप्रत्यया-
 भ्युपगमे “अभावप्रत्ययो हि विशिष्टवैशिष्ट्यबोधमर्थ्यादां नातिशेते”
 इति सिद्धान्तव्याघातः, ‘अभावप्रत्ययः’ अभावलौकिकसाक्षात्कारः,
 ‘विशिष्टवैशिष्ट्यमर्थ्यादां’ अभावे प्रतियोगितावच्छेदकविशिष्टप्रतियो-
 गिनः प्रतियोगिताख्यवैशिष्ट्यविषयितां, ‘नातिशेते’ न जहाति, इति
 तदर्थ्यादिति वाच्यम् । तत्र ‘विशिष्टवैशिष्ट्यमर्थ्यादामित्यस्य प्रति-
 योगितायां यत्किञ्चिद्धर्माविशिष्टस्य वैशिष्ट्यविषयितामित्यर्थादित्यत-
 आह, ‘अन्यथेति यदि प्रतियोगितावच्छेदक-प्रतियोगिनोर्ज्ञानमेवा-
 भावप्रत्यक्षहेतुर्न तु तत्प्रकारकप्रतियोगिज्ञानं तदेत्यर्थः, ‘निर्विकल्प-
 कादपौति घट-घटत्वयोर्निर्विकल्पकमात्रानन्तरमपौत्यर्थः, मात्रपदा-
 द्धर्मान्तरप्रकारकज्ञानव्यवच्छेदः, ‘घटोनास्तीतीति विशेषणतावच्छेद-
 कप्रकारकविशेषणज्ञानस्य विशिष्टवैशिष्ट्यधीहेतुतया विशिष्टवैशिष्ट्य-
 बोधात्मकस्य घटोनास्तीति प्रत्यक्षस्य तदानीमसम्भवेऽपि केवलविशिष्टे
 विशेषणमिति न्यायेन घटोनास्तीति प्रत्यक्षस्थापत्तेरित्यर्थः, न हि
 “अभावप्रत्ययोहीतिसिद्धान्तचतिमिया सामग्री कार्यं नार्ज्येत्,
 प्रतियोगितावच्छेदकप्रकारकज्ञानस्य हेतुत्वे तदभावादेव तदानीं न
 तादृशं प्रत्यक्षं तत्सत्त्वस्थले तु विशिष्टवैशिष्ट्यधीसामग्रीसत्त्वादर्थसमाज-
 सिद्धमेव विशिष्टवैशिष्ट्यबोधात्मकत्वं । न चैतदतिप्रसङ्गवारणाय प्रति-
 योगितावच्छेदकप्रकारकज्ञानत्वेनैव हेतुत्वमसु लाघवात् किं प्रति-

योगिविशेष्यकत्वप्रवेशेन, तादृशञ्च ज्ञानं प्रकृतेऽपि सम्भवति शशी-
यत्वप्रकारेण लोमादेरेव ज्ञानसत्त्वात् पूर्वपक्षिणः अन्यथाख्या-
त्यनभ्युपगमेन रजतत्वप्रकारकशक्तिज्ञानाद्रजताभावप्रत्यक्षापादनस्या-
सम्भवादिति वाच्यम् । तथापि शशीयत्वेन गृह्यं नास्तीति प्रत्यक्षा-
सम्भवात् अभावसाक्षात्कारोहि प्रतियोगिनि तद्धर्मविशिष्टमवगाह-
मान एव तद्धर्मस्य अवच्छेदकत्वमवगाहते नान्यथेति नियमात्,
अन्यथाख्यात्यनभ्युपगमेन गृह्ये शशीयत्ववैशिष्ट्यावगाहनस्य च अस-
म्भवादिति भावः । इदमापाततः न्यायनये गृह्ये शशीयत्वस्य बाधि-
तत्वेऽपि बाधाप्रतिसन्धानदशायां गृह्ये शशीयत्वप्रकारकज्ञानस्य
भ्रमरूपस्यैव सम्भवेन शशगृह्यं नास्तीत्याकारकप्रत्यक्षे बाधकाभावात् ।
बाधप्रतिसन्धानदशायामपि शशीयत्वांगे निर्धर्मितावच्छेदकादेकत्र
द्वयमिति न्यायेन शशीयत्व-गृह्यत्वोभयप्रकारकज्ञानाच्छशीयत्वांगे
निर्धर्मितावच्छेदकस्य एकत्र द्वयमिति न्यायेन शशीयत्व-गृह्यत्वोभय-
विशिष्टवैशिष्ट्यबोधात्मकस्य शशगृह्यं नास्तीति प्रत्यक्षस्य सम्भवाच्च ।
न हि प्रतियोगितावच्छेदकप्रकारकप्रतियोगिप्रमात्वेन हेतुत्वं, गौर-
वात् किन्तु तादृशनिश्चयत्वेन । एतेन गृह्ये न शशीयत्वमिति
बाधनिश्चये सत्यपि शशगृह्यं नास्तीति प्रतीतेरनुभवसिद्धतया शशी-
यत्वरूपव्यधिकरणधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावे शशीयत्वावच्छि-
न्नप्रतियोगिताकत्वसम्बन्धेन शशीयत्वेन रूपेण गृह्यं नात्र प्रकारः
किन्तु शशे गोवृत्तिगृह्यभावः गोवृत्तिगृह्ये शशीयत्वाभावो वा तद्वि-
षयः । न च बाधप्रतिसन्धानदशायां तथाविषयत्वेऽपि तदप्रति-
सन्धानदशायां शशीयत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकगृह्यभाव एव य-

प्रतियोग्यारोपस्य कारणत्वे हि गुणादौ गुणद्यन्यत्वविशिष्टमत्वाद्य-
भावप्रत्ययो न स्यात् तत्प्रतियोगिनः सत्त्वादेरारोपाभावात् किन्तु
प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताकप्रतियोग्यभाववति प्रति-
योगितावच्छेदकप्रकारकप्रतियोगिज्ञानं प्रतियोग्यारोपः स एव
कारणं तच्च प्रकृतेऽपि अक्षतमेव शशीयत्वावच्छिन्नशृङ्गाभाववति
गवि शशीयत्वप्रकारकशृङ्गप्रतीतेः सम्भवात् । अपि चैवमपि
गवि शशशृङ्गं नास्तीतिप्रत्ययो नास्तु अथे शशशृङ्गं नास्तीति
प्रतीतौ न कोपि विरोधः । तत्र शृङ्गारोपस्यापि सम्भवात् अस्यैव
व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नाभावे प्रमाणत्वस्य सुवचत्वादिति कृतं पक्ष-
वितेन ।

ननु व्यधिकरणधर्मस्य प्रतियोगितावच्छेदकत्वानभ्युपगमे शश-
शृङ्गं नास्तीत्यादौ कौटुशान्वयबोधः । शशीयत्व-शृङ्गत्वोभय-
त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वस्याप्रसिद्धतया तेन सम्बन्धेन अभावे
शशीयत्वावच्छिन्नशृङ्गप्रकारकान्वयबोधस्य शशीयत्वांशे भ्रमात्मकस्या-
सम्भवात् । न च प्रतियोगितामात्रसम्बन्धेनाभावे शशीयत्वावच्छिन्न-
शृङ्गस्थान्वयः तादृशव्यवहारस्य सार्वत्रिकत्वेनातिप्रसङ्गविरहादिति
वाच्यं । नञाद्यर्थेऽभावेऽन्वयितावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वस-
म्बन्धेनैव प्रतियोगिनोऽन्वयस्य व्युत्पन्नत्वादित्यत आह, 'शशेति, 'इति
चेति इत्यस्य चेत्यर्थः, गवि शशशृङ्गं नास्तीत्यादौ च गोवृत्तिशृङ्गं
शशीयत्वाभाववत् शशीयत्वं गोवृत्तिशृङ्गवृत्तित्वाभाववदिति वार्थः^(१) ।

(१) शशशृङ्गं गोवृत्तित्वाभाववदित्याद्यन्वयबोध इति ख० ।

इदमापाततः शशशृङ्गं नास्तीत्यादिवाक्यश्रवणानन्तरं शशः शृङ्ग-
वान् शृङ्गाभावो न शशवृत्तिरित्यादिभ्रमानुदयापत्तेः । एतेन शृङ्गं
शशीयत्वाभाववत् इत्यपि नार्थः, तादृशवाक्यश्रवणानन्तरं शृङ्गं
शशीयमितिभ्रमानुपपत्तेः । वस्तुतस्तु नञाद्यर्थेऽभावे प्रतियोगिनो-
ऽन्वये अन्वयितावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वं विशिष्टधर्मः संसर्ग-
इति न व्युत्पत्तिः, किन्तु परस्परविशेष्य-विशेषणभावेनान्वयिताव-
च्छेदकमवच्छिन्नत्वं स्वनिष्ठप्रतियोगिता चेति त्रयं संसर्ग इत्येव
व्युत्पत्तिः, तथाच प्रकृते शशीयत्वस्य शृङ्गत्वस्यावच्छिन्नत्वस्य शृङ्ग-
निष्ठप्रतियोगित्वस्य च खण्डशः प्रसिद्धत्वात् परस्परविशेष्य-विशेषण-
भावेन तच्चतुष्टयसंसर्गकः संसर्गांशे भ्रमात्मकोऽभावे शशीयत्वावच्छि-
न्नशृङ्गप्रकारकान्वयबोधः । एवं पीतः शङ्खो नास्तीत्यादावपि, अत-
एव गुरुधर्मस्य प्रतियोगितानवच्छेदकत्वनयेऽपि कम्बुग्रीवादिमान्ना-
स्तीत्यादिबुद्धौ नान्वयबोधानुपपत्तिः कम्बुग्रीवादिमत्त्वस्यावच्छिन्नत्वस्य
कम्बुग्रीवादिमद्भूतिनिष्ठप्रतियोगित्वस्य च खण्डशः प्रसिद्धत्वात् परस्परं
विशेष्य-विशेषणभावेन^(१) एतत्तितयसंसर्गकस्य संसर्गांशे भ्रमात्मकस्यैव
कम्बुग्रीवादिमद्भूतिप्रकारकाभावविशिष्यकान्वयबोधस्य सम्भवात् ।
शशशृङ्गवत्पीतशङ्खवदित्यादिविशिष्टबुद्धिं प्रति प्रतिबन्धकत्वमपि
परस्परविशेष्य-विशेषणभावेन तादृशचतुष्टयसंसर्गस्याभावे शशीयत्व-
पीतत्वाद्यवच्छिन्नशृङ्ग-शङ्खादिप्रकारकस्य निश्चयस्यैवेति तत्त्वं ।

केचित्तु अन्वयितावच्छेदकमवच्छिन्नत्वं स्वनिष्ठप्रतियोगित्वञ्चेति

अयं खण्डगः संसर्गः सम्बन्धता च व्याख्ययत्तिरित्येव व्युत्पत्तिरिति
न कायनुपपत्तिरित्याहुः ।

इति श्रीमथुरानाथतर्कवागीशविरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये
अनुमानाख्यद्वितीयखण्डे व्याप्तिवादे व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नाभाव-
रहस्यं ।

अथ पूर्वपक्षः ।



अथ साध्यासामानाधिकरण्यानधिकरणत्वे सति साधिकरणत्वं व्याप्तिः केवलान्वयिनि साध्यासामानाधिकरण्यं निरधिकरणे आकाशादौ प्रसिद्धमिति चेत् ।

अथ पूर्वपक्षरहस्यं ।

केषाञ्चिल्लक्षणं दूषयितुमाशङ्कते^(१), 'अथेति, ननु किमिह असामानाधिकरणं तदधिकरणवृत्तित्वाभावः तदनधिकरणवृत्तित्वम् वा, आद्ये व्यभिचारिण्यतिव्याप्तिः साध्यसमानाधिकरणत्वे सतीत्यस्यैव सम्यक्त्वे अभावदयघटनायां गौरवं 'साधिकरणत्वमित्यस्य वैयर्थ्यञ्च । द्वितीये समवायादिना आकाशादिहेतुके वन्निमानाकाशादित्यादावतिव्याप्तिवारणाय हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेन सम्बन्धित्वार्थकस्य साधिकरणपदस्य सार्थकत्वेऽपि केवलान्वयिन्यव्याप्तिः 'केवलान्वयिनि साध्यासामानाधिकरणं हि निरधिकरणे आकाशादौ प्रसिद्धमिति मूलविरोधश्च । मैवं 'साध्यासामानाधिकरणेत्यत्र साध्यस्यासामानाधिकरणं येषु तानि साध्यासामानाधिकरणानीति बद्धब्रूहिः तेषामनधिकरणत्वं तदभाववत्त्वं तस्मिन् सति साधिकरणत्वं तदवच्छिन्नाधिकरणताकत्वं सतिसप्तम्या अवच्छेदकत्वबोध-

(१) केषाञ्चिल्लक्षणमाशङ्कते इति ख० ग० ।

न । साध्यासामानाधिकरण्यं हि न साध्यानधिकरणा-
धिकरणत्वं साध्याधिकरणानधिकरणत्वं वा केवलान्व-
यिनि यत्किञ्चित्साध्याधिकरणानधिकरणे धूमे चा-

नात् अवच्छेदकत्वञ्चात्रान्यूनवृत्तित्वं तथाच साध्यवदवृत्तिसकलपदा-
र्थाभाववत्त्वं यदधिकरणताया अन्यूनवृत्ति तत्त्वमित्यर्थः, यत्पदं हेतु-
परं, अन्यूनवृत्तित्वं व्यापकत्वं, तच्च तत्समानाधिकरणान्योन्याभावप्रति-
योगितानवच्छेदकत्वं, अभावस्य साध्यवदवृत्तित्वावच्छिन्नप्रतियोगिता-
कोबोध्यः तेन वैशिष्ट्य-व्यासज्यवृत्तिधर्मावच्छिन्नाभावं जलादिलक्ष-
णतादृशतत्त्वत्यदार्थविशेषाभावञ्चादाय नातिव्याप्तिः । हेत्वधिकरणता
च हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेन बोध्या तेन धूमावयवादिमादाय नाव्याप्तिः ।
न च यस्यान्यूनवृत्ति तत्त्वमित्येवमेवास्तु किमधिकरणताप्रवेशेनेति
वाच्यं । यथा सन्निवेशे वैयर्थ्याभावात् । न च द्रव्यं सत्तादित्या-
दावतिव्याप्तिः वृत्तिसन्मात्रस्यैव कालिक-दैशिकविशेषणताभ्यां
साध्यवत्सहाकाल-दिगादिवृत्तित्वेन द्रव्यत्ववदवृत्तिरवृत्तिरेव^(१)
तदभावस्य सत्ताधिकरणताव्यापकत्वात् । यदि चावृत्तेरपि काल-
दिग्वृत्तित्वं तदा द्रव्यं पृथिवीत्वादित्यादावव्याप्तिः द्रव्यत्ववदवृत्तेर-
प्रसिद्धेरिति वाच्यं । विशेषणताविशेषेण साध्यवदवृत्तीनां विशेष-
णताविशेषेणभावस्य विवक्षितत्वात् एतच्चानुगतमपीति दिक् ।

ननु केवलान्वयिनि साध्यवदवृत्तित्वं कुत्र प्रसिद्धमित्यत आह,

(१) द्रव्यत्ववदवृत्तित्वेन तदवृत्तिरवृत्तिरेवेति ग० ।

व्याप्तेः । नापि स्वसमानाधिकरणात्यन्ताभावाप्रति-
योगिसाध्यसामानाधिकरण्यं पर्वतीयवद्भेदमहानसीय-
धूमसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगित्वात् द्रव्यत्वा-
देरव्याप्यवृत्त्यव्याप्यतापत्तेश्च । न च प्रतियोगिविरो-

‘केवलान्वयिनीति यथाश्रुतं, यथासम्भवं विकल्प्य दूषयति, ‘साध्या-
सामानाधिकरण्यं हीति, ‘साध्यानधिकरणाधिकरणत्वं’ साध्यानधि-
करणवृत्तित्वं, ‘साध्याधिकरणनधिकरणत्वं’ साध्याधिकरणवृत्तित्वा-
भावः, ‘केवलान्वयिनीति आद्ये इत्यर्थः, साध्यानधिकरणस्याप्रसिद्धेरि-
त्यर्थः । द्वितीये त्वाह, ‘यत्किञ्चिदिति साध्याधिकरणविशेषणमेतत्,
‘अनधिकरणे’ वृत्तित्वाभाववति, साध्याधिकरणवृत्तित्वसामान्याभा-
वोक्तौ च द्रव्यं सत्त्वादित्यादावतिव्याप्तिरिति भावः । प्रकारान्तरेणा-
व्यभिचारित्वमाशङ्क्य निराकरोति, ‘नापीति, ‘स्वं’ साधनं, एवञ्च
केवलान्वयिन्यपि नाव्याप्तिः ज्ञेयत्वादिसमानाधिकरणघटाभावादिप्र-
तियोगित्वाभावस्य वाच्यत्वादौ सत्त्वादिति भावः । ‘पर्वतीयवद्भेदिरिति,
एवं महानसीयवद्भेदः^(१) पर्वतीयधूमसमानाधिकरणभावप्रतियोगि-
त्वात् कुत्रापि वक्तुं न तादृशाभावाप्रतियोगित्वमित्यर्थः । नन्वप्रति-
योगिपदेन प्रतियोगितानवच्छेदकसाध्यतावच्छेदकावच्छिन्नं वक्तव्य-
मित्यस्वरसादाह, ‘द्रव्यत्वादेरिति, ‘अव्याप्यवृत्तीति संयोगादौत्यर्थः,
‘प्रतियोगिविरोधित्वमिति प्रतियोग्यधिकरणवृत्तित्वमित्यर्थः, प्रति-
योग्यनधिकरणवृत्तित्वोक्तौ उक्ताव्याप्तितादवस्थ्यात् अग्रे संयोगी

धित्वं व्याप्यवृत्तित्वं वा अभावविशेषणं देयं, संयोगादौ साध्ये सत्त्वादेरनैकान्तिकत्वाभावप्रसङ्गात् । न हि प्रतियोगिविरोधी संयोगादेरपरोऽत्यन्ताभावाऽस्ति, अधिकरणभेदेनाभावभेदाभावात् । नापि साधनवन्निष्ठान्योन्याभावाप्रतियोगिसाध्यवत्कत्वं व्याप्तिः मूले

सत्त्वादित्यत्रातिव्याप्यभिधानासङ्गतेष्व । 'व्याप्येति स्वसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगितानवच्छेदको य एकव्यक्तिमात्रवृत्तिधर्मस्तद्वत् व्याप्यवृत्तित्वं, प्रमेयत्वादिमादाय संयोगाभावादेरपि व्याप्यवृत्तित्ववारणाय एकव्यक्तिमात्रवृत्तीति, कालिकविशेषणत्व-दैशिकविशेषणताविशेषातिरिक्तसम्बन्धेनावच्छिन्नवृत्तिको यस्तदन्यत्वं वा व्याप्यवृत्तित्वं^(१) व्यतिरेकिधर्ममात्रस्यैव काले दिगुपाधौ चाव्याप्यवृत्तितया अवच्छिन्नवृत्तिकत्वात् तृतीयान्तं वृत्तिविशेषणं, व्याप्यवृत्तिश्च न किञ्चिदवच्छिन्ना, न तु अनवच्छिन्नवृत्तिमत्त्वं^(२) व्याप्यवृत्तित्वं उक्ताव्याप्तेस्तादवस्थात् अग्रे संयोगी सत्त्वादित्यत्रातिव्याप्यभिधानासङ्गतेष्व संयोगाभावस्यापि गुणादौ निरवच्छिन्नवृत्तिमत्त्वात् ।

केचित्तु स्वसमानाधिकरणात्यन्ताभावाप्रतियोगित्वं व्याप्यवृत्तित्वं, प्रतियोगिता च वैशिष्ट्य-व्यासज्यवृत्तिधर्मानवच्छिन्नत्वेन विशेषणीया तेन नाप्रसिद्धिरित्याहुः ।

(१) अत्र दैशिकविशेषणतापदेन दिक्कृतविशेषणता ग्राह्या ।

(२) निरवच्छिन्नवृत्तिमत्त्वमिति ख० ।

वृक्षः कपिसंयोगवान्नेत्यबाधितप्रतीतेः तदन्योन्याभाव-
स्यापि तत्र सत्त्वात् । न चैवं भेदाभेदः, अवच्छेदकभेदेन

‘अनैकान्तिकत्वेति व्यभिचरितत्वेत्यर्थः, सत्तासमानाधिकरण-
संयोगादेरभावः प्रतियोग्यसमानाधिकरणो व्याप्यवृत्तिश्च न भवत्येव
द्रव्ये तस्य संयोगसमानाधिकरणत्वात् किन्तु घटत्वादेरभाव एव
तादृशस्तदप्रतियोगित्वात् संयोगस्येति भावः । ननु सत्ताधिकरण-
गुणादिनिष्ठसंयोगाभावो द्रव्यवृत्तिसंयोगाभावादतिरिक्तः स च
प्रतियोग्यसमानाधिकरणो व्याप्यवृत्तिश्च तत्प्रतियोगित्वात् संयोगस्य
नातिव्याप्तिरित्यत आह, ‘न हीति, ‘अधिकरणेति, गौरवात्
मानाभावाच्चेति भावः । स्वाधिकरणे निरवच्छिन्नवृत्तिमत्त्वं यदि
स्वसमानाधिकरणत्वमुच्यते तदा तु न कोऽपि दोष इत्यवधेयं । ‘तद-
न्योन्याभावस्य’ कपिसंयोगवदन्योन्याभावस्य, ‘तत्र’ वृक्षे, तथाच कपि-
संयोगी एतद्वृक्षत्वादित्यादावव्याप्तिरिति भावः, ‘भेदाभेद इति भेद-
सहितोऽभेद इत्यर्थः, मध्यपदलोपिसमासात्, साहित्यं सामानाधि-
करणं । यद्वा ‘न चैवमित्यनन्तरं वृक्ष इतिशेषः, ‘भेदाभेद इत्यत्र भेदा-
भेदौ अस्य स्तः इत्यर्थः, “अ-इकौ मत्वर्थे” इत्यनेनाप्रत्ययः, यथा
वैजयन्ती अस्मिन् तिष्ठतीति वैजयन्तो विष्णुः, ‘वैजयन्ती’ वनमाला,
तथाच वृक्षो भेदाभेदवान् इत्यर्थः । ‘तत्सत्त्वेति तयोरेकत्र सत्त्वेत्यर्थः ।
किञ्च तत्रेत्यादौ चादिप्रत्ययेन सप्तम्यादिरिव साधनसमानाधिकर-
णान्योन्याभावाप्रतियोगिसाध्यवत्त्वमित्यत्र वङ्गव्रीह्युत्तरककारेण
मतुप्प्रत्ययादिः स्मर्यते तेन च व्याप्यत्वरूपसम्बन्धाश्रयः साध्यव्या-

तत्सत्त्वाभ्युपगमात् साधनवन्निष्ठान्योन्याभावाप्रति-
 योगि साध्यवद्यस्येति षष्ठ्यर्थव्याप्य-व्यापकभावानिरू-
 पणात् साध्य-साधनयोर्व्याप्तिनिरूप्यत्वात् वह्निमत्यर्व्व-
 तस्य धूमवन्महानसनिष्ठान्योन्याभावप्रतियोगित्वाच्च

प्यत्वरूपसम्बन्धाश्रयो वा स्मर्यते, विग्रहवाक्यस्य षष्ठ्या अर्थवतो वज्र-
 ब्रीह्युत्तरककारस्मारितमतुवाद्यर्थत्वनियमात् तत्र प्रथमे तदेकदेशे
 व्याप्यत्वे निरूपितत्वसम्बन्धेन साध्यवतोऽन्वयः, द्वितीये तदेकदेशे साध्ये
 आधेयतासम्बन्धेन साध्यवतोऽन्वयः, तथाच साधनसमानाधिकरणा-
 न्योन्याभावाप्रतियोगिसाध्यवन्निरूपितव्याप्यत्वं साधनसमानाधिक-
 रणान्योन्याभावाप्रतियोगिसाध्यवद्वृत्तिसाध्यव्याप्यत्वं वा लक्षणवाक्यार्थः,
 स च दुर्ज्ञेयः घटकीभूतव्याप्यत्वस्यैवाज्ञानादित्याह, 'साधनेति, 'इति-
 षष्ठ्यर्थेति इत्यत्र विग्रहवाक्ये या षष्ठी तदर्थस्य व्याप्यत्वस्याज्ञानादित्यर्थः,
 तथाच तदज्ञाने तद्वत् एव प्रकृतलक्षणवाक्यस्य ककारस्मारितमतुवा-
 द्यर्थत्वनियमेन प्रकृतलक्षणवाक्यार्थस्यापि दुर्ज्ञेयत्वमिति भावः। ननु
 विग्रहवाक्यस्य षष्ठ्याः संयोगत्वादिरूपेण संयोगादिरूपहेतुतावच्छेदक-
 सम्बन्ध एवार्थो न तु व्याप्यत्वादिरित्यस्वरसादाह, 'साध्य-साधनयोरिति
 भावप्रधानो निर्देशः साध्यत्व-साधनत्वयोरित्यर्थः, 'व्याप्तिनिरूप्यत्वादिति
 व्याप्तिज्ञानाधीनज्ञानविषयत्वादित्यर्थः। साध्यत्वं हि व्याप्तिप्रतियो-
 गित्वं, साधनत्वं व्याप्यनुयोगित्वं तथाचात्माश्रय इति भावः। ननु
 साध्यत्वं साधनत्वं न प्रवेशनीयं धूमत्व-वह्नित्वादिनैव विशिष्य व्याप्ति-

विशेषाभावकूटादेवाभावव्यवहारोपपत्तौ सामान्या-
भावे मानाभावात् । नापि साधनसमानाधिकरण-
यावद्धर्म्मनिरूपितवैयधिकरणानधिकरणसाध्यसामा-

निवक्तव्या अतो दूषणान्तरमाह, 'वक्लिमत्पर्व्वतस्येति । ननु यत्समाना-
धिकरणान्योन्याभावप्रतियोगितासामान्यं यद्धर्म्मावच्छिन्नपर्याप्ताव-
च्छेदकताकं न भवति तद्धर्म्मावच्छिन्नेन सह तस्य सामानाधिकरण्य-
मित्येव तस्यार्थः, एवञ्च धूमसमानाधिकरणान्योन्याभावप्रतियोगित्वं न
वक्लिवावच्छिन्नावच्छेद्यमिति नाव्याप्तिरित्यत आह, 'विशेषाभावेति,
'अभावव्यवहारेति हृदो वक्लिसामान्याभाववानित्यादिवक्लिवादि-
सामान्यधर्म्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावप्रकारकप्रतीत्युपपत्तेरित्यर्थः,
'सामान्याभाव इति सामान्याभावस्यातिरिक्तस्य सामान्यावच्छिन्नप्रति-
योगिताकत्वे मानाभावादित्यर्थः^(१) किन्तु विशेषाभावस्यैव वक्लिवादि-
सामान्यधर्म्मः प्रतियोगितावच्छेदकः, तथाच धूमसमानाधिकरणानां
प्रत्येकं तत्तद्वक्लिमदन्योन्याभावानामेव प्रतियोगितावच्छेदको वक्लि-
वावच्छिन्नोवक्लिरित्यव्याप्तिस्तदवस्यैव । न चैवं धूमवान् वक्लिसामा-
न्याभाववान् इत्यादिप्रत्ययस्यापि प्रमात्वापत्तिः वक्लिवावच्छिन्नप्रति-
योगिताकस्य तत्तद्वक्लिभावस्य धूमवति सत्त्वादिति वाच्यं । वक्लिवा-
दिसामान्यधर्म्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वं तादृशप्रतियोगिताकत्वसम्ब-
न्धेन वक्लिवावच्छिन्नो वा व्यासज्यवृत्तिः तच्च विशेषाभावकूट एव पर्या-

(१) विशेषाभावातिरिक्तस्य सामान्यधर्म्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वे
मानाभावादित्यर्थ इति ख० ग० ।

नाधिकरणं साधनसमानाधिकरणस्य प्रमेयत्वादे-
वैयधिकरण्याप्रसिद्धेः महानसादौ समवायितया
वह्नि-वह्निमतोरत्यन्तान्योन्याभावयोः सत्त्वात् धूमा-

प्रोति न तु प्रत्येकाभाव इति, द्रव्यं द्रव्यत्व-गुणत्वोभयवदिति प्रत्यक्ष-
वत्तत्प्रतीतेरप्रमात्वादिति हृदयं । 'साधनेति साधनसमानाधिक-
रणा यावन्तोद्धर्मास्तेषां वैयधिकरणस्थानधिकरणं यत्साध्यं तत्सामा-
नाधिकरणमित्यर्थः । अत्र साधनवैयधिकरणानधिकरणेत्युक्तौ द्रव्यं
सत्त्वादित्यादावतिव्याप्तिरतः 'साधनसमानाधिकरणधर्मेति, धूम-
वान् वक्तेरित्यादावपि धूमादेर्वह्ण्यादिसमानाधिकरणद्रव्यत्वादि-
वैयधिकरणानधिकरणत्वादतिव्याप्तिरतः 'यावदिति, वैयधिकरणञ्च
तदनधिकरणवृत्तित्वं, न तु तदधिकरणवृत्तित्वं, 'प्रमेयत्वादेवैय-
धिकरण्याप्रसिद्धेरित्युत्तरग्रन्थासङ्गतेः । न च साधनसमानाधिकरण-
यावद्धर्माधिकरणप्रसिद्ध्या तदनधिकरणमप्यप्रसिद्धमिति वाच्यं ।
प्रत्येकनिरूपितवैयधिकरणस्योक्तत्वात् । नन्वेवं वक्त्रिमान् धूमादि-
त्यादौ वक्तेर्धूमसमानाधिकरणमहानसत्वाद्यनधिकरणायः पिण्डादि-
वृत्तित्वाधिकरणतया अव्याप्तिः । न च वैयधिकरणपदेन तद-
नधिकरणमात्रवृत्तित्वं वक्तव्यमिति^(१) वाच्यं । रूपवान् पृथिवी-
त्वादित्यादावव्याप्तेः पटरूपस्य पृथिवीत्वसमानाधिकरण्यावद्धर्मा-
न्तर्गतघटत्वानधिकरणमात्रवृत्तित्वात् घटीयरूपस्य पृथिवीत्वसमाना-

(१) तदनधिकरणमात्रवृत्तित्वमुक्तमिति ख० ।

दावप्युक्तलक्षणाभावाच्च । अथानौपाधिकः सम्बन्धो-
व्याप्तिः उपाधिश्च साध्यव्यापकत्वे सति साधनाव्यापकः,
व्यापकत्वन्तु तद्वन्निष्ठात्यन्ताभावाप्रतियोगित्वं, व्यभि-
चारे चावश्यमुपाधिः, प्रतियोगित्वं न विरोधित्वं सहा-

धिकरणयावदन्तर्गतपटत्वानधिकरणमात्रवृत्तित्वादिक्रमेण कस्यापि
रूपस्य साधनसमानाधिकरणयावद्धर्मप्रत्येकनिरूपितवैयधिकरण्या-
नधिकरणत्वाभावात् गुणान्यत्वविशिष्टसत्तावान् जातेरित्यादावति-
व्याप्तेः विशिष्टस्थानतिरिक्तत्वादिति चेत् । न । साधनसमानाधि-
करणा यावन्तो धर्मास्तत्रत्येकानधिकरणमात्रवृत्ति यद्धर्मावच्छि-
न्नाधिकरणत्वं तादृशधर्मभिनं यत्साध्यतावच्छेदकं तदवच्छिन्नसा-
मानाधिकरणस्य विवक्षितत्वादिति दिक् ।

ननु व्यतिरेकित्वेन धर्मो विशेषणीयः, यद्वा यावत्पदं तादृ-
शस्य कस्यापि धर्मस्य अनधिकरणमात्रवृत्तीतिस्फोरणाय, तथाच
साधनसमानाधिकरणयत्किञ्चिद्धर्मानधिकरणमात्रवृत्ति यद्धर्माव-
च्छिन्नाधिकरणत्वं तद्धर्मभिनं यत्साध्यतावच्छेदकं तदवच्छिन्नसा-
मानाधिकरणं इति^(१) पर्यवसितमिति नायं दोष इत्यस्वरसादाह,
'महानसादाविति, 'धूमादावपौति, अत्र तदनधिकरणपदेन तद-

(१) साधनसमानाधिकरणयत्किञ्चिद्धर्माधिकरणवृत्ति यद्यद्धर्माव-
च्छिन्नाधिकरणत्वं तत्तद्धर्मभिनं यत् साध्यतावच्छेदकं तत्तदवच्छिन्न-
सामानाधिकरणमितीति ख० ।

नवस्थाननियमलक्षणं गेत्वाश्वत्वयोरतथात्वात् अन्यो-
न्याभावप्रतियोगिन्यसत्त्वाच्च । किन्तु यथाधिकरणा-
भावयोः स्वरूपविशेषः सम्बन्धः तथा प्रतियोगित्वमनु-

भावाधिकरणं तद्विन्नत्वञ्च वक्तव्यमुभयथापि धूमसमानाधिकरण-
यत्किञ्चिद्धर्मा वक्त्रिरेव समवायेन तदभावाधिकरणं तद्विन्नत्वञ्च
महानसादावेव तद्वृत्तित्वाद्वक्त्रित्वावच्छिन्नाधिकरणताया अव्याप्ति-
रिति भावः ।

मिश्रास्तु अत्र वैयधिकरणं तदनधिकरणवृत्तित्वं तदधिकरणा-
वृत्तित्वं वा आद्ये आह, 'प्रमेयत्वादेरिति, द्वितीयमपि तद्विनिष्ठा-
त्यन्ताभावप्रतियोगित्वं, तद्विनिष्ठान्योन्याभावप्रतियोगितावच्छेदकत्वं
वा द्वयमप्ययुक्तमित्याह, 'महानसादावितीत्याहुः ।

आचार्यैर्यलक्षणमाशङ्कते, 'अथेति, 'अनौपाधिकः सम्बन्ध इति
उपाध्यभावविशिष्टं साध्यसामानाधिकरणमित्यर्थः । वैशिष्ट्यञ्चैकाधि-
करणवृत्तित्वं, उपाध्यभावश्च सम्बन्धसामान्येन ग्राह्यः^(१) अन्यथा द्रव्यं
सत्त्वादित्यादौ गुणवत्त्वाद्युपाधेरभावस्य सत्त्वादौ सत्त्वादतिव्याप्यापत्तेः,
न तु व्यभिचारितासम्बन्धेन साधनाव्यापकत्वदलवैयर्थ्यापत्तेः^(२) ।

(१) सम्बन्धत्वावच्छिन्नसंसर्गाकप्रतियोगिताक इत्यर्थः, सद्भेदौ कस्या-
प्युपाधित्वाभावात् नाव्याप्तिसम्भावना ।

(२) व्यभिचारित्वसंसर्गावच्छिन्नप्रतियोगिताकस्य उपाध्यभावस्य व्याप्ति-
लक्षणघटकत्वे सर्वत्र साध्यव्यापकत्वमेव उपाधिलक्षणं न तु
तत्र साधनाव्यापकत्वप्रवेशः, सद्भेदौ साध्यव्यापकस्य उपाधित्वेऽपि

योगित्वमपि, अभावविरहात्मत्वं वेति चेत्, यत्किञ्चित्साध्यव्यापक-साधनाव्यापकधर्मनिषेधो न धूमादौ, प्रकृतसाध्यव्यापक-साधनाव्यापकधर्मश्च सिद्धसिद्धिभ्यां न निषेधुं शक्यः यावत्साध्यव्यापके प्रमेयत्वादौ साध-

केचित्तु उपाध्यभावः उपाधितावच्छेदकसम्बन्धेन उपाधिसामान्याभाव एव ग्राह्यः, द्रव्यं सत्त्वादित्यादौ च सत्त्वादावुपाधितावच्छेदकसम्बन्धेन द्रव्य-सत्त्वान्यतरत्वाद्युपाधेरेवाभावस्यासत्त्वान्नातिव्याप्तिः । न च तादात्म्येनैतदङ्गिहेतुके संयोगेन धूमसाध्यके व्यभिचारिण्यतिव्याप्तिः तत्र साधनवृत्तेर्धर्मस्य साधनव्यापकत्वनियमेनोपाधित्वासम्भवादिति वाच्यम् । तस्य विरुद्धत्वेन साध्यसामानाधिकरण्यदलेनैव वारणादित्याहुः ।

तदसत् प्रमेयत्वान्यत् प्रमेयत्वात् घटाभावान्यो घटाभावदित्यादौ व्यभिचारिण्यतिव्याप्तिः तत्र साधनावृत्तिधर्मस्यैव उपाधित्वसम्भवादिति^(१) दिक् ।

व्यभिचरित्वसम्बन्धेन तदभावस्य हेतौ सत्त्वान्न कोऽपि दोषः पदमादधाति व्याप्यस्य व्यापकाव्यभिचरित्वेन व्यापकव्यापकस्याप्यव्यभिचरित्वमिति ।

(१) अत्र साधनान्तर्भावैरेव साधनस्य व्यभिचरिततया साधनवृत्तिधर्ममात्रस्य साधनाव्यापकत्वविरहेण उपाधित्वासम्भवादिति भावः ।

नाव्यापकत्वं यावत्साधनाव्यापके च घटत्वादौ साध्य-
व्यापकत्वं निषिध्यत इति चेत् । न । व्यधिकरणत्वात् या-
वत्साधनाव्यापकमव्यापकं यत्साध्यस्य, यावत्साध्यव्या-
पकं व्यापकं वा यस्य तत्त्वं तदिति चेत् । न । सोपाधेरपि

ननु उपाधित्वं साध्यसमव्याप्तत्वे सति^(१) साधनाव्यापकत्वं सम-
व्याप्तत्वञ्च व्याप्तिघटितं तच्च व्याप्यत्वमनौपाधिकत्वान्तररूपमित्यनव-
स्थेत्यत आह, 'उपाधिश्चेति । ननु तथापि व्यापकत्वं व्याप्तिनिरूपकत्वं
तच्च व्याप्यत्वमनौपाधिकत्वान्तररूपमित्यनवस्था तदवस्थैवेत्यत आह,
'व्यापकत्वन्विति । नन्वेवं यत्र व्यभिचारिणि नोपाधिसम्भवस्तत्राति-
व्याप्तिरित्यत आह, 'व्यभिचारे चेति । ननु प्रतियोगित्वं विरोधित्वं
विरोधित्वञ्च नियतसहानवस्थानं नियतसहानवस्थानञ्च तदभावव्या-
प्यत्वं तदपि च व्याप्यत्वमनौपाधिकत्वान्तररूपमित्यनवस्थेत्यत आह,
'प्रतियोगित्वञ्चेति प्रतियोगित्वं सहानवस्थाननियमलक्षणं विरोधित्वं
नेत्यन्वयः, 'अतथात्वात्' प्रतियोग्यनुयोगिभावानापन्नत्वात् ।

(१) तथाचेत्तं आचार्यैः "समासमाविनाभावौ एकत्र स्तो यदा यदा
समेन यदि नो व्याप्तस्तयोर्हीनोऽप्रयोजकः" इति, 'यदा यदा'
यस्मिन् यस्मिन् समये, 'एकत्र' एकधर्म्मिणि, 'समासमाविनाभावौ
स्तः' साध्यस्य समव्याप्तत्वं हेतोः समव्याप्तत्वाभावञ्च दर्शते, तदा स
उपाधिरिति शेषः, 'समेन यदि नो व्याप्तः' यदि साध्यसमव्याप्तत्वा-
भावः, तर्हि 'तयोर्हीनः' 'तयोः' साध्यसमव्याप्तत्व-हेत्वसमव्याप्तत्वयोः,
'हीनः' एकतरेण विरहितः, 'अप्रयोजकः' व्यभिचाराननुमापकः
इत्यर्थः ।

तथात्वात्, तथाहि साधनस्य बह्वैरव्यापकं यावदाद्र्धे-
न्यनन्तत् प्रत्येकमव्यापकं साध्यधूमस्य, द्वितीये साध्य-
धूमस्य व्यापकमाद्र्धेन्यनं तत् व्यापकं महानसीयवहेः ।

‘अन्योन्येति’^(१) । इदमापाततः येन सम्बन्धेनाभावस्तेनैव सम्बन्धेन
व्याप्यत्वं सहानवस्थाननियमपट्टेनावश्यं व्यक्तव्यम्, अन्यथा समवा-
यादिसम्बन्धावच्छिन्नवज्ज्ञाद्यभाववति महानसादौ संयोगेन वज्ज्ञादे-
वृत्तेरव्याप्यापत्तेः, तथाचान्योन्याभावप्रतियोगिनि नाव्याप्तिः अन्यो-
न्याभावस्य तादात्म्यमसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकतया तेन सम्बन्धेन
प्रतियोगिनः तदभावव्याप्यत्वात्, किन्तु संयोगादिसम्बन्धावच्छिन्नस-
त्ताद्यभावप्रतियोगिन्यव्याप्तिः तेन सम्बन्धेन प्रतियोगिसत्तादेस्तदभावा-
व्याप्यत्वात् घटत्वादेर्द्रव्यत्वाद्यभावप्रतियोगित्वापत्तिश्च । स्वाभावविरो-
धित्वमित्युक्तौ च स्वाभाव इत्यत्र षष्ठ्यर्थस्य दुर्वचत्वमित्येव दूषणं
भारं । ‘तथा प्रतियोगित्वमपीति, प्रतियोग्यभावयोः स्वरूपसम्बन्ध-
विशेष इति शेषः । ‘अभावविरहात्मत्वं वेति यस्याभावस्याभावो यो
भवति स तस्याभावस्य प्रतियोगी भवतौत्यर्थः । भवति च घटा-
भावस्य प्रतियोगी घटो घटाभावस्याभावः, तदभावत्वं तत्प्रतियोगि-

(१) द्रव्यत्व-गुणयोः परस्परं सहानवस्थाननियमलक्षणविरोधित्वाभावे-
ऽपि द्रव्यत्वं न गुण इति प्रतीत्या अन्योन्याभावप्रतियोगित्वं वर्तत-
मेवेति भावः ।

नापि साध्यं यावद्व्यभिचारि तद्व्यभिचारित्व-
मनौपाधिकत्वं, साध्यव्यभिचारित्वस्यैव गमकत्वसम्भ-
वात्, तच्च दूषितम् ।

त्वमिति तु निष्कर्षः, घटाभावस्यापि घटप्रतियोगित्वात् । प्रति-
योगितावच्छेदकस्यैव तादात्म्यसम्बन्धेन प्रतियोगिनेऽप्यन्योन्याभावा-
भावतया नान्योन्याभावप्रतियोगिन्यव्याप्तिः, न वा अन्योन्याभाव-
प्रतियोगितावच्छेदकेऽतिव्याप्तिः, अत्यन्ताभावभावस्य प्रतियोगि-
रूपत्वेन घटादिभेदस्य घटादिभेदात्यन्ताभावाभावरूपतया घटादि-
भेदात्यन्ताभावरूपस्य घटत्वादेः प्रतियोगितावच्छेदकधर्मस्यापि
घटाद्यन्योन्याभावप्रतियोगित्वात् विवेचितञ्चेदं 'साध्याभाववद्वृत्ति-
त्वमिति प्रथमलक्षणव्याख्यानावसरे । न च तथापि संयोगादिसम्बन्धा-
वच्छिन्नगुणाद्यभावरूपव्यधिकरणसम्बन्धावच्छिन्नाभावप्रतियोगिन्य-
व्याप्तिः तादृशव्यधिकरणसम्बन्धावच्छिन्नाभावस्य केवलान्वयितया तद-
भावत्वस्य तत्प्रतियोगिन्यभावादिति वाच्यम् । आकाशाद्यभावस्य
केवलान्वयित्वेऽपि प्रतियोगित्वव्यवहारान्यथानुपपत्त्या आकाशादौ
तदभावत्वस्यैव व्यधिकरणसम्बन्धावच्छिन्नाभावस्य केवलान्वयित्वेऽपि
तदभावत्वस्य तत्प्रतियोगिन्यभ्युपगमात् । केवलान्वयिलक्षणे प्रतियो-
ग्यधिकरणानिरूपितवृत्तिमत्त्वस्यात्यन्ताभावविशेषणतया च न केव-
लान्वयित्वानुपपत्तिः । न चैवं समवायसम्बन्धेन गुणादिमति घटे
तादृशगुणाद्यभावाभावप्रत्ययापत्तिरिति वाच्यं । प्रतियोगितावच्छे-

नापि कार्त्तव्येन सम्बन्धा व्याप्तिः एकव्यक्तिके तदभावात् नानाव्यक्तिकेऽपि सकलधूमसम्बन्धस्य प्रत्येकवह्नावभावात् । अत एव न कार्त्तव्येन साध्येन सम्बन्धा व्याप्तिः विषमव्याप्ते तदभावाच्च । न च यावत्साधनाश्रयाश्रितसाध्यसम्बन्धः, साधनाश्रये महानसादौ सकले प्रत्येकवहेराश्रितत्वाभावात् ।

दकसम्बन्धेन प्रतियोगिमत्त्वस्यैवाभावाभावप्रत्ययनियामकत्वं, अन्यथा समवायेन घटादिमति कपाले संयोगसम्बन्धावच्छिन्नघटात्यन्ताभावाभावप्रत्ययापत्तेः । एवं प्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धेन प्रतियोगिमत्तावच्छेदककालमादायैवात्यन्ताभावाभावप्रत्ययः, अन्यथोत्पत्तिकालेऽपि संयोगसम्बन्धावच्छिन्नैतद्घटात्यन्ताभावो नास्तीति प्रत्ययापत्तेः । अतो गुणादिमत्यपि कालादौ न तादृशगुणाद्यभावाभावप्रत्यय इति मणिकृतामाशयः ।

केचित्तु नेदं प्रतियोगितासामान्यनिर्वचनं^(१) तस्य स्वरूपसम्बन्धविशेषरूपत्वात्, किन्तु प्रकृतलक्षणघटकप्रतियोगितामात्रनिर्वचनमेव तेनान्योन्याभावस्य व्यधिकरणसम्बन्धावच्छिन्नाभावस्य च प्रतियोगिन्यव्याप्तिः^(२) अन्योन्याभावप्रतियोगितावच्छेदकेऽतिव्याप्तिश्च न

(१) प्रतियोगितासामान्यलक्षणमित्यर्थः ।

(२) तेनान्योन्याभाव-व्यधिकरणसम्बन्धावच्छिन्नाभावप्रतियोगिनोरव्याप्तिरिति ख० ग० ।

नापि साधनसमानाधिकरण्यावद्धर्मसमानाधिकरणसाध्यसामानाधिकरण्यं, यावद्धर्मसामानाधिकरण्यं हि यावत्तद्धर्माधिकरणाधिकरणत्वं तच्चाप्रसिद्धं साधनसमानाधिकरणसकलमहानसत्त्वाद्यधिकरणाप्रतीतेः ।

दोषायेति भावः । न चैवं प्रकृतलक्षणेऽत्यन्ताभावपदवैयर्थ्यमिति वाच्यम् । तस्य स्वरूपकीर्तनमात्रत्वादित्याहुः । तदसत् आचार्यैरभावविरहात्मत्वं वस्तुनः प्रतियोगितेत्यनेन प्रतियोगितासामान्यस्यैव निर्व्वचनात् तस्योक्ताभिप्रायेणैवोपपादने प्रकृतेऽपि प्रतियोगितासामान्यलक्षणत्वे क्षतिविरहात् ।

‘अभावविरहेत्यत्र षष्ठीतत्पुरुषममासात् षष्ठ्यर्थः प्रतियोगित्वं^(१) तच्च स्वरूपमस्वन्धविशेषरूपमेव वाच्यम् तथाच लाघवादावश्यकत्वाच्च तदेव प्रतियोगित्वं न तु अभावविरहात्मत्वं गौरवादित्यस्वरसः ‘वाशब्देन सूचितः । ‘यत्किञ्चिदिति यत्किञ्चित्साध्यव्यापक-यत्किञ्चित्साधनाव्यापकधर्माभाव इत्यर्थः, गुणवत्त्वादिसाध्यव्यापक-प्रमेयत्वादिसाधनाव्यापकस्य द्रव्यत्वादेर्धूमादौ सत्त्वादिति भावः । ‘प्रकृतेति प्रकृतसाध्यव्यापक-प्रकृतसाधनाव्यापकधर्मश्चेत्यर्थः । ‘निषेद्धुमिति प्रकृतसाधननिष्ठनिषेधप्रतियोगित्वेन ज्ञातुमशक्य इत्यर्थः । शङ्कते, ‘यावदिति, ‘निषिध्यत इति अनौपाधिकत्वपदेन निषेध-

(१) षष्ठ्यर्थतया प्रतियोगित्वं घटकमिति ख०, ग० ।

नापि स्वाभाविकः सम्बन्धो व्याप्तिः, स्वभावजन्यत्वे
तदाश्रितत्वादौ वा अव्याप्त्यतिव्याप्तेः ।

नाप्यविनाभावः, केवलान्वयिन्यभावात् ।

प्रतियोगितया बोध्यत इत्यर्थः. यावत्साध्यव्यापके साधनाव्यापकत्वा-
भावो यावत्साधनाव्यापके साध्यव्यापकत्वाभावो वा अनौपाधिकत्व-
पदार्थ इति भावः । 'व्यधिकरणत्वादिति निरुक्तनिषेधस्य हेतु-
निष्ठसाध्यसामानाधिकरण्यव्यधिकरणत्वादित्यर्थः, तथाच तादृशा-
नौपाधिकत्वविशिष्टं साध्यसामानाधिकरण्यं सर्वत्र हेतौ नास्तीत्य-
व्याप्तिरिति भावः । वैयधिकरण्यमुद्धरति, 'यावदिति, 'यत्साध्यस्य'
सत्साधनसमानाधिकरणसाध्यस्य, 'यस्य' साधनस्य, 'तत्' अनौपा-
धिकत्वं, तथाच यावत्साध्यापकाव्यापकसाध्यकत्वं, यावत्साध्य-
व्यापकाव्यापकत्वं वाऽनौपाधिकत्वमित्यर्थः । 'तथाहीत्यादि, इदञ्च
यथाश्रुताभिप्रायेण, यत्साधनाव्यापकतावच्छेदकं यावत् साध्यता-
वच्छेदकावच्छिन्नाव्यापकतावच्छेदकं तत्त्वं, साध्यतावच्छेदकावच्छिन्न-
व्यापकतावच्छेदकं यावत् यद्वर्मावच्छिन्नव्यापकतावच्छेदकं तद्वर्मा-
वच्छिन्नत्वं वा अनौपाधिकत्वं इत्यर्थे तु^(१) न कोपि दोष इत्यवधेयं ।

'नापीति, साध्यं यावतामव्यभिचारि यावदभाववदवृत्ति ताव-
तामव्यभिचारित्वं तावदभाववदवृत्तित्वं साधनस्यानौपाधिकत्वमि-
त्यर्थः । सौपाधौ तु साध्यमुपाधेरेवाव्यभिचारि न च साधनं तद-

अथ सम्बन्धमात्रं व्याप्तिः व्यभिचारिसम्बन्धस्यापि
केनचित् सह व्याप्तित्वात्, धृमादिव्याप्तिस्तु विशिष्टैव
निर्व्वक्तव्येति, तन्न, लिङ्गपरामर्शविषयव्याप्तिस्वरूप-

व्यभिचारौति तद्भावच्छेद इति भावः । तर्हि लाघवात् साध्याव्यभि-
चरितत्वमेव तदस्त्वित्याह, 'माध्येति, अवेष्टापत्तेराह, 'तच्चेति,
केवलान्वयव्याप्तेरिति भावः । ननु तर्हि केवलान्वयिसंग्रहार्थमेव
गुरुशरीरस्याप्युक्तलक्षणस्यादरोऽस्त्विति चेत् । न । अत्रापि केवला-
न्वयसंग्रहतादवस्थात् तत्र हि साध्यस्य प्रमेयत्वादेर्यदन्ताभाववद-
वृत्तित्वं तादृशधर्माप्रसिद्धेरिति हृदयम् ।

लीलावतीकारमतमाशङ्क्य^(१) निराकरोति, 'नापीति, 'का-
र्त्स्न्येनेति, विशेषणे तृतीया, तथाच कार्त्स्न्येन कार्त्स्न्यविशिष्टेन
सर्व्वेणेति यावत् । अत्र कार्त्स्न्यं साधनस्य साध्यस्य साधनाश्रयस्य
साधनसमानाधिकरणधर्मस्य वा विवक्षितम् । आद्ये कृत्स्नेन साध-
नेन साध्यस्य सामानाधिकरणमित्यर्थः, तच्चैकव्यक्तिहेतुकस्यले ना-
स्तीत्याह, 'एकव्यक्तिक इति, अनेकाशेषत्वरूपस्य कार्त्स्न्यस्याभावा-
दिति भावः ।

अत्रैव पक्षे दूषणान्तरमाह, 'नानेति । न च कृत्स्नेषु साध्यसम्बन्ध-
इत्यर्थः इति वाच्यं । तथाप्येकव्यक्तिहेतुकस्यलेऽव्याप्तेः पृथिवी पृथि-
वीत्वव्यापकजातेरित्यादावतिव्याप्तेश्च । अर्थाभिधानपुरःसरं द्वितीयं

निरूपणप्रस्तावे लक्षणाभिधानस्यार्थान्तरत्वात् । न च सम्बन्धमात्रं तथा, तद्वोधादनुमित्यनुत्पत्तेः ।

निरस्यति, 'अत एवेति एकव्यक्तिसाध्यकाव्याप्तेरेवेत्यर्थः, 'विषमव्याप्त-
इति वक्तिमान्धूमादित्यादावित्यर्थः, अयोगोलकीयवक्ति सामाना-
धिकरणस्य धूमेऽभावादिति भावः । इदमुपलक्षणं सङ्ख्यावान् परि-
माणादित्यादिसमव्याप्तेऽप्यव्याप्तेः सकलमङ्ग्यासम्बन्धस्य कुत्रापि परि-
माणेऽभावादित्यपि बोध्यं । अर्थपरिष्कारपूर्वकं तृतीयं निरस्यति,
'न चेति, 'प्रत्येकवक्तेरिति, इदमुपलक्षणं एकमात्रवृत्तिसाध्यकेऽव्या-
प्तेष्वेत्यपि बोध्यं^(१) । अर्थपरिष्कारपूर्वकं चतुर्थं निरस्यति, 'नापीति,
'यावद्धर्माधिकरणेति यावत्साधनसमानाधिकरणधर्माधिकरणवृ-
त्तित्वमित्यर्थः, 'अप्रतीतेरिति । न च साधनसमानाधिकरणा-
यावन्तो धर्मास्तेषां प्रत्येकनिरूपितं सामानाधिकरण्यं विवक्षणीय-
मिति वाच्यं । धूमसमानाधिकरणानां यावद्धर्माणां महानसत्वादीनां
प्रत्येकनिरूपितसामानाधिकरण्यस्यापि कुत्रापि वक्तावभावादिति
भावः । इदञ्च यथाश्रुताभिप्रायेण, यदि तु यद्धर्मावच्छिन्नसामा-
नाधिकरणत्वेन साधनसमानाधिकरणव्यापकत्वं तद्धर्मावच्छिन्नसा-
मानाधिकरण्यमिति विवक्ष्यते तदा नायं दोष इत्यवधेयं ।

टीकाकारलक्षणं शङ्कते, 'नापीति स्वाभाविकं साध्यसामाना-

(१) शब्दवान् गगनत्वादित्यादौ यावत्साधनाश्रयाप्रसिद्धत्वादव्याप्ति-
रिति भावः ।

नापि व्याप्तिपदप्रवृत्तिनिमित्तमिदं सम्बन्धज्ञानेऽपि
व्याप्तिपदाप्रयोगात् ।

धिकरणमित्यर्थः, व्यभिचारिणि तु साध्यसामानाधिकरण्यमौपा-
धिकमिति भावः । स्वाभाविकत्वं हि हेतुस्वरूपजन्यत्वं, हेतुस्वरूपा-
श्रितत्वं वा, आद्ये द्रव्यं पृथिवीत्वादित्यादौ पृथिवीत्वादिनिष्ठद्रव्य-
त्वादिसामानाधिकरण्यस्य नित्यतया^{१)} अव्याप्तिः, द्वितीये द्रव्यं
सत्त्वादित्यादौ व्यभिचारिण्यतिव्याप्तिरित्याह, 'स्वभावेति, 'स्वभाव-
जन्यत्वे' हेतुस्वरूपजन्यत्वे, 'तदाश्रितत्वादौ वा,' स्वाभाविकपदार्थ-
इति शेषः, 'अव्याप्त्यतिव्याप्तेरिति अव्याप्तिसहितातिव्याप्तेरित्यर्थः,
मध्यपदलोपिसमासात्, अन्यथा द्वन्द्वैविध्येन द्विवचन-नपुंसकलिङ्ग-
तयोरन्यतरापत्तेः^(२) 'तदाश्रितत्वादावित्यादिपदादनारोपितत्वपरि-
ग्रहः, तत्रापि द्रव्यं सत्त्वादित्यादावतिव्याप्तिर्विधा । सत्तायां द्रव्यत्व-
सामानाधिकरणस्यानारोपितत्वात् ।

'अविनेति, 'विना' साध्येन विना साध्याभाववति, 'भादः' वृत्तिः,
यस्य तद्विन्नः साध्याभाववद्वृत्तिभिन्न इति यावत्, व्याप्य इति शेषः ।

(१) साध्यसामानाधिकरण्यपदेन अवश्यं हेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्न-
साध्यसामानाधिकरण्यस्य विवक्षणीयतया समवायसम्बन्धावच्छिन्नसामा-
नाधिकरण्यस्य समवायसम्बन्धस्वरूपत्वात् समवायस्य नित्यत्वेन तस्यापि
नित्यत्वमिति भावः ।

(२) इतरेतरद्वन्द्वपक्षे द्विवचनं समाहारद्वन्द्वपक्षे च नपुंसकत्वं प्रस-
ज्येतेति भावः ।

केवलान्वयिनि केवलान्वयिधर्मसम्बन्धो व्यतिरे-
किणि साध्यवदन्यावृत्तित्वं व्याप्तिः एतयोरनुमिति-
विशेषजनकत्वं अनुमितिमात्रे पक्षधर्मतैव प्रयोजिका ।

अत्यन्ताभावान्योन्याभावभेदेन च भेदान्न प्राथमिकाव्यभिचारित्वेन
पौनरुक्त्यं^(१) ।

केचित्तु 'अविनाभावः' हेत्वभावे साध्यविनाभावस्य साध्याभाव-
वन्निष्ठाभावस्य प्रतियोगितासम्बन्धेनाभावः साध्याभावव्यापकत्वमिति
यावत् । तथाच हेतोः साध्याभावव्यापकाभावप्रतियोगित्वं व्याप्ति-
रिति फलितं । न चैवं सकलसाध्याभाववन्निष्ठाभावप्रतियोगित्व-
मिति पूर्वोक्तेन पौनरुक्त्यं तत्रापि साकल्यस्य व्यापकत्वरूपत्वादिति
वाच्यं । तत्र व्यापकत्वं साध्याभाववन्निष्ठाभावाप्रतियोगित्वमत्र तु
व्यापकत्वं साध्याभाववन्निष्ठाभावस्य प्रतियोगितासम्बन्धेनाभाववत्त्वमिति
भेदादित्याहुः ।

'अथेति, 'सम्बन्धमात्रं' साध्यसामानाधिकरण्यमात्रं, तत्र तत्सामा-
नाधिकरण्यं तत्र तस्य व्याप्तिरिति यावत् । नन्वेवं द्रव्यं सत्तादित्यादौ
सत्तानिष्ठद्रव्यत्वसामानाधिकरण्यस्यापि सत्तानिष्ठद्रव्यत्वव्याप्तिव्याप-
त्तिरित्यत्र दृष्टापत्तिमाह, 'व्यभिचारीति व्यभिचारिहेतुनिष्ठसाध्य-

(१) प्राथमिकाव्यभिचारित्वपदार्थस्य साध्याभाववद्भूतित्वात्यन्ताभाव-
गर्भत्वं, अविनाभावपदार्थस्य तु साध्याभाववद्भूतिभेदगर्भत्वं अतो न पौन-
रुक्त्यमिति भावः ।

न चातिप्रसङ्गः, विशेषसामग्रीसहिताया एव सामान्य-
सामग्र्याः कार्यजनकत्वनियमादिति केचित्, तदपि न,
साध्यवदन्यावृत्तित्वस्य धूमेऽसत्त्वात् वह्निमत्पव्वतान्य-

सामानाधिकरण्यस्यापीत्यर्थः, 'केनचित् सहेति किञ्चिद्रूपावच्छिन्ने-
न साध्येन सहेत्यर्थः, द्रव्यत्वादेरपि जातित्वादिना सत्तादिव्यापकत्वा-
दिति भावः। यथाश्रुते द्रव्यत्व-सत्तासामानाधिकरण्यस्यान्येन सह
व्याप्तिवासम्भवादसङ्गतेः, 'धूमादिव्याप्तिस्त्विति धूमत्वाद्यवच्छिन्न-
निष्ठवह्नित्वाद्यवच्छिन्नव्याप्तिस्त्वित्यर्थः, 'विशिष्यैवेति धूमत्वावच्छिन्ने
वह्नित्वावच्छिन्नसामानाधिकरण्यं धूमत्वावच्छिन्ने वह्नित्वावच्छिन्न-
व्याप्तिः, द्रव्यत्वत्वावच्छिन्ने सत्तात्वावच्छिन्नसामानाधिकरण्यं द्रव्यत्वत्वा-
वच्छिन्ने सत्तात्वावच्छिन्नव्याप्तिरिति विशिष्यैव निर्वक्तव्येत्यर्थः, न तु
तद्धर्मावच्छिन्ने तद्धर्मावच्छिन्नसामानाधिकरण्यं तद्धर्मावच्छिन्ने
तद्धर्मावच्छिन्नव्याप्तिरिति सामान्यतो यत्तद्भ्यामेकोक्त्या निर्वक्तव्या
तेन व्यभिचारिणि नातिव्याप्तिरिति भावः। इदं व्याप्तेर्लक्षणं, किं
वा अनुमितिकारणीभूतपरामर्शविषयतावच्छेदकं, व्याप्तिपदप्रवृ-
त्तिनिमित्तं वा, आद्ये आह, 'लिङ्गेति, द्वितीये त्वाह, 'न चेति,
'सम्बन्धमात्रं' साध्यसामानाधिकरण्यत्वावच्छिन्नमात्रं, 'तथा' अनुमि-
तिहेतुपरामर्शविषयः, 'तद्वोधादिति अव्यभिचारांशाज्ञानदशायां
वज्रव्यभिचार्यभाववान् पर्वतः वज्रव्यभिचार्यभावव्याप्यवान् इत्यादि
ज्ञानदशायां वा वह्निसमानाधिकरणधूमवान् पर्वत इति सामाना-
धिकरण्यविशिष्टपरामर्शादनुमित्यनुदयात् इत्यर्थः। न च अव्य-

स्मिन् धूमसत्त्वात् । न च सकलसाध्यवदन्यावृत्तित्वं,
वह्निमतां प्रत्येकं तथात्वात् । सर्व्वत्र लक्षणे साध्यत्व-
साधनत्व-तदभिमतत्वानां व्याप्तिनिरूप्यत्वेनात्माश्रयः,

भिचारांशाज्ञानदशायां अनुमित्यनुत्पादोऽसिद्धः तथा वक्ष्यव्यभि-
चार्य्यभाववान् पर्व्वत इत्यादिज्ञानदशायामपि, अस्तु वा पक्षे साध्या-
व्यभिचार्य्यभावादिज्ञानाभावोऽप्यनुमितिहेतुरिति वाच्यं । सर्व्वजना-
नुभववाधितत्वात् साध्याव्यभिचार्य्यभाव-तद्व्याप्यादिज्ञानानामनुमि-
तिप्रतिबन्धकत्वकल्पने महागौरवाच्चेति भावः । तृतीये अर्थान्तरे
सूत्येवाह, 'नापीति ।

केषाञ्चिन्मतमाह, 'केवलान्वयिनीति केवलान्वयित्वग्रहदशाया-
मित्यर्थः । 'केवलान्वयिधर्मसम्बन्ध इति^(१) केवलान्वयिसाध्यसामा-
नाधिकरणमित्यर्थः, साध्यस्य केवलान्वयित्वाऽभावे साध्यसामाना-
धिकरणग्रहेऽप्यनुमित्यनुदयात् केवलान्वयित्वं साध्यविशेषणं, तच्चा-
न्योन्याभावप्रतियोगितानवच्छेदकत्वं, तथाचान्योन्याभावप्रतियोगि-
तानवच्छेदकसाध्यसामानाधिकरणमित्यर्थः । ननु तथापि इदं वाच्यं
ज्ञेयत्वादित्यादावसम्भवः घटत्वादिविशिष्टवाच्यत्वादिसमोऽन्योन्या-
भावप्रतियोगितावच्छेदकत्वादाच्यत्वादेर्विशिष्टस्यावच्छेदकत्वे विशे-
षस्याप्यवच्छेदकत्वात् । न चानवच्छेदकत्वं पर्याप्त्याख्यसम्बन्धेनावच्छेद-
कताशून्यत्वं इति वाच्यं । घटत्वविशिष्टवाच्यत्ववान् ज्ञेयत्वादित्यादा-

(१) 'केवलान्वयिसम्बन्ध इतीति ख०, ग० ।

साध्यत्वं हि न सिद्धिकर्मत्वं, सिषाधयिषाविषयत्वं वा
महानसीयवद्वा तदभावात् । न च सामान्यतो-
व्याप्त्यवगमोऽस्त्येव परस्य कथमन्यथा दूषणेनासाध-

वतिव्याप्तेः वाच्यत्वस्य पर्याप्त्याख्यसम्बन्धेनावच्छेदकताशून्यतया घटत्व-
विशिष्टवाच्यत्वस्यापि तथात्वात् विशिष्टवाच्यत्वस्य वाच्यत्वानतिरिक्त-
त्वादिति चेत् । न । अन्योन्याभावप्रतियोगितासामान्यं यद्वर्मा-
वच्छिन्नपर्याप्त्यावच्छेदकताकत्वाभावस्तद्वर्मावच्छिन्नसामानाधिकरण्यस्य
विवक्षितत्वात् यन्निष्ठपर्याप्त्यावच्छेदकत्वाभावस्तत्सामानाधिकरण्यमि-
त्युक्तौ इदं वाच्यं ज्ञेयत्वादित्यादौ वाच्यत्वादेः स्वरूपतोऽभावप्र-
तियोगितानवच्छेदकत्वेन वाच्यत्वादिनिष्ठपर्याप्त्यावच्छेदकत्वाप्रसिद्ध्या-
व्याप्यापत्तिरतोऽवच्छिन्नानुसरणं । न च तथापि वाच्यत्वादेः कालि-
कसम्बन्धेनान्योन्याभावप्रतियोगितावच्छेदकत्वादसम्भव इति वाच्यं ।
साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नत्वेनावच्छेदकताया विशेषणात् वाच्य-
त्वादिनिष्ठस्वरूपसम्बन्धावच्छिन्नावच्छेदकताकत्वन्तु संयोगादिसम्बन्धेन
वाच्यादेरत्यन्ताभावप्रतियोगितायामेव प्रसिद्धं । साध्यतावच्छेदकसम्ब-
न्धभेदेन व्याप्तेर्भेदात्तादात्म्यसम्बन्धेन प्रमेयादिसाध्यके पुनरन्योन्याभा-
वप्रतियोगितासामान्ये यद्वर्मनिष्ठपर्याप्त्यावच्छेदकत्वाभावस्तद्वर्मावच्छि-
न्नसामानाधिकरण्यमित्येव वक्तव्यं शब्दैकस्यानुपादेयत्वात्, यद्वर्मपदं
साध्यतावच्छेदकपरं । अवच्छेदकता च साध्यतावच्छेदकतावच्छेदक-
सम्बन्धावच्छिन्नत्वेन विशेषणीया तेन प्रमेयत्वादेः कालिकसम्बन्धे-
नान्योन्याभावप्रतियोगितावच्छेदकत्वेऽपि तादात्म्यसम्बन्धेन प्रमेया-

कतां साधयेदिति वाच्यं । स्वार्थानुमानोपयोगिव्याप्ति-
स्वरूपनिरूपणं विना कथायामप्रवेशादिति ।

इति श्रीमद्गङ्गेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्ता-
मणौ अनुमानाख्यद्वितीयखण्डे पूर्वपक्षः ।

दिमाध्यके नामभवः । तद्धर्मविच्छिन्नसामानाधिकरण्यञ्च साध्यता-
वच्छेदकसम्बन्धेन तद्धर्मावच्छिन्नस्य सम्बन्धिनि या हेतुतावच्छेदक-
सम्बन्धावच्छिन्ना सम्बन्धिता तन्निरूपकतावच्छेदकहेतुतावच्छेदक-
वत्त्वं, तेन सम्बन्धान्तरेण साध्यसामानाधिकरण्यज्ञानेऽपि नानु-
मितिः, न वा इदं वाच्यं गगनादित्यादौ समवायादिसम्बन्धेन
गगनादिहेतुके, इदं वाच्यं घटत्व-पटत्वाभयस्मादित्यादौ समवाया-
दिसम्बन्धेन विरुद्धोभयादिहेतुके चातिव्याप्तिरिति भावः ।
'व्यतिरेकिणीति व्यतिरेकित्वग्रहदशायामित्यर्थः, 'व्याप्तिः' परा-
मर्शविषयतयानुमितिप्रयोजिका व्याप्ति' । नन्वेवं परस्परं व्यभिचार-
इत्यत आह, 'एतयोरिति, 'जनकत्वं' परामर्शविषयतया जनकता-
वच्छेदकत्वं, केवलान्वयिसाध्यकानुमितौ निरुक्तकेवलान्वयिसाध्य-
सामानाधिकरण्यविशिष्टवत्तापरामर्शः, व्यतिरेकिसाध्यकानुमितौ
च साध्यवदन्यावृत्तिमत्त्वपरामर्शो हेतुरित्यर्थः । केवलान्वयिसाध्य

कत्वञ्च निरुक्तकेवलान्वयिमाध्यमामानाधिकरण्यविशिष्टवत्तापरा-
मर्गाव्यवहितोत्तरोत्पन्नत्वमेव, तेनेदं वाच्यं ज्ञेयत्वादित्यादावपि
व्यतिरेकित्वभ्रमदशायां साध्यवदन्यावृत्तित्वमात्रपरामर्गादनुमित्यु-
त्पादेऽपि न व्यभिचारस्तदवस्थः । न च कृत्रकारणवाधान्न भवत्येव
तत्र तदानीमनुमितिरिति वाच्यम् । अनुभवविरोधात् तथापि
हेतुतावच्छेदकसम्बन्धादिभेदेन निरुक्तमामानाधिकरण्यस्य विभिन्न-
तया परस्परं व्यभिचारस्य दुर्वारत्वाच्च । एवं साध्यवदन्यावृत्ति-
मत्तापरामर्गाव्यवहितोत्तरोत्पन्नानुमितित्वमेव व्यतिरेकिमाध्यकत्वं
तेन व्यतिरेकिसाध्यके केवलान्वयित्वभ्रमदशायां निरुक्तकेवलान्वयि-
साध्यसामानाधिकरण्यमात्रपरामर्गादनुमित्युत्पादेऽपि न व्यभिचार-
स्तदवस्थः, नापि हेतुतावच्छेदकसम्बन्धादिभेदेन साध्यवदन्यावृत्तित्व-
स्यापि विभिन्नतया परस्परं व्यभिचारश्चेति भावः ।

ननु तर्ह्यनुमितिसामान्ये किं प्रयोजनमित्यत आह, 'अनु-
मितिमात्र इति, 'पक्षधर्मतैव' पर्वतादिनिरूपितसांसर्गिकविषयतैव.
निरूपितान्तं स्वरूपकथनं तन्निवेशे अननुगमापत्तेः, 'प्रयोजिका'
ज्ञाननिष्ठतया कारणतावच्छेदिका, तथाचानुमितित्वावच्छिन्नं प्रति
सामान्यतो विशिष्टज्ञानत्वेनैव हेतुत्वमिति भावः । ज्ञानत्वेनैव हेतु-
त्वमिति वस्तुगतिः, विशिष्टत्वप्रवेशे प्रयोजनविरहात् गौरवात्
प्रकारित्व-विशेष्यित्वमादाय विनिगमनाविरहेण कार्य-कारणभाव-
त्रयप्रसङ्गाच्च । नन्वेवं निरुक्तव्याप्तिद्वयज्ञानविरहदशायामपि धूमवान्
पर्वत इत्यादिपक्षधर्माज्ञानादनुमितिसामान्योत्पत्त्यापत्तिः सामा-
न्यसामग्रीसत्त्वादित्यत्र आह, 'न चेति, 'विशेषसामग्रीति, केवलान्व-

यिसाध्यकानुमितिसामग्री व्यतिरेकिसाध्यकानुमितिसामग्री च प्रकृते
विशेषसामग्रीति भावः । 'सकलेति यावन्ति साध्यवन्ति तदन्या-
वृत्तित्वमित्यर्थः, साध्ये साकल्यविशेषणे यावत्साध्याधिकरणप्रसिद्धेः^(१),
'तथात्वादिति यावत्साध्यवतोऽन्यत्वादित्यर्थः, यावत्तावच्छिन्नप्रतियो-
गिताकान्योन्याभावस्य केवलान्वयित्वादिति भावः । इदमापाततः
साध्यवत्तावच्छिन्नप्रतियोगिताकान्योन्याभाववदवृत्तित्वं वक्तव्यं, सामा-
न्याभावानभ्युपगमेऽपि साध्यवत्तावच्छिन्नप्रतियोगिताकान्योन्याभाव-
कूटाधिकरणावृत्तित्वमेव वक्तव्यमित्युक्तदोषाभावात् । वस्तुतस्तु सर्व-
त्रैव साध्ये केवलान्वयित्व-व्यतिरेकित्वग्रहदशाभेदेन कार्य-कारण-
भावद्वयकल्पनमपेक्ष्य लाघवात् हेतुसमानाधिकरणान्योन्याभावे-
त्यादिवक्ष्यमाणव्याप्तिज्ञानमेव सर्वत्र हेतुरुचितस्तस्योभयदशाया-
मेव सम्भवात् । न च हेतुसमानाधिकरणप्रवेशे एकस्मिन्नेव
साध्य-हेतुतावच्छेदकभेदेनानन्तकार्य-कारणभावापत्त्या तदपेक्ष्य
कार्य-कारणभावद्वयमेव लघ्विति वाच्यं । उक्तक्रमेण निरुक्तव्याप्तिद्वय-
स्यापि हेतुतावच्छेदकघटिततया हेतुतावच्छेदकभेदेन कार्य-कारण-
भेदस्याविशिष्टत्वात् । न च तथापि यत्र विषयविशेषे व्यतिरेकित्व-
ग्रहदशायां कदापि अनुमितिर्नोत्पन्ना तत्र लाघवात् केवलान्वयि-
साध्यसामानाधिकरणज्ञानस्यैव हेतुत्वं युक्तमिति^(२) वाच्यं । तत्राप्य-
भावे हेतुसमानाधिकरणानुपस्थितिदशायामनुमित्यनुदयात् हेतु-

(१) वज्रिमान् धूमादित्यादौ यावतां वज्रीनामधिकरणत्वं न एकस्मिन्
धर्मिणि वर्तते इति भावः ।

(२) वक्तव्यमितीति ग० ॥

सामानाधिकरण्यांगज्ञानस्यावश्यं हेतुत्वात् अनुभवापलापे लाघवात्
 सर्वत्रैव साध्याभाववदव्यक्तित्वज्ञानमेवानुमितिहेतुः, साध्यस्य केवला-
 न्वयित्वग्रहदशायाञ्चानुमितिरेवामिद्वेत्यस्यैव वक्तुमुचितत्वात् इत्येव
 दूषणं मारं । 'सर्वत्र लक्षण इति सर्वत्र साध्य-साधनघटितलक्षण-
 इत्यर्थः । 'व्याप्तिनिरूप्यत्वेनेति व्याप्तिघटितत्वेनेत्यर्थः, तदनुमितिज-
 नकौभूतपरामर्शविषयतावच्छेदकव्याप्तिप्रतियोगित्वं हि तदनुमितौ
 साध्यत्वं, तादृशव्याप्याश्रयत्वं तदनुमितौ साधनत्वमिति भावः ।

ननु साध्यत्व-साधनत्वमन्यथैव निर्व्वाच्यमित्यत आह, 'साध्यत्वं
 हीति, 'सिद्धिकर्मत्वमिति तदनुमितिर्विधेयत्वं तदनुमितौ साध्यत्व-
 मित्यर्थः, 'मिषाधयिषेति तदनुमितिजनकौभूतमिषाधयिषाया वि-
 धेयतया विषयत्वं तदनुमितौ साध्यत्वमित्यर्थः । यद्यपि द्वितीये मिषाध-
 यिषां विना यानुमितिस्तदोयसाध्येऽव्याप्तिः, तथापि स्फुटत्वात्तदुपेक्ष्य
 दूषणान्तरमाह, 'महानमीयवक्त्राविति वक्त्रिव्याप्यधूमवान् पर्वत इति
 सामान्यतः परामर्शेन जनिता या पर्वतीयवक्त्रिमात्रविषयकानुमिति-
 स्तदनुमितिव्यक्तेर्विधेयत्वस्य महानमीयवक्त्रावभावात् तत्र तस्यासाध्यत्व-
 प्रसङ्गः, एवं वक्त्रिव्याप्यधूमवान् पर्वत इति सामान्यतः परामर्शेनैव पर्वती-
 यवक्त्रानुमितिर्मे जायतामिति मिषाधयिषासहकाराज्जनिता या पर्व-
 तोवक्त्रिमानित्यनुमितिस्तज्जनकौभूतमिषाधयिषाविषयत्वस्य महा-
 नमीयवक्त्रावभावान्तत्र तदसाध्यत्वप्रसङ्ग इत्यर्थः, इदमुपलक्षणं साध-
 नत्वमपि न सिद्धिकरणत्वं लिङ्गकरणत्वस्य निरस्यत्वादित्यपि बोध्यं ।
 यद्यपि वक्त्रिव्याप्यधूमवान् पर्वत इति सामान्यपरामर्शात् पर्वतीयव-
 क्त्रिमात्रविषयकानुमितिरेवासिद्धा सामर्थ्यविशेषेण वक्त्रित्वरूपेण

महानसीयादिवक्लिभानेऽपि बाधकाभावात् । न च यत्र महानसीय-
वज्ज्ञादेर्वाधज्ञानं तत्रैव सामान्यपरामर्शात् पर्वतीयवक्लिमात्रभा-
नसम्भव इति वाच्यं । बाधज्ञानं हि वक्लित्वरूपेण, तत्तद्वक्लित्वरूपेण,
पर्वतीयवज्ज्ञातिरिक्तवक्लित्वरूपेण वा, नाद्यः तत्सत्त्वे^(१) पर्वतीयवक्लेरपि
भानासम्भवात् । नान्यौ समानप्रकारकबाधज्ञानस्यैव प्रतिबन्धकतया
तत्सत्त्वेऽपि वक्लित्वरूपेण महानसीयादिवक्लिभानसम्भवात्^(२) । अत एव
यत्र वक्लिव्याप्यधूमवान् पर्वत इति सामान्यपरामर्शादेव पर्वतीयवज्ज्ञा-
तिरिक्तवज्ज्ञाभाववान् पर्वत इति बाधज्ञानसहकारेण तज्ज्ञापकतानव-
च्छेदकपर्वतीयवक्लित्वप्रकारेण पर्वतीयवक्लेरनुमितिस्तत्रापि वक्लित्व-
रूपेण सर्वस्य वक्लेरवश्यं भानं सामग्रीसत्त्वात् अनुमितेर्द्विविधविष-
यत्वस्येष्टत्वात् । अत एव वक्लिव्याप्यधूमवान् पर्वतो वक्लिमानिति सिद्धा-
त्मकपरामर्शात् पर्वतीयवज्ज्ञातिरिक्तवज्ज्ञाभाववान् पर्वत इति बाध-
ज्ञानसहकारेण पर्वतः पर्वतीयवक्लिमानिति नानुमितिः तादृशबाध-
ज्ञानजन्यानुमितेर्वक्लिवादिव्यापकतावच्छेदकधर्मावच्छिन्नविधेयता-
नियमेन व्यापकसामग्रीविरहात् । तथापि यत्र उद्बोधकमहिम्ना
वक्लित्वरूपेण पर्वतीयवक्लिमात्रविषयकस्मरणात्मकः परामर्शस्तत्रैव
सामान्यपरामर्शात् पर्वतीयवक्लिमात्रविषयकानुमितिसम्भवः विशे-
षणज्ञानाभावेन वज्ज्ञान्तरभानासम्भवात् । न च विशेषणंशेऽन्याप्रका-
रकविशिष्टप्रत्यक्षं प्रति विशेषणज्ञानस्य हेतुत्वेऽपि सर्वत्र तद्धेतुत्वे

(१) तत्सत्त्वे वक्लित्वरूपेण वक्लेरभावज्ञानसत्त्वे इत्यर्थः ।

(२) वक्लित्वरूपेण वक्लिमत्त्वज्ञानं प्रति वक्लिसामान्याभाववत्त्वज्ञानस्यैव
विरोधित्वमिति भावः ।

मानाभाव इति वाच्यम् । सर्वत्र विशिष्टानुभव एव विशेषणज्ञानं
हेतुरिति सम्प्रदायमतेनैतदभिधानात् ।

यदा पर्वतीयवक्त्रिकल्पने लाघवं तदन्यवक्त्रिकल्पने च गौर-
वमिति ज्ञानस्य पर्वतीयवज्रतिरिक्तसिद्धौ प्रतिबन्धकतया तत्सत्त्व-
दशायामेव सामान्यपरामर्शादपि पर्वतीयवक्त्रिमात्रविषयकानु-
मितिसम्भवः ।

केचित् तु यत्र वक्त्रिव्याप्यधूमवान् पर्वतो वक्त्रिमानिति सिद्धा-
त्मकपरामर्शः ततः पर्वते पर्वतीयवज्रानुमितिर्जायतामिति सिषाध-
यिषा तत्रैव सामान्यपरामर्शादपि पर्वतीयवक्त्रिमात्रविधेयकानु-
मितिसम्भवः सिद्धेः प्रतिबन्धकतया वज्रान्तरभानासम्भवादित्याहुः ।

अजवस्तु यदा वक्त्रिव्याप्यधूमवान् पर्वत इति परामर्शः पर्वतः पर्व-
तीयवक्त्रेतरवज्रभाववान् इति बाधज्ञानञ्च वर्तते तदा पर्वतीय-
वक्त्रित्वेन न पर्वतीयवक्त्रेर्भानमनुमितेर्व्यापकतावच्छेदकप्रकारकत्व-
नियमादपि तु वक्त्रित्वरूपेणैव पर्वतीयवक्त्रिमात्रभानमिति तद्वर्त्मा-
वच्छिन्नेतरबाधज्ञानस्य भिन्नप्रकारकत्वेऽपि सामान्यरूपेण तद्वर्त्मा-
वच्छिन्नेतरविधेयकानुमितित्वावच्छिन्नं प्रत्यतिरिक्तप्रतिबन्धकत्वकल्प-
नादिति प्राचीनमतमभिप्रत्येवेदं दूषणमित्याहुः । तादृशप्राचीन-
मतविचारश्चास्मत्कृतसिद्धान्तरहस्येऽनुसन्धेयः ।

इदन्त्वधेयं तादृशानुमितिषु महानसीयवज्रादेरसाध्यताया-
मिष्टापत्तेः सुकरत्वान्मूलोक्तमिदमसंगतमिति दिक् ।

तटस्थः शङ्कते, 'न चेति, 'सामान्यतः' व्याप्तिपदवाच्यत्वप्रकारेण,
'परस्य' नन्वनुमितिहेतुव्याप्तिज्ञाने का व्याप्तिरिति जिज्ञासोः

परस्य, 'दूषणेन' अव्याप्त्यादिलक्षणदूषणेन, 'असाधकतां' अनुमित्य-
प्रयोजकतां, उक्तव्याप्तीनामिति शेषः । तथाच किं व्याप्तिनिरूपणे-
नेति भावः । 'स्वार्थेति स्वस्मिन् स्वीये शिष्यादौ अर्थः प्रयोजनं
यस्य तादृशं यदनुमानं व्याप्तिज्ञानं शिष्यादेर्व्याप्तिज्ञानमिति यावत्,
तदुपयोगि यदिदं व्याप्तिस्वरूपनिरूपणं तद्विनेत्यर्थः, 'कथायामिति
स्वीयस्य शिष्यादेरित्यादिः, 'कथा' विचारः, 'अप्रवेशात्' प्रवेशा-
सम्भवात्, व्याप्तिनिरूपणं विना शिष्यादेर्व्याप्तिज्ञानासम्भवेन सङ्घे-
त्वासङ्घेतुत्वपरिचयस्यैवाशक्यतया हेतुदाहरणप्रयोगस्यैवासम्भवादि-
त्यर्थः, तथाच न केवलमिह परप्रश्नसमाधितया व्याप्तिनिरूपण-
मपि तु शिष्याणां व्याप्तिस्वरूपज्ञानं विना कथायां प्रवेशो न
सम्भवतीत्येतदर्थमपीति भावः ।

इति श्रीमथुरानाथ-तर्कवागीशविरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये
अनुमानाख्यद्वितीयखण्डरहस्ये व्याप्तिवादे पूर्वपक्षरहस्यम् ।

अथ सिद्धान्तलक्षणम् ।



अत्रोच्यते । प्रतियोग्यसमानाधिकरणयत्समानाधिक-
रणात्यन्ताभावप्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नं यन्न
भवति तेन समं तस्य सामानाधिकरण्यं व्याप्तिः ।

इति श्रीमद्भट्टशेषाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ
अनुमानाख्यद्वितीयखण्डे सिद्धान्तलक्षणम् ।

अथ सिद्धान्तलक्षणरहस्यम् ।

‘प्रतियोग्यसमानाधिकरणेति, ‘यत्पदं हेतुत्वेनाभिमतपरं,
द्वितीययत्पदं साध्यतावच्छेदकपरं, ‘प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नं’
प्रतियोगितावच्छेदकस्वरूपं, ‘यन्न भवति’, ‘तेन समं सामानाधिकरण्यं’
तदवच्छिन्नेन समं सामानाधिकरण्यं, ‘तस्य’ हेतोः, ‘व्याप्तिरिति यो-
जना, तद्वर्त्मानवच्छिन्नेन सह तस्य हेतोर्व्याप्तिरित्यर्थः । भवति च वक्लि-
मान् धूमादित्यादौ धूमसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगितानव-
च्छेदकं वक्लित्वं तदवच्छिन्नसमानाधिकरणो धूमः, धूमवान् वक्लेरि-
त्यादौ वक्लिसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगितावच्छेदकमेव धूम-
त्वमिति नातिप्रसङ्गः । प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नेत्यादि यथाश्रुतन्तु
न सङ्गच्छते वक्लिमान् धूमादित्यादौ सर्वेषामेव वक्लीनां हेतुसमा-

नाधिकरणाभावप्रतियोगितावच्छेदकतत्तद्वह्नि-वह्नि-जलोभयत्वा-
द्यवच्छिन्नत्वादसम्भवापत्तेः । न चैवमपि वह्निसमानाधिकरणात्यन्ता-
भावप्रतियोगितानवच्छेदकं प्रमेयत्वं तदवच्छिन्नधूमसमानाधिकरणो
वह्निरित्यतिव्याप्तिरिति वाच्यं । व्यभिचारिणोऽपि वह्न्यादेः प्रमेयत्वा-
दिरूपेण धूमादेर्व्याप्यत्वाभ्युपगमात् धूमत्वेनैव धूमो न वह्निव्यापकः प्रमे-
यत्वादिना तु व्यापको भवत्येव । अत्र सत्तावान् द्रव्यत्वादित्यादिव्यति-
रेकिसाध्यके^(१) साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिकसाध्यसा-
मान्याभावमादायाव्याप्तिवारणाय हेतुसमानाधिकरणत्वमित्यन्ताभाव-
विशेषणं, तच्च हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेन हेतुतावच्छेदकावच्छिन्नहेतोर्य-
दधिकरणं तत्र येन केनापि सम्बन्धेन वर्तमानत्वं, अन्यथा इदं गगनं
गगनत्वप्रकारकप्रमात इत्यादौ विशेष्यतासम्बन्धेन हेतुतायां समवाय-
सम्बन्धेन हेत्वधिकरणे आत्मनि वर्तमानस्य गगनत्वसामान्याभावस्य
प्रतियोगितावच्छेदकमेव गगनत्वत्वमित्यव्याप्तिः स्यात् स्याच्च द्रव्यं गुण-
कर्मान्यत्वविशिष्टसत्त्वादित्यादौ हेतुभूतसत्ताधिकरणे गुणे वर्तमानस्य
द्रव्यत्वसामान्याभावस्य प्रतियोगितावच्छेदकमेव द्रव्यत्वत्वमित्यव्याप्तिः ।
न च हेतौ साध्यसामान्याभावस्य प्रतियोग्यसामानाधिकरणविरहात्

(१) केवलान्वयिसाध्यके साध्यसामान्याभावाप्रसिद्ध्या तमादाय तच्चा-
व्याप्तिर्न सम्भवतीत्यत उक्तं व्यतिरेकिसाध्यके इति । वह्निमान् धूमादि-
त्यादौ प्रसिद्धस्थले संयोगेन वह्नेरव्याप्यवृत्तितया हेतुसमानाधिकरणात्-
निवेशेऽपि अव्याप्तिपरीहारात् सत्तावान् द्रव्यत्वादित्यादिव्याप्यवृत्तिसाध्य-
कस्थलानुसरणं । समवायेन साध्यतायासुक्तस्थलस्य प्रसिद्धस्थलत्वमिति
केचित् ।

प्रतियोग्यसमानाधिकरणत्वस्य हेतोर्विशेषणत्वेनैव नैतदव्याप्तिद्वयाव-
काश इति वाच्यम् । प्रथमे आत्मरूपहेत्वधिकरणमादाय द्वितीयं
गुणादिमादाय वक्ष्यमाणक्रमेण वक्ष्यमाणद्विविधप्रतियोग्यसामा-
नाधिकरणस्यैव साध्याभावस्य^(१) हेतौ सत्त्वात् तच्चानुपदं स्फुटीभवि-
ष्यति । अधिकरणत्वञ्च सम्बन्धितमात्रं तेन तादात्म्यादिवृत्त्यनियामक-
सम्बन्धेन हेतुतायां हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेन हेत्वधिकरणत्वाप्रसिद्धा-
वपि नाव्याप्तिः । सम्बन्धितञ्च धर्मित्वं तच्च वृत्तिनियामकानियामक-
सम्बन्धमात्रनिरूपितसम्बन्धितमात्रसाधारणो धर्म-धर्मिभावाख्यः स्वरूप-
सम्बन्धविशेषः, न त्वाधारमात्रवृत्तिः । अत एवागृहीतासंसर्गकधर्म-
धर्मिभावगोचरैकज्ञानत्वं विशिष्टज्ञानत्वमिति मीमांसकाः, अन्यथा
घटस्य ज्ञानं चैत्रस्य धनमित्यादिविषयित्व-स्वत्वादिवृत्त्यनियामक-
सम्बन्धसंसर्गकविशिष्टप्रत्यक्षादौ तत्तत्क्षणाव्याप्यापत्तेः^(२) । एतेन हेतु-
तावच्छेदकसम्बन्धेन हेतुतावच्छेदकावच्छिन्नहेतोरधिकरणत्वविवक्षणे
वृत्त्यनियामकसम्बन्धेन हेतुतायामव्याप्तिः तादृशहेतोः सम्बन्धित-
मात्रविवक्षणे च द्रव्यं विशिष्टसत्त्वादित्यादौ अव्याप्तिस्तदवस्था गुणादौ
विशिष्टनिरूपिताधारताविरहेऽपि तत्सम्बन्धितायाः सत्त्वादित्यपि
निरस्तं । विशिष्टनिरूपिताधारतावद्विशिष्टनिरूपिताया धर्मितापर-

(१) साध्याभावस्य प्रतियोग्यसमानाधिकरणस्यैवेति योजना ।

(२) धर्म-धर्मिभावाख्यस्वरूपसम्बन्धविशेषस्य आधारमात्रवृत्तित्वे
घटस्य ज्ञानं चैत्रस्य धनमित्यादिविशिष्टप्रत्यक्षे विषयित्व-स्वरूपवृत्त्य-
नियामकसम्बन्धावच्छिन्नाधारत्वाप्रसिद्ध्या धर्म-धर्मिभावगोचरत्वविरहेण
धर्म-धर्मिगोचरैकज्ञानत्वरूपविशिष्टज्ञानलक्षणाव्याप्तापत्तिरिति भावः ।

नाम्न्याः सम्बन्धिताया अपि विलक्षणतया गुणादावसत्त्वात् । सत्त्ववान्
द्रव्यत्वादित्यादौ द्रव्यत्वाद्यधिकरणे महाकालादौ कालिकविशे-
षणतादिना वर्त्तमानस्य सत्त्वादिसामान्याभावस्य प्रतियोगिताव-
च्छेदकमेव सत्त्वत्वमित्यव्याप्तिः, एवं कपिसंयोगौ एतत्त्वादित्याद्यव्याप्य-
वृत्तिसाध्यकेऽव्याप्तिश्च साध्यसामान्याभावस्यापि निरुक्तहेतुसामानाधि-
करणादतः 'प्रतियोग्यसमानाधिकरणेति यत्पदार्थस्य हेतोर्विशेषणं,
तथाच स्वप्रतियोग्यसमानाधिकरणस्य हेतुतावच्छेदकावच्छिन्नहेतो-
र्हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेन सम्बन्धिनि येन केनापि सम्बन्धेन वर्त्तमानो
योऽभावस्तत्प्रतियोगितानवच्छेदकं यदित्यर्थः, स्वपदमभावपरम् । न
च साध्य-साधनभेदेन व्याप्तिभेदात् व्याप्यवृत्तिसाध्यके नेदं विशेषणं
सफलं अभावीयविशेषणताविशेषसम्बन्धेन साध्याभाववृत्तिसाध्यैयप्र-
तियोगित्व-तदवच्छेदकत्वान्यतरावच्छेदकसम्बन्धेन वा^(१) हेत्वधिकरण-
वृत्तित्वविवक्षणादेव साध्याभावस्य यथाकथञ्चित्सम्बन्धेन हेत्वधिकरण-
वृत्तितामादाय व्याप्यवृत्तिव्यतिरेकिसाध्यकमात्राव्याप्तेर्वारणसम्भवा-

(१) अभावीयविशेषणताविशेषसम्बन्धेन हेत्वधिकरणवृत्तित्वोक्तौ द्रव्य-
त्वाभाववान् सत्त्वादित्यादौ अव्याप्तिः द्रव्यत्वरूपसाध्याभावस्य अभावीय-
विशेषणताविशेषसम्बन्धेनावर्त्तमानत्वात् अतः साध्याभाववृत्तीत्यादि, इत्यस्य
साध्यादिभेदेन व्याप्तेर्भेदात् भावसाध्यकस्थले अभावीयविशेषणताविशेष-
सम्बन्धेनैव हेत्वधिकरणवृत्तित्वं, अभावसाध्यकस्थले यथायथं संयोग-सम-
वायादिसम्बन्धेनैव हेत्वधिकरणवृत्तित्वं शब्दैक्यस्यानुपादेयत्वात् । न तु
साध्याभाववृत्तिसाध्यैयप्रतियोगित्व-तदवच्छेदकत्वान्यतरावच्छेदकसम्बन्धत्वेन
तादृशसम्बन्धस्य व्याप्तिलक्षणघटकत्वं प्रतियोग्यसामानाधिकरण्यनिवेशा-
पेक्षया महागौरवापत्तेः इति तात्पर्यम् ।

दिति वाच्यं । तत्राप्येतद्विशेषणानुपादाने साध्याभावस्याव्याप्यवृत्तित्व-
 भ्रमेण हेतुसामानाधिकरणभ्रमेऽनुमित्यनुदयापत्तेः, हेतुसमानाधि-
 करणभावप्रतियोगितायां साध्यतावच्छेदकावच्छेद्यत्वग्रहे तादृशप्रति-
 योगितासामान्ये साध्यतावच्छेदकावच्छेद्यत्वाभावग्रहामभावात् प्रकृत-
 लक्षणे वक्ष्यमाणयुक्त्या तथैव विवक्षणीयत्वात् इति भावः । स्वप्रतियो-
 ग्यसमानाधिकरणत्वञ्च न स्वप्रतियोग्यधिकरणे केनापि सम्बन्धेन वर्तते
 यत्तदन्यत्वं संयोगी सत्त्वादित्यादावतिव्याप्तेः सत्ताया द्रव्ये संयोगा-
 भावस्य प्रतियोगिसमानाधिकरणत्वात्, किन्तु स्वप्रतियोग्यधिकरणे
 केनापि सम्बन्धेन वर्तमानत्वसामान्याभावः, तथाच सामानाधिकरण-
 स्याव्याप्यवृत्तितया सत्ताया गुणादावेव संयोगसामानाधिकरण्याभाव-
 वत्त्वमतो नातिव्याप्तिः । एतेन इदं वाच्यं ज्ञेयत्वादित्यादौ तादृशा-
 भाव एवाप्रसिद्धः यदभावप्रतियोग्यसमानाधिकरणं ज्ञेयत्वमित्यपि
 निरस्तं । सामानाधिकरणस्याव्याप्यवृत्तितया सामान्यत्वाद्यभावस्यैव
 तादृशस्य प्रसिद्धत्वात् । न चैवं वज्जेरव्याप्यवृत्तितया वज्जिमान् धूमा-
 दित्यादावव्याप्तिः हेतुसमानाधिकरणस्य साध्यसामान्याभावस्यापि
 धूमावयवावच्छेदेन प्रतियोगिसमानाधिकरण्याभावस्य धूमादौ सत्त्वा-
 दिति वाच्यं । स्वप्रतियोग्यधिकरणे वर्तमानत्वसामान्याभावविशिष्ट-
 हेतुतावच्छेदकावच्छिन्नहेतोर्हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेनाधिकरणत्वस्य वि-
 वक्षितत्वात् । इत्यञ्च वज्जिमान् धूमादित्यादौ वज्जादिसामान्याभा-
 वस्य प्रतियोग्यधिकरणवृत्तित्वाभावविशिष्टहेतुतावच्छेदकावच्छिन्न-
 हेतोर्हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेनाधिकरणमेवाप्रसिद्धमतः अभावान्तरस्यैव
 लक्षणघटकत्वान्नाव्याप्तिः ।

केचित्तु प्रतियोग्यसमानाधिकरणेत्यन्ताभावविशेषणं । न चैवं कपिसंयोगी एतद्वृत्तत्वादित्यादावव्याप्तिस्तदवस्था संयोगी सत्त्वादित्यादावतिव्याप्तिवारणाय सामानाधिकरणस्याव्याप्यवृत्तित्वाभ्युपगमावश्यकतया हेतुसमानाधिकरणकपिसंयोगाभावस्यापि गुणादौ प्रतियोग्यसमानाधिकरणत्वादिति वाच्यं । स्वप्रतियोग्यसमानाधिकरणविशिष्टेऽभावे हेत्वधिकरणवृत्तित्वाया विवक्षितत्वादित्याहुः । तदसत् विशिष्टस्यानतिरिक्ततया गुणाद्यन्यत्वविशिष्टसत्ताया गुणादिवृत्तित्ववत्प्रतियोगिसामानाधिकरण्याभावविशिष्टकपिसंयोगाभावस्यापि एतद्वृत्तित्वात् । न च हेत्वधिकरणावच्छेदेन प्रतियोगिसामानाधिकरणसामान्याभाववत्त्वं विवक्षितमेतस्माभायैव च हेतुसमानाधिकरणमिति वाच्यं । कुसृष्टिकल्पनापत्तेः । वस्तुतस्तु प्रतियोग्यसमानाधिकरणत्वं न प्रतियोग्यधिकरणवृत्तित्वाभावः सत्तायां गुणे न संयोगाभावप्रतियोगिसामानाधिकरणमिति प्रतीतेर्गुणादौ सत्तानिष्ठतादृशसमानाधिकरणत्वस्यावच्छेदकतासम्बन्धेनाभावविषयकतया सामानाधिकरणस्याव्याप्यवृत्तित्वे मानाभावेन संयोगी सत्त्वादित्यादावतिव्याप्तेः, किन्तु प्रतियोग्यनधिकरणे येन केनापि सम्बन्धेन वर्तमानत्वं तदपि हेतुविशेषणं न तु अभावविशेषणं कपिसंयोगी एतद्वृत्तत्वादित्यादावव्याप्तेस्तादवस्थ्यात् हेतुसमानाधिकरणकपिसंयोगाभावस्यापि प्रतियोग्यनधिकरणगुणादिवृत्तित्वात्, विशिष्टस्यानतिरिक्ततया प्रतियोग्यनधिकरणवृत्तित्वविशिष्टस्याभावस्य हेत्वधिकरणवृत्तित्वाविवक्षणेऽप्यऽनिस्तारात् । न च निरुक्तप्रतियोग्यनधिकरणवृत्तित्वस्य हेतुविशेषणत्वेऽपि वज्जेरव्याप्यवृत्तितया वज्जिमान् धूमा-

दित्यादावव्याप्तिः धूमादेर्धूमादिममानाधिकरणवज्ज्ञादिसामान्या-
 भावस्यापि प्रतियोग्यनधिकरणे धूमावयवादौ वृत्तेः, कपिसंयोगी
 एतद्वृत्तत्वविशिष्टसत्त्वादित्यादावव्याप्तिः निरुक्तहेतुममानाधिकरणो-
 ऽभावः कपिसंयोगसामान्याभावः विशिष्टस्थानतिरिक्ततया तत्प्रति-
 योग्यनधिकरणगुणादिवृत्तिरपि हेतुतावच्छेदकविशिष्टहेतुः तत्प्रति-
 योगितावच्छेदकत्वात् कपिसंयोगत्वस्येति वाच्यं । निरुक्तप्रतियोग्य-
 नधिकरणवृत्तित्वविशिष्टहेतुतावच्छेदकावच्छिन्नहेतोर्हेतुतावच्छेदक-
 सम्बन्धेनाधिकरणत्वस्य विवक्षितत्वात् । एवञ्च वक्षिमान् धूमात्
 कपिसंयोगी एतद्वृत्तत्वविशिष्टसत्त्वादित्यादौ^(१) वक्षि-कपिसंयोगादि-
 सामान्याभावस्य प्रतियोग्यनधिकरणवृत्तित्वविशिष्टहेतुतावच्छेदक-
 विशिष्टहेतोर्हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेनाधिकरणमेवाप्रसिद्धमित्यभावा-
 न्तरस्यैव लक्षणघटकत्वान्नाव्याप्तिः । इत्यञ्च प्रतियोग्यनधिकरणं
 यद्धेतुतावच्छेदकसम्बन्धेन हेतुतावच्छेदकविशिष्टहेत्वधिकरणं तत्र
 येन केनापि सम्बन्धेन वर्त्तमानो योऽभाव इत्यभावान्तार्थनिष्कर्षः
 प्रतियोग्यनधिकरणहेत्वधिकरणस्यैव प्रतियोग्यनधिकरणवृत्तित्व-
 विशिष्टहेत्वधिकरणतया वृत्तित्वपर्यन्तप्रवेशे गौरवात् प्रयोजना-
 भावाच्च । अत्र प्रतियोग्यनधिकरणत्वं प्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धेन
 यत्प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिसम्बन्धि तदन्यत्वं, अन्यथा
 ज्ञानवान् द्रव्यत्वात् वक्षिमान् धूमादित्यादौ समवायेन ज्ञान-
 वज्ज्ञादेः साध्यतायामिदं वाच्यं ज्ञेयत्वादित्यादौ कालिकसम्बन्धेन
 वाच्यत्वादेः साध्यतायाञ्चातिव्याप्यापत्तेः हेतुसमानाधिकरणस्य

(१) एतत्त्वविशिष्टसत्त्वादित्यादाविति क० ।

समवायसम्बन्धावच्छिन्नज्ञान-वज्राद्यभावस्य कालिकसम्बन्धावच्छिन्न-
वाच्यत्वाद्यभावस्य च विषयत्व-संयोग-विशेषणताविशेषसम्बन्धेन प्रति-
योग्यधिकरणमेव हेत्वधिकरणमित्यभावान्तरा एव तादृशः तत्प्रति-
योगितानवच्छेदकत्वात् ज्ञानत्व-वज्रित्व-वाच्यत्वत्वादेः । गुण-कर्मान्य-
त्वविशिष्टसत्तावान् जातेः भूतत्व-मूर्तत्वोभयवान् मूर्तत्वादित्यादाव-
तिव्याप्यापत्तेश्च हेतुसमानाधिकरणस्य विशिष्टसत्तात्वावच्छिन्नाभावस्य
प्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धेन प्रतियोग्यधिकरणमेव हेत्वधिकरण-
मित्यभावान्तर एव तादृशः तत्प्रतियोगितानवच्छेदकत्वादिविशिष्ट-
सत्तात्वादेः । विषयितादिवृत्त्यनिधामकसम्बन्धेन घटादेः साध्यतायां
ज्ञानत्वादिहेतौ विषयितादिसम्बन्धावच्छिन्नघटाद्यभावस्य प्रतियो-
गितावच्छेदकसम्बन्धेन प्रतियोग्यधिकरणप्रसिद्धाऽतिव्याप्यापत्ति-
रतोऽधिकरणत्वमपहाय सम्बन्धित्वानुधावनम् ।

केचित्तु प्रतियोग्यनधिकरणत्वं साध्यतावच्छेदकसम्बन्धेन यत्प्र-
तियोगितावच्छेदकावच्छिन्नस्य सम्बन्धि तदन्यत्वं तावतापि ज्ञान-
वान् द्रव्यत्वादित्यादावतिव्याप्तिवारणसम्भवादित्याहुः । तदसत् विष-
यित्व-कालिकविशेषणत्वादिसम्बन्धेन^(१) घटादेः साध्यतायां नित्यज्ञा-
नत्व-महाकालत्वादिहेताव्याप्यापत्तेः हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेन हेत्व-
धिकरणस्य साध्यतावच्छेदकविषयित्वादिसम्बन्धेनाभावमात्रस्यैव प्रति-

(१) विषयित्वादेः संसर्गत्वानभ्युपगमे अव्याप्तिदानार्थं कालिकसम्बन्धानु-
सरणं कालो हि जगदाधार इति प्रतीत्यनुरोधेन कालिकसम्बन्धस्य
संसर्गत्वमवश्यमभ्युपेयमिति ।

योगिसम्बन्धितया तादृशाभावाप्रसिद्धेः प्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धेन
तथात्वाभिधाने च सम्बन्धान्तरावच्छिन्नाभावमादायैव प्रसिद्धिरि-
त्यनुपदं वक्ष्यामः ।

प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नत्वञ्च प्रतियोगितावच्छेदकताव-
च्छेदकसम्बन्धेन बोध्यं तेन गुण-कर्मान्यत्वविशिष्टमत्तावान् सत्त्वा-
दित्यादौ हेत्वधिकरणस्य गुण-कर्मादेः स्वरूपसम्बन्धेन गुण-कर्मा-
न्यत्ववतः सत्त्वादेः समवायसम्बन्धेनाधिकरणत्वेऽपि^(१) नातिव्याप्तिः ।
ननु तथापि प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नासम्बन्धित्वं किं प्रति-
योगितावच्छेदकावच्छिन्नस्य यस्य कस्यचिदसम्बन्धित्वं, प्रतियोगि-
तावच्छेदकावच्छिन्नसामान्यासम्बन्धित्वं वा, प्रतियोगितावच्छेदकयत्-
किञ्चिदवच्छिन्नसामान्यासम्बन्धित्वं वा, आद्ये कपिसंयोगी एतद्-
वृत्तादित्यादावव्याप्तिः कपिसंयोगत्वावच्छिन्नयत्किञ्चित्कपिसंयोगा-
सम्बन्धित्वादेतद्वृत्तस्य, द्वितीये वक्त्रिमान् धूमादित्यादावसम्भवः यतः
एवमभावो नास्ति यस्य प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नसामान्यासम्बन्धी
हेतुसम्बन्धी पर्वतादिः, जलत्वाद्यभावनिष्ठस्याकाशाभावादिभेदस्या-
भावाधिकरणकाभावत्वेनाधिकरणस्वरूपतया आकाशाभावादिरपि
जलत्वाद्यभावप्रतियोगी तत्सम्बन्धित्वात् पर्वतादेः । न च द्रव्यत्वा-
द्यात्मकभावरूपाभाव एव तादृशः प्रसिद्ध इति वाच्यं । भाव-
स्यापि स्वसमानाधिकरणान्योन्याभावभिन्नत्वात्तद्भेदस्य चाधि-
करणस्वरूपानतिरेकितया अन्योन्याभावरूपप्रतियोगिसम्बन्धिहेतु-

(१) सामानाधिकरण्यसम्बन्धेन गुण-कर्मान्यत्वविशिष्टसत्ताधिकरणत्वस्यैव
विशिष्टाधिकरणतात्वमिति भावः ।

सम्बन्धिकत्वात्, अन्योन्याभावान्तरस्याधिकरणतिरिक्तत्वेऽपि अन्योन्या-
भावान्योन्याभावस्याधिकरणस्वरूपानतिरिक्तत्वात्^(१) । न च नव्यनये
अभावाधिकरणकाभावस्यान्योन्याभावान्योन्याभावस्य चाधिकरणस्वरू-
पत्वाभावादत्यन्ताभावत्वनिरूपितप्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नसामा-
न्यासम्बन्धित्वस्य विवक्षितत्वाद्वा^(२) नाप्रसिद्धिरिति वाच्यं । तथापि
सर्वेषामेव भावरूपाणामभावरूपाणां वा अभावानां पूर्वक्षणादियत्कि-
ञ्चिद्वृत्तित्वविशिष्टस्वाभावात्यन्ताभावात्मकत्वस्य सर्वसिद्धतया तादृश-
स्वाभावरूपप्रतियोग्यधिकरणमेव हेतुधिकरणमित्यप्रसिद्धेर्दुर्वारत्वात्
पूर्वक्षणादिवृत्तित्वविशिष्टानां घटादिवृत्तित्वविशिष्टानां वा जल-
त्वाभावादीनामभावाभावस्य विशिष्टजलत्वाभावादेः केवलजलत्वा-
भावाद्यनतिरिक्तत्वात् । तृतीये घटत्वाभावो घटत्वाभावत्वादित्यादौ
तादात्म्यसम्बन्धेन अभावसाध्यकेऽव्याप्तिः गोत्वादिरूपयत्किञ्चित्प्रति-
योगितावच्छेदकावच्छिन्नासम्बन्धिहेतुसम्बन्धिनिष्ठस्य गवादिभेदस्य
प्रतियोगितावच्छेदकत्वाद्घटत्वाभावत्वादेः, प्राचां मतेऽभावाधि-
करणकाभावप्रतियोगिकाभावस्याधिकरणस्वरूपानतिरेकितया गवा-
दिभेदे वर्तमानस्य घटत्वाभावादिभेदस्य गवादिभेदस्वरूपत्वात् ।

(१) अन्योन्याभावान्योन्याभावस्यातिरिक्तत्वे तदन्योन्याभावस्याप्यतिरिक्त-
त्वमित्यनवस्था स्यादतः अन्योन्याभावान्योन्याभावस्याधिकरणस्वरूप-
त्वमिति तात्पर्यम् ।

(२) आकाशाभावादिनिष्ठजलत्वाभावीयप्रतियोगित्वं अन्योन्याभावत्वनि-
रूपितं न त्वत्यन्ताभावत्वनिरूपितमिति न दोषः ।

कपिसंयोगाभावे^(१) साध्ये आत्मत्व-द्रव्यत्वादिहेतावव्याप्तिश्च आ-
 त्मत्वादिसमानाधिकरणकपिसंयोगाभावाभावस्य कपिसंयोगस्य गु-
 णसामान्याभावत्व-समवेतसामान्याभावत्वरूपयत्किञ्चित्प्रतियोगिताव-
 च्छेदकावच्छिन्नसामान्यासम्बन्धित्वादात्मादेरिति । मैवं, स्वावच्छेदक-
 सम्बन्धेन स्वावच्छेदकावच्छिन्नसामान्यासम्बन्धिनिरुक्तहेतुसम्बन्धिनि-
 ष्ठाभावनिरूपिता या या प्रतियोगिता तदनवच्छेदकत्वस्य विवक्षि-
 तत्वात्, स्वपदं प्रतियोगितापरं । इत्थञ्च वक्षिमान् धूमादित्यादौ
 जलत्वाद्यभावस्य जलत्वादिनिष्ठजलत्वत्वाद्यवच्छिन्नप्रतियोगिताव्यक्तय-
 एव तादृश्यः प्रसिद्धाः, प्रतियोगितावच्छेदकभेदेन प्रतियोगिताभे-
 दात्, तदवच्छेदकञ्च न वक्षित्वादिकमिति नासम्भवः । घटत्वाभावो
 घटत्वाभावत्वादित्यादौ च घटत्वाभावत्वावच्छिन्ना घटत्वाभावनिष्ठा
 गवादिभेदनिरूपिता प्रतियोगिताव्यक्तिर्न तादृशी, किन्तु गवा-
 दिनिष्ठगोत्वाद्यवच्छिन्नतदीयप्रतियोगिताव्यक्तिरेव तादृशी तद-
 नवच्छेदकमेव घटाभावत्वमिति नाव्याप्तिः । एवं कपिसंयोगा-
 भावान् आत्मत्वादित्यादावपि कपिसंयोगाभावत्वावच्छिन्ना कपि-
 संयोगाभावनिष्ठा कपिसंयोगनिरूपिता प्रतियोगिताव्यक्तिर्न ता-
 दृशी, किन्तु गुणादिसामान्याभावनिष्ठगुणसामान्याभावत्वाद्यव-
 च्छिन्नतदीयप्रतियोगिताव्यक्तिरेव तादृशी तदनवच्छेदकमेव कपि-
 संयोगाभावत्वमिति नाव्याप्तिः ।

(१) अभावाधिकरणकाभावप्रतियोगिकाभावस्य अधिकरणस्वरूपत्वान-
 भ्युपगमे अव्याप्तिमाह कपिसंयोगाभाव इति ।

वस्तुतस्तु स्वावच्छेदकसम्बन्धेन स्वावच्छेदकावच्छिन्नसामान्या-
सम्बन्धिनिरुक्तहेतुसम्बन्धिका या या प्रतियोगिता तदनवच्छेदकं
यदित्येव विवक्षणीयं, अभावनिवेशे प्रयोजनविरहादिति तत्त्वम्^(१) ।

तादृशी या या प्रतियोगिता तदनाश्रयो यत्तेन समं सामा-
नाधिकरणमित्युक्तावसम्भवः वक्षिमान् धूमादित्यादौ सर्वेषामेव
वक्षीनां तत्तद्वक्षिणोभयत्वाद्यवच्छिन्नप्रतियोगितायास्तादृश्या आ-
श्रयत्वाद्तोऽवच्छेदकानुधावनं । नन्वेवमपि वक्षिमान् धूमादि-
त्यादावसम्भवः वक्षित्वादेर्नहानमौयत्वविशिष्टवक्षित्वाद्यवच्छिन्न-
प्रतियोगितायास्तादृश्या अवच्छेदकत्वात् विशिष्टस्यावच्छेदकत्वे तद्व-
टकतया विशेष्यस्याप्यवच्छेदकत्वात् । अथानवच्छेदकत्वं पर्याप्त्या-
ख्यसम्बन्धेनावच्छेदकताशून्यत्वं तथाच वक्षित्वादिकं केवलं न
महानमौयत्वविशिष्टवक्षित्वाद्यवच्छिन्नप्रतियोगिताया अवच्छेदकता-
पर्याप्त्यधिकरणमतो नामम्भवः । न च तथापि दण्डिमान् दण्डि-

(१) अनुगमप्रणाली च हेत्वधिकरणवृत्तिप्रतियोगितानवच्छेदकसाध्यता-
वच्छेदकावच्छिन्नसामानाधिकरणमित्यादिरूपा, प्रतियोगितायां हे-
त्वधिकरणवृत्तित्वं स्वविशिष्टाधिकरणत्वसम्बन्धावच्छिन्नस्वनिष्ठावच्छे-
दकताकमेवत्वसम्बन्धेन अधिकरणत्वे स्वविशिष्टं स्वावच्छेदकसम्ब-
न्धावच्छिन्नत्व-स्वावच्छेदकधर्मावच्छिन्नलोभयसम्बन्धेन इति, हेत्वधि-
करणवृत्तिप्रतियोगितानवच्छेदकेत्यनेन तादृशप्रतियोगितावच्छेदक-
त्वसामान्याभावस्य विवक्षणात् धूमवान् वक्षेरित्यादौ धूमत्वस्य
यत्किञ्चित्प्रतियोगितानवच्छेदकत्वेऽपि नातिव्याप्तिरिति ।

संयोगादित्यादिनानाव्यक्तिसाध्यतावच्छेदकस्थलेऽव्याप्तिः^(१) साध्यता-
वच्छेदकौभूतानां सर्व्वासामेव दण्डव्यक्तीनां चालनीन्यायेन दण्डि-
संयोगवन्निष्ठ-तत्तद्दण्डावच्छिन्न-प्रतियोगिताक-तत्तद्दण्डभावप्रति-
योगितायास्तादृश्या अवच्छेदकतापर्याप्त्याधिकरणत्वादिति वाच्यं ।
जात्यखण्डोपाध्यतिरिक्तपदार्थस्य स्वरूपतोऽभावप्रतियोगितानव-
च्छेदकतया दण्डव्यक्तीनां पर्याप्त्याख्यसम्बन्धेनावच्छेदकतावत्त्वविरहात्
तत्त्व-दण्डत्वयोरप्यवश्यमवच्छेदककोटिप्रविष्टत्वादिति^(२) चेत् । न ।
तथा सति महानसीयत्वविशिष्टवर्जितमान् धूमादित्यादावतिव्याप्तिः
वर्जितस्य पर्याप्त्याख्यसम्बन्धेनावच्छेदकताशून्यतया महानसीयत्व-
विशिष्टवर्जितस्यापि तथात्वात् महानसीयत्वविशिष्टवर्जितस्य वर्जित-
त्वानतिरिक्तत्वात्, तदण्डिमान् दण्डिसंयोगादित्यादावतिव्याप्तिश्च
जात्यखण्डोपाध्यतिरिक्तपदार्थस्य स्वरूपतोऽभावप्रतियोगितानवच्छेद-
कतया साध्यतावच्छेदकौभूत-तत्तद्दण्डव्यक्तेरपि पर्याप्त्याख्यतादृश-
प्रतियोगितावच्छेदकताशून्यत्वादिति । मैवं, स्वावच्छेदकसम्बन्धेन
स्वावच्छेदकावच्छिन्नसामान्यासम्बन्धिनिरुक्तहेतुसम्बन्धिका या या

(१) दण्डिसंयोगादित्यत्र दण्डिसंयोगपदेन दण्डिप्रतियोगिकत्वविशिष्ट-
संयोगस्य विवक्षितत्वं तेन संयोगस्य निवृत्ततया दण्डिसंयोगस्य
दण्डिनि सत्त्वेऽपि न सङ्केतुल्यव्याघातः, तत्प्रतियोगिकत्वविशिष्टस्य
संयोगस्य तस्मिन्ननभ्युपगमादिति ।

(२) अवच्छेदकतावच्छेदकसाधारणावच्छेदकत्वमतेनेदं, तथाच तद्दण्ड-
भावप्रतियोगितावच्छेदकत्वं तद्दण्ड इव तत्त्व-दण्डत्वयोरपि पर्याप्तं न
तद् तद्दण्डव्यक्तिमात्रे इति न दोष इति भावः ।

प्रतियोगिता तत्तत्प्रतियोगितासामान्ये यद्वर्त्मपर्याप्तावच्छेदकता-
 कत्वाभावस्तद्वर्त्मावच्छिन्नसामानाधिकरणस्य विवक्षितत्वात् । यत्र
 येन रूपेण साध्यतावच्छेदकत्वं तत्र तेन रूपेण तदेव यद्वर्त्मपदेन
 ग्राह्यं, इत्यञ्च वक्त्रिमान् धूमादित्यादौ धूमवन्निष्ठमहानसीयव-
 क्त्रित्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावप्रतियोगितायाः महानसीयत्ववि-
 शिष्टवक्त्रित्वपर्याप्तावच्छेदकताकत्वेऽपि शुद्धवक्त्रित्वस्यैव साध्यताव-
 च्छेदकतया शुद्धवक्त्रित्वपर्याप्तावच्छेदकताकत्वविरहान्नासम्भवः ।
 महानसीयत्वविशिष्टवक्त्रिमान् धूमादित्यादौ च धूमवन्निष्ठमहान-
 सीयवक्त्रित्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावप्रतियोगितायास्तादृशप्रति-
 योगितान्तर्गतायाः साध्यतावच्छेदकीभूतमहानसीयत्वविशिष्टवक्त्रित्व-
 पर्याप्तावच्छेदकताकत्वान्नातिव्याप्तिः । एवं तद्वर्त्तमान् दण्डिसंयो-
 गादित्यादौ दण्डिसंयोगवन्निष्ठतद्दण्ड्यभावप्रतियोगितायास्तादृश-
 प्रतियोगितान्तर्गतायाः शुद्धतद्दण्ड्यव्यक्तिपर्याप्तावच्छेदकताकत्वाभाव-
 वत्त्वेऽपि तद्दण्ड्यत्वविशिष्टव्यक्तेरेव साध्यतावच्छेदकतया तादृशतद्दण्ड-
 व्यक्तिपर्याप्तावच्छेदकताकत्वान्नातिव्याप्तिः । एतेन द्रव्यत्वव्याप्यजातिम-
 त्तान् द्रव्यसमवायित्वादित्यादिनानाजातिसाध्यतावच्छेदकस्थलेऽप्याप्तिः
 साध्यतावच्छेदकीभूतानां सर्वासां द्रव्यत्वव्याप्यजातीनां चालनीन्यायेन
 द्रव्यसमवायिनि वर्त्तमानस्य स्वरूपतः पृथिवीत्व-जलत्वादिरूपद्रव्य-
 त्वव्याप्यतत्तज्जात्यवच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावस्य प्रतियोगितावच्छे-
 दकतापर्याप्तिधिकरणत्वात् जात्यखण्डोपाध्यतिरिक्तपदार्थस्यैव स्वरू-
 पतोऽवच्छेदकतानभ्युपगमादित्यपि परास्त्वं । महानसीयत्वविशिष्ट-
 वक्त्रिमान् धूमात् तद्वर्त्तमान् दण्डिसंयोगादित्यादावतिव्याप्तिवार-

णाय यथोक्तविवक्षाया आवश्यकत्वे तत एवात्राप्यव्याप्तेर्निरासात्, स्वरूपतः पृथिवीत्व-जलत्वाद्यवच्छिन्नप्रतियोगिताया द्रव्यत्वव्याप्यजा- तित्वविशिष्टपर्याप्तावच्छेदकताकलाभावात् । न चैवं विवक्षणे घ्राण- ग्राह्यगुणवान् पृथिवीत्वादित्यादौ लघुसमनियतगुरुरूपेण साध्य- तायामव्याप्तिः स्वरूपसम्बन्धरूपावच्छेदकत्वस्य सम्भवति लघुधर्म- गुरावभावेन घ्राणग्राह्यगुणत्वनिष्ठावच्छेदकत्वाप्रसिद्धेः लाघवाद्गन्धत्व- स्यैव प्रतियोगितावच्छेदकत्वात् । अनतिरिक्तवृत्तित्वरूपावच्छेदकत्व- प्रवेशे सत्तावान् जातेरित्यादावव्याप्तिः विशिष्टसत्तात्वाद्यवच्छिन्नप्रति- योगिताया अनतिरिक्तवृत्तित्वात् सत्तात्वादेरिति वाच्यं । लघुसम- नियतगुरुधर्मण साध्यतायामलक्ष्यत्वात्^(१) । अतएव गुरुधर्मो न का- रणतावच्छेदकः तन्निष्ठपर्याप्तावच्छेदकत्वाप्रसिद्ध्या तेन रूपेण व्याप- कत्वविरहात् यथोक्तव्यापकतायाश्च कारणताघटकत्वात् । अन्यथा गुरुधर्मिणापि व्यापकत्वे कार्याव्यवहितपूर्वत्वव्यापकतावच्छेदका- न्यथासिद्धानिरूपकधर्मस्यैव कारणतावच्छेदकतया गुरुधर्मस्यापि कारणतावच्छेदकत्वापत्तेः । गुरुधर्मस्य कारणतानवच्छेदकत्वन्तु तद्वटितव्यापकत्वस्य गौरवेण कारणतापदार्थत्वविरहात् ।

वस्तुतस्तु लघुसमनियतगुरुधर्मस्य शक्यताद्यनवच्छेदकत्वेऽपि कम्बु- घोवादिमान्नास्तीत्याद्यबाधितप्रतीतेः प्रतियोगिताया अवच्छेदक- त्वमस्यैव, न हि तत्प्रतीतेस्तत्प्रतियोगिकाभावमात्रं विषयः, तथाविध-

(१) लघुसमनियतगुरुधर्मावच्छिन्नविधेयकानुमितेस्तु लघुधर्मावच्छिन्ने व्यापकत्वज्ञानादेव भवतीत्यभिप्रायेणैतदुक्तमिति ।

यत्किञ्चिद्व्यक्तिसत्त्वेऽपि तादृशप्रतीत्यापत्तेः । गुरुधर्मस्य कारणतानवच्छेदकत्वञ्चावश्यकृत्प्रनियतपूर्ववर्त्तिसहभावादिवद्गौरवस्यापि स्वातन्त्र्येणान्यथासिद्धिसम्पादकत्वात्^(१) ।

यदा कार्याव्यवहितपूर्वत्वरूपव्यापकतावच्छेदकान्यथासिद्धिनिरूपकधर्मस्यैव न कारणतावच्छेदकत्वमपि तु तादृशधर्मत्वरूपस्यातिरिक्ताखण्डपदार्थरूपस्य वा कारणत्वस्य स्वरूपसम्बन्धविशेषरूपावच्छेदकत्ववत् एव कारणतावच्छेदकत्वं तथाच लघुसमनियतगुरुधर्मस्य प्रतीतिबलादभावप्रतियोगितायाः स्वरूपसम्बन्धरूपावच्छेदकत्वेऽपि यथोक्तरूपायाः कारणतायाः स्वरूपसम्बन्धरूपावच्छेदकत्वविरहादेव न कारणतावच्छेदकत्वं । न चैवं दण्डत्वादेर्लघुधर्मस्यापि कारणतायास्तादृशावच्छेदकत्वे मानाभावः कारणतावच्छेदकधर्मवत्त्वस्यैव कारणतारूपत्वेन दण्डत्वस्यैव कारणतारूपतया स्वस्यैव स्वावच्छेदकत्वासम्भवश्चेति वाच्यं । दण्डत्वेन घटकारणत्वमित्यादिप्रतीतेरेव मानत्वात् प्रतीतिबलात् स्वस्यापि धर्मान्तरविशिष्टस्वावच्छेदकत्वाच्चेत्येव तत्त्वं ।

ननु तथाप्यसम्भवः वज्रिमान् धूमादित्यादौ धूमादिसमानाधिकरणवज्राद्यन्योन्याभावप्रतियोगितायाः तादृशसमवायादि-यत्किञ्चित्सम्बन्धावच्छिन्नवज्रादिसामान्यात्यन्ताभावप्रतियोगितायाश्च तादृशप्रतियोगितान्तर्गताया वज्रित्वाद्यवच्छेद्यत्वात् । न च साध्यता-

(१) यथावश्यकृत्प्रनियतपूर्ववर्त्तिसहभावादेः - अन्यथासिद्धिसम्पादकत्वं तथा गौरवस्यापि स्वातन्त्र्येणान्यथासिद्धिसम्पादकत्वं अतो गुरुधर्मावच्छिन्नस्यान्यथासिद्धत्वं न तु कारणत्वमिति समुदिततात्पर्यम् ।

वच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नत्वेन प्रतियोगिताव्यक्तयोविशेषणीयाः स्वावच्छेदकसम्बन्धेनेति स्थाने साध्यतावच्छेदकसम्बन्धेनेति वा वक्तव्यमिति वाच्यं । तथा सति कालिकसम्बन्धेन घटादेः साध्यत्वे कालपरिमाणदिहेतावव्याख्यापत्तेः तत्र स्वावच्छेदकसम्बन्धेन स्वावच्छेदकावच्छिन्नासम्बन्धिनिरुक्तहेतुसम्बन्धिकायाः साध्यतावच्छेदककालिकसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगितायाः साध्यतावच्छेदककालिकसम्बन्धेन स्वावच्छेदकावच्छिन्नासम्बन्धिनिरुक्तहेतुसम्बन्धिकायाः प्रतियोगितायाश्चाप्रसिद्धत्वात् निरुक्तहेतुसम्बन्धिनो महाकालस्य कालिकसम्बन्धेन वृत्तिवन्मात्रस्यैवाधारत्वात् । न च कालिकसम्बन्धावच्छिन्नगगणाद्यभावप्रतियोगितैव तादृशी प्रसिद्धा तस्याश्च स्वावच्छेदककालिकसम्बन्धेन स्वावच्छेदकगगणाद्यवच्छिन्नासम्बन्धित्वस्य हेतुसम्बन्धिनि महाकाले सत्त्वात् महाकालस्य गगणाद्यसम्बन्धित्वादिति वाच्यं । कालिकसम्बन्धेन गगणादेर्वृत्तिमत्त्वे महाकाले कालिकसम्बन्धेन गगणादेरपि सम्बन्धित्वात् तेन सम्बन्धेन गगणादेरवृत्तित्वे तु तेन सम्बन्धेन गगणाद्यवच्छिन्नसम्बन्धिन एवाप्रसिद्धत्वमित्युभयथापि कालिकसम्बन्धावच्छिन्नगगणाद्यभावप्रतियोगितामादाय प्रसिद्धासम्भवात् । किञ्च घटवान् नित्यज्ञानत्वादित्यादौ विषयितासम्बन्धेन घटादिसाध्यके विषयितासम्बन्धावच्छिन्नगगणाद्यभावप्रतियोगितामादायापि न प्रसिद्धिसम्भवः विषयितया गगणादेरपि नित्यज्ञाने सत्त्वादिति । मैवं । स्वावच्छेदकसम्बन्धेन स्वावच्छेदकावच्छिन्नसामान्यासम्बन्धिनिरुक्तहेतुसम्बन्धिकप्रतियोगितासामान्ये साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नत्व-यद्गर्भनिर्गर्भावच्छेद-

कताकलौभयाभावस्तद्वृत्तावच्छिन्नसामानाधिकरणस्य विवक्षितत्वात् ।
 इत्यञ्च घटवान् कालपरिमाणादित्यादौ समवायादिसम्बन्धाव-
 च्छिन्नघटाद्यभावप्रतियोगितामादायैव प्रसिद्धिः । एतेन घटत्वाभाव-
 वान् पटत्वादित्यादावव्याप्तिः पटत्वसमानाधिकरणस्य गोत्वाभावा-
 देर्घटत्वाभावनिष्ठप्रतियोगिताया घटत्वाभावत्वावच्छेद्यत्वात् अभा-
 वाधिकरणकाभावप्रतियोगिकाभावस्याधिकरणस्वरूपानतिरेकितया
 गोत्वाभावादिनिष्ठघटत्वाभावभेदस्य गोत्वाभावादिरूपत्वेन घटत्वा-
 भावस्यापि गोत्वाभावादिप्रतियोगित्वात् तत्प्रतियोगिताव्यक्तेः स्वाव-
 च्छेदकतादात्म्यसम्बन्धेन स्वावच्छेदकावच्छिन्नासम्बन्धित्वस्यापि हेतु-
 सम्बन्धिनि सत्त्वाच्चेति प्राचां दूषणमप्यपास्तं । तत्प्रतियोगिताव्यक्तेः
 घटत्वाभावत्वाद्यवच्छेद्यत्वेऽपि साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नत्वाभावे-
 नोभयाभाववत्त्वात् । अथैवमपि घटवान् नित्यज्ञानत्वात् इत्यादौ वृत्त्य-
 नियामकविषयितादिसम्बन्धेन साध्यतायामव्याप्तिस्तादात्म्यातिरिक्तवृ-
 त्तनियामकसम्बन्धमात्रस्याभावप्रतियोगितानवच्छेदकत्वेन^(१) तत्र सा-
 ध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नत्वस्याप्रसिद्धत्वात् । यदि च वृत्त्यनियामक-
 विषयितादिसम्बन्धस्याभावप्रतियोगितानवच्छेदकत्वेऽपि घटत्वज्ञाना-
 द्यत्यन्ताभावादेः प्रतियोगितावच्छेदकतावच्छेदकमस्यैवेत्यभावप्रति-
 योगितावच्छेदकतायामेव तदवच्छिन्नत्वं प्रसिद्धमित्युच्यते, तदापि

(१) तादात्म्यस्य वृत्त्यनियामकत्वेऽपि तत्सम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगित्वमवश्य-
 मभ्युपेयमन्यथा तादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकामावत्वलक्षणा-
 न्योन्याभावत्वस्य दुर्बलत्वापत्तिरिति तात्पर्यम् ।

वृत्त्यनियामकविषयतादिसम्बन्धेन साध्यतायां घटवज्ज्ञानत्वादित्या-
 दावतिव्याप्तिः वृत्त्यनियामकसम्बन्धस्य अभावप्रतियोगितानवच्छेद-
 कत्वेन ज्ञानत्वसमानाधिकरणभावप्रतियोगितायां विषयितादिस-
 म्वन्धावच्छिन्नत्व-घटत्वाद्यवच्छिन्नत्वोभयाभावसत्त्वादिति चेत् । न ।
 वृत्तिनियामकसम्बन्धवत् वृत्त्यनियानकसम्बन्धस्याप्यभावप्रतियोगि-
 तावच्छेदकत्वात् । न चैवमपि तादात्म्यसम्बन्धेन साध्यतायां घटो
 द्रव्यत्वादित्यादावतिव्याप्तिः मूलोक्तलक्षणवाक्येऽत्यन्ताभावपदसत्त्वेन
 अत्यन्ताभावनिरूपितप्रतियोगिताया एव लक्षणघटकतया तादृश-
 प्रतियोगितासामान्ये तादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्नत्व-घटत्वाद्यवच्छेद्यत्वो-
 भयाभावसत्त्वादिति वाच्यम् । अत्यन्ताभावस्यात्र प्रयोजनविरहे-
 णानुपादेयत्वात् । न च तथापि संयोगादिसम्बन्धेन द्रव्यत्वादिसाध्यके
 द्रव्यं पृथिवीत्वादित्यादावतिव्याप्तिः संयोगसम्बन्धावच्छिन्नद्रव्यत्वा-
 भावनिरूपितप्रतियोगिताव्यक्तेः स्वावच्छेदकसम्बन्धेन स्वावच्छेदका-
 वच्छिन्नसम्बन्धिन एवाप्रसिद्धत्वं किन्त्वभावान्तरौयप्रतियोगिता-
 व्यक्तय एव तथा तत्र संयोगसम्बन्धावच्छिन्नत्व-द्रव्यत्वावच्छिन्नत्वो-
 भयाभावसत्त्वादिति वाच्यम् । तदवच्छिन्नसामानाधिकरणदलेनैव
 तन्निरासात् साध्यतावच्छेदकसम्बन्धेन तदवच्छिन्नसम्बन्धिनि हेतु-
 तावच्छेदकसम्बन्धेन सम्बन्धित्वस्य तदर्थत्वात्^(१) साध्यतावच्छेदक-
 हेतुतावच्छेदकसम्बन्धघटितसाध्यसामानाधिकरण्याज्ञाने सम्बन्धा-
 न्तरेण साध्यसामानाधिकरणज्ञाने वानुमित्यनुदयात् । तादा-

(१) तदवच्छिन्नसामानाधिकरणदलार्थत्वादित्यर्थः ।

व्यादिवृत्त्यनियामकसम्बन्धेन साध्यत्वे हेतुत्वे चाव्याप्तिवारणाय अधि-
करणत्वं वृत्तित्वमपचाय सम्बन्धित्वप्रवेशः । न च तथापि व्यापक-
तालक्षणमतियोग्यमेव स्वावच्छेदकसम्बन्धेन स्वावच्छेदकावच्छिन्न-
सामान्यासम्बन्धिनिरुक्तहेतुसम्बन्धिकप्रतियोगितासामान्ये साध्यता-
वच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नत्व-यद्गुणपर्याप्तावच्छेदकताकलोभयाभावः त-
द्गुणावच्छिन्नत्वं व्यापकत्वमित्यस्यैव व्यापकतालक्षणत्वात् स्वपदं प्रति-
योगितापरमिति वाच्यं । साध्यतावच्छेदकसम्बन्धेन सम्बन्धित्वे सती-
त्यनेनापि व्यापकतालक्षणे विशेषणीयत्वात्, साध्यतावच्छेदकसम्बन्धा-
श्रयवृत्तित्वेन व्यापकतावच्छेदकधर्मा वा विशेषणीयः तेन द्रव्यत्वादेः
संयोगसम्बन्धेन प्रमेयत्वादिरूपेण पृथिवीत्वादिव्यापकताभ्युपगमेऽपि न
क्षतिः । न च प्रतियोग्यसामानाधिकरण्य-हेतुसामानाधिकरण्य-साध्य-
सामानाधिकरण्यदलेषु सर्वत्रैव सम्बन्धित्वप्रवेशेऽधिकरणत्व-वृत्तित्वयोः
क्वाप्यप्रवेशात् संयोगेन गगणादेर्द्रव्यत्वादिव्याप्यत्वं, पृथिवीत्वादेः संयो-
गेन गगणादिव्याप्यत्वञ्च स्यात् पृथिवीत्वाधिकरणे संयोगेन गगणा-
भावसत्त्वेऽपि तस्य संयोगेन तदीयप्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्न-
सम्बन्धित्वादिति'वाच्यं । द्रष्टृत्वात् । नन्वेतावता धूमादिव्यापकतावच्छे-
दकवह्नित्वाद्यवच्छिन्नसंयोगिमंयोगित्वादेरेव व्याप्तिरित्ये पर्यवसिते
तादृशसंयोगित्वस्य समवायसम्बन्धेन रासभादौ व्यभिचारिण्यपि
सत्त्वाद्रासभादौ समवायसम्बन्धेन तद्वत्तापरामर्शाद्गुमव्यापकवह्नि-
समानाधिकरणरासभवान् पर्वत इत्याकारकादपि वज्रानुमित्यापत्तिः
न्यायनये धूमत्वधर्मितानवच्छेदककव्याप्यत्वपरामर्शस्यापि अनुमि-
तिहेतुत्वात् । न चेष्टापत्तिः, रासभलिङ्गकवज्रानुमितेः व्याप्यंशे

भ्रमपरामर्शजन्यत्वनियमादिति^(१) चेत् । न । तादृशसंयोगित्वादि-
रूपव्याप्तेः स्वघटकीभूतधूमत्वादिसम्बन्धेनैव ज्ञानमनुमितिहेतुः
न तु समवायादिसाक्षात्सम्बन्धेनेत्यभ्युपगमात्, धूमत्वादेस्तत्सम्बन्धता
च तदाश्रयवृत्तित्वसम्बन्धेन, रासभत्वावच्छिन्ने धूमत्वसम्बन्धेन तद्वत्ता-
भ्रमादनुमितिरिष्यत एव ।

केचित्तु^(२) तादृशसंयोगिवृत्तिधूमत्वादिकमेव व्याप्तिः न तु
तादृशसंयोगित्वादिमात्रं, तादृशसंयोगिवृत्तिधूमत्ववद्रासभवान् पर्व-
तइतिभ्रमपरामर्शादनुमितिरिष्यत एवेत्याहुः । तदसत् । लाघ-
वाद्धूमत्वादिसम्बन्धेन तादृशसंयोगित्वादेरेव व्याप्तित्वस्योचितत्वात्^(३) ।

ननु तथापि कपिसंयोगि एतत्त्वादित्याद्यव्याप्यवृत्तिसाध्यके-
ऽव्याप्तिस्तदवस्था समवायसम्बन्धावच्छिन्नकपिसंयोगत्वावच्छिन्नप्रति-
योगिताया अपि तादृशप्रतियोगितासामान्यान्तर्गतत्वेन तत्र सा-
ध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नत्व-कपिसंयोगत्वाद्यवच्छेद्यत्वोभयाभाववि-

(१) धूमव्यापकवह्निसमानाधिकरणरासभवान् पर्वत इति ज्ञानस्य व्या-
प्त्यंशे प्रमात्वेन एतादृशज्ञानात् वज्रानुमितिस्वीकारे रासभलिङ्गक-
वज्रानुमितेर्व्याप्त्यंशे भ्रमजन्यत्वनियमो न स्यादिति भावः ।

(२) केचित्चित्त्व्यादिना दीधितिक्वन्मतमुत्थापितं तेन एतद्दोषवारणाय
सामानाधिकरणविशिष्टधूमत्वस्य व्याप्तित्वमङ्गीकृतं तन्मते तादृश-
धूमत्वस्य प्रकारविधया भानं. रहस्यक्वन्मते तु संसर्गविधया इत्येता-
वान् विशेषः ।

(३) धूमत्वस्य प्रकारविधया भाने तस्य संसर्गमानमवश्यमभ्युपेयं संसर्ग-
विधया भाने तु संसर्गस्य संसर्गभानानभ्युपगमात् न तदीयसंसर्ग-
भानमिति लाघवमनुसन्नेयम् ।

रहात् । न च समवायावच्छिन्न-कपिसंयोगत्वावच्छिन्नप्रतियोगितायाः
स्वावच्छेदकसमवायसम्बन्धेन स्वावच्छेदककपिसंयोगत्वावच्छिन्नसम्ब-
न्धिभिन्नमेव न हेत्वधिकरणमेतदृच्छ इति कुतस्तस्याः तादृशप्रति-
यागतान्तर्गतत्वमिति वाच्यं । कपिसंयोगस्याव्याप्यवृत्तितया तद-
त्यन्ताभावस्येव तद्वद्भिन्नत्वस्यापि मूलावच्छेदेन वृत्ते सत्त्वात् अव्याप्य-
वृत्तिमतोऽन्योन्याभावस्याव्याप्यवृत्तित्वादिति चेत् । न । कपिसंयोगा-
देरव्याप्यवृत्तित्वेऽपि तत्सम्बन्धिता नाव्याप्यवृत्तिरतः कपिसंयोगत्वा-
वच्छिन्नसम्बन्धिभिन्नत्वं नैतदृच्छ इति ग्रन्थकृतोऽभिप्रायात्, अव्याप्य-
वृत्तेरत्यन्ताभावस्याव्याप्यवृत्तित्वेऽपि तद्वदन्योन्याभावो नाव्याप्यवृत्ति-
रित्यभिप्रायाद्वा । “न चान्योन्याभावस्याव्याप्यवृत्तित्वं” इत्यग्रे वक्ष्य-
माणत्वात् इति मूलं चतुरस्रं ।

स्वतन्त्रास्तु स्वावच्छेदकसम्बन्धेन स्वावच्छेदकावच्छिन्नसम्बन्धि-
भिन्नत्वेन हेतुसम्बन्धिनो न विशेषणीयाः, किन्तु निरुक्तहेतु-
सम्बन्धिनि निरवच्छिन्नवृत्तिमान् योऽभावः तत्प्रतियोगितासा-
मान्ये साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नत्व-यद्गुणमप्यप्रावच्छेदकताक-
लोभयाभावस्तद्गुणावच्छिन्नसामानाधिकरणमेव व्याप्तिर्वक्तव्या, इत्य-
ञ्चाव्याप्यवृत्तिसम्बन्धित्वाव्याप्यवृत्तिमदन्योन्याभावयोरव्याप्यवृत्तित्वेऽपि
न चतिः । वृत्तिश्चाभावीयविशेषणताविशेषसम्बन्धेन वक्तव्या, तेन
सत्तावान् जातेरित्यादौ समवायसम्बन्धावच्छिन्नसत्तासामान्याभावा-
देर्विषयित्वाव्याप्यत्वादिसम्बन्धेन हेत्वधिकरणे ज्ञानादौ वर्तमानत्वे-
ऽपि न चतिः । अत्यन्ताभावान्योन्याभावयोरभावस्तु न प्रतियो-
गि-तत्त्वावच्छेदकस्वरूपः, किन्त्वतिरिक्तत्वेन घटत्वात्यन्ताभाववान्

घटान्योन्याभाववान् वा द्रव्यत्वादित्यादौ नातिव्याप्तिः। साध्यप्रतियोगिकाभाववृत्तिसाध्तीयप्रतियोगित्व-तदवच्छेदकत्वान्यतरावच्छेदकसम्बन्धेन वा वृत्तिर्वक्तव्या, वृत्त्यन्तमन्यतरविशेषणं । न चैवं समवायसम्बन्धावच्छिन्नसत्ताभावादौ साध्ये जातित्वादिहेतावव्याप्तिः अत्र समवायसम्बन्धस्यैव तादृशान्यतरावच्छेदकसम्बन्धतया तेन सम्बन्धेन हेत्वधिकरणवृत्तित्वाप्रसिद्धेरिति वाच्य । तत्र विशेषणताविशेषसम्बन्धस्यापि कालिकसम्बन्धावच्छिन्नतादृशसत्ताभाव-जातित्वोभयाभावादिरूपसाध्यप्रतियोगिकाभाववृत्तिसाध्तीयप्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धत्वात् । एतेन केवलान्वयिसाध्याभावस्याप्रसिद्ध्या तन्निष्ठसाध्तीयप्रतियोगित्वस्याप्यप्रसिद्धौ अव्याप्तिरित्यपि निरस्तं । तत्रापि कालिकादियत्किञ्चित्सम्बन्धावच्छिन्नसाध्याभावस्य वैशिष्ट्य-व्यासज्यवृत्तिधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकसाध्याभावस्य च प्रसिद्धत्वात् । यद्वा निरुक्तहेतुसम्बन्धिनि स्वावच्छेदकसम्बन्धेन स्वावच्छेदकावच्छिन्नसम्बन्धनिरूपितवृत्तिमन्निरूपितप्रतियोगितासामान्ये^(१) साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नत्व-यद्गर्भावच्छेद्यत्वोभयाभावस्तद्गर्भावच्छिन्नसामानाधिकरण्यं व्याप्तिः स्वपदं प्रतियोगितापरं, प्रथमसप्तम्यन्तं

(१) स्वावच्छेदकसम्बन्धेन स्वावच्छेदकावच्छिन्नासम्बन्धनिरूपितं सत् हेतुसम्बन्धनिरूपितं यद्वृत्तित्वं तद्वदभावप्रतियोगितासामान्ये इति फलितार्थः, सत्तावान् जातेरित्यादौ समवायावच्छिन्नसत्ताभावस्य विषयितासम्बन्धेन हेत्वधिकरणे ज्ञानादौ वृत्तित्वेऽपि तादृशवृत्तित्वं न सत्ताभावप्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नासम्बन्धनिरूपितमतो न दोषः ।

वृत्तिविशेषणं, इत्यञ्च सम्बन्धविशेषेण वृत्त्यविवक्षणेऽपि न चतिरिति प्राञ्जरिति कृतं पक्षवितेन ।

इति श्रीमथुरानाथ-तर्कवागीशविरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्य
अनुमानाख्यद्वितीयखण्डरहस्ये सिद्धान्तलक्षणरहस्यम् !

अथ सामान्याभावः ।



अन्यनिष्ठवद्देधूमवत्पर्वतवृत्त्यन्ताभावप्रतियोगि-
त्वेऽपि तत्प्रतियोगिता न वह्नित्वेनावच्छिद्यते, धूमवति
वह्निर्नास्तीत्यप्रतीतेः सामान्यावच्छिन्नप्रतियोगिता-
काभावः पृथगेव, अन्यथा सकलप्रसिद्धरूपाभावे प्रसि-
द्धरूपवदन्यत्वे चावगते वायौ रूपं न वा वायूरूपवान्न
वेति संशयो न स्यात् विशेषाभावकूटस्य निश्चितत्वात् ।

इति श्रीमद्भग्वेत्तेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ
अनुमानाख्यद्वितीयखण्डे सामान्याभावः ॥

अथ सामान्याभावरहस्यं ।

वक्त्रिमान् धूमादित्यत्र तत्तद्वज्रभावमादाय पूर्वपक्षग्रन्थोक्ताम-
व्याप्तिमुद्धरति, 'अन्यनिष्ठेति, एतेनावच्छेदकासुधावनस्य' व्यावृत्तिः
कूलतो दर्शिता । ननु विशेषाभावानां विशेषधर्मावच्छिन्नप्रतियोगि-
तानामवच्छेदकं सामान्यरूपमन्यथा अभावप्रतियोगितावच्छेदकमेव
तन्न स्यादभावान्तरे प्रतियोगितान्तरे च मानाभावात् । न चेष्टापत्तिः,
वक्त्रिर्नास्तीत्यादिप्रत्ययेन वक्त्रित्वादेः प्रतियोगितावच्छेदकत्वावगा-
हनात्, तथाच वक्त्रिमान् धूमादित्यादावव्याप्तिः सुदृढा संयोगसम्ब-
न्धावच्छिन्न-तत्तद्वज्रित्वावच्छिन्नप्रतियोगिताव्यक्तीनामेव तादृशप्रति-

योगितासामान्यान्तर्गतानां साध्यतावच्छेदकसंयोगसम्बन्धावच्छिन्नत्व-
वज्जित्वाद्यवच्छेद्यत्वोभयवत्त्वात् । न च वज्जित्वस्यापि तत्तद्वज्जित्वाव-
च्छिन्नप्रतियोगिताव्यक्तीनामवच्छेदकत्वे तत्प्रतियोगिताव्यक्तयो न
तादृशप्रतियोगितासामान्यान्तर्गताः हेतुसम्बन्धिनः पर्वतादेरात्मा-
काशादेश्च तदवच्छेदकवज्जित्वावच्छिन्नसम्बन्धित्वादपि तु विष-
यित्व-काल-दिङ्निरूपितविशेषणत्वादिसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिता-
कवज्जि-घटाद्यभावप्रतियोगितैव तादृशप्रतियोगितासामान्यान्तर्गता
तत्र च साध्यतावच्छेदकसंयोगसम्बन्धावच्छिन्नत्व-वज्जित्वावच्छेद्यत्वो-
भयाभावस्य सत्त्वान्नाव्याप्तिरिति वाच्यं । विशेषप्रतियोगितानामेव
सामान्यधर्मस्यावच्छेदकत्वे स्वावच्छेदकसम्बन्धेन स्वावच्छेदकयत्कि-
ञ्चिद्धर्मावच्छिन्नासम्बन्धित्वमेव हेतुसम्बन्धिनो विशेषणं वक्तव्यमन्यथा
धूमवान् वज्जेरित्यादावतिव्याप्तिः संयोगसम्बन्धावच्छिन्न-धूमत्वा-
वच्छिन्नप्रतियोगिताव्यक्तीनां स्वावच्छेदकसंयोगसम्बन्धेन स्वावच्छेद-
कद्रव्यत्व-सत्तारूपसामान्यधर्मावच्छिन्नसम्बन्धेन निखिलहेतुसम्बन्धि
किन्तु विषयित्वादिसम्बन्धावच्छिन्नधूम-घटाद्यभावप्रतियोगिताव्यक्ती-
नामेव स्वावच्छेदकसम्बन्धेन स्वावच्छेदकावच्छिन्नासम्बन्धि हेतुसम्ब-
न्धि तत्र साध्यतावच्छेदकसंयोगसम्बन्धावच्छिन्नत्व-धूमत्वावच्छेद्यत्वो-
भयाभावस्य सत्त्वात् । इत्यञ्च वज्जिमान् धूमादित्यादौ तत्तद्वज्जित्वा-
वच्छिन्नप्रतियोगिताव्यक्तीनामपि तत्तद्वज्जित्वरूपयत्किञ्चित्स्वावच्छे-
दकावच्छिन्नासम्बन्धी भवत्येव धूमसम्बन्धीत्यव्याप्तिर्दुर्वारा इत्यत-
आह, 'धूमवतीति 'पृथगेवेत्यन्तमेको ग्रन्थः, 'इत्यप्रतीतेरिति वज्जित्वा-
वच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावत्वविशेष्यतावच्छेदक-धूमवद्भूतित्वप्रका-

रकप्रतीतिः धूमवद्दृत्तित्व-वक्त्रित्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वोभयांश-
 एव यथार्थत्वाभ्रमत्वयोरापत्तेरित्यर्थः, वक्त्रित्वावच्छिन्नप्रतियोगि-
 ताकानां तत्तद्वक्त्रित्वावच्छिन्नाभावानां सर्वेषामेव धूमवद्दृत्तित्वा-
 दिति भावः । 'सामान्यावच्छिन्नप्रतियोगिताकः' वक्त्रित्वावच्छिन्नप्र-
 तियोगिताकः, (१) 'पृथगेव' तत्तद्वक्त्रित्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकादति-
 रिक्त एव । न च तत्प्रतीतौ वक्त्रेयावद्विशेषाभावो विशेष्य इति
 भ्रमत्वमप्रमात्वञ्चेति वाच्यं । तथापि यावद्रूपं द्रव्यवृत्तीतिप्रतीतिवत्
 प्रमात्वाभ्रमत्वापत्तेर्दुर्वारत्वात् (२) । एतेन स्वावच्छिन्नप्रतियोगिताक-
 त्वसम्बन्धेन वक्त्रित्वं वक्त्रित्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वसम्बन्धेन वक्त्रि-
 व्यासज्यवृत्ति तच्च तेन सम्बन्धेन विशेषाभावकूट एव पर्याप्तोति न
 तु प्रत्येकाभाव इति तत्प्रतीतेर्भ्रमत्वमप्रमात्वञ्चेत्यपि निरस्तं ।
 तथापि यावत्त्वस्य व्यासज्यवृत्तित्वेऽपि (३) यावद्रूपं द्रव्यवृत्तीतिप्रतीतिः
 प्रमात्वाभ्रमत्ववत् तत्प्रतीतिः प्रमात्वाभ्रमत्वापत्तेर्दुर्वारत्वात् । न च
 वक्त्रेयावद्विशेषाभावाधिकरणवृत्तित्वविशिष्टाभावस्य तत्र विशेष्य-
 तथा भ्रमत्वमप्रमात्वञ्चेति वाच्यं । विशिष्टान्तस्य तत्रानुल्लेखात् तद-
 ऋत्वेऽपि विशिष्टस्यानतिरिक्ततया गुणे गुण-कर्मान्यत्वविशिष्टसत्तेति

(१) सामान्यावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभाव इति ख० ।

(२) यथा यावद्रूपस्य एकस्मिन् द्रव्ये असत्त्वेऽपि यावद्रूपं द्रव्यवृत्तीति
 प्रतीतिः प्रामाण्यं तथा यावद्वक्त्रिविशेषाभावस्य एकस्मिन् धूमवद्वि-
 असत्त्वेऽपि वक्त्राभावो धूमवद्वृत्तीति प्रतीतिः प्रामाण्यापत्तिर्दुर्वारि-
 वेति भावः ।

(३) 'व्यासज्यवृत्तित्वेऽपि' एकत्वानवच्छिन्नपर्याप्तित्वेऽपीत्यर्थः ।

प्रतीतिवत्प्रमात्वाभ्रमत्वापत्तेर्दुर्वारत्वात् । एतेन यथा विशिष्टसत्ता-
याः सत्तानतिरिक्तत्वेऽपि विशिष्टसत्तात्वावच्छिन्नाधारता न गुणादौ
तथा तत्तद्वद्भावानामेव वक्षित्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वेऽपि वक्षि-
त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वावच्छिन्नानां तेषामाधारता न धूमवतीति
तत्प्रतीतेः भ्रमत्वमप्रमात्वञ्चेत्यपि निरस्तं । तथापि गुणे गुण-कर्मान्य-
त्वविशिष्टसत्तेति विशिष्टसत्तायां गुणाधेयतावगाहिप्रतीतेः प्रमा-
त्वादिवत् धूमवति वक्षिर्नास्तीति धूमवदाधेयतावगाहिप्रतीतेः
प्रमात्वाद्यापत्तेर्दुर्वारत्वात् । न च स्वावच्छिन्न-तत्तत्प्रतियोगिताकत्व-
सम्बन्धेन वक्षित्वं वक्षित्वावच्छिन्नतत्तत्प्रतियोगिताकत्वसम्बन्धेन
वक्षिर्वा अव्याप्यवृत्ति तच्च जलहृदाद्यवच्छेदेनैव विशेषाभावेषु वर्तते
न तु धूमाधिकरणावच्छेदेनेति न तत्प्रतीतेः प्रमात्वमिति वाच्यं ।
तावतापि धूमवति वक्षित्वादेरवच्छेदकत्वावगाहिप्रतीतेरप्रमात्वोप-
पादनेऽपि विशेषणताविशेषावच्छिन्नाधेयतासम्बन्धेन धूमवत्प्रकारक-
वक्षित्वावच्छिन्नतत्प्रतियोगिताकाभावविशेष्यकयथोक्तप्रतीतेः प्रमा-
त्वापत्तेर्दुर्वारत्वात् । अन्यथा गुणादेः सत्तानिष्ठद्रव्यवृत्तित्वानवच्छे-
दकतया द्रव्यवृत्तिसत्ता गुणे इति प्रतीतेरपि अप्रमात्वापत्तेः । न च
यथा गुण-कर्मान्यत्वविशिष्टसत्तावान् गुण इतिप्रतीतिर्न प्रमा विशि-
ष्टसत्तायाः सत्तानतिरिक्तत्वेऽपि विशिष्टसत्तात्वावच्छिन्नाधारतायाः
गुणादौ विरहात् गुणे गुण-कर्मान्यत्वविशिष्टसत्तेति आधेयतोत्प्रेषि-
प्रतीतिश्च प्रमेव तथेहापि धूमवान् वक्षिसामान्याभाववान् इति
प्रतीतिर्न प्रमा तत्तद्वद्भावानामेव वक्षित्वावच्छिन्नप्रतियोगिताक-
त्वेऽपि तेषां तदवच्छिन्नाधारताया धूमवति विरहात् धूमवति वक्षि-

नास्तीत्याधेयतोऽस्मिन्निप्रतीतिः प्रमैव न तु भ्रम इति वाच्यं । अनुभवा-
पलापात् । एवमनुभवापलापे एकस्यैवाभावस्य घट-पट-गोलाश्वत्-
सकलप्रतियोगिकत्वस्य सुवचतया अभावमात्रभेदविलोपापत्तेः घटवान्
घटसामान्याभाववानिति प्रतीतिर्न प्रमा घटवति घटसामान्याभाव-
त्वावच्छिन्नाधारताविरहात् घटवति घटो नास्तीत्याधेयतोऽस्मिन्नि-
प्रतीतिश्च प्रमा भवत्येवेति क्रमेणानुभवापलापस्य सर्वत्र सुकरत्वा-
दिति भावः । सामान्याभावस्यातिरिक्तत्वे प्रकष्टतमां युक्तिमभिधाय
युक्त्याभासान्तरमाह, 'अन्यथेति यदि लाघवात् तत्तदङ्गित्वावच्छिन्नप्र-
तियोगिताकाभाव एव वङ्गित्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावस्तदेत्यर्थः,
तुल्ययुक्त्या तत्तद्रूपत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावानामेव रूपत्वाव-
च्छिन्नप्रतियोगिताकतयेति शेषः, 'सकलप्रसिद्धरूपाभाव इति वायुः
पृथिवीरूपत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभाववान् जलरूपत्वावच्छिन्न-
प्रतियोगिताकाभाववान् तेजोरूपत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभाववां-
श्चेति सकलप्रसिद्धरूपात्यन्ताभावानां निर्णये, वायुः पृथिवीरूपवत्त्वा-
वच्छिन्नप्रतियोगिताकान्योन्याभाववान् जलरूपवत्त्वावच्छिन्नप्रतियो-
गिताकान्योन्याभाववान् तेजोरूपवत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकान्योन्या-
भाववांश्चेति सकलप्रसिद्धरूपवदन्योन्याभावानां निर्णये चेत्यर्थः,
'वायाविति, अयञ्च रूप-तदभावविशेष्यको वायुविशेषणकः, विरुद्ध-
योरेकधर्मिसम्बन्धावगाहिज्ञानस्यैव संशयत्वान्न तु विरुद्धोभयप्रका-
रितापि नियता । द्वितीयसु रूपवत्-तददन्योन्याभावकोटिको
वायुविशेष्यक इति नाभेदः, 'निश्चितत्वादिति निश्चितत्वेन संशयको-
टित्वासंभवादतिरिक्तसामान्याभावस्य चानङ्गीकारादित्यर्थः, तथा-

चातिरिक्तसामान्याभावानभ्युपगमे संशयविषयोऽभाव एव दुर्लभ-
इति भावः । यद्यपि वायौ रूपं न वेति संशयं प्रति रूपाभावनिश्चयो
न विरोधी किन्तु रूप-तदभावान्यतरविशेष्यकाधेयतासम्बन्धा-
वच्छिन्नवाच्यभावनिश्चय एव विरोधी, तथाप्यधिकरणे तत्तद-
भावान्यतरनिश्चयोऽपि तत्तदभावोभयविशेष्यकाधिकरणप्रकारक-
संशयविरोधी इत्यभिप्रायः, वायूरूपवान् तदभाववान् वेति वायु-
विशेष्यकसंशय एव वास्य तात्पर्यं । एतच्चापाततः विशेषाभावानां
तत्तद्रूपत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावत्वेन निश्चितत्वेऽपि रूपत्वा-
वच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावत्वप्रकारेण संशयविषयत्वसम्भवात् तेनापि
रूपेण विशेषाभावानां निर्णये तथा संशयस्य सामान्याभावाति-
रिक्तत्ववादिनामप्यसिद्धत्वादिति ध्येयं । शेषमस्मत्कृतसिद्धान्तरहस्ये-
ऽनुसन्धेयं ।

इति श्रीमथुरानाथ-तर्कवागीशविरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये
अनुमानाख्यद्वितीयखण्डरहस्ये सामान्याभावरहस्यं ।

विशेषव्याप्तिः ।



यद्वा प्रतियोगिव्यधिकरणस्वसमानाधिकरणात्यन्ता-
भावाप्रतियोगिना सामानाधिकरण्यं, यत्समानाधि-

अथ विशेषव्याप्तिरहस्यं ।

‘यदेत्यादि, ‘स्वपदं हेत्वभिमतपरं, कपिसंयोगी एतदृचत्वादित्या-
दावव्याप्तिवारणाय ‘प्रतियोगिव्यधिकरणेति स्वपदार्थस्य हेतोर्वि-
शेषणं, तदर्थश्च प्रतियोग्यनधिकरणवृत्तित्वं । ननु तथापि वक्त्रिमान्
धूमात् रूपवान् पृथिवीत्वादित्यादौ नानाव्यक्तिसाध्यकेऽव्याप्तिः
चालनीन्यायेन सर्वेषामेव वज्रादीनां हेतुसमानाधिकरणात्यन्ता-
भावप्रतियोगित्वात्, सत्तावान् द्रव्यत्वादित्याद्येकव्यक्तिसाध्यकेऽप्य-
व्याप्तिश्च हेतुसमानाधिकरणविशिष्टाभाव-द्वित्वाद्यवच्छिन्नाभावप्रति-
योगित्वात् सत्तादेः, गुण-कर्मान्यत्वविशिष्टसत्तावान् जातेः भूतत्व-
मूर्त्तलोभयवान् मूर्त्तत्वादित्यादावतिव्याप्तिवारणाय प्रतियोगिव्य-
धिकरणपदेन प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नव्यधिकरणत्वस्यावश्यं विव-
चणीयत्वादिति चेत् । न । अत्राप्रतियोगिपदस्य तादृशप्रतियोगिता-
नवच्छेदकसाध्यतावच्छेदकावच्छिन्नपरत्वात् । नचैवं पूर्वस्मादभेदः,
तादृशप्रतियोगितानवच्छेदकावच्छिन्नयत्किञ्चिद्वक्त्रिसामानाधिकरण्यं
वक्त्रिसामान्य-धूमसामान्ययोर्व्याप्तिः, अत एव वक्त्रित्वरूपेण अयोगोल-

करणान्योन्याभावप्रतियोगि यद्वन्न भवति तेन समं
तस्य सामानाधिकरण्यं वा, स्वसमानाधिकरणान्योन्या-

कीयवक्त्रेरपि धूमो व्याप्य इत्युक्तं, इदानीन्तु तादृशप्रतियोगितानव-
च्छेदकावच्छिन्नतत्तद्वक्त्रिणा समं तत्तद्धूमसामानाधिकरण्यं वक्त्रित्व-
धूमत्वरूपेण तत्तद्वक्त्रि-तत्तद्धूमयोरेव व्याप्तिः, वक्त्रित्वरूपेणयोगो-
लकीयवक्त्रिव्याप्यो न धूम इत्युच्यते इत्येव विशेषादन्यत् सर्व्वं पूर्व्व-
वदिति दिक् ।

नन्वेतल्लक्षणद्वयपक्षे द्रव्यत्वत्वाद्यवच्छिन्नविधेयिका घटो द्रव्यत्ववा-
नित्यादिरूपैवानुमितिः सर्व्वत्र स्यात् न तु कदाचिदपि स्वरूपतो द्रव्य-
त्वादिविधेयिका घटो द्रव्यमित्याकारिका एतयोर्द्वयोरेव साध्यताव-
च्छेदकघटितत्वात् । न च साध्यतावच्छेदकघटितत्वेऽपि एतयोरेव ज्ञानं
द्रव्यत्वत्वावच्छिन्नविधेयकानुमितिवत् स्वरूपतो द्रव्यत्वादिविधेयकानु-
मितावपि हेतुर्द्रव्यत्वत्वाद्यतिरिक्तानवच्छिन्नद्रव्यत्वादिविधेयकानुमि-
तित्वस्यैव^(१) कार्य्यतावच्छेदकत्वादिति वाच्यं । तथा सति द्रव्यत्वाद्यनु-

(१) स्वरूपतः सत्ता-घटत्वादिविधेयताकानुमितिवारणार्थं विधेयतायां
द्रव्यत्वादिनिष्ठत्वनिवेशः । अथ तथा सति द्रव्यत्वत्वादिना घटत्वादिविधे-
यताकानुमितेरसंग्रहः घटत्वादिनिष्ठविधेयतायां द्रव्यत्वत्वाद्यतिरिक्तधर्म्मा-
नवच्छिन्नत्वेऽपि द्रव्यत्वाद्यवृत्तित्वात् इति चेत् । न । द्रव्यत्वाद्यवृत्तिर्या नि-
रवच्छिन्नविधेयता तद्विन्नविधेयतायां द्रव्यत्वत्वाद्यतिरिक्तधर्म्मानवच्छिन्नत्व-
निवेशाभिप्रायादिति न कोऽपि दोषः । अथवा निरवच्छिन्नत्वविशिष्टद्र-
व्यत्ववृत्तित्वाभाववत्त्व-द्रव्यत्वत्वानवच्छिन्नत्वेभयाभाववद्विधेयताकानुमितित्व-
मित्यर्थकरणान्न कोऽपि दोषः ।

भावाप्रतियोगियद्वत्त्वं वा । अन्यवृत्तिवह्नि-तद्वतोर-
न्यवृत्तिधूमवन्निष्ठात्यन्ताभावान्योन्याभावप्रतियोगि-

मितेर्नियमतो द्विविधविषयत्वापत्तेः द्रव्यत्वत्वादिघटकतया^(१) स्वरूपतो
द्रव्यत्वादिविशिष्टबुद्धेर्जनकीभूतस्य स्वरूपतो द्रव्यत्वादिज्ञानस्यापि
सर्वत्र सत्त्वादिति चेत् । न । स्वरूपतो द्रव्यत्वादिविधेयकानुमितेरसिद्धेः
घटो द्रव्यत्ववान् इत्यादिरूपाया एव द्रव्यत्वत्वावच्छिन्नविधेयकानु-
मितेः सर्वत्राभ्युपगमात् । एतदस्वरसेनैव वा अन्योन्याभावगर्भं ल-
क्षणान्तरमाह, 'यत्समानाधिकरणेति, 'यत्पदं हेत्वभिमतपरं, 'यद्वन्न
भवति' यदधिकरणं न भवति, 'यत्पदं साध्यपरं, वक्लिमान् धूमात्स-
त्तावान् द्रव्यत्वात् इत्यादौ व्यतिरेकिसाध्यके साध्यशून्ये सामान्यादौ
वर्त्तमानं साध्यवदन्योन्याभावमादायाव्याप्तिवारणाय हेतुसमानाधि-
करणत्वं अन्योन्याभावविशेषणं, तच्च हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेन यद्वे-
तुतावच्छेदकावच्छिन्नहेतुसम्बन्धि तत्र वर्त्तमानत्वं, तेन वक्लिमान्
धूमादित्यादौ हेत्वधिकरणधूमावयवादौ वज्रादिमतोऽन्योन्याभावस्य
वृत्तावपि नाव्याप्तिः, न वा द्रव्यं गुण-कर्मान्यत्वविशिष्टसत्त्वादित्यादौ
सत्ताद्यधिकरणगुणादौ द्रव्यत्वादिमतोऽन्योन्याभावस्य सत्त्वेऽपि अ-
व्याप्तिः । तादात्म्यादिवृत्त्यनियामकसम्बन्धेन हेतुतायामव्याप्तिवार-
णायधिकरणत्वमपहाय सम्बन्धित्वप्रवेशः । वर्त्तमाणत्वञ्च विशेषणता-

(१) द्रव्येतरावृत्तित्वविशिष्टसकलद्रव्यवृत्तित्वरूपस्य द्रव्यत्वत्वस्य ज्ञाने
इतरत्वप्रतियोग्यंशे द्रव्ये द्रव्यत्वस्य स्वरूपतोभानात् स्वरूपतो द्रव्यत्वज्ञा-
नस्य द्रव्यत्वत्वज्ञाननियतत्वमिति ।

त्वाद्वाधिकरणवह्नि-धूमयोर्न व्याप्तिः, किन्तु तत्तद्भूतस्य
समानाधिकरणतत्तद्वह्निना । नचैवं धूममात्रे न व्याप्ति-

विशेषसम्बन्धेन साध्यप्रतियोगिकाभाववृत्तिसाध्नीयप्रतियोगित्व-तद-
वच्छेदकत्वान्यतरावच्छेदकसम्बन्धेन वा ग्राह्यं^(१) तेन सत्तावान् जाते-
रित्यादौ हेत्वधिकरणे ज्ञानादौ विषयित्व-कालिकविशेषणत्वाव्याप्य-
त्वादिसम्बन्धेन सत्तादिमदन्योन्याभावस्य च वृत्तावपि नाव्याप्तिः ।
यदिच वक्ष्यमाणयुक्त्या प्रतियोगिभिन्नत्वं निरुक्तहेतुसम्बन्धिनः
प्रतियोग्यनिरूपितत्वं वा तद्वर्तमानत्वस्य विशेषणमुपादीयते तदा
वर्तमानत्वं येन केनापि सम्बन्धेन ग्राह्यं न तु सम्बन्धविशेषो निवे-
शनीयः । वक्ष्यमान् धूमादिदं वाच्यं ज्ञेयत्वादित्यादौ वक्ष्यादि-
मतः संयोगादिसम्बन्धेनात्यन्ताभावस्य धूमसमानाधिकरणत्वात् अस-
म्भववारणायान्योन्याभावनिरूपितप्रतियोगितालाभार्थं अन्योन्याभा-
वपदं^(२) यथाश्रुतेऽत्यन्ताभावस्यापि स्वावच्छिन्नभिन्नभेदात्मक-
तया अन्योन्याभावत्वेन तद्दोषतादवस्थात् । ननु तथापि वक्षि-

(१) घटान्योन्याभाववान् द्रव्यत्वादित्यादौ व्यभिचारिणि घटत्वरूपस्य
घटभिन्नभेदस्य विशेषणताविशेषसम्बन्धेनावर्तमानत्वेन तत्समानाधि-
करणान्योन्याभावपदेन धर्तुमशक्यत्वादतिव्याप्तिवारणाय पूर्व्वकल्पं
परित्यज्यैतत्कल्पानुसरणमिति ।

(२) अन्योन्यपदमिति ख० ग० ।

रिति वाच्यं । सर्व्वधूमव्यक्तेस्तथात्वेन धूममात्रस्य व्या-

मान् धूमादित्यादौ सर्व्वेषामेव साध्यवद्वाक्तीनां चालनीन्यायेन निरुक्तहेतुसमानाधिकरणस्य तत्तद्व्यक्तित्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकान्योन्याभावस्य प्रतियोगित्वात् तादृशव्यासस्यवृत्तिधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकान्योन्याभावस्य प्रतियोगित्वाच्चासम्भवः । न च निरुक्तहेतुसमानाधिकरणान्योन्याभावप्रतियोगितानवच्छेदकं यत्साध्यं तेन समं सामानाधिकरणं विवक्षितमिति वाच्यम् । तथापि वक्लिमान् धूमात् सत्तावान् जातिमत्त्वादित्यादौ वज्रादेर्निरुक्तहेतुसमानाधिकरणस्य तत्तदधिकरणवृत्तित्वविशिष्टवज्रादिमत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकान्योन्याभावस्य वक्लि-घटोभयाद्यवच्छिन्नप्रतियोगिताकान्योन्याभावस्य च प्रतियोगितावच्छेदकत्वेनासम्भवतादवस्थात् । अथानवच्छेदकत्वं पर्याप्तिसम्बन्धेनावच्छेदकताशून्यत्वं^(१) । न च तथापि वक्लिमान् धूमादित्यादौ चालनीन्यायेन सर्व्वसामेव साध्यव्यक्तीनां साधनसमानाधिकरणान्योन्याभावप्रतियोगितावच्छेदकतापर्याप्त्यधिकरणत्वात् अव्याप्तिर्दुर्व्वारेति वाच्यं । जात्यखण्डोपाध्यतिरिक्तपदार्थस्य स्वरूपतोऽभावप्रतियोगितानवच्छेदकतया^(२) वज्रादेरवच्छेदकतापर्याप्त्यधिकरणत्वाभावात् इति चेत् । न । सत्ताव्याप्यजातिमान् जातिमत्त्वादित्यादौ तथाप्यव्याप्तेः सर्व्वसामेव सत्ताव्याप्यजातीनां स्वरूपतः साधनसमानाधिकरणान्योन्याभावप्रतियोगितावच्छेदकतापर्या-

(१) पर्याप्तग्राह्यसम्बन्धेनावच्छेदकताशून्यत्वमिति ख० ग० ।

(२) एतच्चावच्छेदकतावच्छेदकसाधारणावच्छेदकत्वमभ्युपेत्य ।

प्यत्वात् । धूमसम्बन्धिवह्निस्तद्व्याप्य एव, युगपदुत्पन्न-

प्यधिकरणत्वात् । गुण-कर्मान्यत्वविशिष्टसत्तावान् जातेरित्यादावति-
व्याप्तेश्च सत्तायाः पर्याप्त्याख्यसम्बन्धेन तादृशावच्छेदकताशून्यतया
विशिष्टसत्ताया अपि तथात्वात् विशिष्टसत्तायाः सत्तानतिरिक्तत्वात्
महानसीयवक्त्रिमान् धूमादित्यादावतिव्याप्तिश्च जात्यखण्डोपाध्यति-
रिक्तपदार्थस्य स्वरूपतोऽनवच्छेदकतया महानसीयवज्रादेरपि पर्या-
प्त्याख्यसम्बन्धेन तादृशावच्छेदकताशून्यत्वात् । एतेन निरुक्तहेतुसमा-
नाधिकरणान्योन्याभावप्रतियोगितावच्छेदकतावच्छेदकतायाः पर्या-
प्त्यनधिकरणं यत् साध्यतावच्छेदकं तदवच्छिन्नसामानाधिकरणं विव-
क्षितमिति नासम्भवः सङ्घेतौ वक्त्रित्वादेः साध्यतावच्छेदकस्य पर्या-
प्त्याख्यसम्बन्धेन साधनसमानाधिकरणान्योन्याभावप्रतियोगितावच्छे-
दकतावच्छेदकत्ववत्त्वस्य कदाचिदपि असम्भवात् सत्ताव्याप्यजाति-
मान् जातिमत्त्वादित्यादौ सर्वासांमेव सत्ताव्याप्यजातीनां स्वरूपतः
साधनसमानाधिकरणान्योन्याभावप्रतियोगितावच्छेदकत्वेऽपि साध्य-
तावच्छेदकीभूतसत्ताव्याप्यजातित्वरूपेणानवच्छेदकत्वादित्यपि निरस्तं ।
द्रव्यत्वव्याप्यजातिमत्त्वान् द्रव्यसमवायित्वादित्यादौ नानाजातिसाध्य-
तावच्छेदकस्थलेऽव्याप्तेर्दुर्वारत्वात् साध्यतावच्छेदकीभूतानां सर्वासा-
मेव पृथिवीत्व-जलत्वादिरूपाणां द्रव्यत्वव्याप्यजातीनां चालनीन्यायेन
साधनसमानाधिकरणपृथिवी-जलादिमदन्योन्याभावप्रतियोगिताव-
च्छेदकतावच्छेदकतापर्याप्त्यधिकरणत्वात् । गुण-कर्मान्यत्वविशिष्टस-
त्तावान् जातेरित्यादावतिव्याप्तेश्च सत्तात्वस्य पर्याप्त्याख्यसम्बन्धेन तादृ-

विनष्टयोश्च व्याप्तिरेव । कर्मणि च संयोगाभावः
प्रतियोग्यसमानाधिकरणः ।

अप्रतियोगितावच्छेदकतावच्छेदकत्वशून्यतया साध्यतावच्छेदकस्य वि-
शिष्टसत्तात्वस्य तथात्वात् विशिष्टसत्तात्वस्य सत्तात्वानतिरिक्तत्वात् ।
महानसीयत्वविशिष्टवक्त्रिमान् धूमादित्यादावतिव्याप्तेश्च वक्त्रित्वस्य
पर्याप्त्याख्यसम्बन्धेन तादृशप्रतियोगितावच्छेदकतावच्छेदकत्वशून्यतया
साध्यतावच्छेदकस्य महानसीयत्वविशिष्टवक्त्रित्वस्यापि तथात्वात् वि-
शिष्टवक्त्रित्वस्य वक्त्रित्वानतिरिक्तत्वात् । तद्वण्डिमान् दण्डिसंयो-
गादित्यादावतिव्याप्तेश्च जात्यतिरिक्तपदार्थस्य स्वरूपतोऽनवच्छेद-
कतया साध्यतावच्छेदकौभूततद्वण्ड्यक्तेः पर्याप्त्याख्यसम्बन्धेन ता-
दृशप्रतियोगितावच्छेदकतावच्छेदकत्वशून्यत्वात् । अस्यापि साध्यताव-
च्छेदकघटितत्वेन स्वरूपतो द्रव्यत्वादिविधेयकानुमितेरेतज्ज्ञानादय-
सम्भवापत्तेश्च । मैवं । यत्र हि स्वरूपतो द्रव्यत्वादेः साध्यत्वं न तु
साध्यतावच्छेदकं किमप्यस्ति तत्र निरुक्तेतुसमानाधिकरणीयान्यो-
न्याभावत्वनिरूपितप्रतियोगितासामान्ये यदधिकरणत्वनिष्ठपर्याप्त्य-
वच्छेदकताकलाभावस्तत्सामानाधिकरण्यं स्वरूपतस्तस्य व्याप्तिरिति
विवचणीयं यत्पदं स्वरूपतः साध्यव्यक्तिपरं^(१) । वक्त्रिमान् धूमात्

(१) जातेः समवायेनेव निरूपितत्वसम्बन्धेनापि स्वरूपतोभानाभ्युपगमात्
द्रव्यत्वज्ञानमन्तरेणापि निरूपितत्वसम्बन्धेन स्वरूपतोद्रव्यत्वावगाहिनि-
रुक्तव्याप्तिज्ञानसम्भवेन स्वरूपतो द्रव्यत्वविधेयकानुमित्युपपत्तिरिति तात्-
पर्यम् ।

रूपवान् पृथिवीत्वादित्यादिकिञ्चिदवच्छिन्नसाध्यकञ्चास्थालक्ष्यमेव
जात्यखण्डोपाध्यतिरिक्तपदार्थस्य स्वरूपतो व्याप्यनभ्युपगमादिति
नाव्याप्तिः । न च तथापि गुण-कर्मान्यत्वविशिष्टसत्तावान् जाते-
रित्यादावतिव्याप्तिः विशिष्टसत्तायाः सत्तानतिरिक्तत्वेन सत्ताया
एव साध्यतया तदधिकरणत्वनिष्ठपर्याप्तावच्छेदकताकत्वाभावस्य जा-
तिमन्निष्ठान्योन्याभावप्रतियोगितासामान्ये मत्त्वादिति वाच्यं । जा-
त्यादौ विशिष्टसत्तात्वरूपेण विशिष्टसत्ताया व्याप्यत्वानभ्युपगमेऽपि
स्वरूपतो विशिष्टसत्ताव्याप्यत्वस्य सर्वसम्मतत्वात्^(१) । किञ्चिदवच्छिन्न-
साध्यकस्थले तु निरुक्तहेतुसमानाधिकरणान्योन्याभावत्वनिरूपित-
प्रतियोगितासामान्ये यद्वर्मावच्छिन्नाधिकरणत्वनिष्ठपर्याप्तावच्छेदक-
ताकत्वाभावः तद्वर्मावच्छिन्नसामानाधिकरणं तद्वर्मावच्छिन्नस्य
व्याप्तिरिति विवक्षणीयं, यत्र येन रूपेण यस्य साध्यतावच्छेदकत्वं
तत्र तेन रूपेण तदेव यद्वर्मापदेन ग्राह्यं इत्यञ्च वक्षिमान् धूमा-
दित्यादौ वक्षित्वादेः स्वरूपत एव साध्यतावच्छेदकतया स्वरूपतो-
वक्षित्वादिकमेव यद्वर्मापदेन ग्राह्यं, महानसीयत्वविशिष्टवक्षि-
मान् धूमादित्यादौ महानसीयत्वादिविशिष्टत्वेन वक्षित्वादेः साध्य-
तावच्छेदकतया तद्विशिष्टवक्षित्वादिकमेव यद्वर्मापदेन ग्राह्यं, द्रव्यत्व-
व्याप्यजातिमत्त्वान् द्रव्यसमवायित्वादित्यादौ पृथिवीत्व-जलत्वादीनां
द्रव्यत्वव्याप्यजातीनां द्रव्यत्वव्याप्यजातित्वरूपेणैव साध्यतावच्छेदकतया
तादृशजातित्वविशिष्टमेव यद्वर्मापदेन ग्राह्यं, न तु स्वरूपतः
पृथिवीत्व-जलत्वादिकमित्यादि स्वयमूह्यं ।

अत्राधिकरणत्वांशस्थानतिप्रयोजनकतया तदपहाय लक्षणान्तर-
माह, 'स्वसमानाधिकरणेति, 'स्वपदं हेत्वभिमतपरं, यद्वत्कत्वमिति
यद्वद्भूतित्वमित्यर्थः, यस्य तस्य तद्वाप्यत्वमिति शेषः । तथाच यत्र
स्वरूपतो द्रव्यत्वादेः साध्यत्वं तत्र हेतुसमानाधिकरणीयान्योन्या-
भावत्वनिरूपितप्रतियोगितासामान्ये यन्निष्ठपर्याप्तावच्छेदकताकत्वा-
भावस्तत्सामानाधिकरणं स्वरूपतस्तस्य व्याप्तिरिति वक्तव्यं, 'यत्पदं
स्वरूपतः साध्यव्यक्तिपरं । किञ्चिदवच्छिन्नसाध्यकस्थले तु तादृश-
प्रतियोगितासामान्ये यद्वद्भावावच्छिन्ननिष्ठपर्याप्तावच्छेदकताकत्वाभाव-
स्तद्वद्भावावच्छिन्नसामानाधिकरणं तद्वद्भावावच्छिन्नस्य व्याप्तिरिति
वक्तव्यं । ननु तथापि द्रव्यं पृथिवीत्वात् वक्त्रिमान् धूमादित्यादौ
कालिकविशेषणत्व-समवायादिसम्बन्धेन साध्यवतोऽन्योन्याभावस्य
हेत्वधिकरणे सत्त्वादसम्भवः । न च प्रतियोगिता साध्यतावच्छेदक-
सम्बन्धावच्छिन्नावच्छेदकताकत्वेन विशेषणीया इति वाच्यं । घटवान्
कालपरिमाणात् घटवान्नित्यज्ञानत्वादित्यादौ तादृशप्रतियोगित्वा-
प्रसिद्धेरिति चेत् । न । साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नत्वेनावच्छेद-
कताया विशेषणात्, केवलान्वयिनि वाच्यत्वादिपर्याप्तस्वरूप-
सम्बन्धावच्छिन्नावच्छेदकताकत्वं संयोगादिसम्बन्धेन वाच्यत्वादिमद-
त्यन्ताभावप्रतियोगितायामेव प्रसिद्धं । साध्यतावच्छेदकसम्बन्धभेदेन
व्याप्तेर्भेदात् यत्र तादात्म्यसम्बन्धेन किञ्चिदवच्छिन्नस्य साध्यत्वं तत्र
तादृशान्योन्याभावत्वनिरूपितप्रतियोगितासामान्ये यद्वद्भावावच्छिन्न-
पर्याप्तावच्छेदकताकत्वाभावस्तद्वद्भावावच्छिन्नसामानाधिकरणं वक्तव्यं यद्वद्भावावच्छिन्न-
साध्यतावच्छेदकपरं । अवच्छेदकता च साध्यतावच्छेदकताघटकसम्ब-

न्भावच्छिन्नत्वेन विवक्षणीया^(१) सर्वमन्यत् अत्यन्ताभावगर्भप्रथमलक्षणवदवसेयमिति संक्षेपः ।

ननु अत्यन्ताभावघटितद्वितीयलक्षणपक्षे व्यधिकरणधूमस्य वङ्गित्वरूपेण व्यधिकरणवङ्गिव्याप्यत्वं कथं स्यात् सामानाधिकरण्यविरहात् इत्यत आह, 'अन्येति, 'प्रतियोगित्वादिति, परस्परसामानाधिकरण्यविरहेणेति शेषः । यथाश्रुते नानाव्यक्तिसाध्यकानुरोधेनानवच्छेदकत्वपर्यन्तानुधावनस्यावश्यकत्वेन तादृशप्रतियोगित्वस्याकिञ्चित्करत्वात्^(२), इत्यञ्च परस्परसामानाधिकरण्यविरह एव तस्य हेतुत्वात् । न चैवमन्यवृत्तिवङ्गेरन्यवृत्तिधूमवन्निष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वादित्यस्यैव सम्यक्तया तदतोऽन्योन्याभावप्रतियोगित्वादिति व्यर्थमिति वाच्यं । अन्यवृत्तिवङ्गेरन्यनिष्ठधूमवन्निष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वेऽपि द्रव्यस्याव्याप्यवृत्तितानये सामानाधिकरण्यं सम्भवतीत्यनुशयेन तदुपादानादिति । 'न चैवमिति, 'न व्याप्तिः' नैका व्याप्तिरित्यर्थः, तथाच धूमत्वं व्याप्यतावच्छेदकं न स्यात् व्याप्तेः प्रतिधूमं^(३) भिन्नत्वेन धूमत्वस्यातिप्रसक्तत्वादिति भावः । 'तथात्वेन' व्याप्त्याश्रयत्वेन, 'धूममात्रस्येति, तथाच व्याप्तेः प्रतिधूमं भेदेऽपि वङ्गिव्याप्तित्वावच्छिन्नस्यानतिप्रसक्तत्वात् धूमत्वमवच्छेदकं, यथा प्रतियोगितायाः प्रतिव्यक्तिभिन्नत्वेऽपि तत्तदभावप्रतियोगितात्वावच्छिन्नस्यानतिप्रसक्तत्वात् घट-

(१) साध्यतावच्छेदकतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नत्वेन विशेषणीयेति ख०

ग० ।

(२) व्याप्यत्वाभावे अप्रयोजकत्वादित्यर्थः ।

(३) सर्वत्र 'प्रतिधूम०' इत्यत्र प्रतिस्वमिति ख० ग० ।

त्वादिकमवच्छेदकमिति भावः । ननु सर्वस्मिन्नेव लक्षणे धूमसमा-
नाधिकरणवन्निरपि धूमव्याप्यः स्यात् एवं युगपदुत्पन्न-विनष्टव्यक्ति-
द्वयोरपि कालिकसमव्याप्तिः स्यादित्यत्र दृष्टापत्तिमाह, 'धूमेत्यादि,
'व्याप्तिरेव' कालिकसमव्याप्तिरेव, दैशिकसमव्याप्यतायां समदेशस्यैव
तन्त्रत्वात् उत्पाद-विनाशयोर्यौगपद्याभिधानमसङ्गतं स्यात् अतः का-
लिकत्वानुधावनं, एकस्य कालिकव्याप्यतायां उत्पाद-विनाशयोरन्य-
तरयौगपद्यस्यैव तन्त्रत्वादुभयोर्यौगपद्याभिधानमसङ्गतं स्यात् अतः
समव्याप्यत्वानुधावनं । ननु प्रतियोग्यसामानाधिकरण्यघटितप्रथम-
लक्षणे संयोगौ सत्त्वादित्यादौ यद्यपि नातिव्याप्तिः सत्तायां गुणद्य-
वच्छेदेन संयोगसामानाधिकरण्याभावसत्त्वेन प्रतियोग्यसमानाधि-
करणसत्तायाः समानाधिकरण्याभावः संयोगाभाव एव तत्प्रतियो-
गितावच्छेदकत्वात् संयोगत्वस्य, तथापि संयोगवान् संयोगाभावादि-
त्यादावतिव्याप्तिः संयोगाभावे हेतौ संयोगसामानाधिकरण्याभावा-
सत्त्वेन प्रतियोग्यसमानाधिकरणहेतोः समानाधिकरण्याभावो न
संयोगाभावः किन्तु अभावान्तर एव तादृशप्रतियोगितानवच्छेदक-
त्वात् संयोगत्वस्य । न च सत्तावत् संयोगाभावे हेतावपि गुणद्य-
वच्छेदेन संयोगसामानाधिकरण्याभावोऽस्त्येव इति वाच्यं । तथा
सति प्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धेन प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्न-
प्रतियोगिसामानाधिकरण्याभाववदभावस्यैव व्याप्यवृत्त्यभावतया र-
योगाभावस्यापि व्याप्यवृत्त्यभावत्वापत्तेः इत्यत आह, 'कर्मणि चेति,
'संयोगाभावः' संयोगवान् तदभावादित्यादौ साधनीभूतः संयोगा-
भावः, प्रतियोग्यसमानाधिकरणः संयोगरूपप्रतियोगिसामानाधि-

करणाभावाश्रयः, संयोगाभावे कर्मादौ न संयोगसामानाधि-
करणमितिप्रतीतेः । न चैवं तस्य व्याप्यवृत्त्यभावत्वापत्तिरिति वाच्यं ।
निरुक्तप्रतियोगिसमानाधिकरणभिन्नाभावस्य विशेषणताविशेषेणाव-
च्छिन्नवृत्तिमङ्गिन्नाभावस्यैव वा व्याप्यवृत्त्यभावत्वादिति भावः । यद्वा
ननु प्रतियोग्यसमानाधिकरणत्वघटितप्रथमलक्षणे संयोगी सत्त्वादित्यादावतिव्याप्तिः हेतोः संयोगाभावोऽयप्रतियोगिसमानाधिकरण-
तया स्वप्रतियोग्यसमानाधिकरणहेतोः समानाधिकरणो न संयो-
गाभावः किन्तु अन्यात्यन्ताभाव एव तत्प्रतियोगितावच्छेदकता न
संयोगत्वस्येत्यत आह, 'कर्म्मणि चेति, 'संयोगाभावः' संयोगाभाव-
रूपः साध्याभावः, 'प्रतियोग्यसमानाधिकरण इति प्रतियोगिनो-
ऽसमानं प्रतियोग्यधिकरणवृत्तित्वशून्यं यत्साधनं तदधिकरणकस्त-
दधिकरणनिष्ठ इत्यर्थः, तस्याधिकरणं यस्मैत्यधिकरणार्थकषष्ठ्यन्ता-
न्यपदार्थव्यधिकरणवज्जब्रौहिसमासस्य तदधिकरणमधिकरणं यस्मैति
मध्यपदलोपिसमासस्य वा आश्रयणात् । सत्तायां कर्म्मणि न
संयोगसामानाधिकरणमित्यादिप्रतीत्या सामानाधिकरणस्याव्याप्य-
वृत्तित्वेन सत्तादावपि कर्मावच्छेदेन संयोगसामानाधिकरणाभाव-
सत्त्वादिति भावः^(१) ।

ननु सामानाधिकरण्यं नाव्याप्यवृत्ति संयोगिवृत्तित्वाभावो न
सत्तावृत्तिरित्यादिप्रतीत्यनुपपत्तेः सत्तायां कर्मादौ न संयोगसामा-
नाधिकरणमित्यादिप्रतीतेस्तु कर्मादाववच्छेदकत्वसम्बन्धेन सत्ता-

यद्वा प्रतियोगिवैयधिकरण्यावच्छेदकावच्छिन्नत्व-
मत्यन्ताभावविशेषणं कर्मणि च संयोगाभावस्य प्रति-
योगिवैयधिकरण्यावच्छेदकावच्छिन्नत्वमेव । न चा-
न्योन्याभावस्याव्याप्यवृत्तित्वम्, अभेदस्याबाधितप्रत्य-

निष्ठसामानाधिकरण्याभाव एव विषयः तथाच प्रथमलक्षणे संयोगी
सत्त्वात् संयोगवान् तदभावादित्यादावतिव्याप्तिर्दुर्व्वारेत्यस्वरमा-
दाह, 'यदेति, 'प्रतियोगिवैयधिकरणेति, 'प्रतियोगिवैयधिकरणं'
प्रतियोग्यनधिकरणवृत्तित्वं, 'अवच्छेदकं' विशेषणं यत्र हेतौ तदव-
च्छिन्नत्वं सामानाधिकरणसम्बन्धेन तद्विशिष्टत्वं तत्समानाधिकरणत्व-
मिति यावत्, प्रतियोग्यसामानाधिकरणमपचाय प्रतियोग्यनधिक-
रणवृत्तित्वं हेतुविशेषणं वक्तव्यमिति तु तदर्थः । यद्वा ननु प्रथमलक्षणे
प्रतियोग्यसमानाधिकरणत्वस्यात्यन्ताभावविशेषणत्वमेवोपादीयतां किं
तस्य हेतुविशेषणत्वेनेत्यत आह, 'कर्मणि चेति, तथाचात्यन्ता-
भावविशेषणत्वे संयोगी द्रव्यत्वादित्यादावेवाव्याप्तिः विशिष्टस्थान-
तिरिक्ततया 'प्रतियोगिसामानाधिकरण्याभावविशिष्टः सन् हेत्व-
धिकरणवृत्तिर्योऽभाव इति विवक्षायामप्यप्रतीकारादिति भावः ।
इदमुपलक्षणं द्वितीयलक्षणेऽपि प्रतियोगिवैयधिकरणस्यात्यन्ताभाव-
विशेषणत्वे तत्रैवाव्याप्तिः कर्मादौ संयोगाभावस्य प्रतियोग्यनधि-
करणवृत्तित्वात् विशिष्टस्थानतिरिक्ततया प्रतियोग्यनधिकरणवृत्तित्व-
विशिष्टः सन् हेत्वधिकरणवृत्तिर्योऽभाव इति विवक्षायामप्रती-
कारादिति ध्येयं । ननु सामानाधिकरणं नाव्याप्यवृत्ति तथाच

अत्यन्ताभावविशेषणत्वेऽपि नाव्याप्तिः, अतिव्याप्तिश्च हेत्वभावयोर्द्वयो-
र्विशेषणत्व एव संयोगी सत्त्वादित्यादौ सामानाधिकरणस्य व्याप्यवृत्ति-
तया सत्तायां संयोगाभावे च संयोगाभावीयप्रतियोग्यसामानाधि-
करणविरहात् इत्यत आह, 'यदेति अर्थस्तु पूर्ववत् ।

वस्तुतस्तु 'प्रतियोगिवैयधिकरणस्य प्रतियोग्यनधिकरणवृत्तित्वस्य,
यदवच्छेदकं निरूपकं हेत्वधिकरणं, प्रतियोग्यनधिकरणं हेत्वधि-
करणमिति यावत्, तदवच्छिन्नत्वं तद्वृत्तित्वं अत्यन्ताभावविशेषण-
मित्येवार्थः ।

केचित्तु प्रतियोगिवैयधिकरणं प्रतियोग्यनधिकरणवृत्तित्वरूपं
यदवच्छेदकं विशेषणं तदवच्छिन्नत्वं तद्विशिष्टत्वमत्यन्ताभावविशे-
षणमित्यर्थः, प्रतियोग्यसामानाधिकरणं विहाय प्रतियोग्यनधि-
करणवृत्तित्वमत्यन्ताभावविशेषणं वक्तव्यमिति भावः । न चैवं कपि-
संयोगी एतद्वृत्तत्वादित्यादावव्याप्तिः एतद्वृत्तत्वसमानाधिकरणकपि-
संयोगाभावस्यापि प्रतियोग्यनधिकरणगुणादिवृत्तित्वादिति वाच्यं ।
हेत्वधिकरणे प्रतियोग्यनधिकरणवृत्तित्वस्य विवक्षणीयत्वात् एत-
न्नाभायैव च हेतुसामानाधिकरणपदमतो न तद्वैयर्थ्यं, प्रति-
योग्यनधिकरणवृत्तित्वविशिष्टस्वाधिकरणहेत्वधिकरणकाभाव इति
वा अभावान्तनिष्कर्ष इत्याहुः । तदसत् बह्वतरकुसृष्टिकल्पनापत्ते-
रिति ध्येयं ।

ननु मूले वृत्तः कपिसंयोगी न इत्यबाधितप्रतीतेः कपिसंयोगा-
दिमत्यपि वृत्ते मूलाद्यवच्छेदेन कपिसंयोगादिमतोऽन्योन्याभावस्य
सत्त्वात् अन्योन्याभावघटितलक्षणं कपिसंयोगी एतत्त्वादित्याद्य-

व्याप्यवृत्तिसाध्यकेऽव्याप्तमित्यत आह, 'न चेति, 'अन्योन्याभावस्य'
 कपिसंयोगादिमदन्योन्याभावस्य, 'अव्याप्यवृत्तित्वं' कपिसंयोगादि-
 मत्यपि वृत्ते मूलाद्यवच्छेदेन सत्त्वं, 'अभेदस्येति मूले वृत्तः कपिसं-
 योग्यभिन्न इति मूलावच्छेदेनापि कपिसंयोगिभेदाभावस्य कपि-
 संयोगिभिन्नभेदस्य च यथार्थप्रतीतेरित्यर्थः । न हि अव्याप्यवृत्ति-
 नोरत्यन्ताभाव-तत्प्रतियोगिनोरन्योन्याभाव-तत्प्रतियोगितावच्छेदक-
 योरेकावच्छेदेन सत्त्वं, विरोधात् । न च कपिसंयोगिभेदाभावस्य
 कपिसंयोगिभिन्नभेदस्य च कपिसंयोगरूपतया मूलावच्छेदेन कथं
 तत्प्रतीतिरिति वाच्यम् । अन्यत्रान्योन्याभावाभावस्यान्योन्याभाव
 वद्वेदस्य च प्रतियोगितावच्छेदकस्वरूपत्वेऽव्याप्यवृत्तिस्थले तद्वद-
 न्योन्याभावात्यन्ताभावस्य तद्वद्भिन्नभेदस्य चातिरिक्तस्य व्याप्यवृत्तिस्व-
 रूपस्योक्तरूपप्रतीत्यन्यथानुपपत्त्याभ्युपगमात् । न चैवं मूले वृत्तः कपि-
 संयोगी नेत्यावाधितप्रतीतेः का गतिरिति वाच्यं । विशेषणीभूतस्य
 कपिसंयोगादेरत्यन्ताभावस्यैव तद्विषयत्वात् । न च तत्र कपिसंयोग्य-
 न्योन्याभावविषयकत्वमप्यनुभवसिद्धमिति वाच्यं । तथानुव्यवसायस्य भ्र-
 मत्वात् । अथैवं गुणादावपि संयोगवदन्योन्याभावोऽपि अयोगोल्लाकादौ
 धूमवदन्योन्याभावोऽपि च न सिद्धोत् तत्रापि गुणो न संयोगी
 अयोगोल्लाकं न धूमवत् इत्यादिप्रतीतेर्विशेषणीभूतस्य संयोग-
 धूमादेरत्यन्ताभावविषयतायाः सुवचत्वात् इति चेत् । न । तत्र बाधका-
 भावेनानुव्यवसायानां भ्रमत्वे मानाभावात् । प्रकृते च यथोक्ताभेद-
 प्रतीतेरेव बाधकतया अनुव्यवसायस्य भ्रमतायाः प्रमाणसिद्धत्वा-
 दिति भावः । इदमापाततः मूले वृत्तः कपिसंयोग्यभिन्न इत्यवाधित-

भिज्ञानात् । व्याप्य-व्यापकभावाज्ञानेऽपि वस्तुसतस्त-
थात्वेनाज्ञायमानस्य सम्बन्धत्वेनैव भातस्य षष्ठ्यर्थत्वं ।

प्रतीतेरसिद्धेः कपिसंयोगिभेदाभावस्य कपिसंयोगादिमङ्गिन्नभेदस्य
चातिरिक्तस्य कल्पने गौरवात् । न च कपिसंयोगिभेदाभावः कपि-
संयोगिभिन्नभेदस्य न कपिसंयोगरूपो न चातिरिक्तः किन्तु तत्तद्व्य-
क्तित्वरूपस्तादात्म्यसम्बन्धेन तत्तद्व्यक्तित्वरूपो वा इति वाच्यम् । तथापि
मूलस्य तत्रानवच्छेदकत्वात् तत्प्रतीतेः प्रमात्वासम्भवात् तत्प्रतीतेर्यथा-
र्थत्वे मानाभावाच्च । न च तथापि वृत्तः कपिसंयोग्यभिन्न इति यथार्थ-
प्रतीतिरेवान्योन्याभावस्याव्याप्यवृत्तित्वे बाधिकेति वाच्यं । वृत्ते कपि-
संयोगिभेदस्याव्याप्यवृत्तित्वे तद्भेदात्यन्ताभावस्य तद्भिन्नभेदस्य च सुतरां
वृत्ताग्रावच्छेदेन सत्त्वात् तादृशप्रतीतेरनुपपत्तिविरहात् । न च कपि-
संयोगिभेदाभावस्य वृत्तावृत्तित्वज्ञानं बाधकमिति वाच्यं । तदसि-
द्धेः, प्रत्युत तद्वृत्तित्वस्यैव ग्रहात् । वस्तुतस्तु अन्योन्याभावस्य व्याप्यवृ-
त्तितानियमनयेऽपि कपिसंयोगी एतद्वृत्तत्वादित्यादौ कपिसंयोगिभे-
दस्याव्याप्यवृत्तित्वभ्रमेण हेतुसामानाधिकरण्यभ्रमे नियमतोऽनुमि-
त्यनुदयापत्त्या निरवच्छिन्नत्वं स्वप्रतियोग्यनिरूपितत्वं वा हेत्वधि-
करणवृत्तित्वस्य स्वप्रतियोगिभिन्नत्वं हेत्वधिकरणस्य वा विशेषणमा-
वश्यकं स्वपदमभावपरं, तथाच तत एव कपिसंयोगादिमङ्गिन्नत्वस्या-
व्याप्यवृत्तित्वेऽपि कपिसंयोगी एतत्त्वादित्यादौ नाव्याप्तिः मूले वृत्तः
कपिसंयोगी नेत्यबाधितप्रतीतावपि वृत्तः कपिसंयोग्यन्योन्याभाव-

नचैवमननुगमो देषाय, कस्य का व्याप्तिरित्यननु-
गतस्यैव लक्ष्यत्वात् । अथ धूमवति वह्नि-हृदौ न

प्रतियोगी नेत्यप्रत्ययेन^(१) स्वप्रतियोगित्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेद-
वत्त्वस्य हेत्वधिकरणे विरहादित्येव तत्त्वं ।

केचित्तु कपिसंयोगिभिन्नत्वस्याव्याप्यवृत्तित्वभ्रमे तत्प्रमायां वा
हेतुसामानाधिकरण्यग्रहे नियमतोऽनुमित्यनुत्पादवारणाय प्रतियो-
ग्यवृत्तित्वेनान्योन्याभावो विशेषणीयः । न चैवं कपिसंयोगी मत्त्वा-
दित्यादावतिव्याप्तिरिति वाच्यं । सामानाधिकरण्यस्याव्याप्यवृत्तितया
कपिसंयोगवदन्योन्याभावस्यापि गुणादौ प्रतियोग्यवृत्तित्वात् । हेत्व-
धिकरणावच्छेदेन प्रतियोग्यवृत्तित्वं विवक्षितं एतस्माभायैव च हेतु-
सामानाधिकरण्यपदं, तेन संयोगी द्रव्यत्वादित्यादौ नाव्याप्तिस्तद-
वस्था । हेतुरेव वा प्रतियोग्यवृत्तित्वेन विशेषणीयः इत्याहुः । तदसत्
गौरवात् सम्बन्धविशेषेणैव प्रतियोग्यवृत्तित्वस्य वक्तव्यतया^(२) स्वप्रति-

(१) अव्याप्यवृत्तिधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदस्यैवाव्याप्यवृत्तित्वं न तु
व्याप्यवृत्तिधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदस्य अतः प्रतियोगित्वस्य
व्याप्यवृत्तिधर्मतया तदवच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदस्य नाव्याप्यवृत्तित्व-
मिति भावः ।

(२) प्रतियोग्यवृत्तित्वस्य सम्बन्धविशेषानियन्तित्वे धूमवान् वज्रेरित्यादा-
वतिव्याप्तिः तत्र धूमवद्भेदस्य प्रतियोगिनि धूमवति कालिकसम्बन्धेन
वर्त्तमानत्वात् प्रतियोग्यवृत्तिभेदो गगनादिभेद एव तस्य प्रतियोगिनि
गगनादौ केनापि सम्बन्धेनावर्त्तमानत्वात् तदप्रतियोगित्वात् धूम-
वदादेः । सम्बन्धविशेषश्च स्वप्रतियोगितावच्छेदकवत्ताग्रहविरोधिता-
घटकसम्बन्धरूपः, स्वपदं अन्योन्याभावपरम् ।

स्तः धूमवान् वह्निमद्ब्रह्मै न भवतीतिप्रतीतेर्व्यासज्य-
वृत्तिप्रतियोगिकौ वह्नि-वह्निमतोरत्यन्तान्योन्याभावौ

योग्यनिरूपितत्वापेक्षया गुरुत्वात् प्रतियोग्यवृत्तित्वस्याव्याप्यवृत्तित्वे
मानाभावाच्चेति दिक् ।

ननु तत्रेत्यादौ सप्तम्याद्युत्तरत्रादिप्रत्ययेन सप्तम्यादेरिव स्वस-
मानाधिकरणान्योन्याभावाप्रतियोगियद्वत्कत्वमित्यत्र सम्बन्धिवोधक-
वज्रघ्नीद्युत्तरककारेण मतुप्प्रत्ययादिः स्मर्यते तेन च व्याप्यत्व-
रूपसम्बन्धाश्रयः साध्यव्याप्यत्वरूपसम्बन्धाश्रयो वा स्मर्यते विग्रहवा-
क्यस्यषष्ठ्याद्यर्थवतो वज्रघ्नीद्युत्तरककारस्मारितमतुवाद्यर्थत्वनियमात्
तत्र प्रथमे तदेकदेशे व्याप्यत्वे निरूपितत्वसम्बन्धेन यद्वत्पदार्थस्य
साध्याधिकरणस्यान्वयः, द्वितीये तदेकदेशे साध्ये आधेयतासम्बन्धेन
तदन्वयः, यद्वा यत्पदोत्तरमतुप्प्रत्ययस्यैवाधिकरणव्याप्योऽधिकरण-
वृत्तिसाध्यव्याप्यो वा अर्थः विग्रहवाक्यस्यषष्ठ्याद्यर्थवतो वज्रघ्नीहेश्वर-
मपदार्थत्वनियमात्, तदेकदेशे चाधिकरणे प्रतियोग्यन्तस्य यत्पदार्थ-
साध्यस्य चान्वयः, ककारस्तात्पर्यग्राहकः, तथाच स्वसमानाधिकरणा-
न्योन्याभावाप्रतियोगिसाध्याधिकरणव्याप्यत्वं स्वसमानाधिकरणान्यो-
न्याभावाप्रतियोगिसाध्याधिकरणवृत्तिसाध्यव्याप्यत्वं वा लक्षणवाक्यार्थः
उभयथैव व्याप्यत्वं तद्घटकं तदेव च व्याप्यत्वं न ज्ञायते इत्यत आह,
'व्याप्येति, 'व्याप्य-व्यापकभावाज्ञानेऽपि' साध्यवतो व्याप्यत्वज्ञानं विना-
ऽपि, 'सम्बन्धत्वेनैव भातस्य' संयोगत्वादिनैव प्रकृतव्याप्तिज्ञानविषयस्य,
'वस्तुमतः तथात्वेनाज्ञायमानस्य' वस्तुमतोव्याप्तित्वेन प्रकृतव्याप्तिज्ञा-

धूमवति विद्येते इति कथमेते लक्षणे इति चेत् । न ।
तादृशाभावानभ्युपगमात् अभ्युपगमे वा तत्र तदुभयं
प्रतियोगि न वह्नि-वह्निमन्तौ ।

नाविषयस्य, 'षष्ठ्यर्थत्वं' विग्रहवाक्यस्यषष्ठ्यर्थत्वमिति योजना, 'वस्तु-
सतः' वस्तुनि फलीभूतानुमितौ विधेयतासम्बन्धेन सतः साध्यस्येति
यावत्, तथाच संयोगत्वादिरूपेण संयोगादिरूपहेतुतावच्छेदक-
सम्बन्धस्यैव विग्रहवाक्यस्यषष्ठ्यर्थतया ककारस्मारितमतुवादेरपि संयो-
गत्वादिरूपेण संयोगादिरेवार्थो न तु व्याप्यत्वादिरूपसम्बन्धवानिति
भावः । 'न चैवमिति, 'एवं' स्वपदार्थ-यत्पदार्थघटितलक्षणे, 'अननु-
गतस्यैवेति, लक्ष्यस्यानुगतत्वे लक्षणस्याननुगतत्वएव परस्परव्याप्ति-
रूपदोषसम्भवादिति भावः । 'धूमवान् वह्निमद्ब्रह्मदौ न भवतीत्येव
पाठः, 'न भवत इति पाठस्तु प्रामादिकः^(१) । 'व्यासज्येति व्यासज्य-
वृत्तिधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिकावित्यर्थः, 'धूमवति' वह्नि-ब्रह्मदोभयत्वा-
वच्छिन्नानधिकरणे धूमवति, 'कथमेते लक्षणे इति, 'एते' अत्यन्ताभा-
वान्योन्याभावगर्भलक्षणे, प्रतियोगिव्यधिकरणत्वस्य प्रतियोगितावच्छे-
दकावच्छिन्नव्यधिकरणत्वरूपतया वह्नि-ब्रह्मदोभयत्वावच्छिन्नाभाव-
स्यापि तथात्वादिति भावः, 'तादृशाभावेति व्यासज्यवृत्तिधर्माव-
च्छिन्नप्रतियोगिताकाभावानभ्युपगमादित्यर्थः । न चैवं वह्नि-ब्रह्मदौ

(१) प्रत्ययस्य उद्देश्यवाचकपदोत्तरवर्त्तिवचनसजातीयवचनकत्वनियमा-
दिति शेषः ।

अथवानौपाधिकत्वं व्याप्तिः तच्च यावत्समाना-
धिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नं यत्

न स्त इत्यादिप्रतीतेः को विषय इति वाच्यं । हृदाधिकरणे तादृश-
प्रत्ययस्य वक्तृसामान्याभावो विषयः वक्तृमति तादृशप्रत्ययस्य हृद-
सामान्याभावो विषयः तदुभयशून्ये च तादृशप्रत्ययस्य तादृशाभाव-
द्वयमेव विषय इत्यभ्युपगमात् । न चैवं द्वित्वस्य प्रतियोगितावच्छेदक-
त्वोल्लेखोऽनुपपन्न इति वाच्यं । लाघवात् कृत्प्रकारौभूतवक्तृत्व-हृद-
त्वादिरूपतत्तद्भूतावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावानामेव द्वित्वावच्छिन्न-
प्रतियोगिताकत्वकल्पनात् । अथैवं लक्षणाव्याप्तिस्तदवस्था धूमसमा-
नाधिकरणहृदसामान्याभावस्य हृदत्वावच्छिन्नहृदमात्रवृत्तिप्रतियो-
गिताव्यक्तेर्वक्तावसत्त्वेऽपि वक्तृ-हृदोभयत्वावच्छिन्नतत्प्रतियोगिताव्य-
क्तेरुभयसाधारणतया वक्तावपि सत्त्वात् द्रव्यसामान्याभावो वक्तृ-
प्रतियोगिकः इति वत् हृदसामान्याभावो वक्तृप्रतियोगिक इत्यपि
प्रत्ययापत्तिः हृदसामान्याभावो न वक्तृप्रतियोगिक इति प्रत्ययानुप-
पत्तिश्च हृदसामान्याभावस्य द्वित्वावच्छिन्नप्रतियोगिताव्यक्तेर्वक्ति-
निष्ठत्वादिति चेत् । न । वक्तृसामान्याभाव-हृदसामान्याभावादेः वक्तृत्व-
हृदत्वावच्छिन्नवक्ति-हृदमात्रवृत्तिप्रतियोगिताव्यक्त्योरेव वक्ति-हृदो-
भयत्वावच्छिन्नत्वाभ्युपगमात् उभयसाधारणप्रतियोगितान्तरे माना-
भावात् । न चैवं पर्वते वक्ति-हृदौ न स्त इति प्रतीतेः प्रतियोगिता-
कत्वसम्बन्धेनाभावे वक्ति-हृदयोरुभयोः प्रकारत्वानुपपत्तिः हृदसामा-
न्याभावे वक्तिनिष्ठप्रतियोगिताकत्वविरहादिति वाच्यं । हृदत्वावच्छि-

तत्प्रतियोगिकात्यन्ताभावसमानाधिकरणं यत् तेन
समं सामानाधिकरण्यम् । नह्येवं सोपाधिः, तत्र

न हृदमात्रवृत्तिप्रतियोगिताव्यक्तेर्हृदसम्बन्धत्ववदङ्गिसम्बन्धत्वस्याप्यभ्यु-
पगमात् । न च तदसम्बद्धस्य कथं तत्सम्बन्धत्वमिति वाच्यं । तद्वृत्तिधर्मा-
वच्छिन्नत्वसम्बन्धेन तस्यापि तत्सम्बद्धत्वात् तत्र निष्ठतासम्बन्धेन प्रतियो-
गित्वस्योभयसम्बद्धत्वे मानाभावात् । अथ वङ्गि-हृदौ न स्तः घट-पटौ
न स्त इत्यादिप्रतीतिः प्रकारौभूततत्तद्धर्मद्वयावच्छिन्नप्रतियोगिताका-
भावविषयत्वेनोपपत्तावपि घटौ न स्तः पटौ न स्तः इत्यादि प्रतीतेर्न
क्लृप्ताभावविषयत्वेनोपपत्तिः घटादिसामान्याभावस्य तद्विषयत्वे एकैक-
घटादिमति तादृशप्रतीत्यनुपपत्तिः यत्किञ्चिद्घटाद्यभावस्य तद्वि-
षयत्वे घटद्वयादिमत्यपि तादृशप्रतीत्यापत्तिः अतो घटद्वयत्व-पटद्वय-
त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावस्यातिरिक्तस्यावश्यकत्वमिति चेत् । न ।
तावता घटौ न स्तः पटौ न स्त इत्यादिप्रतीतिबलाद्घटद्वयत्व-पट-
द्वयत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावस्यातिरिक्तस्य सिद्धावपि घट-पटो-
भयत्वावच्छिन्न-वङ्गि-हृदोभयत्वावच्छिन्नाभावादेरतिरिक्तत्वे माना-
भावात् । यावत्यो घटव्यक्तयः प्रातिष्विकरूपेण तत्तद्व्यक्तिभिन्नघट-
त्वावाच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावेष्वेव प्रत्येकं घटद्वयत्वावच्छिन्नप्रति-
योगिताकत्वकल्पनात् यत्किञ्चिद्घटभिन्नघटाभावादेव घटौ न स्त
इति प्रतीत्युपपत्तेः घटद्वयत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावेऽपि माना-
भावाच्च यत्किञ्चिद्घटद्वयवति घटेतरघटस्यैव सत्त्वात् न तथा धीः ।
न चानन्ताभावेषु घटद्वयत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वसम्बन्धकल्पना-

साधनसमानाधिकरणान्त्यन्ताभावप्रतियोगिन आर्द्र-
न्ध्रमवत्त्वादेरुपाधेर्योऽत्यन्ताभावस्तेन समं साध्यस्य

मपेक्ष्य लाघवादेक एव तत्सम्बद्धातिरिक्ताभावः सिध्यतीति वाच्यं ।
अनन्ताधिकरणेषु अतिरिक्ताभावसम्बन्धकल्पनामपेक्ष्य कृप्तानन्ता-
धिकरणसम्बन्धेऽप्यनन्ताभावेषु घटद्वयत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्व-
सम्बन्धकल्पनाया एव लघुत्वादिति भावः । एतेन त्रित्वाद्यवच्छिन्ना-
भावोऽपि व्याख्यातः । ननु घट-पटौ न स्तः घटौ न स्तः वक्त्रि-हृदौ न
स्तः वक्त्रौ न स्त इत्यादिप्रतीतेः अधिकरणभेदेन नानाभावविषयकत्व-
मनुभवविरुद्धमेकाभावविषयकत्वस्यानुभवसिद्धत्वात् तादृशानुभवाप-
लापे अधिकरणातिरिक्ताभावस्यासिद्धापत्तेः इत्यस्वरसादाह, 'अभ्युप-
गमे वेति, 'तदुभयं प्रतियोगि' द्वित्वव्यावर्त्तकं तत्तद्वर्त्मद्वयं द्वित्वञ्च
तादृशाभावप्रतियोगितावच्छेदकं, 'न वक्त्रि-वक्त्रिमन्तौ' न वक्त्रित्व-
वक्त्रिमत्त्वे, तथाच हेतुसमानाधिकरणवक्त्रि-हृदोभयाभावस्य वक्त्रित्व-
हृदत्वमुभयत्वं त्रितयं प्रतियोगितावच्छेदकं अवच्छेदकता च व्यासज्य-
वृत्तिः न तु वक्त्रित्वमवच्छेदकतापर्याप्त्यधिकरणं, एवं वक्त्रिमद्-
हृदोभयान्योन्याभावस्य वक्त्रिमत्त्वं हृदत्वमुभयत्वञ्च त्रितयं प्रति-
योगितावच्छेदकं अवच्छेदकता च व्यासज्यवृत्तिः न तु वक्त्रिमत्त्वं
अवच्छेदकतापर्याप्त्यधिकरणं अतो नाव्याप्तिः प्रागुक्तयुक्त्या सर्वेषा-
मेव लक्षणानां अवच्छेदकतापर्याप्त्यधिकरणत्वघटितत्वादिति भावः ।
'तदुभयं प्रतियोगीत्यादि यथाश्रुतन्तु न सङ्गच्छते उभयोः प्रति-
योगित्वे एकस्यापि प्रतियोगित्वानपायात् । न च व्यासज्यवृत्तिधर्माव-

धूमादेः सामानाधिकरण्याभावात् उपाधेः साध्य-
व्यापकत्वात् । एतदेव यावत्स्वव्यभिचारिव्यभिचारि-
साध्यसामानाधिकरण्यमनौपाधिकत्वं गीयते ।

च्छिन्नाभावस्य प्रतियोगितापि व्यासज्यवृत्तिरिति वाच्यं । घटो
घट-पटोभयाभावप्रतियोगीत्यप्रत्ययापत्तेः घटो न घट-पटोभया-
भावप्रतियोगीति प्रत्ययापत्तेश्च इति ध्येयं ।

केचित्तु 'तदुभयं प्रतियोगि' द्वित्वव्यावर्तकतत्तद्धर्मावच्छिन्न-
मात्रवृत्तिपर्याप्त्यधिकरणत्वसम्बन्धेन तदुभयत्वं तादृशाभावप्रतियो-
गितावच्छेदकं, 'न तु वक्लि-वक्लिमत्तौ' न वक्लित्व-मक्लिमत्वे, तथाच
वक्लि-हृदोभयाभावादेर्वक्लि-हृदमात्रवृत्तिपर्याप्त्यधिकरणत्वादिसम्ब-
न्धेन द्वित्वं प्रतियोगितावच्छेदकं न तु वक्लिवादि । न चैवं वक्लि-
हृदौ न स्त इत्यादावन्वयितावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वव्यु-
त्पत्तिभङ्गप्रसङ्गः केवलद्वित्वस्यान्वयितानवच्छेदकत्वादिति वाच्यं । त-
द्व्युत्पत्तिरत्र सङ्कोचात् इत्याहुः ।

प्राञ्चस्तु घट-पटोभयाभावादेर्घट-पटोभयवृत्तिद्वित्वत्वेन तादृश-
द्वित्वमेव प्रतियोगितावच्छेदकं अन्वयितावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगि-
ताकत्वव्युत्पत्तेश्चात्र सङ्कोच एव इत्याहुः । तदसत् घट-पटोभयवृत्ति-
त्वाद्यनुपस्थितावपि घट-पटौ न स्तः इति प्रत्ययात् । न च तदानीं
तादृशप्रत्ययोऽसिद्ध इति वाच्यं । तदानीमपि तादृशप्रत्ययस्यैव
दीधितिज्ञता लिखितत्वादिति दिक् ।

यदा यावत्समानाधिकरणात्यन्ताभावाप्रतियोगि-

आचार्यलक्षणं परिष्करोति 'अथ वेति, यथाश्रुते प्रकृतसाध्य-
व्यापकत्वे सति साधनाव्यापको यस्तदभाववत्त्वरूपमनौपाधिकत्वमिति,
सङ्केतौ सिद्धसिद्धिव्याघातादाह, 'तच्चेति अनौपाधिकत्वञ्चेत्यर्थः,
'यावदिति, यावन्ति स्वसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगितावच्छे-
दकानि तदवच्छिन्नप्रतियोगिताकात्यन्ताभावसमानाधिकरणं यत्
साध्यं तेन समं सामानाधिकरणमित्यर्थः, 'स्वपदं' हेत्वभिमतपरं,
वक्त्रिमान् धूमादित्यादौ धूमसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियो-
गितावच्छेदकानि यावन्ति जलत्वादीनि तदवच्छिन्नप्रतियोगिता-
काभावसमानाधिकरण एव वक्त्रिः व्याप्यसमानाधिकरणात्यन्ताभाव-
प्रतियोगिनो व्यापकवति सुतरां अत्यन्ताभावादिति लक्षणसमन्वयः ।
धूमवान् वक्त्रेरित्यादौ च वक्त्रिसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगिता-
वच्छेदकमार्द्रैन्धनत्व-धूमत्वादि तदवच्छिन्नप्रतियोगिताकात्यन्ताभाव-
समानाधिकरणश्च न धूमादिः^(१) मार्द्रैन्धनादेर्धूमव्यापकत्वादिति ना-
तिव्याप्तिः । वक्त्रिसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगितावच्छेदकं ज-
लत्वादि तदवच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावसमानाधिकरणो धूम इत्यति-
व्याप्तिवारणाय 'यावदिति । ननु सर्वत्र तादृशावच्छेदकैर्घटत्व-पटत्व-
गोत्वादिभिर्यावद्भिरवच्छिन्नत्वस्य कुत्राप्यभावादसिद्धिः । न च यावन्ति
तादृशावच्छेदकानि तत्प्रत्येकावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावेति विव-

(१) तदवच्छिन्नप्रतियोगिताकात्यन्ताभावासमानाधिकरणश्च धूमादि-
दिति ख० ।

प्रतियोगिकात्यन्ताभावासामानाधिकरण्यं यस्य तस्य
तदेवानौपाधिकत्वं सोपाधौ तु साध्यवन्निष्ठात्यन्ताभा-

क्षितमिति वाच्यं । अवच्छिन्नपदस्याश्रयार्थकतया तत्प्रत्येकाश्रय-
प्रतियोगिकोभयाभाव-विशिष्टाभावादिकमादायातिव्याप्यापत्तेः । न
च यावत्त्वमवच्छिन्नस्य विशेषणं तथाच तादृशावच्छेदकावच्छिन्नानि
यावन्ति तत्प्रतियोगिताकाभावेत्यर्थः, अवच्छिन्नपदमाश्रयार्थकमिति
वाच्यं । तथापि यावत्तावच्छिन्नप्रतियोगिकात्यन्ताभावमादायाति-
व्याप्तितादवस्थ्यात्प्रतियोगिव्यधिकरणत्वेनाभावविशेषणत्वेऽप्रसिद्धिः ।
न च तादृशावच्छेदकानि यावन्ति तत्प्रत्येकावच्छिन्नप्रतियोगिका-
त्यन्ताभावसमानाधिकरणं यत्साध्यं विवक्षितं इति अवच्छिन्नत्वञ्च
स्वरूपसम्बन्धविशेषः, इत्यञ्च विशिष्टाभावोभयाभावमादाय नाति-
व्याप्तिरिति वाच्यं । रूपवान् पृथिवीत्वादित्यादावव्याप्यापत्तेः पृथि-
वीत्वसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगितावच्छेदकानि घटत्व-
पटत्वत्वादीनि यावन्ति तत्प्रत्येकावच्छिन्नप्रतियोगिकाभावसामा-
नाधिकरण्यस्य क्वापि रूपेऽसत्त्वात् घटीयरूपे घटत्वतावच्छिन्नप्रति-
योगिकात्यन्ताभावसामानाधिकरण्यविरहात् पटीयरूपे पटत्वता-
वच्छिन्नप्रतियोगिकात्यन्ताभावसामानाधिकरण्यविरहात् । विशिष्ट-
सत्तावान् जातेरित्यादावतिव्याप्यापत्तेश्च जातिसमानाधिकरणा-
त्यन्ताभावप्रतियोगितावच्छेदकानि यावन्ति तत्प्रत्येकावच्छिन्नप्रति-
योगिताकाभावसामानाधिकरण्यस्यैव विशिष्टसत्ते सत्तानतिरिक्ते
सत्त्वादिति । मैवं । हेतुममानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगितावच्छे-

वाप्रतियोगिन उपाधेर्योऽत्यन्ताभावस्तेन समं हेतोः
सामानाधिकरण्यम् उपाधेः साधनाव्यापकत्वात् ।

दका यावन्तो धर्मा यद्गुर्मावच्छिन्नसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रति-
योगितावच्छेदकास्तद्गुर्मावच्छिन्नसमानाधिकरण्यस्य विवक्षितत्वात् ।
यद्गुर्मापदं साध्यतावच्छेदकपरं, अत्र चरमप्रतियोगिता विशेषणतावि-
शेषसम्बन्धावच्छिन्नत्वेन विशेषणीया, तेन धूमवान् वक्त्रेरित्यादौ वक्त्रि-
समानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगितावच्छेदकस्यार्द्रेन्धनत्वादेः सर्व-
स्यैव धूमत्वावच्छिन्नसमानाधिकरणसमवायादिसम्बन्धावच्छिन्नाभाव-
प्रतियोगितावच्छेदकत्वेऽपि धूमप्रकारकप्रमाविशेष्यत्वत्वादेः^(१) तादृशा-
वच्छेदकयावदन्तर्गतस्य धूमसमानाधिकरणाभावीयविशेषणताविशे-
षावच्छिन्नप्रतियोगितावच्छेदकत्वविरहान्नातिव्याप्तिः । एवं प्रथम-
प्रतियोगितापि विशेषणताविशेषसम्बन्धावच्छिन्नत्वेन विशेषणीया, तेन
वक्त्रिमान् धूमादित्यादौ धूमसमानाधिकरण-संयोग-समवायादिसम्ब-
न्धावच्छिन्नाभावप्रतियोगितावच्छेदकस्य वक्त्रिप्रकारकप्रमाविशेष्यत्व-
त्वादेर्यावदन्तर्गतस्य वक्त्रिसमानाधिकरणाभावीयविशेषणताविशेषा-
वच्छिन्नप्रतियोगितावच्छेदकत्वविरहेऽपि न क्षतिरिति दिक् । यथा-

(१) अयःपिण्डेऽपि धूमप्रकारकभ्रमात्मकज्ञानविशेष्यत्वसत्त्वात् धूम-
प्रकारकज्ञानविशेष्यत्वत्वादेः वक्त्रिसमानाधिकरणाभावप्रतियोगि-
तावच्छेदकत्वं न सम्भवतीत्यत उक्तं धूमप्रकारकप्रमाविशेष्यत्वत्वादे-
रिति ।

यद्वा यत्सम्बन्धितावच्छेदकरूपवत्त्वं यस्य तस्य सा
व्याप्तिः । तथाहि धूमस्य वह्निसम्बन्धित्वे धूमत्वम-

श्रुताभिप्रायेणासङ्घेतौ लक्षणासत्त्वं प्रतिपादयति, 'न ह्येवमिति,
'अत्यन्ताभावप्रतियोगिनः' प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नस्य, 'उपाधेः'
आर्द्रैन्धनवत्त्वाद्युपाधेः^(१) । ननु तस्यानौपाधिकत्वरूपत्वे "यावत्स्वयमि-
चारिव्यभिचारिसाध्यसामानाधिकरण्यमनौपाधिकत्वं" इति प्राची-
नग्रन्थविरोध इत्यत आह, 'एतदेवेति मया यन्निस्तमेतदेवेत्यर्थः,
'अनौपाधिकत्वमित्यनन्तरमिति पूरणीयं, 'गीयते' प्राचीनैरुच्यते,
'स्वयमिचारिपदस्य स्वसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगितावच्छेद-
कावच्छिन्नार्थकतया, द्वितीयव्यभिचारिपदस्य च तत्प्रतियोगिताका-
त्यन्ताभावसमानाधिकरणार्थकतया तस्याप्ययमेवार्थः इति भावः ।

प्रकारान्तरेणानौपाधिकत्वं निर्व्वक्ति, 'यदेति यावन्तो यत्स-
मानाधिकरणात्यन्ताभावाप्रतियोगिनस्तत्प्रतियोगिकात्यन्ताभावासा-
मानाधिकरण्यं यस्य तस्य तत्त्वमेव तदनौपाधिकत्वमित्यर्थः, प्रथम-
यत्पदं साध्यपरं यस्येत्यत्र यत्पदं हेतुपरं, वक्त्रिमान् धूमादित्यादौ
वक्त्रिसमानाधिकरणाभावाप्रतियोगिनामिन्धनादीनां सर्व्वेषामेवा-

(१) अस्मत्संगृहीतादर्शमूलपुस्तकेषु सर्व्वत्र 'आर्द्रैन्धनवत्त्वादेरुपाधेः'
इति पाठो वर्त्तते परन्तु टीकाकारव्याख्यानुसारेण कस्मिंश्चिन्मूल-
पुस्तके 'आर्द्रैन्धनवत्त्वादेरुपाधेः' इत्यत्र 'उपाधेः' इत्येतावन्मात्रपाठो
वर्त्तते इत्यनुमीयते ।

वच्छेदकं धूममात्रस्य वह्निसम्बन्धित्वात्, वह्नेस्तु धूम-
सम्बन्धे न वह्नित्वमवच्छेदकं धूमासम्बन्धिनि गतत्वात्,

भावेन समं धूमस्य न सामानाधिकरणं व्यापकव्यापकस्य सुतरां
व्याप्यव्यापकत्वादिति लक्षणसमन्वयः, धूमवान् वह्नेरित्यादौ धूम-
समानाधिकरणभावाप्रतियोगिनामार्द्रैर्धनादीनामेवाभावेन समं
वज्रादेः सामानाधिकरणान्नातिव्याप्तिः । धूमसमानाधिकरण-
भावाप्रतियोगिनो द्रव्यत्वादेरभावेन सममसामानाधिकरणस्य वह्नौ
सत्त्वादतिव्याप्तिवारणाय 'यावदिति । ननु सर्वत्र साध्यसमानाधिक-
रणभावाप्रतियोग्येवाप्रसिद्धं तादृशविशिष्टाभावोभयाभावप्रतियोगि-
त्वस्य केवलान्वयित्वात् । न चाप्रतियोगिपदं विशेषणताविशेषा-
वच्छिन्नप्रतियोगितानवच्छेदकावच्छिन्नपरं व्यधिकरणसम्बन्धावच्छि-
न्नतादृशाभावप्रतियोगितावच्छेदकत्वस्य सर्वत्र सत्त्वात् तादृशप्रतियो-
गितानवच्छेदकस्याप्रसिद्धिरिति विशेषणताविशेषावच्छिन्नेति प्रति-
योगिताविशेषणमिति वाच्यं । तथापि वह्निमान् धूमादित्यादा-
वसम्भवात् वह्निसमानाधिकरणभावीयविशेषणताविशेषावच्छिन्न-
प्रतियोगितानवच्छेदकावच्छिन्नयावत्प्रतियोगिकेन यावत्तावच्छिन्न-
प्रतियोगिकाभावेन समं सामानाधिकरणस्य धूमे सत्त्वात् । न च
साध्यसमानाधिकरणभावीयविशेषणताविशेषावच्छिन्नप्रतियोगितान-
वच्छेदकं यावत् तत्प्रत्येकावच्छिन्नविशेषणताविशेषावच्छिन्नप्रतियो-
गिकाभावेन सममसामानाधिकरणं विवक्षितं संयोग-समवायादि-
सम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिकाभावमादायासम्भववारणाय विशेषणता-

न ह्यतिप्रसक्तमवच्छेदकं, संयोगादौ तथात्वाददर्शनात् ।
किन्तु ब्रह्मावाद्देन्धनप्रभववह्नित्वं धूमसम्बन्धितावच्छे-
दकं, तादृशञ्च व्याप्यमेव ।

विशेषावच्छिन्नेति चरमप्रतियोगिताविशेषणमिति वाच्यं । प्रमेयत्व-
त्वादेरपि तादृशप्रतियोगितानवच्छेदकयावदन्तर्गततया तद्वच्छिन्न-
विशेषणताविशेषावच्छिन्नप्रतियोगिकाभावाप्रसिद्ध्या असम्भवतादव-
स्थात् । न च व्यतिरेकितावच्छेदकत्वेन^(१) तादृशप्रतियोगितान-
वच्छेदकं विशेषणीयमिति वाच्यं । तथापि केवलान्वयिन्यव्याप्तेः
तत्र तादृशप्रतियोगितानवच्छेदकव्यतिरेकितावच्छेदकधर्माप्रसिद्धेः
द्रव्यं विशिष्टसत्त्वादित्यादावव्याप्तेश्च विशिष्टस्यानतिरेकात् । अथ या-
वत्तं द्वितीयात्यन्ताभावविशेषणं, तथाच साध्यसमानाधिकरणाभावी-
यविशेषणताविशेषावच्छिन्नप्रतियोगितानवच्छेदकावच्छिन्नविशेषण-
ताविशेषावच्छिन्नप्रतियोगिकयावदभावासामानाधिकरण्यमित्यर्थः ।
न चायमात्मा ज्ञानादित्यादौ तादृशयावदभावान्तर्गतानां रूपादि-
सामान्याभावाभावानां सकलरूपादिव्यक्तीनां अधिकरणाप्रसिद्धिः
तादृशयावदभावप्रत्येकासामानाधिकरण्योक्तावपि तादृशयावदभावा-
न्तर्गतस्याकाशादेरधिकरणाप्रसिद्ध्या असम्भवः द्रव्यं विशिष्टसत्त्वादि-
त्यादौ अव्याप्तिश्च विशिष्टसत्त्वानतिरिक्तत्वात् इति वाच्यं । सप्तमीतत्-
पुरुषाश्रयणात् तादृशयावदभावे असामानाधिकरण्यं यद्वर्मावच्छि-

(१) अभावप्रतियोगितावच्छेदकत्वेनेत्यर्थः ।

अथवा यत्सामानाधिकरण्यावच्छेदकावच्छिन्नं यस्य

नस्य तद्गुणवत्त्वं तदनौपाधिकत्वमित्यस्य विवक्षितत्वात् आकाशादा-
वपि हेतुसामानाधिकरण्याभावसत्त्वात् न दोष इति चेत् । न । द्रव्यं
पृथिवीत्वादित्यादावव्याप्तेः तादृशप्रतियोगितानवच्छेदकद्रव्यान्यव-
विशिष्टसत्त्वाभावत्वाद्यवच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावस्य सत्तादेः पृथिवी-
त्वादिसमानाधिकरणत्वादाकाशाभावादेरभावे मानाभावेन केवला-
न्वयिस्थलेऽपि तादृशाभावाप्रसिद्धेऽप्येति । मैवं । साध्यसमानाधि-
करणाभावीयविशेषणताविशेषावच्छिन्नप्रतियोगितानवच्छेदका या-
वन्तो धर्मा यद्गुणवच्छिन्नसमानाधिकरणाभावीयविशेषणताविशेषा-
वच्छिन्नप्रतियोगितानवच्छेदकास्तद्गुणवत्त्वमनौपाधिकत्वमिति विव-
क्षितत्वादिति दिक् । सोपाधौ यथाश्रुताभिप्रायेण लक्षणाभावं
दर्शयति, 'सोपाधाविति । 'यदेति, 'सा' तत्सम्बन्धिता, सम्बन्धिता च
सामानाधिकरणं, तथाच यत्सामानाधिकरण्यावच्छेदकरूपवत्त्वं यस्य
तस्य तत्सामानाधिकरणमित्यर्थः, प्रथमयत्पदं साध्यत्वेनाभिमत-
परं । न च द्रव्यं सत्त्वादित्यादावतिव्याप्तिः सत्ताया द्रव्यत्वंसामाना-
धिकरण्यावच्छेदकगुणान्यवविशिष्टसत्त्वत्वावच्छिन्नत्वात् यस्येत्यन्त-
वैयर्थ्यञ्चाव्यावर्तकत्वात् इति वाच्यं । यत्सम्बन्धितावच्छेदकं यद्रूपवत्त्वं
यस्य तस्य तत्सामानाधिकरणं तद्रूपेण तस्य व्याप्यत्वमित्यभिप्रायात् ।
इत्यञ्च वक्ष्येर्वक्षित्वरूपेण धूमव्याप्यत्ववारणाय यस्येत्यन्तं, तथाच
साध्यसामानाधिकरण्यावच्छेदकत्वे सति साध्यसामानाधिकरणं
व्याप्तिरिति फलितं । अत्र च साध्यसामानाधिकरण्यावच्छेदकत्वं न

स्वरूपं तत्तस्य व्याप्यं वह्निसामानाधिकरण्यं हि धूमे
धूमत्वेनावच्छिद्यते सौपाधौ तूपाधिना ।

स्वरूपसम्बन्धविशेषः, लघुसमनियतगुरुरूपेण हेतुतायामव्याप्यापत्तेः^(१)
धूमत्वादेर्वह्निसामानाधिकरण्यस्य स्वरूपसम्बन्धरूपावच्छेदकत्वे माना-
भावाच्च । नापि साध्यसामानाधिकरण्यान्यूनवृत्तित्वं वह्निमान् प्रमे-
यात् इत्यादावतिव्याप्यापत्तेः वह्निमान् धूमादित्यादावव्याप्यापत्तेश्च^(२)
नापि तदन्यूनानतिरिक्तवृत्तित्वं, वह्निमान् धूमादित्यादावेवाव्याप्तेः ।
नापि तदनतिरिक्तवृत्तित्वं, द्रव्यं सत्त्वादित्यादावतिव्याप्यापत्तेः । किन्तु
पारिभाषिकं, तच्च स्वविशिष्टाधिकरणावृत्तियावत्साध्यासमानाधि-
करणकत्वं, स्वपदं हेतुतावच्छेदकपरं । न चैवं वह्निमान् नील-
धूमादित्यादौ व्यर्थविशेषणेऽतिव्याप्तिः निरुक्तावच्छेदकत्वस्य नीलधूम-
त्वादावपि सत्त्वादिति वाच्यं । तस्यापि लक्ष्यत्वात् व्यर्थविशेषणोद्भा-
वने वादिनोऽधिकेन निग्रह इत्येव व्यर्थविशेषणताया दूषकतावीज-
त्वात् । तत्र साध्यासमानाधिकरणत्वं साध्यतावच्छेदकसम्बन्धेन सा-
ध्यतावच्छेदकावच्छिन्नाधिकरणे दैशिकविशेषणताविशेषेणावृत्तित्वं,
तेन समवायेन वज्रादौ साध्ये वह्निमान् धूमादित्यादौ गुणाद्यन्य-

(१) सम्भवति लघौ धर्मे गुरौ तदभावादिति नियमादिति शेषः ।

(२) अन्यूनवृत्तित्वपदस्य व्यापकत्वार्थकतया प्रमेयत्वस्य वह्निसामानाधि-
करणव्यापकतया वह्निमान् प्रमेयादित्यादावतिव्याप्तिः । वह्निसामा-
नाधिकरणस्य रामभादिसाधारणतया धूमत्वस्य तदव्यापकतया
वह्निमान् धूमादित्यादावव्याप्तिश्चेति भावः ।

त्वविशिष्टसत्तावान् जातेरित्यादौ च नातिव्याप्तिः, न वा गगनादेः कालिकसम्बन्धेनावृत्तित्वमते द्रव्यं सत्तादित्यादौ द्रव्यत्वाधिकरणकालावृत्तित्वस्यावृत्तिमात्रे सत्त्वेऽपि अतिव्याप्तिः, गगनादेस्तेन सम्बन्धेन वृत्तित्वमते द्रव्यं गुणादित्यादौ द्रव्यत्ववदवृत्तित्वस्याप्रसिद्धाव्याप्तिः, स्वविशिष्टाधिकरणावृत्तित्वमपि हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेन स्वविशिष्टाधिकरणे दैशिकविशेषणताविशेषेणावर्तमानत्वं, तेन वक्षिमान् धूमादित्यादौ वज्रसमानाधिकरणधूमावयवत्वादेर्दैशिकविशेषणताविशेषेण वज्रसमानाधिकरणद्रव्यत्वादेश्च धूमसमानाधिकरणत्वेऽपि नाव्याप्तिरिति संचेपः ।

सङ्केतसङ्केतोल्लेखणसत्तासत्त्वमुपपादयति, 'तथाहीति, 'वक्षि-सम्बन्धित्वे' वक्षिसामानाधिकरण्ये, एवं सर्वत्र, 'न ह्यतिप्रसक्तमिति न हि साध्यसामानाधिकरण्यातिप्रसक्तं निरुक्तसाध्यसामानाधिकरण्यावच्छेदकत्ववदित्यर्थः, 'संयोगादौ' संयुक्तत्वादौ, 'आदिना प्रमेयत्वादिपरिग्रहः, 'तथात्वादर्शनादिति यथोक्तधूमादिसामानाधिकरण्यानवच्छेदकत्वादित्यर्थः, साध्यसामानाधिकरण्यातिप्रसक्तस्यापि निरुक्तसाध्यसामानाधिकरण्यावच्छेदकत्वाश्रयत्वे संयुक्तत्व-प्रमेयत्वादेरपि तादृशधूमादिसामानाधिकरण्यावच्छेदकत्वापातादिति भावः । अत्र साध्यसामानाधिकरण्यांशस्यातिरिक्तस्य प्रवेशे प्रयोजनविरहात् गौरवाच्च तत्परित्यज्य लक्षणान्तरमाह, 'अथ वेति 'यत्पदं साध्यपरं, अत्रापि यत्सम्बन्धितावच्छेदकयद्वर्मावच्छिन्नं यत् तत् तद्वर्मरूपेण तस्य व्याप्यमित्यर्थः, अन्यथा द्रव्यं सत्तादित्यादावपि सत्ताया द्रव्यत्वसामानाधिकरण्यावच्छेदकविशिष्टसत्तात्वावच्छिन्नत्वादतिव्याप्त्यापत्तेः,

तथाच साध्यसामानाधिकरण्यावच्छेदकहेतुतावच्छेदकत्वत्वं व्याप्तिरिति पर्यवसितं अन्यत्सर्वं पूर्ववत् ।

सङ्केतसङ्केतोर्लक्षणसत्तासत्त्वमुपपादयति, 'वक्त्रिसामानाधिकरण्यामित्यादिना, 'सोपाधौ तु उपाधिनेति उपाधिना तु सोपाधाविति योजना, तथाच 'सोपाधौ' साध्यव्यभिचारित्वविशिष्टसाधने^(१), 'उपाधिनेव साध्यसम्बन्धोऽवच्छिद्यत इत्यर्थः, 'तु'शब्दस्य इतरव्यवच्छेदकत्वात्^(२) । न चोपाधेः साधनावृत्तित्वात् कथं साधननिष्ठसाध्यसम्बन्धितावच्छेदकत्वमिति वाच्यं । सर्वत्र साधनसमव्याप्तोपाधेः सामानाधिकरण्यसम्बन्धेनैव साधननिष्ठसाध्यसामानाधिकरण्यावच्छेदकत्वसम्भवादिति भावः । यथाश्रुतन्तु न सङ्गच्छते साधनतावच्छेदकानवच्छेदकत्वप्रतिपादनस्यैव^(३) प्रकृतोपयोगितया तदलाभात्^(४) । यद्यपि धूमवान् वक्त्रेरित्यादौ आर्द्रैन्धनप्रभववक्त्रित्वादेरुपाधिभिन्नस्याप्यवच्छेदकत्वात् अवधारणमनुपपन्नं । न चार्द्रैन्धनप्रभववक्त्रेरपि संयोगसम्बन्धेन धूमसम्बन्धितया "सर्वे साध्यसामानाधिकरणाः सदुपाधयो हेतोरेकाश्रये येषां स्व-साध्यव्यभिचारिता" इति न्यायेनार्द्रैन्धनप्रभववक्त्रित्वादिकमप्युपाधिरिति^(५) वाच्यं । एवमपि स्नेहवत्

(१) साध्यव्यभिचारिणीति ख० । (२) इतरव्यवच्छेदार्थत्वादिति ख० ।

(३) साधनतावच्छेदके साध्यसामानाधिकरण्यानवच्छेदकत्वप्रतिपादनस्यैवेत्यर्थः ।

(४) सोपाधौ उपाधिना तु इति योजनाभावे सा न तावच्छेदके साध्यसामानाधिकरण्यानवच्छेदकत्वस्य प्रतिपादयितुमशक्यत्वमिति भावः ।

(५) स्वाश्रयार्द्रैन्धनप्रभववक्त्रिमत्त्वसम्बन्धेनोपाधिरिति तात्पर्यम् ।

स्पर्शादित्यत्रानुपाधिनापि शीतत्वेन साध्यसामानाधिकरण्यावच्छेदा-
दवधारणासङ्गतेः । न च स्नेहवत् स्पर्शादित्यादौ शीतत्वादिरपि
स्वाश्रयीभूतशीतस्पर्शादिसम्बन्धेन उपाधिरेवेति वाच्यं । तथा सति
पदार्थमात्रस्यैव यथाकथञ्चित्सम्बन्धेनोपाधित्वादुपाधिभिन्नस्याप्रसिद्ध्या
व्यवच्छेद्याप्रसिद्धेर्धूमवान् वक्तेरित्यादौ साधनतावच्छेदकस्यापि वक्त्रि-
त्वादेरार्द्रेन्धनप्रभववज्रादिसम्बन्धेनोपाधित्वात् साधनतावच्छेदकव्यव-
च्छेदाप्राप्तेः । न चोपाधिपदं साधनतावच्छेदकभिन्नपरमिति वाच्यं ।
इदं दधि दध्न इत्यत्र साधनतावच्छेदकदधित्वस्यापि सामानाधि-
करणसम्बन्धेनावच्छेदकतया नियमासङ्गतितादवस्थ्यात्^(१) । तथापि
सामान्यत उपाधिभिन्नव्यवच्छेद्यत्वं न नियमव्यवच्छेद्यं, अपि तु सा-
धनतावच्छेदकताघटकसम्बन्धेन साधनतावच्छेदकावच्छिन्नत्वमात्र-
मिति न कोऽपि दोषः ।

पितृचरणस्य उपाधिपदमुपाधिवृत्तिधर्मपरं तथाचोपाधिवृ-
त्तिधर्मेणैवेत्यर्थः, भवति धूमवान् वक्तेरित्यादौ आर्द्रेन्धनप्रभव-

(१) इदं दधि दध्न इत्यत्र दधित्वस्य समवायेन साध्यत्वं दध्नः समवायेन
हेतुत्वं, द्रव्यत्वव्याप्यव्याप्यजातेः परमाणुवृत्तित्वानभ्युपगमेन परमा-
ण्वन्तर्भावेण दधित्वसाध्यकदध्यात्मकहेतोर्व्यभिचारित्वं । न च दधि-
त्वस्य समवायेनाप्यवच्छेदकत्वं सम्भवति कथं तत् परित्यज्य सामा-
नाधिकरणसम्बन्धानुधावनमिति वाच्यम् । दधित्वसामानाधिकरण्य-
शून्ये ह्यणुके समवायेन दधित्वस्य वर्तमानत्वेनातिप्रसक्तत्वात्, सामा-
नाधिकरणसम्बन्धेन दधित्वन्तु न ह्यणुकात्मके दध्नि वर्तमानमतो-
ऽनतिप्रसक्तत्वेनावच्छेदकमिति ।

वक्तृत्वादिकं साध्यसामानाधिकरण्यावच्छेदकमुपाधिवृत्तिः, तथा-
 च यथाश्रुतनियमेऽपि न व्यभिचारः, सर्वत्र व्यभिचारिणि किञ्चिद्-
 विशिष्टसाधनस्योपाधित्वात् । न च तथापि इदं स्नेहाभाववत् स्वर्गा-
 दित्यादिमाध्याव्यापकसाधनस्यैव एव व्यभिचारः शीतान्यस्पर्शरूपो-
 पाधिवृत्तिधर्मस्यैव तत्र साध्यसम्बन्धितावच्छेदकत्वादिति वाच्यं ।
 शीतान्यस्पर्शादेरपि साधनावच्छिन्नमाध्याव्यापकत्वेनोपाधितया शी-
 तान्यस्पर्शादेरप्युपाधिवृत्तित्वादित्याहुः । तदस्य तथापि साध-
 नतावच्छेदकस्यानवच्छेदत्वान्नाभेन प्रकृतानुपयोगात् व्यभिचारिणि
 किञ्चिद्विशिष्टसाधनस्यैव उपाधित्वेन साधनतावच्छेदकस्याप्युपाधि-
 वृत्तित्वादिति ध्येयम् ।

अतएव चतुष्टयं ।



अतएव साधनतावच्छेदकभिन्नेन येन साधनताभि-
मते साध्यसम्बन्धोऽवच्छिद्यते स एव तत्र साधने विशे-
षणमुपाधिरिति वदन्ति । अतएव च तत्र साधनाव्या-
पकत्वे सति साधनावच्छिन्नसाध्यव्यापकत्वं लक्षणं भ्रुवं,
व्यभिचारिणि साधने एकत्र साध्य-तदभावयोर्विरो-
धेनावच्छेदकभेदं विना तदुभयसम्बन्धाभावाद्दृश्यं

अतएव चतुष्टयरहस्यं ।

सोपाधौ साधनतावच्छेदकं न साध्यसम्बन्धितावच्छेदकं इत्यत्र
प्राभाकरसम्प्रतिमाह, 'अत एवेति यत एव सोपाधौ साधनता-
वच्छेदकं न साध्यसम्बन्धितावच्छेदकं अत एवेत्यर्थः, 'साधनता-
वच्छेदकभिन्नेनेति साधनतावच्छेदकञ्च तत् भिन्नञ्चेति कर्मधारयः
'भिन्नपदञ्च 'साध्यसम्बन्धितावच्छेदकभिन्नपरं, वैशिष्ट्यञ्च तृतीयार्थः
अन्वयश्चास्य 'साधनताभिमत इत्यनेन, तथाच साध्यसम्बन्धिताव-
च्छेदकभिन्नेन साधनतावच्छेदकेन विशिष्टे साधनताभिमते वर्तते
यः साध्यसम्बन्धः स येन धर्मेणावच्छिद्यते 'स एव विशेषणं' स एव
धर्मस्तत्र साधने उपाधिरिति नियमं प्राभाकरा वदन्तीत्यर्थः, अन्यथा
सोपाधौ साधनतावच्छेदकस्यापि साध्यसम्बन्धितावच्छेदकत्वे यत्र

साध्यसम्बन्धितावच्छेदकमस्ति, तदेव च साधनाव-
च्छिन्नसाध्यव्यापकं साधनाव्यापकं तत्रोपाधिः, अतएव
व्यभिचारे चावश्यमुपाधिरिति सङ्गच्छते । अन्यथा
व्यभिचारादेव तत्रागमकत्वेन व्यभिचारित्वेन न तदनु-
मानमप्रयोजकत्वात् । अतएव च तस्य साध्यसम्बन्धि-

व्यभिचारिणि साधनतावच्छेदकं साध्यसम्बन्धितावच्छेदकं तत्र सोपा-
धावेव तदुक्ते तन्नियमो व्यभिचारी स्यात् तत्र साधनतावच्छेदकस्य
साध्यसम्बन्धितावच्छेदकभिन्नत्वविरहादिति भावः । न चार्द्रैर्न्धनप्रभव-
वज्रादावेव तदुक्ते तन्नियमो व्यभिचारी तस्य साधननिष्ठसाध्यसा-
मानाधिकरणव्यधिकरणत्वेन तदनवच्छेदकत्वादिति वाच्यं । सामाना-
धिकरण्यसम्बन्धेन अवच्छेदकत्वस्योक्तत्वात् । अवच्छेदकत्वञ्च न स्वरूप-
सम्बन्धविशेषः, आर्द्रैर्न्धनीयवज्रादेः तादृशावच्छेदकत्वे मानाभावेना-
व्याप्यापत्तेः । नायनतिरिक्तवृत्तित्वं, धूमवान् वज्जेरित्यादौ आर्द्रैर्न्धन-
प्रभववज्जिसामानाधिकरण्यस्यापीन्धनादौ वज्जिविष्टधूमसामानाधि-
करणातिरिक्तवृत्तित्वादसम्भवापत्तेः, किन्तु अन्यूनवृत्तित्वं व्यापकत्व-
मिति यावत्, इत्थञ्च साध्यसम्बन्धितानवच्छेदकसाधनतावच्छेदका-
वच्छिन्नसाधननिष्ठसाध्यसम्बन्धितायाः सामानाधिकरण्यसम्बन्धेन व्याप-
को यः स एव उपाधिरिति फलितं । प्रत्यक्षं उद्भूतरूपादित्यत्र
प्रत्यक्षत्वसामानाधिकरण्यस्य सुखत्व-रूपत्वादौ सत्त्वात् तत्र महत्त्वसा-
मानाधिकरण्याभावात् महत्त्वेऽव्याप्तिवारणाय निष्ठान्तं साध्यसम्बन्धि-
ताविशेषणं, तस्यापि साधनावच्छिन्नसाध्यव्यापकत्वेनोपाधित्वात् । न च

तावच्छेदकरूपलक्षणा व्याप्तिः साधनताभिमतं च
कास्तीति स्फटिके जवाकुसुमवदुपाधिरसावुच्यते ।
लक्षणन्तु साध्य-साधनसम्बन्धव्यापकत्वे सति साधना-
व्यापकत्वं, विषमव्याप्तस्तु नोपाधिपदवाच्यः प्रवृत्ति-
निमित्ताभावात् । दूषकता च तस्य व्यभिचारोन्नाय-

तथापि अयं चाक्षुषो जातिमत्त्वादित्यत्र पञ्चधर्मद्रव्यत्वावच्छिन्नसाध्य-
व्यापकोपाधावुद्भूतरूपेऽव्याप्यापत्तिः विषमव्यापकस्योपाधित्वानभ्युप-
गमे च महत्त्वेऽव्याप्तिवारणाय निष्ठान्तविशेषणवैयर्थ्यं वक्ष्यमाणलक्ष-
णस्य धूमवान् वक्त्रेरित्यादावार्द्रैन्धनादौ द्रव्यं कर्मान्यत्वे सति
सत्त्वात् प्रत्यक्षमुद्भूतरूपात् महाननित्यद्रव्यत्वादित्यादौ गुणान्यत्व-
महत्त्वानित्यसमवेतत्वादिषु अतिव्याप्यापत्तिश्चेति वाच्यं । साधनाव-
च्छिन्नसाध्यव्यापकस्यैव एतन्मते उपाधितया उक्तस्थले उद्भूतरूपस्यानु-
पाधित्वात् । न च तथापि सत्त्वाद्येकव्यक्तिहेतुके द्रव्यं सत्त्वादित्यादौ
साध्यव्याप्ये^(१) घटत्वादावतिव्याप्तिर्दुर्वारा सामानाधिकरण्यसम्बन्धेन
तस्यापि साधननिष्ठसाध्यसामानाधिकरण्यव्यापकत्वादिति वाच्यं । परे-
षान्नेदमुपाधिलक्षणं अपि तु एतादृशविशिष्टधर्मस्योपाधित्वव्यापकत्व-
मेव तेषामभिमतं तथाचोपाधिलक्षणातिव्याप्तेः व्यभिचारसंपादकत-
या^(२) दोषत्वेऽपि व्यापकतातिप्रसङ्गस्यादोषतयातिव्याप्तेरदोषत्वात् । न
चैतस्य व्यापकधर्मरूपत्वे साध्यसम्बन्धितानवच्छेदकसाधनतावच्छेदका-

(१) घटत्वस्य उपाधित्वाभावसूचनार्थं साध्यव्याप्ये इति विशेषणम् ।

(२) तथाचासम्भवाव्याप्त्यर्थं व्यभिचारसम्पादकतयेति ख०, ग० ।

कतया । न च व्यभिचारोन्नायकत्वमेवोपाधित्वं
अप्रयोजकसाध्यव्यापकव्यभिचरिणोरप्युपाधित्वापत्ते-
रिति ।

इति श्रीमद्भङ्गेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ
अनुमानाख्यद्वितीयखण्डे विशेषव्याप्तिः । समाप्तश्च
व्याप्तिवादः ।

वच्छिन्नेति साधनविशेषणवैयर्थ्यं व्यापकतातिप्रसङ्गस्यादोषतया सङ्केतौ
साध्यसामानाधिकरण्यावच्छेदकेऽतिप्रसङ्गस्याप्यदोषत्वादिति वाच्यं^(१) ।
गुरुधर्मवद्विशिष्टधर्मस्यापि व्यापकत्वेन व्यापके व्यर्थविशेषणताया-
अदोषत्वादिति दिक् । नन्वेतादृशधर्मस्य^(२) गोल्वान् अश्वत्वादित्या-
दिविरुद्धस्थलीयसास्त्रावत्त्वाद्युपाधावभावात् कथमुपाधित्वमित्यत-
आह,^(३) 'अत एवेति यत एव तन्मते तत्र तस्या नोपाधित्वमत एवेत्यर्थः,
'तत्र' तन्मते, 'साधनावच्छिन्नेति साधनविशिष्टेत्यर्थः, 'ध्रुवं' निर्दोषं,
अन्यथा साधनविशिष्टसाध्याप्रसिद्ध्या तत्रैव^(४) च लक्षणमव्याप्तं स्यादिति

(१) साध्यव्यापकातिव्याप्तेरप्यदोषत्वादित्येति ख-चिह्नितपुस्तकपाठः, प-
रन्तेतादृशपाठे 'साध्यव्यापकातिव्याप्तेः' इत्यस्य साध्यसामानाधिक-
रणव्यापकातिव्याप्तेरित्येवार्थः, अतो नासङ्गतिः ।

(२) 'एतादृशधर्मस्य' साधननिष्ठसाध्यसामानाधिकरण्यावच्छेदकत्वस्ये-
त्यर्थः ।

(३) अत्र साधननिष्ठसाध्यसामानाधिकरणस्यैवाप्रसिद्धतया सुतरां सा-
धननिष्ठसाध्यसामानाधिकरण्यावच्छेदकत्वमप्रसिद्धमिति भावः ।

(४) गोल्वान् अश्वत्वादित्यादौ विरुद्धस्थले एवेत्यर्थः ।

भावः । अत्र वक्त्रिमान् धूमादित्यादौ साध्यादेरुपाधितावारणाय सत्यन्तं, तत्रैव महानसत्वादिवारणाय विशेष्यदलं । स श्यामोमित्रा-
तनयत्वादित्यादौ शाकपाकजत्वादावव्याप्तिवारणाय 'साधनावच्छि-
न्नेति । न चायं चाक्षुषः प्रमेयत्वादित्यादौ पक्षधर्मद्रव्यत्वावच्छिन्न-
साध्यव्यापके उद्भूतरूपेऽव्याप्तिरिति वाच्यं । साधनावच्छिन्नसाध्य-
व्यापकस्यैव तन्मते उपाधितया तस्यालक्ष्यत्वात् । द्रव्यं सत्त्वादित्यादौ रूपान्यत्व-गुणान्यत्वादिकञ्च लक्ष्यमेवातो न तत्रातिव्याप्तिः ।

केचित्तु साध्याभावविशिष्टसाधनवददृष्टेरेव एतन्मते लक्ष्यत्वात्
अयं चाक्षुषोमेयत्वादित्यादौ उद्भूतरूपादौ नाव्याप्तिः, एवञ्च द्रव्यं
सत्त्वादित्यादौ रूपान्यत्व-गुणान्यत्वादेरपि अलक्ष्यतया तत्रातिव्याप्ति-
वारणाय 'साधनाव्यापकत्वमिह साध्याभावविशिष्टसाधनव्यापकी-
भूताभावप्रतियोगित्वं निर्वाच्यं, धूमवान् वक्त्रेर्द्रव्यं प्रमेयत्वादित्यादौ
तत्तदयोगोलकान्यत्व-सत्त्वादिकञ्च न लक्ष्यं अतो न तत्राव्याप्ति-
रित्याहुः ।

नन्वेतस्य उपाधिलक्षणत्वे व्यभिचारे चावश्यमुपाधिनियमोऽसङ्गतः
यत्र व्यभिचारिणि हेतौ एतादृशधर्मा नास्ति तस्यैव निरुपाधित्वा-
दित्यत आह, 'व्यभिचारिणीति, 'सङ्गच्छते' इत्यन्तमेकोग्रन्थः,
व्यभिचारित्वञ्च साध्य-तदभावसमानाधिकरणत्वं, 'तदुभयसम्बन्धाभा-
वात्' तदुभयसमानाधिकरण्यासम्भवात्, 'साध्यसम्बन्धितावच्छेदक-
मस्तीति अधिकरणविधया साध्यसम्बन्धितावच्छेदकमस्तीत्यर्थः,
'तदेव' साधननिष्ठसाध्यसम्बन्धितावच्छेदकमधिकरणमेव, साधन-
निष्ठसाध्यसम्बन्धितावच्छेदकत्वरूपेण तादात्म्यसम्बन्धेनेति शेषः ।

‘तत्रोपाधिः’ अन्ततस्तत्रोपाधिः, ननु साध्य-तदभावयोर्विरोधेऽपि तदुभयसामानाधिकरणयोरविरोधात् कथं तत्रावच्छेदकभेदापेक्षेत्यत आह, ‘अन्यथेति साध्य-तदभावसामानाधिकरणयोर्विरोधाभाव-इत्यर्थः, ‘तत्र’ व्यभिचारिहेतौ, ‘अगमकत्वेन’ अव्याप्यत्वसम्भवेन, ‘व्यभिचारित्वेनेति अयं हेतुः सोपाधिर्व्यभिचारित्वादिति व्यभिचारित्वेन हेतुना, उपाध्यनुमानं अप्रयोजकं स्यादनुकूलतर्काभावादित्यर्थः, साध्य-तदभावसामानाधिकरणयोर्विरोधे तु अवच्छेदकविधया विरोधभञ्जनमेवानुकूलतर्कः, साधननिष्ठसाध्यसामानाधिकरणावच्छेदकीभूतस्याधिकरणस्यैव तादात्म्यसम्बन्धेन तादृशावच्छेदकत्वरूपेण साध्याधिकरणत्वादिरूपेण वोपाधित्वादिति भावः । सोपाधौ साधनतावच्छेदकस्य न साधननिष्ठसाध्यसम्बन्धितावच्छेदकत्वमित्यत्र प्राभाकरसंवादमुक्त्वा आचार्यसंवादमाह, ‘अत एवेति यत एव सोपाधौ साधनतावच्छेदकं केवलं न साध्यसम्बन्धितावच्छेदकमत एवेत्यर्थः, ‘तस्य’ समव्याप्तधर्मस्य, ‘साधनाभिमतं च कास्तीति साधनताभिमतांशे प्रकारीभूते साधनतावच्छेदके तादात्म्यसम्बन्धेन विशेषणीभूय भ्रमविषयोभवतीत्यर्थः, ‘इतीति इत्यतो हेतोरित्यर्थः, उप समीपस्थे आदधाति साक्षात्परम्परया वा खनिष्ठधर्मप्रकारकं भ्रमं जनयतीति उपाधिपदव्युत्पत्त्येति शेषः, ‘स्फटिके जवाकुसुमवदिति यथा जवाकुसुमं स्फटिके खनिष्ठलौहित्यभ्रमजनकतया खनिष्ठलौहित्यप्रकारकलोहिताभेदभ्रमजनकतया वा स्फटिके उपाधिस्तथेत्यर्थः, ‘उपाधिरसावुच्यत इति, ‘असौ’ साध्यसमव्याप्तो धर्मः, उपाधिपदवाच्यत्वेनाचार्यैरुच्यत इत्यर्थः, अन्यथा सोपाधावपि केवल-

साधनतावच्छेदकस्य साध्यसम्बन्धितावच्छेदकत्वे तत्र स्वनिष्ठायाः
 साध्यसम्बन्धितावच्छेदकरूपात्मिकाया व्याप्तेस्तादात्म्यसम्बन्धेन साधन-
 तावच्छेदके विशेषणीभूय भ्रमविषयत्वनिवन्धनं साध्यसमव्याप्तधर्मस्य
 उपाधिपदवाच्यताभिधानमसङ्गतं स्यात् तत्सम्बन्धेन तद्वर्मावच्छिन्न-
 प्रतियोगिताकाभाववति तत्सम्बन्धेन तद्वर्मावच्छिन्नप्रकारकज्ञानस्यैव
 भ्रमतया साधनतावच्छेदके तादात्म्यसम्बन्धेन उपाधिनिष्ठसाध्यसम्ब-
 न्धितावच्छेदकप्रकारकज्ञानस्य भ्रमत्वासम्भवादिति भावः । एतच्च
 साध्यसम्बन्धितावच्छेदकत्वं सर्वसाधारणमनुगतं स्वरूपसम्बन्धरूपं
 लक्षणघटकमित्यभिमानेन, अन्यथा साधानतावच्छेदकस्य साध्यसम्ब-
 न्धितावच्छेदकत्वेऽपि साधनतावच्छेदके उपाधिनिष्ठसाध्यसम्बन्धिता-
 वच्छेदकाभेदबुद्धेर्यथोक्तभ्रमत्वसम्भवात्, अत एव आचार्यैरपि व्याप्त्य-
 न्तरमपहाय साध्यसम्बन्धितावच्छेदकरूपवत्त्वलक्षणव्याप्तिसंक्रामकत्वमेव
 योगार्थोऽभिहितः, स्वरूपसम्बन्धरूपावच्छेदकत्वघटितत्वेन तस्य सर्व-
 तोलघुत्वमित्यभिमानादिति ध्येयं । नन्वेवमाचार्य्यनये धूमवान् वक्ते-
 रित्यादौ महानसत्वादौ उपाधिव्यवहारः स्यात् योगार्थसत्त्वात् ।
 न च “सर्वे साध्यसमानाधिकरणा इति न्यायेन द्रष्टापत्तिरिति
 वाच्यं । आचार्य्यैः साध्यसमव्याप्तस्योपाधित्वाभ्युपगमादित्यत आह,
 ‘लक्षणत्विति रूढार्थतावच्छेदकन्वित्यर्थः, तथाचोपाधिपदस्य योग-
 रूढत्वात् महानसत्वादौ योगार्थसत्त्वेऽपि रूढार्थाभावान्नोपाधिपद-
 प्रयोग^(१) इति भावः । ‘साध्य-साधनेति साध्यव्यापकत्वे सतीत्यर्थः, अन्य-

या गोत्वान् अश्वत्वादित्यादिविरुद्धस्थले सास्त्रावत्त्वादेरुपाधिपदावा-
 च्यत्वप्रसङ्गात् । न चैवं स श्यामोमित्रानतयत्वादित्यत्र शाकपाकजत्वा-
 दावव्याप्तिर्दुर्वारैवेति वाच्यं । आचार्य्यमते साध्यसमव्याप्तस्योपाधितया
 तस्यानुपाधित्वात् । ननु तथाप्यत्र विशेष्यदलं व्यर्थं तदसत्त्वेऽपि अमद्भेतौ
 साधनव्यापके साध्यव्याप्यत्वस्य योगलभ्यार्थस्याभावादेवातिप्रसङ्गभङ्गात् ।
 न च सद्भेतौ साध्यसमव्याप्तेऽतिव्याप्तिवारणाय तदावश्यकमिति
 वाच्यं । तत्र हेतुतावच्छेदकस्यापि साध्यसम्बन्धितावच्छेदकतया
 खनिष्ठसाध्यसम्बन्धितावच्छेदकरूपव्याप्तिसंक्रामकत्वस्य खनिष्ठतादृश-
 व्याप्तिप्रकारकहेतुतावच्छेदकभ्रमजनकत्वरूपस्य लघुतयाचार्याभिम-
 तयोगार्थस्याभावादेवातिप्रसङ्गविरहात् । न च तत्र साध्यव्यभिचारि-
 हेत्वन्तरे खनिष्ठतादृशव्याप्तिसंक्रामकत्वसम्भवात् अतिप्रसङ्गसम्भव इति
 वाच्यं । खनिष्ठतादृशव्याप्यभिन्नतया यद्भेतुतावच्छेदकसंक्रामकत्वं
 तद्भेतुतावच्छेदकावच्छिन्ने स उपाधिरिति विवक्ष्यैव तदतिप्रसङ्गवा-
 रणसम्भवादिति । मैवं वक्षिमान् धूमादित्यादिसद्भेतौ हेतुतावच्छे-
 दकसम्बन्धभिन्नसम्बन्धेन साध्यसमव्याप्ये वक्षिप्रकारकप्रमाविशेष्यत्वा-
 दावव्याप्तिवारणाय विशेष्यदलस्यावश्यकत्वात् सम्बन्धभेदेन साध्यसम्ब-
 न्धित्वस्य विभिन्नतया तदवच्छेदकत्वस्यापि विभिन्नत्वेन तत्र निरुक्तता-
 दृशव्याप्तिसंक्रामकत्वस्य योगार्थस्य सम्भवात् । न च हेतुतावच्छेद-
 कसम्बन्धेन या खनिष्ठव्याप्तिः तत्संक्रामकत्वविवक्ष्यैव तत्प्रतीकार-
 इति वाच्यं । धूमवान्वक्त्रेरित्यादौ धूमप्रकारकप्रमाविशेष्यत्वादेर-
 संग्रहापत्तेरिति भावः । नन्वेवं विषमव्याप्तोऽपि तन्मते उपाधिप-
 दवाच्यः स्यात् रूढ्यर्थस्य सत्त्वादित्यत आह, 'विषमेति, 'प्रवृत्ति-

निमित्ताभावादिति योगार्थाभावादित्यर्थः, यथा स्थलपद्मं न पङ्क-
जपदवाच्यमिति भावः । इदमापाततः यौगिकप्रवृत्तिनिमित्ताभा-
वेऽपि केवलरूपकार्यमादाय उपाधिपदवाच्यत्वस्य दुर्वारत्वात्, न हि
योगार्थविशिष्टोरूपकार्यः प्रवृत्तिनिमित्तः । न चैवं स्थलपद्मस्यापि
पङ्कजपदवाच्यत्वापत्तिरिति वाच्यं । यदि च तद्व्यावर्तकं वैजात्यं
न रूपकार्यतावच्छेदकं तदा तस्यापि दुर्वारत्वात् । अतएव प्रामा-
णिकाः तद्वाच्यत्वं तत्र रूपकार्यतावच्छेदकमामनन्ति । नन्वेवं विषम-
व्याप्तस्योपाधिपदावाच्यत्वे दूषकतापि तस्य न स्यादित्यत आह,
'दूषकता चेति, 'तस्य' विषमव्याप्तस्य, 'व्यभिचारोन्नायकतयेति
व्यभिचारित्वसम्बन्धेन तद्वत्तया साध्यव्यभिचारानुमानसम्भवादित्यर्थः,
'उपाधितेति उपाधिपदवाच्यतेत्यर्थः, तादात्म्यसम्बन्धेन तयोरपि
साध्यव्यभिचारानुमापकत्वादिति भावः । 'अप्रयोजक-साध्यव्यापकव्य-
भिचारिणोः' अप्रयोजकत्व-साध्यव्यापकव्यभिचारित्वयोरित्यर्थः, इति
केचित् । न च स्वव्यभिचारित्वेन साध्यव्यभिचारानुमापकत्वमेव
तथास्तु अप्रयोजकत्वादिकन्तु न तथेति वाच्यं । योगार्थापेक्षया
तस्य गुरुत्वादिति दिक् ।

इति श्रीमथुरानाथ-तर्कवागीशविरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये
अनुमानाख्यद्वितीयखण्डरहस्ये विशेषव्याप्तिरहस्यं, सम्पूर्णञ्च व्याप्तिवा-
दरहस्यं^(१) ।

(१) अतएव चतुष्टयरहस्यस्य विशेषव्याप्तिरहस्यान्तर्गतत्वेन आदर्श-
पुस्तकेषु पृथङ्निर्देशेऽपि अत्र न पृथङ्निर्देशः अपि तु तदन्तर्गत-
त्वेनैवेति ।

अथ व्याप्तिग्रहोपायः ।

सेयं व्याप्तिर्न भूयोदर्शनगम्या दर्शनानां प्रत्येक-
महेतुत्वात् आशुविनाशिनां क्रमिकाणां मेलकाभा-
वात् । न च तावद्दर्शनजन्यसंस्कारा इन्द्रियसहकृता
व्याप्तिधीहेतवः प्रत्यभिज्ञायामिन्द्रियस्य तथात्व-

अथ व्याप्तिग्रहोपायरहस्यम् ।

व्याप्तिस्वरूपं निरूप्य परमतनिराकरणपूर्वकं स्वमतेन तद्ग्रहो-
पायमभिधातुं प्रथमं प्राभाकरमतमुपदर्शयति, 'सेयमित्यादिना
'मैवमित्यन्तेन, 'सा' अनुमितिकारणीभूतज्ञानविषयीभूता, 'इयं'
अनुपदनिरुक्ता, तथाच भूयोदर्शनं न तदेतद्व्याप्तिप्रत्यक्षे कारणमि-
त्यर्थः, न तु सेयं व्याप्तिर्न भूयोदर्शनजन्यप्रत्यक्षविषय इत्यर्थः,
प्राभाकरनये उपनीतभानस्य विशिष्टबुद्धौ विशेषणज्ञानहेतुत्वस्य
चानभ्युपगमेन ज्ञानस्य स्वप्रकाशतया ज्ञानप्रत्यक्षं प्रति ज्ञानत्वेन
हेतुत्वानभ्युपगमेन तादृशप्रत्यक्षाप्रसिद्ध्या प्रतियोग्यप्रसिद्धेः, विशेष-
णतावच्छेदकप्रकारकज्ञानविधया तज्जन्यत्वमादाय प्रसिद्ध्यभिधाने
सहचारविशिष्टवैशिष्ट्यबोधात्मकप्रत्यक्षमादाय बाधापत्तेः । न च
प्राभाकरनये सकृद्दर्शनस्य व्याप्तिग्राहकतया भूयोदर्शनमपि व्याप्ति-
ग्राहकमेव भूयोदर्शनस्य सकृद्दर्शनानतिरिक्तत्वादिति तवापि बाधो-
दुर्व्वार इति वाच्यं । प्राभाकरनये सकृद्दर्शनस्यापि व्याप्त्यग्राहकत्वा-

कल्पनादिति वाच्यं । समानविषये स्मरणे प्रत्यभि-
ज्ञाने च संस्कारोहेतुरतः कथं संस्कारेण व्याप्तिज्ञानं
जन्येत, अन्यथातिप्रसङ्गः । किञ्च सम्बन्धभूयोदर्शनं

दिति । न चैवं “तस्मात् सकृद्दर्शनगम्या सेत्युपसंहारविरोध इति
वाच्यं । तत्र हि ‘सकृद्दर्शनगम्यत्वं न सकृद्दर्शनजन्यप्रत्यक्षविषयत्वं
अपि तु निखिलसाध्य-साधनसम्बन्धग्रहविषयत्वमिति तत्रैव स्फुटी-
भवित्यति इति भावः । भूयोदर्शनानां साध्य-साधनसहचारदर्शनत्वेन
जनकत्वं, भूयस्त्वविशेषितेन वा, नाद्य इत्याह, ‘दर्शनानामिति,
‘अहेतुत्वादिति फलानुपधायकत्वादित्यर्थः, तथाचान्वयव्यभिचार-
इति भावः । नान्य इत्याह, ‘आशुविनाशिनामिति तृतीयक्षण-
वृत्तिध्वंसप्रतियोगिनामित्यर्थः, ‘क्रमिकाणां’ विभिन्नसमयोत्पत्ति-
कानां, ‘मेलकाभावादिति एकक्षणवृत्तिकत्वाभावादित्यर्थः, तथाच
व्यतिरेकव्यभिचारः, सर्वत्रापेक्षाबुद्ध्यात्मकभूयोदर्शने मानाभावा-
दिति भावः । क्रमिकाणां घट-पटादीनां मिलनमस्तीत्यतः ‘आशु-
विनाशिनामित्युक्तं, आशुविनाशिनामपि युगपदुत्पन्नानां विभि-
न्नपुरुषीयज्ञानादीनां मिलनमस्तीत्यतः ‘क्रमिकाणामित्युक्तं, आशु-
विनाशिनाः क्रमिकयोरपि ज्ञानद्वयोर्मिलनमस्तीत्यतोवज्जवचनं
इति । इत्यञ्च भूयोदर्शनं न व्याप्तिप्रत्यक्षमात्रवृत्तिधर्मावच्छिन्न-
कार्यताप्रतियोगिककारणताश्रयः तादृशकारणतावच्छेदकरूपशून्य-
त्वादिति फलितं । विशेषणतावच्छेदकप्रकारकज्ञानस्य कार्यता तु
न तादृशधर्मावच्छिन्ना तादृशकार्यताप्रतियोगिककारणत्वञ्च विषय-

भूयःसु स्थानेषु भूयसां वा दर्शनं भूयांसि वा दर्शनानि न यथा एकत्र रूप-रसयोर्द्रव्यत्व-घटत्वयोश्च व्याप्तिग्रहात् एकत्रैव धारावाहिके तद्गीप्रसङ्गात्

विधया व्याप्तावेव प्रसिद्धं । न च साध्याविशेषः कारणतावच्छेदक-धर्मवत्त्वस्यैव कारणतारूपत्वादिति वाच्यं । अन्योन्याभावात्यन्ताभाव-भेदेन^(१) भेदादिति ध्येयं । अत्र स्वरूपासिद्धिमाशङ्कते, 'न चेति, 'तावद्दर्शनेति भूयसां दर्शनानां जन्या भूयःसंस्कारा इत्यर्थः । तथाच भूयस्त्वविशिष्टसहचारदर्शनत्वमेव जनकतावच्छेदकं संस्कारस्य व्यापार इति भावः । 'तथात्वकल्पनादिति संस्कारसहकारित्वकल्पनादित्यर्थः । 'समानविषयइति तद्विशेष्यक-तत्प्रकारकस्मरणे तद्विशेष्यक-तत्प्रकारकः संस्कारो हेतुः तद्विशेष्यक-तत्प्रकारकप्रत्यभिज्ञाने तद्विशेष्यक-तत्प्रकारकसंस्कारो हेतुरित्यर्थः, यो यत्र विशिष्य-पूर्वमवगतः स एव तत्र संस्कारवशात् प्रत्यभिज्ञाने भासत इति नियमात्, अत एव केवलदण्डादिगोचरसंस्कारादयं दण्डीत्यादि-प्रत्यभिज्ञानं न जायत इति मीमांसकाभिप्रायः, एतच्चोपनीतभान-मभ्युपेत्य । 'व्याप्तिज्ञानमिति, सहचारगोचरसंस्कारस्य धूमादिविशेष्यक-स्वव्यापकसाध्यसामानाधिकरण्यात्मकव्याप्तिप्रकारकत्वाभावादिति भावः । 'अन्यथेति एकविषयकसंस्कारस्यापि अन्यविषयक-ज्ञानजनकत्वे इत्यर्थः, 'अतिप्रसङ्गः' घटादिगोचरसंस्कारादपि

(१) तथाच साध्यघटकनञ्पदस्य अन्योन्याभावपरत्वं हेतुघटकशून्य-पदस्यात्यन्ताभावपरत्वमतः साध्य-हेत्वोर्वैलक्षण्यं ।

भूयस्त्वस्य चि-चतुरादित्वेनाननुगमाच्च । अपि च
पार्थिवत्व-लौहलेखत्वादौ शतशो दर्शनेऽपि व्याप्त्य-
ग्रहात्, तर्कसहकृतं तथेति चेत्, तर्हि सहचारदर्शन-

पटादिगोचरज्ञानजननप्रसङ्ग इत्यर्थः । किं वज्जना सम्बन्धभूयो-
दर्शनमपि दुर्निरूपमित्यभिप्रायेण पृच्छति, 'किञ्चेति, 'किंशब्दः
प्रश्ने, 'चकारो वार्थे, यत्सम्बन्धभूयोदर्शनं संस्कारद्वारा हेतुरुच्यते
तदेव सम्बन्धभूयोदर्शनं वा किमित्यर्थः । ननु सम्बन्धभूयोदर्शन-
पदेन भूयःसु स्थानेषु साध्य-साधनसम्बन्धभूयोदर्शनं, भूयसां वा
साध्य-साधनानां सम्बन्धभूयोदर्शनं, भूयांसि वा साध्य-साधनयोः
सम्बन्धदर्शनानीति वक्तव्यमित्याह, 'भूयःस्विति, 'दर्शनं' भूयःसा-
ध्य-साधनसहचारदर्शनं, तथाचाधिकरणदर्शनयोरुभयोर्भूयस्त्वमिति
भावः । 'भूयसां वेति भूयसां साध्य-साधनानां भूयःसहचारदर्शन-
मित्यर्थः, तथाच साध्य-साधन-दर्शनानां त्रयाणां भूयस्त्वमित्यर्थः,
'भूयांसीति, 'दर्शनानि' साध्य-साधनसम्बन्धदर्शनानि, तथाच दर्श-
नमात्रस्य भूयस्त्वमित्यर्थः, 'न तथा' न व्याप्तिग्राहकं, आद्ये 'एकेति
एकत्रस्थितरूप-रसंयोरित्यर्थः, एतद्घटवृत्तिरूपवान् एतद्घटवृत्ति-
रसादित्यत्रेति भावः, न त्वेतद्रूपवान् एतद्रसादित्यत्र, तथा सति
द्वितीयेऽप्यत्रैव दोषसम्भवे स्थलान्तरानुधावनप्रयासस्य व्यर्थतापत्तेरिति
ध्येयं । न च भूयःस्थानेषु व्यतिरेकसहचारदर्शनं तत्रापि सम्भवतीति
वाच्यं । तदभावेऽपि व्याप्त्यनुभवात् । द्वितीये आह, 'द्रव्यत्वेति, एकच

सहकृतः स एव व्याप्तिग्राहकोऽस्तु आवश्यकत्वात् किं भूयोदर्शनेन । न च तेन विना तर्क एव नावतरति, प्रथमदर्शने व्युत्पन्नस्य तर्कसम्भवात् । न चैवमे-

घट एव पाकजरूप-रसानां भूयस्त्वादुक्तस्य लमुपेक्षितं । तृतीये त्वाह, 'एकत्रैवेति एकस्मिन्नेव सहानसे धारावाहिकमहचारज्ञाने इत्यर्थः, संस्कारद्वारा भूयसां दर्शनानां सत्तादिति भावः । कदाचिद्वेष्टापत्तिसम्भवादाह, 'भूयस्त्वस्येति, 'त्रि-चतुरादित्वेनेति त्रित्व-चतुष्टादिरूपत्वेनेत्यर्थः । ननु वज्रत्वमेव भूयस्त्वं त्रित्वमेव वा चतुरादिदर्शनेऽपि त्रिकदर्शनसत्त्वेन व्यभिचाराभावादित्यत आह, 'अपि चेति, तथाचान्वयव्यभिचार इति भावः । 'तर्कसहकृतमिति तर्कसहकृतं भूयोदर्शनं संस्कारद्वारा व्यभिचारज्ञानं निवर्त्य व्याप्तिधीहेतुरित्यर्थः, 'स एव' तर्क एव, 'भूयोदर्शनेनेति भूयस्त्वघटितकारणतावच्छेदकेनेत्यर्थः । भूयोदर्शनस्य तर्कप्रयोजकत्वमाशङ्क्य निराकरोति, 'न चेति, 'व्युत्पन्नस्येति शब्दादितस्तर्कमूलीभूतापाद्यापादकव्याप्तिज्ञानवत इत्यर्थः । इष्टापत्तिमाशङ्क्यते, 'न चैवमेवेति व्यभिचारादर्शन-सहचारदर्शनसहकृतः तर्क एव व्याप्तिग्राहकोऽस्त्वित्यर्थः । शङ्क्यते, 'जातमात्रस्येति स्तनपानं सुखसाधनं तदनन्यथासिद्धान्वयव्यतिरेकानुविधायित्वात् यत् यदनन्यथासिद्धान्वयव्यतिरेकानुविधायि तत् तत्सासाधनमितीष्टसाधनतानुमितिजनकव्याप्तिज्ञानमित्यर्थः, 'तर्कं विनेवेति 'इवशब्दः सादृश्यार्थः, तथाच तत्तद्व्याप्तिज्ञानं यथा तर्कं विना तथा सर्वत्रैव मूलीभूतयत्किञ्चित्तर्कजनकीभूत-

वास्तु, तर्कस्य व्याप्तिग्रहमूलकत्वेनानवस्थानात् । जात-
मात्रस्य प्रवृत्ति-निवृत्तिहेत्वनुमितिजनकव्याप्तिज्ञानं
तर्कं विनैवातो नानवस्थेति चेत्,^(१) तर्हि व्यभिचारात्

व्याप्तिप्रत्यक्षं तर्कं विनैवातो नानवस्था इत्यर्थः । यथाश्रुते जातमात्र-
बालकीयव्याप्तिस्मरणस्य विना तर्कमुत्पादेऽपि तन्मूलभूतजन्मा-
न्तरीयव्याप्यनुभवस्य तर्कसापेक्षत्वात् अनवस्थातादवस्थ्यात् अत्रानव-
स्थापरीहारेऽपि वक्त्रि-धूमादिव्याप्तिग्रहस्थले^(२) अनवस्थातादवस्थ्यात्

(१) 'विनैवेत्यत्र 'विनैवेति कस्यचित् मूलपुस्तकस्य पाठः ।

(२) वक्त्रिमान् धूमादित्यादौ व्याप्तिग्रहस्थले इति ख० । 'सेयं व्याप्ति-
र्नभूयोदर्शनगम्येत्यादिमूलं मथुरानाथेन यद्व्याख्यातं तत्रेदं विवेचनीयं ।
सेयं व्याप्तिर्न भूयोदर्शनगम्या इति भूयोदर्शनं न तदेतद्व्याप्तिप्रत्यक्षे
कारणमित्यर्थः, न तु सेयं व्याप्तिर्न भूयोदर्शनजन्यप्रत्यक्षविषय इत्यर्थः विशेष-
णतावच्छेदकप्रकारकज्ञानविधया तज्जन्यत्वमादाय प्रसिद्धमिधाने सह-
चारविशिष्टवैशिष्ट्यबोधात्मकप्रत्यक्षमादाय बाधापत्तेरिति मथुरानाथः ।
ननु भूयोदर्शनजन्यप्रत्यक्षविषयो न इत्यत्र विषयत्वपदेन मुख्यविशेष्य-
त्वमेव वक्तव्यं तथाच व्याप्तौ धर्मिणि तादृशप्रत्यक्षीयमुख्यविशेष्यत्वाभाव-
सत्त्वात् कथं बाधापत्तिरित्युक्तं, मुख्यविशेष्यत्वञ्च प्रकारत्वान्यविषयत्वं,
तथाच पर्वतादौ तत्प्रसिद्धिः । न च वक्त्रिसमानाधिकरणधूमवान् पर्वतः
धूमव्यापकवक्त्रिसमानाधिकरणञ्च धूमवृत्ति इति समूहान्मनतादृश-
बोधात्मकप्रत्यक्षमादाय बाधापत्तिसङ्गतिः धूमव्यापकवक्त्रिसमानाधिक-
रणरूपव्याप्तेर्धूमवृत्तित्वांशे मुख्यविशिष्टविषयैव भानात् इति वाच्यं ।
भूयोदर्शनजन्यप्रत्यक्षविषयो न इत्यनेन भूयोदर्शनजन्यप्रत्यक्षीयमुख्यविशे

व्यतानिरूपितप्रकारत्वाभावस्य विवक्षणीयत्वात् तथाच तादृशसमूहाल-
म्बनप्रत्यक्षीयमुख्यविशेष्यतानिरूपितप्रकारत्वं धूमनिष्ठं धूमवृत्तित्वनिष्ठञ्च
तदभावस्य व्याप्तौ सत्त्वात् न बाधः । न च तथापि वक्रिसमानाधिकरण-
धूमवान् पर्वतः धूमव्यापकवक्रिसमानाधिकरणस्य धूम इति समूहालम्बन-
मादाय धूमनिष्ठमुख्यविशेष्यतानिरूपितप्रकारत्वस्य सामानाधिकरण्येऽपि
सत्त्वाद्वाधापत्तेर्नासङ्गतिरिति वाच्यं । भूयोदर्शनजन्यतावच्छेदकीभूतमुख्यवि-
शेष्यतानिरूपितप्रकारत्वाभावस्य न भूयोदर्शनजन्यप्रत्यक्षविषयत्वमित्यनेन
विवक्षितत्वात् तथाच भूयोदर्शनजन्यतावच्छेदकं वक्रिसमानाधिकरण-
विशिष्टधूमप्रकारकबुद्धित्वं निरूपकत्वसम्बन्धेन सहचारविशिष्टधूमनिष्ठप्र-
कारतापि ज्ञानजन्यतावच्छेदिका जन्यतावच्छेदकतायाः पर्यायविवक्षणात्,
एवञ्च भूयोदर्शनजन्यतावच्छेदकमुख्यविशेष्यतानिरूपितप्रकारता धूमादे-
रेव तदभावस्य व्याप्तौ सत्त्वान्न बाधः इति चेत् । न । सहचारविशिष्टप्रका-
रकबुद्धित्वं न सहचारप्रकारकज्ञानजन्यतावच्छेदकं पर्वते धूमः धूमे च
वक्रिसमानाधिकरण्यमिति विशेष्ये विशेषणमिति रीत्या जायमानस्य
वक्रिसमानाधिकरणधूमवान् पर्वत इति प्रत्यक्षस्य धूमधर्मिकसामानाधि-
करणप्रकारकज्ञानं विनापि उत्पादेन व्यभिचारापत्तेः, किन्तु वक्रिसमाधि-
करणधूमवान् पर्वत इति विशिष्टवैशिष्ट्यावगाहिवुद्धौ धूमविशेषणताप-
न्नवक्रिसामानाधिकरण्यमपि स्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकसंयोगवत्तासम्बन्धेन
पर्वतांशे भासते उक्तविशेष्ये विशेषणमिति रीत्या बोधे च तादृशसम्बन्धेन
सामानाधिकरण्यं न भासते इति धूमविशेषणतापन्नसामानाधिकरण्यनि-
ष्कोक्तपरम्परासम्बन्धावच्छिन्नप्रकारताकबुद्धित्वमेव जन्यतावच्छेदकं तथाच
न व्यभिचारः, एवञ्च भूयोदर्शनजन्यतावच्छेदिका उक्तपरम्परासम्बन्धावच्छि-
न्नधूमनिरूपितविशेषणतापन्नसामानाधिकरण्यनिष्ठप्रकारता सा च पर्वत-
निष्ठमुख्यविशेष्यतानिरूपितापि इति तादृशप्रकारत्वाभावस्य व्याप्तावसत्त्वेन
बाधः सुस्थिर एव ।

इत्यञ्च भूयोदर्शनं न व्याप्तिप्रत्यक्षमात्रवृत्तिधर्मवच्छिन्नकार्यतानि-

रूपितकारणताश्रयः तादृशकारणतावच्छेदकरूपशून्यत्वात् इति फलितं
इति मथुरानाथः । न च व्याप्तिप्रत्यक्षमात्रवृत्तिकार्यतानिरूपितका-
रणतानाश्रयस्तादृशकार्यतानिरूपितकारणतावच्छेदकरूपशून्यत्वादित्यस्यैव
सम्यक्त्वे हेतु-साध्ययोर्धर्मावच्छिन्नत्वदलं विफलमिति वाच्यं । सहचा-
रविशिष्टवैशिष्ट्यावगाहिबुद्धित्वावच्छिन्नकार्यताया नानात्वे धूमव्यापकवज्जि-
समानाधिकरणधूमवान् इति सहचारविशिष्टवैशिष्ट्यावगाहिबोधात्मक-
व्याप्तिप्रत्यक्षमात्रवृत्तिकार्यतानिरूपितकारणतावच्छेदकरूपस्य पक्षवृत्ति-
तया तादृशकार्यतानिरूपितकारणतावच्छेदकरूपशून्यत्वस्य पक्षेऽसत्त्वात्
स्वरूपासिद्धापत्तेः अतो हेतुंशे धर्मावच्छिन्नत्वदलं सफलं, साध्यांशे
च तादृशसहचारविशिष्टवैशिष्ट्यावगाहिबोधात्मकव्याप्तिप्रत्यक्षमात्रवृत्ति-
कार्यतानिरूपितकारणताश्रयभिन्नत्वस्य पक्षेऽसत्त्वाद्वाधापत्तिरतो धर्मा-
वच्छिन्नत्वदलं निवेशनीयं । धर्मावच्छिन्नत्वदलनिवेशे तु तादृशधर्म-
पदेन व्याप्तिप्रत्यक्षत्वमेव लभ्यते न तु सहचारविशिष्टवैशिष्ट्यावगा-
दिवुद्धित्वं । तस्य व्याप्तिप्रत्यक्षेतरत् यत् वज्जिसमानाधिकरणधूमवान्
इत्याकारकप्रत्यक्षादिकं तत्र वृत्तित्वात् । न च मात्रपदनिवेशो विफल-
इति वाच्यं । सहचारविशिष्टवैशिष्ट्यावगाहिबोधात्मकव्याप्तिप्रत्यक्षवृत्ति
यत् सहचारविशिष्टवैशिष्ट्यावगाहिबुद्धित्वं तद्धर्मावच्छिन्नकार्यतानिरू-
पितकारणतावच्छेदकरूपशून्यत्वस्य पक्षावृत्तित्वेन स्वरूपासिद्धेस्तादवस्थ्यात्
साध्यांशे मात्रपदानिवेशे तु तादृशविशिष्टवैशिष्ट्यावगाहिबुद्धित्वावच्छि-
न्नकार्यतानिरूपितकारणताश्रयभिन्नत्वस्य पक्षावृत्तित्वेन बाधापत्तिरत उभ-
यत्रैव मात्रपदमवश्यं निवेशनीयं, तथाच सहचारविशिष्टवैशिष्ट्यावगाहि-
बुद्धित्वन्तु न तथा तस्य व्याप्तिप्रत्यक्षेतरद्यत् वज्जिसमानाधिकरणधूमवान्
इत्यादि प्रत्यक्षादिकं तत्र वृत्तित्वात् । न चैवमपि हेतु-साध्ययोः व्याप्तिपदं
व्यर्थमिति वाच्यं । मीमांसकनये ज्ञानस्य स्वप्रकाशतया धूमव्यापकवज्जि-
समानाधिकरणधूमवान् पर्वतः वज्जिसमानाधिकरणत्वेन धूममहं जानामि
इत्याकारकसमूहलम्बनप्रत्यक्षमादाय सहचारविशिष्टवैशिष्ट्यावगाहिबु-

द्वित्वस्य प्रत्यक्षमात्रवृत्तितया तद्धर्मावच्छिन्नकार्यतानिरूपितकारणता-
वच्छेदकरूपशून्यत्वस्य पक्षावृत्तित्वेन स्वरूपासिद्धापत्तेः, साध्यांशे तद-
निवेशे चोक्तरीत्या तादृशधर्मपदेन सहचारविशिष्टवैशिष्ट्यावगाहिवृद्धि-
त्वस्य ग्राह्यतया तद्धर्मावच्छिन्नकार्यतानिरूपितकारणताश्रयभिन्नत्वस्य
पक्षावृत्तितया बाधापत्तिरिति व्याप्तिपदनिवेशः सफल इति ग्रन्थकृतो-
न्मिप्रायः । अत्रेयमापत्तिः । भूयोदर्शनं न तदेतद्व्याप्तिप्रत्यक्षे कारणमि-
त्युक्तौ यथाश्रुतं कार्यतावच्छेदकविधया व्याप्तिप्रत्यक्षत्वमेव भासते तथाच
व्याप्तिप्रत्यक्षत्वावच्छिन्नकार्यतानिरूपितकारणतानाश्रयत्वस्य साध्यत्वे जरनै-
याधिकमतनिराससम्भवात् कथं व्याप्तिप्रत्यक्षमात्रवृत्तिधर्मावच्छिन्नत्वेन
कार्यता विशेषणीयेति । अत्र केचित् व्याप्तिप्रत्यक्षमात्रवृत्तिधर्मावच्छिन्ने-
त्यादिना व्याप्तिप्रत्यक्षवृत्तिवैजात्यावच्छिन्नकार्यतायाः परिग्रहः तथाच
व्याप्तिप्रत्यक्षवृत्तिवैजात्यावच्छिन्नकार्यतानिरूपितकारणतानाश्रयत्वस्यापि
संग्रह इति प्राज्ञः ।

अपरे तु व्याप्तिप्रत्यक्षत्वं व्याप्तिविषयकत्वविशिष्टप्रत्यक्षत्वं तथाच व्याप्ति-
प्रत्यक्षत्वावच्छिन्नकार्यतानिरूपितकारणतानाश्रयत्वस्य साध्यत्वे प्रत्यक्षत्व-
विशिष्टव्याप्तिविषयकत्वावच्छिन्नं प्रति भूयोदर्शनं हेतुरिति जरनैयाधि-
कमतस्य निराकरणायोगात् । व्याप्तिप्रत्यक्षमात्रवृत्तिधर्मावच्छिन्नकार्य-
तानिरूपितकारणतानिवेशे तु प्रत्यक्षत्वविशिष्टव्याप्तिविषयकत्वस्यापि
प्रत्यक्षमात्रवृत्तितया तदवच्छिन्नकार्यतानिरूपितकारणताश्रयभिन्नत्वमपि
लभ्यत इति स्थितं ।

नव्यास्तु व्याप्तिवस्त्यैकस्याभावात् अत्र सा इत्यनेन व्यापकसामानाधिक-
रण्यरूपव्याप्तिवत्त्वेन निवेशे तस्मात् सकृददर्शनगम्या सा इत्युपसंहारेऽपि
सा इत्यनेन तस्यैव परामर्शेन तथा ह्युपाध्यभावो व्याप्तिरित्यनेन उपाध्य-
भावरूपव्याप्तेः सकृददर्शनगम्यत्वोपादानविरोधः, उपाध्यभावरूपव्याप्तिवत्त्वेन
प्रवेशे नन्वनौपाधिकत्वज्ञानं व्याप्तिज्ञानहेतुरिति मूलविरोधः उपाध्यभा-
वरूपव्याप्तिप्रत्यक्षं प्रति उपाध्यभावज्ञानकारणत्वस्य केनाप्यनङ्गीकारात्,

किन्तु अनुमितिजनकतावच्छेदकतापर्याप्त्यधिकरणतया व्याप्तेः प्रवेशः, एवं सति उपक्रमोपसंहारस्य एकधर्मावच्छिन्नप्रत्यक्षकत्वनियमोऽपि सङ्गच्छते । तथाच तस्मात् सङ्गदर्शनगम्या सा इत्यत्र सा इत्यनेन अनुमितिजनकतावच्छेदकतापर्याप्त्यधिकरणत्वेन मीमांशकाभिमतयाः उपाध्यभावरूपव्याप्तेः परामर्शात्तथाह्युपाध्यभावोव्याप्तिरिति विवरणमपि सङ्गच्छते, सेयं व्याप्तिर्न भूयोदर्शनगम्येत्यत्र सा इत्यनेन अनुमितिजनकतावच्छेदकतापर्याप्त्यधिकरणत्वरूपेण व्यापकसामानाधिकरण्यव्याप्तेः परामर्शात् नन्वनौपाधिकत्वज्ञानं व्याप्तिज्ञाने हेतुरिति मूलमपि सङ्गच्छते । एवञ्चेहानुमितिजनकतावच्छेदकतापर्याप्त्यधिकरणविषयकप्रत्यक्षत्वावच्छिन्नकार्यतानिरूपितकारणतानाश्रयत्वस्य साध्यत्वं वक्तव्यं तच्च न सम्भवति जरनैयायिकमतेऽपि व्यापकसामानाधिकरण्यविषयकप्रत्यक्षत्वमेव भूयोदर्शनजन्यतावच्छेदकं न त्वनुमितिजनकतावच्छेदकतापर्याप्त्यधिकरणविषयकप्रत्यक्षत्वं प्रमेयत्वादिना व्याप्तिग्रहे व्यभिचारापत्तेः भूयोदर्शनपदार्थस्य साध्य-साधनभेदेन भिन्नतया आलोकधर्मिकव्याप्तिग्रहस्यापि अनुमितिजनकतावच्छेदकतापर्याप्त्यधिकरणविषयकतया तत्र वज्रि-धूमसहचारग्रहात्मकभूयोदर्शनविरहेण व्यभिचारापत्तेश्च, तथाच अनुमितिजनकतावच्छेदकतापर्याप्त्यधिकरणविषयकप्रत्यक्षत्वावच्छिन्नकार्यतानिरूपितकारणताप्रवेशेऽप्रसिद्धिः अनुमितिजनकतावच्छेदकतापर्याप्त्यधिकरणविषयकप्रत्यक्षमात्रवृत्तित्वप्रवेशे तु व्यापकसामानाधिकरण्यविषयकप्रत्यक्षत्वस्य तादृशप्रत्यक्षमात्रवृत्तित्वान्नाप्रसिद्धिरित्यभिप्रायेणैव मात्रवृत्तीत्युक्तं इति भावः । ननु व्याप्तिप्रत्यक्षत्वं व्याप्तिविषयकत्वविशिष्टप्रत्यक्षत्वं तस्य च प्रत्यक्षत्वानतिरिक्ततया घटप्रत्यक्षेऽपि वृत्तित्वेन व्याप्तिप्रत्यक्षमात्रवृत्तित्वाभावादेव व्याप्तिप्रत्यक्षमात्रवृत्तिधर्मावच्छिन्नकार्यतानिरूपितकारणत्वाभावसाधने प्रतियोग्यप्रसिद्ध्या ईदमसङ्गतं । अत्रेदमुत्तरं । व्याप्तिविषयकत्वविशिष्टप्रत्यक्षत्वावच्छिन्नभेदव्यापकभेदप्रतियोगितावच्छेदकं व्याप्तिप्रत्यक्षमात्रवृत्तिधर्मपदेन विवक्षितमतो न काप्यनुपपत्तिरिति ।

तादृशकार्यतानिरूपितकारणत्वञ्च विषयविधया व्याप्तावेव प्रसिद्धमिति मथुरानाथः । इदञ्च विषयतासम्बन्धेन प्रत्यक्षत्वावच्छिन्नं प्रति तादात्म्येन व्याप्तिर्हतुरित्यभिप्रायेण । ननु जरन्नैयायिकमते समवायसम्बन्धेन व्याप्ति-प्रत्यक्षत्वावच्छिन्नं प्रति समवायसम्बन्धेन भूयोदर्शनस्य हेतुत्वात् भूयोदर्शनधर्मिकतत्सम्बन्धावच्छिन्नकारणत्वाभावसाधनद्वारा तन्मतनिरासमिच्छता मौमांसकेन कथं तादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्नस्य व्याप्तिप्रत्यक्षमात्रवृत्तिधर्मावच्छिन्नकार्यतानिरूपितकारणत्वस्य व्याप्तौ प्रसिद्धिः कृता । न चैवं तादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्नकारणत्वाभाव एव साध्य इति वाच्यं । तादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्नकारणत्वाभावस्य जरन्नैयायिकमतेऽपि भूयोदर्शने सत्त्वात् सिद्धसाधनापत्तेः । न च व्याप्तिप्रत्यक्षमात्रवृत्तिधर्मावच्छिन्नकार्यतानिरूपितकारणतानाश्रय इत्यनेन सम्बन्धसामान्येन कारणत्वसामान्यभाव एव साध्यस्तथाच यत्किञ्चित्सम्बन्धेन यत्किञ्चित्कारणताप्रसिद्धिसम्भवात् तत्सम्भवः, नापि सिद्धसाधनावतारः जरन्नैयायिकेन सम्बन्धसामान्येन कारणत्वसामान्याभावस्य साधयितुमशक्यत्वात् तन्मते भूयोदर्शने यत्किञ्चित्समवायसम्बन्धेन यत्किञ्चित्कारणतायाः सत्त्वात् इति वाच्यं । कारणतायाः कारणतावच्छेदकस्वरूपत्वमवश्यं वक्तव्यं अन्यथा हेतु-साध्ययोर्विभिन्नतया साध्याविशेषमिया अत्यन्ताभावान्योन्याभावभेदेन भिन्नत्वमिति यदुक्तं मथुरानाथेन तद्विफलं स्यात्, तथाच तादृशकारणत्वञ्च कार्याद्यवहितप्राक्क्षणावच्छेदेन कार्यतावच्छेदकसम्बन्धेन कार्याधिकरणवृत्त्यभावीयकारणतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगितानवच्छेदकधर्मवत्त्वं तस्य च सम्बन्धभेदेन भिन्नतया विषयतासम्बन्धेन व्याप्तिप्रत्यक्षाधिकरणवृत्तिभेदीयतादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगितानवच्छेदकधर्मवत्त्वं जरन्नैयायिकमते तु समवायसम्बन्धेन व्याप्तिप्रत्यक्षाधिकरणवृत्त्यत्यन्ताभावीयसमवायसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगितानवच्छेदकधर्मवत्त्वरूपं तथाचैतदुभयसाधारणानुगतकारणतात्वाप्रसिद्धिः । अत्रेदमुत्तरं । निरुक्तोभयरूपकारणतायां अन्यतरत्वमनुगतीकृत्य सम्बन्धसामान्येन अन्यथासिद्धानिरूपकतादृशान्यतरत्वावच्छिन्न-

प्रतियोगिताकान्यतरसामान्याभाव एव साध्यते, तथाचान्यतरस्य यत्-
किञ्चित्तादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्नत्वसम्भवेनापि तत्सम्भव इति, नापि सिद्ध-
साधनमिति जरनैयायिकेन एतदन्यतरत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावः
साध्यितुं न शक्यते भूयोदर्शने तादृशान्यतरोभूतत्वस्य समवायसम्बन्धाव-
च्छिन्नकारणसत्त्वादिति ध्येयं ।

तादृशकारणत्वञ्च विषयतया व्याप्तावेव प्रसिद्धमिति, इदन्तु विषयता-
सम्बन्धेन व्याप्तिप्रत्यक्षं प्रति तादात्म्येन व्याप्तिर्हेतुरित्यभिप्रायेणोक्तं । ननु
धूमव्यापकवह्निसमानाधिकरणो धूम इत्याकारकव्याप्तिप्रत्यक्षस्य व्याप्तिघट-
कप्रत्येकपदार्थधूमादावपि विषयतासम्बन्धेन जायमानतया तत्र तादात्म्येन
व्याप्तेरभावाद्यभिचारापत्तिः तस्माद्व्याप्तिनिष्ठविषयतासम्बन्धेन व्याप्तिप्रत्यक्ष-
त्वावच्छिन्नं प्रति तादात्म्येन व्याप्तिर्हेतुत्वं वाच्यं, तथाच तादृशधूमादौ तादृश-
सम्बन्धेन व्याप्तिग्रहानुत्पादान्न व्यभिचारः, एवं सति कार्य-कारणभावे
व्याप्तिप्रत्यक्षमित्यत्र व्याप्तिपदं विहाय तादृशसम्बन्धेन प्रत्यक्षत्वावच्छिन्नं
प्रति तादात्म्येन हेतुत्वं वक्तव्यं, तथा सति व्याप्तिप्रत्यक्षमात्रवृत्तिधर्मावच्छिन्न-
कार्यतानिरूपितकारणत्वाभावसाधने प्रतियोग्यप्रसिद्धिस्तदवस्थैवेति तादृ-
शसम्बन्धेन प्रत्यक्षत्वस्य कार्यतावच्छेदकतया तस्य व्याप्तिप्रत्यक्षेतरघटादि-
प्रत्यक्षवृत्तितया व्याप्तिप्रत्यक्षमात्रवृत्तित्वविरहात् व्याप्तिप्रत्यक्षमात्रवृत्ति-
धर्मावच्छिन्नकार्यतानिरूपितकारणत्वाप्रसिद्धेः । अत्रेदं सिद्धान्तितं । विषय-
तासम्बन्धेन व्याप्तिप्रत्यक्षत्वावच्छिन्नं प्रति तादात्म्येन व्याप्तिर्हेतुत्वं वाच्यं । न च
तादृशधूमादौ विषयतया व्याप्तिप्रत्यक्षं जायते येन तत्र तादात्म्येन व्याप्तेर-
भावात् व्यभिचारावकाश इति वाच्यं । व्याप्तिप्रत्यक्षत्वस्य व्याप्तिविषयकत्व-
विशिष्टप्रत्यक्षत्वात्मकतया विषयतया तद्धर्मावच्छिन्नाधिकरणताया अति-
रिक्तत्वात् विषयतया तादृशञ्च व्याप्तावेव जायते न तु धूमादाविति स्थितं ।

स्तनपानं सुखसाधनं सुखानन्यथासिद्धत्वे सति सुखान्वयव्यतिरेकानुविधा-
यित्वात् यद्यदनन्यथासिद्धान्वयव्यतिरेकानुविधायि तत्तत्साधनमिति व्याप्ते-

ज्ञाने तर्कापेक्षाविरहादनवस्था निराकृता । अत्र सुखानन्यथासिद्धत्वञ्च न सुखान्यथासिद्धत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदः यावत्सुखान्यथासिद्धसाधारणसुखान्यथासिद्धत्वस्यानुगतस्याभावात्, किन्तु सुखान्वय-व्यतिरेकानुविधायितावच्छेदकीभूतयद्यद्धर्मावच्छिन्ने सुखस्याकारणत्वव्यवहारः प्रामाणिकानां तत्तद्धर्मावच्छिन्नं यद्यत् तत्तद्व्यक्तिभिन्नत्वं, सुखान्वय-व्यतिरेकानुविधायिघटादीनां विशेष्यदलेनैव वारणसम्भवात्तेषां तत्तद्व्यक्तित्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकानन्तभेदनिवेशेन वारणे गौरवमतो यद्यद्धर्मेऽवच्छेदकान्तं । विशेष्यदलार्थस्तु स्वाव्यवहितपूर्वकालवृत्तित्वे सति अवच्छेदकतासम्बन्धेन स्वाधिकरणदेशावच्छेदेन स्वाव्यवहितपूर्वकालावृत्त्यभावप्रतियोगितावच्छेदकधर्मवत्त्वं न तु सुखाव्यवहितपूर्वकालवृत्तित्वे सति सुखाधिकरणीभूतदेशावच्छेदेन सुखाव्यवहितपूर्वकालवृत्त्यभावप्रतियोगितानवच्छेदकधर्मवत्त्वमर्थः, तथा सति साध्याविशेषापत्तिरिति । स्वपदं सुखपरं, यथाश्रुतसुखान्वय-व्यतिरेकानुविधायित्वस्य स्तनपानेऽसत्त्वात् स्वरूपासिद्ध्यापत्तिः, एवञ्च सत्ताशरीरत्वादिजात्यामपि विशेष्यदलसत्त्वात् तत्र सुखसाधनत्वासत्त्वेन व्यभिचारः अतोऽनन्यथासिद्धत्वान्तं, प्रलयादीनामभावस्य सुखाव्यवहितपूर्वकाले व्याप्यवृत्तितया न सुखाधिकरणदेशः अवच्छेदक इति स्वाधिकरणदेशावच्छेदेन स्वाव्यवहितपूर्वकालवृत्तिर्यस्तदन्यत्वं प्रलयाभावस्याक्षतमिति तत्प्रतियोगितावच्छेदकप्रलयत्वमादाय प्रलये अतिप्रसङ्गः अतो विशेष्यदलघटकीभूतसत्यन्तं, सुखाव्यवहितपूर्वकालवृत्तिघटादिषु व्यभिचारवारणाय विशेष्यदलघटकविशेष्यदलं, तथाच स्वाव्यवहितपूर्वकालेऽवच्छेदकतासम्बन्धेन स्वाधिकरणशरीरावच्छेदेन घटाभावस्य सत्त्वान्न व्यभिचारः । स्तनपानाभावस्यापि स्वाव्यवहितपूर्वकाले देशान्तरावच्छेदेन सत्त्वात् न तत्र विशेष्यदलघटकविशेष्यनिर्वाहः अतः स्वाधिकरणदेशावच्छेदेनेति । स्वाधिकरणत्वञ्च अवच्छेदकतासम्बन्धेन, सुखं प्रति स्तनपानस्य हेतुतायां कार्य-स्यावच्छेदकत्वं कारणस्य तु समवायः प्रत्यासत्तिरिति ध्येयं । वस्तुतः तदन-

सोऽपि न व्याप्तिग्रहे हेतुः । न च तदुद्भाववान्तर-
जातिरस्ति, सामान्यप्रत्यासत्त्या सर्वोपसंहारादविना-
भावग्रहः, सामान्यरूपता च सकृद्दर्शनगम्येति भूयो-
दर्शनापेक्षेति चेत् । न । सामान्यस्य हि प्रत्यासत्तित्वं
लाघवात् न तु सामान्यतया ज्ञातस्य तदनभ्युपगमाच्च ।

‘तर्हि व्यभिचारादित्याद्यग्रिमग्रन्यासङ्गतेश्च व्याप्तिप्रत्यक्षं प्रत्येव तर्कस्य
हेतुतया जातमात्रवालकीयव्याप्तिज्ञानस्य स्मरणरूपतया व्यभिचा-
रासम्भवात् । न च ‘विनैवेतिपाठेऽपि एवशब्द इवार्थे, तथाच
पूर्वाक्त एवार्थ इति वाच्यं । एवशब्दस्य इवार्थकत्वे पूर्वस्वरविलोपा-
पत्तेः “एवे इवार्थे” इति परिशिष्टानुशासनात्, इवार्थोऽवधारणे-
रार्थः, “एवेऽनवधारणे” इति व्याकरणान्तरौयानुशासनैकवाक्यत्वात् ।
‘तर्हीति यत्किञ्चित्तर्कजनकीभूतव्याप्तिप्रत्यक्षस्य तर्कं विनाप्युत्पाद-
इत्यर्थः, ‘सोऽपि’ तर्कोऽपीत्यर्थः, अनादित्वेनैतत्परिहारश्चाग्रे वक्ष्यते ।
ननु तर्कजन्यव्याप्तिबुद्धिषु वैजात्यं वर्तते तदेव तर्कजन्यतावच्छेदकं ।
न च चाक्षुषत्वादिना सङ्करः, चाक्षुषत्वादिव्याप्यनानाजातिस्वीका-
रात् कार्यतावच्छेदकस्थाननुगमस्यादोषत्वादित्यत आह, ‘न चेति,

न्यथासिद्धान्वय-व्यतिरेकानुविधायित्वमित्यस्य स्वान्वयप्रयोजकान्वयप्रतियो-
गित्वे सति स्वानुत्पादप्रयोजकीभूताभावप्रतियोगित्वमिति समुदायदलस्य
निष्कृष्टार्थः । अन्वयप्रयोजकत्वं स्वरूपसम्बन्धविशेषः, तथाच प्रकृते स्तन-
पानादौ सुखान्वय-व्यतिरेकानुविधायित्वमक्षतमेवेति ।

न च काकतालीयत्वादिशङ्काव्युदासार्थं द्वितीयादि-
दर्शनापेक्षेति वाच्यं । द्वितीयादिदर्शनेऽपि शङ्काताद-
वस्थ्यात् । नन्वनौपाधिकत्वज्ञानं व्याप्तिज्ञाने हेतुः तद्दे-
श-काल-तत्रावस्थितघटादीनां^(१) उपाधित्वशङ्कानिरा-
सः कस्यचित् साधनव्यापकत्वज्ञानेन कस्यचित् साध्या-
व्यापकत्वज्ञानेन स्यात् तच्च भूयोदर्शनं विना नावत-

‘तदुद्धौ’ तज्जन्यव्याप्तिबुद्धौ, ‘जातिरस्तीति, मानाभावात् तर्कस्य
हेतुत्वासिद्धिरिति भावः । माभूत् भूयोदर्शनं कारणं तथापि
क्वचिदुपयुज्यत एवेत्यभिप्रायेण शङ्कते, ‘सामान्येति, एवमुत्तरत्र
सर्वत्रापि, ‘सर्वोपमंहारादिति सर्वेषां साध्यानां साधनानां ज्ञाना-
दित्यर्थः, ‘सामान्यरूपतेति, सामान्यत्वस्थानेकवृत्तित्वरूपत्वादिति
भावः । इदञ्च सामान्यत्वेन ज्ञातं प्रत्यासत्तिरित्यभिप्रायेण । न
चैतावतापि अनेकव्यक्तीनां धूमादीनां ज्ञानस्यापेक्षा सिद्धा न तु
सहचारभूयोदर्शनापेक्षेति वाच्यं । सामान्यतोऽस्थानेकदर्शनमात्रा-
पेक्षाव्यवस्थापकत्वात् एवमुत्तरत्रापि । ‘सामान्यस्य’ सामान्यज्ञानस्य,
‘तदिति सामान्यलक्षणप्रत्यासत्त्यनभ्युपगमाच्चेत्यर्थः । ‘काकतालीय-
त्वादिशङ्का’ साध्य-साधनसहचारस्यैतन्मात्रस्थलीयत्वशङ्का, ‘आदिप-
दात् त्रिस्थलीयत्वादिपरिग्रहः । ‘अनौपाधिकत्वज्ञानं’ उपाध्यभाव-

(१) तद्देश-काल-तत्रावस्थितघटादीनामित्यत्र तत्रेतिपदं अव्ययं, तद्देश-
काल-तत्तदवस्थितघटादीनामित्येव समीचीनः पाठो भवितुमर्हति ।

रतीति चेत् । न । अयोग्योपाधिव्यतिरेकस्यानुमाना-
धीनज्ञानत्वेनानवस्थापातात् । अथ साध्य-साधनसह-
चरितधर्मान्तराणामुपाधित्वसंशये न व्याप्तिग्रहः
अतस्तेषामनुपाधित्वज्ञानं भूयोदर्शनाधीनसाध्याव्या-
पकत्वज्ञाने सतीत्येतदर्थं भूयोदर्शनापेक्षा, अत एव

निश्चयः, 'तच्चेति साध्यवद्भूतौ साध्याव्यापकत्वज्ञानञ्च न तच्छून्य-
साध्याधिकरणान्तरज्ञानं विनेत्यर्थः । 'अयोग्येति, तथाच अनौपा-
धिकत्वज्ञानं न व्याप्तिधीहेतुरिति भावः । ननु माभूत् अनौपा-
धिकत्वनिश्चयो हेतुः उपाधित्वशङ्काविरहश्च हेतुरेव तावतैव भूयो-
दर्शनापेक्षा सिद्धेत्याशङ्कते, 'अथेति, 'अत इति, अनुपाधिकत्व-
ज्ञानं विना सन्देहानिवृत्तिरिति भावः । 'यावतेति अनुपा-
धित्वनिश्चायकदर्शनत्वेन हेतुत्वमिति भावः । ननु उपाधित्वशङ्कायाः
प्रतिबन्धकत्वे हि अनुपाधित्वनिश्चयापेक्षा स्यात्तदेव च न विरोध्य-
विषयकत्वात् इत्याह, 'यद्यपि चेति, 'तदाहितः' तज्जन्यः ।
यद्यप्येवमपि तत्र स्वतः सिद्ध उपाधिशङ्काविरहस्तत्र भूयोदर्शनस्या-
पेक्षा वृथैव तथापि स्फुटत्वादिदमुपेक्ष्य दूषणान्तरमाह, 'अयोग्येति,
तथाच तत्संशयस्याप्रतिबन्धकत्वमेवावश्यं वाच्यमिति भावः । 'स च
नेति, भूयोदर्शनेऽपि अयोग्योपाधिशङ्कातादवस्थादनुमानस्य चान-
वस्थाग्रस्तत्वादिति भावः । किञ्च भूयोदर्शनजन्यसंस्कारस्य मानसे-
तरव्याप्तिप्रत्यक्षत्वं कार्य्यतावच्छेदकं सामान्यतो व्याप्तिप्रत्यक्षत्वं वेति

यावता दर्शनेन तन्निश्चयस्तावद्भूयोदर्शनं हेतुरिति न
वारसंस्थानियमो न वाननुगमः। यद्यपि चान्यस्य
साध्यव्यापकत्व-साधनाव्यापकत्वसंशयो नान्यव्याप्ति-
ग्रहप्रतिबन्धकस्तथापि तदाहितव्यभिचारसंशयः प्रति-

विकल्प्य दूषयति 'अपि चेति, 'न वहिरिन्द्रियसहकारी' न वहि-
रिन्द्रियमात्रसहकारी, न मानसेतरव्याप्तिप्रत्यक्षत्वावच्छिन्नं प्रति
जनक इति यावत् । 'तद्व्यापारं विनापीति भूयोदर्शनजन्यसंस्का-
ररूपव्यापारं विनापीत्यर्थः, 'व्याप्तिग्रहात्' मानसव्याप्तिग्रहप्रस-
ङ्गात् । 'नापि', 'मनसः' मनसोऽपि, मानसप्रत्यक्षं प्रत्यपीति यावत्,
जनक इत्यनुषज्यते । संस्कारजन्यत्वे व्याप्तिप्रत्यक्षस्य स्मृतित्वापत्तेः
संस्कारस्य तत्र न हेतुत्वं किन्तु तज्जन्यस्मरणस्येत्यपि मतं दूष-
यितुमाह, 'तज्जन्यस्मरणस्य वेति, 'प्रमाणान्तरत्वापत्तेः' यदसाधारणं
सहकार्यसाध्य मनोवह्निर्गोचरां प्रमां जनयति तस्य प्रमाणान्तर-
त्वादिति भावः । न च प्रमाणान्तरत्वं प्रत्यक्षादिभिन्नप्रमाणत्वं तच्चा-
प्रसिद्धमिति वाच्यं । मानसज्ञानाकरणत्वे सति प्रमाकरणत्वापत्तेरि-
त्यर्थात्^(१) । प्राभाकरमतमुपसंहरति, 'तस्मादिति भूयस्त्वविशिष्ट-
साध्य-साधनसहचारज्ञानत्वस्य व्याप्तिप्रत्यक्षकारणतानवच्छेदकत्वादित्यर्थः,
'परिशेषेणेति, 'सा' व्याप्तिः । यद्यपि सहादर्शनजन्यप्रत्यक्ष-

(१) मानसज्ञानकरणात्वातिरिक्तप्रमाकरणत्वापत्तेरिति निष्कृतार्थः ।

बन्धक इति तद्विधूननमावश्यकमिति चेत् । न । अयो-
ग्योपाधिसंशयाधीनव्यभिचारसंशयस्य तथाप्यनुच्छे-
दात् स च न भूयोदर्शनान्नाप्यनुमानादित्यक्तम् ।
अपि च भूयोदर्शनाहितसंस्कारो न वहिरिन्द्रियसह-

विषयत्वरूपस्य सकृद्दर्शनगम्यत्वस्य साध्यत्वे मीमांसकनये बाधः^(१)
तन्मते साध्य-साधनसम्बन्धज्ञानस्यैव व्याप्तिज्ञानत्वेन तस्य तज्जन्यत्वा-
भावात् । न च साध्य-साधनसम्बन्धविशिष्टप्रत्यक्षस्य साध्य-साधनसम्ब-
न्धज्ञानजन्यत्वान्न बाध इति वाच्यं । तन्मते विशिष्टबुद्धौ विशेषण-
ज्ञानस्याहेतुत्वात् नव्यनैयायिकमते सिद्धसाधनाच्च तन्मतेऽपि व्यभि-
चारज्ञानानवतारे प्रथमदर्शनेनापि व्याप्तिग्रहात् । तथापि साध्य-
साधनसम्बन्धसाक्षात्कारत्वव्यापकविषयिताकत्वं साध्यं^(१) । न च न्याय-

(१) न च तन्मते भूयोदर्शनजन्यप्रत्यक्षाप्रसिद्धा भूयोदर्शनजन्यप्रत्यक्ष-
विषयत्वाभावसाधने पूर्व्वं यथा साध्याप्रसिद्धिरुक्ता तथात्रापि सकृद्दर्शन-
जन्यप्रत्यक्षाप्रसिद्धा साध्याप्रसिद्धिः सम्भवति कथं तन्नोक्ता बाध उक्त-
इति वाच्यम् । पूर्व्ववदिहापि यदि सकृद्दर्शनं पक्षीकृत्य व्याप्तिप्रत्य-
क्षकारणत्वं मीमांसकैः साध्यते तदा व्याप्तिप्रत्यक्षकारणत्वस्य विषयतया
व्याप्तौ सिद्धिसम्भवात् न साध्याप्रसिद्धिरतो बाधः उक्तः ।

(२) विशिष्टवैशिष्ट्यावगाहिबुद्धिं प्रति विशेषणतावच्छेदकप्रकारक-
ज्ञानस्य कारणतावादिनैयायिकमते साध्यसामानाधिकरण्यविशिष्टवैशि-
ष्ट्यावगाहिवोधात्मकसकृद्दर्शनजन्यप्रत्यक्षविषयत्वस्य व्याप्तौ सत्त्वेन बाधा-
भावेऽपि नव्यनैयायिकमते व्यभिचारज्ञानानवतारे सकृद्दर्शनजन्यप्रत्यक्षवि-
षयत्वस्य व्याप्तौ सत्त्वात् सिद्धसाधनापत्तेरतः साध्य-साधनसम्बन्धसाक्षात्-

न्धीवा स्वप्रकाशरूपं तज्ज्ञानं वा तच्च प्रथमदर्शनेनाव-
गतमेव^(१) चक्षुरादिना, न चाधिकस्तदभावोऽस्ति, न च
प्रतियोगिज्ञानमधिकरणादिज्ञानजनकं येनापाधि-
ज्ञानं विना तन्न स्यात्, एवमुपाध्यभावे ज्ञाते किञ्चिन्न
ज्ञातुमवशिष्यते उपाध्यभावव्यवहारस्तु तद्वियमपेक्षते
दीर्घत्वादिव्यवहार इवावधिज्ञानं। न चैवं रासभसम्ब-

पादितं। न च प्रतियोगिसत्त्वकालीनाधिकरणज्ञानस्याभावत्वाभावेन
प्रतियोग्यसत्त्वकालीनाधिकरणज्ञानमेवाभावस्तथाच साधनज्ञानमात्र-
स्योपाध्यभावत्वाभावात् कथं साध्य-साधनसम्बन्धमात्रात्कारत्वव्यापक-
विषयिताकत्वमिति वाच्यं। सङ्केतस्थले सर्व्वदैव उपाध्यसत्त्वेन
साधनज्ञानमात्रस्यैव उपाध्यभावत्वात्। 'तच्चेति, तच्च चक्षुरादिना
प्रथमसम्बन्धदर्शनेऽवगतमेव विषयीभूतमेवेत्यन्वयः, 'प्रथमसम्बन्धदर्-
शनेनेति तृतीयान्तपाठे 'अवगतं' विषयीकृतं। ननु अधिकरणा-
दिभ्योऽतिरिक्त एवाभावः तज्ज्ञानं विनापि च साधनं गृह्यत इत्यत-
आह, 'न चेति, अतिरिक्ताभावकल्पने गौरवादिति भावः। नन्वेता-
दृशसङ्कटर्शनगम्यत्वसिद्धावपि भूयोदर्शनापेक्षावश्यकौ अभावज्ञानस्य
प्रतियोगिज्ञानाधीनत्वेन उपाधिज्ञानार्थं भूयोदर्शनावश्यकत्वात्
उपाधित्वस्य साध्यव्यापकत्वादिघटितत्वादित्यत आह, 'न च
प्रतियोगीति, 'एवमिति अभावबुद्धौ प्रतियोगिज्ञानस्याहेतुत्वे,

अतुल्यवह्नि-धूमसम्बन्धज्ञानादेवानुमितिः स्यादिति वाच्यम् । उपाधिस्ररणे सत्युपाधि-तद्व्याप्येतरसकलतदुपलम्भकसमवधाने चोपाध्यनुपलम्भसहितस्य केवलाधिकरणज्ञानस्यानुमितिहेतुत्वात् तद्व्यवहारहेतुत्वाच्च^(१) । नन्वेवं प्रथमदर्शनेन व्याप्तिनिश्चयादिशेषदर्शने सति रासभादिसंशयवत्तत्संशयो न स्यादिति चेत्, व्याप्तिज्ञानानन्तरं किं विद्यमान एवोपाधिर्भयोपाधित्वेन

‘उपाध्यभाव इति, घटकत्वं सप्तम्यर्थः, तस्य ‘किञ्चिदित्यनेनान्वयः, ‘अवशिष्यत इति, येन तज्ज्ञानार्थं भूयोदर्शनापेक्षा स्यादिति भावः । नन्वेवं प्रतियोगिज्ञानं विनापि अभावप्रत्यये^(२) तच्चन्यव्यवहारोऽपि स्यादित्यत आह, ‘उपाध्यभावव्यवहारस्त्विति उपाधिर्नास्तीति शब्दप्रयोग इत्यर्थः, तस्योपाध्यभावत्वप्रकारकज्ञानसाध्यत्वादिति भावः । ‘दीर्घत्वेति, यथा दीर्घत्वपरिमाणस्य द्रव्यसाक्षात्कारसामग्रीग्राह्यतया दीर्घत्वज्ञाने नावधिज्ञानापेक्षा किन्तु अयमस्माद्दीर्घइति व्यवहार एवावधिज्ञानापेक्षेति भावः । ‘रासभसम्बन्धतुल्येति वह्नि-रासभसम्बन्धतुल्येत्यर्थः, तुल्यता च अनुमित्यजनकतया, तथाच वह्नि-रासभसम्बन्धज्ञानं यथा अनुमित्यजनकं तथा वस्तुगत्या अनुमित्यजनकं यद्वह्नि-धूमसम्बन्धज्ञानं तस्मादेव भवन्मतेऽनुमितिः स्यादित्यर्थः । ‘उपाधिस्ररण इति स्ररणत्वमविवक्षितं

(१) व्यवहारहेतुत्वाच्चेति क० । (२) अभावप्रत्यक्ष इति ख०, ग० ।

मतेऽपि व्याप्तेः साधनतावच्छेदकानतिरेकितया साध्यसामानाधिकरण्यानतिरेकितया वा सिद्धसाधनमिति वाच्यं । मणितैव

कारत्वव्यापकविषयिताकत्वं व्याप्तौ साधितं । यद्यपि साध्य-साधनसम्बन्ध-साक्षात्कारत्वसमानाधिकरणविषयिताकत्वं व्याप्तौ साध्यते तदा धूमव्यापकवह्निसमानाधिकरणो धूम इत्याकारकसाध्य-साधनसम्बन्धसाक्षात्कारविषयत्वस्य व्याप्तौ नय्यनैयायिकमते सत्त्वात् सिद्धसाधनतादवस्थामतः साध्य-साधनसम्बन्धसाक्षात्कारत्वव्यापकविषयिताकत्वं निवेशितं, तथाच धूमो वह्निसमानाधिकरण इति साक्षात्कारेऽपि तादृशसाक्षात्कारत्वस्य सत्त्वात् तत्र विशिष्टवह्निसमानाधिकरणरूपनैयायिकमतसिद्धव्याप्तिविषयताया अस्तत्त्वान्न दोषः । ननु व्याप्तिग्राह्यं वक्ष्यते इति प्रतिज्ञा मणिका-रेण कृता अतो व्याप्तिग्राह्यस्य कारणकथनमेव प्रकृतोपयुक्तमिति साध्य-साधनसम्बन्धसाक्षात्कारत्वव्यापकविषयिताकत्वसाधनमर्थान्तरग्रस्तमिति । यदि च साध्य-साधनसम्बन्धसाक्षात्कारत्वव्यापकविषयिताकत्वस्य व्याप्तौ सत्त्वे साध्य-साधनसम्बन्धग्राहकं यत्तदेव व्याप्तिग्राहकमिति लभ्यते तदा साध्य-साधनसम्बन्धग्राहकत्वव्यापकग्राहकताकत्वरूपविशेषहेतोर्याप्तौ कथनेन व्याप्तिग्राहोपायः क इति जिज्ञासानिवृत्तेः साध्य-साधनसम्बन्धग्राहकत्वव्यापकविषयिताकत्वसाधनं निष्फलमिति चेत् । न । सर्वमिदं सति व्याप्तिनिश्चये स एव तु न सम्भवति उपायाभावादित्यादिग्रन्थेन व्याप्तिग्राहकारणाभावेन व्याप्तिनिश्चयस्यासम्भवात् अनुमानप्रामाण्यवस्थापनं न सम्भवतीति चार्वाकपूर्वपक्षप्रतिपादनात् साध्य-साधनसम्बन्धग्राहकत्वव्यापकस्वग्राहकत्वस्य हेतुत्वकथनेन व्याप्तिग्राह्यस्य कारणं प्रतिपादितं, निरुक्तसकृदर्शनगम्यत्वसाधनेन च साध्य-साधनसम्बन्धसाक्षात्कारस्य व्याप्तिनिश्चयरूपता प्रतिपादिता, तथाच तस्यैवानुमितिकारणत्वं सम्भवतीति सर्वं सुसम-क्षरं ।

कारी तद्व्यापारं विनापि च सहचारादिज्ञानवतो
व्याप्तिग्रहात् । नापि मनसः इन्द्रियादिवद्भूयोदर्शन-
जन्यसंस्कारस्य तज्जन्यस्मरणस्य वा प्रमाणान्तरत्वापत्तेः,
तस्मात् परिशेषेण सकृददर्शनगम्या सा, तथाह्युपाध्य-
भावोव्याप्तिः अभावश्च केवलाधिकरणं तत्कालसम्ब-

‘किञ्चेत्यादिना अनुपदमेव तद्दोषस्य वक्ष्यमाणत्वात् । परिशेषस्य
न स्वप्रत्यक्षाकारणभूयोदर्शनकत्वे सति सहचारदर्शनग्राह्यत्वं स्वरूपा-
मिद्व्यापत्तेः साध्य-साधनसम्बन्धज्ञानस्यैव तन्मते व्याप्तिज्ञानत्वात् ।
न च सहचारदर्शनग्राह्यत्वं सहचारदर्शनविषयत्वं, समहालम्बनज्ञा-
नमादाय घट-पटादौ व्यभिचारापत्तेः, किन्तु साध्य-साधनसम्ब-
न्धग्राहकसामग्रीत्वव्यापकस्वग्राहकसामग्रीत्वकत्वमिति हेतुमुपपाद-
यति, ‘तथाहीति, ‘उपाध्यभाव इति उपाध्यभाववत्त्वे सति साध्य-
सामानाधिकरण्यमित्यर्थः, तेन तन्नये विरुद्धहेतावुपाधिविरहेऽपि
नातिव्याप्तिः । ‘केवलाधिकरणमिति, तच्च साधनं धूमादिरे-
वेति भावः । नन्वेवं प्रतियोगिकालेऽपि तदधिकरणमस्यैव कथं वा
अधिकरणभावयोराधाराधेयभावप्रतीतिरित्यत आह, ‘तत्कालेति
तत्कालेन प्रतियोग्यनधिकरणकालेनाधिकरणस्य सम्बन्ध इत्यर्थः,
तन्मते कालस्य षडिन्द्रियवेद्यत्वादेव तस्य प्रत्यक्षत्वं । सर्वत्र हेतुसम्ब-
न्धभावे कालभानावश्यभावाभावादाह, ‘स्वप्रकाशेति, ‘तज्ज्ञानमिति
अधिकरणज्ञानमित्यर्थः, ‘स्वप्रकाश इत्यनेन प्रथमदर्शनगम्यत्वमुप-

न ज्ञात इति शङ्कया गृहीतव्याप्तावपि संशयः अतस्तत्र
भूयो दर्शनेनोपाधिनिरासद्वारा व्याप्त्यभावशङ्कापनी-
यते। यद्वा ज्ञानप्रामाण्यसंशयाद्व्याप्तिसंशयः यथा घट-
ज्ञानसामग्र्यां सत्यां घटज्ञाने सति तत्प्रामाण्यसंशया-

उपाधिज्ञाने सतीत्यर्थः, 'उपाधि-तद्भाष्येतेति उपाधिरूपाधिव्या-
प्योय उपधीन्द्रियसन्निकर्षादिस्तदितरोपाधिविशिष्टप्रत्यक्षजनकका-
रणकलापे सतीत्यर्थः, 'उपाध्यनुपलम्भसहितस्येति उपाधिमत्ता-
ज्ञानाभावसहितस्येत्यर्थः। नन्वेवं धूमे व्यभिचारभ्रमेऽपि ततो-
ऽनुमितिः स्यात् उक्तरूपसकलहेतुमत्त्वात् भ्रमस्तु ज्ञानद्वयसंकज्ञानं
वेत्यन्यदेतत्। न च तत्र भ्रमरूपोपाधिविशिष्टबुद्धेरप्युत्पत्तेः उपा-
ध्यनुपलम्भ एव नास्तीति वाच्यं। तेरन्यथाख्यात्यनङ्गीकारात्
व्यभिचारज्ञाने उपाधिज्ञानानियमाच्च इति चेत्। न। व्यभिचा-
रज्ञानाभावस्यापि सहकारित्वात्। अथैवमप्यसन्निकृष्टादिहेतुका-
नुमितिर्न स्यात् उपाधिविशिष्टोपलम्भककारणकलापविरहादिति
चेत्। न। उपाध्यनुपलम्भकादिकं नानुमितिहेतुः किन्तु उपाध्य-
भावत्वेन ज्ञानं, तच्चासन्निकृष्टस्थलेऽपि सम्भवति, 'उपाधिसरणे'
इत्यादिकन्तु लौकिकप्रत्यक्षात्मकोपाध्यभावत्वप्रकारकज्ञानस्य कार-
णमात्रप्रदर्शनं इति। न चैवं उपाध्यभावत्वप्रकारकव्याप्तिज्ञानस्य
उपाधिज्ञानाद्यधीनत्वेन निरुक्तमकृद्दर्शनगम्यत्व-निरुक्तपरिशेषवत्त्व-
योस्तत्र बाध इति वाच्यं। व्याप्तिस्वरूपप्रतीतावितरापेक्षाविर-
हादेव तयोस्तत्र सम्भवादिति। नन्वेवं केवलाधिकरणज्ञानादनु-

हितस्तत्संशयो न त्वग्रिमसंशयानुरोधेन तत्र घट-
ज्ञानमेव न वृत्तमिति कल्प्यते तथेहाप्युपाध्यभावस्य
व्याप्तित्वात् तस्य च केवलाधिकरणरूपस्य प्रथमदर्शने-
ऽपि निश्चितत्वात् व्याप्तिग्राहकान्तरस्याभावाच्च परि-

मितिर्न भवतु उपाधिज्ञानं विना केवलाधिकरणज्ञानमात्रदशा-
यासुपाध्यभावव्यवहारस्तु जायतामित्यत आह, 'तद्व्यवहारेति^(१)
उपाध्यभावव्यवहारहेतुत्वाच्चेत्यर्थः ।

केचित्तु नन्वेवमसन्निष्ठादिहेतुकानुमितिनं स्यात्तादृशोपाधि-
विशिष्टप्रत्यक्षजनककारणकलापविरहादित्यस्वरसादाह, 'तद्व्यवहा-
रेति तस्य व्यवहारो यस्मादिति व्युत्पत्त्या अनुमितेरुपाध्यभावव्य-
वहारहेतुहेतुकत्वाच्चेत्यर्थः, 'चकारः वार्ये, उपाध्यभावव्यवहारहेतुश्च
परोक्षापोरक्षसाधारणं उपाध्यभावत्वप्रकारकज्ञानमात्रमिति प्राहुः ।

'नन्वेवमिति, 'एवं' व्याप्तिग्रहस्य साधनग्राहकातिरिक्तानपे-
क्षत्वे^(२), 'प्रथमेति प्राथमिकधूमादौन्द्रियसन्निकर्षेत्यर्थः, 'व्याप्ति-
निश्चयादिति, विशेषणज्ञानस्य विशिष्टबुद्धावहेतुत्वेन धूमादौ
स्वात्मकव्याप्तिप्रकारकनिश्चये बाधकाभावादिति भावः । विशेष-
दर्शने सतीति यथा वज्रव्याप्यत्वस्य विशेषदर्शने सति रासभादौ
न वज्रिव्याप्यत्वसंशयः तथेत्यर्थः, 'तत्संशय इति धूमादौ वज्रि-

(१) व्यवहारेतीति ख० ग० ।

(२) साध्य-साधनसम्बन्धग्राहकातिरिक्तानपेक्षत्वे इति क० ।

शेषेण सकृदर्थनस्य व्याप्तिग्राहकत्वात् तन्निश्चये प्रामा-
ण्यसंशयादेव तत्संशयः। न चैवं रासभेऽपि प्रथमं व्याप्ति-
परिच्छेदः^(१) स्यादिति वाच्यं। तत्र व्याप्तेरभावात् प्रत्य-
क्षज्ञाने विषयस्य हेतुत्वात्, कचिदसंसर्गाग्रहात् तथा

व्याप्यत्वसंशय इत्यर्थः, तव इति शेषः, अत एवाग्रे मयेति सङ्ग-
च्छते, व्याप्तिस्वरूपप्रतीतावपि उपाध्यभावत्वरूपेण उपाध्यभावात्मक-
व्याप्तिप्रकारकनिश्चयाभावान्तत्प्रकारकसंशयो नानुपपन्नः, यद्वा तन्नि-
श्चये प्रामाण्यसंशयाद्व्याप्तिसंशय इति समाधानद्वयं क्रमेणाह, 'व्याप्ति-
ज्ञानानन्तरमिति धूमादिसन्निकर्षानन्तरमित्यर्थः, ज्ञायते अनेनेति
व्युत्पत्तेः^(२)। 'किमिति अत्र किंशब्दोऽग्रिमयद्वेत्यपेक्षया विकल्पे,
'विद्यमानेति, 'विद्यमाने' ज्ञायमाने धूमादौ, उपाधित्वेन उपा-
धिरेव मया न ज्ञात इत्यर्थः, न तु उपाध्यभावत्वेन उपाध्य-
भावोऽपि निश्चितइति शेषः, 'इति शङ्कया' अतः शङ्कासामग्री-
मत्तया, 'गृहीतव्याप्तावपि गृहीतव्याप्तिस्वरूपेऽपि, 'संशयः' उपा-
ध्यभावत्वप्रकारेण उपाध्यभावात्मकव्याप्तिसंशयः, समानप्रकारक-
निश्चयस्यैव विरोधित्वादिति भावः। 'उपाधिनिरासेति उपाध्यभा-
वत्वप्रकारकनिश्चयद्वारेत्यर्थः।

(१) व्याप्तिनिश्चय इति ग०।

(२) व्याप्तिज्ञानपदस्य ज्ञायते अनेनेतिकरणव्युत्पत्त्या व्याप्तिज्ञानजनक-
धूमादिसन्निकर्षपरत्वमिति भावः।

व्यवहारो^(१) दोषमाहात्म्यात् । न चात्रापि तद्या, आरोपे
सति निमित्तानुसरणं न तु निमित्तमस्तीत्यारोप-
इत्यभ्युपगमात् ।

अजवस्तु पूर्वपक्षे तवेति नाध्याहार्यं, 'व्याप्तिज्ञानानन्तरमिति
व्याप्तिनिश्चयानन्तरमित्यर्थः । 'किं विद्यमान इति किमत्र उपा-
धिरेव विद्यमान वर्त्तमानः मया उपाधित्वेन न ज्ञातइत्यर्थः,
किं वा उपाधिरेव न वर्त्तते, 'इति शङ्कया' इति शङ्कासत्तया,
'गृहीतव्याप्तावपि' निश्चितायां व्याप्तावपि संशय इत्यर्थः । एतादृश-
संभावनाविरहविशिष्टव्याप्तिनिश्चयस्यैव प्रतिबन्धकत्वादिति भावः ।
ननु लाघवाद्वाप्तिनिश्चयत्वेनैव प्रतिबन्धकत्वात्तादृशसंभावनाया उच्चे-
जकले मानाभाव इत्यस्वरसादाह, 'यदेति, इति प्राज्ञः ।

ननु मध्ये प्रामाण्यसंशयकल्पने गौरवान्निश्चय एव व्याप्तेर्न वृत्त-
इत्येव कल्पयितुं युक्तमित्यत आह, 'यथेति, 'घटज्ञान इति घट-
निश्चय इत्यर्थः । 'न चैवमिति, 'एवं' साधनग्राहकातिरिक्तानपेक्षने,
रासभेऽपि धूमसमानाधिकरणे रासभेऽपि, 'व्याप्तिनिश्चयः स्यात्'^(१)
स्वरूपतो व्याप्तिप्रकारकनिश्चयः स्यात्, विशेषणज्ञानस्य तन्मते^(२)

(१) तद्व्यवहार इति ग० ।

(२) 'व्याप्तिपरिच्छेदः स्यात्' इत्यत्र 'व्याप्तिनिश्चयः स्यात्' इति कस्य-
चित् मूलश्रुतकस्य पाठमनुसृतवन्तो रहस्यकृतः ।

(३) तवेति ख० ।

केचित्तु साधनवन्निष्ठात्यन्ताभावाप्रतियोगिसाध्य-
सामानाधिकरण्यं साधनवन्निष्ठान्योन्याभावाप्रति-
योगिसाध्यवत्कत्वं वा व्याप्तिस्तदुभयमपि योग्यं^(१)
प्रत्यक्षेण वह्नि-धूमसम्बन्धानुभवेन प्रथममवगतमेव ।

विशिष्टबुद्धावहेतुत्वादिति भावः । 'विषयस्य' विशेष्य-विशेषणसम्बन्धस्य,
विशिष्टप्रत्यक्षत्वस्य तत्कार्यतावच्छेदकतया न प्रमाया गुणजन्यत्व-
मिति भावः । नन्वेवं कुत्रापि व्याप्यभाववति व्याप्यत्वव्यवहारो न
स्यात् तस्य तन्निश्चयाधीनत्वात् इत्यत आह, 'कचिदिति, 'दोषमा-
हात्यादिति, व्याप्तिस्मरणपुरोवर्त्तिज्ञानसहकृतोव्याप्यत्वासंसर्गाग्रहस्त-
स्मात्तद्व्यवहार इत्यन्वयः । 'न चात्रापीति सर्वत्र रासभादावित्यर्थः,
'तथेति दोषमाहात्याद्याप्तिस्मरणपुरोवर्त्तिज्ञानसहितव्याप्यत्वासंस-
र्गाग्रहोभवत्वित्यर्थः, 'आरोपे' पुरोवर्त्तिताज्ञान-तदगृहीतासंसर्गक-
विशेषणज्ञाने, 'सतीति प्रामाणिके इत्यर्थः, 'निमित्तेति, 'निमित्तस्य'
दोषस्य, 'अनुसरणं' कल्पनमित्यर्थः, फलवत्तादिति भावः । 'न
त्विति न तु सर्वत्रैव दोषाख्यं निमित्तमस्ति, 'इत्यारोपः' येना-
रोपः येन सर्वत्रागृहीतासंसर्गकव्याप्तिज्ञानमिति यावत् ।

तदेवं उपाध्यभावरूपाया व्याप्तेः सकृद्दर्शनगम्यत्वमुपपाद्य मीमां-
सकः नैयायिकसिद्धाया एव व्याप्तेः ताद्रूप्येण सकृद्दर्शनगम्यत्वं स्वैक-
देशिमत्वं दूषयितुमुपन्यस्यति, 'केचित्त्विति, 'प्रत्यक्षेण' चक्षुरा-
दिना, 'अवगतं' विषयीकृतं, 'महानस इति एतद्धूमवतीत्यर्थः,

(१) योग्यत्वादिति ख०, ग० ।

महानसे योऽत्यन्ताभावोऽन्योन्याभावोवावगतस्तस्य
प्रतियोगी न वह्निर्न वा वह्निमानित्यनुभवात्, रासमे
तथावगमेऽप्यग्रे स बाध्यत इति, तन्न, एवं तत् तद्वह्नि-त-

‘अवगतः’ वर्त्तमानः, ‘अनुभवादिति प्राथमिकवह्नि-धूमसम्बन्धग्रह-
कालेऽनुभवदित्यर्थः । न च पिशाचाद्यतीन्द्रियाभावस्याप्येतद्धूम-
समानाधिकरणाभावत्वादना निविष्टत्वात् कथं साध्य-साधनसम्बन्धा-
नुभवकाले अवश्यं तदनुभव इति वाच्यं । गुरुमते अभावस्याधिकरण-
स्वरूपतया पिशाचाभावत्वादिरूपधर्मस्यैवायोग्यत्वात् न तु तदभावस्य,
अत्र तु अभावत्वेनैव तद्ज्ञानात् । न च तथापि तादृशप्रतियोगित्वा-
भावत्वेन कथं तादृशप्रतियोगित्वाभावग्रहः महानसदृष्टिपिशाचाद्य-
भावप्रतियोगित्वस्यातीन्द्रियस्यापि तत्प्रतियोगिकुचिनिःक्षिप्तत्वेन ता-
दृशाभावत्वस्यायोग्यत्वादिति वाच्यं । यत्किञ्चित्प्रतियोगियोग्य-
त्वेनैवाभावस्य योग्यतया तादृशप्रतियोगित्वसामान्याभावत्वस्य योग्य-
त्वात् अप्रतियोगित्वस्य प्रतियोग्यन्योन्याभावरूपतया प्रतियोगि-
योग्यत्वस्यातन्त्रत्वाच्चेति भावः^(१) । नन्वेवमिन्द्रियसन्निकृष्टे व्यधिकर-
णरासमेऽपि तादृशप्रतियोगित्वाभावग्रहापत्तिस्तव नये साध्य-साध-
नसहचारग्रहस्य तादृशप्रतियोगित्वाभावग्रहाहेतुत्वादित्यत आह,

(१) अत्यन्ताभाव-हे प्रतियोगियोग्यत्वस्य तन्त्रत्वेऽपि अन्योन्याभाव-
ग्रहे प्रतियोगियोग्यत्वं न तन्त्रं, अन्यथा घटादौ पिशाचाद्यतीन्द्रियपदा-
र्थान्योन्याभावस्याप्रत्यक्षापत्तेरिति भावः ।

धूमयोरेव व्याप्तिः स्यात् न तु धूमत्व-वह्नित्वावच्छेदेन।
न च तदनुमानोपयोगि, वह्नित्वं वह्निमत्त्वं वा न प्रति-
योगितावच्छेदकमिति प्रथमतो ज्ञातुमशक्यमेवेति।
मैवं। प्रकृतसाध्यव्यापकसाधनाव्यापकोवा साधनत्वा-

‘रासभ इति सन्निकृष्टे व्यधिकरणरासभे इत्यर्थः, ‘तथावगमेऽपि’
प्रथमं तादृशप्रतियोगित्वाभावावगमेऽपि, ‘अग्रे’ एतद्धूमवति रासभा-
भावग्रहानन्तरं, ‘वाध्यते’ अप्रमालेन ज्ञायते, ‘एवं तदिति लुप्तप्रथ-
मान्तं, सकृद्दर्शनविषयीभूतं तादृशात्यन्ताभावाप्रतियोगित्वादिक-
मित्यर्थः, ‘स्यात्’ भवति, ‘न तु धूमत्वेति धूमत्वावच्छिन्ने वह्नि-
त्वावच्छिन्नस्य व्याप्तिरित्यर्थः। ‘न च तदिति तद्वह्नि-तद्धूमयो-
र्याप्यत्वं, ‘अनुमानोपयोगि’ धूमसामान्ये न वह्नि-सामान्यानुमा-
नोपयोगीत्यर्थः। ननु धूमत्वावच्छिन्नसमानाधिकरणात्यन्ताभाव-
प्रतियोगितानवच्छेदकवह्नित्वावच्छिन्नसमानाधिकरणं तादृशान्यो-
न्याभावप्रतियोगितानवच्छेदकवह्निसामानाधिकरणं वा धूमसामा-
न्यहेतुकवज्जानुमानोपयोगि तदपि सकृद्दर्शनग्राह्यमित्यत आह,
‘वह्नित्वमिति, ‘न प्रतियोगितावच्छेदकमिति^(१) न धूमत्वावच्छि-
न्नसमानाधिकरणात्यन्ताभावस्य तादृशान्योन्याभावस्य वा प्रतियो-

(१) प्रतियोगितानवच्छेदकमिति ख०, ग०।

भिमतेन समं प्रकृतसाध्यसम्बन्धितावच्छेदेकं विशेषणं
वोपाधिः उभयथापि तदभावो न व्याप्तिः सिद्ध-
सिद्धिभ्यां तन्निषेधानुपपत्तेः, किन्तु यावत्स्वव्यभिचारि-
व्यभिचारिसाध्यसामानाधिकरण्यमनौपाधिकत्वं तस्य
प्रथमं ज्ञातुमशक्यत्वात् । किञ्च न वस्तुगत्या व्याप्ते-

गितासामान्यावच्छेदकमित्यर्थः^(१), 'ज्ञातुमशक्यमेवेति तादृशप्रति-
योगितानवच्छेदकत्वसत्त्वेऽप्यभावदेशविप्रकर्षादिना अनुपलम्भसम्भाव-
नापत्तिगर्भयोग्यानुपलब्धिविरहादिति भावः । यद्यपि तादृशप्रति-
योगितावच्छेदकत्वाभावोऽप्यधिकरणादिरूप एवेति तज्ज्ञानमपि
प्रथमदर्शने सम्भवत्येव अधिकरणादिज्ञाने योग्यानुपलब्धेरहेतुत्वात् ।
न च प्रतियोगितावच्छेदकत्वाभावत्वप्रकारेण ज्ञानं प्रथमतो न सम्भ-
वति तस्य प्रतियोगितावच्छेदकत्वज्ञानाधीनत्वाद्योग्यानुपलब्धधीन-
त्वाच्चेति वाच्यं । उपाध्यभावरूपव्याप्तिप्रत्यक्षेऽपि उपाध्यभावत्वप्रका-
रकज्ञानस्य प्रथमतोऽसम्भवात् उपाधिज्ञानाद्यधीनत्वात् । तथाप्युक्त-
रूपव्याप्तित्वेनोक्तरूपव्याप्तेः सद्दर्शनगम्यत्वस्यैकदेश्यभिप्रेतत्वान्नैतद्विषा-
सङ्गतिरिति ध्येयं ।

(१) अत्र सामान्यपदं पर्याप्तिनिवेशाभिप्रायकं तथाच प्रतियोगिता-
नवच्छेदकमित्यस्य प्रतियोगितावच्छेदकतापर्याप्त्यधिकरणत्वाभाववत्त्वमर्थः
तेन महानखीयवङ्गाभावमादाय वङ्गित्वस्य प्रतियोगितावच्छेदकत्वेऽपि
वङ्गिमान् धूमादित्यादौ नाव्याप्तिः ।

ज्ञानं हेतुः किन्तु व्यक्तित्वेन तच्च उपाध्यभावत्वं । न च उपाधेरज्ञाने तदभावत्वेन ज्ञानं सम्भवति, विशेषण-ज्ञानसाध्यत्वाद्विशिष्टज्ञानस्य । नच नियमतः प्रथममुपाधिधीरस्ति । यच्चोक्तं प्रतियोगिज्ञानं व्यवहारहेतुः

तदेवं व्याप्तिर्न भूयोदर्शनगम्या किन्तु मल्लदर्शनगम्यैवेति मीमांसकमते च निरूढे तदूषयति^(१) 'मैवमिति, 'प्रकृतेति न्यायनये, 'साधनत्वेति मीमांसकनये, साधनत्वाभिमतं समं या प्रकृतसाध्यसम्बन्धिता तदवच्छेदकत्वे सति यद्विशेषणं तत्त्वमित्यर्थः । अत्रावच्छेदकत्वमन्यूनवृत्तित्वं साधननिष्ठसाध्यसम्बन्धितावच्छेदकौभूताधिकरणनिष्ठाभावाप्रतियोगित्वमिति यावत् । स श्यामो मित्रातनयत्वात् प्रत्यक्षं उद्भूतरूपादित्यादौ पाकशाकजल-महत्त्वादावव्याप्तिवारणाय साधननिष्ठेति साध्यसम्बन्धिताविशेषणं, असम्भववारणाय साध्यान्तर्भावः । तथाच साधनविशिष्टसाध्यव्यापकत्वमिति सत्यन्तस्य फलितार्थः^(२) । विरुद्धस्य चैतन्नये नोपाधित्वमतोगोत्वान् अश्वत्वादित्यादौ साधनविशिष्टसाध्याप्रसिद्ध्या साक्षावत्त्वादौ नाव्याप्तिः । न च तथाप्ययं

(१) निर्यूढं तदूषयतीति ख०, ग० ।

(२) तथाच स श्यामो मित्रातनयत्वादित्यादौ शाकपाकजलोपाधेः स्वाभाविकश्यामकाक-कोकिलाद्यन्तर्भावेण एवं प्रत्यक्षं उद्भूतरूपादित्यादौ महत्त्वोपाधेः गुणाद्यन्तर्भावेण साध्यव्यापकत्वभङ्गेऽपि साधनविशिष्टसाध्यव्यापकत्वमक्षतमेवेति भावः ।

नाभावज्ञाने इति, अस्तु तावदेवं तथापि तदभावो मा
व्यवहारि उपाध्यभावज्ञानाधीनानुमितिः स्यादेव
उपाधिज्ञानं विनापि, न चैवं । वस्तुतस्तु विशेषादर्शने

चाक्षुषः प्रमेयत्वादित्यादौ पक्षधर्मद्रव्यत्वावच्छिन्नसाध्यव्यापके उद्भूत-
रूपादावव्याप्तिरिति वाच्यं । साधनावच्छिन्नसाध्यव्यापकस्यैवैतन्मते
उपाधितया तस्यालक्ष्यत्वात् । सद्भेतौ साध्यादेरुपाधितावारणाय
'विशेषणमिति विशेषणत्वं यत्किञ्चित्साधनाधिकरणद्व्यावर्त्तकत्वं
साधनाव्यापकत्वमिति यावत् । निःस्नेहं स्पर्शात् द्रव्यं सत्त्वादित्यादौ
करकान्यत्व-रूपान्यत्वादिकमपि लक्ष्यमेवेति न तत्रातिव्याप्तिः ।

केचित्तु सद्भेतौ साध्यादेः^(१) साध्याभावविशिष्टसाधनवददृत्तेरेव
एतन्मते लक्ष्यतया निःस्नेहं स्पर्शात् द्रव्यं सत्त्वादित्यादौ करकान्यत्व-
रूपान्यत्वादेशोपाधितावारणाय 'विशेषणमिति, विशेषणत्वञ्च साध्या-
भावविशिष्टसाधनाधिकरणसामान्याद्व्यावर्त्तकत्वं साध्याभावविशिष्ट-
साधनव्यापकीभूताभावप्रतियोगित्वमिति यावत् । धूमवान् वक्त्रेः
द्रव्यं प्रमेयत्वादित्यादौ तत्तदयोगोलकान्यत्व-सत्तादिकञ्च न लक्ष्यं
अतो न तत्रातिव्याप्तिरित्याहुः ।

'तदभाव इति सम्बन्धसामान्यावच्छिन्नप्रतियोगिताकतदभाव-
इत्यर्थः, 'सिद्धसिद्धिभ्यामिति प्रतियोगिप्रसिद्धप्रसिद्धिभ्यामित्यर्थः,
'तन्निषेधानुपपत्तेरिति तदभावस्य सद्भेतावनुपपत्तेरित्यर्थः । 'याव-

(१) साध्यादेः उपाधितावारणाय इत्यग्रिमेषान्वयः ।

सहचारादिसाधारणधर्मदर्शनाद्व्यभिचारसंशयात् प्र-
थमदर्शने^(१) न व्याप्तिनिश्चयः । अथ व्यभिचारसंशयो
नाव्यभिचारनिश्चयप्रतिबन्धकः ग्राह्यसंशयस्य निश्च-

त्वेति खं यावतां व्यभिचारि स्वाव्यापकं यावदिति यावत्, तावतां
व्यभिचारि यत्साध्यं तत्सामानाधिकरण्यरूपमनौपाधिकत्वमित्यर्थः,
व्याप्तिरित्यनुषज्यते, 'तस्य प्रथममिति तस्य साध्य-साधनसम्बन्धसा-
क्षात्कारत्वव्यापकविषयिताकत्वासम्भवादित्यर्थः । ननु उपाध्यभाववतः
साध्यस्य सामानाधिकरण्यरूपमनौपाधिकत्वमेव व्याप्तिः उपाध्यभा-
वश्च व्याप्यतासम्बन्धेन प्रकृतसाधनाव्यापकाभावः स चाधिकरणी-
भूतसाध्यस्वरूपतया सहदर्शनगम्य इत्यस्वरसादाह, 'किञ्चेति,
'उपाध्यभावत्वं' उपाध्यभावत्वघटितं । 'विशेषणज्ञानेति इदं नैयायि-
कमतानुसारेण, मीमांसकमते विशेषणज्ञानसाभग्रीसाध्यत्वादिति
ध्येयं । 'प्रथममिति प्रथमदर्शनकाल इत्यर्थः, तथाच येन रूपेण
ज्ञाता व्याप्तिरनुमित्यङ्गं तद्रूपविशिष्टस्य सहचारदर्शनविषयत्वनियमो
बाधित एव, व्याप्तिस्वरूपस्य तथात्वन्तु मयापि न निवार्यते विशि-
ष्टसामानाधिकरण्यस्य सामानाधिकरण्यानतिरेकित्वादिति परिशे-
षानुमाने सिद्धसाधनमिति भावः । ननु वस्तुगत्या उपाध्यभावस्य
ज्ञानमेव कारणं वक्तव्यं तत्र तु नोपाधिज्ञानं हेतुः प्रतियोगिज्ञा-
नस्य तत्तदभावत्वप्रकारकज्ञानद्वारा तत्तदभावत्वप्रकारकव्यवहारं

(१) प्रथमदर्शनेनेति क० ।

याप्रतिबन्धकत्वात् अन्यथा संशयोत्तरं कापि निश्चये
न स्यादिति चेत् । न । व्यभिचारसंशयः प्रतिबन्धक इति
ब्रूमः, किन्तु विशेषादर्शने सति सहचारादिसाधारण-

प्रत्येव हेतुत्वादित्यत आह^(१), 'यच्चेति, 'प्रथियोगिज्ञानं', 'प्रतियो-
गिनः' उपाधेः, 'ज्ञानं', 'व्यवहारहेतुः' उपाध्यभावत्वप्रकारकउपाध्य-
भावव्यवहारप्रयोजकं, 'नाभावज्ञाने' न स्वरूपेणोपाध्यभावज्ञाने,
'तदभाव इति, उपाधिज्ञानं विनेत्यादिः, 'उपाध्यभावज्ञानेति,
'उपाधिज्ञानं विनापि', भवन्मते स्वरूपत उपाध्यभाववत्ताज्ञान-
सम्भवात् उपाध्यभावत्वप्रकारकज्ञानं प्रत्येव उपाधिस्ररण-योग्या-
नुपलम्भयोर्हेतुत्वस्य पूर्वमुक्तत्वादिति भावः । 'न चैवमिति च्छेदः,
उपाधिज्ञानं विनाप्यनुमितिर्भवतीति न चेत्यर्थः । ननु उपाध्यभा-
वरूपव्याप्तिप्रकारेण व्याप्तेः सहचारदर्शनविषयत्वनियमो मास्तु
तथापि 'उपाधिस्ररण-योग्यानुपलब्धिसहकृतं प्रथमदर्शनमेव तद्रूपेण
व्याप्तिग्रहे हेतुरस्त्वित्यत आह, 'वस्तुतस्त्विति, 'व्यभिचारसंशया-
दिति उपाधिसंशयादित्यर्थः । परमते या व्याप्तिस्तदभावस्यैव
व्यभिचारत्वात् 'प्रथमदर्शन इति उपाधिस्ररणादिसहकृतप्रथमदर्श-
नेऽपीत्यर्थः^(२), 'न व्याप्तिनिश्चय इति न उपाध्यभावत्वरूपव्याप्ति-

(१) हेतुत्वमित्युक्तत्वादित्यत आह्वेति ख०, ग० ।

(२) 'प्रथमदर्शनेनेति उपाधिस्ररणादिसहकृतप्रथमदर्शनेनापीत्यर्थः
इति ख०, ग० ।

धर्मदर्शनात् संशयः स्यात् न तु संशयसामग्रीतेनि-
श्चयइति । किञ्च यद्धीसामग्री यत्र प्रतिबन्धिका विशे-
षादर्शने तत्र तद्धीरपीति व्यभिचारसंशयोऽपि प्रति-

त्वप्रकारेण व्याप्तिनिश्चय इत्यर्थः । इदमापाततः कोटिद्वयोपस्थि-
तेरनावश्यकत्वादुपाधिसंग्रहस्यासार्वत्रिकत्वादिति ध्येयं^(१) । ‘व्यभि-
चारसंग्रहः’ उपाधिसंग्रहः, ‘अव्यभिचारनिश्चयेति उपाध्यभावनि-
श्चयेत्यर्थः । परमते उपाध्यभाव एव व्याप्तिः स एवाव्यभिचार इति
भावः । ‘क्वापीति, भवति च स्थाणुर्न वेति संग्रहानन्तरं विशेषदर्शने
सति अयं स्थाणुरिति निश्चयः पर्वतो वक्लिमान्न वेत्यादिसंग्र-
हानन्तरं पर्वतो वक्लिमानित्याद्यनुमितिः शाब्दादिष्वेति भावः ।
‘नेति ब्रूमइत्यनेनान्वयः, ‘संग्रहः स्यादिति उभयोकोटिप्रकारकज्ञा-
नसामग्रीसत्त्वादिति भावः । ‘संग्रहसामग्रीत इति संग्रहसामग्र्यां
सत्यामित्यर्थः, ‘निश्चय इति एककोटिमात्रप्रकारकज्ञानमित्यर्थः ।
संग्रहसामग्र्याः निश्चयप्रतिबन्धकत्वमभ्युपेत्य संग्रहस्यापि प्रतिबन्धकतां
व्यवस्थापयति, ‘किञ्चेति, संग्रहानन्तरं क्वापि निश्चयो न स्यात्
प्रतिबन्धकत्वसत्त्वाद्त उक्तं ‘विशेषादर्शने मतीति । ननु अनुमि-
तिसामग्री प्रत्यक्षे प्रतिबन्धिका नानुमितिः प्रत्यक्षप्रतिबन्धिकेति
व्यभिचार इति चेत् । न । ‘यद्धीत्यनेन विरोधवगाहिधिय-

बन्धकः । एवं भूयोदर्शनमपि संशयकं तर्कस्त्वनवस्था-
ग्रस्त एवेति कथं व्याप्तिग्रहः ।

इति श्रीमद्भङ्गेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ
अनुमानाख्यद्वितीयखण्डे व्याप्तिग्रहोपायपूर्वपक्षः ।

उक्तत्वात्, तथाच मीमांसकमतं दुष्टं, इदानीं नैयायिकमते मीमां-
सकः^(१) शङ्कते, 'एवमिति, 'संशयकमिति, साधारणधर्मदर्शनादिति
भावः । ननु तर्क एव शङ्काविरोधीत्यत आह, 'तर्क इति, 'कथं
व्याप्तिग्रह इति भवन्मते कथं व्याप्तिग्रह इत्यर्थः ।

इति श्रीमथुरानाथ-तर्कवागीशविरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये
अनुमानाख्यद्वितीयखण्डरहस्ये व्याप्तिग्रहोपायपूर्वपक्षरहस्यं ।

(१) तथाचेत्यादि मीमांसक इत्यन्त पाठ ख-चिह्नितपुस्तके नास्ति ।

अथ व्याप्तिग्रहोपायसिद्धान्तः ।



अत्रोच्यते व्यभिचारज्ञानविरहसहस्यतं सहचारदर्शनं
व्याप्तिग्राहकं, ज्ञानं निश्चयः, शक्ता च सा च क्वचिदु-

अथ व्याप्तिग्रहोपायसिद्धान्तरहस्यं ।



अत्रैव समाधानमाह, 'अत्रोच्यत इति, 'व्यभिचारज्ञानविर-
हेति व्यभिचारज्ञानविरहः सहचारज्ञानञ्च व्याप्तिग्रहे हेतुरित्यर्थः ।
न च व्यभिचारज्ञानाभावस्य कुतो व्याप्तिग्रहे हेतुत्वमिति वाच्यं ।
तज्ज्ञानस्य तदभावज्ञानप्रतिबन्धकतया सति व्यभिचारज्ञाने अव्य-
भिचारघटितव्याप्तिग्रहासम्भवेन तदभावहेतुत्वावश्यकत्वादिति भावः ।
ननु तदभावस्य हेतुत्वेऽपि व्यभिचारज्ञानसत्त्वे व्याप्तिग्रहो दुर्वार एव
व्यभिचारज्ञानस्याव्याप्यवृत्तितया व्यभिचारज्ञाने सत्यपि घटाद्यव-
च्छेदेनात्मनि तदभावसत्त्वात् । न च समवायसम्बन्धावच्छिन्नप्रति-
योगिताकव्यभिचारज्ञानाभावस्यात्मनिष्ठतया न हेतुत्वं अपि तु
अवच्छेदकतासम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकव्यभिचारज्ञानाभावः श-
रीरनिष्ठो हेतुः यत्रावच्छेदकतासम्बन्धेन व्याप्तिग्रहस्तत्र विशेषणता-
विशेषसम्बन्धेनावच्छेदकतासम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकव्यभिचारज्ञा-
नाभाव इति सामानाधिकरण्यं प्रत्यासत्तिरिति वाच्यं । पूर्व-

याधिसन्देहात् कचिद्विशेषादर्शनसहितसाधारणधर्म-
दर्शनात् । तद्विरहश्च कचिद्विषयबाधकतर्कात् कचित्

शरीरावयवावच्छेदेनोत्पद्यमानव्यभिचारज्ञानोत्पत्तिवृत्तौत्पत्तिक-
खण्डशरीरावच्छेदेन सति व्यभिचारज्ञाने व्याप्तिग्रहस्य दुर्वारत्वात्
जन्यं ज्ञानं प्रति चेष्टावत्त्वेनैव शरीरस्य हेतुतया^(१) सद्वाशरीरनाशाग्रि-
मक्षणे व्यभिचारज्ञानोत्पत्तौ बाधकाभावात् चेष्टावतः शरीरा-
वयवस्यैव तत्र सत्त्वादिति चेत् । न । व्यभिचारज्ञानस्याव्याप्यवृत्तित्वे-
ऽपि तद्विशिष्टात्मत्वस्य व्याप्यवृत्तितया तदभावस्यैवात्मनिष्ठतया हेतु-
त्वात् आत्मत्वन्तु तत्र न निविशते किन्तु समवायसम्बन्धावच्छिन्नव्य-
भिचारज्ञानविशिष्टाभावत्वेन हेतुत्वम् । एतेन द्रव्यत्वादिमादाय
विनिगमनाविरहोऽपि प्रत्युक्तः^(२) । एवं तदत्यन्ताभाव-तद्वदन्योन्या-
भाव-तदभावव्याप्यादिनिर्णयस्थले, तद्विशिष्टात्मत्वस्य प्रतिबन्धकं
तुल्ययुक्तेः^(३) ।

(१) तथाच चेष्टावदन्यावयवित्वरूपशरीरत्वघटकान्यावयवित्वं प्रयोज-
नविरहेण जन्यज्ञानत्वावच्छिन्नकार्यतानिरूपितकारणतावच्छेदकोटौ न
निवेशनीयमिति भावः ।

(२) व्यभिचारज्ञानविशिष्टात्मत्वाभावस्य हेतुत्वे विनिगमनाविरहेण
व्यभिचारज्ञानविशिष्टद्रव्यत्वाभावस्यापि हेतुत्वापत्तिः स्यात्सत्त्व-द्रव्यत्वयोर्द्वयो-
रेव जातित्वाविशेषादिति समुदिततात्पर्यम् ।

(३) तद्वत्तावुज्झिं प्रति तदत्यन्ताभावादिनिश्चयमात्रस्य प्रतिबन्धकत्वे
तदत्यन्ताभावादिनिश्चयकालेऽपि घटाद्यवच्छेदेन तादृशनिश्चयाभावसत्त्वात्

स्वतः सिद्ध एव, तर्कस्य व्याप्तिग्रहमूलकत्वेनानवस्थेति चेत्, न, यावदाशङ्कं तर्कानुसरणात् । यत्र च व्याघातेन शङ्कैव नावतरति तत्र तर्कं विनैव व्याप्तिग्रहः ।

इति श्रीमद्भङ्गेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ अनुमानाख्यद्वितीयखण्डे व्याप्तिग्रहोपायसिद्धान्तः ।

केचित्तु तदत्यन्ताभावनिरूप्यादिस्थले सर्वत्र प्रतिबन्धकतावच्छेदककोटौ आत्मत्वे तद्वैशिष्ट्यनिवेशापेक्षया लाघवात् अन्यज्ञानं प्रत्येव चेष्टावदन्यावयवित्वेन हेतुत्वमतो महाशरीरनाशाग्रिमक्षणे व्यभिचारादिज्ञानासम्भवान्नोक्तातिप्रसङ्गः । अन्यावयवित्वञ्च समवायादिसम्बन्धेन द्रव्यवद्भिन्नत्वं । न च तथापि महाशरीरनाशोत्पत्तिक्षणे व्यभिचारादिज्ञानोत्पत्तौ बाधकाभावेन तदग्रिमक्षणोत्पन्नखण्डशरीरावच्छेदेन सति व्यभिचारादिज्ञाने व्याप्यादिग्रहोदुर्वार इति नायम् । तत्र व्याप्यादिग्रहस्येष्टत्वात् क्षणैकविलम्बेन तत्र व्याप्यादिग्रहस्य तवापि सम्मतत्वात् । अस्तु वा शरीरस्य उक्तरूपेण कार्यसहवर्त्तितया अन्यज्ञानहेतुत्वं तस्मात् समानावच्छेदकत्वप्रत्यासत्त्यैव व्यभिचारज्ञान-बाधज्ञानादेः प्रतिबन्ध-प्रतिबन्धकभावः । न चैवं यत्र परपुरप्रवेशाधीनमात्मद्वयोरेकं शरीरं तत्रैकस्मिन्नात्मनि

तद्वत्ताबुद्धिप्रसङ्गः अतः तद्वत्ताबुद्धिं प्रति तदत्यन्ताभावादिनिश्चयविशिष्टात्मत्वस्यैव प्रतिबन्धकत्वं न तु तादृशनिश्चयमात्रस्येति भावः ।

तच्छरीरावच्छेदेन व्यभिचार-बाधादिज्ञानसत्त्वेऽन्यस्मिन्नात्मन्यपि त-
च्छरीरावच्छेदेन व्याप्यादिज्ञानं न स्यादिति वाच्यम् । समवाय-
घटितसामानाधिकरण्यप्रत्यासत्त्या प्रतिवध्य-प्रतिबन्धकभावेऽपि यत्र
कायव्यूहाधीनं एकस्यैवात्मनो नानाशरीरं तत्र एकशरीरावच्छेदेन
तदात्मनि व्यभिचारादिज्ञानेऽन्यशरीरावच्छेदेनापि तदात्मनि व्या-
प्यादिज्ञानं न स्यादित्यस्य दुरुद्धरत्वात् दृष्टापत्तेर्बोभयत्र तुल्यत्वा-
दित्याहुः ।

नव्यास्तु खण्डशरीरोत्पत्तिकालोत्पत्तिकव्यभिचारादिज्ञानस्याप्य-
च्छेदकतासम्बन्धेन खण्डशरीरे वृत्तौ बाधकाभावान्नोक्तापत्तेः प्रसङ्गः^(१) ।
न चावच्छेदकतासम्बन्धेन ज्ञानोत्पत्तौ तादात्म्येन सम्बन्धेन शरीरस्य
हेतुत्वात् खण्डशरीरावच्छेदेनाव्यवहितपूर्वकाले तादात्म्यसम्बन्धेन
शरीरविरहात् कथं शरीरोत्पत्तिकालोत्पत्तिकव्यभिचारादिज्ञानं
खण्डशरीरे स्यादिति वाच्यम् । अवच्छेदकतासम्बन्धावच्छिन्नोत्पत्ते-
रेव कार्यतावच्छेदकसम्बन्धतया समानकालोत्पन्नव्यभिचारादिज्ञा-
नस्य खण्डशरीरेऽवच्छेदकतासम्बन्धेनोत्पत्त्यसम्भवेऽपि तेन सम्बन्धेन
स्थितौ बाधकाभावात् दण्डादिशून्यदेशे संयोगेन घटादिसत्त्ववत्
परपुरप्रवेशस्थलेऽपीष्टापत्तिरेवेति प्राहुः ।

नव्यास्तु व्यभिचारज्ञानाभावस्य हेतुत्वं तथापि सहचारज्ञानस्य
हेतुत्वे मानाभावः । न च व्याप्तेः सहचारघटितत्वेन विशेषणज्ञानतया
तत् हेतुरिति वाच्यम् । व्याप्तिविशेष्यकव्याप्तिग्रहे सहचारस्य विशेष्य-

त्वात् । न च स्वतन्त्रान्वय-व्यतिरेकाभ्यां तदपि स्वातन्त्र्येण हेतुरिति वाच्यं । स्वतन्त्रान्वय-व्यतिरेकानुविधानस्येवाप्रसिद्धेः । न हि इतरकारणसमवधाने सहचारदर्शनविलम्बेन कचिद्वाप्तिग्रहविलम्बमीक्षामहे । अथ विरुद्धस्थले सहचारभ्रमेण व्यापकत्वभ्रमजननात् सामान्यतः व्यापकताग्रहत्वावच्छिन्नं प्रति सहचारज्ञानस्य हेतुत्वं कल्प्यते लाघवात् । अतएव व्याप्तिविशेष्यकग्रहस्थलेऽपि सहचारज्ञानमावश्यकमिति चेत् । न । विरुद्धस्थले सहचारभ्रमस्य व्यापकत्वभ्रमजनकत्वमिद्वेः पौर्वापर्यभावस्य च सामग्रीपौर्वापर्याधीनत्वात् । अत एव व्यतिरेकसहचारज्ञानेनान्वयव्याप्तिज्ञानजननात् लाघवात् सामान्यत एव सहचारज्ञानं व्याप्तिज्ञानत्वावच्छिन्नं प्रति हेतुरित्यपि परास्तं तस्यैवाप्रसिद्धेः । अन्वय-व्यतिरेकसहचारज्ञाननिष्ठानुगतकारणतावच्छेदकस्य निर्वृत्तुमशक्यत्वेन सामान्यतः कारणत्वासम्भवाच्चेति । मैवम् । सहचारदर्शनपदस्य दृश्यतेऽनेनेति व्युत्पत्त्या सहचारेन्द्रियसन्निकर्षपरत्वात्, तद्धेतुत्वाभिधानञ्च व्याप्तिप्रत्यक्षाभिप्रायेण । यद्वा सहचारदर्शनं सहचारज्ञानमेव तद्धेतुत्वाभिधानञ्च व्याप्तेरुपनीतज्ञानाभिप्रायेण^(१) तत्र उपनयविधया तस्य हेतुत्वात् । न चैवं व्याप्तिप्रत्यक्षे सहचारेन्द्रियसन्निकर्षादिव्याप्तिघटकपदार्थान्तरेन्द्रियसन्निकर्षादिरपि हेतुः स कथं नोक्त इति वाच्यं । स्वतन्त्रेच्छस्य पर्यनुयोगानर्हत्वात् । अन्यथा व्यभिचारज्ञानविरहव्याप्तिघटकपदार्थान्तराभावज्ञानविरहो हेतुः स कथं नोक्त इत्यपि पर्यनुयोगापत्तेरिति ।

(१) व्याप्तेरुपनीतमानाभिप्रायेणेति ख०, ग० ।

नद्यास्तु सहचारपदमत्र हेत्वभावयोः सहचारपरं, तज्ज्ञानञ्च विशेषणज्ञानविधया व्याप्तिज्ञानमात्रे हेतुरिति प्राहुः ।

मिश्रास्तु व्याप्तिग्राहकमित्यस्य व्याप्तिप्रकारकज्ञानजनकमित्यर्थः, तथाच सहचारज्ञानं विशेषणज्ञानविधया हेतुरित्याहुः ।

भट्टाचार्यास्तु धूमादिव्यापकवह्निसमानाधिकरणवृत्तिधूमत्वादिकं व्याप्तिः तादृशसामानाधिकरण्यमात्रस्य रासभादिसाधारण्यात् । तथाच व्याप्तिग्रहमात्र एव सहचारज्ञानं विशेषणज्ञानविधया हेतुरिति^(१) मणिकृतोऽभिप्राय इति प्राहुः ।

ननु 'व्यभिचारज्ञानविरहेत्यत्र ज्ञानं निश्चयः शङ्का वा नाद्यः व्यभिचारसन्देहसत्त्वेऽपि व्याप्तिनिश्चयापत्तेः^(२), नान्यः व्यभिचारनिश्चयसत्त्वे व्याप्तिनिश्चयोत्पत्त्यापत्तेरित्यत आह, 'ज्ञानमिति, तथाच व्यभिचारज्ञानसामान्याभावोऽहेतुरिति भावः । न च संशयसाधारण-व्यभिचारज्ञानाभावस्य हेतुत्वे साध्याभावांशे सन्देहाकारव्यभिचार-ज्ञानसत्त्वेऽपि व्याप्तिज्ञानं न स्यादिष्टापत्तौ च पक्षे साध्यसन्देहदृशायां व्याप्तिग्रहापत्तिरिति वाच्यं । साध्याभावांशे निश्चयात्मक-वृत्तित्वांशे सन्देह-निश्चयसाधारणव्यभिचारज्ञानसामान्याभावस्य हेतुत्वात्^(३) इदञ्च प्राचीनमतानुसारेण ।

(१) हेतुव्यापकसाध्यसमानाधिकरणवृत्तिहेतुतावच्छेदकस्य व्याप्तित्वे व्याप्तिविशेष्यकज्ञानेऽपि साध्यसामानाधिकरण्यस्य विशेषणतयैव भानाद् सर्वत्र व्याप्तिज्ञाने विशेषणज्ञानविधया सहचारज्ञानं हेतुरिति तात्पर्यं ।

(२) व्याप्तिनिश्चयानुदयादिति ख०, ग० ।

(३) तथाच साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रकारत्वातिरूपिता या साध्या-

वस्तुतस्तु ग्राह्यसंग्रहस्याप्रतिबन्धकत्वाद्वाभिचारनिर्णयाभाव एव हेतुः । न चैवं व्यभिचारसन्देहसत्त्वेऽपि व्याप्तिग्रहापत्तिरिति वाच्यं । सन्देहात्मकव्याप्तिग्रहे दृष्टापत्तेः सन्देहस्यैवोभयकोट्युपस्थितिरूपतया उभयकोटिविशिष्टबुद्धिसामग्रीसत्त्वेन तदभावाप्रकारकतत्प्रकारकज्ञानरूपस्य तांनश्चयस्यानुत्पत्तेः । न च यत्र व्यभिचारसंग्रहोत्पत्तिञ्चण तद्द्वितीयञ्चणे वा दोषनाशस्तत्र व्यभिचारसंग्रहसत्त्वेऽपि व्याप्तिनिश्चयापत्तिः दोषाभावेनोभयकोटिविशिष्टधीसामग्रीविरहादिति वाच्यम् । तादृशस्थले मानाभावात्, विषयान्तरसञ्चारादेर्विशेषदर्शनादेश्च विरहे सन्देहोत्तरं धारावाहिकसन्देहनियमस्य सर्व्वैरेव स्वीकारादिति तत्त्वं । 'सा च शङ्का च,' 'साधारणधर्मेति उभयकोटिसहचरितधर्मेत्यर्थः । 'तद्विरहश्चेति शङ्काया अनुत्पत्तिश्चेत्यर्थः, उत्पन्नशङ्कायाः स्वोत्तरोत्पन्नगुणादेव नाशसम्भवेन तत्र तर्कस्यापेक्षाभावात्, 'विपचेति, 'विपचे' व्यभिचारग्रहे, 'बाधकात्' प्रतिबन्धकात्तर्कादित्यर्थः । स च धूमो यदि वल्लिभ्यभिचारौ स्याद्वह्निजन्यो न स्यात् इत्यादिरूपः, प्रतिवध्य-प्रतिबन्धकभावश्च फलवलादिरोधिविषयत्वासम्भवेनापि तदापादककापत्तित्वेन तद्विशिष्टबुद्धित्वेन, तदापादककापत्तित्वन्तु धूमलिङ्गकत्वादिवन्निर्वाच्यमिति

भावत्वावच्छिन्नप्रकारतानिरूपितविशेष्यता तदभिन्ना वा निरूपितत्वसम्बन्धावच्छिन्नप्रकारता तन्निरूपिता वा वृत्तितात्वावच्छिन्नविशेष्यता तदभिन्नप्रकारतानिरूपिता वा हेतुतावच्छेदकावच्छिन्नविशेष्यता तद्विशिष्टज्ञानाभावस्य हेतुत्वमिति भावः ।

बोध्यं । 'स्वतः सिद्ध इति तर्कं विना अन्येन प्रयुक्त इत्यर्थः, अन्यस्य संशयजनकदोषाभावस्तर्कातिरिक्तो वक्ष्यमाणप्रतिबन्धकश्चेत्यन्यदेतत् ।

केचित्तु 'स्वतः सिद्ध इति कोटिद्वयोपस्थित्यभावप्रयुक्त इत्यर्थः । न च व्याप्तिग्रहसमये व्यभिचार-तदभावोभयकोट्युपस्थितिरावश्यकौ अव्यभिचारस्य विशेषणत्वेन तज्ज्ञानस्यावश्यकतया तस्यैवोभयकोटि-ज्ञानत्वादभावबुद्धेः प्रतियोगिविषयकत्वात् स्वतन्त्रविशेषणज्ञान-कारणत्वस्य दूर एव निरासादिति^(१) वाच्यं । प्राचीननये साधारणधर्मादिदर्शनजन्यकोट्युपस्थितेरेव संशयजनकत्वात् न तु कोट्युपस्थितिमात्रस्येत्याहुः ।

ननु यत्र तर्केण शङ्कानिवृत्तिः तत्रानवस्था तर्कमूलीभूतव्याप्ति-ज्ञाने शङ्कानिवृत्तये तर्कान्तरस्य एवं तन्मूलभूतव्याप्तिज्ञानेऽप्यपरस्य^(२) अपेक्षणीयत्वादित्याशङ्कते, 'तर्कस्येति, 'व्याप्तिग्रहमूलकत्वेन' व्याप्ति-ग्रहजन्यत्वेन, 'यावदाशङ्कमिति तर्काभावेतरसकलशङ्काकारणं यावत्तावत्कालं, 'तर्कानुसरणात्' यत्तर्कपूर्वं तद्विघटकशङ्कायास्तर्काभावेतरसकलकारणसम्पत्तिस्तत्तर्कपूर्वमेव तर्कान्तराभ्युपगमादिति यावत् । 'यत्र चेति यस्य च तर्कस्य चेत्यर्थः, पूर्वमिति शेषः, 'व्याघातेन' व्याघातादेव तर्काभावातिरिक्तकारणप्रतियोगिकाभा-

(१) निरास्तवत्वादित्येति ख०, ग०, घ० ।

(२) तर्कं प्रति आपाद्यव्याप्यापादकवृत्तानिश्चयत्वेन कारणत्वात् व्यापादके आपाद्यव्याप्तिसंशयनिवृत्त्यर्थं तर्कान्तरं अपेक्षणीयं एवं तत्र तत्रापी-त्यनवस्थेति भावः ।

वादेवेति^(१) यावत्, तच्चातिरिक्तं संशयजनकदोषो वक्ष्यमाणप्रति-
बन्धकाद्यभावश्च, 'शङ्कैव नावतरति' तद्विघटकशङ्कामात्रं नावतरति,
यत्तर्कपूर्वं तद्विघटकशङ्कासामान्याभावस्तर्काभावातिरिक्तकारणप्रति-
योगिकाभावप्रयुक्तो न तु तर्कप्रयुक्त इति तु समुदितार्थः, 'तत्र'
तर्कै, 'तर्कं विनैव व्याप्तिग्रह इति, जनक इति शेषः, तर्कं विनैव
व्याप्तिग्रहस्तत्तर्कजनक इत्यर्थः ।

इति श्रीमथुरानाथतर्कवागीशविरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये
अनुमानाख्यद्वितीयखण्डरहस्ये व्याप्तिग्रहोपायरहस्यं ॥ ० ॥

(१) तर्काभावातिरिक्तं यत् संशयजनकं तदभावादेवेत्यर्थः ।

अथ तर्कः ।

तथाहि धूमे यदि वज्रसमवहिताजन्यत्वे सति
वज्रसमवहिताजन्यः स्यान्नोत्पन्नः स्यादित्यत्र किं

अथ तर्करहस्यं ।

यत्तर्कं विघटकशङ्कासामान्यं तर्काभावातिरिक्तप्रतियोगिकाभा-
वादेव पूर्वं नावतरति तं तर्कमाह, 'तथाहीति, 'धूम इति धूमो
यदि वज्रसमवहितजन्यभिन्नत्वविशिष्ट-वज्रसमवहितजन्यभिन्नत्ववान्
स्यात् उत्पन्नत्वाभाववान् स्यादित्यर्थः, विशिष्टान्तं द्वितीयभिन्नत्व-
विशेषणं । जन्यं हि जगति वस्तुद्वयं वज्रसमवहितजन्यं तत्समव-
हितजन्यं च तत्रायञ्चेदुभयजन्य एव न स्यात्तदा जन्य एव न
स्यादिति भावः ।

ननु नायं वज्रि-धूमव्याप्तिग्रहोपयोगी वज्रिभ्यभिचारित्वापा-
दकतर्कस्यैव तथात्वात् । न चातथात्वेऽपि क्षतिविरह इति वाच्यं ।
तादृशवज्रि-धूमव्याप्तिग्राहकतर्क एव अनवस्थाप्रदर्शनादिति^(१) चेत् ।
न । तस्यापि परम्परया वज्रि-धूमव्याप्तिग्रहोपयोगित्वात्, तथाहि

(१) अनवस्थादानादिति ग० ।

धूमोऽवहरेव भविष्यति कचिद्वहिं विनापि भवि-

धूमो यदि वक्त्रियभिचारौ स्यात् वक्त्रिजन्यो न स्यादिति वक्त्रि-
धूमव्याप्तिग्राहकस्तर्कस्तत्र च वक्त्रिजन्यत्वरूपाद्यव्यतिरेकनिश्चयः^(१)
हेतुः बाधबुद्धेस्तार्किकबुद्धौ^(२) हेतुत्वात् तस्मिंश्चान्वय-व्यतिरेकाभ्यां
प्रत्यक्षतो वक्त्रिजन्यत्वनिर्णये वक्त्रिजन्यत्वशङ्का विरोधिनी संशय-
सामग्रीसम्पादकत्वात्^(३) तच्छङ्काविरोधी चायं तर्क इति, अत्र च
वक्त्रिशून्यत्वदशायां वक्त्रिमद्देशोत्पन्ने घटादौ मूलगैथिल्यवारणाय^(४)
विशिष्टान्तं द्वितीयभिन्नत्वविशेषणं, तत्प्रतियोगिविशेषणत्वे तद्दोष-
तादवस्थ्यात्, वक्त्रिं विनानुत्पद्यमानत्वं तदर्थः,^(५) स्वसमानाधिकरण-
वक्त्रिमदन्यखाव्यवहितपूर्वक्षणकं यद्यत्तदन्यत्वमिति तु निष्कर्षः,
स्वपदमन्यत्वप्रतियोगिपरं, अन्यथा^(६) इदानीन्तनघटादेः सामग्री-

(१) वक्त्रिजन्यत्वाभावरूपापाद्याभावस्य वक्त्रिजन्यत्वात्मकस्य निश्चय इत्यर्थः ।

(२) तार्किकबुद्धौ तर्कात्मकबुद्धौ इत्यर्थः ।

(३) ननु संशयनाशोत्तरं वक्त्रिजन्यत्वनिश्चय इत्यत आह संशयसामग्रीति
संशयस्य संशयसामग्रीसम्पादकत्वादिति तदर्थः तथाच यावत् तर्का-
दिरूपप्रतिबन्धकसमवधानं न भवति तावत् संशयधारैव उत्पत्त्यत-
इति भावः ।

(४) 'मूलं' व्याप्तिः, तस्याः 'गैथिल्यं' व्यभिचारः, तद्वारणायेत्यर्थः ।

(५) 'तदर्थः' सत्यन्तार्थ इत्यर्थः ।

(६) 'अन्यथा' सामानाधिकरण्यानिवेशे ।

यति अहेतुक एव वेत्यस्यत इति शङ्का स्यात् सर्व्वञ्च

कालेऽपि कुत्रचित् देशे वक्त्रिसत्त्वेन मूलशैथिल्यतादवस्थात्
महाप्रलये मानाभावात्^(१) खण्डप्रलयेऽपि ब्रह्माण्डान्तरे वक्त्रि-
सत्त्वात् सामग्रीमात्रस्यैव वज्र्यधिकरणचणवृत्तित्वेनाप्रसिद्धिप्रसङ्गाच्च ।
न तु वज्र्यघटितसामग्र्यजन्यत्वं तत् धूमे प्राक् तदनिश्चयात्
आपाद्याभावेनापादकाभावासाधने विशेष्यविरहप्रकारकसिद्ध्यर्थं त-
न्निश्चयस्यापेक्षितत्वात् । वज्र्यसमवहिताजन्ये वक्त्रिजन्यालोकादौ
मूलशैथिल्यवारणाय विशेष्यदलं । न च चरमसमवहितपदं व्यर्थं
वक्त्रिजन्यत्वाभावस्यैव सम्यक्त्वादिति वाच्यं । वज्र्यजन्ये वक्त्रिसमव-
धाननियतोत्पत्तिके घटादिविशेषे मूलशैथिल्यापत्तेः । वक्त्रिसमव-
हितजन्यत्वञ्च वक्त्रिकालीनसामग्रीजन्यत्वं स्वसमानाधिकरणवक्त्रि-
मत्स्वाव्यवहितपूर्वचणकत्वं इति तु निष्कर्षः । अन्यथा इदानी-
न्तनजन्यमात्रस्यैव वज्र्यधिकरणचणवृत्तिसामग्रीजन्यतया पक्षीभूत-
धूमेऽपि^(२) तादृशसामग्रीजन्यत्वनिश्चयसत्त्वेन तर्कवैफल्यपत्तेः । न तु
वक्त्रिघटितसामग्रीजन्यत्वं तत् तथा सति वज्र्यजन्ये वक्त्रिसमवधान-
नियतोत्पत्तिकघटादिविशेषे मूलशैथिल्यापत्तेः । वक्त्रिसमानाधि-
करणत्वे सतीत्यनेन चापाद्यप्रतियोगि विशेषणौच्यन्तेन वक्त्रिव्यधि-

(१) महाप्रलययाज्ञीकारे तु चरमध्वंसे तादृशान्यत्वप्रतियोगित्वं सम्भव-
तीति भावः ।

(२) धूमे तादृशसामग्रीजन्यत्वं वक्त्रिजन्यत्वस्वरूपमेवेत्यभिप्रायः ।

स्वश्रियाध्याघातः स्यात्, यदि हि मृहीतान्दय-व्यति-

करणे वक्लिजन्यरूपादौ वक्लिज्यधिकरणे घटादौ च मूलश्रे-
थित्यं । न च पक्षतावच्छेदकविशिष्टे आयाद्याभावेनापादका-
भावसाधने नियमतो चद्वर्मावच्छिन्नं सिद्ध्यति तद्वर्मावच्छिन्ना-
भावकोटिकसंशयं प्रत्येव तर्को विरोधौति नियमः प्रकृते तु
धूमे उत्पन्नत्वाभावाभावेनोत्पन्नत्वेन वज्रसमवहितजन्यभिन्नत्ववि-
शिष्टवक्लिसमवहितजन्यभिन्नत्वस्यापादकीभूतस्याभावसाधने वक्लिज-
न्यभिन्नत्वाभावरूपस्य विशेष्याभावस्य न सिद्धिः^(१) विशिष्टाभावस्या-
तिरिक्तस्यैव सिद्धेः तथाच कथमस्य वक्लिजन्यत्वाभावकोटिकसंशय-
विरोधित्वमिति वाच्यं । विशिष्टाभावस्य विशेषण-विशेष्याभावान-
तिरिक्ततया वक्लिजन्यभिन्नत्वाभावरूपस्य विशेष्याभावस्य सिद्धेः ।
अथ तथापि न वक्लिजन्यभिन्नत्वाभावत्वरूपेण वक्लिजन्यत्वस्य
सिद्धिरनुमितेर्यापकतावच्छेदकप्रकारकत्वनियमेन विशिष्टाभावत्वेनैव
तत्सिद्धेः । न च विशेषणाभाववाधनिश्चयसहकाराद्व्यापकतानवच्छेद-
केनापि विशेष्याभावत्वेन तत्सिद्धिरिति वाच्यं । तथापि पक्षे विप-
र्ययानुमाने^(२) पूर्वं विशेषणाभाववाधप्रतिसन्धानानावश्यकतया निय-
मतस्तेन रूपेणासिद्धेरिति चेत् । न । वज्रसमवहिताजन्यत्वेन पक्षस्यापि

(१) वक्लिजन्यभिन्नत्वाभावत्वावच्छिन्नवक्लिजन्यत्वस्य न सिद्धिरिति ख०,
ग०, घ० ।

(२) आयाद्याभावेनापादकाभावानुमाने इत्यर्थः ।

रेकं हेतुं विना कार्योत्पत्तिं शङ्केत तदा स्वयमेव

विशेषणीयत्वात् तथाच पक्षतावच्छेदकावच्छिन्ने विपर्ययानुमाने
पूर्वं विशेषणाभावबाधप्रतिसन्धानस्थावश्यकतया नियमतो वक्लि-
जन्यभिन्नत्वाभावत्वरूपेण वक्लिजन्यत्वसिद्धिरप्रत्यूहेति सम्प्रदायविदः ।
तदसत् वक्लिसमवहितजन्यभिन्नत्वस्यैव विशेष्यतया बाधसहकारेण
तदभावत्वेन तदभावस्य वक्लिसमवहितजन्यत्वरूपस्य सिद्धावपि वक्लि-
जन्यभिन्नत्वाभावत्वरूपेण वक्लिजन्यभिन्नत्वाभावस्य वक्लिजन्यत्वरूप-
स्यासिद्धेर्वक्लिजन्यस्यापि वक्लिनान्तरीयकस्य^(१) घटादेः वक्लिसम-
वहितजन्यतया वक्लिसमवहितजन्यत्व-वक्लिजन्यत्वयोरत्यन्तं भेदात्
वक्लिजन्यत्वासिद्धौ च कुतोऽस्य वक्लिजन्यत्वसंग्रयप्रतिबन्धकत्वं । न
च धूमो यदि संयोगसम्बन्धावच्छिन्नोत्पत्तिसम्बन्धेन वक्लिव्यभिचारी
स्यात् वक्लिसमवहितजन्यो न स्यादिति तर्को वक्लि-धूमव्याप्तिग्रहो-
पयोगौ तत्र च बाधनिश्चयविधया वक्लिसमवहितजन्यत्वनिश्चयो
हेतुस्तन्निश्चयविरोधिना वक्लिसमवहितजन्यत्वसंग्रयस्य निवर्तकतयै-
वास्य वक्लि-धूमव्याप्तिग्रहोपयोगित्वसम्बन्धेन वक्लिजन्यत्वसंग्रयाप्रतिब-
न्धकत्वेऽपि न चतिरिति वाच्यं । स्वसमानाधिकरणवक्लिसत्त्वाव्यव-
हितपूर्वचणकत्वरूपस्य वक्लिसमवहितजन्यत्वस्य धूमे निश्चितत्वेन
तत्संग्रयनिवृत्त्यर्थं तर्कवैफल्यात् धूमे तन्निश्चयासत्त्वे तु वक्लान्वय-
व्यतिरेकानुविधायित्वनिश्चयस्य सत्यन्तदलसंग्रयप्रतिबन्धकत्वस्य वक्ष्य-
माणस्यासङ्गतत्वापत्तेः निरुक्तवक्लिसमवहितजन्यत्वस्यैव वक्लान्वय-व्यति-

(१) वक्लिसमवधाननियतोत्पत्तिकस्येत्यर्थः ।

धूमार्थं वहेः तृप्त्यर्थं भोजनस्य परप्रतिपत्त्यर्थं शब्दस्य
चोपादानं नियमतः कथं कुर्यात् ।

रेकानुविधायित्वरूपत्वात् । किञ्च पक्षतावच्छेदकविशिष्टे आपाशा-
भावेनापादकाभावसाधने यद्धर्ममात्रविधेयतावच्छेदकसिद्धिर्भवति
तद्धर्मावच्छिन्नाभावकोटिकसंशयं प्रत्येव तर्का विरोधीत्येव नियमः,
अन्यथा महत्त्व-दीर्घत्वेतरपरिमाणभाववान् घटोयदि परिमाणवान्
स्यात् द्रव्यं न स्यादित्यस्यापि घटो महान्न वेत्यादिसंशयप्रतिबन्धक-
त्वापत्तिः । बाधसहकारेण विपर्ययात्तुमाने महत्त्वत्वावच्छिन्नस्य
दीर्घत्वत्वावच्छिन्नस्य च सिद्धेः, तथाच प्रकृते बाधसहकारेण व्यापक-
तानवच्छेदकीभूतेन विशेष्याभावत्वेन सिद्धावपि न तन्मात्रप्रका-
रेण सिद्धिः व्यापकतावच्छेदकीभूतेन विशिष्टाभावत्वेनापि विशेष-
णभाव-विशेष्याभावयोः सिद्धौ बाधकाभावादिति वक्तृसमवहित-
जन्यत्वसंशयं प्रत्येव कुतोऽस्य प्रतिबन्धकत्वं ।

नव्यास्तु वक्तृसमवहिताजन्यः^१ स्यादित्यत्र वक्तृसमवहितजन्यत्वं
वक्तृजन्यत्वमेव वक्तव्यं, सत्यन्तश्च आपाद्यकोटिप्रतियोगिविशेषणं
वक्तव्यं, तथाच धूमो यदि वक्तृजन्यत्वाभाववान् स्यात् वक्तृसमवहि-
ताजन्यत्वविशिष्टस्योत्पन्नत्वस्याभाववान् स्यादित्याकारकस्तर्कः, अत्र
घटादौ मूलगैथिल्यवारणायापाद्ये विशिष्टान्तं प्रतियोगिविशेषणं
न त्वभावविशेषणं घटादौ मूलगैथिल्यतादवस्थापत्तेः^(१) तदर्थश्च

(१) आपादके आपाद्याभाववृत्तित्वरूपस्य व्यभिचारस्य तादवस्थापत्ते-
रित्यर्थः ।

उक्त एव, न तु वक्त्रिमङ्गिन्नदेशोत्पत्तिकान्यत्वं तत्^(१) वक्त्रिमति
वक्त्रेः पूर्वमुत्पन्ने रासभादौ व्यभिचारापत्तेः । अजन्ये मूलशैथिल्य-
वारणाय विशेष्यं^(२) । न च वक्त्रजन्त्ये वक्त्रिसमवधाननियतोत्पत्तिके
घटादिविशेषे मूलशैथिल्यमिति वाच्यं । उत्पन्नत्वं हि वक्त्रसम-
वहितवक्त्रि-तत्संयोगेतरयावत्कारणाधिकरणक्षणकत्वं, नान्तरीयके
उक्तमूलशैथिल्यवारणाय वक्त्रसमवहितेति क्षणविशेषणं स्वसमाना-
धिकरणवक्त्रिमदन्यत्वं तदर्थः, वक्त्रिनान्तरीयकस्य यावत्कारणा-
धिकरणक्षणस्य न वक्त्रिमदन्यः तथा सति वक्त्रिं विनापि तदुत्प-
त्त्यापत्तेः, न हि यावत्कारणसत्त्वे कार्यविलम्बः, पक्षीभूते धूमे
दृष्टापत्तेः महाप्रलये मानाभावात् खण्डप्रलयेऽपि ब्रह्माण्डान्तरे
वक्त्रिसत्त्वादसिद्धेर्वारणाय स्वसमानाधिकरणेति वक्त्रिविशेषणं, वक्त्र-
समवहिताजन्यत्वविशिष्टस्य वक्त्रसमवहितयावत्कारणाधिकरणक्ष-
णकत्वस्याप्रसिद्धत्वाद्वक्त्रि-तत्संयोगेतरेति यावत्कारणविशेषणं, इत्यञ्च
धूमे एव प्रसिद्धिः, दण्डादियत्किञ्चित्कारणाधिकरणक्षणस्य वक्त्रस-
मवहितत्वान्नान्तरीयकघटविशेषादौ मूलशैथिल्यतादवस्थ्यात् याव-
दिति । न च वक्त्रजन्त्ये वक्त्रभिघातजाततण्डुलादिकर्मणि पाक-
जरूपादिनाशे च व्यभिचार इति वाच्यं । संयोगेन स्वसमानाधि-
करणस्य उत्पन्नत्वघटकवक्त्रसमवहितत्वघटकतया भेदकूटस्थापाद्यस्य

(१) वक्त्रसमवहिताजन्यत्वमित्यर्थः ।

(२) उत्पन्नत्वमिति तदर्थः, वक्त्रसमवहितजन्यभिन्नत्वविशिष्टाभावनि-
वेशे तादृशभिन्नत्वविशिष्टागमनत्वादिकृमादाय व्यभिचारः स्यादत-
उत्पन्नत्वपदमिति भावः ।

तत्रापि सत्त्वात् । ननु तथापि आपाद्यप्रतियोगिनो विशिष्टस्या-
 प्रसिद्धिः धूमावयव-तदुभयसंयोग-धूमप्रागभावघटिततद्धूमीययावत्-
 कारणस्य धूमोत्पत्त्यव्यवहितप्राक्क्षण एव सत्त्वेन तदानीं वक्त्रेरपि
 कारणतया आवश्यकत्वेन धूमीयवक्त्रि-तत्संयोगेतरयावत्कारणा-
 धिकरणक्षणस्यापि वज्रसमवहितत्वाभावादधूमेऽपि विशिष्टप्रसिद्धा-
 सम्भवात्^(१) । न च वक्त्रिविरहेऽपि तदुत्पन्नधूमझणुकानामेव परस्य-
 रसंयोगक्रमेण धूमोत्पादसम्भवात् न तदानीं वक्त्रेरावश्यकत्वं
 धूमनिष्ठजातिविशेषस्यैव वक्त्रि-तत्संयोगजन्यतावच्छेदकतया धूमं
 प्रति तयोर्व्यभिचाराभावान्तथाच तादृशधूम एव प्रसिद्धिरिति
 वाच्यं । तादृशधूमस्य घटादितुल्यतया तत्र सत्यन्तदलाभावेनैव
 विशिष्टप्रसिद्ध्यसम्भवात् । न च यावत्कारणपदेन संयोगसम्बन्धव-
 च्छिन्नस्वनिष्ठजन्यताप्रतियोगिककारणताश्रयो यावान् विवक्षणीयः
 भेदकूटञ्चापाद्यं तथाच धूमे एव प्रसिद्धिरिति वाच्यं । यस्य
 नान्तरीयकस्य घटविशेषादेः संयोगसम्बन्धवच्छिन्नजन्यताप्रतियो-
 गिककारणताश्रयो दण्डादिर्यावान् वज्रनधिकरणकाले वर्तते केव-
 लमवयवसंयोगमात्रं वज्रधिकरण एव काले जातं तादृशनान्तरीयके
 व्यभिचारापत्तिरिति । मैवं । यच्च धूमावयवद्वयोत्पत्तिर्वक्त्रेर्नाशश्चे-
 त्येकः कालः ततो धूमावयवद्वयसंयोगः तदनन्तरं न वक्त्रिजन्य-
 तावच्छेदकाक्रान्तधूमोत्पत्तिः तत्र वक्त्रि-तत्संयोगयोः साक्षात्
 हेतुत्वेन तद्विरहात् अपि तु वज्रान्तरोत्पत्तिस्तत्सत्संयोगोत्पत्ति-

स्ततः पूर्वोत्पन्नधूमावयवद्वयसंयोगाद्वह्निजन्यविलक्षणधूमोत्पत्तिस्त-
त्रैव धूमव्यक्तिविशेषे विशिष्टप्रसिद्धिसम्भवात् धूमावयवद्वयसंयोगो-
त्पत्तिक्षणस्यैव तदीयतादृश्यावत्कारणाधिकरणत्वेन तदानौ वज्र-
भावस्य सत्त्वात् उत्पत्तिप्राकक्षणे च वज्रेः सत्त्वात् । न च तत्रैव
विशिष्टप्रसिद्धौ धूममात्रस्य पक्षत्वात् धूमान्तरे अंगत इष्टापत्ति-
रिति वाच्यं । पक्षतावच्छेदकावच्छेदेनापत्तेरुद्देश्यत्वादिति प्राञ्जरिलि
संचेपः ।

‘अवज्ज्ञेरेवेति न विद्यते वज्रिर्धनेति व्युत्पत्त्या स्वसमानाधिकरण-
वज्रिमङ्गिनात् क्षणादेवेत्यर्थः, अव्यवहितोत्तरत्वं पञ्चम्यर्थः, ‘कचि-
द्वह्निं विनापीति किं धूमः क्वचिदव्यवहितपूर्वं स्वसमानाधिक-
रणवज्रिं विनापि भविष्यतीत्यर्थः, ‘अहेतुक इति किं धूमो
निर्हेतुक एवोत्पत्स्यते इत्यर्थः, ‘इति शङ्का स्यादिति इति शङ्का
विरोधिनी स्यादित्यर्थः । आद्यशङ्काद्वयस्य सम्प्रदायमते निरुक्तवज्र-
समवहिताजन्यत्वरूपपक्षविशेषणाभावविषयकतया तर्कजनकपरामर्श-
विघटकत्वेन तर्कविरोधित्वात् पक्षतावच्छेदकांशेऽनाहार्थपरामर्शस्यैव
तर्कजनकत्वात् । नव्यमते तु निरुक्तवज्रसमवहिताजन्यत्वरूपापाद्य-
प्रतियोगिविशेषणाभावविषयकतया तर्कजनकापाद्यव्यतिरेकनिर्णय-
विघटकत्वेन तर्कविरोधित्वात् । द्वतीयायास्तु सम्प्रदायमते व्याप्यसं-
शयविधया आपाद्याभाववत्तया निश्चिते पक्षे आपादकसंशयात्म-
कानाहार्थव्यभिचारसंशयाधायकतया तर्कविरोधित्वात् । नव्यमते
आश्रये च पक्षे आपाद्यप्रतियोगिकोटिविशेष्यविरोधित्वेन तर्कजन-
कापाद्यव्यतिरेकनिश्चयविघटकतया तर्कविरोधित्वादिति भावः ।

न चाद्ययोः शङ्कयोरभेद इति वाच्यं । प्रथमा धूमत्वावच्छेदेन, द्वितीया धूमत्वसामानाधिकरण्येनेति भेदात् । न चैवं धूमत्वसामानाधिकरण्येन वज्रसमवहिताजन्यत्वसत्त्वेऽपि धूमत्वसामानाधिकरण्येन वज्रसमवहिताजन्यत्वनिश्चये बाधकाभावात् द्वितीयसंशयस्य कुतस्तर्कविरोधित्वमिति वाच्यं । विशेष्यतावच्छेदकसामानाधिकरण्येन बाधनिश्चयस्य विशेष्यतावच्छेदकसामानाधिकरण्येन विशिष्टबुद्ध्यप्रतिबन्धकत्वेऽपि^(१) विशेष्यतावच्छेदकसामानाधिकरण्येन बाधसंशयस्य संशयसामग्रीसम्पादकतया विशेष्यतावच्छेदकसामानाधिकरण्येन विशिष्टनिश्चयं प्रत्यपि प्रतिबन्धकत्वात् । ‘सर्व्वत्रेति षष्ठ्यर्थे सप्तमी सर्व्वस्थाः शङ्काया इत्यर्थः, ‘स्वक्रियाव्याघात इति, ‘स्व’ तर्कप्रयोक्ता पुरुषः^(२) तस्य या ‘क्रिया’ वज्रान्वय-व्यतिरेकानुविधायित्वज्ञानं, क्रियते प्रवर्त्ततेऽनेनेति व्युत्पत्तेः, तेन ‘व्याघातः’ तत्प्रयुक्तोऽनुत्पाद इत्यर्थः, अन्वय-व्यतिरेकाभ्यां प्रत्यक्षतो वज्रजन्यत्वनिश्चय-एवैतत्तर्कस्य सहकारितया वज्रान्वय-व्यतिरेकानुविधायित्वज्ञानस्य अवश्यं पूर्वं सत्त्वादिति भावः । अन्वय-व्यतिरेकानुविधायित्वज्ञानस्य तादृशशङ्कानुत्पादप्रयोजकत्वे मानमाह, ‘यदि हीति, ‘गृहीतान्वयेति तदन्वय-व्यतिरेकानुविधायित्वज्ञानसत्त्वेऽपि तदसमवहितजन्यत्वं सामान्यतोऽहेतुत्वं वा शङ्केतेत्यर्थः, ‘परप्रतिपत्त्यर्थं’ परकी-

(१) अवच्छेदावच्छेदेन विशिष्टबुद्धिं प्रति सामानाधिकरण्येन बाधनिश्चयस्य प्रतिबन्धकत्वमिति भावः

(२) तर्कवत्पुरुष इति क० ।

तेन विनापि तत्सम्भवात् तस्मात्तदुपादानमेव तादृ-

यशाब्दबोधार्थं, 'उपादानं' प्रयत्नः, 'नियमतः' अन्वय-व्यतिरेकाभ्यां प्रत्यक्षेण धूमादिरूपेष्टसाधनतानिश्चयतः, न हि धूमादौ वज्राद्य-समवहितोत्पत्तिकत्वस्याहेतुकत्वस्य वा ग्रहस्य सामग्र्यां सत्यां वज्रादौ धूमादिरूपेष्टसाधनतानिश्चयः सम्भवतीत्याह, 'तेनेति तादृशग्रहसामग्रीसमवधानेनेत्यर्थः, 'विनापि' विनैव, 'तत्सम्भवात्' वज्रादौ धूमादिरूपेष्टसाधनतानिर्णयसम्भवात् । ननु कार्यानुत्पादस्य कारणविरहमात्रप्रयुक्तत्वात् कथं तादृशशङ्कानुत्पादस्य स्वक्रिया-प्रयुक्तत्वमत-आह, 'तस्मादिति, प्रयत्नान्यथानुपपत्त्येति शेषः, 'तदुपादानमेवेति वज्रुपादानमित्यर्थः, उपादानञ्च^(१) उपादत्ते प्रवर्ततेऽनेनेति करणव्युत्पत्त्या प्रवृत्तिप्रयोजकौभूतान्वय-व्यतिरेकानुविधायित्वज्ञानपरं ।

यत्तु भावव्युत्पत्त्या उपादानं प्रवृत्तिः पूर्वमपि स्वक्रियापदं तत्परमिति । तन्न । प्रवृत्तेः शङ्काप्रतिबन्धकत्वे मानाभावात् प्रवृत्तेः कारणताग्रहोत्तरकालीनत्वेन तत्पूर्ववर्त्तिशङ्काप्रतिबन्धकत्वसम्भवाच्च ।

केचित्तु करणव्युत्पत्त्या उपादानपदं धूमादिसाधनतानिश्चयपरं पूर्वमपि स्वक्रियापदं तत्परमित्याहुः । तदसत् । धूमादिसा-

शशङ्काप्रतिबन्धकं शङ्कायां न नियतोपादानं निय-

धनतानिश्चयस्य तर्कोत्तरकालीनत्वेन तत्पूर्ववर्त्तिशङ्काप्रतिबन्धकत्वा-
भावात् ।

तस्य शङ्काप्रतिबन्धकतायामन्वय-व्यतिरेकौ दर्शयति, 'शङ्का-
यामिति, यतः इत्यादि, यतः शङ्कायामुत्पद्यमानायां 'न निय-
तोपादानं' नान्वय-व्यतिरेकानुविधायित्वज्ञानं, 'नियतोपादाने च'
अन्वय-व्यतिरेकानुविधायित्वज्ञाने च, 'न शङ्का' इत्यर्थः, नियतमु-
पादानं यस्येति व्युत्पत्त्या नियतोपादानपदस्यान्वय व्यतिरेकानुविधा-
यित्वज्ञानपरत्वात् । न च वज्रान्वय-व्यतिरेकानुविधायित्वस्य वज्रि-
सत्त्वे उत्पद्यमानत्वे सति वज्रिं विनानुत्पाद्यमानत्वरूपतया निरुक्त-
वज्रसमवहितजन्यत्वाभावघटितत्वेन तन्निश्चयस्य बाधनिश्चयतया
प्रथमसंशयप्रतिबन्धकत्वसम्भवेऽपि विरोध्यविषयकतया कथं द्वितीय-
शङ्काप्रतिबन्धकत्वं कथं वा द्वितीयशङ्काप्रतिबन्धकत्वमपि अंशतो
बाधनिश्चयस्य विश्लेष्यतावच्छेदकसामानाधिकरण्येन संशयाप्रतिब-
न्धकतया बाधनिश्चयविधया द्वितीयशङ्काप्रतिबन्धकत्वासम्भवादिति
वाच्यं । वज्रान्वय-व्यतिरेकानुविधायित्वावच्छेदेन वज्रिजन्यालोकादौ
नान्तरीयवज्रिके घटादौ च वज्रसमवहिताजन्यत्व-सहेतुकत्वनिश्च-
याद्यावर्त्तकधर्मदर्शनविधयैव तस्य तादृशशङ्कायामपि प्रतिबन्धकत्वात् ।
न चांशतोबाधनिश्चयवदंशतो व्यावर्त्तकधर्मदर्शनमपि न विश्ले-
ष्यतावच्छेदकसामानाधिकरण्येन संशयनिवर्त्तकमिति वाच्यं । बाध-
निश्चयस्थले तथा नियमेऽपि व्यावर्त्तकधर्मदर्शनादिस्थले तथा

तोपादाने च न शङ्का, तदिदमुक्तं “तदेव ह्याशङ्कते”,

नियमविरहात् । न चैवं वज्रान्वय-व्यतिरेकानुविधायित्वज्ञानं व्यावर्त्तकधर्मदर्शनविधया वज्रिजन्यत्वसंशयं प्रत्येव प्रतिबन्धकमस्तु किमुक्ततर्कणेति वाच्यं । अनन्यथासिद्धत्वाविशेषितस्य वज्रान्वय-व्यतिरेकानुविधायित्वस्य नान्तरीयकवज्रिके घटादौ वज्रिजन्यत्वव्यभिचारितया^(१) वज्रिजन्यत्वाभावव्यावर्त्तकत्वाभावात् तद्विशेषितस्य^(२) वज्रान्वय-व्यतिरेकानुविधायित्वस्य च वज्रिजन्यत्वानतिरिक्तत्वात् उपायान्तरस्योपायान्तरादूषकत्वाच्च । न च सर्वत्र धूमे वज्रान्वय-व्यतिरेकानुविधायित्वज्ञानविरहाद्यत्र तादृशज्ञानं तत्र वज्रसमवहितजन्यत्वादिसंशयासम्भवेऽपि धूमान्तरे तत्संशये किं बाधकमिति वाच्यं । समानधर्म्नितावच्छेदककव्यावर्त्तकधर्मदर्शनस्यैव प्रतिबन्धकतया धूमत्वरूपेण यत्किञ्चिद्धूमे वज्रान्वय-व्यतिरेकानुविधायित्वज्ञानसत्त्वे धूमान्तरेऽपि तेन रूपेण वज्रसमवहितजन्यत्वसंशयायोगात् गृहीतान्वय-व्यतिरेकधूमव्यक्तिविशेषस्यैव वा धूमत्वरूपेण तर्कं पक्षतया धूमान्तरे तत्संशयेऽपि क्षतिविरहात् । न चैतावता वज्रसमवहितजन्यत्वादिसंशयस्य तर्कंतरप्रतिबन्धकवशान्नितृप्तावपि व्यभिचारसंशयनिवृत्त्यर्थमवश्यं तर्कान्तरापेक्षा पक्षभिन्ने आपाद्याभावविरहेऽपि आपाद्याभावांगे भ्रमात्मकस्य पक्षभिन्ने

(१) सर्वत्र तदव्यभिचारितधर्मस्यैव तदभावव्यावर्त्तकत्वमिति भावः ।

(२) अनन्यथासिद्धत्वविशेषितस्येत्यर्थः ।

यस्मिन्नाशङ्कमाने स्वक्रियाव्याघातो न भवतीति ।
 न हि सम्भवति स्वयं वज्रादिकं धूमादिकार्यार्थं निय-
 मत उपादत्ते तत्कारणं तन्नेत्याशङ्कते चेति । एतेन
 व्याघातो विरोधः स च सहानवस्थाननियम इति
 तत्राप्यनवस्थेति निरस्तं । स्वक्रियाया एव शङ्काप्रति-
 बन्धकत्वात् ।

व्यभिचारसंशयस्य सम्भवादिति वाच्यं । अनायत्या व्यभिचारसंशयं
 प्रत्यपि तत्तदन्वय-व्यतिरेकानुविधायित्वज्ञानव्यक्तेर्विरोध्यविषयकत्वे-
 ऽपि प्रतिबन्धकत्वोपगमात् एवं क्रमेण वज्रिजन्यत्वादिसंशयं प्रत्येव तस्य
 प्रतिबन्धकत्वसम्भवेऽप्युपायान्तरस्योपायान्तरादूषकत्वाच्च तर्कवैयर्थ्यमि-
 ति भावः । खोक्ते प्राचां संवादमाह, 'तदिदमुक्तमिति, 'तदेवे-
 त्यादि 'आशङ्कते' चेत्यन्तं प्राचीनग्रन्थः, 'आशङ्कते' प्रवृत्तिपूर्वं
 शङ्काविषयो भवति, 'आशङ्कमाने' प्रवृत्तिपूर्वं सन्देहविषये सति,
 'स्वक्रियेति, 'स्वक्रियायाः' स्वप्रवृत्तेः, 'व्याघातो न भवति' इत्यर्थः ।
 ननु धूमोऽवज्ज्ञेरेव भविष्यतीत्यादिसंशयेऽपि प्रवृत्तिर्नानुपपन्नेत्यत-
 आह, 'न हीति, 'नियमतः' धूमादिरूपेष्टसाधनतानिर्णयतः, 'उपा-
 दत्ते' प्रयत्नविषयं कुरुते, 'तत्कारणमिति तदव्यवहितपूर्ववर्त्ति तन्ने-
 त्यर्थः, धूमोऽवज्ज्ञेरेव भविष्यतीत्यादिसंशयस्यैव प्रतिबन्धकत्वात्^(१) ।
 'एतेनेति 'निरस्तमित्यनेनान्वयः, 'तत्रापि' तज्ज्ञानेऽपि, स्वक्रियायाः

(१) प्रकृतत्वादिति ख०, ग०, घ० ।

अत एव “व्याघातो यदि शङ्कास्ति न चेच्छङ्का
ततस्तराम् । व्याघातावधिराशङ्का तर्कः शङ्कावधिः
कुतः” ॥ इति खण्डनकारमतमप्यपास्तम् । न हि
व्याघातः शङ्काश्रितः, किन्तु स्वक्रियैव शङ्काप्रतिबन्धि-
केति, न वा विशेषदर्शनात् क्वचित् शङ्कानिवृत्तिरेवं
स्यात् । न चैतादृशतर्कावतारो भूयोदर्शनं विनेति
भूयोदर्शनादरः, न तु स स्वतएव प्रयोजकः । अत एव
तदाहितसंस्कारो न मानान्तरं तर्कस्याप्रमात्वात्, तच्च

व्याघातज्ञानं प्रतिबन्धकमुक्तं, व्याघातश्च विरोधः, विरोधश्च स्वक्रि-
यायास्तादृशसंशयेन सहानवस्थाननियमः^(१), नियमश्च व्याप्तिरेवेति,
तज्ज्ञानेऽपि व्यभिचारशङ्का विरोधिनी, तन्निवृत्तिश्च तर्कान्तरादि-
त्यनवस्थेत्यर्थः । ‘स्वक्रियाया इति स्वस्य क्रिया प्रवृत्तिर्यस्या इति
व्युत्पत्त्या स्वक्रियाप्रयोजकीभूतनियतान्वय-व्यतिरेकानुविधायित्वबु-
द्धेरित्यर्थः । ‘व्याघातोयदीति व्याघातो यद्यस्ति तदा शङ्काप्यवश्यम-
स्तीत्यर्थः, स्वक्रियाप्रवृत्तिशङ्काप्रतियोगिकविरोधरूपस्य व्याघातस्य
प्रतियोगिनीं शङ्कां विना स्थातुमशक्यत्वादित्यभिमानः । ‘न
चेदिति न चेद्वाघातस्तदा, ‘ततः’ प्रतिबन्धकाभावतः, ‘तरां’
सुतरां शङ्केत्यर्थः, ‘व्याघातावधिरिति, तथाचेत्यादि, ‘व्याघा-
तावधिः’ व्याघातनिवृत्त्या व्याघातप्रतिबन्धा, ‘आशङ्का’, ‘तर्कश्च,

(१) नियतसहानवस्थानमिति ख०, ग० ।

प्रत्यक्षव्याप्तिज्ञाने हेतुः तदभावेऽपि शब्दानुमानाभ्यां
तद्ग्रहात् । ननु सहचारदर्शन-व्यभिचारादर्शनव-
द्व्यभिचारशङ्काविरहानुकूलतर्कयोर्ज्ञानं व्यभिचारि-
साधारणमिति न ततोऽपि व्यप्तिनिश्चय इति चेत् । न ।
स्वरूपसत्तारेव तयोर्व्याप्तिग्राहकत्वात् । सत्तर्काद्व्याप्ति-
प्रमा तदाभासात्तदप्रमा विशेषदर्शनसत्यत्वासत्यत्वाभ्यां
पुरुषज्ञानमिव ।

‘शङ्कावधिः’ शङ्कानिवर्त्तकः कुत इत्यर्थः, व्याघातसत्त्वे शङ्कायाः
आवश्यकत्वेन व्याघातस्य शङ्कानिवर्त्तकत्वासम्भवात्, व्याघातस्य
शङ्कानिवर्त्तकत्वाभावे शङ्कया तर्कस्यैवानवतारेण तर्कस्यापि शङ्का-
निवर्त्तकत्वादिति भावः । ‘इत्यपास्तमिति खण्डनकारमत-
मपास्तं, क्वचित्तथैव पाठः । ‘शङ्काश्रितः’ शङ्काप्रतियोगिकः,
प्रतिबन्धक इति शेषः । ‘स्वक्रियैवेति स्वस्य क्रिया प्रवृत्तिर्यस्या-
इति व्युत्पत्त्या स्वक्रियाप्रयोजकीभूतनियतान्वय-व्यतिरेकानुविधा-
यित्वधौरेवेत्यर्थः । शङ्काप्रतियोगिकविरोधस्य प्रतिबन्धकत्वेऽपि
न क्षतिरित्यभिप्रायेणाह, ‘न वेति, ‘विशेषदर्शनात्’ विरो-
धिभूतादर्शनात्, या शङ्कानिवृत्तिः साप्येवं न स्यात् विरोध-
प्रतियोगिनीं शङ्कां विना तद्विरोधाश्रयदर्शनस्य स्थातुमशक्यत्वादित्यर्थः । यदि च विरोधप्रतियोगिनो यदाकदाचित् यत्र कुत्रचित्^(१)

(१) ‘यत्र कुत्रचित्’ इति पाठः घ० पुस्तके नास्ति ।

अपरे तु यत्र तर्को व्याख्यनुभवो मूलं तत्र तर्कान्तरा-
वेक्षा, यत्र तु व्याप्तिस्मरणं हेतुः तत्र न तर्कान्तरा-
वेक्षेति नानवस्था, अस्ति च जातमात्राणामिष्टानिष्ट-
साधनतानुमितिहेतुव्याप्तिस्मरणं, तदानीं व्याख्यनु-
भावकाभावात्, तन्मूलानुभवमूला चाग्रेऽपि व्याप्ति-
स्मरणपरम्यरेति ।

सत्त्वमात्रमपेक्षितं न तु तदा तत्र तदुत्तरं तत्सत्त्वमिति^(१)
विभाव्यते तदा तुल्यं प्रकृतेऽपीति भावः । नन्वेवं व्याप्तिज्ञानं भूयो-
दर्शनादिति सिद्धान्तः कथं संगच्छते^(२) इत्यपेक्षायामाह, 'न चेति,
वक्लि-धूमयोर्भूयःसहचारनिश्चयं विना धूमे वज्रसमवहितसामग्र्य-
जन्यत्वनिश्चयासम्भवात् अयमेव धूमोवक्लिपूर्वक एतदन्यस्तु न, एवं
एतद्धूमद्वयमेव वक्लिपूर्वकं न त्वेतदन्य इत्यादिशङ्कासम्भवादिति
भावः । 'भूयोदर्शनादरः' कदाचित् कुत्रचित्तदुपयोगः, 'न त्विति,
'सः' भूयःसहचारग्रहः, 'स्वत एव' साक्षादेव, 'प्रयोजक इति व्याप्ति-
ग्रहप्रयोजक इत्यर्थः । भूयोदर्शनस्य संस्कारद्वारा व्याप्तिग्राहकत्वे
तदाहितसंस्कारस्य मानान्तरत्वापत्तिः यदसाधारणं सहकार्यासाद्य
मनोवहिर्गोचरां प्रमां जनयति तदेव प्रमाणान्तरमिति पूर्वपक्षोक्तं
दूषयति, 'अत एवेति यत एव भूयोदर्शनजन्यसंस्कारस्तर्क एव

(१) न तु तदुत्तरं तत्र सत्त्वमितीति ग०, घ० ।

(२) संगच्छतामिति ग०, घ० ।

यत्त्वनादिसिद्धकार्य-कारणभावविरोधादिमूलाः
केचित्तर्का इति । तन्न । तत्र प्रमाणानुयोगेऽनुमान-
एव पर्यवसानात् । न च व्याप्तिग्रहान्यथानुपपत्त्यैव
तर्कस्यानादिसिद्धव्याप्तिकत्वज्ञानमिति वाच्यम् । अनु-
पपत्तेरप्यनुमानत्वात् ।

प्रयोजकः न तु व्याप्तिग्रहे अत एवेत्यर्थः, 'अप्रमात्वादिति,
इदमापाततः तर्कस्याप्यंशतः प्रमात्वात् । वस्तुतस्तर्कस्य प्रामात्येऽपि तं
प्रति संस्कारो न जनकः किन्तु प्रयोजक एवेति न प्रमाणान्तरत्व-
मित्येव तत्त्वं । 'तच्चेति व्यभिचारसन्देहाभाववत्त्वच्चेत्यर्थः, 'तदभावे-
ऽपि' व्यभिचारसन्देहाभावाभावेऽपि व्यभिचारसन्देहेऽपीति यावत्,
व्यभिचारसन्देहस्य योग्यतादिसन्देहरूपतया शब्दादिनार्थनिर्णये-
ऽविरोधित्वादिति भावः । भ्रान्तोद्देशयति, 'नन्दिति, 'व्यभि-
चारादर्शनवदिति व्यभिचारनिर्णयाभाववदित्यर्थः^(१), यथा व्यभि-
चारनिश्चयाभाव-सहचारदर्शनं न व्याप्तिग्राहकं अन्यथा यत्र
व्यभिचारसंशयो वर्तते तत्र व्याप्तिग्रहापत्तेः तत्रापि व्यभिचारनिश्च-
याभाव-सहचारदर्शनयोः सत्त्वान्तथा व्यभिचारसंशयाभाव-तर्कयो-
र्ज्ञानं न व्याप्तिग्राहकं शङ्कासत्त्वदशायामपि व्यभिचारशङ्काविरहा-
नुकूलतर्कयोर्ज्ञानसम्भवात् तत्र व्याप्तिग्रहापत्तेरिति^(२) । 'व्यभिचारौति

(१) व्यभिचारानिश्चयवदित्यर्थ इति ग०, घ० ।

(२) यद्येत्यादिः व्याप्तिग्रहापत्तेरितीत्यन्तः पाठः ग० पुस्तके नास्ति ।

अन्ये तु विपक्षबाधकतर्कादनौपाधिकत्वग्रह एव तदधीनो व्याप्तिग्रह इति, तदपि न, तर्कस्याप्रमाणत्वात् । व्यभिचारादिशङ्कानिरासद्वारा प्रत्यक्षादिसहकारी स इति चेत् । न । अनवस्थाभयेन तर्कं विना

सन्दिग्धव्यभिचारीत्यर्थः । ‘व्याप्तिग्राहकत्वात्’ व्याप्तिग्रहे प्रयोजकत्वात् । ननु तथापि व्यभिचारज्ञानविरहानुकूलतर्कयोर्यव्यभिचारिण्यपि सत्त्वात् कथं प्रमा-भ्रमविभाग इत्यत आह, ‘सत्तर्कादिति, यद्यपि तर्कस्य सत्त्वं मूलशैथिल्यादिदोषरहितत्वं, तद्विशिष्टत्वमेव^(१) आभासत्वं तच्च न प्रामाण्याप्रामाण्यप्रयोजकं वस्तुगत्या व्याप्तिमत्त्वे तादृशदोषविशिष्टाद्भूयो यदि वज्जिव्यभिचारी स्यात् प्रथिवौ न स्यादित्यादितर्कादपि प्रमा-भ्रमयोरुत्पादानुत्पादाभ्यां व्यभिचारात् । एवं विशेषदर्शने सत्यत्वासत्यत्वमपि न प्रामाण्यादिप्रयोजकं विषयस्याबाधितत्वेऽसत्यादपि विशेषदर्शनात् प्रमा-भ्रमयोरुत्पादानुत्पादाभ्यां व्यभिचारात् । न च तर्कस्य सत्त्वं वस्तुगत्या व्याप्तिमद्विषयकत्वं, आभासत्वञ्च वस्तुगत्या व्याप्यभाववद्विषयकत्वं, एवं विशेषदर्शनस्य सत्यत्वं वस्तुगत्या पुरुषत्ववद्विषयकत्वं, वस्तुगत्या तदभाववद्विषयकत्वञ्चासत्यत्वमिति वाच्यं । तस्यापि स्वतःसिद्धशङ्काविरहस्थले तर्कं विनैव व्याप्तिग्रहेण व्यभिचारान्तस्य प्रमा-भ्रमप्रयोजकत्वासम्भवात् । तथापि ‘सत्तर्कात्’ सत्यव्याप्तिज्ञानात्,

(१) मूलशैथिल्यादिदोषविशिष्टत्वमेवेत्यर्थः ।

व्याघातात् यत्र शङ्काविरहस्तत्र व्याप्तिग्रहे तर्कस्य व्यभिचारात् ।

यत्तु योग्यानामुपाधीनां योग्यानुपलब्ध्याभावग्रहः
अयोग्यानान्तु साध्याव्यापकत्व-साधनव्यापकत्वसाध-

‘तदाभासात्’ तदभावात्, तथाच व्याप्तिप्रमात्वावच्छिन्नं प्रति व्याप्तिप्रमात्वेन हेतुत्वं समानविशेष्यत्वं प्रत्यासत्तिः । व्याप्तिभ्रम-त्वावच्छिन्नं प्रति विशेष्यतासम्बन्धावच्छिन्नव्याप्तिप्रमाविरहत्वेन हेतुत्वं विशेषणताविशेष-विशेष्यताभ्यां सामानाधिकरण्यं प्रत्यासत्तिः । सर्व-त्रान्ततोभगवद्वाप्तिप्रमैव पूर्वं सुलभेति भावः । ‘विशेषदर्शनसत्य-त्वासत्यत्वाभ्यां’ सत्यविशेषणज्ञान-तद्विरहाभ्यां, पुरुषत्वप्रमा-तद्विर-हाभ्यामिति यावत्, ‘पुरुषज्ञानमिव’ पुरुषत्वप्रमा-भ्रम इव, तर्कस्य शङ्कामात्रनिवर्तकत्वाद्यत्र स्वतः सिद्धः शङ्काविरहस्तत्र तर्कं विनैव व्याप्तिग्रहः इति नानवस्थेति स्वयमुक्तं ।

प्राञ्चसु तर्कस्य व्याप्तिग्राहकत्वमभ्युपेत्य प्रकारान्तरेणानवस्थां परिहरन्ति तदेवाह, ‘अपरे त्विति, ‘यत्र तु व्याप्तिस्मरणमिति, व्याप्त्यनुभवं प्रत्येव तर्कस्य हेतुत्वादिति भावः । व्याप्तिस्मरणे तर्का-पेक्षा नास्तीत्यत्र हेतुमाह, ‘अस्ति चेति भवति चेत्यर्थः, ‘चः’ हेतौ, ‘व्याप्तिस्मरणमिति, तर्कं विनैवेति शेषः, ‘व्याप्त्यनुभावकाभावादिति तर्काभावादित्यर्थः, यद्वा ननु जातमात्रस्य व्याप्तिज्ञानं स्मरणमेव न किन्तु अनुभवरूपमित्यत आह, ‘तदानौमिति । ननु तथापि विनानुभवं स्मरणायोगात् जन्मान्तरीणो व्याप्त्यनुभवो हेतुर्वाच्यस्तत्र

नादभावग्रह इत्यनैः पाधिकत्वं सुग्रहमिति । तत्तुच्छम् ।
अनुमानेन तत्साधनेऽनवस्थानात् प्रमाणान्तरस्याभा-
वात् ।

च तर्का हेतुस्तत्र च तर्कं व्याप्यनुभवान्तरं हेतुरिति क्रमेणानवस्था
तदवस्थैवेत्यत आह, 'तन्मूलेति व्याप्तिस्मरणमूलकोयः प्राग्भवो यो
व्याप्यनुभवस्तन्मूलिका, 'अग्रे' भाविजन्मनि, व्याप्तिस्मरणपरम्परेत्यर्थः,
तथाच जन्मान्तरीयव्याप्तिस्मरणमूलीभूतव्याप्यनुभवमूलीभूततर्कं व्या-
प्यनुभवो न हेतुः किन्तु व्याप्तिस्मरणमिति नानवस्था कदाचित्
अन्तरान्तरा व्याप्तिस्मरणेन विच्छेदात् तर्कधाराया अविरललग्नत्वा-
भावादिति प्राचामाशयः । अत्रेदमस्वरसवीजं, न हि कदाचिदन्त-
रान्तराविच्छेद एवानवस्थापरिहारः, किन्तु आत्यन्तिकविच्छेद-
एवेति सकलसम्प्रदायसिद्धमिति ।

कार्य-कारणभावविरोधादीनामनादिप्रसिद्धिविषयत्वनिश्चय एव
कुत्रचित्तर्कं संशयनिवर्त्तक इति केचिद्वदन्ति तन्मतमाशङ्क्य
निराकरोति, 'यत्त्विति, 'अनादिसिद्धेति कार्यकारणभावविरो-
धादीनां विशेषणं, तथाच 'अनादित्वेन अनादिप्रसिद्धिविषयत्वेन,
'सिद्धाः' निश्चिताः, कार्य-कारणभावादयः क्वचित्तर्कं संशयनिवर्त्तका
इति नानवस्थेत्यर्थः, यथाश्रुते कार्य-कारणभावे विरोधे चाना-
दित्वस्य दुर्वचत्वात्, 'आदिना व्याप्तिपरिग्रहः । 'तत्रेति कार्य-कार-
णभावादीनामनादिप्रसिद्धिविषयत्वे इत्यर्थः, 'प्रमाणानुयोगे' प्रमा-

ये चानुकूलतर्कं विनैव सहचारादिदर्शनमात्रेण व्याप्तिग्रहं वदन्ति, तेषां पक्षेतरत्वस्य साध्यव्यापकत्व-

णप्रश्ने^(१), 'अनुमान एवेति प्रत्यक्षस्य तत्रासम्भवादित्यर्थः, तथाच तत्राप्यनुमाने तर्कापेक्षावश्यकीत्यनवस्था तदवस्थेति भावः। व्याप्ति-
ग्राहकतर्कमूलभूतव्याप्तिग्रहो न तर्कान्तरादपि तु व्याप्तिग्रहान्यथा-
नुपपत्तिग्रहादेव इत्याह, 'न चेति, 'अनुमानत्वात्' व्याप्तिनिश्चया-
धीनप्रवृत्तिकत्वात्, यथाश्रुतासङ्गतेः परैरर्थापत्तेरनुमानत्वानभ्युप-
गमात्, तथाच तत्रापि तर्कापेक्षावश्यकीत्यनवस्था तदवस्थैवेति
भावः।

तदेवं व्यभिचारादर्शनसहकृतं सहचारज्ञानं व्याप्तिग्राहकं तर्कः
शङ्कानुत्पत्तौ प्रयोजक इति व्यवस्थाप्य तर्कादनौपाधिकत्वग्रहस्त-
तदुभाभ्यां मिलित्वा व्याप्तिग्रह इत्येकदेशिमतमाशङ्क्य दूषयति,
'अन्ये त्वेति, 'तदधीन इति तयोरधीन इत्यर्थः। अनौपाधिकत्वग्रहे
व्याप्तिग्रहे च तर्कः स्वतन्त्रो हेतुः, प्रमाणसहकारी वा, नाद्य-
इत्याह, 'तर्कस्येति तथाच प्रमाणस्य स्वतन्त्रतया जनकत्वनियमेन
तर्कस्य प्रमाणत्वासम्भवात् जनकत्वाभाव इत्यर्थः, द्वितीयमाशङ्कते,
'व्यभिचारादीति, आदिपदादुपाधिपरिग्रहः। 'व्याघातात्' तर्का-
भावातिरिक्तकारणान्तराभावात्, 'विरहः' अनुत्पादः। 'व्याप्तिग्रहे'
अनौपाधिकत्वग्रहे।

(१) 'प्रमाणानुयोगे' प्रमाणप्रश्ने, इत्यर्थं पाठः ख०, ग०, घ० पुस्तकेषु
नास्ति।

ग्रहेऽनुमानमात्रमुच्छिद्येत, अनुमानमात्रोच्छेदकत्वा-
देव पक्षेतरा नोपाधिरिति चेत्, भ्रान्तोऽसि, न हि
वयमुपाधित्वेन तस्य दोषत्वमाचक्ष्महे, साध्यव्यापकत्वेन
तद्व्यतिरेकात् पक्षे साध्यव्यावर्तकतया व्यापकव्यतिरेके
व्याप्यव्यतिरेकस्य वज्रलेपाच्च । अपि च कर-वह्नि-सं-
योगः शक्त्यतिरिक्तातीन्द्रियधर्तृसमवायी जनकत्वा-

अनौपाधिकत्वज्ञानं व्याप्तिधीजनकं तन्मतमाशङ्क्य निराकरोति,
'यत्त्विति, 'साधनादिति अनुमानादित्यर्थः, 'अनौपाधिकत्वं सुगृह-
मिति, तथाच तर्काहेतुकमेवानौपाधिकत्वज्ञानं व्याप्तिधीहेतुरिति
भावः । 'अनवस्थानादिति तदनुमानमूलीभूतव्याप्तिज्ञानेऽप्यनौपा-
धिकत्वनिश्चयस्य हेतुत्वादिति भावः ।

व्याप्तिग्रहे परम्परयापि कुत्रचिन्न तर्कापयोग इति मीमांसकैक-
देशिमतं निराचष्टे, 'ये चेति, व्यभिचारसंशयस्य तत्सामग्र्याश्चा-
प्रतिबन्धकत्वादिति शेषः । 'अनुकूलेति व्यभिचारशङ्कानुत्पादानु-
कूलेत्यर्थः, 'सहचारादीत्यादिना सम्बन्धिनः साध्यादेः परिग्रहः,
'व्याप्तिग्रहं' सर्वत्र व्याप्तिनिश्चयं, 'साध्यव्यापकत्वग्रहे' साध्यव्यापकत्व-
निश्चये, 'अनुमानमात्रमिति सन्दिग्धसाध्यपक्षकानुमानमात्रमुच्छि-
द्येत्यर्थः, यथाश्रुते निर्णीतसाध्यके व्यभिचारनिश्चयसत्त्वेन पक्षेतरत्वस्य
साध्यव्यापकत्वनिश्चयासम्भवाद्दुर्मातृमात्रोच्छेदाभावात् । अस्माकन्तु
पक्षे साध्यस्य संशयसत्त्वे साधे पक्षेतरत्वव्यभिचारसंशयत्वादनुकूल-
तर्कं विना न साध्यव्यापकत्वनिश्चयसम्भव इति भावः । 'अनुमान-

दित्यथाप्रयोजकत्वान्न साधकं तत्र व्याप्तस्य पक्षधर्मत्व-
क्विसप्रयोजकं नाम तस्माद्विपक्षवाधकतर्काभा-
वान्न तत्र व्याप्तिग्रह इत्यप्रयोजकत्वमिति ।

इति श्रीमद्भणेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ
अनुमानखण्डे तर्कनिरूपणं ।

मात्रेति तादृशानुमानमात्रोच्चेदकत्वज्ञानलक्षणप्रतिकूलतर्कादित्यर्थः,
'भोपाधिः' न स्वव्यभिचारेण साध्यव्यभिचारोन्नायकः, 'उपाधित्वेनेति
व्यभिचारोन्नायकत्वेनेत्यर्थः । 'साध्यव्यापकत्वेन' तन्निश्चयेन, 'व्यापक-
व्यतिरेके' व्यापकव्यतिरेकज्ञाने, 'व्याप्यव्यतिरेकस्य' व्याप्यव्यतिरेक-
ज्ञानस्य । ननु तादृशानुमानमात्रोच्चेदकत्वज्ञानमेव तत्र साध्य-
व्यापकताज्ञानविरोधीत्यस्वरसादाह, 'अपि चेति, 'शक्त्यतिरिक्तेति ।
न चास्मन्मते साध्याप्रसिद्धिः, पररीत्यैव परं प्रत्यभिधानात्, स्वमते
तु शक्त्यतिरिक्तत्ववहिर्भावेन साध्यं बोध्यं, 'न साधकं' न लिङ्गं,
'व्याप्तस्य' व्याप्यत्वेन निश्चितस्य, 'पक्षधर्मत्वे' पक्षधर्मत्वनिर्णये, 'न
तत्रेति व्यभिचारसंशयसामग्रीसत्त्वेन न तत्र व्याप्तिनिश्चय इत्यर्थः ।

इति श्रीमथुरानाथ-तर्कवागीशविरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये
अनुमानाख्यद्वितीयखण्डरहस्ये तर्करहस्यं ।

अथ व्याख्यनुगमः ।

उक्तव्याप्तिप्रकारेष्वन्योन्याभावगर्भेव व्याप्तिरनु-
मितिहेतुर्लाघवात् । अतो नाननुगमः ।

अथ व्याख्यनुगमरहस्यं ।

ननूक्तव्याप्तीनां ज्ञानसमुच्चयो न हेतुरसम्भवात् न प्रत्येकं अन-
नुगमात् कस्यचिदेव ज्ञानं तथेत्यत्र तु विनिगमकाभाव इत्यत आह,
'उक्तेति, 'अनुमितिहेतुरिति ज्ञानविषयतयाऽनुमितिहेतुतावच्छे-
दिका इत्यर्थः, 'लाघवादिति प्रतियोगितावच्छेदकतावच्छेदकसम्बन्धेन
यत्प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नं प्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धेन तद्व-
द्विषयस्य हेत्वधिकरणविशेषणत्वेनात्यन्ताभावगर्भमपेक्ष्यापि लाघ-
वादित्यर्थः । अथ अन्योन्याभावगर्भलक्षणेऽपि प्रतियोगितावच्छेदका-
सम्बन्धेन प्रतियोगिमद्विन्नत्वं हेत्वधिकरणविशेषणमावश्यकमन्यथा
संयोगादिमदन्योन्याभावस्याव्याप्यवृत्तितानये संयोगी द्रव्यत्वादित्य-
व्याप्यवृत्तिसाध्यकेऽव्याप्तेः, अन्योन्याभावस्य व्याप्यवृत्तितानियमनयेऽपि
संयोगादिमद्वेदस्याव्याप्यवृत्तिताभ्रमेण हेतुसामानाधिकरणभ्रमेण
तत्रानुमित्यनुत्यादापत्तेः, तथाच क लाघवं । न चान्योन्याभाव-
गर्भलक्षणे हेत्वधिकरणवृत्तित्वमेव निरवच्छिन्नत्वेन विशेषणीयं न

तु यथोक्तप्रतियोगिमद्विन्नत्वेन हेत्वधिकरणमतोलाघवमिति वाच्यं ।
तथा सत्यत्यन्ताभावगर्भलक्षणेऽपि तथैव सुवचतया तत्रापि गौर-
वाभावादिति चेत् । न । अन्योन्याभावगर्भलक्षणे तादृशप्रतियो-
गिमद्विन्नत्वेन हेत्वधिकरणविशेषणेऽपि प्रतियोगितावच्छेदकताव-
च्छेदकसम्बन्ध प्रतियोगितावच्छेदकयोरप्रवेशादेव लाघवात् । वस्तु-
तोऽन्योन्याभावगर्भलक्षणे प्रतियोगिभिन्नत्वं हेत्वधिकरणस्य प्रतियो-
ग्यनिरूपितत्वं वा हेत्वधिकरणवृत्तित्वस्य विशेषणं न तु यथोक्तं
गौरवात्तथाचात्यन्ताभावगर्भमपेक्ष्यातीव लाघवमिति भावः ।

अत्र नव्याः अन्योन्याभावगर्भव्यापकताघटितव्याप्तिज्ञानमपि
नानुमितिहेतुः, किन्तु साध्याभाववदवृत्तित्वरूपव्याप्तिज्ञानमेवानु-
मितिहेतुरिति लाघवात्^(१) । तत्परिष्कारस्तु प्रागेवाभिहितः,^(२)
केवलान्वयिनि भ्रमरूपव्याप्तिज्ञानादेव सर्व्वदानुमितिः, सद्भूतौ
भ्रमभिन्नव्याप्तिज्ञानादेवानुमिति रिति नियमे च मानाभावः, भ्रम-
जनकदोषरहितस्य केवलान्वयानुमिति रप्रसिद्धैव । एवं द्रव्यं विशि-
ष्टसत्त्वादित्यादावपि भ्रमरूपव्याप्तिज्ञानादेवानुमितिः^(३) । न च

(१) 'लाघवात्' साधनभेदेन कार्य-कारणभावभेदाकल्पनरूपलाघवादि-
त्यर्थः ।

(२) व्याप्तिपक्षकरहस्येऽभिहित इत्यर्थः ।

(३) विशिष्टसत्त्वस्य सत्त्वानतिरिक्ततया विशिष्टसत्त्वे द्रव्यत्वाभाववदव-
त्तित्वरूपव्याप्तिमावात् तत्र तादृशव्याप्तिज्ञानं भ्रमरूपमेवेति । न
च साध्याभावाधिकरणवृत्तितानवच्छेदकहेतुतावच्छेदकवत्त्वमेव व्या-
प्तिः तथाच विशिष्टसत्त्वे द्रव्यत्वाभावाधिकरणवृत्तित्वेऽपि विशिष्ट-

साध्याभाववदवृत्तित्वज्ञानस्यैव सर्वत्रानुमितिहेतुत्वे पृथिव्यामितर-
भेदः हृदे धूमाभाव इत्याद्यप्रसिद्धसाध्यकानुमितिर्न स्यात् साध्य-
स्याप्रसिद्धा तदभाववदवृत्तित्वज्ञानस्यासम्भवादिति वाच्यं । तच्च
पृथिवीतरत्व-धूमादेरेव साध्याभावतया पृथिवीतरत्ववदवृत्तित्व-धूम-
वदवृत्तित्वज्ञानस्यैवानुमितिहेतुत्वात् अन्यथा तवापि साध्यस्याप्रसिद्ध्या
साध्याभावव्यापकीभूताभावप्रतियोगित्वरूपव्यतिरेकव्याप्यादिज्ञानस्य
तच्चासम्भवात् । ननु साध्याभाववदवृत्तित्वज्ञानस्यैवानुमितिहेतुत्वे
वाच्यत्वादौ वज्रादौ वा केवलान्वयित्वग्रहदशायामनुमितिर्न स्यात्
विशेषदर्शनसत्त्वेन अभावे साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नसाध्यतावच्छे-
दकावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वसम्बन्धेन साध्यवत्त्वज्ञानासम्भवात् व्याप-
कसामानाधिकरणरूपव्याप्तिज्ञानस्य हेतुत्वे तु तदानीमप्यनुमित्यु-
त्पादात् । न च केवलान्वयित्वग्रहो न तावत् साध्याभाववाच-
भाव इत्याकारकोऽभावत्वावच्छेदेन साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रति-
योगिताकत्वसम्बन्धावच्छिन्नस्य साध्याभावस्य निश्चयः तादृशनिश्चयश्च
निर्वर्जितः पर्वतोवर्जिमान् इत्यादिज्ञानवदाहार्यभ्रमरूपत्वेनाप्रति-
वन्धकत्वात्^(१) । नापि तादृशकारकोऽभावत्वसामानाधिकरण्येन

सत्तात्वे त्रयत्वाभावाधिकरणवृत्तित्वानवच्छेदकत्वस्य सत्त्वेन तच्च तादृ-
शव्याप्तिज्ञानस्य कथं भ्रमत्वमिति वाच्यं । व्याप्तेः हेतुतावच्छेदकघटि-
तत्वे साधनभेदेन कार्य-कारणभावभेदाकल्पनरूपलाघवासम्भवादि-
ति हृदयं ।

(१) अभावः साध्याभाववान् इत्याकारकाभावत्वावच्छेदेन साध्यतावच्छेद-
कावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वसम्बन्धावच्छिन्नसाध्याभाववगादिज्ञाने

साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावे साध्यतावच्छेद-
कावच्छिन्नप्रतिधोगिताकत्वसम्बन्धावच्छिन्नसाध्याभावस्य निययः, त-
त्सत्त्वेऽपि अभावत्वसामानाधिकरण्येनाभावे साध्यतावच्छेदकसम्बन्धा-
वच्छिन्न-साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वसम्बन्धेन साध्यप्र-
कारकस्य साध्याभाववदवृत्तित्वज्ञानस्योत्पत्तौ बाधकाभावात् अंगतो
बाधस्य विशेष्यतावच्छेदकसामानाधिकरण्येन विशेषणसिद्धाविरो-
धित्वादिति वाच्यम् । साध्यात्यन्ताभाववानभाव इत्याकारक-
स्याभावत्वावच्छेदेनाभावे तादृशसम्बन्धावच्छिन्नसाध्यात्यन्ताभावनि-
श्चयरूपस्य साध्यवद्विज्ञोऽभाव इत्याकारकस्याभावत्वावच्छेदेनाभावे
साध्यवदन्योन्याभावनिश्चयरूपस्य वा केवलान्वयित्वग्रहस्यानाहार्य-
स्यापि सम्भवात्^(१) अत्यन्ताभावत्वान्योन्याभावत्वादेरखण्डधर्मविशेष-
रूपत्वेनाभावत्वाघटितत्वात्^(२) वाच्यत्वाभाववान् अभाव इत्याकारक-
स्याभावत्वावच्छेदेन वाच्यत्वत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वसम्बन्धावच्छि-
न्न-प्रतियोगिताकवाच्यत्वाभाववत्त्वज्ञानस्यानाहार्यस्यासम्भवेऽपि तादृ-
शाकारकस्याभावत्वावच्छेदेन स्वरूपसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वस-

विशेषणीभूतसाध्याभावकोटौ अभावांशे साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्र-
तियोगिताकत्वसम्बन्धेन साध्यस्य नियमतोभानात् तादृशज्ञानस्य
विरुद्धोभयप्रकारकत्वरूपमाहार्यत्वमिति तात्पर्यम् ।

(१) समानधर्म्नितावच्छेदकज्ञानस्यैव विरोधित्वादिति भावः ।

(२) अन्यथा अत्यन्ताभावत्वस्य सदातनसंसर्गाभावत्वरूपत्वे अन्योन्याभावत्व-
स्य तादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावत्वरूपत्वे अभावत्व-
घटितत्वेन पुनरुद्दोषतादवस्थां स्यादिति भावः ।

सम्भावच्छिन्नप्रतियोगिताकवाच्यत्वाभाववत्ताज्ञानस्थानाहार्यस्यापि^(१)
सम्भावश्चेति चेत् । न । तादृशकेवलान्वयित्वग्रहदशायामनुमितेर-
प्रसिद्धेः अन्योन्याभावत्वावच्छेदेन हेतुसामानाधिकरण्याभावग्रहद-
शायामनुमित्यनुत्पादस्य त्वयापि वाच्यत्वेन कस्यचित् फलस्वा-
पलापस्याविशेषात् । वस्तुतस्तु साध्याभाववदवृत्तित्वरूपध्याप्तिज्ञानहे-
तुतायामभावत्वं न निविश्यते गौरवात् प्रयोजनाभावाच्च किन्तु
साध्योपवदवृत्तित्वज्ञानमेव हेतुः, तच्च यथोक्तकेवलान्वयित्वग्रहदश-
ायामपि सम्भवति साध्यांशे निर्धर्मितावच्छेदकत्वात् ।

ननु तथापि साध्याभाववदवृत्तित्वज्ञानस्यैवानुमितिहेतुत्वे घटो-
द्रव्यमित्यादिरूपा स्वरूपतो द्रव्यत्वादिविधेयकानुमितिः कदा-
चिदपि न स्यात् साध्याभाववदवृत्तित्वस्य द्रव्यत्वत्वादिरूपसाध्यता-
वच्छेदकघटितत्वेन द्रव्यत्वत्वाद्यवच्छिन्नविधेयकानुमितित्वस्यैव तदुद्धेः
कार्यतावच्छेदकत्वात्, अन्यथातिप्रसङ्गात्, द्रव्यत्वत्वाद्यतिरिक्तानव-
च्छिन्नद्रव्यत्वादिविधेयताकानुमितित्वस्य कार्यतावच्छेदकत्वे द्रव्यत्वा-
द्यनुमितेर्नियमतो द्विविधविषयताकत्वप्रसङ्गात्^(२) । न च येन

(१) तथाच व्याप्तिबुद्धौ स्वरूपसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिकत्वविशिष्ट-
वाच्यत्वत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वस्याप्रसिद्धा स्वरूपसम्बन्धावच्छिन्न-
प्रतियोगिताकत्वेन वाच्यत्वत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वेन च सम्बन्धेना-
भावांशे वाच्यत्वस्य प्रकारत्वात् एतादृशकेवलान्वयित्वग्रहस्य प्रति-
बन्धकत्वमिति भावः ।

(२) साध्याभाववदवृत्तित्वज्ञानस्यैवानुमितिहेतुत्वे द्रव्यं पृथिवीत्वादित्या-
दौ स्वरूपतो घटोद्द्रव्यं इत्याकारकानुमितेरनुपपत्तिः व्याप्तिबुद्धौ

साध्याभाववदवृत्तित्वरूपव्याप्तिग्रहे साध्यतावच्छेदकद्रव्यत्वत्वाद्यवच्छि-
न्नप्रतियोगिताकत्वसम्बन्धेन साध्यस्य द्रव्यत्वादेः स्वरूपतोऽभावे प्रका-
रकत्वं तत्र स्वरूपतोद्रव्यत्वादिविधेयकानुमितिर्यत्र च तद्ग्रहे
तादृशसम्बन्धेन द्रव्यत्वत्वादिरूपेण साध्यस्य द्रव्यत्वादेः प्रकारकत्वं
तत्र द्रव्यत्वत्वाद्यवच्छिन्नविधेयिकेति कार्य-कारणभावभेदात् न
नियमतो द्विविधविषयकत्वमिति वाच्यम् । अभावप्रत्ययो हि
प्रतियोगिनि तद्गुणवैशिष्ट्यमवगाहमान एव तद्गुणस्यावच्छेदकत्वमव-

यद्रूपेण साध्यमभावे भासते तद्रूपेण साध्यानुमितिरिति नियमात्,
अन्यथा अभावांशे द्रव्यत्वत्वेन द्रव्यत्वावगाहिव्याप्तिपुद्गे घटोजातिमा-
नित्याकारकजातित्वप्रकारकद्रव्यत्वानुमित्यापत्तिः इत्याशङ्क्य समाधत्ते
द्रव्यत्वत्वाद्यतिरिक्तेत्यादिना । तथाच द्रव्यत्वत्वाद्यतिरिक्तधर्मानव-
च्छिन्नद्रव्यत्वादिनिष्ठविधेयताकानुमितित्वं तत्कार्यतावच्छेदकमिति
समाधानं । अत्र तादृशविधेयतायामनवच्छिन्नान्तविशेषणानुपादाने
जातित्वेन द्रव्यत्वानुमित्यापत्तिः । एवं द्रव्यत्वनिष्ठत्वानुपादाने सत्ता-
साध्यकघटः सन् इत्याकारकानुमित्यापत्तिरतस्तत्र उभयोपादानं ।
अत्रेयमनुपपत्तिः, तथा हि द्रव्यत्वत्वेन घटत्वाद्यनुमित्यसम्भवः तादृ-
शममानुमितेः द्रव्यत्वनिष्ठविधेयताकत्वासम्भवात् । अत्रेदं समाधानं
द्रव्यत्वत्वाद्यतिरिक्तधर्मानवच्छिन्नद्रव्यत्वादिनिष्ठविधेयताकानुमिति-
त्वपदेन किञ्चिद्धर्मानवच्छिन्नद्रव्यत्वावृत्तिविधेयताभिन्नद्रव्यत्वत्वाद्यति-
रिक्तधर्मानवच्छिन्नद्रव्यत्वादिनिष्ठविधेयताकानुमितित्वस्य विवक्षितत्वे
अथ वा निरवच्छिन्नत्वविशिष्टद्रव्यत्वावृत्तित्व-द्रव्यत्वत्वानवच्छिन्नत्वो-
भयाभाववद्विधेयताकानुमितित्वस्य विवक्षितत्वे न काप्यनुपपत्तिरिति
विभावनीयं ।

अनौपाधिकत्वं तु तल्लक्षणं । नन्वेवमुपाधिरसिद्ध्युप-
जीव्यत्वेन व्यभिचारवत् हेत्वाभासान्तरं स्यात् न तु
व्याप्त्यभावत्वेनासिद्धिरिति चेत्, तज्ज्ञानमुपजीव्यमपि

गाह्यते न तु तदनवगाह्येति नियमात् द्रव्यत्वत्वाद्यवच्छिन्नप्रतियो-
गिताकत्वसम्बन्धेन स्वरूपतो द्रव्यत्वादेरभावे प्रकारत्वासम्भवादिति
चेत् । न । स्वरूपतो द्रव्यत्वादिविधेयकानुमितेरसिद्धेः अभाव-
प्रतयोद्दीत्यादिनियमस्यैव वा असिद्धेः । यदि च तादृशानुमि-
तिरपि प्रामाणिकी तन्नियमोऽपि च प्रामाणिकः तदान्यत्र साध्या-
भाववदवृत्तित्वज्ञानमेव हेतुस्तादृशानुमितौ च द्रव्यान्यावृत्तित्वादि-
रूपव्याप्तिज्ञानं हेतुरिति^(१) प्राहुः ।

ननु अन्योन्याभावगर्भव्याप्तिज्ञानस्यैवानुमितिहेतुत्वेऽनौपाधिक-
त्वज्ञानं अनुमितिजनकं इति प्रामाणिकप्रवादः कथमत आह,^(२)
'अनौपाधिकत्वमिति, 'तल्लक्षणमिति लिङ्गविधया अन्योन्याभावगर्भ-
व्याप्तिज्ञापकमित्यर्थः, तथाच प्रामाणिकप्रवादे जनकपदं^(३) प्रयोज-
कपरमिति भावः ।

(१) तथाच अभावांशे द्रव्यत्वत्वेन द्रव्यत्वावगाहिद्रव्यत्वाभाववदवृत्तित्व-
रूपव्याप्तिज्ञानस्य कार्यतावच्छेदकं द्रव्यत्वत्वावच्छिन्नविधेयताकानुमि-
तित्वं, भेदांशे स्वरूपतो द्रव्यत्वेन द्रव्यावगाहिद्रव्यान्यावृत्तित्वरूपव्या-
प्तिज्ञानस्य कार्यतावच्छेदकं स्वरूपतो द्रव्यत्वविधेयताकानुमितित्व-
मिति न नियमतोऽनुमितेर्द्विविधविषयकत्वमिति तात्पर्यं ।

(२) अनुमितिहेतुरिति प्रामाणिकप्रवादविरोध इत्यत आह इति ग० ।

(३) हेतुपदमिति ग० ।

न स्वतोदूषकं । न ह्यन्यस्य साध्यव्यापकत्व-साधनाव्याप-
कत्वज्ञानमन्यस्य साध्यव्याप्यत्वज्ञाने प्रतिबन्धकमतिप्र-
सक्तेः, व्यभिचाराज्ञानस्य तद्धेतुत्वात्, तद्धीस्तथा । न

ननु यद्यप्यनौपाधिकत्वं व्याप्तिज्ञानविषयतया अनुमितिकारण-
तावच्छेदकं स्यात्तदा तदभाव उपाधिरसिद्धावेव प्रविशेत् अनुमि-
तिजनकतावच्छेदकव्याप्तेरभावस्यैव व्याप्यत्वासिद्धत्वात्, यदि नैवं तदा
उपाधिर्हेत्वाभासान्तरं स्यादित्याशङ्कते^(१), 'नन्वेवमिति, 'एवं'
अनौपाधिकत्वरूपव्याप्तिज्ञानस्यानुमितेरहेतुत्वे, 'असिद्ध्युपजीव्यत्वेनेति
व्याप्त्यनिश्चयप्रयोजकज्ञानविषयत्वेनेत्यर्थः, इदञ्च हेत्वाभासत्वे हेतुर्न तु
हेत्वाभासान्तरत्वे, 'हेत्वाभासान्तरं स्यात्' व्याप्यत्वासिद्धिभिन्नहेत्वा-
भासः स्यात्, 'व्याप्त्यभावत्वेन' अनुमितिहेतुज्ञानविषयतावच्छेद-
कव्याप्त्यभावत्वेन,^(२) 'असिद्धिः' व्याप्यत्वासिद्धिः, 'उपजीव्यमपीति

(१) ननु यद्यप्यनौपाधिकत्वं लिङ्गविषयतया अनुमितिकारणतावच्छे-
दकं स्यात् तदा तदभाव उपाधिर्याप्यत्वासिद्धिभिन्नहेत्वाभासः स्यात्
अनुमितिजनकतावच्छेदकव्याप्तिनिश्चयप्रयोजकज्ञानविषयत्वेन व्यभि-
चारवत् हेत्वाभासत्वस्यावश्यकत्वात् अनुमितिजनकतावच्छेदकव्याप्ति-
भावत्वाभावेन व्याप्यत्वासिद्धित्वासम्भवात् अनुमितिजनकतावच्छेद-
कव्याप्तेरभावस्य व्याप्यत्वासिद्धित्वनियमात् इत्याशङ्कते, 'नन्वेवमिति,
इति पाठान्तरम् ।

(२) व्याप्तिभावत्वेनेत्यत्र वैशिष्ट्यं तृतीयार्थः, तथाच व्याप्तिभावत्वविशि-
ष्टासिद्धिरित्यर्थः ।

अनौपाधिकत्वज्ञानं व्याप्तिज्ञानहेतुरित्युक्तम् । तथाच व्यभिचारज्ञानद्वारा स दूषकः, एवञ्च परमुखनिरीक्षकतया सिद्धसाधनवन्न पृथक् । न चैवमव्यभिचारस्य व्याप्तित्वे व्यभिचारस्तदभावत्वेनासिद्धिः स्यादिति

परम्परया व्याप्त्यनिर्णयोपजीव्यमपीत्यर्थः, 'स्वतो दूषकमिति अनुमिति-तत्कारणपरामर्शान्यतरं' प्रति साक्षात् प्रतिबन्धकमित्यर्थः, तयोरन्यतरं प्रति साक्षात्प्रतिबन्धकं यज्ज्ञानं तद्विषय एव हेत्वाभास इति भावः । एतदेव स्पष्टयति, 'न ह्यन्यस्येति, 'तद्धेतुत्वात्' व्याप्तिधीहेतुत्वात्, 'तद्धीः' व्यभिचारधीः, 'तथा' स्वतः प्रतिबन्धिका ।

नव्यास्तु नवेवमपि व्यभिचारस्य कथं हेत्वाभासत्वमत आह, 'व्यभिचाराज्ञानस्येति समानधर्मिकव्यभिचारज्ञानाभावस्येत्यर्थः, 'तद्धेतुत्वात्' व्याप्तिधीहेतुत्वात्, व्यभिचारधीः साक्षात् प्रतिबन्धिकेति समुद्दितार्थः इत्याहुः^(१) ।

'अनौपाधिकत्वज्ञानमिति उपाधिभक्तज्ञानाभाव इत्यर्थः, येन उपाधिज्ञानं व्यभिचारज्ञानवत्स्वतः प्रतिबन्धकं स्यादिति भावः । तत् किमुपाधिर्दूषणमेव न इत्यत आह, 'तथाचेति, उपसंहरति, 'एवञ्चेति, 'परमुखनिरीक्षकतयेति अनुमिति-तत्कारणपरामर्शान्यतरप्रतिबन्धकज्ञानाविषयतयेत्यर्थः, 'सिद्धसाधनवदिति पक्षविशे-

(१) नव्यास्त्वित्यादिः आहुरित्यन्तः पाठः क० पुस्तके नास्ति ।

वाच्यम् । साध्याभाववद्दृष्टित्वं हि व्यभिचारः तदभा-
वश्च नाव्यभिचारः केवलान्वयिन्यभावात् । किन्तु
स्वसमानाधिकरणात्यन्ताभावाप्रतियोगिसामानाधि-
करण्यं । न चानयोः परस्परविरहत्वमिति ।

इति श्रीमद्भङ्गेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ
अनुमानखण्डे व्याख्यनुगमरहस्यं, समाप्तश्च व्याप्तिग्र-
होपायः ॥

यक-साध्यनिश्चयवदित्यर्थः, हेत्वाभासत्वाभावेनेति शेषः, 'न पृथक्'
न पृथक्हेत्वाभासः, अन्यथा अनौपाधिकत्वज्ञानस्यानुमितिहेतुत्व-
पक्षेऽप्युपाधेर्हेत्वाभासान्तरत्वस्य दुर्वारत्वात्, अनौपाधिकत्वस्य पारि-
भाषिकस्यैव निर्व्वचनात् उपाधेस्तदभावत्वाभावेन व्याप्यत्वासिद्धाव-
न्तर्भावासम्भवादिति भावः । 'सिद्धसाधनवदिति च हेत्वाभासत्वा-
भावमात्रे दृष्टान्तः, न तु परमुखनिरीचकतायां, तत्र यथोक्तपर-
मुखनिरीचकत्वादिति ध्येयं । 'किन्त्विति, अत्राव्यभिचार इत्यनु-
षङ्गते, 'अनयोरिति साध्याभाववद्दृष्टित्व-स्वसमानाधिकरणाभा-
वाप्रतियोगिसाध्यसामानाधिकरण्ययोरित्यर्थः ।

इति श्रीमथुरानाथ-तर्कवागीशविरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये
अनुमानाख्यद्वितीयखण्डरहस्ये व्याख्यनुगमरहस्यं, समाप्तश्च व्याप्तिग्र-
होपायरहस्यं ।

अथ सामान्यलक्षणा ।

व्याप्तिग्रहश्च सामान्यलक्षणप्रत्यासत्त्या सकलधूमा-

अथ सामान्यलक्षणारहस्यं ।

प्रसङ्गसङ्गत्या^(१) सामान्यलक्षणायाः प्रत्यासत्तित्वं व्यवस्थापयितु-
माह, 'व्याप्तिग्रहश्चेति मत्तानसादौ जायमानो धूमत्वरूपेण वज्रि-
ष्टधूमे वज्रित्वरूपेण सज्जिष्टवज्रेर्वाप्तिसाक्षात्कारश्चेत्यर्थः । 'सामा-
न्यलक्षणप्रत्यासत्त्येति धूमत्व-वज्रित्व-सामानाधिकरणत्वरूपस्यान्य-
लक्षणप्रत्यासत्त्यर्थः, 'सकलधूमादौति, 'आदिपदात् सकलवज्रि-
धूमवृत्तियकलतत्सामानाधिकरणपरिग्रहः, 'कथमन्यथेति, 'अन्यथा'
तस्य सकलधूमाद्यविषयकत्वे, 'पर्वतीयधूम इति पर्वते धूमत्वरूपेण
पर्वतीयधूमवृत्तानिश्चयस्य पर्वतीयधूमे व्याप्तिप्रकारकत्वात्सम्भवेनेत्य-
र्थः, विशिष्टवैशिष्ट्यबुद्धौ विशेषणतावच्छेदकप्रकारकविशेषणनिश्चयस्य
हेतुतया व्याप्तिप्रकारेण पर्वतीयधूमज्ञानं विना पर्वते व्याप्तिवि-

(१) केचित्तु सामानाधिकरणयोरैव व्याप्तिरिति पक्षे पर्वतीयधूमे वज्रि-
व्याप्तिविशिष्टधीर्न पर्वतीयवज्रिव्याप्तिग्रहं विना स च न सामान्य-
लक्षणां विनेति कथितव्याप्तिविशिष्टत्वादिकक्षयोपोद्घातोऽपीत्याह-
रिति दीधितिकृतः ।

दिविषयकः, कथमन्यथा पर्वतीयधूमे व्याप्यग्रहे तस्मा-

शिष्टपर्वतीयधूमवैशिष्ट्यज्ञानासम्भवादिति भावः । 'तस्मादनुमिति-
रिति पर्वते धूमत्वरूपेण तद्वत्त्वानश्रयादनुमितिरित्यर्थः, व्याप्तिवि-
शिष्टवैशिष्ट्यावगाहिनिश्चयस्यैव लाघवादनुमितिहेतुत्वादिति भावः ।
ननु सा किं संयोगादिलक्षणाषोढाप्रत्यासत्त्यन्तर्गता तदतिरिक्ता
वेत्यत आह, 'सा चेति, 'इन्द्रियसम्बद्धेति स्वजन्यज्ञानप्रकारत्वरूपे-
न्द्रियसम्बन्धाश्रयस्य सामान्यस्य व्यक्तिषु धर्मिताख्यस्वरूपसम्बन्धरू-
पेत्यर्थः, स्वमिन्द्रियं, तथाच सामान्यं लक्षणं निरूपकं यस्या इति
व्युत्पत्त्या चचुरादिजन्यज्ञानप्रकारौभूतधूमत्वादि सामान्यनिरूपिता
धर्मिताख्यविशेषणतैव सामान्यलक्षणा, सा चाभावादिग्राहकचचुः-
संयुक्ताविशेषणतादिवद्विशेषणताप्रत्यासत्त्यन्तर्गतैव । न चैवं धूम-
त्वादिप्रकारकशाब्दबोध-सूत्यादितः सकलधूमादिगोचरो मानसो
बोधो न स्यान्ननोजन्यज्ञानविरहादिति वाच्यं । शाब्दादिरपि
मनोजन्यत्वात् । न च तथापि धूमत्वादिप्रकारकशाब्दबोधादितो
निखिलधूमगोचरचाक्षुषादिर्न स्यादिति वाच्यं । इष्टत्वात् प्राचीनैस्त-
त्प्रकारकचाक्षुषादित एव सकलतदाश्रयचाक्षुषाद्युपगमात् इति
भावः । अत्र धूमत्वादि सामान्यनिरूपितधर्मितामात्रस्य प्रत्यासत्तित्वे
धूमत्वादेरज्ञानदशायां निर्विकल्पकतज्ज्ञानदशायां विश्लेष्यतया
तज्ज्ञानदशायाञ्च^(१) तत्प्रकारेण तदाश्रयसकलप्रत्यक्षापत्तिः समवा-
याद्येकसम्बन्धेन धूमत्वादिप्रकारकज्ञानदशायां कालिकादिसम्बन्धेन

(१) प्रमेयमित्याकारकधूमत्वविषयकज्ञानदशायामित्यर्थः ।

दनुमितिः, सा चेन्द्रियसम्बद्धविशेषणता अतिरिक्तैव वा,

सकलतदाश्रयसाक्षात्कारापत्तिश्चातो भूतान्तं सामान्यविशेषणं, एवञ्च यत्सम्बन्धेन तस्य ज्ञाने प्रकारत्वं तत्सम्बन्धावच्छिन्ना तदीया धर्मिता तत्सम्बन्धेन तदाश्रयस्य प्रत्यक्षे हेतुरिति नोक्तातिप्रसङ्गः । एतेन इन्द्रियलौकिकसन्निकर्षाश्रयवृत्तित्वमेवेन्द्रियसम्बन्धोऽभिधीयतां इत्यपि निरस्तं । यथोक्तातिप्रसङ्गानां दुर्वारतापत्तेः धूमादौ धूमत्वादिप्रकारकशाब्दादिज्ञानानन्तरं सकलधूमादिगोचरमानसप्रत्यक्षानुदयापत्तेश्च धूमत्वादेर्मनोलौकिकसन्निकृष्टावृत्तित्वात् चक्षुरादिसन्निकृष्टधूलीपटले धूमत्वभ्रमेण सकलधूमसाक्षात्कारानुदयापत्तेश्च धूमत्वस्येन्द्रियसन्निकृष्टावृत्तित्वात् । धूमत्वादिप्रकारकस्मरणदितोऽपि चक्षुरादिवहिरिन्द्रियजन्यसकलतदाश्रयसाक्षात्कारवारणाय तादृशपरम्पराया इन्द्रियसम्बन्धत्वसम्पादनाय च^(१) चक्षुरादिजन्येति ज्ञानविशेषणं, तच्च न कार्य-कारणभावप्रविष्टं चक्षुरादिवहिरिन्द्रियस्थले चक्षुरादिजन्यत्वनियतचाक्षुषत्वादिजातेर्मनःस्थले तु जन्यज्ञानमात्रस्य मनोजन्यतया ज्ञानत्वमात्रस्य कारणतावच्छेदकघटकत्वात् लाघवात्, तथाच वहिरिन्द्रियस्थले तत्पुरुषीयचाक्षुषविशिष्टधूमत्वविशिष्टधर्मितात्वेन कारणता तत्पुरुषीयधूमत्वप्रकारकधूमत्वाश्रयमुख्यविशेष्यकचाक्षुषत्वेन कार्यता इत्यादिक्रमेण, मनःस्थले तु तत्पुरुषीयज्ञानविशिष्टधूमत्वविशिष्टधर्मितात्वेन कारणता तत्पुषी-

(१) उक्तपरम्पराया इन्द्रियाघटितत्वे इन्द्रियसम्बन्धत्वं न सम्भवतीति भावः ।

तद्विशेष्यकप्रत्यक्षे तदिन्द्रियसन्निकर्षस्य हेतुत्वेनानाग-

यधूमत्वप्रकारकधूमत्वाश्रयमुख्यविशेष्यकमानसत्वेन कार्य्यतेत्यादिक्रमेण कार्य्य-कारणभावः, प्रथमवैशिष्ट्यं प्रकारतासम्बन्धेन, द्वितीयवैशिष्ट्यञ्च निरूपितत्वसम्बन्धेन, विशिष्टपूर्वसत्त्वस्थापेक्षिततया च न कालान्तरीयचाक्षुषादिमादायातिप्रसङ्गः, कालिकसामानाधिकरण्यमात्रञ्च प्रत्यासत्तिर्न तु विशेष्यत्वाश्रयत्वघटितदैशिकसामानाधिकरण्यमपि धूमत्वादिप्रकारकज्ञानानन्तरं निरुक्तधर्मितारूपसामान्यलक्षणाप्रत्यासत्त्यातीतानागतधूमादौ कदाचित् समूहालम्बनविधया धूलौपटलादौ च धूमत्वादिप्रत्यक्षोदयात्तत्र च तदानीं तादृशधर्मिताविरहाद्व्यभिचारापत्तेः । न च यावत्त्वस्य कार्य्यतावच्छेदकाघटकतया तादृशधर्मितारूपसामान्यलक्षणप्रत्यासत्त्या कुतोऽतीतानागतसकलधूमत्वाश्रयप्रत्यक्षमिति वाच्यं । यावत्त्वस्य कार्य्यतावच्छेदकाघटकेऽपि विनिगमनाविरहेण सकलधूमत्वाश्रयभानादिति निर्गमः^(१) ।

न च यत्र विनश्यदवस्थाचक्षुःसंयोगेन यत्किञ्चिद्व्यक्तौ धूमत्वप्रकारकचाक्षुषोत्पत्तिकाल एव चक्षुषोर्निमीलनं तत्र तदनन्तरं निमीलितनयनस्यापि तादृशधर्मिताप्रत्यासत्त्या धूमत्वप्रकारकनिखिलधूमत्वाश्रयचाक्षुषापत्तिः विनश्यदवस्थालोकसमवधानजन्यधूमत्वप्रकारकयत्किञ्चिद्भूमचाक्षुषादन्यतममेऽपि तादृशधर्मिताप्रत्यासत्त्या

(१) सर्व्वत्र 'निगमः' इत्यत्र 'निगर्वः' इति ग० पुस्तकपाठः ।

धूमत्वप्रकारकनिखिलधूमचाचुषापत्तिः, एवं यत्र धूमत्वप्रकारकय-
त्किञ्चिद्धूमव्यक्तिचाचुषोत्पत्तिकाले धूमत्वप्रकारकलौकिकचाचुष-
प्रतिबन्धकदोषोत्पत्तिस्तत्र तदनन्तरं दोषसत्त्वेऽपि तादृशधर्मितास-
न्निकर्षेण धूमत्वप्रकारकनिखिलधूमत्वाश्रयचाचुषापत्तिरिति वाच्यं ।
वहिरिन्द्रियजनितसामान्यलक्षणाजन्यसाक्षात्कारस्य सामान्यांशे विशे-
ष्यीभूतयत्किञ्चिद्भूतयंशे च लौकिकनियमाद्वहिरिन्द्रियेण तादृ-
शसाक्षात्कारजनने सामान्याश्रये तदनाश्रये वा यत्किञ्चिद्धर्मिणि
लौकिकविशेष्यतया सामान्यप्रकारकतदिन्द्रियकरणकप्रत्यक्षोत्पत्ति-
सामग्र्या अपि सहकारित्वस्य नव्यानव्यसकलतान्त्रिकसिद्धत्वात् ।
अन्यथा वक्ष्यमाणकल्पेऽप्यनिस्तारादिति निगर्भः ।

नन्वेवं ज्ञानप्रकारीभूततन्निरूपितधर्मितायास्तत्प्रकारकतदाश्रय-
प्रत्यक्ष एव हेतुतया घटत्वरूपेण एकघटव्यक्तिमात्रप्रकारकज्ञानानन्तरं
घटत्वावच्छिन्नप्रकारेण घटान्तराश्रयप्रत्यक्षं न स्याद्वटान्तराश्रयस्य ज्ञा-
नप्रकारीभूतघटव्यक्तेराश्रयत्वाभावात् । न च सामान्यतस्तत्पुरुषीय-
चाचुषादिविशिष्टघटविशिष्टधर्मितात्वेन तत्पुरुषीयघटप्रकारकघटा-
श्रयमुख्यविशेष्यकचाचुषत्वेन कालिकसामानाधिकरण्यमात्रप्रत्यासत्त्या
कार्य-कारणभावात् ज्ञानप्रकारीभूतयत्किञ्चिद्घटव्यक्तिनिरूपितध-
र्मितैव स्वानधिकरणीभूतघटान्तराश्रयप्रत्यक्षेऽपि हेतुरिति वाच्यं ।
तथा सति तद्व्यक्तित्वरूपेणैव तद्वटमात्रप्रकारकज्ञानत्वदशायामपि^(१)
घटान्तराश्रयप्रत्यक्षापत्तिरिति । मैवं । घटत्वावच्छिन्नघटप्रकारक-
तत्पुरुषीयघटाश्रयमुख्यविशेष्यकचाचुषं प्रति घटत्वावच्छिन्नप्रका-

(१) तद्व्यक्तित्वरूपेणैकव्यक्तिघटमात्रप्रकारकज्ञानानन्तरमपीति ख०, ग०।

रतासम्बन्धेन तत्पुरुषीयघटाश्रयचाक्षुषविशिष्टेन यत्किञ्चिद्दृष्टेन विशि-
ष्टाया धर्मिताया एव हेतुत्वात् तद्व्यक्तित्वरूपेण तद्व्यक्तिप्रकारकज्ञा-
नस्य तद्व्यक्तित्वावच्छिन्नतद्व्यक्तिप्रकारक-तत्तद्व्यक्त्याश्रयप्रत्यक्षं प्रत्येव
हेतुत्वात् एवमेव सर्वत्र सखण्डसामान्यस्थले बोध्यं सामान्यभेदेन
कार्य-कारणभावभेदादिति निगमः^(१) ।

नन्वत्र धर्मिताप्रवेशोव्यर्थस्तादृशविशिष्टधूमत्वत्वादिनैव हेतुत्वस्य
सुवचत्वात्, किञ्चैवं यत्रातीतमनागतं वा सामान्यं तत्र तन्निरू-
पितधर्मिताया अत्यतीतानागततया तत्सामान्यप्रकारकज्ञानानन्तरं
तत्सामान्यप्रकारकनिखिलतत्सामान्याश्रयसाक्षात्कारो न स्यात् ज्ञान-
प्रकारीभूतस्य तत्सामान्यस्य तन्निरूपितधर्मितायाश्च अव्यवहित-
पूर्वमभावात् । अथातीतानागतसामान्यप्रकारकज्ञानानन्तरं तादृ-
शसामान्यप्रकारकतादृशसामान्याश्रयसाक्षात्कारोऽसिद्धः यथोक्तका-
र्य-कारणभावस्य व्यभिचारापत्त्या तथैव कल्पनात्, किन्तु तत्र
अतीतानागतसामान्यप्रकारकज्ञाने भासमानं साक्षात्परम्परया वा
तत्सामान्यनिष्ठमवश्यं नित्यधर्मान्तरमप्यस्ति परम्परासम्बन्धेनावच्छि-
न्नतादृशनित्यधर्मनिरूपितधर्मिताप्रत्यासत्त्या परम्परासम्बन्धेन तादृ-
शनित्यधर्मप्रकारकमेव तत्सामान्याश्रयप्रत्यक्षं जायते । न च
तादृशनित्यधर्मस्य परम्परासम्बन्धेन ज्ञानाप्रकारतया कथं तन्निरू-
पितधर्मिताप्रत्यासत्त्या परम्परासम्बन्धेन तादृशनित्यधर्मप्रकारकमेव
तत्सामान्याश्रयप्रत्यक्षमिति वाच्यं । यत्किञ्चिद्विशेष्येऽतीताना-

(१) न च यत्र विनश्यदवस्थचक्षुःसंयोगेनेत्यादिः निगम इत्यन्तः पाठः
क्रोडपत्रस्य इति ।

गतसामान्यप्रकारकज्ञानदशायामन्ततो निर्धर्मितावच्छेदकस्यापि
तस्मिन् विशेष्ये परम्परासम्बन्धेन तत्सामान्यवृत्तितादृशनित्यधर्म-
प्रकारकप्रत्यक्षस्य सम्भवात्, यत्र च शाब्दबोधादिरूपमतीतानागत-
सामान्यप्रकारकं ज्ञानं तत्रापि तदुत्तरं परम्परासम्बन्धेन तद्वृत्ति-
तादृशधर्मप्रकारकमानसबोधकल्पनादिति चेत् । न । अनुभवापला-
पादतीतानागतसामान्यप्रकारकज्ञानानन्तरमतीतानागतसामान्यप्र-
कारकस्यापि निखिलतदाश्रयसाक्षात्कारस्य सकलनैयायिकानुभव-
सिद्धत्वात् परम्परासम्बन्धेनातीतानागतसामान्यवृत्तितादृशधर्मप्रका-
रकज्ञानं विनायतीतानागतसामान्यप्रकारकशाब्दादितः सकलतदा-
श्रयसाक्षात्कारस्य सकलनैयायिकानुभवसिद्धत्वाच्च । अन्यथा अतीता-
नागतसामान्यप्रकारकज्ञानानन्तरं निखिलतदाश्रयसाक्षात्कार एवाप-
लप्यतां किमेतावत्कुसृष्ट्या । अपिच चक्षुरादिजन्यज्ञानप्रकारौ-
भूतसामान्यनिरूपितधर्मितायास्तादृशसामान्यस्य वा प्रत्यासत्तित्वे च
इन्द्रियभेदेन पुरुषभेदेन च कार्य-कारणभावभेदादनन्तकार्य-का-
रणभावप्रसङ्गः कारणतावच्छेदकशरीरगौरवञ्चेत्यस्वरसादाह, 'अति-
रिक्तैव वेति संयोगादिलक्षणप्रत्यासत्तिघटकादतिरिक्तैव वेत्यर्थः,
तच्चातिरिक्तं धूमत्वादिरूपसामान्यप्रकारकज्ञानमात्रं, षोढा परिग-
णनन्तु लौकिकसन्निकर्षाभिप्रायं, सामान्यलक्षणापदस्य च सामान्यं
लक्षणं विषयतया निरूपकं यस्याः सा सामान्यलक्षणेति व्युत्पत्तिः,
धूमत्वादिप्रकारकशाब्द-स्यत्यादितोऽपि मानससकलधूमादिषाक्षा-
त्कारवच्चक्षुरादिवहिरिन्द्रियजन्यनिखिलधूमादिषाक्षात्कारोऽपीत्यत-
एव नातोवहिरिन्द्रियस्थलेऽपि चक्षुरादिभेदेन कार्य-कारणभाद-

भेदः, समवायसत्त्वन्वेजात्मनिष्ठतया हेतुतया च न पुरुषभेदेन
कार्य-कारणभावभेद इति भावः। अत्र सामान्यमात्रस्य प्रत्या-
सत्तिवैज्ञातानागतसामान्यप्रकारकज्ञानानन्तरं तत्प्रकारकनिखिल-
तदाश्रयसाक्षात्कारानुपपत्तिः कारणत्वेनाभिमतस्य सामान्यस्या-
व्यवहितपूर्वमभावादतोज्ञानप्रवेशः। नन्वेतावता अनित्यसामान्यस्थले
घटत्वादिनित्यसामान्यस्थले च सामान्यज्ञानं प्रत्यासत्तिरस्तु घटत्वत्वा-
दिना कारणत्वकल्पनामपेक्ष्य घटत्वादिज्ञानत्वेन हेतुताया लघुत्वात्,
परममहत्त्वादिनित्यगुणाद्यात्मकसामान्यस्थले घटात्यन्ताभावादिनि-
त्याभावात्मकसामान्यस्थले च कथं ज्ञानान्तर्भावः सामान्यभेदेन
कार्य-कारणभावभेदात्तत्र स्वरूपसतः परममहत्त्वादेरेव लाघवेन
प्रत्यासत्तित्वौचित्यात्। न चैवं परममहत्त्वाद्यज्ञानदशायामपि तत्-
प्रत्यासत्त्या निखिलतदाश्रयसाक्षात्कारापत्तिरिति वाच्यं। परममह-
त्त्वादिप्रकारकपरममहत्त्वाश्रयप्रत्यक्षत्वस्य कार्यतावच्छेदकतया विशे-
षणज्ञानरूपविशिष्टबुद्धिसामान्यकारणाभावादेव^(१) तत्र कार्याभावा-
दिति चेत्। न। परममहत्त्वत्वादिनिर्विकल्पकानन्तरमाद्यविशिष्ट-
ज्ञानोत्पत्तिसमय एव परममहत्त्वादिप्रकारेण निखिलतदाश्रयसा-
क्षात्कारापत्तेः^(२) परममहत्त्वादिविशेष्यकज्ञानादपि^(३) सकलतदाश्रय-

(१) विशिष्टबुद्धिसामान्यं प्रति विशेषणज्ञानस्य स्वातन्त्र्येण कारणत्व-
मिति भावः।

(२) निर्विकल्पकद्वितीयक्षणे एव सामान्यलक्षणासन्निकर्षजन्यप्रत्यक्षस्य
सर्वानुभवसिद्धतया निर्विकल्पकद्वितीयक्षणे तादृशप्रत्यक्षापत्ति-
रिति समुदिततात्पर्यं।

(३) विशिष्टबुद्धिसामान्यं प्रति विशेषणज्ञानस्य विशेषणविषयकत्वेनैव
कारणत्वमिति विशेषणविशेष्यकज्ञानस्यापि तत्कारणत्वं सुवचमिति।

साक्षात्कारापत्तेः । न चेष्टापत्तिः, अनुभवविरोधात् । एवं समवायादि-
यत्किञ्चित्सम्बन्धेन परममहत्त्वादिप्रकारकज्ञाने तत्प्रत्यासत्त्या जगत-
एव प्रत्यक्षापत्तिः जगत एव येन केनचित् सम्बन्धेन परममहत्त्वा-
द्याश्रयत्वात्, विना कारणतावच्छेदकप्रकारताप्रवेशं सम्बन्धभेदोपा-
दानस्याशक्यत्वात् । न चेष्टापत्तिः, अनुभवविरोधात् परममहत्त्वादे-
र्नित्यतया तदभावेन कार्यभावात् कथंभावात् स्वरूपसत्तस्य कार-
णत्वे मानाभावाच्च । न च तथापि लाघवादिच्छादिसाधारण-
सामान्यप्रकारकमेव प्रत्यासत्तिरस्तु किं ज्ञानान्तर्भावेनेति वाच्यं ।
घटत्वादिनिर्विकल्पकात्मकस्य घटत्वादिविशेष्यकज्ञानात्मकस्य वा
विशेषणज्ञानस्य सत्त्वे^(१) घटत्वादिप्रकारकेच्छादितो घटत्वादिप्रका-
रकानुदुद्धसंस्कारादितश्च निखिलघटत्वाद्याश्रयसाक्षात्कारापत्तेः । न
च सामान्यप्रकारकज्ञानस्यैव सामान्यलक्षणात्वे ज्ञानलक्षणा-सामा-
न्यलक्षणयोः कार्य-कारणभावे को भेद इति वाच्यं । कारणताव-
च्छेदकभेदेन कार्यतावच्छेदकभेदेन च भेदात्, सामान्यलक्षणायाः
कार्य-कारणभावस्तु तत्तत्सम्बन्धावच्छिन्न-घटत्वादिप्रकारताशालि-
ज्ञानत्वेन स्वरूपतत्तत्सम्बन्धावच्छिन्नघटत्वादिप्रकारिताक-तत्तत्सम्ब-
न्धावच्छिन्न-घटत्वाद्याश्रयताशालिसुख्यविशेष्यकप्रत्यक्षत्वेन, यावत्तस्य
कार्यतावच्छेदकाघटकत्वेऽपि विनिगमनाविरहेण सकलघटज्ञानं^(२) ।

(१) एतेन विशिष्टबुद्धिसामान्यकारणस्य विशेषणज्ञानस्य सत्त्वं सूचित-
मिति ।

(२) सामान्यलक्षणाया हि तत्तत्सम्बन्धावच्छिन्नघटत्वादिप्रकारिताशा-
लिज्ञानत्वं कारणतावच्छेदकं, घटत्वादिप्रकारकतत्तत्सम्बन्धावच्छिन्न-
घटत्वाद्याश्रयताशालिसुख्यविशेष्यकप्रत्यक्षत्वं कार्यतावच्छेदकं,
एकसम्बन्धेन घटत्वादिप्रकारकज्ञाने सम्बन्धान्तरेण घटत्वाद्याश्रयस्य
प्रत्यक्षानुदयात् तत्तत्सम्बन्धावच्छिन्नेति इति ग० ।

समवायसम्बन्धेन घटत्वप्रकारकज्ञानानन्तरं कालिकादिप्रसम्बन्धेन
 घटत्वप्रकारकनिखिलघटविषयकप्रत्यक्षस्य समवायसम्बन्धेन घटत्व-
 प्रकारेण घटत्ववतः कालादेः प्रत्यक्षस्य च वारणाय सम्बन्धान्तर्भावः ।
 घटत्वादिप्रकारकज्ञानं विनापि द्रव्यत्वादिसामान्यलक्षणाया आय-
 माने द्रव्यत्वादिप्रकारकघटादिमुख्यविशेष्यकप्रत्यक्षे व्यभिचारवार-
 णाय कार्यतावच्छेदके घटत्वप्रकारिताकेति । प्रकारित्वञ्चालौकिकं
 व्याख्यं^(१) तेन घटत्वप्रकारकज्ञानं विनापि द्रव्यत्वादिविशिष्टबुद्ध्यात्मक-

(१) अथ प्रकारतायामलौकिकत्वनिवेशनं व्यर्थं घटत्वाद्याश्रयताशालि-
 निष्ठमुख्यविशेष्यताया अपि अलौकिकत्वस्याग्रे निवेशनीयतया
 तादृशविशेष्यतायाः घटत्वप्रकारतानिरूपितत्वनिवेशनेनैव निरुक्तव्य-
 भिचारवारणसम्भवात् तथाहि निरुक्तज्ञानस्य सन्निकृष्टघटविशेष्यक-
 घटत्वप्रकारकस्य घटत्वप्रकारतानिरूपिता घटनिष्ठलौकिकमुख्यवि-
 शेष्यता या तु अलौकिकविशेष्यता सा न घटत्वप्रकारतानिरूपिता
 किन्तु द्रव्यत्वप्रकारतानिरूपितेति, आवश्यकञ्च विशेष्यतायां प्रका-
 रतानिरूपितत्वनिवेशनं अन्यथा कालिकसम्बन्धावच्छिन्नघटत्वप्रका-
 रताकसमवायसम्बन्धावच्छिन्नद्रव्यत्वप्रकारताकज्ञानानन्तरं घटांशे
 लौकिकसन्निकर्षानन्तरञ्च जायमाने द्रव्यत्वप्रकारतानिरूपितघटनि-
 स्तालौकिकविशेष्यताक-घटत्वनिष्ठलौकिकालौकिकोभयप्रकारतानि-
 रूपितलौकिकविशेष्यताकप्रत्यक्षे व्यभिचारापत्तेः । न च तादृशप्र-
 यत्नं नेध्यत एवेति वाच्यं । कार्य-कारणभावस्य लाघवसत्त्वे उभय-
 चालौकिकत्वनिवेशेन गौरवस्यान्याय्यतया फलापलापस्यान्याय्यत्वात्
 इति चेत् । न । तत्रापि यथा लौकिकसन्निकर्षमर्यादया सन्निकृष्ट-
 घटे घटत्वस्य भानं तथा असन्निकृष्टघटेऽपि । न चासन्निकृष्टघटे
 सन्निकर्षाभावात् कथं तस्य भानमिति वाच्यं । असन्निकृष्टघटे द्रव्य-

त्वसामान्यलक्षणाया यथा द्रव्यत्वं भासते तथा घटत्वमपि, लौकिक-
सन्निवृत्तघटत्वस्य द्रव्यत्वसामान्यलक्षणासन्निवृत्तघटे मानस्य केनाप्य-
निराकरणीयत्वात् तथाच उपदर्शितज्ञाने द्रव्यत्वप्रकारतानिरूपिता
यावद्द्रव्यनिष्कालौकिकविशेष्यता एका, अन्या च घटत्वप्रकारतानि-
रूपिता घटनिष्कालौकिकी विशेष्यता, अपरा च घटत्वप्रकारतानि-
रूपिता सन्निवृत्तघटनिष्कालौकिकी विशेष्यता इति भवत्येव घट-
त्वप्रकारकज्ञानस्य कार्यतावच्छेदकावच्छिन्नं तादृशज्ञानं तस्य घटत्व-
प्रकारतानिरूपितघटत्वाश्रयताशानिष्कालौकिकमुख्यविशेष्यताक-
त्वादिति सर्व्वं सुसमञ्जसमित्यस्मद्गुरुचरणाः ।

केचित्तु तत्प्रकारतानिरूपितविशेष्यताकत्व-विशेष्यतानिरूपित-
तत्प्रकारताकत्वयोर्द्वयोर्विनिगमनाविरहेण निवेशे कार्य-कारणभाव-
द्वयापत्तिरिति साधवेन तत्प्रकारताकत्व-तद्विशेष्यकत्वयोर्द्वयोरेकत्र
द्वयमिति रीत्या निवेशे न कार्यकारणभावद्वयापत्तिर्न वा निरुक्तस्थले
फलापलाप इति न व्यभिचारः इति । न च व्यासज्यवृत्तिकार्यता-
वच्छेदकत्वस्यापसिद्धान्ततया तत्प्रकारकत्वविशिष्टतद्विशेष्यकत्व-तद्वि-
शेष्यकत्वविशिष्टतत्प्रकारकत्वद्वयोः परस्परं विनिगमनाभावेन
कार्य-कारणभावद्वयापत्तिर्भवतामपीति वाच्यं । व्यासज्यवृत्तिकार्य-
तावच्छेदकत्वमत एव तद्ग्रन्थनिर्व्वचनात् । वस्तुतस्तु उक्तस्थले फला-
पलापस्यान्याय्यतया विशेष्यतायां तत्प्रकारतानिरूपित्वं निवेश्यं अलौ-
किकत्वं प्रकारतायां न देयं भट्टाचार्य्येणापि तथैव लिखितमिति
स्मर्त्तव्यं । यदि चालौकिकमुख्यविशेष्यतायां लौकिकप्रकारतानिरू-
पितत्वस्वीकारे तु प्रकारतायामलौकिकत्वं अवश्यं देयं, अन्यथा घट-
त्वनिर्व्विकल्पकात्मकसमवायावच्छिन्नद्रव्यत्वप्रकारकज्ञानोत्तरं आय-
माने एकत्र द्वयमिति रीत्या घटोद्भवमित्याकारकज्ञाने व्यभिचारः ।
न चालौकिकविशेष्यतायां लौकिकप्रकारतानिरूपितत्वस्वीकारे
मानाभाव इति वाच्यं । मुख्यविशेष्यतायां अलौकिकत्वनिवेशना-

घटत्वनिर्विकल्पकोत्तरं द्रव्यत्वसामान्यलक्षणया जायमाने यावद्घट-
मुख्यविशेष्यकप्रत्यक्षे लौकिकसन्निकर्षमर्यादया घटत्वप्रकारके न
व्यभिचारः। न च तथापि कालिकादिसम्बन्धेन स्वरूपतो घटत्वादि-
प्रकारकबुद्ध्यात्मकगवादिविशेष्यकसमवायसंसर्गकद्रव्यत्वप्रकारकस्मर-
णोत्तरं द्रव्यत्वसामान्यलक्षणया जायमाने यावद्घटमुख्यविशेष्यक-
प्रत्यक्षे उपनयमर्यादया समवायसम्बन्धेन स्वरूपतो घटत्वप्रकारके
व्यभिचार इति वाच्यं। यथोक्तकार्य-कारणभावस्यैव बाधकत्वेन
तत्र समवायसम्बन्धेन घटत्वस्याप्रकारत्वात्। अत्र घटत्वप्रकारकज्ञानं
विनापि जातित्वरूपेण गोत्वादिजात्यन्तरप्रकारकज्ञानाज्जायमाने
जातित्वरूपेण घटत्वादिनिखिलजातिप्रकारकनिखिलजात्याश्रयप्रत्यक्षे
व्यभिचारवारणाय स्वरूपत इति घटत्वादिप्रकारिताविशेषणं, यथोक्त-
कार्य-कारणभावस्यैव बाधकत्वेन तत्र स्वरूपतो घटत्वादेरप्रकारत्वात्।
अत्र घटत्वादिविशेष्यकस्मरणादितो जायमाने विशेष्ये विशेषणमिति
रौत्या समवायसम्बन्धेन स्वरूपतो घटत्वादिप्रकारक-घटवदिदमित्या-
द्युपनीतभाने व्यभिचारवारणाय मुख्यविशेष्यत्वप्रवेशः, उपनीतभाने च

यालौकिकप्रकारतानिरूपितत्वस्यालौकिकविशेष्यतायां मधुराना-
थेन स्वीकृतवत्या तुल्ययुक्त्या लौकिकप्रकारतानिरूपितत्वस्यालौकिक-
विशेष्यतायां स्वीकारस्य न्याय्यत्वादित्युच्यते, तदा न कोऽपि दोषः।
न च कालिकादिसम्बन्धेन द्रव्यमित्याकारकज्ञानोत्तरं एकत्र द्वयमिति
रौत्या जायमाने समवायसम्बन्धेन घटत्वप्रकारक-घटोद्रव्यमित्याका-
रकज्ञाने व्यभिचार इति वाच्यं। एतादृशकार्य-कारणभावबाधक-
बलादेव तादृशज्ञानस्यैवासम्भवात् इति निगमः।

घटो न मुख्यविशेष्यः वहिरिन्द्रियस्थले उपनीतं विशेषणतयैव भासते, इति नियमात् । मुख्यविशेष्यत्वमयलौकिकरूपं ग्राह्यं तेन कालिकादिसम्बन्धेन स्वरूपतो घटत्वस्मरण-लौकिकसन्निकर्षाभ्यां जायमाने लौकिकालौकिकोभयघटत्वप्रकारिताशालिनि अयं घट इति मुख्यविशेष्यकलौकिकप्रत्यक्षे न व्यभिचारः । अथ तथापि कालिकादिसम्बन्धेन स्वरूपतो घटत्वप्रकारक-घटविशेष्यकस्मरणज्जायमाने समवायसम्बन्धेन घटत्वप्रकारक-घटमुख्यविशेष्यकमानसोपनीतभाने व्यभिचारः मानसे उपनीतं विशेषणतयैव भासते इति नियमाभावात्, तत्र कालिकादिसम्बन्धेनैव घटत्वप्रकारकघटप्रत्यक्षं न तु समवायसम्बन्धेनेत्युक्तावपि घटवदितिघटत्वादिस्मरणोत्तरं जायमाने परम्परासम्बन्धेन घटप्रकारकमानसोपनीतभाने व्यभिचारो दुर्वारः तदनभ्युपगमे तादृशस्मरणोत्तरं निखिलघटाश्रयसाक्षात्कारानुपपत्तेः द्रव्यप्रकारकज्ञानस्याप्रत्यासत्तित्वादिति चेत् । न । लाघवाद्यथोक्तरूपेण सामान्यलक्षणायाः कार्य-कारणभावकल्पने यथोक्तमानसे घटादिर्न मुख्यविशेष्यः किन्तु चक्रव्यूहवत् घटत्वपुटितो भवन्नेव भासते इत्येव कल्प्यते यथोक्तकार्य-कारणभावस्यैव बाधकत्वात् तत्तदनन्तोपनीतभानान्यत्वप्रवेशे गौरवात् सर्वत्रैव मानसोपनीतभाने च उपनीतमवश्यं मुख्यविशेष्यतया भासत इति नियमे मानाभावात्, असति बाधक एव मानसोपनीतभाने उपनीतस्य प्रकारत्व-मुख्यविशेष्यत्वलक्षणद्विविधविषयत्वाभ्युपगमात्, एवं खण्डशो दण्ड-पुरुषोभयविषयकसमूहालम्बनस्मरणोत्तरं जायमाने दण्डप्रकारकदण्डाश्रयपुरुषप्रत्यक्षेऽपि पुरुषो न दण्डांशे मुख्यविशेष्यतया भासते अपि तु चक्र-

व्यूहवत् दण्डपुटितः पुरुषः पुरुषपुटितश्च दण्डो भासते इति कल्प्यते ।
 न च तथापि योगजविशिष्टज्ञाने विशेषणज्ञानस्याहेतुत्वनये सामा-
 न्यज्ञानं विनापि जायमाने सामान्यप्रकारकसामान्याश्रयमुख्यविशेष्य-
 कप्रत्यचे व्यभिचारः, योगजविशिष्टज्ञानं प्रत्यपि विशेषणज्ञानस्य हेतु-
 त्वनयेऽपि योगजधर्मेण सामान्य-तदाश्रयोभयनिर्विकल्पकं जनयित्वा
 जनिते सामान्यप्रकारक-सामान्याश्रयमुख्यविशेष्यकप्रत्यचे व्यभिचार-
 इति वाच्यं । योगजधर्मजन्यतावच्छेदकतत्त्वज्ञात्यवच्छिन्नान्यत्वेन
 प्रत्यक्षविशेषणात् तादृशयोगजधर्मज्ञानेऽपि सामान्याश्रयमुख्यविशेष्य-
 तथा भाने मानाभावाच्च । अपि तु चक्रव्यूहवत् स्वप्रकारौभूते
 सामान्ये प्रकारौभूतैव भासते लाघवात् तथैव कल्पनात्, अत एव
 कालिकादिसम्बन्धेन स्वरूपतो घटत्वादिप्रकारकस्मरणोत्तरं विशेष्ये
 विशेषणमिति रीत्या कालिकादिसम्बन्धेनैव घटत्वादिप्रकारकं
 घटवदिदमित्युपनीतभानं जायते न तु समवायसम्बन्धेन घटत्व-
 प्रकारकमित्युक्तावेव व्यभिचारवारणसम्भवात् किं जात्यादिसामान्य-
 लक्षणायाः कार्यतावच्छेदके स्वरूपतः प्रकारताघटितमुख्यविशेष्य-
 त्वप्रवेशेन । न च तथाप्यत्र घटत्वमिति समवायसम्बन्धेन घटत्वविशेष्य-
 कस्मरणोत्तरं जायमाने विशेष्ये विशेषणमिति रीत्या घटत्वप्रकारके
 घटवदिदमित्याद्युपनीतभाने व्यभिचारवारणाय तदवश्यं निवेशनीय-
 मिति वाच्यं । स्वरूपतो घटत्वविशिष्टबुद्धिं प्रति स्वरूपतो विशेषणी-
 भूतघटत्वविषयकज्ञानस्य हेतुतया तादृशस्मरणोत्तरं तादृशोपनीत-
 भानासम्भवात् घटत्वत्वघटकतयैव स्वरूपतो घटत्वज्ञानाभ्युपगमे(१)

(१) घटत्वत्वस्य घटेतरावृत्तित्वविशिष्टसकलघटवृत्तित्वरूपतया घटत्व-

व्यभिचारस्यापि विरहादित्यसत्पूर्वपक्षोऽपि निरस्तः घटवदिति स्मरणोत्तरं जायमाने परम्परासम्बन्धेन घटत्वप्रकारकमानसोप-
नीतमाने यथोक्तरीत्या योगजधर्मजन्ये घटत्वप्रकारकघटविशे-
ष्यकप्रत्यक्षे च व्यभिचारवारणाय तत्प्रवेशस्यावश्यकत्वात् । एतेना-
भावत्वाद्यखण्डोपाधिरूपसामान्यलक्षणायाः कार्य-कारणभावो व्या-
ख्यातः, जात्यखण्डोपाध्यतिरिक्तपदार्थज्ञानञ्च प्रत्यासत्तिरेव नेति
सामान्यपदार्थनिर्वचन एव प्रतिपादितं । नन्वेवंरूपेण कार्य-कारण-
भावे जातित्वरूपेणैव जातिव्यक्तिमात्रप्रकारकज्ञानानन्तरं जाति-
त्वावच्छिन्नजातिमत्त्वप्रकारेण निखिलजात्याश्रयप्रत्यक्षं कथं स्यात्
जात्यन्तराश्रयस्य ज्ञानप्रकारीभूतजातिव्यक्तेराश्रयत्वाभावात् स्वरू-
पतो घटत्वादिप्रकारकत्वस्य कार्यतावच्छेदकत्वाच्चेति चेत् । न ।
जातित्वरूपेण जातिप्रकारकलौकिकप्रत्यक्षदशायामन्ततो निर्द्विर्भि-
तावच्छेदकस्यापि परम्परासम्बन्धेन जातित्वघटकनित्यत्वादिघटकी-
भूतध्वंसत्वाद्यखण्डोपाधिप्रकारकज्ञानस्यावश्यकतया^(१) तत एव सामा-
न्यज्ञानाध्यातित्वावच्छिन्नजातिमत्त्वरूपेण निखिलजात्याश्रयस्य सा-
क्षात्कारात् जात्यन्तराश्रयस्यापि परम्परासम्बन्धेन तदाश्रयत्वात् ।

त्वज्ञानस्य इतरत्वप्रतियोग्यंश्चे स्वरूपतो घटत्वावगाहित्वनियम-
इति भावः ।

(१) जातित्वस्य नित्यानेकसमवेतत्वरूपस्य घटकीभूतनित्यत्वस्य प्रागमा-
वाप्रतियोगित्वविशिष्टध्वंसाप्रतियोगित्वरूपतया नित्यत्वस्य जातित्व-
घटकत्वं ध्वंसत्वस्य नित्यत्वघटकत्वच्चेति भावः ।

यत्र जातित्वरूपेण यत्किञ्चिज्जातिमात्रप्रकारकशब्द-स्रुत्यादिधी-
स्तत्रापि मध्ये परम्परासम्बन्धेन ध्वंसत्वादिप्रकारकमानसोपनीतभाना-
न्तरमेव, जातिमतः सर्वस्य प्रत्यक्षाभ्युपगमात् क्षणविलम्बे क्षतिविर-
हात् । न च परम्परासम्बन्धेन ध्वंसत्वप्रकारकज्ञानस्यैव तत्र प्रत्या-
सत्तित्वे ध्वंस इत्यादिरेव तत्फलं स्यात्^(१) न तु जातिमदिति सामा-
न्यप्रकारकज्ञानस्य मुख्यविशेष्ये सामान्यप्रकारकज्ञानजनकत्वनियमा-
दिति वाच्यं । विशेषणज्ञानार्थं जातित्वसामान्यलक्षणाया मध्ये सकल-
जातिमुख्यविशेष्यकज्ञानस्यावश्यकत्वात् ज्ञानलक्षणायैव जातिमदिति
फलस्यापि सम्भवात् द्विविधविषयत्वस्येष्टत्वात्, एवं तद्व्यक्तित्वरूपेण
घटत्वादिप्रकारकज्ञानानन्तरं जायमाने तद्व्यक्तित्वरूपेण घटत्वादिप्र-
कारक-तदाश्रयप्रत्यक्षेऽपि परम्परासम्बन्धेन तत्तद्व्यक्तित्वप्रकारकज्ञान-
मेव प्रत्यासत्तिरतोऽपि घटत्वादिसामान्यलक्षणायाः कार्यदिशि
तदसंग्रहोऽपि न दोषायेति भट्टाचार्यादुयायिनः ।

सम्प्रदायविदस्तु स्वरूपतोघटत्वादिप्रकारकनिखिलघटत्वाद्या-
श्रयप्रत्यक्षं प्रति घटत्वादिसामान्यलक्षणाया यथोक्तरूपेणैव कार्य-
कारणभावः जातित्वादिरूपेण घटत्वादिप्रकारकनिखिलघटत्वा-
श्रयप्रत्यक्षं प्रति तु जातित्वरूपेण यत्किञ्चिज्जातिप्रकारकज्ञानमेव
हेतुः किं परम्परासम्बन्धेन जातित्वादिघटकध्वंसत्वादिप्रकारकज्ञा-
नकल्पनया फलीभूतसाक्षात्कारस्य द्विविधविषयत्वकल्पनया वा ।
ज्ञानलक्षणायाः कारणतावच्छेदकन्तु सामान्यतः संसर्गावच्छिन्नघट-
त्वादिविषयताशालिज्ञानत्वं घटत्वादिप्रकारकज्ञानादिव घटत्वादि-

(१) ध्वंसत्ववदित्यादिरेव तत्र भानं स्यादिति घ० ।

विशेष्यकज्ञानादपि घटत्वादिप्रकारकोपनीतभानोदयात् विनश्यद-
वस्थलौकिकसन्निकर्षजन्यघटत्वादिनिर्विकल्पकानन्तरमपि घटत्वादि-
प्रकारकप्रत्यक्षापत्तिवारणाय संसर्गावच्छिन्नेति विषयताविशेषणं ।

केचित्तु^(१) ज्ञानलक्षणायाः सप्रकारकघटत्वादिज्ञानत्वं कारण-
तावच्छेदकं । न चैवं विनश्यदवस्थलौकिकसन्निकर्षजन्यद्रव्यत्वा-
दिविशिष्टबुद्ध्यात्मक-घट-घटत्वादिनिर्विकल्पादपि घटत्वादिप्रत्य-
क्षापत्तिरिति वाच्यं । दृष्टत्वात् सर्वांशे निर्विकल्पकस्य प्रत्यासत्ति-
त्वानभ्युपगमादित्याहुः । तदस्मत्^(२) तथा सति सर्वांशे निर्विक-
ल्पकादपि दृष्टापत्तेः सुकरतया सप्रकारत्वोपादानस्यापि कारणताव-
च्छेदके व्यर्थत्वापत्तेः सविशेष्यकत्वसांसर्गिकविषयताशालित्वमादाय
विनिगमनाविरहेण कार्य-कारणभावत्रयापत्तेश्च । ज्ञानलक्षणायाः
कार्यतावच्छेदकञ्च घटत्वादिप्रकारकप्रत्यक्षत्वं, घटत्वादिज्ञानं वि-
नापि जायमाने प्रमेयत्वादिसामान्यलक्षणाजन्यघटत्वादिमुख्यवि-
शेष्यकप्रत्यक्षे व्यभिचारवारणाय विषयित्वमपहाय प्रकारिताप्रवेशः,
प्रकारिता अलौकिकी ग्राह्या तेन निर्विकल्पकजन्यप्राथमिकतद्विशि-
ष्टलौकिकप्रत्यक्षे न व्यभिचारः । न चैवं यत्र ज्ञानलक्षणासन्निकर्षो
लौकिकसन्निकर्षश्च द्वयमेव वर्तते तत्र कौटुम्भिकज्ञानं स्यादिति वाच्यं ।
तत्र लौकिकालौकिकोभयप्रकारिताकस्यैकस्यैव प्रत्यक्षस्यैवोत्पत्तेः विष-
यितायाः साङ्कर्यस्यादोषत्वात्^(३) । न च तदप्रकारकज्ञानं विनापि

(१) उच्छृङ्खलास्त्विति घ० ।

(२) तत्तुच्छमिति घ० ।

(३) लौकिकालौकिकविषयत्वयोर्मिथः सामानाधिकरण्यस्यादोषत्वादि-
त्यर्थः ।

जायमाने योगजधर्मजन्यतत्प्रकारकप्रत्यक्षे व्यभिचार इति वाच्यं ।
 योगजधर्मजन्यतावच्छेदकतत्तज्ज्ञात्यवच्छिन्नान्यत्वेन प्रत्यक्षादिविशे-
 षणात् । न चैवं तत्प्रकारकप्रत्यक्ष एव तज्ज्ञानस्य हेतुतया इदं रजत-
 मिति श्रुतिमुख्यविशेष्यकमानसभ्रमे श्रुतिज्ञानस्याहेतुतया श्रुति-
 ज्ञानं विनापि तादृशभ्रमापत्तिरिति वाच्यं । इदं रजतमिति
 श्रुतिमुख्यविशेष्यकमानसभ्रमस्यापि श्रुतिज्ञानात्मकश्रुतिविशिष्ट-
 धीकारणसत्वेन यत्र कुत्रचित् धर्मिणि श्रुतिप्रकारकत्वनियमात्
 श्रुतिज्ञानविरहस्थले श्रुतिप्रकारकज्ञानसामान्यकारणविरहादेव
 तदभावात् विशेषसामग्रीसहिताया एव सामान्यसामग्र्याः फलोपधा-
 यकत्वात् । न चेदं रजतमिति श्रुतिमुख्यविशेष्यकमानसभ्रमस्य न
 श्रुतिप्रकारकत्वनियमः श्रुतिप्रकारकज्ञानप्रतिबन्धकदोषसत्त्वे तत्र
 तस्याप्रकारत्वादिति वाच्यं । श्रुतिमुख्यविशेष्यकतादृशमानसभ्रम-
 स्थले तादृशदोषे मानाभावात् लाघवात् यथोक्तरूपेण ज्ञानलक्ष-
 णायाः कार्य-कारणभावकल्पने फलवत्त्वेन तथैव कल्पनात् । न
 चैवं मानसोपनीतमाने उपनीतस्य मुख्यविशेष्यतया माने माना-
 भावः मुख्यविशेष्यत्वस्य कार्यतानवच्छेदकतया सामग्र्यास्तत्रानिय-
 मकत्वान्तादृशमानसत्वासम्भवादिति वाच्यं । मुख्यविशेष्यकत्वस्य इतर-
 कारणानियम्यतया बाधकासत्त्वं एव मुख्यविशेष्यतया मानावश्यक-
 त्वात् । न चैवं मानसोपनीतवद्वहिरिन्द्रियजोपनीतमानेऽप्युपनीतस्य
 प्रकारत्व-मुख्यविशेष्यत्वलक्षणद्विविधविषयतापत्तिरिति वाच्यं । सा-
 मान्यलक्षणा-लौकिकसन्निकर्षजन्यातिरिक्तस्य वहिरिन्द्रियजतत्त-
 न्मुख्यविशेष्यकप्रत्यक्षस्यानुभवासिद्धत्वेनालीकतया यावद्विशेषसामग्री-

तादौ संयोगादेरभावादिति वदन्ति, तदपरे न मन्यन्ते,
तथाहि धूमत्वावच्छिन्ना व्याप्तिः सन्निकृष्टधूमविषये
धूमत्वेन प्रत्यक्षेण ज्ञायते ततः स्मृता सा तृतीयलिङ्ग-
परामर्शे पक्षनिष्ठधूमवृत्तितया ज्ञायते ततोऽनुमितिः
तदनभ्युपगमेऽपि सन्निकृष्टधूमविषये धूमत्वेन धूमो-

बाधादेव तद्वाधात्, मानसस्य तु तदतिरिक्तस्यापि इदं रजतमित्या-
द्युपनीतविशेष्यकभ्रमस्य उपनीतशुक्त्यादिमुख्यविशेष्यत्वमनुभवसिद्ध-
मतो नालीकत्वं । न च तथापि घट-घटत्वनिर्विकल्पकोत्तरं जाय-
मानेऽयं घट इत्यादिविशिष्टप्रत्यचे घटत्वादेर्मुख्यविशेष्यत्वापत्तिः
लौकिकसन्निकर्षरूपविशेषसामग्रीसत्तादिति वाच्यं । तत्राप्यसति
बाधके घटाद्यंशे घटत्वादेः प्रकारत्वन्मुख्यविशेष्यत्वस्यापीष्टत्वात् इति ।

केचित्तु संसर्गावच्छिन्न-तद्विषयताशालिज्ञानत्वेन कारणता
योगजधर्माजन्यसामान्यप्रत्यासत्त्यजन्यतद्विषयकप्रत्यक्षत्वेन कार्यता,
तद्विषयिता चालौकिकी ग्राह्या, तेन तल्लौकिकप्रत्यचे न व्यभि-
चारः, एवञ्च^(१) तद्विषयकप्रत्यक्षत्वमात्रस्य कार्यतावच्छेदकतया इदं
रजतमिति शुक्तिविशेष्यकमानसभ्रमोऽपि न शुक्तिज्ञानं विना^(२)
इत्याहुरिति संक्षेपः । विस्तरस्तु अस्मात्कृतसिद्धान्तरहस्येऽनुसन्धेयः ।

(१) तथाचेति ग०, घ० ।

(२) अत्र “बहिरिन्द्रियजोपनीतमाने उपनीतस्य मुख्यविशेष्यत्वनिर्वासश्च
उक्तक्रमेण” इत्यधिकः पाठः घ० चिह्नितपुस्तके वर्तते ।

ननु महानसादौ वक्त्रि-धूमव्याप्तिप्रत्यक्षदशायां महानसीयधू-
मादिनिष्ठलौकिकसन्निकर्षादेव पर्वतीयधूमांगेऽपि लौकिकमाचा-
त्कारात्मकोव्याप्तिग्रहः स्यात् किं सामान्यलक्षणायाः प्रत्यासत्तित्वेन
इत्यत आह, 'तद्विशेषकप्रत्यक्ष इति तन्मौलिकप्रत्यक्ष इत्यर्थः,
'तदिन्द्रियसन्निकर्षस्येति तन्निष्ठलौकिकसन्निकर्षस्येत्यर्थः, 'अनागता-
दाविति अनागतादिरूपे पर्वतीयधूस इत्यर्थः, 'आदिपदात् व्यव-
हितातीतपरिग्रहः, 'संयोगादेः' महानसीयधूमादिनिष्ठचक्षुःसंयो-
गादेः, 'आदिपदात् संयुक्तसमवायादेः परिग्रहः, 'अभावात्'
लौकिकप्रत्यक्षजनकत्वासम्भवात्, तथाच लौकिकसन्निकर्षस्य विषय-
घटितसामानाधिकरण्यप्रत्यासत्त्या हेतुतया^(१) अन्यनिष्ठलौकिकस-
न्निकर्षतो न पर्वतीयधूमलौकिकप्रत्यक्षसम्भव इति भावः । 'इति
वदन्ति' इति नैयायिका वदन्तीत्यर्थः । 'तत्' नैयायिकवचनं,
'अपरे' मीमांसकाः, 'न मन्यन्ते' न प्रमाणत्वेन मन्यन्ते, 'तथाहीति
तन्मते हीत्यर्थः, 'धूमत्वावच्छिन्ना' सामानाधिकरण्यसम्बन्धेन
धूमत्वविशिष्टा धूमनिष्ठेति यावत्, 'व्याप्तिः' वक्त्रिव्याप्तिः, रूपादि-
निष्ठवक्त्रिव्याप्तेः सन्निकृष्टधूमे प्रत्यक्षाभ्युपगमेऽन्यथाख्यात्यापत्तिरत-
स्तद्व्यवच्छेदाय धूमनिष्ठेत्युक्तं, 'सन्निकृष्टधूमविषय इति सन्निकृष्ट-
धूमरूप एव विशेष्ये इत्यर्थः, 'धूमत्वेन' धूमत्वप्रकारेण, 'ततः'
तदनन्तरं, 'स्रुता सेति धूमत्वरूपेण सन्निकृष्टधूम एव स्रुता सेत्यर्थः,

(१) 'विषयघटितसामानाधिकरण्यप्रत्यासत्त्या' विषयान्तर्भावेण सामा-
नाधिकरण्यप्रत्यासत्त्येत्यर्थः तथाच विषयतासंसर्गेण लौकिकप्रत्यक्षं
प्रति यथायथं समवायादिसंसर्गेण सन्निकर्षस्य हेतुत्वमिति भावः ।

वह्निव्याप्य इत्यनुभवस्तथैव व्याप्तिस्मरणं ततो धूमवान-
यमिति व्याप्तिस्मृतिप्रकारेण धूमत्वेन पक्षवृत्तिधूम-
ज्ञानादनुमितिः व्याप्यनुभव-तत्स्मरण-पक्षधर्मताज्ञा-

‘तृतीयलिङ्गपरामर्श इति पक्षविशेष्यकव्याप्तिविशिष्टवैशिष्ट्यावगाहि-
प्रत्यक्ष इत्यर्थः, तस्य सन्निवृत्तधूमविशेष्यकव्याप्तिप्रत्यक्षापेक्षया
तृतीयत्वात्, ‘पक्षनिष्ठधूमवृत्तितया ज्ञायत इति लौकिकसन्निक-
र्षमर्यादया पक्षविशेषणत्वेन भासमानस्य पक्षनिष्ठधूमस्य विशेषणतया
भासत इत्यर्थः, विशेषणतावच्छेदकांशे सधर्म्मितावच्छेदकविशिष्ट-
वैशिष्ट्यबोधं प्रति तद्वर्म्मितावच्छेदकप्रकारेण यत्किञ्चिद्वर्म्मिणि
विशेषणतावच्छेदकप्रकारकनिश्चय एव हेतुर्न तु तद्वर्म्मितावच्छेदक-
प्रकारेण विशेषणीभूतव्यक्तौ विशेषणतावच्छेदकप्रकारकनिश्चय एव
सर्वत्र हेतुर्गौरवादिति भावः । यद्यप्येवमपि व्याप्तेः सामानाधिकर-
ण्यरूपतया तस्य च प्रतिव्यक्तिभिन्नतया सन्निकृष्टधूमे साक्षात्कृतव्याप्तेः
कथं पक्षवृत्तिधूमे भानं तस्यास्तत्र बाधितत्वात् अन्यथाव्याप्तिप्र-
सङ्गाच्च । तथापि व्याप्तेः सामानाधिकरण्यरूपत्वेऽपि सिद्धान्तलक्ष-
णोक्तयुक्त्या व्याप्यतावच्छेदकीभूतधूमत्वादिसम्बन्धेनैव हेतौ तत्र-
कारकं ज्ञानमनुमितिहेतुर्न तु साक्षात्सम्बन्धेन, तथाच महान-
सौधधूमवृत्तिसामानाधिकरण्यस्यापि धूमत्वसम्बन्धेन पक्षनिष्ठधूमे
सत्त्वात् न बाध इत्यभिप्रायः, लाघवात् साध्यवदन्यावृत्तित्वमेव
व्याप्तिः सा च पर्वतीयधूमसाधारणी एकैवेत्यभिप्रायो वा । ननु

नानामेकप्रकारकत्वेनानुमितिहेतुत्वात् । गवादिपदे-
 क्षपि शक्त्यनुभव-तत्स्मरण-वाक्यार्थानुभवानामेकप्रका-
 रकत्वेन हेतु-हेतुमज्ञाव इत्यपूर्वे वक्ष्यते, तत्र योग्य-

मीमांसकैरुपनीतभानानभ्युपगमादुक्तरूपेण तत्रचे प्रत्यक्षतो वि-
 शिष्टपरामर्शासम्भव इत्यत आह, 'तदनभ्युपगमेऽपीति उक्तरूपेण
 प्रत्यक्षतो विशिष्टपरामर्शानभ्युपगमेऽपीत्यर्थः, 'तथैव' धूमत्वरूपेण
 सन्निकृष्टधूम एव, पक्षवृत्तिधूमज्ञानात् पक्षविशेष्यकधूमज्ञानात् ।
 ननु व्याप्तिविशिष्टवैशिष्ट्यावगाहिज्ञानस्यैवानुमितिहेतुत्वात् कथं
 तादृशज्ञानद्वयादनुमितिरित्यत आह, 'व्याप्यनुभव-तत्स्मरणेति
 स्मरणानुभवसाधारणव्याप्तिज्ञानसामान्येत्यर्थः, यथाश्रुते सृष्टिज-
 नकौभूतव्याप्यनुभवस्य पृथगहेतुतया पृथक् तदुत्कीर्तनानौचि-
 त्यादिति धेयं । 'एकप्रकारकत्वेनेति यद्वर्मावच्छिन्नविशेष्यताक-
 व्याप्तिज्ञानं तद्वर्मप्रकारेण हेतोः पक्षधर्मताज्ञानस्यैवानुमितिहेतुत्वा-
 दित्यर्थः, न तु नियमतो व्याप्तिविशिष्टवैशिष्ट्यावगाहिज्ञानमेव का-
 रणमिति भावः । ननु सामान्यलक्षणायाः प्रत्यासत्तित्वानभ्युपगमे
 गोत्वरूपेण सन्निकृष्टगोव्यक्तिं पक्षयित्वा व्यवहारविषयत्वेन हेतुना
 शक्तिसम्बन्धेन गोपदवत्तासाधने व्यक्त्यन्तरेषु सन्निकर्षाभावेन परा-
 मर्शाभावादनुमित्यनुत्पादाद्गोपदश्रवणानन्तरं व्यक्त्यन्तरान्वयबोधो
 न स्यात् तत्र शक्तिसम्बन्धेन गोपदवत्ताज्ञानाभावात् । न च परा-
 मर्शानुमित्योः समानप्रकारकत्वेनैव कार्य-कारणभावात् गोत्वरूपेण

तादिवत्तादपूर्वव्यक्तिलाभोऽनुमाने तु पक्षधर्मताव-
त्तात्^(१) धूमेवह्निव्याप्य इत्यनुभवो न तु सर्वो धूमे-
वह्निव्याप्य इति येन सर्वभानार्थं तत्स्वीकारः ।

सन्निकृष्टगोव्यक्तिविशेष्यकपरामर्शादेव व्यक्त्यन्तरेष्वपि अनुमितिरिति
वाच्यं । तथा सति द्रव्यस्वरूपेण पर्वते वह्निव्याप्यवत्ताज्ञानात्
जलेऽपि वह्न्यनुमित्यापत्त्यान्यथाख्यात्वापत्तेः । किञ्च सामान्यलक्ष-
णायाः प्रत्यासत्तित्वानभ्युपगमे यस्य पुरुषस्यानुमानादिना गोत्वा-
दिना सकलगवाननुभवः तत्पुरुषस्य गोपदश्रवणानन्तरं द्वीपान्त-
रीयगवादेरन्वयबोधो न स्यात् तद्गोचरसंस्काराभावेन गोपदात्
तस्य स्मरणसम्भवात्, सामान्यलक्षणाभ्युपगमे तु सन्निकृष्टगोव्यक्तिषु
द्वितीयादिविशिष्टप्रत्यक्षदशायामेव गोत्वसामान्यलक्षणाप्रत्यासत्त्या
सकलगवानुभवेन सकलगोगोचरसंस्कारसम्भव इत्यत आह, 'गवादि-
पदेष्वपीति गवादिपदोच्चारणेष्वापीत्यर्थः, जायमानानामिति शेषः,
'शक्त्यनुभवेति शक्तिज्ञानेत्यर्थः, 'तत्स्मरणेति तस्मात् स्मरणमिति
व्युत्पत्त्या तज्जन्यपदार्थस्मरणेत्यर्थः, यथाश्रुते शक्त्यनुभव-शक्तिस्मर-
णयोः पृथगहेतुतया पृथक् तदुत्कीर्त्तनस्यासङ्गतत्वापत्तेः स्मरणानु-
भवयोरपि समानप्रकारकत्वेनैव हेतु-हेतुमद्भावे स्मृतेरगृहीतया-
हित्वेन प्राप्तापत्तेः । 'एकप्रकारकत्वेनेति गवादिपदस्य जाता-
वेव शक्ततया गोपदविशेष्यकशक्तिसंसर्गक-गोत्वप्रकारकज्ञानं गोत्व-
प्रकारक-गोविशेष्यकसमवायसंसर्गकस्मरणे हेतुः समवायसंसर्गक-

अथ वह्निमानयमित्यनुमितिर्विशेषज्ञानसाध्या
विशिष्टज्ञानत्वादिति पर्वतीयवह्निभानार्थं तत्कल्पने
धूमेऽपि तथा क्वचिद्धूमस्यापि व्यापकत्वादिति चेत् ।

गोत्वप्रकारकस्मरणं समवायसंसर्गक-गोत्वप्रकारकगोशाब्दबोधे हेतु-
रिति क्रमेण हेतु-हेतुमद्भावो न तु गोत्वप्रकारक-तद्व्यक्तिविशेष्यक-
गोपदशक्तिज्ञानं गोत्वप्रकारक-तद्व्यक्तिविशेष्यकस्मरणे हेतुः गोत्वप्र-
कारक-तद्व्यक्तिविशेष्यकस्मरणं गोत्वप्रकारक-तद्व्यक्तिविशेष्यकशाब्द-
बोधे हेतुरिति समानविशेष्यकत्व-समानप्रकारकत्वोभयान्तर्भावेण
कार्य-कारणभाव इत्यर्थः, तथाच व्यक्त्यन्तरे गोपदशक्त्यनुमित्य-
भावेऽपि गोपदविशेष्यकगोत्वशक्तिज्ञानादेव सन्निकृष्टव्यक्तिवद्व्यक्त्यन्त-
रस्यापि शाब्दबोधः, एवं द्वीपान्तरौयगवादेः संस्काराभावेन
स्मरणसम्भवेऽपि गोत्वप्रकारेण सन्निकृष्टगोव्यक्तीनां स्मरणदेव
द्वीपान्तरौयगवादीनामपि शाब्दबोधः इति भावः । 'इत्यपूर्वं
वक्ष्यत इति इत्यत्र विनिगमकमपूर्ववादे वक्ष्यत इत्यर्थः । लाघ-
वात् समानप्रकारकत्वस्यावश्यकत्वाच्चेति भावः । इदमुपलक्षणं
गवादिपदस्य गोत्वादिजातावेव शक्ततया व्यक्तौ शक्तिविरहेण
शक्तिज्ञानस्य समानविशेष्यकत्वेन हेतुत्वासम्भवाच्च ।

केचित्तु 'एकप्रकारकत्वेन हेतु-हेतुमद्भाव इत्यस्य गोत्वाव-
च्छिन्नविशेष्यकशक्तिज्ञानं गोत्वप्रकारक-गोविशेष्यक-समवायसंसर्ग-
कस्मरणे हेतुः समवायसंसर्गक-गोत्वप्रकारकस्मरणं समवायसंसर्गक-
गोत्वप्रकारकगोशाब्दबोधे हेतुरिति क्रमेण हेतु-हेतुमद्भावो न तु

न । विशिष्टवैशिष्ट्यज्ञाने विशेषणतावच्छेदकप्रकारक-
ज्ञानस्यावश्यकत्वेन हेतुत्वात्, तच्च वृत्तमेव न तु विशेष-
णज्ञानमपि तथा गौरवात् । गौरयमिति विशिष्ट-

यथोक्तक्रमेण समानविशेष्यकत्वस्थाप्यन्तर्भाव इत्याहुः । तदसत् ।
परनये व्यक्तौ शक्त्यभ्युपगमे जातिशक्तिवादविरोधः तदनभ्युपगमे
चान्यथाख्यात्यापत्त्या गोत्वावच्छिन्नविशेष्यकशक्तिज्ञानस्यैवासम्भवात्
कथं तादृशशक्तिज्ञानस्य हेतुत्वाभ्युपगम इत्युभययैवासङ्गतत्वापत्तेः ।
न च परनयेऽपि जातौ व्यक्तौ च शक्तिः परन्तु गोत्वजातिप्रकारेण
यत्किञ्चिद्गोव्यक्तिनिष्ठशक्तिज्ञानादेव व्यक्त्यन्तरस्यापि स्मरणमनुभव-
स्येत्येव जातिशक्तिवादार्थ इति वाच्यं । लाघवात् गवादिपदस्य
गोत्वादिजातावेव निरवच्छिन्नशक्तिः शक्तिशब्देन स्वरूपतो गोत्वा-
दिजातिप्रकारक-गोपदादिविशेष्यकज्ञानमेव गोत्वादिजातिप्रका-
रकव्यक्तिस्मरणे तादृशव्यक्त्यनुभवे च हेतुरित्यस्यैव जातिशक्तिवादार्थ-
त्वेन शब्दपरिच्छेदेऽभिधानादिति ।

ननु पदानुपस्थितस्य अर्थस्य न शाब्दबोधविषयत्वमिति
नियमादस्मृतव्यक्तेः कथं शाब्दबोधे भानमित्यत आह, 'तत्रेति
गवादिपदजन्यशाब्दबोधइत्यर्थः, 'योग्यतादिवशादिति^(१) 'आदि-
पदात् तात्पर्यपरिग्रहः, 'अपूर्वव्यक्तीति पदात् पूर्वानुपस्थि-

(१) 'योग्यतादिवशादित्यपि कस्यचिन्मूलपुस्तकस्य पाठः ।

ज्ञाने युगपद्विशेष्ये विशेषणो सन्निकर्ष एव कारणं न तु निर्व्विकल्पकं मानाभावात् । विशिष्टज्ञानत्वमेव मानमिति चेत् । न । दृष्टान्ताभावात् दण्डी पुरुष इत्यत्र

ताया अपि व्यक्तेर्भानमित्यर्थः । ‘अनुमाने त्विति, ‘तुः’ इवार्थे, यथा व्यापकतावच्छेदकत्वेनागृहीतस्य धर्मस्य नानुमितिविधेयतावच्छेदकत्वमिति नियमं परिभूय बाधसहकारात्^(१) व्यापकतावच्छेदकत्वेनागृहीतस्यानुमितौ विधेयतावच्छेदकत्वं तथेहापि यथोक्तनियमं परिभूय पदानुपस्थितस्यापि शाब्दबोधविषयत्वमित्यर्थः । ननु महानसादौ वक्लि-धूमव्याप्तिप्रत्यक्षदशायां सर्व्वधूमो वक्लिव्याय इत्यनुभवो जायतेऽतः सर्व्वधूमभानार्थमवश्यं धूमत्वसामान्यलक्षणायाः प्रत्यासत्तित्वं स्वीकरणीयमित्यत आह, ‘धूम इति, ‘सर्व्वभानार्थं’ सर्व्वधूमभानार्थं, ‘तत्स्वीकारः’ धूमत्वसामान्यलक्षणायाः प्रत्यासत्तित्वस्वीकारः ।

धूमत्वसामान्यलक्षणायाः प्रत्यासत्तित्वे मानमाशङ्कते, ‘वक्लिमानयसितीति, ‘विशेषणज्ञानसाध्या’ पर्व्वतीयवक्लिज्ञानसाध्या, यथाश्रुते पक्षतावच्छेदक-साध्यतावच्छेदकज्ञानजन्यतया सिद्धसाधनापत्तेः, मध्यत्वञ्च अव्यवहितोत्तरवर्त्तित्वं तेन ज्ञानत्वादिना कार्य्यत्वावच्छिन्नं प्रति स्वरूपयोग्यत्वमादाय नार्थान्तरं, पर्व्वतीयवक्लिज्ञानत्वावच्छिन्न-

विशेषणधीजन्यत्वानभ्युपगमात् विशिष्टवैशिष्ट्यज्ञान-
त्वात् । अपि च प्रमेयत्वेन व्याप्तिं परिच्छिन्दन् सर्वज्ञः
स्यात्, तथाच परकीयज्ञानविषये घटत्वं न वेति

कारणकत्वस्य साध्यत्वेऽप्रसिद्धापत्तेः, पर्वतीयवक्त्रिलिङ्गकानुमितिं
प्रत्यपि पर्वतीयवक्त्रिविषयकव्याप्तिज्ञानत्वेन ज्ञानत्वेनैव वा हेतुत्वा-
दिति ध्येयं । 'विशिष्टज्ञानत्वात्' पर्वतीयवक्त्रिविशिष्टज्ञानत्वात्,
पर्वतीयवक्त्रिमान् इत्यनुमितिर्दृष्टान्तः, 'तत्कल्पन इति वक्त्रित्व-
ज्ञानस्य सामान्यतः सामान्यलक्षणात्वेन प्रत्यासत्तित्वकल्पने इत्यर्थः,
'तथा' धूमत्वज्ञानस्य प्रत्यासत्तित्वं बोध्यं, सामान्यतः सामान्यप्र-
कारकज्ञानत्वेन कारणत्वं सामान्याश्रयमुख्यविशेष्यकप्रत्ययत्वावच्छिन्नं
प्रति, तथाच धूमत्वादिप्रकारकज्ञानस्यापि प्रत्यासत्तित्वमायातमिति
भावः । ननु तथापि सामान्यलक्षणत्वं न प्रत्यासत्तित्वावच्छेदकं
सामान्याश्रयत्वस्य केवलान्वयितया एकस्य सामान्यस्य ज्ञाने जगत
एव प्रत्यक्षापत्तेः अतो विशिष्टैव सा वाच्या तथाच वक्त्रित्वसामान्य-
लक्षणायाः प्रत्यासत्तित्वसिद्धावपि धूमत्वसामान्यलक्षणायाः प्रत्यास-
त्तित्वे मानाभावः इत्यरुचेराह, 'क्वचिदिति, 'व्यापकत्वात्' साध्यत्वात्,
तथाच पर्वतो धूमवानित्यसन्निरुद्धधूमसाध्यकानुमितेर्विशेषणज्ञान-
जन्यत्वानुरोधेन धूमत्वसामान्यलक्षणायाः प्रत्यासत्तित्वमावश्यकमिति
भावः । ननूक्तानुमाने नियमग्राहकानुकूलतर्कस्तावद्विशिष्टवैशिष्ट्यज्ञानं
प्रति विशेषणतावच्छेदकप्रकारकविशेषणज्ञानत्वेन हेतुताग्रह एव

संशये न स्यात् प्रमेयत्वेन तदव्यतरनिश्चयात् । प्रमेय-
त्वेन घटं जानात्येव घटत्वं तस्य न जानाति इति चेत् ।
न । तत् किं घटत्वं न प्रमेयं येन तन्न जानीयात् सक-
लघटवृत्तिधर्मस्य प्रमेयत्वेन तदज्ञानासम्भवात् ।

वाच्यः स एव नास्तीत्याह, 'विशिष्टवैशिष्ट्येति वक्त्रित्व-धूमत्व-
विशिष्टवैशिष्ट्यज्ञाने वक्त्रित्व-धूमत्वप्रकारकज्ञानस्यैवेत्यर्थः, 'विशेषण-
ज्ञानमपि' पर्वतीयवक्त्रि-पर्वतीयधूमज्ञानमपि, 'तथा' पर्वतीय-
वक्त्रि-पर्वतीयधूमविशिष्टबुद्धौ हेतुः, 'गौरवादिति, तथाचोक्तानु-
मानमप्रयोजकमिति भावः । ननु गौरवात् पर्वतो वक्त्रिमान्
इत्याद्यनुमितेः पर्वतीयवक्त्रिज्ञानजन्यत्वानभ्युपगमे गौरयमिति
विशिष्टप्रत्यक्षेऽपि गोत्वज्ञानस्याहेतुत्वापत्तिस्तथाच नायातं निर्व्वि-
कल्पकेन तत्रेष्टापत्तिमाह, 'गौरयमितीति, 'मानाभावात्' मध्ये
निर्व्विकल्पके मानाभावात्, क्षणविलम्बस्य शपथनिर्णयत्वादिति
भावः । पूर्वोक्तगौरवमश्रुत्वैव तटस्थः शङ्कते, 'विशिष्टज्ञानत्वमेवेति
गोत्वविशिष्टज्ञानत्वमेवेत्यर्थः, 'मानं' निर्व्विकल्पके मानं, गौरयमिति
प्राथमिकविशिष्टधीः गोत्वज्ञानत्वावच्छिन्नकारणताप्रतियोगिनी
गोत्वविशिष्टज्ञानत्वादित्यनुमानात् प्राथमिकविशिष्टज्ञानात् पूर्वं
गोत्वज्ञानं सिद्धं पक्षधर्मतावलात् निर्व्विकल्पकरूपमेव सिध्यति
तत्पूर्वमपि विशेषणज्ञानाभावेन विशिष्टबुद्ध्यात्मकस्य तस्यासम्भवा-
दिति भावः । 'दृष्टान्ताभावादिति, द्वितीयविशिष्टज्ञानेऽपि

उक्तज्ञानस्य हेतुत्वासिद्धेः गोत्वलिङ्गक-गोत्वसाधकानुमितावपि गोत्वविषयकव्याप्तिज्ञानत्वेन ज्ञानत्वेनैव वा कारणतया^(१) उभयथापि^(२) गोत्वज्ञानत्वेन हेतुत्वासिद्धेः, तथाच साध्याप्रसिद्धिरिति भावः । ननु यत् यद्विशिष्टज्ञानं तत् तज्ज्ञानत्वादच्छिन्नकारणताप्रतियोगीति सामान्यतो दण्डौ पुरुष इति ज्ञानं दृष्टान्तः स्यादित्यत आह, 'दण्डौ पुरुष इति, 'विशेषणधीति दण्ड-दण्डत्वादिज्ञानत्वेन कारणतानभ्युपगमादित्यर्थः, 'विशिष्टवैशिष्ट्येति दण्डत्वविशिष्टवैशिष्ट्यज्ञानत्वादित्यर्थः^(३) । न च गोत्वज्ञानाव्यवहितोत्तरवर्त्तित्वमेव साध्यं तथाच गोत्वसाधकानुमितिरेव दृष्टान्त इति वाच्यं । तद्याप्यप्रयोजकत्वात् गोत्वविशिष्टबुद्धौ गोत्वज्ञानत्वेन हेतुत्वस्य गौरवेण मानाभावेन चासिद्धत्वादिति भावः । सामान्यलक्षणायाः प्रत्यासत्तित्वे साधकाभावमुक्त्वा बाधकमप्याह, 'अपिचेति, 'प्रमेयत्वेनेति संयोगादिसम्बन्धेन प्रमेयहेतुके पर्वतः कपिसंयोगाभाववान् प्रमेयादित्यादौ महानसादिषु सन्निकृष्टप्रमेये प्रमेयत्वरूपेण व्याप्तिप्रत्यक्षदशायां प्रमेयत्वसामान्यलक्षणप्रत्यासत्त्या पचवृत्तिप्रमेयेऽपि व्याप्तिं गृह्णन् पुरुष इत्यर्थः, 'सर्वज्ञः स्यादिति

(१) परामर्शस्य कारणतयैव व्याप्तिज्ञानासत्त्वे अनुमित्यापत्तिवारणसम्भवे परामर्शस्य व्यापारतारक्षार्थं व्याप्तिज्ञानस्य ज्ञानत्वेनैव कारणत्वं न तु तत्र व्याप्तिविषयकत्वं कारणतावच्छेदकमिति भावः ।

(२) तत्रापीति ख०, ग० ।

(३) तथाच विशिष्टवैशिष्ट्यबुद्धौ विशेषणतावच्छेदकप्रकारकज्ञानमेव हेतुदित्यभिप्रायः ।

इति श्रीमद्भङ्गेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ
अनुमानाख्यद्वितीयखण्डे सामान्यलक्षणापूर्वपक्षः ।

स्वस्ववृत्तिसकलधर्मप्रकारेण सर्वेषां पदार्थानां ज्ञानवान् स्यादित्यर्थः,
प्रमेयत्वसामान्यलक्षणप्रत्यासत्त्या पक्षवृत्तिप्रमेये व्याप्तिप्रत्यक्षदशायां
तथा प्रत्यासत्त्या प्रमेयमात्रस्यैव ज्ञानान्तदनन्तरं प्रमेयं प्रमेयवदित्या-
कारकसकलपदार्थविशेष्यक-स्वस्ववृत्तिसकलधर्मप्रकारकोपनीतमाने
बाधकाभावादिति भावः। नञ्स्तु सर्वज्ञत्वं किं नञ्छिन्नमित्यत आह,
'तथाचेति, 'परकीयज्ञानविषये' विशिष्य स्वज्ञानाविषये, स्वस्य स्व-
रूपतो घटत्वप्रकारकेदन्वधर्मितावच्छेदकज्ञानाविषय इति यावत्,
'तस्य' पुरुषस्य^(१), 'तदन्यतरेति घटत्व-तदभावयोरन्यतरनिश्चयादि-
त्यर्थः, एतच्च समानविषयकनिर्णयमात्रस्यैव विरोधित्वमित्यभि-
मानेन । शङ्कते, 'प्रमेयत्वेनेति, 'तदज्ञानेति घटत्वाज्ञानेत्यर्थः ।

इति श्रीमथुरानाथ-तर्कवागीशविरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये
अनुमानाख्यद्वितीयखण्डरहस्ये सामान्यलक्षणापूर्वपक्षरहस्यं ।

(४) "तथाच परकीयज्ञानविषये घटत्वं वर्तते न वेति तस्य संशयो न
स्यात्" इति कस्यचिन्मूलपुस्तकस्य पाठमनुसृत्य 'तस्येति मूलपाठो
दृष्टो व्याख्यातश्च रहस्यकृतेति ।

अथ सामान्यलक्षणासिद्धान्तः ।



उच्यते यदि सामान्यलक्षणा नास्ति तदानुकूल-
तर्कादिकं विना धूमादौ व्यभिचारसंग्रहो न स्यात्

अथ सामान्यलक्षणासिद्धान्तरहस्यं ।

‘यदीति, ‘सामान्यलक्षणा नास्तीति सामान्यलक्षणायाः प्रत्यासत्ति-
ता नास्तीत्यर्थः, ‘अनुकूलतर्कादिकं विनेति व्यभिचारज्ञानप्रतिबन्धक-
तर्काद्यभावदशाद्यानित्यर्थः, ‘व्यभिचारसंग्रहः’ धूमो वज्रिव्यभिचारौ
न वेत्यादिव्यभिचारसंग्रहः, ‘प्रसिद्धधूमे’ सकललौकिकसन्निरुद्धधूमे,
‘वज्रिसम्बन्धज्ञानात्’ (१) वज्रिव्याप्यत्वनिश्चयात्, ‘मानाभावेन’ सन्नि-
कर्षाभावेन, ‘अज्ञानादिति संग्रहे विग्रेह्यतया भानासम्भवादित्यर्थः,
परनये नव्यनैयायिकनये च धर्मीज्ञानस्य संग्रहाहेतुत्वेऽपि संग्रहस्य
धर्म्यङ्गे प्रत्यक्षरूपतया धर्मीन्द्रियसन्निकर्षस्यावश्यं हेतुत्वादिति भावः ।
‘सामान्येन तु’ धूमत्वसामान्यलक्षणसन्निकर्षेण तु, ‘सकलधूमोपस्थितौ’
सकलधूमप्रत्यक्षस्वीकारे, ‘धूमान्तरे’ कालान्तरीय-देशान्तरीय-

(१) ‘वज्रिसम्बन्धज्ञानात्’ इति टीकाकारस्य पाठधारणेन कस्यचिन्मूल-
पुस्तकस्य ‘वज्रिसम्बन्धाव्यामात्’ इत्यत्र ‘वज्रिसम्बन्धज्ञानादिति
पाठोऽनुमीयते ।

ज्ञानेषु सर्वेषु सिद्धं विहायासिद्धे इच्छा भवतीत्यभ्युपेयं ।
तन्न । असिद्धस्याज्ञानेऽपि सिद्धगोचरज्ञानादेव इच्छा-
प्रवृत्तिस्वाभाव्यादसिद्धे तथोक्त्युक्तेः^(१) । न चातिप्रसङ्गः,

ख्यात्यापत्त्या तत्र तत्प्रकारकज्ञानासम्भवादसिद्धपाके च सन्निकर्षाभावेन
तत्प्रकारकज्ञानासम्भवादिति वाच्यं । पाकादौ वर्तमानस्वकृतिसाध्यता-
प्रकारकज्ञानं हि नेन्द्रियेण तस्यातीन्द्रियत्वात् किन्तु अनुमानेन,
तथाच पाकत्वप्रकारक-सिद्धपाकज्ञानादेव पाकत्वप्रकारेणसिद्धपाके
यथाकथञ्चित्सिद्धस्य वर्तमानस्वकृतिसाध्यत्वस्यानुमानं पक्षधर्मताज्ञा-
नानुमित्योरपि समानप्रकारकत्वेनैव कार्य-कारणभावात् । न च
वर्तमानस्वकृतियतिरेकप्रयुक्तव्यतिरेकप्रतियोगित्वादिरूपस्य वर्त-
मानस्वकृतिसाध्यत्वानुमापकलिङ्गस्य सिद्धपाके बाधादसिद्धपाके च
विना सामान्यलक्षणां ज्ञातुमशक्यत्वात् परामर्शसम्भवेन कथमनु-
मितिर्पौति वाच्यं । स्वाश्रयवृत्तिपाकत्ववत्तात्मकपरम्परासम्बन्धेन
पाकत्वप्रकारेण सिद्धपाक एव तादृशल्लिङ्गवत्तापरामर्शसम्भवात्
परामर्शानुमित्योरपि समानविशेष्यतावच्छेदकत्वेनैव कार्य-कारण-
भावात्, येन सम्बन्धेन व्याप्यताग्रहः तेनैव सम्बन्धेन हेतुसत्ता-
ज्ञानमनुमितिहेतुरिति नियमश्च परेषामसिद्धः किन्तु येन सम्बन्धेन
व्याप्यताग्रहस्तेन सम्बन्धेन हेतुसत्ताज्ञानमिव येन सम्बन्धेन व्याप्यता-
ग्रहस्तेन सम्बन्धेन यत्त्वाधिकरणं तद्वृत्तिपक्षतावच्छेदकवत्त्वसम्बन्धेन

(१) तथोरुपपत्तेरिति ख०, ग० ।

यत्तु पाकादौ चिकीर्षा सुखादौ इच्छा न स्यात् सिद्धे
इच्छाविरहात् असिद्धस्याज्ञानात् तस्मात् सुखत्वादिना

हात्' इच्छोत्पादासम्भवात्, 'असिद्धस्याज्ञानादिति, तद्विषयके-
च्छायां तद्विषयकज्ञानस्य हेतुतया ज्ञानं विना इच्छाया असम्भवा-
दिति भावः । 'सुखत्वादिना' सुखत्वादिज्ञानस्वरूपसामान्यलक्षण-
प्रत्यासत्त्या । 'इच्छा-प्रवृत्तिस्वाभावादिति इच्छात्व-प्रवृत्तित्वावच्छिन्नं
प्रति सामान्यतोज्ञानत्वेनैव कारणत्वादित्यर्थः । 'अतिप्रसङ्ग इति
घटत्वप्रकारकघटज्ञानात् पटत्वप्रकारकपटेच्छा-प्रवृत्तिप्रसङ्ग इत्यर्थः,
'समानप्रकारकत्वेन' समानप्रकारकत्वसम्बन्धेन । ननु समानप्रकारकत्वं
सम्बन्धः समानविशेष्यकत्वं वा इत्यत्र विनिगमकाभावेन द्वयोरेव-
सम्बन्धत्वादसिद्धस्याज्ञाने कथमसिद्धे इच्छेत्यत आह, 'न तु समा-
नविषयत्वेनापीति न तु समानविशेष्यकत्वसम्बन्धेनापीत्यर्थः । नन्व-
न्यत्राकल्पनेऽपि सुखत्वादिप्रकारकसुखादिज्ञानात् सुखत्वादि-
प्रकारक-सुखादौच्छोत्पत्तिस्थल एव विनिगमकाभावात्तस्य सम्ब-
न्धत्वं कल्पनीयं इत्यत आह, 'समानविषयत्वे सत्यपीति, 'इच्छा-
कृत्योरभावादिति गुणत्वादिप्रकारक-सुखादिज्ञानात् सुखत्वादि-
प्रकारकसुखादिगोचरेच्छा-कृत्योरभावादित्यर्थः । न च घटत्वप्रका-
रक-यत्किञ्चिद्वटज्ञानाद्वटत्वप्रकारेण घटान्तरे इच्छोत्पादवारणाय
समानविषयकत्वमप्यावश्यकमिति वाच्यं । प्रकृतवत्तस्यापीष्टत्वात् । न
च तथापि पाकत्वप्रकारक-सिद्धपाकज्ञानात् कथमसिद्धे पाके
चिकीर्षा वर्तमानस्रक्कृतिसाध्यत्वस्य सिद्धपाके बाधितत्वेनान्यथा-

प्रसिद्धधूने वह्निसम्बन्धावगमात् कासान्तरीय-देशान्त-
रीयधूमस्य मानाभावेनाज्ञानात् सामान्येन तु सकल-
धूमापस्थितौ धूमान्तरे विशेषादर्शनेन संशयो युज्यते ।

धूमे, 'विशेषादर्शनेन' व्याप्यत्वानिश्चयेन । एतच्चापाततः प्रसिद्धधूमे
धूमत्वेन व्याप्तिनिश्चयः तद्धूमत्वेन वा आद्ये सामान्यलक्षणास्त्री-
कारेऽपि संशयोऽसिद्ध एव समानधर्मितावच्छेदककभिन्नधर्मिक-
निश्चयस्यापि प्रतिबन्धकत्वात् । द्वितीये धूमत्वप्रकारेण तत्रैव संशयः
स्यात् समानप्रकारकनिश्चयस्यैव विरोधात्^(१) । न च मास्तु संशया-
न्यथानुपपत्त्या सामान्यलक्षणायाः प्रत्यासत्तित्वस्त्रीकारः तथापि
यत्किञ्चिद्धूमादौ धूमत्वादिप्रकारकज्ञानानन्तरं धूमत्वप्रकारेण सक-
लधूमविषयकप्रत्यक्षमनुभवसिद्धमिति तदनुरोधादवश्यं सामान्यलक्ष-
णा स्त्रीकरणीयेति वाच्यं । तादृशानुभवस्यैवासिद्धेः तादृशानुभवस्य
प्रामाणिकत्वे विवादस्यैवापर्याप्तिः^(२) इति संचेपः । विस्तरस्तु अस्म-
त्कृतसिद्धान्तरहस्येऽनुसन्धेयः ।

लौलावतीकारमतमाशङ्कते, 'यत्त्विति, सामान्यलक्षणायाः
प्रत्यासत्तित्वानभ्युपगम इति शेषः, 'पाकादौ चिकौर्ष्वेति पा-
कादिविशेष्यकवर्त्तमानस्वरूपासाध्यत्वप्रकारकेच्छेत्यर्थः, 'सुखादावि-
च्छेति सुखादिविशेष्यक-सुखत्वादिप्रकारकेच्छेत्यर्थः, 'दृष्टाविर-

(१) विरोधित्वादिति ख० । संशयविरोधित्वादिति ग० ।

(२) विवादस्यैवाप्रसक्तेरित्यर्थः, क्वचित्तथैव पाठः ।

सिद्धान्तात् । न च सर्वज्ञत्वे संशयो न स्यादिति दोषः,
घटः स इति घटत्वप्रकारकं हि ज्ञानं संशयविरोधि

ज्ञानेच्छयोः कार्य-कारणभावे सुखत्वादिप्रकारक-मिद्वसुखादि-
ज्ञानादनुपस्थितामिद्वसुखादाविवानुपस्थिते पदार्थान्तरेऽपि सुख-
त्वादिप्रकारकेच्छापत्तिः । न च पदार्थान्तरे सुखत्वाद्यसंसर्गाग्रहासत्त्वान्न
तत्रेच्छेति वाच्यं । अनुपस्थितेऽसंसर्गाग्रहस्य सुतरां सत्त्वात् । न च
तत्प्रकारकज्ञानत्वेन तत्प्रकारकतदाग्रयविषयकेच्छात्वेन कार्य-कार-
णभावो न तु समानप्रकारकत्वं प्रत्यासत्तिरिति वाच्यं । रजतत्वा-
दिप्रकारकज्ञानाद्भ्रमस्थले शुक्लादौ रजतत्वादिप्रकारकेच्छानुपपत्तेः ।
न च परस्य तत्रेच्छानुपपत्तिः, शुक्लौ रजतार्थिप्रवृत्त्यनुरोधेन
तेनापि तदङ्गीकारात् तस्मादनुपस्थिते उपस्थितेष्टभेदाग्रहादिच्छेति
परेणाभ्युपेयं । अतएव इदन्वादिना उपस्थिते शुक्लादौ रजतत्वे-
नेच्छा तथाच भाविनि विषये ज्ञात एवेच्छेति तदर्थमवश्यं
सामान्यलक्षणा स्वीकरणीयेति चेत् । न । समानप्रकारकत्वप्रत्यासत्त्या
ज्ञानत्वेनेच्छात्वेन समवायघटितसामानाधिकरण्यप्रत्यासत्त्या तत्प्र-
कारकज्ञानत्वेन तत्प्रकारकेच्छात्वेनैव सामान्यकार्य-कारणभावः,
विशेषतस्तु रजते रजतत्वप्रकारकेच्छायां दोषाभावः, अरजते
रजतत्वप्रकारकेच्छायाञ्च रजतेन सममगृहीतभेदस्यारजतस्य ज्ञानं
हेतुरिति^(१) परसिद्धान्तात् । न च तथापि परसिद्धान्तो यथा

(१) रजतेन समं भेदाग्रह एव हेतुरितीति घ० ।

तच्च न वृत्तं स्वसामग्र्यविरहात्, अतो घटत्वादिसकल-
विशेषज्ञानेऽपि स घटो न वेति संशय इति ।

तथास्तु स्वमते भेदाग्रहमपेक्ष्य लाघवात्तद्विशेष्यक-तत्प्रकारक-
ज्ञानस्य तद्विशेष्यक-तत्प्रकारकेच्छां प्रति हेतुतया सुखत्वादि-
रूपेणासिद्धसुखादाविच्छानुरोधेन सामान्यलक्षणावश्यकीति वाच्यं ।
स्वमतेऽपि सुखत्वादिरूपेण सिद्धसुखादावेवेच्छोत्पद्यते असिद्धसुखे
इच्छानुत्पादेऽपि चतिविरहात् । एवं चिकीर्षापि पाकत्वादिरूपेण
वर्तमानस्वकृतिसाध्यत्वभ्रमात् सिद्धपाकादावेवोत्पद्यते नासिद्धपाके
चिकीर्षाया अयथार्थत्वेऽपि^(१) चतिविरहात् तत्तत्पाकत्वरूपेणैव
विशेषदर्शनसत्त्वेन भ्रमोत्पत्तावपि बाधकाभावाच्चेत्यस्य सुवचत्वात् । न
च तत्र सिद्धत्वज्ञानं विरोधीति वाच्यं । तदवच्छेदेनासिद्धत्वज्ञानस्यैव
तत्प्रकारकेच्छां प्रति विरोधित्वात् । न च सुखत्वाद्यवच्छेदेन सिद्धत्व-
ज्ञानं, प्रकृते तत्सत्त्वे इच्छोत्पत्तेः केनाप्यनङ्गीकारात् । वस्तुतस्तु सामा-
न्यलक्षणां विनापि अयं कालः सुखोत्पादकालीनध्वंसप्रतियोगी
अयं कालः पाकोत्पादकालीनध्वंसप्रतियोगी सृष्टिकालत्वादित्याद्य-
नुमानात् पक्षधर्मतावलेनासिद्धसुखादेरसिद्धपाकादेश्च ज्ञानसम्भवः
सामान्यलक्षणानभ्युपगमे विशिष्टबुद्धिसामान्यं प्रति विशेषणज्ञानस्था-
पि हेतुत्वानभ्युपगमेन पक्षधर्मतावलम्ब्यासिद्धसुखादेर्ज्ञानविरहेऽपि
चतिविरहात् ज्ञाते च सिद्धपाके ज्ञानलक्षणाप्रत्यासत्त्यैव तत्र स्वमते

(१) अनुत्पादेऽप्येति क० ।

अनसा वर्त्तमानस्वकृतिसाध्यत्वज्ञानसम्भवेन चिकीर्षासम्भवात् सामान्यलक्षणायाः प्रत्यासत्तित्वानभ्युपगमेऽपि ज्ञानलक्षणायाः स्वमते प्रत्यासत्तित्वावश्यकत्वादित्यास्तां विस्तरः। 'न चेति, सामान्यलक्षणायाः प्रत्यासत्तित्वस्वीकार इति शेषः, 'संशयविरोधीति घटो न वेति संशयविरोधीत्यर्थः, समानाकारो हि निश्चयः संशयविरोधी अत एव जातिमानित्यादिनिश्चयेऽपि घटो न वेति संशयः, प्रकृते तु घटो न वेति संशयः कोटितावच्छेदकघटत्वांशे निष्प्रकारकः, प्रमेयवन्त इति सामान्यलक्षणाजन्यप्रत्ययस्तु न तथेति भावः। 'स्वसामग्रीविरहादिति, घटत्वांशे, निष्प्रकारकं^(१) घटत्वविशिष्टज्ञानं प्रति घटत्वांशे निष्प्रकारकं^(२) ज्ञानमेव हेतुः अन्यथा जातित्वादिरूपेण घटत्वप्रकारकघटज्ञानेऽपि भूतलं घटवदिति घटत्वांशे अन्याप्रकारकघटत्वप्रकारकघटत्वविशिष्टबुद्ध्यापत्तेः जातित्वरूपेण घटत्वज्ञानेऽप्ययं घट इति विशिष्टबुद्ध्यापत्तेश्च तादृशविलक्षणविषयताया भूतलं घटाभाववदिति बाधनिश्चयाभावस्थायं न घट इति भेदग्रहाभावस्य च कार्यतावच्छेदकत्वेन सामान्यसामग्रीमर्यादयैव तदवच्छिन्नापादनसम्भवात्। न च तदानीं घटत्वांशे जातित्वप्रकारकज्ञानस्यापि सामग्रीसत्त्वान्न घट इति घटत्वांशे निष्प्रकारकं^(३) ज्ञानमिति वाच्यं। जातित्वादिप्रकारकज्ञानसामग्र्यास्तादृशविलक्षणविषयताशालिज्ञानं प्रत्यप्रतिबन्धकत्वेन तदुत्पत्तावपि बाधकाभावात्, अन्यथा

(१) निर्विकल्पकात्मक० इति ग० घ० ।

(२) निर्विकल्पकात्मकमिति ग० घ० । (३) निर्विकल्पकमिति घ० ।

इति श्रीमद्भट्टेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ
अनुमानाख्यद्वितीयखण्डे सामान्यलक्षणासिद्धान्तः ।

जातिमान् घट इति द्विविधविषयताशालिज्ञानानुपपत्तेः तदानीं
जातित्वप्रकारेण ज्ञानसामग्र्या आवश्यकत्वात्, एवञ्च प्रकृते प्रमेयत्व-
सामान्यलक्षणाजन्यघटत्वज्ञानस्य घटत्वांशे प्रमेयत्वप्रकारकत्वनियमान्न
ततो घटः स इति धीसम्भव इति दिक्^(१) ।

इति श्रीमथुरानाथतर्कवागीश-विरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये
अनुमानाख्यद्वितीयखण्डरहस्ये^(२) सामान्यलक्षणारहस्यं ।

(१) इति भावः इति दिगिति ग०, घ० ।

(२) महामहोपाध्यायश्रीलश्रीमथुरानाथतर्कवागीशभट्टाचार्यविरचित-
मनुमानरहस्ये सामान्यलक्षणारहस्यं सम्पूर्णमिति क० । सामान्य-
लक्षणारहस्यं इति ग० । इति महामहोपाध्यायश्रीमथुरानाथ-
तर्कवागीशभट्टाचार्यविरचितानुमानान्तर्गतसामान्यलक्षणाटिप्पणी
समाप्तेति घ० ।

अथोपाधिवादः ।



उपाधिज्ञानाद्वाभिचारज्ञाने सति न व्याप्तिनिश्चय-
इत्युपाधिर्निरूप्यते ।

तथोपाधिः साध्यत्वाभिमतव्यापकत्वे सति साध-

अथोपाधिवाद्दर्शयं ।

प्रसङ्गसङ्गत्या उपाधिं निरूपयितुं निरूपणप्रयोजनं दर्शयन्
श्रित्यावधानाद्य प्रतिजानीते^(१) 'उपाधीति, तथाच परस्थापनायां^(२)
व्याप्तिनिश्चयप्रतिबन्धाद्य उपाधिरुद्धाद्यः स्वस्थापनायां व्याप्ति-
निश्चयाद्य उपाधिर्निरस्यः स च उपाधिज्ञानं विना न सम्भवतीति
तन्निरूपणमिति भावः ।

पितृचरणस्य व्याप्तिग्रहोपायनिरूपणानन्तरं उपाधिं निरूपयितुं
व्याप्तिग्रहोपायेन सहैककार्यानुकूलत्वसङ्गतिं दर्शयन् श्रित्यावधानाय
प्रतिजानीते 'उपाधिज्ञानादिति परप्रयुक्तहेतावुपाध्युद्भावने उपाधि-

(१) अत्र प्रतिज्ञा अव्यवहितोत्तरकालकर्तृत्वप्रकारकबोधानुकूलो व्या-
पारः, स च 'उपाधिज्ञानादित्यादिः 'निरूप्यते' इत्यन्तो मूलग्रन्थः,
निरूप्यत इत्यत्र वर्तमानसामीप्यार्थकलट्प्रत्ययेन निरूपणस्य वर्त-
मानकालाव्यवहितोत्तरकालीनत्वेन प्रतीयमानत्वादिति भावः ।

(२) परकीयहेताविति ग० ।

नत्वाभिमतव्यापकः, अनौपाधिकत्वज्ञानञ्च न व्याप्ति-
ज्ञानेहेतुरतो व्यापकत्वादिज्ञाने नान्योन्याश्रयः ।

ज्ञानादित्यर्थः, तथाच यथा स्वीयहेतौ व्याप्तिग्रहोपायसत्त्वे व्याप्ति-
निश्चयाद्विजयः, तथा परप्रयुक्तहेतावुपाध्युद्भावेऽपि उपाधिज्ञाना-
द्विजय इति विजयलक्षणैककार्यानुकूलत्वमेव सङ्गतिरिति भाव-
इति प्राहुः ।

मिश्रास्तु व्याप्तिग्रहोपायोपपादकत्वलक्षणोपाद्वात एव व्याप्ति-
ग्रहोपायनिरूपणानन्तरं उपाधिनिरूपणे सङ्गतिः, उपाधिज्ञाने तद-
भावज्ञानं तदभावज्ञाने च तद्व्याप्यस्य व्यभिचारस्याभावज्ञानं तज्ज्ञाने
च प्रतिबन्धकसत्त्वान्न व्यभिचारज्ञानमिति क्रमेणोपाधेर्याप्तिग्रहो-
पायव्यभिचारज्ञानविरहं प्रत्युपपादकत्वात्, तथाच मूले उपाधि-
ज्ञानान्न व्यभिचारज्ञाने व्याप्तिनिश्चय इति योजना, 'न व्यभिचार-
ज्ञान इत्यस्य व्यभिचारज्ञानाभावे सतीत्यर्थः । न च नञर्थे अभावे
प्रतियोगितया प्रथमेतरविभक्त्यन्तार्थस्य नान्वय इति व्युत्पत्त्या सप्त-
म्यन्तार्थस्य व्यभिचारज्ञानस्य कथं नञर्थेऽन्वय इति वाच्यं । तादृश-
व्युत्पत्तौ मानाभावात्, "तेषां मोहः पापीयानामूढस्येतरोत्पत्ते-
रिति न्यायसूत्रे पञ्चम्यन्तार्थस्याप्युत्पादस्य नञर्थेऽन्वयदर्शनात्, 'तेषां'
राग-द्वेष-मोहानां त्रयाणां मध्ये, 'मोहः पापीयान्' मोहः श्रेष्ठ-
तमोदोषः, 'अमूढस्य' मोहरहितस्य पुरुषस्य, 'इतरयोः' रागद्वेषयो-
रुत्पत्तेरभावादिति तदर्थ्यादिति प्राहुः ।

'तत्र' करणीये निरूपणे, विषयत्वं सप्तम्यर्थः, तथाच निरूपण-

यद्वा व्यापकत्वं तद्वन्निष्ठात्यन्ताभावाप्रतियोगित्वं,
तत्प्रतियोगित्वञ्चाव्यापकत्वं, प्रतियोगित्वञ्च तदधिकर-

विषयीभूत उपाधिरीदृशो धर्म इत्यन्वयः । 'साध्यत्वाभिमतमिति
अत्र सत्यन्तदलानुपादाने वक्त्रिमान् धूमादित्यादौ पर्वतत्वादा-
वतिव्याप्तिरिति तदुपादानं, तन्मात्रोपादाने च द्रव्यत्वादावति-
प्रसङ्ग इति विशेष्यदलं, साध्यत्व-साधनत्वे व्यापकत्व-व्याप्यत्वे सोपाधौ
वस्तुतो न स्त इत्युभयत्राभिमतपदं । ननु साध्यव्यापकत्वं साध्यनिष्ठ-
व्याप्तिनिरूपकत्वं तच्च साध्ये उपाधिव्याप्तौ गृहीतायामेव ग्राह्यं
सा चानौपाधिकत्वज्ञानादेव ग्राह्या अनौपाधिकत्वञ्च प्रकृते साध्यस्य
यावदुपाधिव्यापकव्यापकत्वं उपाधिव्यापकेषु यावत्सु साध्यनिष्ठ-
व्याप्तिनिरूपकत्वं पर्यवसितं तथाच साध्ये उपाधिव्याप्तौ गृहीताया-
मेव उपाधौ साध्यनिष्ठव्याप्तिनिरूपकत्वज्ञानं उपाधिव्यापकयाव-
दन्तर्गते उपाधौ साध्यनिष्ठव्याप्तिनिरूपकत्वज्ञाने च साध्ये उपाधि-
व्याप्तिज्ञानं तस्यानौपाधिकत्वघटकत्वादित्यन्योन्याश्रयः । न च
साध्योपाध्योरन्योन्याभावाद्येकतरगर्भव्याप्तिज्ञानं प्रति अत्यन्ताभावा-
द्येकतरगर्भव्याप्तिघटितानौपाधिकत्वज्ञानं कारणमतो नान्योन्या-
श्रय इति वाच्यं । तथासत्यनवस्थापत्या तथा वक्तुमशक्यत्वादित्यत-
आह, 'अनौपाधिकत्वेति, 'व्यापकत्वादौत्यादिपदेन साधननिष्ठ-
व्याप्तिनिरूपकत्वाभावरूपसाधनाव्यापकत्वपरिग्रहः ।

व्याप्तिनिरूपकत्वापेक्षया लाघवादाह, 'यदेति, तथाच साध्य-
वन्निष्ठात्यन्ताभावाप्रतियोगित्वे सति साधनवन्निष्ठात्यन्ताभावप्रति-

योगित्वमुपाधित्वमिति फलितं^(१) । नन्वेवं धूमवान् वक्त्रेरित्यादा-
 वार्द्रैन्धनादावव्याप्तिः तादृशाप्रतियोगित्वस्यैवाधिद्वेः । न च तादृश-
 प्रतियोगितानवच्छेदकधर्मवत्त्वे सतीति सत्यन्तार्थ इति वाच्यं ।
 वक्त्रिमान् धूमादित्यादौ वक्त्रिसामग्रीन्धनादौ तादृशप्रमेयत्वादि-
 नत्वेन महानसत्त्वादौ चातिव्याप्तेरिति चेत् । न । साध्यवन्निष्ठाभाव-
 प्रतियोगितानवच्छेदकः सन् यः साधनवन्निष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगि-
 तावच्छेदको धर्मस्तद्वत्त्वं तेन रूपेण उपाधित्वमित्युक्तत्वात् । एवं
 प्रतियोगितयोः उपाधितावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नत्वमपि बोध्यं तेन
 धूमवान् वक्त्रेरित्यादावार्द्रैन्धनत्वादेः समवायादिना धूमवन्निष्ठा-
 भावप्रतियोगितावच्छेदकत्वेऽपि न क्षतिः न वा वक्त्रिमान् धूमादि-
 त्यादौ साध्यव्यापकतावच्छेदकस्य वक्त्रित्व-वक्त्रिसामग्रीत्वादेः समवा-
 यादिना साधनवन्निष्ठाभावप्रतियोगितावच्छेदकत्वेऽप्यतिव्याप्तिः ।
 नन्वेवं द्रव्यं सत्त्वादित्यादावव्याप्यवृत्तिसंयोगाद्युपाधावव्याप्तिः तस्य
 यथोक्तसाध्यव्यापकत्वविरहात्, एवं गुणः सत्त्वादित्यादौ संयोगा-
 भावादावतिव्याप्तिस्तस्यापि यथोक्तसाधनाव्यापकत्वात् इत्यत आह,
 'प्रतियोगित्वञ्चेति प्रतियोगित्वञ्च प्रतियोगिनोः निष्ठताप्रतियोगिनोः
 साध्यवत्-साधनवतोर्धर्मश्च साध्यवत्-साधनवतोर्विशेषणञ्चेति यावत्,
 'तदधिकरणेति, 'तदधिकरणं प्रतियोगितावच्छेदकस्याधिकरणं
 प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नमिति यावत्, तदधिकरणत्वमित्यर्थः,
 पूर्वमप्रसिद्धादिवारणाय प्रतियोगित्वपदस्य प्रतियोगितावच्छेदक-
 परत्वावश्यकतया तच्छब्देन तस्यैव परामर्शात् । प्रतियोगितावच्छेद-

कावच्छिन्नैत्युपादनात् द्रव्यं सत्त्वादित्यादौ विशिष्टसत्त्वे नाव्याप्तिः
नवा सत्तावान् जातेरित्यादौ विशिष्टसत्त्वे अतिव्याप्तिरिति भावः ।
वस्तुतस्तु ननु वस्तुमात्रस्यैव वैशिष्ट्य-व्यासज्यवृत्तिधर्मावच्छिन्नाभावस्य
साध्यवति सत्त्वेन तद्वन्निष्ठात्यन्ताभावाप्रतियोगित्वस्याप्रसिद्धत्वात् कथं
तस्य साध्यव्यापकत्वरूपत्वमिति यथाश्रुतलक्षणोपरि शङ्कायाभाह,
‘प्रतियोगित्वञ्चेति तद्वन्निष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वञ्चेत्यर्थः, ‘तदधि-
करणानधिकरणत्वं’ तदधिकरणानधिकरणकत्वं स्वानधिकरणतद-
धिकरणकत्वमिति थावत्, ‘तत्पदं साध्यपरं’, तथाच स्वानधिकरण-
साध्याधिकरणकं यद्युत्तदन्यत्वं साध्यव्यापकत्वमिति फलितं, एवं
साधनवन्निष्ठाभावप्रतियोगित्वमपि स्वानधिकरणसाधनाधिकरणकत्वं
वक्तव्यं, अन्यथा वन्निष्ठान् धूमादित्यादावपि साध्यव्यापकस्य
द्रव्यत्वादेर्धूमवन्निष्ठोभयाभाव-वैशिष्ट्याद्यवच्छिन्नाभावप्रतियोगित्वादु-
पाधितापत्तेः । न चैवं धूमवान् वक्तेरित्यादावयोगोलकभेदादिरूपै-
कव्यक्त्युपाधौ लक्षणसम्भवेऽप्यार्द्रैन्धनादिरूपनानाव्यक्त्युपाधावव्याप्तिः ।
चालनीन्यायेन सर्वसामेवार्द्रैन्धनव्यक्तीनां स्वानधिकरणसाध्याधि-
करणकतया साध्यव्यापकत्वादिरहादिति वाच्यं । स्वावच्छिन्नानधि-
करणसाध्याधिकरणकं यद्युत्तदन्यत्वे सति स्वावच्छिन्नानधिकरण-
साधनाधिकरणको धो धर्मस्तद्वत्त्वं तेन रूपेण उपाधित्वमिति
विवक्षितत्वात्, प्रथमस्वपदं अन्यत्वप्रतियोगिपरं, द्वितीयञ्चोपाधि-
तावच्छेदकपरं, अतएव द्रव्यं सत्त्वात् गुणः सत्त्वादित्यादौ संयोग-
तदभावयोरपि नाव्याप्त्यतिव्याप्त्यवकाश इत्येव तत्त्वं ।

प्राञ्चस्तु ‘तदधिकरणानधिकरणत्वमित्यत्र ‘तत्पदं’ अभावपरं,

ज्ञानधिकरणत्वमिति वदन्ति । तन्न । साधन-पक्षधर्मा-
वच्छिन्नसाध्यव्यापकोपाध्यव्याप्तेः । न च तथैरनुपा-

तथाचात्र प्रतियोगित्वं न स्वरूपसम्बन्धविशेषः किन्तु अभावाधि-
करणावृत्तित्वं, अतो न द्रव्यं सत्त्वात् गुणः सत्त्वादित्यादौ संयोग-
तदभावयोरव्याप्त्यतिव्याप्त्यवकाश इति भाव इत्याहुः । तदसत् ।
तादृशप्रतियोगित्वं व्यापकतादलमात्रे विवक्ष्यते साधनाव्यापकत्वदल-
मात्रे वा उभयदल एव वा, आद्ये साध्यवन्निष्ठाभावाधिकरणावृत्तिभि-
न्नत्वं साध्यव्यापकत्वं फलितं तथाच वन्निगन् धूमादित्यादिसङ्केता-
नपि साधनाव्यापके घटादावतिव्याप्तिः तस्यापि साध्यवन्निष्ठजलत्वाद्य-
भावाधिकरणवृत्तितया साध्यव्यापकत्वात्, द्वितीये साधनवन्निष्ठा-
भावाधिकरणावृत्तित्वं साधनाव्यापकत्वं फलितं तथाचासम्भवः धूमवान्
वह्नेरित्यादावयोगोलकान्यत्वादेरपि साधनवन्निष्ठजलत्वाद्यभावाधि-
करणवृत्तितया साधनाव्यापकत्वविरहात्, अतएव न तृतीयोऽपि ।
न च साध्यवन्निष्ठस्वाभावाधिकरणावृत्तियद्यत्तदन्यत्वं साध्यव्यापकत्वं
विवक्षितमिति वाच्यं । अव्यापकत्वदले प्रतियोगित्वस्य स्वरूपसम्बन्ध-
विशेषरूपत्वे द्रव्यं पृथिवीत्वादित्यादौ संयोगादौ अव्याप्तिः,
यदिच साधनाव्यापकत्वमपि साधनवन्निष्ठस्वाभावाधिकरणावृत्तित्वं
तदा द्रव्यं सत्त्वादित्यादौ संयोगादौ अव्याप्तिः तस्य सत्तावन्निष्ठस्वा-
भावाधिकरणद्रव्यवृत्तितया साधनाव्यापकत्वविरहात् । न च साध्यव्या-
पकत्वं साध्यवन्निष्ठस्वाभावाधिकरणावृत्तिभिन्नत्वं, साधनाव्यापकत्वञ्च
साधनवन्निष्ठयत्किञ्चिदभावाधिकरणावृत्तित्वं अतो न द्रव्यं सत्त्वा-

धित्वं, दूषकतावीजसाम्यात् । मित्रातनयत्वेन श्याम-
त्वसाधने शाकपाकजत्वस्य प्रत्यक्षस्पर्शाश्रयत्वेन वायोः
प्रत्यक्षत्वे साध्ये उद्भूतरूपवत्त्वस्य च शास्त्रे प्रयोजकत्वे-

दित्यादौ संयोगादावव्याप्तिः द्रव्यं पृथिवीत्वादित्यादौ संयोगादा-
वतिव्याप्तिर्वा इति वाच्यं । तथापि द्रव्यं पृथिवीत्वादित्यादौ त-
त्तत्संयोगव्यक्तावतिव्याप्तेर्दुर्लभत्वादिति दिक् ।

‘साधन-पक्षधर्म’ इति वायुः प्रत्यक्षः प्रत्यक्षविषयाश्रयत्वादित्यादौ
पक्षधर्मवहिर्द्रव्यत्वावच्छिन्नप्रत्यक्षत्वव्यापके उद्भूतरूपवत्त्वे काकः श्यामो
मित्रातनयत्वादित्यादौ साधनावच्छिन्नसाध्यव्यापके शाकपाकजत्वे
चाव्याप्तिरित्यर्थः, तयोः साध्यवन्निष्ठाभावाप्रतियोगित्वाभावादिति
भावः । ‘तयोः’ पक्षधर्म-साधनावच्छिन्नसाध्यव्यापकयोः, ‘दूषकतेति,
वक्ष्यमाणरौत्या उभयत्रैव व्यभिचारोन्नायकत्वसत्त्वादिति भावः ।
तयोरुपाधित्वानङ्गीकारे सिद्धान्तविरोधमप्याह, ‘मित्रेति, काका-
देरित्यादि, ‘प्रत्यक्षस्पर्शाश्रयत्वेनेति प्रत्यक्षस्य स्पर्शः विषयतारूपः
सम्बन्धः यत्रेति व्युत्पत्त्या प्रत्यक्षविषयाश्रयत्वेनेत्यर्थः, तथाचाद्ये
साधनावच्छिन्नसाध्यव्यापकत्वं द्वितीये पक्षधर्मवच्छिन्नसाध्यव्यापक-
त्वमिति भेदेनोदाहरणद्वयमिति ध्येयं^(१) । ‘प्रयोजकत्वेन’ व्यभि-
चारानुमानप्रयोजकत्वेन, ‘पक्षेतर इति पर्वतो धूमवान् वक्त्रे-
रित्यादौ पर्वतेतरादावित्यर्थः । न च पक्षेतरस्य प्रमेयत्वादेः सर्वत्र
सत्त्वेन साधनव्यापकतया कथमतिव्याप्तिरिति वाच्यं । तादात्म-

नोपाधित्वस्वीकाराच्च पक्षेतरैऽतिव्याप्तेश्च । न च व्यतिरेके पर्वतेतरान्यत्वादित्यत्र इतरान्यत्वस्यासिद्धिवार-

सम्बन्धेन तस्य साधनाव्यापकत्वात् । न च तथापि पक्षे तादात्म्यसम्बन्धेन साध्याव्यापकतया कथमतिव्याप्तिरिति वाच्यं । 'अतिव्याप्तेरित्यस्य उक्तदूषणौपयिकत्वरूपज्ञानस्य अतिप्रसक्तेरित्यर्थात् पक्षातिरिक्त एव साध्यव्यापकत्वस्य ग्राह्यत्वादित्यत्र साध्यसन्देहदशायामुपाधित्वग्रहः कुत्रापि न स्यादिति भावः । न चेतरेणशब्दस्य सर्व्वनामतया सर्व्वनामकार्यापत्तिरिति वाच्यं । पक्ष इतरो यस्मादिति वज्रब्रीहि-समासात् "न वज्रब्रीहवित्यनेन सर्व्वनामकार्य्यनिषेधात् । 'व्यतिरेक-इति साध्यव्यतिरेके साध्य इत्यर्थः, 'इत्यत्र' हेतौ, 'इतरान्यत्वस्येति, वस्तुमात्रस्यैव किञ्चिदपेक्षया इतरत्वादिति भावः । 'व्यतिरेके व्यर्थविशेषणत्वादिति स्वव्यतिरेकेण साध्यव्यतिरेके साध्ये व्यभिचारा-वारकविशेषणत्वादित्यर्थः, 'न स इति, तथाच येन रूपेण साध्य-व्यापकता तद्रूपावच्छिन्नस्वाभावेन साध्याभावसाधने व्यभिचारा-वारकविशेषणशून्यत्वे सतीति विशेषणं देयमिति भावः । 'बाधोन्नीतस्येति बाधोन्नीतत्वं 'बाधेन पक्षे साध्यबाधेन, साध्य-व्यापकतया प्रमितत्वं, वज्रिरनुष्णः कृतकत्वादित्यादौ वज्रीतरत्व-स्येत्यर्थः, 'न चेष्टापत्तिरिति, व्यभिचारावारकविशेषणत्वेन व्यर्थ-विशेषणतया सत्प्रतिपक्षोन्नायकत्वस्योपाधेर्दूषकतावीजस्य तत्राभावा-दिति भावः । 'विशेषणं विनेति वज्रादिविशेषणं विनेत्यर्थः, 'व्याप्त्यग्रहेणेति व्याप्तिग्रहसम्भवेनेत्यर्थः, 'तत्सार्थकत्वादिति वज्रा-

णार्थं पर्वतपदं विशेषणमिति व्यतिरेके व्यर्थविशेषण-
त्वान्न स उपाधिः, बाधान्नीतस्याप्यनुपाधितापत्तेः ।

दिविशेषणे दूषणावहस्य व्याप्तिग्रहानुपयुक्तत्वरूपवैयर्थ्यस्याभावादि-
त्यर्थः, तथाच उपाधिलक्षणघटकतया त्वदभिमतस्य वैयर्थ्याभावस्य
तत्रासत्त्वेऽपि दूषणावहस्य वैयर्थ्यस्याभावात् सत्प्रतिपक्षोन्नयनसम्भवेन
तस्यानुपाधित्वे दृष्टापत्त्यसम्भव इति भावः । आशयमविदित्वा शङ्कते,
'वस्तुगत्येति, पर्वतो धूमवान् वक्तेरित्यादौ पर्वतेतरश्च न तथेति
भावः । भावमुद्घाटयति, 'पक्षातिरिक्त इति, सहचारज्ञानेनेति
शेषः, 'तच्च' तादृशसाध्यव्यापकताज्ञानञ्च, 'तत्रापीति बाधानुन्नीत-
पक्षेतरत्वेऽपीत्यर्थः, इति साम्प्रदायिकाः ।

नव्यास्तु अत्र साध्यव्यापकत्वं पक्षेतरौयत्वावच्छिन्नसाध्यनिरूपित-
मुक्तं साध्यसामान्यनिरूपितं वा, आद्ये आह, 'पक्षेतर इति, इद-
मुपलक्षणं पक्षमात्रवृत्तिसाध्यकेऽव्याप्तेरित्यपि द्रष्टव्यं, अन्यमाशङ्कते,
'वस्तुगत्येति, इति ग्रन्थं योजयन्ति ।

ननु पक्षे साध्यसन्देहसत्त्वे व्यभिचारसंशयसत्त्वात् पक्षातिरिक्त-
स्थले सहचारज्ञानमात्रात् साध्यव्यापकत्वग्रहः तत्र कथं स्यादित्यत-
आह, 'अन्यथेति, 'अनुपाधित्व इति साध्यव्यापकताया अनिश्चय-
इत्यर्थः, 'उपाधिमात्रमिति पक्षे साध्यसन्देहदशायां पक्षावृत्तित्वेन
गृहीतस्य उपाधिमात्रस्य साध्यव्यापकत्वनिश्चय उच्छिद्येतेत्यर्थः,
यथाश्रुते पक्षवृत्तित्वेन निश्चितानामेवोपाधौनां पक्षे साध्यसन्देह-

न चेष्टापत्तिः, इतरान्यत्वस्याप्रसिद्ध्या विशेषणं विना
व्याख्यग्रहेण तत्सार्यकत्वात् । वस्तुगत्या साध्यव्यापकः
पक्षेतर उपाधिरिति चेत्, अस्तु तथा, तथापि पक्षा-

सत्त्वेऽपि साध्यव्यापकत्वनिश्चयसम्भवात् असङ्गतेः । तथाच पक्षे
साध्यसन्देहस्तदाहितव्यभिचारसंशयो वा न साध्यव्यापकतानिश्चय-
परिपन्थीति त्वयाप्येष्टव्यमिति भावः । 'विपक्षाव्यावर्तकेति 'वि-
पक्षः' साध्याभाववान्, तदव्यावर्तकं तन्निष्ठाभावप्रतियोगिताव-
च्छेदकत्वासम्पादकं यद्विशेषणं सन्बन्धसामान्येन तच्छून्यत्वं साध्य-
व्यापकत्वं साधनाव्यापकतावच्छेदके विशेषणमित्यर्थः । तथाच विप-
क्षनिष्ठाभावप्रतियोगितावच्छेदकत्वासम्पादकविशेषणशून्यसाध्यव्याप-
कतावच्छेदकसाधनाव्यापकतावच्छेदकधर्मवत्त्वमुपाधित्वमिति भावः ।
सम्पादकत्वञ्चास्यैतन्निष्ठाभावप्रतियोगितावच्छेदकत्वमेतदधीनमिति
प्रतीतिमिद्धः स्वरूपसम्बन्धविशेषः, विपक्षव्यावर्तकविशेषणवद्ध्यत्सा-
ध्यव्यापकतावच्छेदकं साधनाव्यापकतावच्छेदकं तद्वत्त्वमित्युक्तौ हृ-
देतरत्वविशिष्टपर्वतेतरत्व-पर्वतेतरत्वविशिष्टहृदेतरत्वादावतिप्रसङ्ग-
इत्यतो निषेधद्वयगर्भता, 'नाधीनीतेति वक्त्रिरनुष्णः कृतकत्वादित्यत्र
वक्त्रौतरत्वस्य परिग्रह इत्यर्थः, 'पक्षस्यैव विपक्षत्वादिति,
पक्षस्यैव विपक्षतया वक्त्रिविशेषणस्येतरत्वनिष्ठविपक्षनिष्ठाभावप्रतियो-
गितावच्छेदकत्वसम्पादकत्वादिति भावः । 'न तु पर्वतेतरत्वादेरिति
न तु पर्वतो वक्त्रिमान् धूमादित्यादौ पर्वतेतरत्वादेः परिग्रह इत्यर्थः,
तत्र पर्वतविशेषणस्येतरत्वे पर्वतनिष्ठाभावप्रतियोगितावच्छेदकत्वस-

तिरिक्ते साध्यव्यापकताग्रहादुपाधेर्दूषकत्वं, तच्च तत्रा-
प्यस्ति, अन्यथा पक्षे साध्यसन्देहादनुपाधित्वे उपा-
धिमात्रमुच्छिद्येत । विपक्षाव्यावर्तकविशेषणशून्यत्वं

न्यादकत्वेन विपचनिष्ठाभावप्रतियोगितावच्छेदकत्वासम्पादकत्वादिति
भावः । आदिपदात् पर्वतावयववृत्त्यन्यत्व-पर्वतेतरद्रव्यत्व-हृद-पर्वत-
संयोगानाधारत्व-हृदेतरत्वविशिष्टपर्वतेतरत्व-पर्वतेतरत्वविशिष्टहृदे-
तरत्वादेः परिग्रहः । 'न हीति, 'वस्त्विति प्रथमान्तं 'शून्यमित्यन्वयि,
'तत्र' विपक्षाव्यावर्तकविशेषणे, 'उपात्तेतीति स्वघटकीभूतविशेषणे
इत्यर्थः, स्वपदं उपाधितावच्छेदकपरं, तथाच स्वघटकीभूतविपक्षाव्या-
वर्तकविशेषणशून्यं यत्साध्यव्यापकत्व-साधनाव्यापकत्वावच्छेदकं तद्वत्त्व-
मुपाधित्वमिति फलितमिति भावः । 'सिद्धसिद्धीति स्वघटकी-
भूततादृशविशेषणं प्रसिद्धमप्रसिद्धं वा उभयथापि तादृशविशेषण-
शून्यत्वस्योपाधितावच्छेदके व्याघात इत्यर्थः । ननु तादृशविशेषणा-
घटितं यत्साध्यव्यापकतावच्छेदक-साधनाव्यापतावच्छेदकं तद्वत्त्वं
तादृशविशेषणानवच्छिन्नसाधनसमानाधिकरणाभावप्रतियोगिताया-
अवच्छेदकं यत्साध्यसमानाधिकरणाभावप्रतियोगिताया अनवच्छेदकं
तद्वत्त्वं वा उपाधित्वं विवक्षितमित्यस्वरसादूषणान्तरमाह, 'तथापि
चेति, साध्यव्यापकत्व-साधनाव्यापकत्व इति साध्यव्यापकत्व-साधना-
व्यापकत्वज्ञाने इत्यर्थः, 'तत्र' पक्षेतरत्वे, 'तज्ज्ञावृत्त्या' तज्ज्ञावृत्तिज्ञानेन,
'पक्षे' हेतुमति पक्षे, 'साध्यव्यावृत्तिः' साध्यव्यावृत्तिनिश्चयः, 'व्यभि-
चारएवेति व्यभिचारज्ञानमेवेत्यर्थः, 'व्यभिचारे चेति व्यभिचारज्ञाने

विशेषणं तेन बाधोन्नीतपक्षेतरस्य परिग्रहः, तच्च पक्ष-
स्यैव विपक्षत्वात्, न तु पर्व्वतेतरत्वादेरिति चेत् । न ।
न हि वस्तु विपक्षाव्यावर्त्तकविशेषणशून्यं, सर्व्वत्र
प्रमेयत्वादेः सत्त्वात् । तत्रोपात्तेतिविशेषणे सिद्धसि-
द्धिव्याघातः । तथापि च साध्यव्यापकत्व-साधनाव्या-
पकत्वे तच्च स्त इति तद्व्यावृत्त्या पक्षे साध्यव्यावृत्तिरतो
हेतोर्व्यभिचार एव व्यभिचारे चावश्यमुपाधिरिति
पक्षेतर एव तत्रोपाधिः स्यात् तावन्मात्रस्यैव दूषक-

चेत्यर्थः, 'अवश्यमुपाधिरिति अवश्यं पक्षेतर उपाधिः, व्यभिचारो-
न्नायकत्वस्य उपाधेर्दूषकतावीजस्य सत्त्वादित्यर्थः, तथाच त्वया पक्षेतरो
नोपाधिरभ्युपेयत इति मयातिव्याप्तिरापादिता । वस्तुतो दूषक-
तावीजसत्त्वेन तदुपाधिर्भवत्येवेति भवतस्तत्रानुपाधिताभ्युपगमोऽयुक्त-
इति भावः । किञ्च विशेषणमपि व्यर्थमित्याह, 'पक्षेतर एवेति
पक्षेतरस्तत्रोपाधिः स्यादेवेत्यर्थः, अत इति शेषः, 'तावन्मात्रस्येति
साध्यव्यापकतामात्रस्येत्यर्थः, मात्रपदादुक्तविशेषणव्यवच्छेदः, 'दूषक-
त्वाच्चेति' दोषोन्नयनोपयोगित्वाच्चेत्यर्थः, 'चकारः 'व्यर्थं' विशेषण-
मित्यनन्तरं योज्यः । न च न देयमेव विशेषणमिति वाच्यं । भवत-
स्तस्यानुपपत्तिरनुपाधिताभ्युपगमेन विशेषणादाने अतिव्याप्यापत्तेरिति भावः ।
'अनुमानमात्रेति अनिश्चितसाध्यकानुमानमात्रोच्छेदकतयेत्यर्थः,
'जातित्वादिति जात्युत्तरकत्वादित्यर्थः, उपाधिव्यभिचारेण साध्य-

त्वाच्च व्यर्थं विशेषणम् । अतएवानुमानमात्रोच्चेदक-
तया जातित्वान्न पक्षेतर उपाधिरित्यपास्तं दूषण-
समर्थत्वेन जातित्वाभावात् । एतेन पक्षेतरव्यावृत्त्यर्थं
प्रकारान्तरमपि निरस्तम् उपाधित्वाभावेऽपि दूषण-
समर्थत्वात् । अथोपाधिः स्वव्यतिरेकेण सत्प्रतिपक्ष-
तया दूषणं पक्षेतरत्वव्यतिरेकश्च न साध्याभावसाध-

व्यभिचारानुमाने कर्त्तव्येऽपि पक्षेतरस्योपाधित्वेनोद्भावनीयतया
“स्वव्याघातकमुत्तरं जातिरिति जातिलक्षणसत्त्वादिति भावः ।
'न पक्षेतर इति, तथाच विशेषणं सार्थकमेवेति भावः ।
'दूषणसमर्थेति दूषणासमर्थमुत्तरं जातिरित्यस्यैव जातिलक्षणत्वात्,
पक्षेतरस्य व्यभिचारोन्नयनसमर्थ एवेति भावः । 'प्रकारान्तरमिति
बाधानुज्जीतपक्षेतरभिन्नत्वादिकमित्यर्थः, 'उपाधित्वाभावेऽपीति त्वया
उपाधित्वानङ्गीकारेऽपीत्यर्थः, तथाच व्यर्थविशेषणमिति भावः ।
दूषकतावीजसत्त्वे एव तस्यानुपाधित्वाभ्युपगमस्तदारणाय विशेषण-
प्रक्षेपश्चानुचितस्तदेव च नास्तीत्यभिप्रायेण आशङ्कते, 'अथेति,
'सत्प्रतिपक्षतया' साध्याभावसाधकतया, 'असाधारणत्वादिति सपक्ष-
विपक्षव्यावृत्तत्वादित्यर्थः । ननु व्यभिचारानुमापकतया उपाधिर्दोषः
तत्र च नासाधारण्यमित्याशङ्क्य निराकरोति, 'न त्विति, 'उपाध्य-
व्याप्यतयेति उपाधिव्यभिचारितयेत्यर्थः, 'साध्याव्याप्यत्वं' साध्यव्यभिचा-
रित्वं, अनुमेयमिति शेषः, 'न साध्यव्यापकत्वमिति साध्यव्यापकत्वाभा-
वोऽपि सिद्धेदित्यर्थः, हेतावुपाधिव्यभिचारित्वे ज्ञायमाने उपाधावपि

कोऽसाधारणत्वात्, न तु व्यभिचरोन्मायकतया दूषणं
यथाहि साध्यव्यापकोपाध्यव्याप्यतया हेतोः साध्या-
व्याप्यत्वं तथा साध्यव्याप्यहेत्वव्यापकतयोपाधेर्न
साध्यव्यापकत्वमपि सिध्येत् व्याप्तिग्राहकस्योभयत्रापि
साम्येन विनिगमकविरहात् । तस्माद्यथा साध्यव्या-
प्येन हेतुना साध्यं साधनीयं तथा साध्यव्यापकोपा-
धिव्यावृत्त्या साध्याभावेऽपि साधनीयो व्याप्तिग्रह-
तौल्यादिति दूषकतावोजं । सोऽयं सत्प्रतिपक्ष एवेति

हेत्वव्यापकत्वज्ञानस्यावश्यकत्वात् समानसंवित्संवेद्यत्वादिति भावः ।
ननु हेतावुपाधिव्यभिचारित्वग्रहदशायां उपाधावपि हेत्वव्यापकत्व-
ज्ञानस्यावश्यकत्वेऽपि हेतौ साध्यव्याप्तिनिश्चयाभावान्न तद्व्यापकत्वेन
साध्यव्यापकत्वज्ञानं, उपाधौ तु साध्यव्यापकतानिश्चयसत्त्वेन तद्व्यभि-
चारित्वेन साध्यव्यभिचारित्वग्रह इत्यत आह, 'व्याप्तीति यथा साध्यस्य
उपाधिव्याप्यताग्राहकव्यभिचारादर्शन-सहचारदर्शने स्तः तथा हेता-
वपि साध्यव्याप्यताग्राहके ते स्त इत्यर्थः, न हि तदानीं हेतौ साध्य-
व्यभिचारज्ञानमप्येस्ति, स्फुटे व्यभिचारे उपाध्युपन्यासस्य वैयर्थ्यादिति
भावः । इदमापाततः यदा उपाधौ साध्यव्यापकताग्रहेऽनुकूलतर्का-
वतारादुपाधौ साध्यव्यापकतानिश्चयो जातः हेतौ तु साध्यव्याप्यताग्रहे
अनुकूलतर्कानवतारात्तत्र साध्यव्याप्यतानिश्चयो न जातः तदैव व्यभि-
चारानुमानसम्भवात् । 'तस्मादिति । न च साध्यव्याप्यहेत्वव्यापक-
तयोपाधेः साध्याव्यापकत्वज्ञानात् कथं तद्व्यतिरेकेण सत्प्रतिपक्षैव

चेत् । मैवं । एवं हि सत्प्रतिपक्षे उपाध्युद्भावनं न स्यात्
सत्प्रतिपक्षान्तरवत् । किञ्चैवं बाधोन्नीतोऽपि पक्षेतरो
नोपाधिः स्यात् व्यतिरेकेऽसाधारण्यात् । ननु बाधे
नोपाधिनियमः धूमेन हृदे वह्निसाधने तदभावात्
न तु हेतुमति पक्षे बाधे पक्षेतरोपाधिनियमः प्रत्यक्षे

सम्भव इति वाच्यं । सत्प्रतिपक्षोन्नायकतया दूषकत्वपक्षे हेतौ उपा-
धिव्यभिचारित्वज्ञानस्यानपेक्षितत्वेन तुल्यवित्तिवेद्यतया उपाधौ
साधनाव्यापकत्वज्ञानस्याप्यनावश्यकत्वात्, यदा उपाधौ हेत्वव्यापकता-
ज्ञानं नास्ति तदैव सत्प्रतिपक्षसम्भवादिति भावः । 'सत्प्रतिपक्षान्तरव-
दिति, यथा सत्प्रतिपक्षे सत्प्रतिपक्षान्तरं नोद्भाव्यते तत्र एकेनापि
भूयसां प्रतिबन्धात् सत्प्रतिपक्षवाङ्मल्यस्याप्रयोजकत्वात् तथा सत्प्रति-
पक्षे उपाध्युद्भावनमपि न स्यात् भवन्मते उपाधिमुद्भाव्य सत्प्रतिपक्ष-
ान्तरस्यैव करणीयत्वात् तस्य चाप्रयोजकत्वादिति भावः । दूषणान्तर-
माह, 'किञ्चेति, 'एवं' सत्प्रतिपक्षोन्नायकतया दोषत्वे, 'बाधोन्नी-
तोऽपीति वङ्गिरनुष्णः कृतकत्वादित्यत्र वङ्गीतरोऽपीत्यर्थः, 'व्यतिरे-
केऽसाधारण्यादिति माध्याभावसाधने तद्व्यतिरेकस्यासाधारणत्वादित्य-
र्थः, पक्षमात्रवृत्तिहेतुरसाधारण इत्यभिमानेनेदं । ननु मास्तु बाधो-
न्नीतपक्षेतरोऽप्युपाधिरित्याशयेनाशङ्कते, 'नन्विति, 'नोपाधिनियम-
इति न पक्षेतरोपाधिनियम इत्यर्थः, यथाश्रुते तादृशसामान्यनियम-
सत्त्वेऽपि पक्षेतरोपाधित्वानावश्यकत्वात् तन्निराकरणस्यानुपयुक्तत्व-

वह्नौ कृतकत्वेनानुष्णत्वे साध्येऽतेजस्त्वादेरुपाधित्वसम्भ-
वादिति चेत् । न । तेजोमात्रपक्षत्वेऽतेजस्त्वं विना-

प्रसङ्गात् । अत एवाग्रे 'पक्षेतरोपाधिनिश्चय इत्यपि सङ्गच्छते । 'हेतु-
मतौति साध्यसमानाधिकरणहेतुमतौत्यर्थः, तेन समवायादिसम्बन्धेन
घटो गगनवान्द्रव्यत्वादित्यादौ न व्यभिचारः । न चाव्याप्यवृत्तिसाध्य-
कसङ्केतौ व्यभिचार इति वाच्यं । निरवच्छिन्नसाध्याभावाधिकरणत्वस्य
बाधपदार्थत्वात् । न च तथाप्येतद्गन्धप्रागभावकालीनैतद्घटोगन्धवान्
पृथिवीत्वादित्यादावसङ्कीर्णबाधस्थले व्यभिचारस्तत्र पक्षतावच्छेदके
एतद्गन्धप्रागभावकालावच्छिन्नत्वविशिष्टसमवायावच्छिन्नप्रतियोगिता-
कसाध्याभावस्य निरवच्छिन्नाधिकरणत्वस्यापि पक्षे सत्त्वादिति वाच्यं ।
तेन सम्बन्धेन साध्यत्वे तत्रापि पक्षेतरस्योपाधित्वादिति भावः । तादृश-
नियममभ्युपेत्यैवाह, 'प्रत्यक्ष इति, 'अतेजस्त्वादेरिति धर्मिपरो निर्देशः
तेजःसामान्येतरादिरूपस्यैव पक्षेतरस्येत्यर्थः, तद्व्यतिरेकस्य साध्याभाव-
साधनेऽसाधारणाभावात् सपक्षे सौरालोकादावपि वृत्तेरिति भावः ।
तथाच वक्त्रोत्पत्तेन वक्त्रोत्पत्त्यानुपाधित्वेऽपि तादृशनियमो नानुपप-
न्नइति हृदयं, हेतुमतौत्यादिनियमाभ्युपगमेनैव दूषयति, 'तेजोमात्रेति
तेजोऽनुष्णं कृतकत्वादित्यत्रेत्यर्थः, 'अतेजस्त्वं विनेति धर्मिपरो निर्देशः
तेजःसामान्येतरादिकं विनेत्यर्थः, आदिना भास्वरूपवदितरवक्त्रो-
तरादेः परिग्रहः, 'अन्यस्येति, पक्षेतरस्येति शेषः, तेजःसामान्येतरा-
दिव्यतिरेकस्य साध्याभावसाधनेऽसाधारणं द्रव्येतरादिकञ्च न साध्य-
व्यापकमिति भावः । 'अन्यस्योपाधेरभावादिति यथाश्रुतं न सङ्ग-

न्यस्य उपाधेरभावात् । किञ्च पर्वतावयववृत्त्यन्यत्वं
पर्वतेतरद्रव्यत्वं हृद-पर्वतसंयोगानाधारत्वं हृद-पर्व-
तान्यत्वादिकमुपाधिः स्यादेव व्यतिरेकेऽसाधारण्या-
भावात् व्यतिरेकिणा सत्प्रतिपक्षसम्भवाच्च । न चासा-

म्भते व्यतिरेकेऽसारण्याभाववतोऽपि गुरुत्वादेरूपवत्त्वावच्छिन्नसाध्य-
व्यापकतयोपाधित्वात् ।

भट्टाचार्यास्तु 'अतेजस्वं विना' अतेजस्वसमशीलं विना, असा-
धारणव्यतिरेकप्रतियोगिनं विनेति यावत्, तेन भास्वरूपवदितर-
वक्तीतरादेः परिग्रहः, 'अन्यस्योपाधेरभावादिति अन्यस्य शुद्धसाध्य-
व्यापकस्योपाधेरभावादित्यर्थः, तेन विशिष्टसाध्यव्यापकस्योपाधेः
सत्त्वेऽपि न चतिरित्याहुः ।

ननु पक्षमात्रवृत्तित्वं नासाधारण्यं किन्तु यावत्सपक्ष-विपक्ष-
व्यावृत्तत्वं तेजःसामान्येतरादिव्यतिरेकश्चानुष्णत्वाभावे साध्ये न तथा
पक्षे साध्यासिद्धौ सपक्षाभावात् साध्यसिद्धौ तु तत्रैव पक्षे वर्तमानत्वा-
दित्यस्वरसादाह, 'किञ्चेति, 'हृदेति, हृदसंयोगिपर्वते यत्र वक्लिः
साध्यते तत्रायमुपाधिर्वैध्यः अन्यथा साधनव्यापकत्वादनुपाधि-
तापत्तेः । 'हृद-पर्वतान्यत्वेति हृदेतरत्वविशिष्टपर्वतेतरत्वादिक-
मित्यर्थः, 'व्यतिरेक इति, उक्तोपाधीनां व्यतिरेकस्य पर्वतावयव-
वृत्तिगुणादौ द्रव्यान्यपदार्थमात्रे हृदे च विपक्षे यथाक्रमं वृत्तेः
तथाच बाधानुस्यूतपक्षंतरवारणाय विपक्षाद्यावर्तकेत्यादिविशेषण-
दाने तत्रैवाध्याप्रिरिति भावः । हेतोः सपक्ष विपक्षव्यावृत्तत्वम-

धारण्यं, तस्यापि सत्प्रतिपक्षोत्थापकतया दोष-
त्वात् । तस्मादुभयोरपि व्याप्तिग्राहकसाम्ये विरोधान्न
व्याप्तिनिश्चयः, किन्तुभयत्र व्यभिचारसंशयः, तथाच

साधारण्यं तत्र सपक्षव्यावृत्तत्वांशज्ञानं हेतौ साध्याभावव्यतिरेक-
सहचारज्ञानरूपतया हेतौ साध्यव्यापकीभूताभावप्रतियोगित्वरूप-
साध्याभावव्यतिरेकव्याप्तिज्ञानजनकं, विपक्षव्यावृत्तत्वांशज्ञानजनकञ्च
हेतौ साध्यव्यतिरेकसहचारज्ञानरूपतया हेतौ साध्याभावव्यापकी-
भूताभावप्रतियोगित्वरूपसाध्यव्यतिरेकव्याप्तिज्ञानजनकं, तथाचा-
साधारण्यज्ञानं साध्य-तदभावोभयव्याप्यप्रकृतहेतुमत्तापरामर्शरूप-
सत्प्रतिपक्षद्वारानुमितावेव प्रतिबन्धकमिति स्वमतेन दूषणान्तर-
माह, 'व्यतिरेकिणेति, 'व्यतिरेकिणा' पर्वतेतरादिनिष्ठव्यतिरेक-
प्रतियोगिनापि, पर्वतेतरान्यत्वादिनेति शेषः । 'न चासाधा-
रण्यमिति, सत्प्रतिपक्षे प्रतिबन्धकमिति शेषः । 'तस्यापि' सपक्ष-
विपक्षव्यावृत्तत्वरूपासाधारण्यज्ञानस्यापि, 'सत्प्रतिपक्षोत्थापकतयेति
साध्यव्यापकीभूताभावप्रतियोगित्वरूपसाध्याभावव्यतिरेकव्याप्ति-सा-
ध्याभावव्यापकीभूताभावप्रतियोगित्वरूपसाध्यव्यतिरेकव्याप्योर्ग्रहद्वारा
साध्य-तदभावोभयव्याप्यप्रकृतहेतु मत्तापरामर्शरूपसत्प्रतिपक्षजनकत-
येत्यर्थः, 'दोषत्वादिति अनुमितावेव प्रतिबन्धकत्वादित्यर्थः, तथा-
चासाधारण्येऽपि सत्प्रतिपक्षसम्भवात् पक्षेतरोऽप्युपाधिरेवेति तस्या-
नुपाधितानभ्युपगमः वारणाय तस्य विगेषणोपादानञ्च द्वयमप्ययुक्त-
मिति भावः ।

व्यभिचारसंशयाधायकत्वेनोपाधेर्दूषकत्वं, तच्च पक्षेतिरे-
 व्यस्ति, तदुक्तमुपाधेरेव व्यभिचारशङ्केति । भवतु
 बोक्तव्यायेन सकलानुमानभङ्गमभिया पक्षेतिरेऽनुपाधिः,
 तथापि लक्षणमतिव्यापकम् । नापि साध्यसमव्याप्तत्वे
 सति साधनाव्यापकत्वमुपाधित्वं, दूषकतावोजस्य व्य-

केचित्तु 'व्यतिरेकिणा, व्यतिरेकव्याप्त्या, पर्वतेतरान्यत्वादि-
 नापीति शेषः । 'न चासाधारण्यमिति, व्यतिरेकव्याप्त्या सत्प्रति-
 पक्षेऽपि प्रतिबन्धकमिति शेषः । 'तस्यापि, असाधारण्यज्ञानस्यापि,
 'सत्प्रतिपक्षोत्थापकतयेति अन्वयसहचारग्रहप्रतिबन्धकतया वेति
 शेषः । 'दोषत्वादिति अनुमितावन्वयव्याप्तिग्रहे वा प्रतिबन्धक-
 त्वादित्यर्थः, यदि सपक्ष-विपक्षव्यावृत्तत्वं असाधारण्यं तदा तज्ज्ञान-
 मुक्तक्रमेण सत्प्रतिपक्षजनकतयानुमितावेव प्रतिबन्धकं, यदि
 च हेतोः साध्यवदवृत्तिलमसाधारण्यं तदा तज्ज्ञानं अन्वयसहचार-
 ग्रहप्रतिबन्धकद्वारा अन्वयव्याप्तिग्रह एव प्रतिबन्धकं न तु कदा-
 चिदपि व्यतिरेकव्याप्त्या सत्प्रतिपक्षे प्रतिबन्धकमिति भाव इति
 व्याचक्रुः ।

ननु व्यभिचारोन्नायकतया दूषकत्वं मया प्रागेव दूषितं यदि
 सत्प्रतिपक्षतया दोषत्वमपि त्वया दूषितं तदा यत्र हेतुपाध्योर्वाप्ति-
 ग्राहकसाम्यं तत्र कथमुपाधिर्दोष इत्यत आह, 'तस्मादिति,
 'उभयोः' साध्य-साधनयोः साध्योपाध्योः, 'विरोधादिति विरोधः
 साध्यव्याप्यत्व-साध्यव्यापकाव्याप्यत्वयोः साध्यव्यापकत्व-साध्यव्याप्याव्या-

भिचारोन्नयनस्य सत्प्रतिपक्षस्य वा साम्येन विषम-
व्याप्तस्याप्युपाधित्वात् तथा दूषकतायां साध्यव्याप्यत्व-
स्याप्रयोजकत्वाच्च । अथ साध्यप्रयोजको धर्म उपाधिः
प्रयोजकत्वञ्च न न्यूनाधिकदेशवृत्तेः तस्मिन् सत्य-
भवतस्तेन विनापि भवतस्तदप्रयोजकत्वात्, अन्यथा

पक्षत्वयोश्चेत्यर्थः । उपाधेर्यभिचारशङ्काधायकत्वेन दोषत्वे आचार्य-
संवादमाह, 'तदुक्तमिति, 'उपाधेरेवेति, एवकारः भिन्नक्रमे
उपाधेर्यभिचारशङ्केवेत्यर्थः, यत्रोभयव्याप्तिग्राहकसाम्यं तत्रेत्यादि-
सकलानुमानोच्छेदापत्तिभयेन पक्षेतरस्योपाधित्वं परैर्निरस्यते
तदभ्युपेत्य पूर्वपक्षमाह, 'भवतु वेति, 'तथापीति । न च
विपक्षाव्यावर्तकविशेषणानवच्छिन्नेतिविशेषणदानादेव नातिव्याप्ति-
रिति वाच्यं । तथापि जन्याणवः सकर्तृकाः कार्यत्वादित्या-
दावणुभिन्नादौ पक्षेतरैऽतिव्याप्तेः तत्राणुविशेषणेन विपक्षस्य
परमाणोरपि व्यावर्तनादिति भावः । आचार्यलक्षणं दूषयति,
'नापीति, पक्षेतरस्तु साध्यविषमव्यापकत्वान्नोपाधिरिति भावः ।
अवच्छिन्नसाध्यव्यापकोपाधावव्याप्तौ सत्यामेव दूषणान्तरमाह,
'दूषकतेति, 'विषमव्याप्तस्यापीति, तथाच तत्राव्याप्तिरिति भावः ।
'तथा दूषकतायामिति स्वयमभिचारेण साध्यव्यभिचारोन्नायक-
तया स्वयतिरेकेण साध्यव्यतिरेकोन्नायकतया वा दूषकतायामित्यर्थः,
साध्यव्यापकतादलस्यानुकूलतर्कविधयैवोपयोगादिति भावः । अव्या-

यश्चेतरस्यायुपाधित्वप्रसङ्ग इति चेत् । न । दूषणौपयिकं हि प्रयोजकत्वमिह विवक्षितं तच्च साध्यव्यापकत्वे सति साधनाव्यापकत्वमेवेति, तदेव प्रयोजकं न त्वधिकं व्यर्थत्वात् । ननुपाधिः^(१) स उच्यते यद्वर्म्मोऽन्यत्र प्रति-

प्तिनिरासाय विषमव्याप्त्यालक्ष्यत्वे विनिगमकमाह, 'अथेति, 'साध्य-प्रयोजको धर्मः' साध्यप्रयोजकौभूतधर्म एव, 'उपाधिः' शास्त्रीयो-पाधिव्यवहारविषयः, साध्यप्रयोजकधर्मत्वं शास्त्रीयोपाधिव्यवहार-विषयत्वव्यापकं इति यावत्^(२) लक्षणपक्षे सङ्केतावपि साध्यसमव्याप्तेऽ-तिव्याप्तापत्तेः, 'प्रयोजकत्वञ्चेति, साध्यान्वय-व्यतिरेकोन्मायकान्वय-व्यतिरेकप्रतियोगित्वस्य प्रयोजकतारूपत्वादिति भावः । 'अभवतः' असतः, 'भवतः' सतः, 'तदप्रयोज्यत्वादिति^(३) तदन्वय-व्यतिरेकोन्मा-यकान्वय-व्यतिरेकाप्रतियोगित्वादित्यर्थः, तथाच विषमव्याप्तेर्दूषकता-वीजसत्त्वेऽपि शास्त्रीयोपाधिव्यवहाराभावान्न लक्ष्यत्वमिति भावः । 'अन्यथेति न्यूनाधिकदेशवृत्तेरपि प्रयोजकत्वे इत्यर्थः, 'उपाधित्व-प्रसङ्गः' शास्त्रे उपाधिव्यवहारप्रसङ्ग इत्यर्थः^(४), 'इह' उपाधिव्यव-

(१) अथोपाधिरिति क० ।

(२) इति भाव इति ख० ।

(३) 'तदप्रयोज्यत्वात्' इत्यत्र 'तदप्रयोजकत्वात्' इति कस्यचिन्मूलपुस्तकस्य पाठः परन्तु तादृशपाठस्यापि रहस्यकृद्वाक्यातार्थ एवार्थ इति ।

(४) शास्त्रे उपाधिव्यवहारविषयत्वप्रसङ्ग इति ग० ।

विम्बते यथा जवाकुसुमं स्फटिकलौहित्य उपाधिः,
तथाचोपाधिवृत्तिव्याप्यत्वं हेतुत्वाभिमतं चकास्ति
तेनासावुपाधिः । न च व्याप्यत्वमात्रेण दूषकत्वमिति,
साध्यव्यापकतापीष्यते, तथाच समव्याप्त एवोपाधि-

हारविषयताव्यापकौभूतधर्मे, 'तच्च' दूषणौपयिकञ्च, 'प्रयोजकं'
प्रयोजकत्वं, 'न त्वधिकं' न तु व्याप्यत्वपर्यन्तं, 'व्यर्थत्वादिति ।
न चैवं पचेतरेऽतिप्रसङ्गः, तवापि पचेतरत्वविशिष्टसाध्यवत्त्वादावति-
प्रसङ्गादिति भावः । विषमव्याप्तस्थालक्ष्यत्वे विनिगमकान्तरमाशङ्कते,
'नन्विति, 'प्रतिविम्बते' भ्रमविषयो भवति, उप समीपे आद-
धाति स्तनिष्ठधर्मं संक्रामयतीत्युपाधिपदावयवव्युत्पत्तेरिति भावः ।
'स्फटिकलौहित्य इति लौहित्यभ्रमविषयीभूतस्फटिक इत्यर्थः,
'व्याप्यत्वं' साध्यव्याप्यत्वं, 'चकास्ति' भ्रमविषयो भवति, 'असा-
वुपाधिः' असावेव उपाधिपदवाच्यः, साध्यव्याप्य एव उपाधिपद-
वाच्य इति यावत् । नन्वेवं धूमवान् वक्तेरित्यादौ महानसत्त्वादेर-
प्युपाधिपदवाच्यत्वापत्तिरित्यत आह, 'न चेति, 'दृश्यत इति
रूढ्यर्थतया दृश्यत इत्यर्थः, 'समव्याप्त एवोपाधिरिति समव्याप्त एव
उपाधिपदवाच्य इत्यर्थः, उपाधिपदस्य योगरूढतया विषमव्याप्ते
रूढ्यर्थसत्त्वेऽपि योगार्थाभावादिति भावः । यद्यप्यन्यनिष्ठभ्रमविषयी-
भूतधर्माश्रयत्वमात्रमुपाधिपदप्रवृत्तिनिवृत्तं न तु व्याप्तिरूपधर्म-
संक्रामकत्वं जवाकुसुमादावभावात् तच्च विषमव्याप्तेऽपि सम्भवति

रिति चेत्, तत् किं विषमव्याप्तस्य दूषकतावीजा-
भावान्नोपाधिशब्दवाच्यत्वं तथात्वेऽप्युपाधिपदप्रवृत्ति-
निमित्ताभावाद्वा, नाद्यः तस्यापि व्यभिचाराद्युन्नाय-
कत्वात्, नापरः न हि लोके समव्याप्त एवान्यत्र स्वधर्म-
प्रतिविम्बजनक एवोपाधिपदप्रयोगः, लाभाद्युपाधिना

स्वनिष्ठसाध्यव्याप्यत्वासंक्रामकत्वेऽपि दोषवशात् स्वनिष्ठधर्मान्तरसं-
क्रामकत्वसम्भवात् तथापि उपाधिपदस्य सामान्यतोऽन्यनिष्ठभ्रमवि-
षयीभूतधर्माश्रयत्वरूपं नैकं प्रवृत्तिनिमित्तं तादृशेणाप्रत्यायनात्,
परन्तु विशिष्य स्फटिकनिष्ठभ्रमविषयीभूतलौहित्याश्रयत्व-साधन-
निष्ठभ्रमविषयीभूतसाध्यव्याप्याश्रयत्वादिरूपं नानैव प्रवृत्तिनिमित्तं,
चद्धर्मवाचकसप्तम्यन्तपदसमभिव्याहारविशेषेणोपाधिपदं प्रयुज्यते त-
द्धर्मसंक्रामकत्वमेव बोधयतीति समभिव्याहारविशेषस्य प्रतीतौ
नियामकः, अत एव स्फटिकलौहित्ये जवाकुसुममुपाधिरिति-
वाक्यात् लौहित्यरूपधर्मसंक्रामकत्वमेव प्रतीयते, एवं साधनस्य
साध्यव्याप्यत्वेऽयमुपाधिरित्यत्रापि स्वनिष्ठव्याप्तिरूपधर्मसंक्रामकत्वमेव
लभ्यत इति, तथाच विषमव्याप्तस्य स्वनिष्ठधर्मान्तरसंक्रामकत्वेऽपि
तादृशधर्मान्तरसंक्रामकत्वमादाय कुत्राप्युपाधिपदाप्रयोगात् तादृश-
धर्मान्तरसंक्रामकत्वस्य उपाधिपदाप्रवृत्तिनिमित्तत्वात् विषमव्याप्तो
नोपाधिपदवाच्य इत्याचार्यानामाशयः । 'प्रवृत्तिनिमित्ताभावादेति
यौगिकप्रवृत्तिनिमित्ताभावादेत्यर्थः । 'समव्याप्त इति स्वनिष्ठसाध्य-

कृतमित्यादौ लाभादावप्युपाधिपदप्रयोगात् । किञ्च न शास्त्रे लौकिकव्यवहारार्थमुपाधिपदव्युत्पादनं किन्त्वनुमानदूषणार्थं, तच्च साध्यव्यापकत्वे सति साधनाव्यापकत्वमात्रमिति शास्त्रे तथैव^(१) उपाधिपदप्रयोगः ।

अन्ये तु यदभावो व्यभिचारविरोधौ स उपाधिः । न च विषमव्याप्तस्याभावो व्यभिचारं विरुणद्धि, तस्या-

व्याप्तिसंक्रामक इत्यर्थः, 'स्वधर्मप्रतिविम्बेति स्वनिष्ठधर्मान्तरप्रतिविम्बजनक एवेत्यर्थः, 'लाभादावपीति तत्रोपाधिपदस्य प्रयोजनार्थकत्वादित्यर्थः, तथा च तत्र यथा योगार्थनैवापेक्ष्येणापि उपाधिपदवाच्यत्वं तथा विषमव्यापकेऽपि केवलरूपव्यर्थमादायैव उपाधिपदवाच्यत्वसम्भवः, न हि योगार्थविशिष्टोरूपव्यर्थः प्रवृत्तिनिमित्तः, इति हृदयं । लौकिकव्यवहारार्थमिति लोकानामुपाधिस्वरूपज्ञानार्थमित्यर्थः, 'उपाधिपदव्युत्पादनमिति परोक्तानुमानदूषणप्रस्तावे अत्रायमुपाधिरिति उपाधिपदप्रयोग इत्यर्थः, 'अनुमानदूषणार्थमिति उपाधित्वेन उपाधिज्ञानद्वारा वा व्याप्तिज्ञानप्रतिबन्धार्थमित्यर्थः, 'तच्चेति अनुमानदूषणौपयिकरूपञ्चेत्यर्थः, 'तथैव' साध्यव्यापकत्व-साधनाव्यापकत्वमात्रेणैव ।

विषमव्याप्तस्यालक्ष्यत्वे विनिगमकान्तरसाशङ्कते, 'अन्ये त्विति 'यदभावः' यद्धर्मावच्छिन्नाव्याप्यत्वसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकोयद्-

भावेऽपि व्यभिचारात् । अस्ति ह्यनित्यत्वव्यापकं प्रमे-
यत्वं तद्व्याप्यञ्च गुणत्वं । न चानित्यत्व-गुणत्वयोर्व्याप्ति-

भावः, 'साध्यव्यभिचारविरोधी'^(१) साध्यव्यभिचाराभावसमनियतः,
साध्यव्यभिचार्यवृत्तित्वे सति साध्यव्यभिचाराभावव्यापक इति यावत्,
'स उपाधिः' तद्वर्मवत्त्वेन स उपाधिरित्यर्थः^(२), भवति चार्द्रैन्धन-
प्रभववक्त्रेः साध्यसमव्याप्तस्याव्याप्यतासम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताका-
भावः आर्द्रैन्धनप्रभववक्त्रादिव्याप्यमात्रनिष्ठतया धूमादिव्यभिचारा-
भावसमनियतः, आर्द्रैन्धनादेः साध्यविषमव्याप्तस्याव्याप्यत्वसम्बन्धाव-
च्छिन्नाभावस्तु न तथा तस्यार्द्रैन्धनादावपि सत्त्वेन तत्र साध्य-
व्यभिचाराभावासत्त्वादिति भावः । अत्र यदभावपदस्य उपाधिता-
वच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नयदभावपरत्वे आर्द्रैन्धनप्रभववक्त्रादावव्याप्तिः,
सामान्यतो यदभावपरत्वे द्रव्यं पृथिवीत्वात् शब्दाद्वा इत्यादौ
स्वरूपसम्बन्धेन साध्यव्यभिचारित्वादेरुपाधितापत्तिः स्वरूपसम्बन्धेन
तदभावस्यापि साध्यव्यभिचारविरोधित्वादतः प्रतियोगिताकान्तम-
भावविशेषणं । न चैवमव्याप्यत्वसम्बन्धस्य वृत्त्यनियामकत्वेनाभाव-
प्रतियोगितानवच्छेदकत्वादसम्भव इति वाच्यं । इह हेतावुपाधि-
र्नास्तीतिप्रतीतिबलात् वृत्त्यनियामकत्वेऽपि तस्य प्रतियोगिताव-

(१) 'व्यभिचारविरोधी' इत्यत्र 'साध्यव्यभिचारविरोधी' इति कस्य-
चिन्मूलपुस्तकस्य पाठः तमनुसृत्य रहस्यकृता तादृशपाठो धृतः ।

(२) तद्वर्मव्यापक उपाधिरित्यर्थ इति ग० ।

रस्ति, समव्याप्तिकस्य च व्यतिरेकस्तथा, न हि साध्य-
व्यापकव्याप्तीभूतस्य व्याप्यं यत्तत् साध्यं व्यभिचरति,

च्छेदकत्वात्^(१) इह हेतावुपाधिरिति प्रतीतेर्दृष्टिनिधामकत्वस्यापि
तत्र सत्ताच्च । साध्यव्यभिचारविरोधित्वपदेन च साध्यव्यभिचार्यवृ-
त्तित्वमात्रोक्तौ वक्त्रिमान् धूमादित्यादौ महानसत्तादावतिव्याप्तिः
अव्याप्यत्वसम्बन्धावच्छिन्नमहानसत्ताभावस्य महानसत्त्वव्याप्यमात्रनिष्ठस्य
वक्त्रिव्यभिचार्यवृत्तित्वात्, साध्यव्यभिचाराभावव्यापकत्वमात्रोक्तौ धूम-
वान् वक्त्रेरित्यादौ विषमव्यापके आर्द्रैर्ननादावतिव्याप्तिः, साध्य-
व्यभिचाराभाववृत्तित्वोक्तावपि तथा वक्त्रिमान् धूमादित्यादौ
महानसत्तादावतिव्याप्तिश्च अतः साध्यव्यभिचाराभावसमनियत-
त्वपर्यन्तं । यद्वर्णावच्छिन्नाव्याप्यत्वं साध्यव्यभिचारित्वञ्च विशेष-
णताविशेषसम्बन्धेन बोध्यं तच्च विशेषणताविशेषसम्बन्धेन तद्वर्णा-
वच्छिन्नवदन्यवृत्तित्वं साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नसाध्याभाववति विशे-
षणताविशेषेण वर्तमानत्वञ्च, न तु हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेन वक्तव्यं
धूमवान् वक्त्रेरित्यादौ धूमवत्सामान्यान्यतरत्वादौ विषमव्यापके
अतिव्याप्यापत्तेः धूमवत्सामान्यान्यतरान्यासंयुक्तत्वस्यापि असंयुक्त-धूम-

(१) ननु इह हेतावुपाधिर्नास्तीतिप्रतीतिरुपाधौ अव्याप्यत्वसम्बन्धावच्छि-
न्नहेतुवृत्तित्वाभावं अवगाह्यते न तु हेतौ अव्याप्यत्वसम्बन्धावच्छिन्न-
प्रतियोगिताक्तोपाध्यभावं, अतः कथं दृष्ट्यनिधामकस्याव्याप्यत्वसम्ब-
न्धस्य अभावप्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धत्वे तादृशप्रतीतेर्वैतल्यमित्यत-
श्चाह इह हेतावुपाधिरितीति ।

व्यभिचारे चान्ततः साध्यमेवोपाधिः, अभेदेऽपि व्याप्य-
व्यापकत्वात् साधनाव्यापकत्वाच्चेति स्वीचक्रुः । तन्न ।

वन्मात्रसंयुक्तोभयमात्रनिष्ठतया धूमाभाववत्संयुक्तत्वाभावसमनियत-
त्वात् । ननु तथापि वक्त्रिमान् धूमादित्यादौ वक्त्रिसामग्र्यादौ
साधनव्यापकेऽतिव्याप्तिः अव्याप्यत्वसम्बन्धेन तदभावस्यापि वक्त्रिव्यभि-
चाराभावसमनियतत्वात् । न च साधनावृत्तित्वेन यदभावो विशेष-
णीय इति वाच्यं । धूमवान् वक्त्रेरित्यादौ आर्द्रेन्धनप्रभववज्ज्ञादा-
वव्याप्यापत्तेः विशेषणताविशेषसम्बन्धेन आर्द्रेन्धनप्रभववक्त्रिमदन्य-
वृत्तित्वरूपस्यार्द्रेन्धनप्रभववज्ज्ञाव्याप्यत्वस्य वज्ज्ञावसत्त्वेन तत्सम्बन्धाव-
च्छिन्नार्द्रेन्धनप्रभववज्ज्ञाभावस्य साधनौभूतवक्त्रिवृत्तित्वात् । यदि
चाव्याप्यत्वं व्याप्यत्वाभावः व्याप्यत्वञ्च विशेषणताविशेषसम्बन्धेन तद-
दन्यावृत्तित्वे सति विशेषणताविशेषेण तद्वृत्तित्वं तत्सम्बन्धावच्छि-
न्नार्द्रेन्धनप्रभववज्ज्ञाभावस्य न वक्त्रिवृत्तिरित्युच्यते, तदा वक्त्रिसा-
मग्र्यादावप्यतिव्याप्तिर्दुर्वारा तादृशाव्याप्यत्वसम्बन्धावच्छिन्नवक्त्रिसा-
मग्र्यभावस्यापि साधनौभूतधूमावृत्तित्वादिति चेत् । न । साधना-
धिकरणवृत्तित्वेन यदभावविशेषणात् ।

भट्टाचार्यास्तु वक्त्रौ साध्ये वक्त्रिसामग्र्यपि उपाधिर्भवत्येव^(१)
कृतं विशेषणप्रक्षेपेण । न चैवं वक्त्रौ साध्ये धूमे हेतौ वक्त्रिसाम-
ग्र्युपाधिरित्यपि व्यवहारापत्तिरिति वाच्यं । अव्याप्यत्वसम्बन्धेन
तद्वृत्तित्वस्यैव तत्र हेतावुपाधित्वव्यवहारनियामकत्वात् अत एव वक्त्रौ

(१) वज्ज्ञादौ साध्ये वक्त्रिसामग्र्याद्युपाधिर्भवत्येवेति ग०, घ० ।

तवापि ह्यव्यभिचारे साध्यव्याप्यव्याप्यत्वं तन्त्रमावश्य-
कत्वात्लाघवाच्च न साध्यव्यापकव्याप्यत्वमपि भवतैव
व्यभिचारस्य दर्शितत्वात् । न च साध्यव्याप्यव्याप्यत्वमे-
वानौपाधिकत्वं, साध्यव्याप्यमित्यत्रापि ह्यनौपाधिकत्वं

साध्ये धूमः सोपाधिरित्यपि न व्यवहारः अव्याप्यत्वसम्बन्धेन यथोक्त-
धर्मवत्त्वस्यैव तादृशव्यवहारनियामकत्वादिति प्राङ्गरिति संक्षेपः ।

‘अभावः’ अव्याप्यतासम्बन्धावच्छिन्नाभावः, ‘तस्याभावेऽपीति
अव्याप्यतासम्बन्धेनाभावसन्त्वेपीत्यर्थः, ‘व्यभिचारात्’ साध्यव्यभिचार-
सत्तात्, एतदेव शब्दोऽनित्यगुणत्वादित्यत्र विषमव्यापके प्रमेयत्वे
ग्राहयति, ‘अस्ति हीति भवति हीत्यर्थः, ‘अनित्यत्वव्यापकं’
अनित्यत्वविषमव्यापकं, ‘प्रमेयत्वं’ अनित्य-गुणावितिप्रमाविशेष्यत्वं,
‘तद्व्याप्यञ्चेति अव्याप्यतासम्बन्धेन तदभाववच्चेत्यर्थः । ‘न चानित्यत्व-
गुणत्वयोरिति न च गुणत्वेऽनित्यत्वव्यभिचाराभावोऽस्तीत्यर्थः, ‘प्रमे-
यत्वमितियथाश्रुतन्तु न सङ्गच्छते तद्वदन्यवृत्तित्वरूपाव्याप्यत्वस्यैव
लाघवादानुगतत्वाच्चात्र घटकतया केवलान्वयिनः प्रमेयत्वस्य तद-
प्रसिद्धेः । न च तथापि ‘न च गुणत्वेऽनित्यत्वव्यभिचाराभावो-
ऽस्तीत्यसंगतं विशेषणताविशेषसम्बन्धेन साध्यव्यभिचारित्वस्यैव लक्षण-
घटकतया गुणत्वजातौ तादृशानित्यत्वव्यभिचाराभावस्य सत्तादिति
वाच्यं । ‘गुणत्वपदस्य गुणपदवाच्यत्वपरत्वादिति ध्येयं । ‘व्यतिरेकः’
अव्याप्यतासम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकव्यतिरेकः, ‘तथा’ साध्य-

तदेव वाच्यं तथाचानवस्येति, अनौपाधिकत्वे च व्याप्तिरक्षणे यावदिति पदं साध्यव्यापकत्वे^(१) विशेषणं दत्तमेव । किञ्च यस्मिन् सत्यनुमितिर्न भवति तदेव तच्च दूषणं न तु यद्यतिरेके भवत्येवेत्येतद्गमं विरुद्धत्वा-

व्यभिचाराभावसमनियतः, 'साध्यव्यापकेति साध्यव्यापकं सत् यत्साध्यव्याप्योभूतं तस्य साध्यसमव्याप्त्येति यावत्, 'व्याप्यं' अव्याप्यतासम्बन्धेनाभाववत् । ननु यदि समव्याप्त एव उपाधिसूदा 'व्यभिचारे चावश्यमुपाधिरिति नियमो भज्येत, न हि सर्वत्र व्यभिचारिणि साध्यसमव्याप्तेन स्यातव्यं, इत्यत आह, 'व्यभिचारे चेति, 'अन्तत-इत्यनेन साध्यसामग्र्यादीनां बह्वनामेव उपाधित्वं सम्भवतीति सूचितं । ननु स्वस्मिन् स्वसमव्याप्यत्वाभावात् कथं साध्यस्य उपाधित्वमित्यत आह, 'अभेदेऽपीति । ननु तथापि कथं तद्धेतौ सोपाधित्वव्यवहारः व्यभिचारितासम्बन्धेन उपाधिमत्वस्यैव तन्नियामकत्वादित्यत आह, 'साधनाव्यापकत्वाच्चेति । साध्यव्यभिचारविरोधित्वं साध्यव्यभिचाराभावव्याप्यत्वमात्रमिति यथाश्रुताभिप्रायेण साध्यव्यापके महानसत्त्वादावतित्याप्तिमाह, 'तवापीति, 'अव्यभिचारे' साध्यव्यभिचाराभावे, षष्ठ्यर्थे सप्तमी, 'साध्यव्याप्यव्याप्यत्वमिति साध्यव्याप्यस्य महानसत्त्वादेरव्याप्यतासम्बन्धेनाभावोऽपीत्यर्थः, 'तन्त्रं' व्याप्यं, 'आवश्यकत्वादिति साध्यव्याप्यमहानसत्त्वादेरव्याप्यतासम्बन्धेनाभाव-

देरप्यदोषत्वापत्तेः । नापि पक्षधर्मावच्छिन्नसाध्यव्याप-
कत्वे सति साधनाव्यापकत्वमुपाधित्वं साधनावच्छिन्न-
साध्यव्यापकोपाध्यव्यापनात् । शब्दोऽभिधेयः प्रमेयत्वा-
दित्यत्राश्रावणत्वस्योपाधित्वापत्तेश्च शब्दधर्मगुणत्वाव-

वति साध्यव्यभिचाराभावस्यावश्यकत्वादित्यर्थः, 'लाघवाच्चेति' व्यर्थ-
विशेषणत्वादिरहितत्वाच्चेत्यर्थः, इदञ्च व्यर्थविशेषणतास्थले व्याप्तिरेव
न तिष्ठतीति प्राचीनमतानुरोधेन, 'साध्यव्यापकव्याप्यत्वमपीति' अव्या-
प्यतासम्बन्धेन साध्यव्यापकत्वस्याभाव एवेत्यर्थः, 'दर्शितत्वादिति'
'अस्ति' हीत्यादिना दर्शितत्वादित्यर्थः,^(१) 'भवन्मते' विषमव्यापके-
ऽतिव्याप्तेश्चेत्यपि बोध्यं । ननु भवतु साध्यव्यापकोऽपि महानसत्वा-
दिरुपाधिः को दोषः तर्हि सद्धेतावपि सोपाधितापत्तिरिति चेत्,
न हि यत्किञ्चिदुपाधिसत्त्वेनैव सोपाधिता, किन्तु यत्किञ्चित्सा-
ध्यव्याप्यव्याप्यत्वमेवानौपाधिकत्वमिति साध्यव्याप्यव्याप्यत्वसामान्याभाव-
एव सोपाधित्वमित्यत-आह, 'न चेति, 'साध्यव्याप्यव्याप्यत्वं', तथाच
यद्युक्तस्वरूपमनौपाधिकत्वं तदा उक्तस्वरूपं सोपाधित्वं स्यात् न
चैवमिति भावः । 'साध्यव्याप्यमित्यत्रापि' हीति, साध्यव्याप्यत्वग्रा-
हकमिति शेषः । नन्वेवमनौपाधिकत्वं व्याप्तिग्रहे तन्त्रमेव न स्यात्,
न हि साध्यव्यापकव्यापकत्वं तत् अतिप्रसङ्गादित्यत-आह, 'अनौ-
पाधिकत्व इति, 'व्याप्तिलक्षणे' व्याप्तिग्राहके, 'साध्यव्यापकत्वे' साध्य-

(१) दर्शितत्वादिति भाव इति ग० ।

च्छिन्नाभिधेयत्वं यत्र रूपादौ तत्राश्रावणत्वं व्यापकं पक्षे प्रमेयत्वस्य साधनस्याव्यापकं हि तत् । आर्द्रेन्धन-वत्त्वादावुपाधौ पक्षनियततादृशधर्माभावाच्च । अथ साधनावच्छिन्नसाध्यव्यापकत्वे सति साधनाव्यापक-

व्यापके, क्वचित्तथैव पाठः । नन्वनौपाधिकत्वज्ञानं न व्याप्तिधीहेतुः येनाऽनवस्था स्यात् किञ्च साध्यव्यभिचारविरोधित्वं साध्यव्यभिचाराभावसमनियतत्वमेव विवक्षितमिति नातिव्याप्तिरित्यस्वरसादाह, 'किञ्चेति, 'यस्मिन् सतीति यद्वर्माविशिष्टे यस्मिन् सतीत्यर्थः, 'अनुमितिर्न भवतीति साधनेऽनुमितिप्रयोजकं रूपं व्याप्ति-पक्षधर्मतान्यतरं न तिष्ठतीत्यर्थः, 'तदेव तत्र दूषणमिति तद्वृत्ति तदेव दूषकतावीजमित्यर्थः, तथाच साध्यव्यापकत्वविशिष्टे साधनाव्यापकत्वसत्त्वेऽपि हेतौ साध्यव्याप्त्यसत्त्वात् साध्यव्यापकत्वविशिष्टे साधनाव्यापकत्वस्यापि दूषकतावीजतया साध्यविषमव्याप्तस्यापि दूषकतावीजाक्रान्तत्वेन तद्व्यावृत्तत्वान्नेदं लक्षणमिति भावः । ननु यद्वर्माविशिष्टे यद्व्यतिरेके हेतौ व्याप्ति-पक्षधर्मतान्यतरं तिष्ठति तद्वर्माविशिष्टे तद्वर्मवत्त्वमेव दूषकतावीजं एवञ्च साध्यसमव्याप्तत्वविशिष्टे साधनाव्यापकत्वव्यतिरेके साधने साध्यव्याप्तेरावश्यकत्वात् साध्यसमव्याप्ते साधनाव्यापकत्वं दूषणं न तु साध्यव्यापकत्वविशिष्टे साधनाव्यापकत्वं, साध्यव्यापकत्वविशिष्टे कुत्रचित् साधनाव्यापकत्वविरहेऽपि हेतौ व्याप्त्यसत्त्वादित्यत-आह, 'न त्विति, 'यद्व्यतिरेके' यद्वर्माविशिष्टे यद्व्यतिरेके, 'भवत्येव' हेतौ व्याप्ति-पक्षधर्मता-

उपाधिः तेन ध्वंसस्य जन्यत्वेन ध्वंसप्रतियोगित्वे साध्ये
साधनावच्छिन्नसाध्यव्यापकं भावत्वमुपाधिः श्यामत्वे
शाकपाकजत्वमुपाधिरिति, तन्न, पक्षधर्मावच्छिन्नसा-

न्यतरत्तिष्ठत्येव, 'एतद्गर्भमिति दूषकताबीजत्वे नियामकमिति शेषः,
'विरुद्धत्वादेरिति हेतुतावच्छेदकविशिष्टे साध्यासामानाधिकरण्यादे-
रित्यर्थः, साध्यासामानाधिकरण्याभावस्य व्यभिचारिण्यपि सत्त्वादिति
भावः । 'आदिना सपक्ष-विपक्षगामित्वरूपस्य व्यभिचारस्य परि-
ग्रहः । 'साधनावच्छिन्नेति काकः श्यामो मित्रातनयत्वादित्यादौ
शाकपाकजत्वादावव्याप्तेरित्यर्थः, न तु स श्यामो मित्रातनयत्वा-
दित्यत्र शाकपाकजत्वे, ध्वंसे विनाशी जन्यत्वादित्यत्र जन्यत्वे
चाव्याप्तिः तत्र साधनस्यापि पक्षधर्मतया अव्याप्यभावात् । इदमु-
पलक्षणं पर्वतो वज्रिमान् धूमादित्यादौ पर्वतीयधूमादावतिव्या-
प्तिरित्यपि द्रष्टव्यं । ज्ञानातिव्याप्तिमाह, 'शब्द इति, 'उपाधि-
त्वापाताच्चेति^(१) उपाधित्वेन ज्ञानापाताच्चेत्यर्थः, पक्षे साध्याव्या-
पकतया वस्त्वतिव्याप्तेरभावान्तदेव ग्राहयति, 'शब्दधर्मेति, 'यत्र
रूपादाविति, निश्चितमिति शेषः, 'व्यापकं' व्यापकत्वेन ज्ञातं,^(२)
'अव्यापकं' अव्यापकत्वेन ज्ञातं । न च पक्षे व्यभिचारज्ञानसत्त्वेन

(१) 'उपाधित्वापत्तिश्चेत्यत्र 'उपाधित्वापाताच्चेति कस्यचिन्मूलपुस्तकस्य
पाठोऽनेन पाठधारणेनानुमीयत इति ।

(२) 'ज्ञातमित्यत्र 'निश्चितमिति ग० घ० पुस्तकपाठः, एवं परत्रापि ।

ध्यव्यापकौपाध्यव्यापनात् जलं प्रमेयं रसवत्त्वादित्यत्र
रसवत्त्वावच्छिन्नसाध्यव्यापकपृथिवीत्वस्योपाधित्वप्रस-
ङ्गात् सोपाधित्वादसाधकमित्यत्र साधनावच्छिन्नसा-

कथं तत्र रूपादौ साध्यव्यापकत्वनिश्चय इति वाच्यं । सन्दिग्धसाध्यक-
पक्षावृत्त्युपाधिमात्रस्य साध्यव्यापकत्वनिश्चयोच्चेदापत्त्या पक्षीयसाध्य-
सन्देहाहितव्यभिचारसन्देहस्य साध्यव्यापकतानिश्चयापरिपन्थित्वा-
दिति भावः । ननु तथा ज्ञानदशायां तस्यापि दोषत्वमस्येवेति
तस्य तथा ज्ञानं न दोषाय इत्यस्वरसादाह, 'आर्द्रेति, यद्यपि
तत्रापि द्रव्यत्व-पर्वतत्वादिरेव तादृशधर्मः सम्भवति, न च व्यर्थ-
विशेषणतया द्रव्यत्वादिकं न धूमादिनिष्ठार्द्रेन्धनादिव्याप्यतावच्चे-
दकमिति वाच्यं । तस्य व्याप्यतानवच्चेदकत्वेऽपि तद्विशिष्टसाध्यसमा-
नाधिकरणत्वान्ताभावाप्रतियोगित्वरूपव्यापकताया आर्द्रेन्धनादा-
वनपायात्, तथापि पक्षनियततादृशधर्माभावादार्द्रेन्धनादौ शुद्ध-
साध्यव्यापकताग्रहकालेऽवश्यं यद्वर्तमानविशिष्टसाध्यव्यापकताग्रहो भवति
तादृशपक्षवृत्तिधर्माभावादित्यर्थः, तथाच यदार्द्रेन्धनादौ पक्षवृत्ति-
धर्मावच्छिन्नसाध्यव्यापकताग्रहो नास्ति शुद्धसाध्यव्यापकताग्रहमात्रं
वर्तते तदापि व्याप्तिग्रहप्रतिबन्धात् ज्ञानातिव्याप्तिरिति भावः ।

केचित्तु अत्र 'पक्षधर्मपदेन पक्षवृत्तिधर्माऽभिहितः पक्षमात्र-
वृत्तिधर्मो वा, आद्ये ज्ञानातिव्याप्तिमाह, 'शब्द इति, अन्ये
वस्त्वव्याप्तिमाह, 'आर्द्रेति ह्रदो धूमवान् वक्तेरित्यादावार्द्रेन्धनव-
त्त्वादवित्यर्थः, 'आदिना वायुः प्रत्यक्षः प्रत्यक्षविषयत्वादित्या-

ध्यव्यापकव्यभिचारित्वे साधनावच्छिन्नेत्यस्य व्यर्थत्व-
प्रसङ्गाच्च । किञ्च पक्षद्वयेऽपि विशिष्टसाध्यव्यभिचारं
विशिष्टसाध्यव्यतिरेकं वा प्रसाध्य पश्चात् केवलसा-

दाबुद्धूतरूपवत्त्वादिपरिग्रहः, अत एव 'पक्षनियतेत्युक्तमित्याहुः ।
नन्विदं पूर्वलक्षणेऽयुपाधिः सम्भवति जन्यत्वस्यापि पक्षधर्मत्वादित्य-
तश्चाह, 'श्यामत्व इति मित्रातनयत्वेन काकादौ श्यामत्वसाधन-
इत्यर्थः । विरुद्धस्य लीयोपाधावव्याप्तिसत्त्वेऽपि स्फुटत्वात्तदुपेक्ष्य
दूषणान्तरमाह, 'पक्षधर्मेति वायुः प्रत्यक्षः प्रमेयत्वादित्यादाबुद्धूतरू-
पादावित्यर्थः, न तु वायुः प्रत्यक्षः प्रत्यक्षस्पर्शाश्रयत्वादित्यादाबुद्धूत-
रूपवत्त्वादावित्यर्थः, तत्र साधनीभूतप्रत्यक्षस्पर्शाश्रयत्वावच्छिन्नसाध्य-
व्यापकत्वस्यापि सत्त्वेनाव्याप्त्यभावादिति द्रष्टव्यं । पूर्ववज्ज्ञानातिव्या-
प्तिमाह, 'जलमिति, 'उपाधित्वप्रसङ्गात्' उपाधित्वज्ञानप्रसङ्गात्, पक्षे
साध्याव्यापकतया वस्तुतिव्याप्तेरभावात् । नन्वत्रापि^(१) तथा ज्ञान-
दशायां तस्यापि दोषत्वमस्येवेति तस्य तथा ज्ञानं न दोषाय
इत्यत-आह, 'सोपाधित्वादिति वल्लिमत्वं धूमासाधकं सोपाधि-
त्वादित्यत्रासाधकत्वानुमाने इत्यर्थः, 'साधनावच्छिन्नसाध्यव्यापकव्य-
भिचारित्व इति वल्लवच्छिन्नधूमव्यापकव्यभिचारित्वरूपेणोपाधित्वे
हेतावित्यर्थः, 'साधनावच्छिन्नेत्यस्येति वल्लवच्छिन्नधूमव्यापकव्यभि-
चारित्वं वल्लवच्छिन्नधूमव्यापकतावच्छेदकरूपावच्छिन्नप्रतियोगिता-

अध्यभिचारः केवलसाध्यव्यतिरेको वा साधनीयस्तथा
 चार्थान्तरं केवलसाध्ये हि विवादे न तु विशिष्टे ।
 अथ प्रकृतसाध्यव्यभिचारसिद्ध्यर्थं विशिष्टसाध्यव्यभि-
 चारः साध्य इति चेत् । न । अप्राप्तकालत्वात् ।

काभाववदृत्तित्वं वज्रवच्छिन्नधूमसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियो-
 गितानवच्छेदकरूपावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभाववदृत्तित्वमिति या-
 वत्, तत्र वज्रवच्छिन्नधूमसमानाधिकरणाभावप्रतियोगितावच्छे-
 दकत्वाभाव-धूमसमानाधिकरणाभावप्रतियोगितावच्छेदकत्वाभावयो-
 र्भेदाभावेन^(१) वज्रवच्छिन्नेत्यस्य वैयर्थ्यप्रसङ्गात् । ननु तादृशाभा-
 वयोर्भेदाभावेऽपि यथासन्निवेशे^(२) न वैयर्थ्यं अन्यथा तवापि
 साध्यव्यापकव्यभिचारित्वादित्यत्र साध्यव्यापकेति व्यर्थं साध्यव्यभि-
 चारित्वादित्येतस्यैव सम्यक्त्वात् साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियो-
 गिताकाभावस्यापि साध्यव्यापकतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिता-

(१) धूममात्रस्य वज्रिशून्यदेशवृत्तित्वविरहात् वज्रवच्छिन्नधूमस्य शुद्ध-
 धूमस्य च समदेशवृत्तित्वात् वज्रवच्छिन्नधूमसमानाधिकरणाभा-
 वप्रतियोगितावच्छेदकत्वाभाव-धूमसमानाधिकरणाभावप्रतियोगिता-
 वच्छेदकत्वाभावयोः समनियतत्वेनाभेद इति भावः ।

(२) तादृशाभावयोरभेदेऽपि अवच्छेदकताभेदात् वज्रवच्छिन्नत्वघटितयाव-
 द्धर्मनिष्ठावच्छेदकताकप्रतियोगिताकाभावविषयकप्रतीतौ वज्रव-
 च्छिन्नत्वाघटितयावद्ब्रह्मनिष्ठावच्छेदकताकप्रतियोगिताकाभावस्यावि-
 षयीकरणात् यथासन्निवेशे न वैयर्थ्यमिति भावः ।

प्रथमं साध्यव्यभिचार एवोद्भाव्यस्तत्रासिद्धावुपा-

काभावतया तस्यापि साध्यव्यापकव्यभिचारित्वघटकत्वात् । वस्तुतस्तु
आर्द्रैन्धनाव्याप्यत्वादित्यादिप्रातिस्विकरूपेणैवासाधकत्वं साध्यते न तु
सामान्यतः साधनावच्छिन्नसाध्यव्यापकव्यभिचारित्वेनेति क्व वैयर्थ्य-
सम्भावेनेत्यस्वरसादाह, 'किञ्चेति, 'पक्षद्वयेऽपीति लक्षणद्वयेऽपीत्यर्थः,
'प्रसाध्येति उपाधिव्यभिचारेण उपाधिव्यतिरेकेण वा प्रसाध्येत्यर्थः,
'साधनीय इति विशेषणव्यभिचारित्वे सति विशिष्टसाध्यव्यभिचा-
रित्वेन विशेषणवति विशिष्टसाध्याभाववत्त्वेन वा हेतुना साधनीय-
इत्यर्थः, उपाधेः शुद्धसाध्यव्यापकताज्ञानाभावेन तद्व्यभिचारेण
तद्व्यतिरेकेण वा शुद्धसाध्यव्यभिचारस्य शुद्धसाध्यव्यतिरेकस्य वा
साधनासम्भवात् अनुकूलतर्काभावादिति भावः । परम्परया
प्रकृतोपयोगान्मार्थान्तरमित्याशङ्कते, 'अथेति, 'अप्राप्तकालत्वा-
दिति, प्रथमं विशिष्टसाध्यव्यभिचारस्यानाकाङ्क्षितस्याभिधानादिति
भावः^(१) ।

प्राभाकरोपाध्यायमतमाशङ्कते, 'प्रथमेति, 'उद्भाव्यः' विशेष-
णव्यभिचारित्वे सति विशिष्टसाध्यव्यभिचारेण साधनीयः, 'तत्रा-
सिद्धाविति तत्र विशिष्टसाध्यव्यभिचारे असिद्धावुद्भावितायां
तत्सिद्धये उपाधिः उद्भाव्य इत्यर्थः, 'प्रकृतेति, प्रकृतानुमानवि-
रोधिशुद्धसाध्यव्यभिचारासाधकत्वादिति भावः । ननु विशिष्टसा-
ध्यव्यापकत्वज्ञानेनापि विशेषणवति उपाधिव्यभिचारित्वेन हेतुना

धिरिति चेत्, तर्हि प्रकृतानुमाने नोपाधिदूषणं
स्यात् । किञ्च साध्यव्यभिचारहेतुत्वेन पक्षधर्मावच्छि-
न्नसाध्यव्यापकव्यभिचार एवोपन्यसनीयो नोपाधिः ।

शुद्धसाध्यव्यभिचारानुमानं सम्भवति विशेषणवति विशिष्टव्यापक-
व्यभिचारित्वे विशिष्टव्यभिचारित्वस्यावश्यकत्वादित्यत आह, 'किञ्चेति,
'पक्षधर्मोति साधनस्याप्युपलक्षकं पक्षधर्मसाधनावच्छिन्नसाध्यव्याप-
कस्योपाधेर्यव्यभिचार एव उपन्यसितुमुचित इत्यर्थः, 'नोपाधिः' न
केवलोपाधिः, न चेष्टापत्तिः, कथकसम्प्रदायविरोधात्, इह
हेतावुपाधिः अयं हेतुः सोपाधिः इत्येव सकलकथकैरुद्भाव-
नादिति भावः । इदञ्च दूषणं सर्वत्र बोध्यं न केवलमिह । यद्यपि
व्यभिचारित्वादिसम्बन्धेन उपाधिरपि साक्षाद्हेतुः सम्भवति तथाप्यस्य
समाधानस्य 'यदेति कृत्वा ग्रन्थकृतैवाग्रे स्वयं वक्ष्यमाणत्वान्नासंगतिः ।
व्यभिचारित्वादिसम्बन्धस्य वृत्त्यनियामकतया न व्याप्यतावच्छेदकत्व-
सम्भव इत्यभिमानेन इदमित्यपि केचित् ।

रत्नकोषकारमतमाशङ्कते^(१), 'स्यादेतदिति, एतल्लक्षणपक्षे सत्प्र-
तिपक्षोन्नायकत्वं दूषकतावीजमेव साधनाव्यापकत्वविशिष्टं सलक्ष्य-
तानियामकं न तु व्यभिचारोन्नायकत्वं पक्षधर्मतावललभ्यसाध्यव्य-
भिचारज्ञानस्य प्रकृतानुमानमूलभूतसाध्यतावच्छेदकावच्छिन्नसाध्य-
व्याप्तिज्ञानाविरोधितया अकिञ्चित्करत्वादिति ध्येयम् । 'अनित्य-
त्वातिरिक्तेति अनित्यत्वातिरिक्तो यः शब्दधर्मस्तदतिरिक्तो यो-

(१) रत्नकोषकारलक्षणमाशङ्कत इति ग०, घ० ।

स्यादेतत्पर्यवसितसाध्यव्यापकत्वे सति साधनाव्या-
पकउपाधिः, पर्यवसितं साध्यं पञ्चधर्मताबललभ्यं
यथा शब्दोऽनित्यत्वातिरिक्तशब्दधर्मातिरिक्तधर्मवान्
मेयत्वादित्यत्र पर्यवसितं यत्साध्यम् अनित्यत्वं तस्य

धर्मस्तद्वानित्यर्थः, 'पर्यवसितं यत्साध्यमनित्यत्वमिति, नित्यत्वातिरिक्तो
यः शब्दधर्मस्तदतिरिक्तं विशिष्टाभावत्वादुभयं शब्दधर्मातिरिक्तं घट-
त्वादिकमनित्यत्वञ्च तत्रादौ बाधादनित्यत्वस्यैव पञ्चधर्मताबलेन सिद्ध-
त्वादिति भावः । 'तस्य व्यापकमिति शुद्धसाध्यस्य केवलान्वयितया
तद्व्यापकत्वासम्भवादिति भावः । न चेदं सदनुमानमेवेति कथमत्रो-
पाधिरिति वाच्यं । मीमांसकमतेनाभिधानात् तैः शब्दस्य नित्यत्वा-
ङ्गीकारात् । यद्वा शब्दपदद्वयं शब्दत्वपरं तथाच शब्दत्वं अनित्य-
त्वातिरिक्तशब्दत्वधर्मातिरिक्तधर्मवत् मेयत्वादित्यत्रेत्यर्थः, उदाहर-
णान्तरमाह, 'यदि चेति, 'तथैवेति शब्दत्वं कृतकत्वातिरिक्त-
शब्दत्वधर्मातिरिक्तधर्मवत् मेयत्वादितिक्रमेणेत्यर्थः, 'तदा अनित्यत्व-
मिति, पञ्चधर्मताबललभ्यस्य कृतकत्वस्य व्यापकत्वादिति भावः ।
न चैवं पर्वतो वङ्गिमान् धूमादित्यादौ पर्वतीयवङ्गिव्यापकत्वात्
पर्वतत्व-पाषाणमयत्वादावतिव्याप्तिरिति वाच्यं । पञ्चावृत्तित्वेन विशे-
षणीयत्वादिति^(१) हृदयं । पञ्चधर्मताबललभ्यसाध्यव्यापकस्य उपाधित्वे
प्राचां संवादमाह, 'तदुक्तमिति, 'वायुक्तसाध्येति वायुकं साध्यं

(१) पञ्चावृत्तित्वे सतीत्यनेन विशेषणीयत्वादिति ग०, घ० ।

व्यापकं कृतकत्वमुपाधिः । यदि च तथैव कृतकत्वमपि
शब्दे साध्यते तदा अनित्यत्वमुपाधिः । तदुक्तं “वायु-
क्तसाध्यनियमच्युतोऽपि कथकैरुपाधिरुद्भाव्यः पर्यव-
सितं नियमयन् दूषकतावीजसाम्राज्यात्” इति ।

साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नं साध्यमेव, तन्नियमच्युतोऽपि तद्व्यापक-
तारहितोऽपि^(१) ‘पर्यवसितं नियमयन्’ उपाधिः पक्षधर्मताव-
ल्लभ्यं व्याप्यं कुर्वन्, उपाधिः कथकैरुद्भाव्य इत्यर्थः, उद्भावेन
हेतुमाह, ‘दूषकतेति सत्प्रतिपक्षोन्नायकत्वस्य दूषकतावीजस्य तत्र
सत्त्वादित्यर्थः । ‘एवं हीत्यादि, पक्षधर्मतावलेन नित्यद्रव्यसमवेतत्व-
सिद्धये असमवेतत्व-द्रव्यासमवेतत्वयोर्वाधस्फोरणाय ‘सावयवत्व इति
द्रव्यसमवायिकारणकत्वे सिद्धे इत्यर्थः, ‘जन्यमहत्त्वेति अत्र द्रव्यत्वमा-
त्रस्य हेतुत्वे घटादौ व्यभिचार इत्यनधिकरणान्तं, तावन्मात्रस्य
रूपादौ व्यभिचार इति द्रव्यलोपादानं, जन्यानधिकरणद्रव्यत्वस्या-
प्रसिद्धत्वात्^(२) महत्त्वेति, परमाण्वसिद्धिदशायां आकाशादावन्वय-
व्याप्तिग्रहाय ‘जन्येति, अखण्डाभावत्वान्न वैयर्थ्यमिति ध्येयं, ‘उपाधिः
स्यात्’ उपाधित्वेन ज्ञातः स्यादित्यर्थः, पक्षे पर्यवसितसाध्याव्याप-

(१) वायुक्तसाध्ये नियमः च्युतोऽस्येति वज्रव्रीहिणा साध्यतावच्छेदका-
वच्छिन्नसाध्यव्यापकताराहित्यरूपपर्यवसितार्थज्ञानम् ।

(२) जन्यस्य संयोगादेः सर्वत्र द्रव्ये सत्त्वादप्रसिद्धिरिति भावः ।

अनेन पक्षधर्मसाधनावच्छिन्नसाध्यव्यापकोपाधिः संगृह्यते तादृशसाध्यस्य पर्यवसितत्वादिति, तन्न, एवं हि द्युणुकस्य सावयवत्वे सिद्धे द्युणुकमनित्यद्रव्यासम-

कत्वेन वस्त्वित्याप्तेरभावात् अत्र समवेतत्वमात्रस्य पचावृत्तित्वाभावात् 'निस्यर्गद्रव्येति, पर्यवसितसाध्यसमव्याप्त एव उपाधिरिति यदि परो ब्रूयात्तदाप्यतित्याप्तिरिति दर्शनाय 'द्रव्येति, 'तस्य व्यापकमिति पचातिरिक्ते तस्य व्यापकतया गृहीतमित्यर्थः^(१) । न च प्रकृते नित्यद्रव्यसमवेतत्वं पक्षधर्मतावल्लभमेव न भवति अभावमात्रगतेनानित्यद्रव्यसमवेतत्वाभावत्वन व्यापकतावच्छेदकेनानाक्रान्तत्वात् बाधसहकारात् व्यापकतावच्छेदकप्रकारेण व्यापकतावच्छेदकाश्रयस्यैवानुमितिनियमादिति वाच्यं । तादृशनियमे मानाभावात् । न चैवं घटेतरवज्जभाववानितिबाधसहकारेण वज्जिव्याप्यधूमवान् पर्वत इति परामर्शाद्घटादेरप्यनुमित्यापत्तिरिति वाच्यं । बाधभेदेन कार्य-कारणभावभेदात् तादृशबाधस्याहेतुत्वात् अनुभवानुरोधित्वात्कल्पनायाः । न च तथापि घटेतरद्रव्याभाववानित्यादिबाधसहकारेण वज्जिव्याप्यवत्तापरामर्शाद्घटादेरनुमित्यापत्तिर्दुर्वारा तादृशबाधदशायां द्रव्यादिव्याप्यवत्तापरामर्शाद्घटानुमित्युत्पत्त्या तादृशबाधस्य घटानुमितौ हेतुत्वादिति वाच्यं । द्रव्यादिव्याप्यवत्तापरामर्शजन्यातिरिक्तायास्तादृशबाधजन्यघटानुमितेरलीकतया द्रव्या-

(१) द्रव्यातिरिक्ते व्यापकतया सिद्धमित्यर्थः इति क० ।

वेतं जन्यमहत्त्वानधिकरणद्रव्यत्वादित्यत्र निस्पर्शद्रव्य-
समवेतत्वमुपाधिः स्यात्, भवति हि नित्यद्रव्यसमवे-
तत्वं पर्यवसितं साध्यं तस्य व्यापकं साधनाव्यापकञ्च ।
किञ्च पक्षधर्मतावललभ्यसाध्यसिद्धौ निष्फल उपाधिः

दिव्याप्यवत्तापरामर्शविरहादेव तादृशवाधसत्त्वेऽपि बल्लिआप्यवत्ता-
परामर्शात्तदनुत्पत्तेः अन्यथा उक्तनियमाभ्युपगमेऽपि उक्तापत्तेर्दुर्वार-
त्वात् । न हि नियमव्यभिचारभिया सामग्री कार्यं नार्जयति, इति
भावः । एतदस्वरसेनैवाह, 'किञ्चेति, इत्यपि केचित् । वस्तुतस्तु ननु
भवन्मतेऽपि स्पर्शवदसमवेतत्वस्य उपाधित्वेन ज्ञानापत्तिः पक्षातिरिक्ते
शुद्धसाध्यव्यापकताज्ञानसम्भवात् पक्षे साधनाव्यापकत्वज्ञानसम्भवाच्च,
यदि चावयवानवस्थाप्रसङ्गरूपविपक्षवाधकतर्केण कस्यचिन्निरवयवस्य
स्पर्शवतः सिद्धौ तत्समवेतद्रव्ये साध्याव्यापकत्वज्ञानान्न तथा तदा
ममापि तुल्यमित्यस्वरसादाह, 'किञ्चेति, 'पक्षधर्मतावललभ्येति
पक्षधर्मतावललभ्यायाः साध्यव्यक्तेः सिद्धावित्यर्थः, 'निष्फल उपाधि-
रिति निष्फलमुपाधित्वेन ज्ञानमित्यर्थः, 'कस्य व्यापक इति कस्य
व्यापकत्वेन ग्रह इत्यर्थः, तज्ज्ञानं विना तद्व्यापकत्वग्रहायोगादिति
भावः । ननु प्रकृतानुमानेन तत् गृहीत्वा उपाधौ तद्व्यापकत्वग्रहो-
यदि तदैव सिद्धसिद्धिव्याघातः किन्तु अनुमानान्तरात् प्रमाणान्तरेण
वा तद्गृहीत्वा उपाधौ तद्व्यापकत्वग्रहः स्यादित्यत आह, 'न हीति
न वेत्यर्थः, 'सोपाधौ' सोपाधितया ज्ञाते, 'यस्य व्यापक इति,
तथाच सोपाधौ साध्यस्य पक्षधर्मतावललभ्यत्वमेवासिद्धमिति भावः ।

तदसिद्धौ च कस्य व्यापकः, न हि सोपाधौ पक्षधर्म-
तावलात् साध्यं सिध्यति यस्य व्यापक उपाधिः
स्यादिति ।

इति श्रीमद्भग्वेत्तेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ
अनुमानाख्यद्वितीयखण्डे उपाधिवादपूर्वपक्षः ।

इदमुपलक्षणं वायुः प्रत्यक्षः प्रत्यक्षस्यैवाश्रयत्वादित्यादावुद्भूतरूप-
वत्त्वादावव्याप्तिः, न हि तत्र वहिर्द्रव्यत्वावच्छिन्नप्रत्यक्षत्वादिकं पक्ष-
धर्मतावललभ्यं, न च पक्षधर्मतावललभ्यत्वं यदा कदाचिद्यस्य कस्य-
चित् पक्षधर्मतावललभ्यत्वं अत एवोद्भूतरूपवत्त्वादावपि नाव्याप्तिः
विशिष्टे लाघवज्ञानादिसहकारेण वहिर्द्रव्यत्वावच्छिन्नप्रत्यक्षत्वादा-
वपि कदाचित् पक्षधर्मतावललभ्यत्वादिति वाच्यं । प्रसिद्धानुमाने
महानसत्वादेरप्युपाधितापत्तेः महानसीयवज्रादेरपि कदाचित्
पक्षधर्मतावललभ्यत्वेन तद्व्यापकत्वादित्यास्तां विस्तरः ।

इति श्रीमथुरानाथतर्कवागीश-विरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्य
अनुमानाख्यद्वितीयखण्डरहस्ये उपाधिवादपूर्वपक्षरहस्यं ।

अथोपाधिवादसिद्धान्तः ।



अत्रोच्यते यद्यभिचारित्वेन साधनस्य साध्यव्यभि-
चारित्वं स उपाधिः, लक्षणन्तु पर्यवसितसाध्यव्यापकत्वे
सति साधनाव्यापकत्वं, यद्वर्मावच्छेदेन साध्यं प्रसिद्धं

अथोपाधिवादसिद्धान्तरहस्यं ।

प्रथमतो लक्ष्यतानियामकं लक्ष्यतावच्छेकं निर्वक्ति, 'यदिति, अस्य
लक्षणरूपत्वे 'लक्षणत्वित्ययिमग्रन्यासङ्गतेः । 'यद्यभिचारित्वेनेत्यत्र वै-
शिष्ट्यं तृतीयार्थः, अन्वयश्चास्य साध्यव्यभिचारित्वेन, तथाच यद्य-
भिचारित्वविशिष्टं साध्यव्यभिचारित्वं 'साधनस्य' साधनवृत्तेः, स
उपाधिरिति यथाश्रुतोऽर्थः, वैशिष्ट्यञ्च विशेषणताविशेषसम्बन्धेनैका-
धिकरणवृत्तित्वं, वायुः प्रत्यक्षः प्रत्यक्षस्पर्शाश्रयत्वात् प्रमेयत्वादेत्यादौ
विशिष्टसाध्यव्यापकोपाधीनां उद्भूतरूपवत्त्वादौनां व्यभिचारित्वेन
विशिष्टं साध्यव्यभिचारित्वमपि साधनवृत्ति भवत्येवेति न तत्रा-
व्याप्तिः, वक्त्रिमान् धूमात् द्रव्यं पृथिवीत्वादित्यादिसङ्केतौ साध्य-
व्यापके वक्त्रिसामग्रीमत्त्व-गुणवत्त्वादावतिव्याप्तिवारणाय साधन-
वृत्तित्वप्रवेशः, साधनपदञ्च साधनतावच्छेदकावच्छिन्नाधिकरणत्वपरं,
तेन न द्रव्यं विशिष्टसत्त्वादित्यादौ विशिष्टस्यानतिरिक्तत्वेऽपि
गुणवत्त्वादावतिव्याप्तिः, वक्त्रिमान् धूमात् द्रव्यं पृथिवीत्वादित्यादि-
सङ्केतौ साध्यव्याप्यस्य महानसत्त्व-घटत्वादेर्वारणाय 'साध्यव्यभिचा-

रित्वप्रवेशः । यत्सामानाधिकरण्यविशिष्टं साध्यव्यभिचारित्वमित्युक्तौ धूमवान् वक्त्रेः रूपवान् द्रव्यत्वादित्यादौ साधनव्यापके वक्त्रिसाम-
 ग्रीमत्त्व-द्रव्यत्वादावतिव्याप्तिरतो 'यद्व्यभिचारित्वविशिष्टमिति, यद्व्य-
 भिचारित्वं साध्यव्यभिचारित्वञ्च साधनतावच्छेदकावच्छिन्नाधिकरण-
 तावृत्तीत्युक्तौ पर्वतो धूमवान् वक्त्रेरित्यादौ पर्वतेतरत्व-महानसे-
 तरत्वादेरिदं गुरु रूपादित्यादौ पृथिवीत्वाभाव-घटत्वाभावादेश्वो-
 पाधितापत्तिः अतो विशिष्टत्वप्रवेशः, तेषां व्यभिचारित्वविशिष्ट-
 साध्यव्यभिचारित्वञ्च न कुत्रापि हेतुव्यक्तौ तदधिकरणताव्यक्तौ
 वेति तद्व्युदासः क्लृप्ततत्तदक्लित्व-तत्तद्रूपत्वाद्यवच्छिन्नाधिकरणतयैव
 वक्त्रित्व-रूपत्वाद्यवच्छिन्नाधिकरणताबुद्ध्युपपत्तौ सकलवद्भ्यधिकरण-
 रूपाधिकरणसाधारणातिरिक्तैकतदवच्छिन्नाधिकरणत्वकल्पने गौर-
 वान्मानाभावाच्च । अत एव रूपवान् द्रव्यत्वात् द्रव्यं सत्त्वादित्यादा-
 वपि पृथिवीत्वाभाव-घटत्वाभावादौ नातिव्याप्तिः हेतौ पृथिवीत्वा-
 भावादिव्यभिचारित्वविशिष्टसाध्यव्यभिचारित्वसत्त्वेऽपि कुत्रापि हेतु-
 धिकरणताव्यक्तौ तद्विशिष्टसाध्यव्यभिचारित्वविरहात् अवश्यक्लृप्तपृथि-
 वीत्व-जलत्वादिविशिष्टद्रव्यत्वत्व-सत्तात्वावच्छिन्नाधिकरणतयैव द्रव्य-
 त्वत्व-सत्तात्वाद्यवच्छिन्नाधिकरणताबुद्ध्युपपत्तौ पृथिव्यादिनवकसाधा-
 रणातिरिक्तैकद्रव्यत्वत्वावच्छिन्नाधिकरणतायाः गुणादित्रयसाधारणा-
 तिरिक्तैकसत्तात्वाद्यवच्छिन्नाधिकरणतायाः कल्पने गौरवात् माना-
 भावाच्च । जलत्वविशिष्टद्रव्यत्वाधिकरणत्वं न पृथिवीवृत्तीतिप्रत्ययवत्
 द्रव्यत्वत्वावच्छिन्नाधिकरणत्वं न पृथिवीवृत्तीति प्रत्ययस्यापि यत्कि-
 ञ्चिदधिकरणताव्यक्तिमादाय प्रमात्तस्य दृष्टत्वात्, अग्न्या तत्तद्रश्मि-

करणताव्यक्तीनां द्रव्यत्वानवच्छिन्नत्वेन पृथिवीवृत्तिद्रव्यत्वाधिकरणत्वं
 न द्रव्यत्ववच्छिन्नमिति प्रतीतेरपि यत्किञ्चिदधिकरणताव्यक्ति-
 मादाय प्रमात्वापत्तेः । अस्तु वा अवच्छेदकतासम्बन्धेन एकाधि-
 करणवृत्तिस्वरूपं वैशिष्ट्यमेव द्वितीयार्थः, तथाच वक्त्रित्व-रूपत्व-
 द्रव्यत्ववच्छिन्नाधिकरणत्वस्य सकलतदवच्छिन्नाधिकरणनिष्ठस्यै-
 कत्वेऽपि न चतिः पर्वतेतरत्वादिव्यभिचारित्वस्य साध्यव्यभिचारित्वे
 तादृशवैशिष्ट्यस्याप्रसिद्धत्वादेवातिव्याप्तिविरहात् । इत्यञ्च यद्वर्मा-
 वच्छिन्नव्यभिचारित्वविशिष्टसाध्यव्यभिचारित्वाधिकरणं साधनताव-
 च्छेदकावच्छिन्नसाधनाधिकरणत्वं साध्यसमानाधिकरणवृत्ति तद्वर्म-
 वत्त्वमुपाधित्वमिति निष्कर्षः, तेन धूमवान् वक्त्रेरित्यादावार्द्रैन्धनं न
 द्रव्यत्वादिरूपेणोपाधिः । धूमवान् वक्त्रेरित्यादौ विरुद्धस्य जल-
 त्वादेरुपाधितावारणाय वृत्त्यन्तं तद्वर्मविशेषणं, साध्याधिकरण-
 निष्ठाधारतानिरूपिताधेयतावच्छेदकं तदर्थः, तेन द्रव्यं प्रमे-
 यत्वादित्यत्र द्रव्यान्यत्वविशिष्टसत्त्वं द्रव्यं सत्त्वादित्यत्र द्रव्यभेद-
 विशिष्टगुणभेदश्च नोपाधिः, यद्वर्मावच्छिन्नव्यभिचारित्वञ्च यद्वर्मा-
 वच्छिन्नवदन्यवृत्तित्वं यद्वर्मावच्छिन्नाभावीयनिरवच्छिन्नाधिकरण-
 तावद्वृत्तित्वं वा तेन गन्धवान् द्रव्यत्वादित्यादौ साधनव्यापक्षे
 संयोगादौ नातिव्याप्तिः द्रव्यत्वाभाववान् सत्त्वादित्यत्र स्वाभाववद्-
 वृत्तिस्वरूपस्वव्यभिचारित्वेन हेतौ साध्यव्यभिचारानुमानसमर्थोऽपि
 संयोगाभावादिर्न संग्राह्यः वक्ष्यमाणलक्षणानाक्रान्तत्वादतो न तच्चा-
 व्याप्तिः । न च तथापि धूमवान् वक्त्रेरित्यादौ साध्यव्याप्यमहानस-
 त्वादावतिव्याप्तिः तद्व्यभिचारित्वविशिष्टसाध्यव्यभिचारित्वस्यापि हे-

लधिकरणतावृत्तित्वादिति वाच्यं । तत्र तस्य लक्ष्यत्वात् महान-
सायोगोलकान्यतरत्वावच्छिन्नधूमव्यापकत्वे सति तदवच्छिन्नवज्रव्या-
पकत्वेन वक्ष्यमाणलक्षणाक्रान्तत्वात् “सर्वे साध्यसमानाधिकरणाः सदु-
पाधयः हेतावेकाश्रये येषां स्व-साध्यव्यभिचारिता” इति सिद्धान्ताच्च,
येषां स्वव्यभिचारिता साध्यव्यभिचारिता च एकाश्रये एकस्मिन्नधि-
करणे हेताविति तदुत्तराद्धीर्यः, एकस्मिन्नधिकरणे इत्युपादानात्
पर्वतो धूमवान् वज्जेरित्यादौ पर्वतेतरत्व-महानसेतरत्वादेः इदं गुरु
रूपादित्यादौ पृथिवीत्वाभाव-घटत्वाभावादेश्च न संग्रहः । न च तत्र
तेषामपि संग्राह्यत्वमस्त्विति वाच्यं । व्याप्ति-पक्षधर्मतयोरेकतरभङ्ग-
स्यावश्यकतया तत्र तद्व्यभिचारित्वेनाविशेषितेन विशेषितेन वा साध्य-
व्यभिचारित्वानुमानासम्भवात् रूपवान् द्रव्यत्वात् द्रव्यं सत्त्वादित्यादा-
वपि पृथिवीत्वाभाव-घटत्वाभावादिर्न संग्राह्यः जलसमवेतनित्यत्वा-
दिविशेषितेन तत्तद्व्यभिचारित्वेन तत्र साध्यव्यभिचारानुमानसम्भवेऽपि
तद्व्यभिचारित्व-साध्यव्यभिचारित्वयोरेकस्मिन्नधिकरणे हेतावसम्भ-
वात् तत्र तदनुपाधित्वस्य उपाध्यायादिसकलतान्त्रिकसम्मतत्वादिति
सर्वं चतुरस्रम् ।

केचित्तु हेतावेकाश्रये हेतुरूपे एकस्मिन्नधिकरणे एकस्यां हेतु-
व्यक्ताविति यावत्, तेन रूपवान् द्रव्यत्वात् द्रव्यं सत्त्वादित्यादौ पृथिवी-
त्वाभाव-घटत्वाभावादिरपि संग्राह्यः, इदं गुरु रूपादित्यादौ तु न
संग्राह्यः एकस्या एव वज्जिव्यक्तेरयोगोलक-पर्वताद्युभयवृत्तित्वसम्भवे
धूमवान् वज्जेरित्यत्र पर्वतेतरत्व-महानसेतरत्वादेरपि संग्रहः । न च तत्र
तत्र तेषां संग्राह्यत्वेन वक्ष्यमाणलक्षणस्य तत्राव्याप्यापत्तिरिति वाच्यं ।

तल्लक्षणस्यापि तत्साधारणतया अग्रे व्याख्यास्यमानत्वात् । न च तत्र
 तेषां संग्राह्यत्वे आधेयव्यक्तेरेकत्वेऽप्युक्तयुक्त्या अधिकरणव्यक्तिभेदेन अधि-
 करणताव्यक्तिभेदात् प्रकृतलक्ष्यतावच्छेदकस्य तत्राव्याप्यापत्तिः उक्त-
 युक्त्यनादरे रूपत्वावच्छिन्नाधिकरणत्वस्याप्यविशेषेण सकलरूपाधिक-
 रणसाधारणस्यैकस्य सुवचत्वात् इदं गुरु रूपादित्यादौ पृथिवीत्वा-
 भावादावतिव्याप्तिः तत्र तदलक्ष्यतायाः सर्वसम्मतत्वादिति वाच्यं ।
 यद्व्यभिचारित्वेन यन्निष्ठाव्यापकताकत्वेन विशिष्टं साध्यव्यभिचारित्वं
 साध्यनिष्ठाव्यापकताकत्वं साधनस्य साधनतावच्छेदकावच्छिन्नसाध-
 नवृत्तिः स उपाधिरित्यर्थात् । तथाच साधनतावच्छेदकावच्छिन्न-
 यत्साधनव्यक्त्यव्यापकतावच्छेदकं साध्यतावच्छेदकं साधनतावच्छेदका-
 वच्छिन्नतत्साधनव्यक्त्यव्यापकतावच्छेदको यो धर्मः साध्यसमानाधि-
 करणवृत्तितद्गुणवत्त्वमुपाधित्वमिति फलितमिति न कोऽपि दोष-
 इत्याहुः । तदसत् रूपवान् द्रव्यत्वादित्यादौ पृथिवीत्वादेरुपाधित्वस्य
 उपाध्यायादिसकलतान्त्रिकासम्मतत्वात् ।

अन्ये तु यद्वर्मावच्छिन्नवदन्यत्वेन विशिष्टसाधनाधिकरणे साध्य-
 वदन्यत्वं वर्तते तद्वर्मावच्छिन्नत्वमुपाधित्वमिति लक्ष्यतावच्छेदकं ला-
 धवात्, तथाच द्रव्यत्वत्वावच्छिन्नाधिकरणत्वस्य सकलाधिकरणसा-
 धारणस्य एकत्वमतेऽपि रूपवान् द्रव्यत्वादित्यादौ पृथिवीत्वाभावादौ
 नातिव्याप्तिः । न वा रूपत्वावच्छिन्नाधिकरणत्वस्यैकत्वेऽपि इदं गुरु
 रूपादित्यादौ तत्रातिव्याप्तिः, इत्यञ्च यद्व्यभिचारित्वेन यद्वर्माव-
 च्छिन्नवदन्यत्वेन साधनस्य साधनाधिकरणस्य साध्यव्यभिचारित्वं
 साध्यवद्विन्नत्वं स उपाधिः तद्वर्मावच्छिन्नमुपाधिरित्यर्थः, तृतीयार्थस्य

तदवच्छिन्नं पर्यवसितं साध्यं, स च धर्मः क्वचित्
साधनमेव, क्वचिद्द्रव्यत्वादि, क्वचिन्महानसत्त्वादि,

वैशिष्ट्यस्य साधनाधिकरणेऽन्वयः, निरुक्तसाध्यसमानाधिकरणत्वेन च
तद्धर्मो विशेषणीयः तेन साध्यविरुद्धधर्मे नातिव्याप्तिरिति लक्ष्य-
तावच्छेदकं परिष्कुर्वन्ति । तदसत् उदचरत्वादिति समासः ।

अत्र लक्ष्यतावच्छेदकस्यैव लक्षणत्वसम्भवेऽपि येन रूपेण ज्ञा-
तस्य उपाधेर्दोषत्वं तादृशं लक्षणमाह, 'लक्षणत्वित्यादिना, पर्यव-
सितपदार्थमाह, 'यद्धर्मेति, 'यद्धर्मोवच्छेदेन' यद्धर्मवति, 'साध्यं
प्रसिद्धं' साध्यं वर्तमानं, 'तदवच्छिन्नं' सामानाधिकरण्यसम्बन्धेन
तादृशयत्किञ्चिद्धर्मविशिष्टमित्यर्थः, यथाश्रुतेऽवच्छेदकत्वं नात्रान्यून-
वृत्तित्वं न वानतिरिक्तवृत्तित्वं मित्रातनयत्वादीनां तदसम्भवात्, न
वा स्वरूपसम्बन्धविशेषः मित्रातनयत्वादीनां तथात्वे मानाभावादित्य-
सङ्गतत्वापत्तेः । अत्र व्यधिकरणयत्किञ्चिद्धर्मविशिष्टस्य साध्यस्य
पर्यवसितपदार्थत्वे अप्रसिद्धापत्तिरतो धर्मविशेषपरिचयाय प्रसि-
द्धान्तं न तु लक्षणघटकं, लक्षणन्तु सामानाधिकरण्यसम्बन्धेन
यत्किञ्चिद्धर्मविशिष्टसाध्यव्यापकत्वे सति साधनाव्यापकत्वमेव ।

केचित्तु 'प्रसिद्धं' निश्चितं, एतच्च पर्यवसितपदार्थतया स्वरूप-
कथनमित्याहुः ।

'क्वचित् साधनमेवेति काकः श्यामो मित्रातनयत्वादित्यादा-
वित्यर्थः, 'क्वचित् द्रव्यत्वादीति वायुर्वहिरिन्द्रियप्रत्यक्षः प्रमेयत्वा-
दित्यादावित्यर्थः, 'क्वचिन्महानसत्त्वादीति धूमवान् वक्त्रेरित्यादा-

वित्यर्थः । न च तत्रार्द्रैश्वनादेः शुद्धसाध्यव्यापकत्वस्यैव सम्भवात् अव-
 च्छिन्नसाध्यव्यापकत्वं अतोऽभ्युपेयमिति वाच्यं । शुद्धसाध्यव्यापकत्वे-
 ऽपि विशिष्टसाध्यव्यापकत्वानपाद्यात्, परन्तु व्यर्थविशेषणतया वि-
 शिष्टं व्याप्यतावच्छेदकं भवतु न वेत्यन्यदेतत् । ननु सामानाधि-
 करणसंसर्गेण यत्किञ्चिद्धर्मविशिष्टस्य साध्यस्य व्यापकत्वे सति
 साधनाव्यापकत्वस्य लक्षणत्वे वक्षिमान् धूमादित्यादिसङ्केतावपि
 सपक्षैकदेशवृत्तिधर्मस्य व्यञ्जनवत्त्वादेरुपाधिताप्रसङ्गः महानसत्त्वाद्य-
 वच्छिन्नवज्रादिव्यापकत्वादिति चेदत्रोपाध्यायाः यद्धर्मविशिष्टसा-
 ध्यव्यापकत्वं तद्धर्मविशिष्टसाधनाव्यापकत्वस्यैव विवक्षितत्वात् । न चैवं
 'कचिन्महानसत्त्वादौति मूलमसङ्गतं तद्विशिष्टसाधनाव्यापकत्वस्य
 आर्द्रैश्वनादावभावादिति वाच्यं । धूमानधिकरणवज्राधिकरणस्यापि
 महानसस्य सत्त्वात् । तद्विशिष्टत्वञ्च सामानाधिकरण्यसम्बन्धेन तेन
 रूपवान् पृथिवीत्वादित्यादौ तद्घटोत्पत्तिकालीनत्वविशिष्टरूपव्या-
 पकस्य तद्घटे तद्विशिष्टपृथिवीत्वाव्यापकस्य तद्घटान्यत्वस्य नोपा-
 धित्वप्रसङ्गः, साध्यपदञ्च साध्यतावच्छेदकविशिष्टसाध्यपरं, तेन गुण-
 कर्मान्यत्वादिविशिष्टसत्तावान् प्रमेयत्वादित्यादौ द्रव्य-कर्मान्यत्वादि-
 विशिष्टसत्ताव्यापके तादृशप्रमेयत्वाव्यापके च गुणत्वादौ नातिव्याप्तिः ।
 साधनपदमपि साधनतावच्छेदकावच्छिन्नसाधनपरं, तेन द्रव्यं गुण-
 कर्मान्यत्वविशिष्टसत्तादित्यादौ द्रव्य-गुणान्यतरत्वविशिष्टद्रव्यत्वव्यापके
 तादृशशुद्धसत्ताया अव्यापके च गुणान्यत्वे नातिव्याप्तिः, इदं गुरु
 रूपादित्यादौ पृथिवीत्वाभावादिरिव रूपवान् द्रव्यत्वात् महा-
 कालान्यो घटादित्यादावपि पृथिवीत्वाद्यभाव-खण्डकालभेदादिर्न

लक्ष्य इति न तत्राव्याप्तिरिति भावः । रूपवान् द्रव्यत्वादित्यादौ पृथिवीत्वाभावादेर्लक्ष्यतापत्तेस्तु 'यद्धर्मावच्छेदे' इति सप्तमौ यद्धर्म-विशिष्ट इत्यर्थः, साधनाधिकरण इति शेषः, 'नशब्दश्च निषेधार्थकः, 'प्रसिद्धं' वर्तमानं, तथाच साध्यानधिकरणसाधनाधिकरणवृत्ति-धर्मावच्छिन्नसाध्यव्यापकतावच्छेदकत्वे सति साधनाव्यापकतावच्छेदको यो धर्मस्तद्वत्त्वमुपाधित्वमिति फलितं, विशिष्टसाध्यव्यापकोपाधा-व्याप्तिवारणायवच्छिन्नान्तं साध्यविशेषणं, रूपवान् द्रव्यत्वादित्यादौ साध्यानधिकरणं साधनाधिकरणं वायादि तद्वृत्तिधर्मो वायु-जलान्यतरत्वादिसद्धर्मावच्छिन्नसाध्यव्यापक एव पृथिवीत्वाभावादि-रिति तत्रापि लक्षणसमन्वयः । यत्किञ्चिद्धर्मावच्छिन्नसाध्यव्याप-कत्वस्य साधनाधिकरणवृत्तिधर्मावच्छिन्नसाध्यव्यापकत्वस्य वाभि-धाने वक्षिमान् धूमादित्यादिसद्धेतावपि साध्यव्याप्यमहानसत्व-व्यञ्जनवत्त्वादेरप्युपाधितापत्तिरिति साध्यानधिकरणसाधनाधिक-रणवृत्तित्वं धर्मविशेषणं, साध्यानधिकरणसाधनाधिकरणञ्च सद्धेता-वप्रसिद्धमतो न तद्दोषतादवस्थम् । महानसत्वव्यञ्जनवत्त्वादेरपि महानस-जलहृदान्यतरत्वादिविशिष्टसाध्यव्यापकतया तद्दोषतादव-स्थवारणाय साधनाधिकरणप्रवेशः, साधनाधिकरणत्वञ्च साधन-तावच्छेदकविशिष्टाधिकरणत्वं, तेन द्रव्यं गुण-कर्मन्यत्वविशिष्ट-सत्त्वादित्यत्र साध्यानधिकरणसाधनाधिकरणवृत्तिरूप-घटान्यतर-त्वावच्छिन्नसाध्यव्यापके^(१) पृथिवीत्वादौ नातिव्याप्तिः । साध्या-

(१) साध्यानधिकरणसत्ताधिकरणवृत्तिरूप-घटान्यतरत्वावच्छिन्नसाध्य-व्यापक इति ख०. ग० ।

अधिकरणसाधनतावच्छेदकविशिष्टसाधनाधिकरणप्रसिद्धेः साध्या-
 नधिकरणत्वमपि साध्यतावच्छेदकविशिष्टानधिकरणत्वं, तेन गुण-
 कर्मन्यत्वविशिष्टसत्तावान् जातेरित्यत्र सत्तानधिकरणजात्यधिकरणा-
 प्रसिद्धावपि द्रव्यत्वादौ नाव्याप्तिः । न चैवमुपाधिग्रहीरभान एव
 साध्यव्यभिचारभानादुपाधिव्यभिचारेण पुनर्व्यभिचारानुमानमफलं
 स्यादिति वाच्यं । हेतुविशेष्यकसाध्यव्यभिचारप्रकारकज्ञानार्थं
 तदनुमानस्यावश्यकत्वात् तादृशज्ञानस्यैव प्रतिबन्धकत्वात् यत्रोपा-
 धित्वज्ञानात् पूर्वं साधनाधिकरणस्य न साध्यानधिकरणत्वज्ञानं
 तत्र निश्चितोपाधित्वाभावस्यापीष्टत्वात् । साध्यव्यापकत्वमपि साध्यता-
 वच्छेदकविशिष्टसाध्यव्यापकत्वं बोध्यं, अन्यथा गुण-कर्मन्यत्वविशिष्ट-
 सत्तावान् जातेरित्यत्र द्रव्यत्वादावव्याप्यापत्तेः तत्र द्रव्य-गुणान्य-
 तरत्व-द्रव्य-कर्मन्यतरत्वादिरूपतादृशधर्मावच्छिन्नविशिष्टसत्ताव्याप-
 कत्वेऽपि तादृशशुद्धसत्ताव्यापकत्वविरहात् । न च निरुक्तसाध्यानधि-
 करणनिरुक्तसाधनाधिकरणवृत्तिधर्मावच्छिन्ननिरुक्तसाध्यसमानाधि-
 करणवृत्तित्वे सतीत्येवास्तु किं व्यापकतावच्छेदकत्वपर्यन्तानुस-
 रणेन तादृशसाध्यसमानाधिकरणवृत्तित्वञ्च तादृशसाध्याधिकरणनि-
 रूपिताधेयतावच्छेदकत्वं तेन द्रव्यं सत्त्वादित्यत्र द्रव्यान्यत्वविशिष्टसत्त्वे
 नातिव्याप्तिरिति वाच्यं । व्यापकत्वाप्रवेशे उपाधिग्रहीरभानस्य
 उपाधिव्यभिचारित्वनिष्ठसाध्यव्यभिचारित्वव्याप्तिग्रहोपयोगित्वासम्भ-
 वात् यथासन्निवेशे वैयर्थ्याभावात् । धूमवान् वज्जेरित्यादौ साध-
 नव्यापकस्य प्रमेयत्वादेर्वारणाय साधनाव्यापकतावच्छेदकत्वप्रवेशः,
 साधनपदञ्च साधनतावच्छेदकावच्छिन्नसाधनपरं, तेन द्रव्यं गुणान्य-

तथाहि समव्याप्तस्य विषमव्याप्तस्य वा साध्यव्यापकस्य
व्यभिचारेण साधनस्य साध्यव्यभिचारः स्फुट एव
व्यापकव्यभिचारिणस्तद्याप्यव्यभिचारनियमात्, साध-
नावच्छिन्न-पक्षधर्मावच्छिन्नसाध्यव्यापकयोर्व्यभिचारि-

त्वविशिष्टसत्तादित्यत्र द्रव्य-कर्मान्यतरत्वादिरूपतादृशधर्मावच्छिन्न-
साध्यव्यापके गुणान्यत्वे नातिव्याप्तिः । न चैवं इदं गुरु रूपादित्या-
दावपि जल-तेजोन्यतरत्वादिरूपतादृशधर्मविशिष्टसाध्यव्यापकतया
पृथिवीवृत्तिरूपाव्यापकतया च पृथिवीत्वाभावादेरूपाधितापत्तिः
पृथिवीत्वाभावव्यभिचारिरूपव्यक्तेः पृथिवीमात्रनिष्ठतया साध्यव्यभि-
चारित्वाभावान्न तदनुपाधित्वस्य सर्वसम्मतत्वादिति वाच्यं । पूर्व-
दक्षप्रविष्टा या साधनव्यक्तिः साधनतावच्छेदकविशिष्टतत्साधन-
व्यक्त्यव्यापकत्वस्य विवक्षितत्वात्, द्रव्यत्वाभाववान् सत्तादित्यत्र स्वाभाव-
वृत्तित्वरूपस्त्वव्यभिचारित्वेन साध्यव्यभिचारानुमानममर्थोऽपि संयो-
गाभावादिर्न संग्राह्यः, तेन उपाध्यायमतेऽत्र मते च न तत्रा-
व्याप्तिरिति समासः ।

इदानीं प्रसङ्गादुपाधिव्यभिचारेण साध्यव्यभिचारानुमितेः
प्रकारं व्युत्पादयति, 'तथा हीति, 'समव्याप्तस्य' साध्यव्याप्यस्य,
'विषमव्याप्तस्य' साध्याव्याप्यस्य, यथाश्रुतेऽग्रे 'साध्यव्यापकस्येत्यस्य वैय-
र्थ्यापत्तेः, 'साध्यव्यभिचारः' साध्यव्यभिचारग्रहः, 'स्फुट एव' स्फुटतरं
सम्भवत्येव, 'व्यभिचारित्वेन' व्यभिचारित्वेनापि, 'साधनस्य साध्यव्य-
भिचारित्वमेव' साधनस्य साध्यव्यभिचारित्वग्रहः सम्भवत्येव, ननु

त्वेन साधनस्य साध्यव्यभिचारित्वमेव, यथा ध्वंसस्या-
नित्यत्वे साध्ये भावत्वस्य, वायोः प्रत्यक्षत्वे साध्ये उद्भूत-
रूपवत्त्वस्य च, विशेषणाव्यभिचारिणि साधने विशिष्ट-

विशिष्टसाध्यव्यापकव्यभिचारित्वेन विशिष्टसाध्यव्यभिचारित्वग्रह एव
सम्भवति न तु शुद्धसाध्यव्यभिचारग्रहइत्यत आह, 'विशेषणेति,
'विशेष्येति विशेष्यव्यभिचारित्वरूपतानियमादित्यर्थः। न च विशि-
ष्टाभाव-विशेष्याभावयोर्भेदेन व्यभिचारभेदात् कथं विशिष्टव्य-
भिचारो विशेष्यव्यभिचारात्मक एवेति वाच्यं। विशिष्टाभावो विशेष्य-
विशेषणाभावाभ्यां नातिरिच्यत इत्यभिप्रायात्,^(१) विशिष्टाभावस्या-
तिरिक्तत्वेऽपि विशेष्याभावाधिकरणस्य विशिष्टाभावाधिकरणत्व-
नियमेन विशेष्याभावाधिकरणवृत्तित्वस्य विविष्टाभावाधिकरण-
वृत्तित्वरूपत्वाच्च। 'अतएवेति यतएव विशेषणाव्यभिचारिणि साधने
विशिष्टसाध्यव्यभिचारो विशेष्योभूतशुद्धसाध्यव्यभिचारस्वरूपोऽतएवे-
त्यर्थः, 'नार्थान्तरमिति वायुः प्रत्यक्षः प्रत्यक्षस्यर्शाश्रयत्वादित्यादावुद्भूत-
रूपवत्त्वव्यभिचारित्वेन विशिष्टसाध्यव्यभिचारसाधने नार्थान्तरमित्यर्थः,
'विशेषणेति, यत इत्यादिः, 'पक्षधर्मताबलादिति विशेष्यव्यभिचारित्वे-
तरविशिष्टसाध्यव्यभिचारित्वस्य बाधग्रहसहकारादित्यर्थः, विशेषणा-
व्यभिचारिसाधने विशिष्टसाध्यव्यभिचारस्य विशेष्योभूतशुद्धसाध्यव्य-
भिचारस्वरूपत्वेन विशेष्योभूतशुद्धसाध्यव्यभिचारस्यापि व्यापकतावच्छे-

(१) तथाच विशेषणवति विशिष्टाभावो विशेष्याभावरूपः, विशेष्य-
वति विशेष्याभावरूपश्चेति भावः।

व्यभिचारस्य विशेष्यव्यभिचारित्वनियमात् । अतएव
नार्थान्तरं विषणाव्यभिचारित्वेन ज्ञाते साधने विशि-
ष्टव्यभिचारः सिध्यन् विशेष्यसाध्याव्यभिचारमादायैव

दकावच्छिन्नत्वादिति भावः । न च तस्य व्यापकतावच्छेदकावच्छिन्न-
त्वेऽनुमितेर्यापकतावच्छेदकप्रकारकलनियमाद्विशिष्टसाध्यव्यभिचा-
रित्वप्रकारिकैव धीः स्यात् तथाचार्थान्तरमेव शुद्धसाध्यव्यभिचारित्व-
प्रकारकबुद्धेरेव कारणीभूतव्याप्तिज्ञानप्रतिबन्धकत्वेनोद्देश्यत्वादिति
वाच्यं । इतरकोटिबाधसहकारेण व्यापकतानवच्छेदकरूपेणापि व्याप-
कतावच्छेदकावच्छिन्नानुमितिसौकारात् । ‘अन्यथा’ विशेष्यव्यभिचा-
रित्वाविषयकत्वे, ‘अपर्यवसानात्’ अपर्यवसानप्रसङ्गात् अप्रमात्वप्रस-
ङ्गादिति यावत्, विशेषणव्यभिचारित्वस्य तत्र बाधितत्वादिति भावः ।
ननु तथापि अनुमितेर्यापकतावच्छेदकप्रकारकलनियमे पक्षधर्म-
तावलादपि शुद्धसाध्यव्यभिचारित्वप्रकारिका धीर्न सम्भवतीत्यस्वरसा-
दाह, ‘यद्वेति, ‘द्रव्यप्रत्यक्षत्वेति द्रव्यत्वावच्छिन्नप्रत्यक्षत्वेत्यर्थः, ‘महत्त्ववत्’
चक्षुरादिनिष्ठमहत्त्ववत्, तेन घटादिवृत्तिमहत्त्वस्य साध्य-साधनविक-
लत्वेऽपि न क्षतिः । इदञ्चानुमानं प्रत्यक्षपरिमाणवत्त्वादुपाध्यभिप्रायेण
न तु उद्भूतरूपवत्त्वोपाध्यभिप्रायेण तस्यात्मनि व्यभिचारेण द्रव्यत्वा-
वच्छिन्नप्रत्यक्षत्वाव्यापकत्वात्, तद्व्यभिचारित्वस्य सुखादौ प्रत्यक्षत्व-
व्यभिचारित्वव्यभिचाराच्च इत्यपि द्रष्टव्यं । न च ‘द्रव्यप्रत्यक्षत्वव्यापकेत्यत्र
द्रव्यपदवैयर्थ्यमिति वाच्यं । प्रत्यक्षपरिमाणवत्त्वादिव्यभिचारित्वस्यैव

सिध्यति पक्षधर्मतावलात् अन्यथा प्रतीतेरपर्यवसानात् । न च पक्षधर्मतावलात् प्रकृतसिद्धावर्थान्तरम् । यद्वा प्रत्यक्षस्पर्शाश्रयत्वं प्रत्यक्षत्वव्यभिचारि द्रव्यत्वाव्य-

हेतुत्वात्, द्रव्यप्रत्यक्षत्वव्यापकत्वोपन्यासस्तु तर्कप्रदर्शनायेति,^(१) 'श्याम-
मित्रातनयत्वेति मित्रातनयत्वावच्छिन्नश्यामत्वेत्यर्थः, अत्रापि शाकपा-
कजत्वव्यभिचारित्वादित्येव हेतुः, व्यापकत्वोपन्यासस्तु तर्कप्रदर्शनायेति
ध्येयं । 'अघटत्ववदिति, ननु अघटत्वं घटभेदः स च नान्वयेन दृष्टान्तः
सत्यन्तविशेषणाभावेन साधनविकलत्वात्, नापि व्यतिरेकेण, साध्यस्य
तत्र सत्त्वादिति चेत् अत्रास्मद्गुरुचरणाः^(२) यथाहि धूमत्वविशिष्टप्रमे-
यत्वं वज्रव्यभिचारि तथा मित्रातनयत्वादिविशिष्टं सदघटत्वमपि
मित्रातनयत्वाव्यभिचार्यत्वेति भावः । ननु मित्रातनयत्वाव्यभिचारित्वं
मित्रातनयत्वाभाववदवृत्तित्वं तच्च मित्रातनयत्वविशिष्टेऽघटत्वेऽपि नास्ति
विशिष्टस्यानतिरिक्ततया गुणाद्यन्यत्वविशिष्टसत्ताया गुणादिवृत्तित्वव-
न्मित्रातनयत्वादिविशिष्टाघटत्वस्यापि मित्रातनयमिन्ने सत्त्वाद्वज्रभा-
ववदवृत्तित्वरूपवज्रव्यभिचारित्वमपि न धूमत्वविशिष्टप्रमेयत्वे तथाच

(१) अत्र "यो यद्व्यापकव्यभिचारी स्यात् स तद्व्यभिचारौ स्यादिति
व्यापकव्यभिचारिणो व्यभिचारित्वनियमादस्याप्रयोजकत्वशङ्काव्युदासकतर्क-
ज्ञापनायेत्यर्थः, तर्कस्तु यदि साध्यव्यापकव्यभिचारः साध्यव्यभिचारव्याप्यो
न स्यात् तदा साधनवृत्तिर्न स्यात्" इत्यधिकः पाठः ख-चिह्नितपुस्तके
वर्तते ।

(२) अत्रास्मत्पिष्टचरणाः इति ख०, ग० ।

भिचारित्वे सति द्रव्यप्रत्यक्षत्वव्यापकव्यभिचारित्वान्म-
हत्त्ववत्, तथा मित्रातनयत्वं श्यामत्वव्यभिचारि मित्रा-

साधनविकलो दृष्टान्तः इत्यतो व्यापकत्वरूपमव्यभिचारं निर्वृक्ति, 'अव्य-
भिचारश्चेति, 'तत्समानाधिकरणेति तत् मित्रातनयत्वं समानाधिकर-
णात्यन्ताभावाप्रतियोगि यस्येति वज्रनैहिः, स्वसमानाधिकरणात्य-
न्ताभावाप्रतियोगिमित्रातनयत्वकलमित्यर्थः । यथाश्रुते मित्रातनयत्व-
व्यापकत्वस्यैव फलतो मित्रातनयत्वाव्यभिचारित्वरूपतया शाकपाकजत्व-
व्यभिचारित्वरूपस्य विशेष्यदलस्य वैयर्थ्यापत्तेः । न च भिन्नधर्मिकत्वाच्च
वैयर्थ्यमिति^(१)वाच्यं । तथापि शाकपाकजत्वव्यभिचारित्वस्य शाकपाक-
जत्वाभाववति वर्तमानत्वरूपतया शाकपाकजत्वाभाववदंशवैयर्थ्यापत्ते-
र्दुर्वारत्वात् मित्रातनयत्वव्यापकत्वे सति वर्तमानत्वस्यैव सम्यक्त्वात् ।
'अभेदेऽपीति विशिष्टस्य केवलादनतिरिक्तत्वेऽपीत्यर्थः, विशिष्टस्थान-
तिरिक्तत्वेऽपि तन्निरूपिताधारताया मित्रातनयभिन्नेऽभावादिति
भावः । यद्यप्येवं श्यामत्वप्रकारकप्रमाविशेष्यत्वादावेव व्यभिचारः
तस्यापि मित्रातनयत्वादिर्विशिष्टीभूय मित्रातनयत्वाव्यभिचारित्वात्
शाकपाकजत्वाभाववद्वृत्तित्वरूपशाकपाकजत्वव्यभिचारित्वाच्च, तथापि
शाकपाकजत्वव्यभिचारित्वमपि स्वसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियो-
गिशकपाकजत्वकत्वं तथाच स्वसमानाधिकरणात्यन्ताभावाप्रतियो-

(१) तथाच स्वसमानाधिकरणव्याप्यतावच्छेदकधर्मान्तरघटितत्वस्यैव
व्यर्थविशेषणघटितत्वरूपतया भिन्नधर्मिकत्वे स्वसमानाधिकरणत्वविरहा-
देव न व्यर्थविशेषणघटितत्वसम्भव इति भावः ।

तनयत्वाव्यभिचारित्वे सति श्याममित्रातनयत्वव्या-
पकव्यभिचारित्वात् अघटत्ववत्, अव्यभिचारश्च तत्स-

गिमित्रातनयत्वकत्वे सति स्वसमानाधिकरणात्यन्ताभावपतियोगि-
शाकपाकजत्वकत्वादिति फलितं, स्वपदद्वयञ्च एकधर्मावच्छिन्नबोध-
कमतो न कोपि दोष इत्याहुः ।

नव्यास्तु अघटत्वं व्यतिरेकेणैव दृष्टान्तः, मित्रातनयत्वस्य मित्राज-
न्यत्वविशिष्टपुंस्त्वाख्यावयवविशेषरूपस्य समवेतत्वसम्बन्धेनैव स्थापनानु-
माने हेतुतया समवेतत्वसम्बन्धेन श्यामत्वव्यभिचारस्यैवात्र साध्यत्वेन
साध्याभावस्यापि तत्र सत्त्वात् । यदि च मित्रातनयत्वं प्रकृते मित्रा-
जन्यतावच्छेदकधर्मावत्त्वमात्रमधिकस्य व्यर्थत्वात्, तथापि तादृशधर्मस्य
जातिविशेषरूपतया समवायसम्बन्धेन श्यामत्वव्यभिचारस्यैवात्र साध्य-
त्वेन साध्याभावस्य सुतरां तत्र सत्त्वादिति भावः । ननु मित्रातनय-
त्वाव्यभिलारित्वं कुतो मित्रातनयत्वेऽभिव्यक्तिरिति भेदगर्भत्वादतो हेतुः
स्वरूपासिद्ध इत्यत आह, 'अव्यभिचारश्चेति, 'तत्समानाधिकरणेति
पूर्ववदङ्गव्रीहिः, तथाच मित्रातनयत्वाभाववदवृत्तित्वं फलितं, यथा-
श्रुते हेतावुक्तरीत्या विशेष्यदलघटकशाकपाकजत्वाभाववदङ्गवैयर्थ्या-
पत्तेः, 'तच्चाभेदेपीति, तस्य भेदागर्भत्वादिति भाव इति प्राहुः ।

मिश्रास्तु अघट इति गौरमित्रातनयसंज्ञाभेदः, तथाच गौर-
मित्रातनयवृत्तिधर्मान्वयेनैव दृष्टान्त इत्याहुः, तन्मते 'अव्यभिचार-
स्येत्यादिग्रन्थस्तु नव्यमतवद्योजनीयः ।

भट्टाचार्यास्तु ननु अघटत्वं घटभेदः स चान्वयेन न दृष्टान्तः साध-

मानाधिकरणात्यन्ताभावाप्रतियोगित्वं तच्चाभेदेऽपि ।
यदा यः साधनव्यभिचारौ साध्यव्यभिचारोन्नायकः

नविकलत्वात् अधिकरणभेदेन घटभेदस्य भेदाभावात् । नापि व्यति-
रेकेण, मित्रातनयत्वं न मित्राजन्यतावच्छेदकधर्मवत्त्वमात्रं तस्य तनय-
त्वास्वरूपत्वात्, अत एव न मित्राजन्यत्वविशिष्टपुंस्त्वाख्यावयवविशेषः
प्राचां नये वृत्त्यनियामकसम्बन्धस्य शक्यतावच्छेदकतानवच्छेदकतया
तस्यापि तनयत्वास्वरूपत्वात्, अपि तु मित्राजन्यत्वविशिष्टपुंस्त्वा-
ख्यावयवविशेषसमवेतत्वं, किन्नलिङ्गखण्डशरीरं तु नपुंसकवन्न पुत्रः,
तथाच स्वरूपसम्बन्धेनैव तस्य स्थापनानुमाने हेतुतया स्वरूपसम्ब-
न्धेन श्यामत्वव्यभिचारस्यैवात्र साध्यत्वेनाघटत्वे साध्याभावविरहादि-
त्याशङ्क्यायामाह, 'अव्यभिचारश्चेति, 'तत्समानाधिकरणेति मित्रा-
तनयत्वाधिकरणीभूतयत्किञ्चिद्व्यक्तिनिष्ठेत्यर्थः, तेन मित्रातनयत्व-
समानाधिकरणत्वं फलितं, यथाश्रुते हेतावुक्तरीत्या व्यर्थविशेषणत्वा-
पत्तेः, 'तच्चेति, 'अभेदेऽपि' घटभेदस्याधिकरणभेदेन भेदाभावेऽपि,
तत्रास्तीति शेषः । न चैवं श्यामत्वादावेव व्यभिचारः तस्यापि मित्रा-
तनयत्वसमानाधिकरणत्वात् शाकपाकजत्वव्यभिचारित्वाच्च इति
वाच्यं । यस्मिन्नधिकरणे मित्रातनयत्वसमानाधिकरण्यं तत्र शाक-
पाकजत्वव्यभिचारित्वस्य विवक्षितत्वात् मित्रातनये शाकपाकजत्व-
व्यभिचारित्वादिति तु फलितार्थ इत्याहुः ।

नन्वेवं साध्यव्यभिचारानुमापकत्वेनोपाधिव्यभिचारस्यैव दोषतया
स एव उपन्यसितमुचितो नोपाधिरिति प्रागुक्तदोषो दुर्वार इत्य-

स उपाधिः तत्त्वञ्च साक्षात् परम्परया वेति नार्थान्तरम् । किञ्च अर्थान्तरस्य पुरुषदोषत्वादाभासान्त-

स्वरसादाह, 'यदेति, 'यः साधनव्यभिचारौति यः साधनव्यभिचारौ स उपाधिः साध्यव्यभिचारोन्नायकः स स्वयमेव साधने साध्यव्यभिचारोन्नायकः इति योजना, स्वरूपसम्बन्धेन तद्व्यभिचारस्यैव तस्यापि व्यभिचारितासम्बन्धेन साधनवृत्तित्वात् साध्यव्यभिचारव्याप्यत्वाच्च, तथाच वक्त्रिधूमव्यभिचारौ आर्द्रन्धनवत्त्वादित्यादिरेव व्यभिचारानुमानप्रयोगः । न च व्यभिचारितादिसम्बन्धस्य वृत्त्यनियामकतया न व्याप्यतावच्छेदकत्वसम्भव इति वाच्यं । वृत्त्यनियामकसम्बन्धस्याभावप्रतियोगितावच्छेदकत्वानभ्युपगमात् व्यापकतावच्छेदकत्वासम्भवेऽपि^(१) व्याप्यतावच्छेदकत्वे बाधकाभावादिह हेतावुपाधिरिति प्रतीत्या व्यभिचारितासम्बन्धस्यापि वृत्तिनियमकत्वाच्चेति भावः । करका पृथिवी कठिनसंयोगवत्त्वादित्यादौ साधनव्यापकस्यानुष्णाश्रौतस्पर्शवत्त्वादुपाधेर्विशेषदर्शिनां साधने साध्यव्यभिचारानुमापकत्वसम्भवात् व्यभिचार्यन्तमुपाधिविशेषणं, साधनं व्यभिचारि यस्येति व्युत्पत्त्या साधनाव्यापकत्वं तदर्थः, 'तत्त्वञ्चेति विविष्टसाध्यव्यापकोपाधेस्तत्त्वञ्चेत्यर्थः, 'साक्षात्' प्रागुक्तरीत्या विशेषणव्यभिचारित्वादिविशेषणसहकारेण साक्षात्, 'परम्परया वा' पूर्वपक्षग्रन्थोक्तक्रमेण शुद्धसाध्यव्यभिचारानुमापकविशिष्टसाध्यव्यभिचारानुमितिद्वारा वा, 'नार्थान्-

(१) व्यापकत्वान्तर्गताप्रतियोगित्वघटकप्रतियोगित्वस्य व्यापकताघटकसम्बन्धावच्छिन्नत्वेन विशेषितत्वादिति भावः ।

रस्य तत्राभावादुपाधिरेव भावत्वादिकं दोषः । न चैवं
शब्देऽभिधेयः प्रमेयत्वादित्यत्राश्रावणत्वं जलं प्रमेयं
रसवत्त्वादित्यत्र पृथिवीत्वमुपाधिः स्यात्^(१), केवलान्वयि-

न्तरमिति ध्वंसो विनाशो जन्यत्वादित्यादौ विशिष्टसाध्यव्यापक-
भावत्वाद्युद्भावने नार्थान्तरमित्यर्थः । न च तस्यापि 'परम्परया वेति
पक्षे प्रथमं तदुद्भावनेऽप्राप्तकालत्वमस्यैव अन्यथा उपाधिसाधक-
तत्साधकादिपरम्परया अप्युद्भावनेऽप्राप्तकालत्वं न स्यादिति वाच्यं ।
प्रथमं शुद्धसाध्यव्यभिचार एव उद्भाव्यः, तत्र कथन्तायां तद्धेतुत्वेन
विशेषणव्यभिचारित्वे सति विशिष्टसाध्यव्यभिचारित्वमुद्भाव्यं, तत्र
विशेषकथन्तायां तद्धेतुत्वेन विशिष्टसाध्यव्यापकोपाधिरुद्भाव्यः, इत्य-
प्राप्तकालत्वविरहात् । न च तथापि साक्षात् शुद्धसाध्यव्यभिचा-
रानुमापकत्वात् विशिष्टसाध्यव्यापकोपाधेर्दोषत्वं न स्यादिति वाच्यं ।
साक्षात्परम्परासाधारणव्यभिचारानुमापकत्वस्यैव दोषतायां तन्मत्ता-
दिति भावः ।

केचित्तु प्राकारान्तरेण लक्ष्यतावच्छेदकं निर्वृत्ति, 'यद्वेति,
'यः साधनव्यभिचारी' साधननिष्ठो यद्व्यभिचारः, 'साध्यव्यभिचारो-
न्नायकः' साध्यव्यभिचारानुमितिस्वरूपयोग्यः, साध्यव्यभिचारसमा-
नाधिकरण इति यावत्, स उपाधिरित्यर्थः, द्रव्यं पृथिवीत्वादि-
त्यादिसद्धेतौ साध्यव्यापकस्य गुणवत्त्वादेः साध्यव्याप्यस्य घटत्वादेः सोपा-

(१) पृथिवीत्वमुपाधिः स्यादिति वाच्यं इति ख० ।

साधकप्रमाणेन तत्र साध्यसिद्धेरुपाधेर्विशिष्टाव्याप-
कत्वात् । न च पक्षे तरे स्वव्याघातकत्वेनानुपाधायति-

धितावारणाय निष्ठान्तं व्यभिचारविशेषणं, तथाच साधनतावच्छेद-
कावच्छिन्नसाधनाधिकरणत्ववृत्तित्वविशिष्टयद्गर्भावच्छिन्नव्यभिचारि-
त्वनिरूपिताधिकरणत्वं साध्यव्यभिचारसमानाधिकरणं तद्गर्भवत्त्व-
नुपाधिरिति फलितं । द्रव्यं विशिष्टसत्त्वादित्यादौ विशिष्टस्थान-
निरिक्तत्वेऽपि गुणवत्त्वादौ नातिव्याप्तिः, न वा आश्रयभेदेऽपि
एकधर्मावच्छिन्नव्यभिचारस्यैकत्वनये द्रव्यं पृथिवीत्वादित्यादौ घट-
त्वादावतिव्याप्तिस्तदवस्था पृथिवीत्वाधिकरणत्वनिष्ठघटत्वव्यभिचारस्य
सत्ताद्यधिकरणत्ववृत्तित्वेऽपि पृथिवीत्वाधिकरणत्ववृत्तित्वविशिष्टघ-
टत्वव्यभिचारित्वनिरूपिताधिकरणत्वस्य पृथिवीत्वाधिकरणत्व एव
सत्त्वान्तत्र साध्यव्यभिचारित्वविरहात् । न च तद्वारणाय व्याप्यत्वमेव
स्वरूपयोग्यत्वं विवक्ष्यतामिति वाच्यं । विशिष्टव्यापकोपाधावव्या-
प्यापत्तेः तद्व्यभिचारस्य साधनाधिकरणत्वनिष्ठत्वेऽपि साध्यव्यभिचा-
राव्याप्यत्वात् आश्रयभेदेन व्यभिचारभेदाभावात् पूर्ववन्निरुक्तसाध्य-
समानाधिकरणवृत्तित्वेनापि तद्गर्भा विश्लेषणीयः तेन धूमवान्
वज्रेरित्यादौ साध्यविरुद्धे जलत्वादौ नातिव्याप्तिः उक्तिवैचित्र्याच्च
पूर्वस्मात् भेदः । रूपवान् द्रव्यत्वादिदं गुरु रूपादित्यादौ पृथि-
वीत्वाभाव-घटत्वाभावादावतिव्याप्तिवारणन्तु पूर्ववत् । 'तत्त्वञ्चेति
व्यभिचारानुमित्युपाधायकत्वञ्चेत्यर्थः, 'साक्षात्परम्परया वेति शुद्ध-
साध्यव्यापकस्थले साक्षात्, विशिष्टसाध्यव्यापकस्थले च पूर्वपक्षोक्त-

व्याप्तिः तच्चानुकूलतर्काभावेन साध्यव्यापकत्वानिश्च-
यात् सहचारदर्शनादेस्तेन विना संशयकत्वादित्युक्तं ।
बाधोन्नीते चानुकूलतर्कोऽस्त्येवेति, एवं पर्वतावयववृ-
त्त्यन्यत्वादेरपि नोपाधित्वं पक्षमात्रव्यावर्तकविशेष-

क्रमेण शुद्धसाध्यव्यभिचारानुमापकविशिष्टसाध्यव्यभिचारानुमिति-
द्वारा इत्यर्थः, 'नार्थान्तरमिति ध्वंसोविनाशी जन्यत्वादित्यादौ
विशिष्टसाध्यव्यापकभावत्वाद्युद्भावेन नार्थान्तरमित्यर्थः, एतच्च प्रसङ्गात्
स्वरूपकथनं, न तु लक्ष्यतावच्छेदकघटकतयैव तदभिधानं तत्र
स्वरूपयोग्यताया एव घटकत्वादित्याहुः ।

अभ्युपगमवादेनाह, 'किञ्चेति, 'पुरुषदोषत्वादिति उद्भावकस्य
पुरुषस्य निग्रहस्थानमात्रत्वादित्यर्थः, मात्रपदादुपाधिलिङ्गकव्यभिचा-
रानुमितिप्रतिबन्धकत्वव्यवच्छेदः, 'आभासान्तरस्य' व्यभिचारानुमिति-
प्रतिबन्धकान्तरस्य, 'तत्र' व्यभिचारानुमितिपूर्वदशायां, 'उपाधिरेवेति
तत्र ध्वंसो विनाशी जन्यत्वादित्यादौ भावत्वादिकमुपाधिर्दोष एवेति
योजना, तेनापि परम्परया व्यभिचारानुमितिनिर्वाहेण परोक्तसाध्य-
सिद्धिप्रतिबन्धस्य उद्देश्यस्य निर्वाहादिति भावः । 'न चैवमिति, 'एवं'
अवच्छिन्नसाध्यव्यापकस्यापि दोषताप्रयोजकत्वे, 'अश्रावणत्वमिति,
तत्र पञ्चधर्मगुणत्वावच्छिन्नसाध्यव्यापकलाज्ञानसम्भवादिति भावः ।
'पृथिवीत्वमिति, तत्र पञ्चधर्मवत्त्वावच्छिन्नसाध्यव्यापकत्वज्ञानसम्भ-
वादिति भावः । 'उपाधिः स्यात्' दोषः स्यात्, 'तत्र' मध्य-जलयोः
'विशिष्टाव्यापकत्वादिति पञ्चधर्मगुणत्वावच्छिन्नसाध्यव्यापकत्वानिश्च-

एवञ्चात् । अतएव धूमे आर्द्रैन्धनप्रभववह्निमत्त्वं,

यादित्यर्थः । केवलान्वयित्वसाधकमानाभावे तु^(१) तस्य तथाबुद्धि-
रपि दोषो भवत्येवेति भावः । 'स्वव्याघातकत्वेनेति उपाधि-
मात्रस्य दूषकत्वव्याघातकत्वेनेत्यर्थः, पक्षेतरस्योपाधित्वे सर्वत्रैव तादृ-
शोपाधिसम्भवेनानुमानमात्रोच्छेदे व्यभिचारानुमानाधीनस्योपाधे-
र्दूषकत्वस्यासम्भवादिति भावः । 'अतिव्याप्तिः' उक्तरूपज्ञानस्यदोष-
त्वापत्तिः, द्रव्यत्वाद्यवच्छिन्नसाध्यव्यापकत्व-तदवच्छिन्नसाधनाव्यापक-
त्वज्ञानस्य तत्रापि सम्भवादिति भावः । 'साध्यव्यापकत्वानिश्चया-
दिति यद्वर्णावच्छिन्नसाधनाव्यापकत्वं तद्वर्णावच्छिन्नसाध्यव्यापक-
त्वानिश्चयादित्यर्थः, यदा तु तन्निश्चयो भवति तदा बाधोन्नीत-
पक्षेतरे तन्निश्चयदूव तन्निष्ठतन्निश्चयोऽपि भवत्येव दोष इति
भावः । 'संशयकत्वात्' व्यभिचारसन्देहाधायकत्वात् । 'अनुकूल-
तर्कोऽस्त्येवेति उपाध्यभाववति पक्षे साध्याभावनिश्चयस्यैव व्यभिचार-
संशयप्रतिबन्धकत्वेनानुकूलतर्कत्वादिति भावः । 'नोपाधित्वं' नोपाधि-
ननिश्चयः, 'पक्षमात्रेति, यद्यपि पर्वतावयवरूपादेरपि व्यावर्त्तनान्न
पक्षमात्रव्यावर्त्तकविशेषणवत्त्वं पाधित्वानिश्चये प्रयोजकं तथापि
तुल्यार्थकवतिप्रत्ययोत्तरत्वप्रत्ययात्पक्षमात्रव्यावर्त्तकं विशेषणं यत्र
पक्षेतरे तत्तुल्यत्वादित्यर्थः, तथाच तत्र यथानुकूलतर्काभावेन न
तादृशसाध्यव्यापकत्वानिश्चयः तथात्रापीति भावः । 'अतएवेति
व्यापकतायाश्चकानुकूलतर्कसत्त्वादेवेत्यर्थः, 'उपाधिः' उपाधित्वेन

द्रव्यवहिरिन्द्रियप्रत्यक्षत्वे उद्भूतरूपवत्त्वं, मित्रातनय-
श्यामत्वे शाकपाकजत्वं, जन्यानित्यत्वे भावत्वमुपाधिः,
तदुत्कर्षेण साध्योत्कर्षात्, अनन्यथासिद्धान्वयव्यतिरे-
कतो वैद्यकात् कारणतावगमेन घटोन्मज्जनप्रसङ्गेन
साध्यव्यापकतानिश्चयात्, तत् किं कार्य-कारणयोरेव
व्याप्तिः तथाच बहु व्याकुली स्यादिति^(१) चेत् । न ।

निश्चितः, यथासंख्यमनुकूलतर्कमाह, 'तदुत्कर्षेणेति आर्द्रेन्धनप्रभ-
ववज्जुत्कर्षेण धूमोत्कर्षादित्यर्थः, द्वितीये तर्कमाह, 'अनन्ययेति
द्रव्यवहिरिन्द्रियप्रत्यक्षं प्रति उद्भूतरूपस्यानन्यथासिद्धान्वयव्यतिरेका-
दित्यर्थः^(२), तृतीये तर्कमाह, 'वैद्यकादिति, वैद्यकेन नरीयश्यामत्वं
प्रति शाकपाकस्य जनकत्वकथनादिति भावः । 'कारणतावगमेनेति
आर्द्रेन्धनप्रभववज्ज्यादीनां धूमादिकं प्रति कारणतानिश्चयेनेत्यर्थः,
चतुर्थे तर्कमाह, 'घटोन्मज्जनेति ध्वंसस्यापि ध्वंसप्रतियोगित्वे ध्वंस-
प्रतियोगिनो घटस्य पुनः परावृत्तिप्रसङ्गेनेत्यर्थः, ध्वंस-प्रागभावान-
धिकरणकालस्य प्रतियोग्यधिकरणत्वनियमादिति भावः । इदमा-
पाततः प्रतियोगिनो ध्वंसेऽपि यथा प्रागभावध्वंसस्तथा ध्वंसस्य
ध्वंसोऽपि प्रतियोगिनो ध्वंस इत्युक्तावेव घटोन्मज्जनप्रसङ्गवारणस-
म्भवात् । वस्तुतस्तु अप्रामाणिकानन्तध्वंसप्रतियोगिनिष्ठतत्कारणत्व-
कल्पनामपेक्ष्य ध्वंसानन्तत्वकल्पनैव लघीयसीति लाघवमेवानुकू-

(१) वज्जुधा व्याकुली स्यादिति क०, ख० ।

(२) वायोः स्पर्शप्रत्यक्षमपि न भवतीति मतेनेदं ।

तदुपजीव्यान्यधामप्यनुकूलतर्केण व्याप्तिग्रहात्, यच्च
 च साध्योपाध्योर्हेतु-साध्ययोर्वा व्याप्तिग्राहकसाम्या-
 न्नैकत्र व्याप्तिनिश्चयस्तत्र सन्दिग्धोपाधित्वं व्यभिचा-
 रसंशयोपधायकत्वात् । यदा च तादृश्येकचानुकूलत-
 र्कावतारस्तदा हेतुत्वमुपाधित्वं वा निश्चितं पक्षेतरस्य
 स्वव्याघातकत्वेन न हेतुव्यभिचारसंशयकत्वमतो न
 सन्दिग्धोपाधिरपि सः ।

सतर्क इति तत्त्वं । 'कार्य-कारणयोः' कार्य-कारणभावग्राहक-
 प्रमाणविषयौभूतयोः, यथाश्रुते अकारणौभूतस्यापि शाकपाकज-
 त्वादेर्यापकत्वकथनादाशङ्कानुत्थितेः । 'वज्र व्याकुलीति जलत्वादिना
 द्रव्यत्वाद्यनुमानं न स्यादित्यर्थः । 'तदुपजीव्येति 'तत्' कार्य-कारण-
 भावज्ञानं, तदुपजीव्येत्यर्थः, द्रव्यत्व-जलत्वादिस्थलेऽपि जलत्वं यदि
 द्रव्यत्वव्यभिचारि स्यात् तदा संयोगव्यभिचारि स्यात् संयोगत्वाव-
 च्छिन्नं प्रति द्रव्यत्वेन समवायिकारणत्वादिति परम्परया संयोग-
 त्वावच्छिन्न-द्रव्यत्वावच्छिन्नकार्य-कारणभावग्रहोपजीवी तर्क एव
 व्याप्तिग्राहक इति भावः । नन्वेवं हेतु-साध्ययोः साध्योपाध्योश्च
 सहचारदर्शन-व्यभिचारानिश्चयमात्रं व्याप्तिग्राहकं वर्तते नानुकूल-
 तर्कः तत्रोपाधौ साध्यव्यापकत्वानिश्चयादुपाधित्वज्ञानं दोषो न
 स्यादित्यत आह, 'यच्च चेति, 'तत्र सन्दिग्धोपाधित्वमिति तत्रो-
 पाधिषण्देशो दोष इत्यर्थः । 'तदा हेतुत्वमिति तदा 'हेतुत्वं' हेतौ

यत्तु पक्षेतरस्य यथा साध्यव्यापकत्वं तथा साध्या-
भावव्यापकत्वमपि ग्राहकसाम्यात्, तथाचोभयव्यापक-
निवृत्त्या साध्य-तदभावाभ्यां पक्षे निवर्तितव्यम् नचैवं,

साध्यव्याप्यत्वं, 'उपाधित्वं' उपाधौ साध्यव्यापकत्वमित्यर्थः, यदा
हेतौ तर्कावतारस्तदा हेतौ साध्यव्याप्यत्वनिश्चयः, यदा साध्ये
तर्कावतारस्तदा उपाधौ साध्यव्यापकत्वनिश्चय इति भावः ।
नन्वेवं पक्षेतरस्य उपाधित्वनिश्चयाभावेऽप्युपाधित्वसन्देहोऽस्त्वित्यत-
आह, 'पक्षेतरस्येति, 'स्वव्याघातकत्वेन' उपाधिमात्रस्य दूषकत्वव्या-
घातप्रसङ्गेन, 'मन्दिग्धोपाधिरपि सः, तस्योपाधित्वसन्देहोऽपि न
दोषः । इदमापाततः उपाध्यन्तरस्य उपाधित्वसन्देहवत्पक्षेतरस्यो-
पाधित्वसन्देहेनापि व्यभिचारसंशयजनने बाधकाभावात्, न हि
प्रयोजनक्षतिभिर्या सामग्री कार्यं नार्जयति, न वा प्रयोजन-
क्षतिः यदा यथाकथञ्चिदनुकूलतर्केण पक्षेतरे साध्यव्यापकत्वं
निश्चित्य तदनुकूलतर्कात् पक्षेतरत्वव्यभिचारित्वे साध्यव्यभिचा-
रित्वव्याप्यत्वनिश्चयो जातस्तदैव व्यभिचारानुमाने पक्षेतरान्तरस्य
उपाधित्वसंशयासम्भवेन व्यभिचारानुमानसम्भवात् । न च पक्षे-
तरस्योपाधित्वसन्देहादित्यभिचारशङ्का पक्षीयव्यभिचारसंशयवत्
प्रतिबन्धिकेति वाच्यं । न हि व्यभिचारज्ञानत्वेन प्रतिबन्धकतामते
पक्षेतरत्वनिष्ठोपाधित्वज्ञानाजन्यत्वं पक्षीयव्यभिचारसंशयान्यत्वं वा
प्रतिबन्धकतावच्छेदेनोपप्रेक्ष्यं, गौरवान्मानाभावाच्च । वस्तुतस्तु
विशेषादर्शनद्वारां उपाध्यन्तरस्योपाधित्वसन्देहवत् यदा पक्षेतर-

तथाच पक्षतरः साध्यव्यापकतासंशयेन सन्दिग्धः कथं
परं दूषयेदिति^(१), तन्न, तथाहि साध्यव्यापकतापक्ष-
मात्मव्य हेतुव्यभिचारसंशयाधायकत्वेन दूषणं स्या-
द्देव । ननु यत्रोपाधिस्तत्रानुकूलतर्कौ यदि नास्ति तदा
तदभावेनैव व्याप्तेरग्रहः, अथास्ति तदा साध्यव्याप्या-

लोपाधित्वसन्देहस्तदापि व्याप्तिग्रहो न भवत्येव परन्तु कथक-
व्यमदायानुरोधात् कथायां सन्दिग्धोपाधित्वेन पक्षेतरो नोद्भाव्यते
इत्येव तत्त्वं ।

‘यत्त्विति, ‘यथाशब्दो यदेत्यर्थकः’ ‘साध्यव्यापकत्वं’ साध्यव्याप-
कत्वनिश्चयः, ‘तथा’ तदा, ‘साध्याभावव्यापकत्वमपीति, निश्चिनुया-
दिति शेषः, ‘ग्राहकसाम्यादिति पक्षातिरिक्ते सहचारज्ञानव्यभिचा-
रज्ञानरूपयोर्याहकयोः साम्यादित्यर्थः, ‘उभयव्यापकनिवृत्त्येति उभ-
यव्यापकत्वेन निश्चितस्य तस्य निवृत्त्या हेतुनेत्यर्थः, ‘पक्षे निवर्त्तितव्यं’
पक्षविशेषकानुमितिस्वरूपयोग्यनिवृत्ति-प्रतियोगिभ्यां भूयेत, तद्धे-
तुकानुमितिस्वरूपयोग्यत्वञ्च तद्व्यापकतानिश्चयत्वं, तथाच साध्य-
तदभावयोरुभयत्रैव पक्षेतरत्वाभावव्यापकतानिश्चयः स्यादिति फलितं,
‘न चैवमिति च्छेदः, न च साध्य-तदभावयोर्विरुद्धयोरेकधर्माव्याप-
कतानिश्चयइत्यर्थः, सत्प्रतिपक्षस्थले च हेतुभेदेनैव तदभ्युपगमात्
अतएवासाधारणस्य व्यापकताग्रहप्रतिबन्ध एव दूषकताबीजमिति
भावः । ‘साध्यव्यापकतासंशयेनेति साध्यव्यापकतासंशयस्यैव विषय-

व्यापकत्वेनोपाधिः साध्याव्यापकत्वनिश्चयान्नोपाधि-
रित्युभयथापि नोपाधिदूषणं । न च व्याप्त्यभावव्याप्य-
मुभयमत उपाधिरपि तदभावोन्नयनेन दोष इति

त्वेनेत्यर्थः, 'सन्धिगधः' साध्यव्यभिचारव्याप्यत्वेन सन्धिगधः, 'परं'
हेतुनिष्ठव्याप्तिग्रहं, 'दूषयेत्' विघटयेत् । 'साध्यव्यापकतापक्षजा-
लस्य' साध्यव्यापकताकोटिमालस्य साध्यव्यापकताकोटिसन्देहवि-
षयीभूयेति यावत्, 'दूषणं स्यादेवेति, यदि मदुक्तगतिर्नानुसरणी-
येति भावः ।

'यत्रोपाधिः' यत्रोपाधित्वज्ञानं दोषः, 'साध्यव्याप्येति साध्य-
व्याप्याव्यापकत्वज्ञानेनेत्यर्थः, अनुकूलतर्केण हेतौ साध्यव्याप्यत्व-
निश्चयादिति भावः । 'नोपाधिः' नोपाधित्वज्ञानं, 'नोपाधिदूषणं'
नोपाधित्वज्ञानं दूषणं । शङ्कते, 'व्याप्त्यभावेति, 'उभयमिति
उपाधिरनुकूलतर्काभावश्चेत्यर्थः, 'तदभावोन्नयनेन' व्याप्त्यभावोन्नय-
नेन, 'आत्मलाभार्थमिति साध्यव्यापकताज्ञानलाभार्थमित्यर्थः, हेतौ
साध्यव्याप्तिग्राहकानुकूलतर्कसत्त्वे तत्र साध्यव्याप्यत्वनिश्चयात् तद-
व्यापकत्वज्ञानेन साध्यव्यापकत्वज्ञानं न स्यादिति भावः । 'सोपा-
धाविति साध्य-तदभावसहचरिते सोपाधावित्यर्थः, 'एकत्रेति,
अवच्छेदकभेदं विना इति शेषः, 'उपाधिरवश्यं वाच्य इति^(१)

(१) 'उपाधिरावश्यकः' इत्यत्र 'उपाधिरवश्यं वाच्यः' इति कस्यचिन्मूल-
पुस्तकस्य पाठमनुसृत्य 'उपाधिरवश्यं वाच्यः' इति पाठोद्धृतो मधुरानाद्ये-
नेति सम्भाव्यते ।

वाच्यं । उपाधेरात्मलाभार्थमनुकूलतर्काभावोपजीव-
कत्वेन तस्यैव दोषत्वादिति चेत् । न । सोपाधावेकत्र
साध्य-तदभावसम्बन्धस्य विरुद्धत्वादवच्छेदभेदेन तदु-

सामानाधिकरण्यसंसर्गेण उपाधिरवश्यं वाच्यः इत्यर्थः, एकव्यक्तिक-
व्यभिचारिहेतुकस्थले सामानाधिकरण्यसंसर्गेण उपाधेरवच्छेदकत्वं
विनान्यस्यावच्छेदकताया दुर्वचत्वात् धूमवान् वज्जेरित्यादौ च नैक-
व्यक्तिः साध्य-तदभावसमानाधिकरणा । न च द्रव्यं सत्त्वादित्यादा-
वपि गुणान्यत्वविशिष्टसत्तात्व-द्रव्यवृत्तित्वादिकमेवावच्छेदकं भवि-
ष्यतीति वाच्यं । सामानाधिकरण्यसम्बन्धेन गुणान्यत्व-द्रव्यत्वाद्यपेक्षया
तस्य गुरुत्वात् । न च घटत्वादिकं सामानाधिकरण्यसंसर्गेणाव-
च्छेदकं भविष्यतीति वाच्यं । सामानाधिकरण्यसंसर्गेण तद्विशिष्टस्य
साधनस्य साध्यन्यूनवृत्तित्वादिति भावः^(१) । 'आवश्यक इति, तं
विना साध्यव्यापकत्वज्ञानासम्भवात् इति भावः । 'विनिगमका-
भावादिति, इदमापाततः साध्यसम्बन्धितावच्छेदकत्वेन उपाधिस्व-
रूपस्यावश्यकत्वेऽपि तस्य उपाधित्वज्ञानं कथं दोषः स्यात् उपजीव्य-
त्वेनानुकूलतर्काभावस्यैव दोषत्वसम्भवात् । वस्तुतस्तु उपाधित्वज्ञाना-
नुकूलतर्काभावयोरुपजीव्योजीवकभावो न कार्य-कारणभावः अस-
म्भवात्, न वा व्याप्य-व्यापकभावः तस्य प्रतिबन्धकतायामविनि-
गमकत्वात् तद्धेतोरेवेत्यादिनियमस्य कारणतायामेव विनिग-

(१) अतिप्रसक्तस्यैव न्यूनवृत्तेरपि नावच्छेदकत्वमिति भावः ।

भयसम्बन्धो वाच्यः, तथाच साधने साध्यसम्बन्धिता-
वच्छेदकं रूपं उपाधिरावश्यकः^(१) तथानुकूलतर्का-

मकत्वात्, अतएव परम्परया यथाकथञ्चिदुपयोगित्वमपि न-
तथा । न च उपजीव्योपजीवकभावविरहेऽपि अनुकूलतर्कस्यावश्यं
व्याप्तिग्राहकत्वात् तदभावादेव व्याप्तेरग्रहोपपत्तौ किमुपाधित्वज्ञान-
स्य दोषत्वेनेति वाच्यं । अनुकूलतर्कस्य व्याप्तिग्रहं प्रत्यहेतुत्वेन यदानु-
कूलतर्कस्फुर्त्तिर्नास्ति प्रकारान्तरेण च व्यभिचारग्रहोऽपि नास्ति
अथच उपाधित्वज्ञानं वर्तते तदापि व्याप्तिग्रहप्रतिबन्धेन तद्दोष-
ताया आवश्यकत्वादित्येव तत्त्वं ।

‘यद्वावृत्त्येति, वैशिष्ट्यं तृतीयार्थः, ‘साधनस्येत्यनन्तरं अधिकरण-
इति पूरणीयं, तथाच यद्वावृत्तिविशिष्टस्य यद्वर्मावच्छिन्नप्रतियो-
गिताकाभावविशिष्टस्य यस्य साधनस्याधिकरणे ‘साध्यं निवर्तते’
साध्याभावो वर्तते तद्वर्मावच्छिन्नत्वं तत्र हेतावुपाधित्वमित्यर्थः,
उद्भूतरूपवत्त्वाद्यभावविशिष्टस्य साधनस्याधिकरणे वाच्यादौ प्रत्यच-
त्वाद्यभावस्य सत्त्वान्न विशिष्टसाध्यव्यापकेऽव्याप्तिः, एवञ्च यद्वर्माव-
च्छिन्नप्रतियोगिताकाभावाधिकरणीभूतं साधनतावच्छेदकावच्छि-
न्नाधिकरणं साध्याभावाधिकरणं तद्वर्मावच्छिन्नत्वमुपाधित्वमिति
फलितं, तेन द्रव्यं विशिष्टसत्त्वादित्यादौ विशिष्टस्थानतिरिक्तत्वे-

(१) साधने साध्यसम्बन्धितावच्छेदकरूपमनुकूलतर्काभावोपजीवनमन्तरे-
ओपाधिरावश्यक इति मुद्रितपुस्तकपाठः परम्पर्यं न समीचीनः ।

भावोऽप्यावश्यक इति उभयोरपि विनिगमकाभावा-
दूषकत्वात् ।

ऽपि गुणवत्त्वादौ नातिव्याप्तिः, रूपवान् द्रव्यत्वादित्यादौ पृथिवी-
त्व-घटत्वाद्यभावस्तु न लक्ष्यः, तथा महाकालान्यो घटादित्यादौ
खण्डकासभेदादिरपि न लक्ष्यः, वज्रिमान् धूमादित्यादौ महा-
नसत्वाद्यभावाधिकरणस्य जलहृदादेः साध्याभावाधिकरणत्वेऽपि तद-
धिकरणीभूतस्य^(१) साधनाधिकरणस्य साध्याभावानधिकरणत्वात्
महानसत्वादावतिव्याप्तिः । न चैवं द्रव्यत्वाभाववान्प्रमेयत्वादित्यादौ
साधनव्यापकसंयोगाभावादावतिव्याप्तिः संयोगाभावाभावस्य संयोग-
स्याधिकरणे साधनवति द्रव्ये द्रव्यत्वाभावाभावस्य सत्त्वादिति वाच्यं ।
अधिकरणपदेन निरवच्छिन्नाधिकरणताश्रयस्य विवक्षितत्वात् ।
अत्रापि साध्यसमानाधिकरणवृत्तित्वेन तद्धर्मो विशेषणीयः तेन
धूमवान् वज्रेरित्यादौ हृदत्वाद्यभावाधिकरणेऽयोगोलकादौ धूमा-
द्यभावसत्त्वेऽपि हृदत्वादौ नातिव्याप्तिरिति सङ्क्षेपः ।

अन्यत्रैवं व्यभिचारोन्नायकत्वेन दूषकतापचे लक्ष्यतावच्छेदकमुक्त्वा
सप्रतिपक्षोन्नायकत्वेन दूषकत्वनये लक्ष्यतावच्छेदकमाह, 'स चेति
स वेत्यर्थः, 'धर्म इत्यनन्तरं 'उपाधिरित्यनुषज्यते, 'यस्याभावादिति

(१) 'तदधिकरणीभूतस्य' महानसत्वाद्यभावाधिकरणीभूतस्येत्यर्थः, 'तद-
भावाधिकरणीभूतस्य' इति क्वाचित्क्कः पाठः, तादृशपाठे तत्पदेन
महानसत्वादेः परामर्शः ।

अन्ये तु यद्वावृत्त्या यस्य साधनस्य साध्यं निवर्तते
स धर्मस्तत्र हेतावुपाधिः, स च धर्मायस्याभावात्

पक्षे यस्याभावात्पक्षतावच्छेदकावच्छेदेन वर्तमानात् यस्याभावात्,
'साध्य-साधनसम्बन्धाभाव इति योजना, प्रयोजकत्वं पञ्चमर्थः तच्च
व्यापकत्वमेव, तथाच पक्षतावच्छेदकावच्छेदेन वर्तमानस्य यदभावस्य
व्यापकः साधनविशिष्टस्य साध्यस्याभाव इत्यर्थः, 'साधनपदं
पक्षवृत्तिधर्मपरन्तेनाश्वो गौरश्वत्वादित्यादिविरुद्धस्थलीयसास्त्रावत्ता-
द्युपाधौ वायुः प्रत्यक्षः प्रमेयत्वादित्यादौ पक्षधर्मावच्छिन्नसाध्य-
व्यापके उद्भूतरूपादौ च नाव्याप्तिः तदभावस्यापि द्रव्यत्व-वहि-
र्द्रव्यत्वादिरूपयत्किञ्चित्पक्षवृत्तिधर्मविशिष्टसाध्याभावव्याप्यत्वात् पक्ष-
तावच्छेदकावच्छेदेन वर्तमानत्वाच्च । एवमग्रेऽपि सर्वत्र 'साधनपदं
पक्षधर्मपरं, एवञ्च यद्धर्मावच्छिन्नाभावः पक्षवृत्तिधर्मावच्छिन्नसाध्या-
भावव्याप्यः पक्षतावच्छेदकावच्छेदेन वर्तमानस्य तद्धर्मावच्छिन्नत्वमु-
पाधित्वमिति फलितं, वायुः प्रत्यक्षः प्रमेयत्वात् गौरमित्रातनयः
श्यामः मित्रातनयत्वादित्यादौ शूद्रसाध्याव्यापके उद्भूतरूपवत्त्व-शाक-
पाकजत्वादावव्याप्तिवारणायवच्छिन्नान्तं साध्यविशेषणं, पर्वतो
वर्जिमान् धूमात्पर्वतो धूमवान् वक्त्रेरित्यादौ महानसत्वादावति-
व्याप्यापत्त्या यत्किञ्चिद्धर्मेति विहाय पक्षवृत्तिधर्मैत्यभिहितं, पक्षवृ-
त्तिधर्मत्वञ्च पक्षतावच्छेदकव्यापकधर्मत्वं तेन न पर्वतो वर्जिमान्
धूमादित्यादौ निर्वर्जिपर्वत-महानसाद्यन्यतरत्वादिविशिष्टवर्जिव्या-
पके महानसत्वादावतिव्याप्तिः । न च तथाप्ययोगोक्तं धूमवत्

पक्षे साध्य-साधनसम्बन्धाभावः यथा आर्द्रन्धनवत्त्वं,
व्यावर्तते हि तद्यावृत्त्या धूमवत्त्वमयोगोलके । अतएव

वक्त्रेरित्यादौ महानसत्वादावतिव्याप्तिः तदभावस्यापि महानसायो-
गोलकान्यतरत्वादिरूपपक्षधर्मावच्छिन्नसाध्याभावव्याप्यत्वादिति वाच्यं ।
तत्र तस्य लक्ष्यत्वात् महानसायोगोलकान्यतरत्वादिरूपपक्षवृत्तिध-
र्मावच्छिन्नसाध्यव्यापकत्वे सति पक्षावृत्तितया वक्ष्यमाणलक्षणाक्रा-
न्तत्वात् “सर्वे साध्यसमानाधिकरणाः सदुपाधयः । पक्षे सर्वाश्रये
येषां स्व-साध्यव्यतिरेकिता” ॥ इति सिद्धान्ताच्च ‘पक्षे सर्वाश्रये’
पक्षरूपसर्वाश्रये सर्वस्मिन् पक्षतावच्छेदकाश्रये इति यावत्, पक्ष-
तावच्छेदकावच्छेदेन वर्तमानलोपपादनात् पर्वतो वक्त्रिमान् धूमात्
द्रव्यं वक्त्रिमद्भमादित्यादौ वक्त्रिसामग्र्यादेर्व्युदासः । हृदो वक्त्रिमान्
धूमादित्यादौ वक्त्रिसामग्र्यादिश्च संग्राह्य एव सत्प्रतिपक्षोन्नायकत्वेन
दूषकतामते साधनव्यापकस्यापि पक्षावृत्तेरुपाधित्वात्, अवाधितसा-
ध्यकस्थलीय उपाधिश्च न संग्राह्य इति पर्वतो धूमवान् वक्त्रेरित्यादौ
आर्द्रन्धनादौ नाव्याप्तिरिति भावः । न चैवं यद्धर्मावच्छिन्नप्रतियोगि-
ताकाभावविशिष्टसाध्याभावः सकलपक्षवृत्तिस्तद्धर्मावच्छिन्नत्वमुपा-
धित्वमित्येव लक्ष्यतावच्छेदकमस्तु लाघवादिति वाच्यं । तस्यापि
लक्ष्यतावच्छेदकान्तरत्वात् लक्ष्यतावच्छेदकान्तरसम्भवस्य लक्ष्यताव-
च्छेदकादोषत्वात् लक्ष्यतावच्छेदकगौरवस्याकिञ्चित्करत्वात् । एतदेव
लक्ष्यतावच्छेदकद्वयं अयोगोलकं धूमवदक्त्रेरित्यत्र शुद्धसाध्यव्या-
वकार्द्रन्धने क्रमेण सङ्गमयति, ‘यथेति, ‘व्यावर्तते’ इति, धूमवत्त्वं

तत्र साध्य-साधनसम्बन्धाभावः पक्षे एवं भावत्वव्या-
वृत्त्या ध्वंसे जन्यत्वानित्यत्वयोः सम्बन्धो निवर्तमानः
पक्षधर्मतावलादनित्यत्वाभावमादाय सिध्यति, तथा
तद्वावृत्त्यायोगोलके इति योजना, 'तद्वावृत्त्येत्यत्रापि वैशिष्ट्यं द्विती-
यार्थः, तथाच 'हि' यस्मात्, 'तद्वावृत्तिविशिष्टे 'अयोगोलके' साधना-
धिकरणे, 'धूमवत्त्वं व्यावर्तते' धूमस्याभावो वर्तते इत्यर्थः, एतेन
प्रथमलक्ष्यतावच्छेदकमुपपादितं । ननु तथापि व्याप्यत्वगर्भं द्विती-
यलक्ष्यतावच्छेदकं तत्रार्द्रैर्न्यनेऽव्याप्तमेव तदभावाधिकरणे पक्षीभूते-
ऽयोगोलके शुद्धसाध्याभावसत्त्वेऽपि पक्षवृत्तिधर्मस्य विशेषणस्य सत्त्वेन
तद्विशिष्टसाध्याभावासत्त्वादित्यत आह, 'अत एवेति साध्याभाव-
सत्त्वादेवेत्यर्थः, 'तत्रेति, 'साध्य-साधनसम्बन्धाभावस्तत्र पक्ष इति
योजना, 'साध्य-साधनसम्बन्धाभावः' साधनविशिष्टसाध्याभावः महा-
नसायोगोलकान्यतरत्वादिरूपपक्षवृत्तिधर्मविशिष्टसाध्याभाव इति
यावत्, 'तत्र पक्षे' अयोगोलकरूपपक्षे, तत्र शुद्धसाध्याभावसत्त्वे
विशेषणसत्त्वेऽपि विशेष्याभावकृतस्य विशिष्टसाध्याभावस्यावश्यकत्वा-
दिति भावः^(१) । ननु तथापि ध्वंसे न नित्यो जन्यत्वादित्यत्र^(२)

(१) अयोगोलकरूपपक्षे महानसायोगोलकान्यतरत्वरूपविशेषणस्य सत्त्वे-
ऽपि विशेष्यीभूतस्य धूमस्याभावात् विशिष्टसाध्याभावः विशेषणा-
भावस्येव विशेष्याभावस्य विशिष्टाभावप्रयोजकत्वादिति भावः ।

(२) न नित्य इत्यत्र नित्यत्वं ध्वंसाप्रतियोगित्वविशिष्टप्रागभावाप्रतियो-
गित्वं, जन्यत्वादित्यत्र जन्यत्वं प्रागभावप्रतियोगित्वमात्रं न तु
नित्यत्वाभावः अतो न साध्याविशेषः ।

वायुबुद्भूतरूपवत्त्वं निवर्त्तमानं वहिर्द्रव्यत्वे सति
प्रत्यक्षत्वं निवर्त्तयत् प्रत्यक्षत्वाभावमादाय सिद्ध्यति
तथाचोभयत्रापि पक्षे साध्याभावसिद्ध्या साध्य-साधन-
सम्बन्धाभावोऽस्तीति । अतएव वायानुनौतयक्षेत्र-

जन्यत्वरूपसाधनावच्छिन्नसाध्यव्यापके भावत्वे प्रथमलक्ष्यतावच्छे-
दकस्याव्याप्तिः तत्र साधनाधिकरणे ध्वंसे जन्यत्वरूपपक्षधर्मविशि-
ष्टानित्यत्वाभावस्य ध्वंसो न जन्यत्वे सत्यनित्यः भावत्वाभावादित्यनु-
मानसिद्धत्वेऽप्यनित्यत्वसामान्याभावरूपस्य शुद्धसाध्याभावस्य साधना-
धिकरणे सत्त्वे मानाभावादेवं वायुर्वहिरिन्द्रियप्रत्यक्षः प्रत्यक्ष-
सर्गाश्रयत्वादित्यत्र द्रव्यत्वरूपपक्षधर्मावच्छिन्नसाध्यव्यापके उद्भूत-
रूपवत्त्वे तस्याव्याप्तिः तत्रापि साधनाधिकरणे वाय्वादौ द्रव्यत्व-
रूपपक्षधर्मविशिष्टवहिरिन्द्रियप्रत्यक्षत्वाभावस्य वायुर्न द्रव्यत्वे सति
वहिरिन्द्रियप्रत्यक्ष उद्भूतरूपवत्त्वाभावादित्यनुमानसिद्धत्वेऽपि वहि-
रिन्द्रियजन्यप्रत्यक्षत्वाभावरूपस्य शुद्धसाध्याभावस्य साधनाधिकरणे
सत्त्वे मानाभावादित्यत आह, 'एवमिति, 'ध्वंसे' पक्षीभूते ध्वंसे,
'जन्यत्वानित्यत्वयोः', 'सम्बन्धः' जन्यत्वरूपपक्षधर्मविशिष्टो नित्य-
त्वाभावः, 'निवर्त्तमानः' निवृत्तिप्रतियोगित्वेन सिद्धिविषयो भवन्,
'पक्षधर्मताबलादिति जन्यत्वरूपस्य विशेषणस्य पक्षवृत्तित्वनिश्चय-
सहकारादित्यर्थः, 'अनित्यत्वाभावं' अनित्यत्वाभावरूपं शुद्धसाध्या-
भावं, 'तथेति, 'निवर्त्तमानं' निवृत्तिप्रतियोगित्वेन ज्ञायमानं,
'द्रव्यत्वे सतीति द्रव्यत्वविशिष्टवहिरिन्द्रियप्रत्यक्षत्वमित्यर्थः, 'निव-

स्यानुपाधित्वं स्वव्याघातकत्वेन तद्व्यतिरेकस्य साध्या-
व्यावर्तकत्वादिति ।

यत्तूपाधिमात्रस्य लक्षणं व्यतिरेकिधर्मत्वं पक्षेतरो-
ऽपि क्वचिदुपाधिः, तत्तदुपाधेस्तु तत्तत्साध्यव्यापकत्वे

र्त्तयत्' निवृत्तिप्रतियोगित्वेनानुमापयत्, 'प्रत्यक्षाभावमादायेति
वहिरिन्द्रियजन्यप्रत्यक्षत्वाभावरूपं शुद्धसाध्याभावमादायेत्यर्थः,
'सिद्धति' द्रव्यत्वविशिष्टवहिरिन्द्रियजन्यप्रत्यक्षत्वनिवृत्तिः सिद्धति,
'तथाचेति, 'साध्याभावसिद्ध्या' शुद्धसाध्याभावसिद्ध्या, 'साध्य-साध-
नसम्बन्धाभावोऽस्तीति साधनाधिकरणे शुद्धसाध्याभावोऽस्तीत्यर्थः,
प्रकृते पक्षस्यैव साधनाधिकरणत्वादिति भावः । 'स्वव्याघातकत्वेन'
'स्व' साध्याभावः, तद्व्याघातकत्वेन तदभावसाधकत्वेन साध्याभावा-
भावव्याप्यत्वेनेति यावत्, 'साध्याव्यावर्तकत्वादिति साधनाधिकरणे
साध्याभावासमानाधिकरणत्वादित्यर्थः, पक्षवृत्तिधर्मविशिष्टसाध्या-
भावाव्याप्यत्वाच्चेत्यपि बोध्यं, अयोगोलकं धूमवदङ्गेरित्यत्र पक्षेतरत्व-
स्योपाधित्वमस्येवेति भावः ।

साम्प्रदायिकास्तु 'अत्रोच्यत इति कृत्वा व्यभिचारोन्नायकत्वेन
दूषकतापक्षे लक्ष्यतावच्छेदकमुक्त्वा सत्प्रतिपक्षोन्नायकत्वेन उपाधेर्दूष-
कत्वं ये वर्णयन्ति^(१) तन्मते लक्ष्यतावच्छेदकमाह, 'अन्ये त्विति,
'यद्व्यावृत्त्येति यस्य साधनस्य यद्व्यावृत्त्येति योजना, सर्वस्मिन् पक्ष-
इति शेषः, 'यस्य साधनस्येत्यत्र येन केनचित् सम्बन्धेन सम्बन्धित्वं

सति तत्साधनाव्यापकत्वं । नच धूम-वह्निसम्बन्धा-
पाधिः पक्षेतरत्वं स्यादिति वाच्यम् । आपाद्याप्रसिद्धे-

षष्ठ्यर्थः, अत्रयस्यास्य 'यदित्यत्र, तृतीया च सहार्थे, तथाच येन
केनापि सम्बन्धेन यत्साधनसम्बन्धिनो यस्य व्यावृत्त्या सह सर्वस्मिन्
पक्षे साध्यं निवर्तते साध्याभावो वर्तते स तत्र हेतावुपाधिरित्यर्थः,
उद्धूतरूपाद्यभावेन सहापि प्रत्यक्षत्वाद्यभावः सर्वस्मिन् पक्षे वर्तत-
एवेति न विशिष्टसाध्यव्यापकेऽव्याप्तिः । येन केनापि सम्बन्धेन
यथोक्तधर्मसम्बन्धित्वमेव सोपाधित्वव्यवहारप्रयोजकमिति बोधमाय
'सम्बन्धिन इत्यन्तं 'यस्यैत्यस्य विशेषणं न तु तल्लक्षणघटकं, परन्तु
यद्धूर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावविशिष्टस्य साध्याभावस्याधिकरणं
सकलपक्षतावच्छेदकाधिकरणं तद्धर्मवत्त्वमुपाधित्वमित्येव लक्षणं,
पर्वतो वक्लिमान् धूमादित्यादौ महानसत्वाद्यभावविशिष्टस्य साध्या-
भावस्याधिकरणं न पक्ष इति न तत्रातिव्याप्तिः, अयोगोलकं धूम-
वदक्तेरित्यत्र महानसत्वादिकञ्च लक्ष्यमेव, द्रव्यं वक्लिमद्धूमादित्यादौ
वक्लिसामग्र्याद्यभावविशिष्टस्य साध्याभावस्य पक्षवृत्तित्वेऽपि न सकल-
पक्षवृत्तित्वं अतो न तत्रातिव्याप्तिः, सत्प्रतिपक्षोन्नायकत्वेन दूषक-
तापक्षे साधनव्यापकस्यापि पक्षवृत्तेरुपाधित्वात् साध्यव्यापक-साध-
नाव्यापकस्यापि पक्षवृत्तेरनुपाधित्वान्न जलहृदो वक्लिमान् धूमादि-
त्यादौ वक्लिसामग्र्यादावतिव्याप्तिः, पर्वतो धूमवान् वक्तेरित्याद्य-
बाधितस्थले आर्द्रैर्न्धनादावव्याप्तिर्वा, साध्यसमानाधिकरणवृत्तित्वेन च
तद्धूर्मा विशेषणीयः तेनायोगोलकं धूमवदक्तेरित्यादौ साध्यविरुद्धे

रिति । तन्न । अनुमितिप्रतिबन्धकज्ञानविषयतावच्छे

जलत्वादौ नातिव्याप्तिरिति न कोपि दोषः । लक्ष्यतावच्छेदकमुक्त्वा लक्षणमाह, 'स च धर्म इति, 'यस्याभावादिति पूर्ववद्वाख्येयं । लक्ष्यतावच्छेदकं लक्षणञ्च अयोगोलकं धूमवदङ्गेरित्यत्र आर्द्रेन्धने योजयति, 'यथेति, 'व्यावर्तते हीति, 'हि' यस्मात्, तद्वावृत्त्या सह पक्षीभूतेऽयोगोलके साधनाधिकरणे धूमवत्त्वं व्यावर्तते धूमाभावो वर्तते इति योजना, तेन लक्ष्यतावच्छेदकं योजितं । ननु तथापि व्याप्यत्व-गर्भतया लक्षणं तत्राव्याप्तमेव तदभावाधिकरणे पक्षीभूतेऽयोगोलके पक्षवृत्तिधर्मस्य विशेषणस्य सत्त्वेन तद्विशिष्टसाध्याभावासत्त्वादित्यत आह, 'अतएवेति, अर्थस्तु पूर्ववत् । ननु तथापि ध्वंसो न नित्यो जन्यत्वादित्यत्र साधनावच्छिन्नसाध्यव्यापके भावत्वे वायुर्वहिरिन्द्रिय-प्रत्यक्षः प्रत्यक्षस्पर्शाश्रयत्वादित्यत्र द्रव्यत्वस्वरूपपक्षधर्मावच्छिन्नसाध्य-व्यापके उद्भूतरूपवत्त्वे च लक्ष्यतावच्छेदकस्याव्याप्तिः तदुभयत्र पक्षे शुद्धसाध्याभावसत्त्वे मानाभावादित्यत आह, 'एवमिति, अर्थस्तु पूर्ववत् । 'तथाचेति, 'साध्याभावसिद्धोति सहार्थे तृतीया, 'साध्य-साधनेति साधनविशिष्टसाध्याभावग्रहो भवतीत्यर्थः, अतो लक्ष्यता-वच्छेदकस्य न तत्राव्याप्तिरिति शेषः । 'साध्याव्यावर्तकत्वादिति पक्षे साध्याभावासमानाधिकरणत्वादित्यर्थः, 'स्त्वव्याघातत्वञ्च पूर्वनिरुक्त-मेवेत्याहुः ।

अन्ये तु 'यद्वावृत्त्येत्यत्र पूरणं तिलैव एवं ग्रन्थं सम्यक् योजयन्ति, तथाहि यत्तु हेतोर्यद्वावृत्त्या हेतुना 'साध्यगत्वं साध्यं निवर्तते'

साधनसम्बन्धिसाध्याभावः साधयितुं शक्यते साधनविशिष्टसाध्याभावः
 साधयितुं शक्यते इति यावत्, 'यस्य हेतोरित्यत्र येन केनचित्
 सम्बन्धेन सम्बन्धित्वं षष्ठ्यर्थः, अन्वयश्चास्य 'यदित्यत्र तथाच येन
 केनापि सम्बन्धेन यद्धेतुसम्बन्धिनो यस्य धर्मस्य व्यावृत्त्या हेतुना साध-
 नविशिष्टसाध्याभावः साधयितुं शक्यते स धर्मस्तत्र हेतावुपाधि-
 रित्यर्थः, 'सम्बन्धिन इत्यस्य प्रयोजनं पूर्ववत् न तु तल्लक्षणघटकं,
 परन्तु यद्धर्मव्यावृत्तिः साधनविशिष्टसाध्याभावसिद्धिस्वरूपयोग्या स
 धर्म उपाधिरिति लक्षणं, वायुः प्रत्यक्षः प्रत्यक्षस्यर्थाश्रयत्वात्
 गौरमित्रातनयः श्यामो मित्रातनयत्वादित्यादौ शुद्धसाध्याव्यापके
 उद्धूतरूपवत्त्व-शाकपाकजत्वादावव्याप्तिवारणाय^(१) साधनविशिष्टत्वं
 साध्यविशेषणं, साधनपदञ्च पक्षवृत्तिधर्मपरं, तेन विरुद्धस्थलीयोपाधौ
 वायुः प्रत्यक्षः प्रमेयत्वादित्यादौ उद्धूतरूपवत्त्वादौ च नाव्याप्तिः ।
 नन्वेवं पर्वतो वज्रिमान् धूमादित्यादावपि वज्रिसामग्र्यादेरुपाधि-
 त्वापत्तिः तदभावस्यापि हृदादौ तादृशसाध्याभावसिद्धिस्वरूपयो-
 ग्यत्वादित्यतः स्वरूपयोग्यत्वमेव कुलतो निर्व्वक्ति, 'स चेति, 'यस्याभा-
 वादिति पूर्ववद्वाख्येयं, तथाच साधनविशिष्टसाध्याभावव्याप्यत्वे सति
 पक्षतावच्छेदकावच्छेदेन वर्त्तमानत्वमेव स्वरूपयोग्यत्वमिति भावः ।
 साधनपदं पक्षवृत्तिधर्मपरं, लक्षणनिष्कर्षस्तु^(२) पूर्ववत् । अयोगोल्लङ्घनं

(१) प्रत्यक्षत्वस्य गुणादौ श्यामत्वस्य काक-कोकिलादौ वर्त्तमानत्वेन तत्र
 उद्धूतरूपवत्त्वस्य शाकपाकजत्वस्य चावर्त्तमानत्वात् शुद्धसाध्याव्याप-
 कत्वमिति भावः ।

(२) सर्वत्र लक्षणनिष्कर्षस्त्विति ख० । एवं सर्वत्र लक्षणनिष्कर्षस्त्विति
 ग० ।

धूमवदक्तेरित्यत्रार्द्धेन्धनेलक्षणं योजयति, 'यथेति । नन्वार्द्धेन्धनाभावस्य कथं साधनविशिष्टसाध्याभावव्याप्यत्वमित्यत आह, 'व्यावर्त्तते' हीति, 'हि' यस्मात्, 'व्यावर्त्तते' व्यावृत्तिप्रतियोगित्वेनानुमीयते, 'अयोगोल्लके' पक्षीभूते अयोगोल्लके । नन्वेतावता तदभावस्य शुद्धधूमाभावव्याप्यत्वेऽपि पञ्चवृत्तिधर्मविशिष्टसाध्याभावव्याप्यत्वं न सम्भवति तदभाववति पक्षे शुद्धसाध्याभावसत्त्वेऽपि विशेषणासत्त्वेन तादृशविशिष्टसाध्याभावसत्त्वादित्यत आह, 'अतएवेति, अर्थस्तु पूर्ववत् । ननु ध्वंसो न नित्यो जन्यत्वात् वायुर्वहिरिन्द्रियप्रत्यक्षः प्रमेयत्वादित्यादौ भावलोद्धूतरूपवत्त्वाद्युपाधेरभावस्य जन्यत्वद्रव्यत्वादिरूपपक्षधर्मविशिष्टसाध्याभावव्याप्यत्वज्ञानान्तदभावेन हेतुना तादृशविशिष्टसाध्याभावानुमितिर्भवतु शुद्धसाध्याभावानुमितिश्च कथं स्यात् । न च तदनुमितिर्विरहेऽपि न क्षतिरिति वाच्यं । निरुक्तोपाधित्वज्ञानस्य पक्षे शुद्धसाध्याभावानुमितिद्वारैव दूषकत्वस्याभ्युपेयत्वात् विशिष्टसाध्याभावानुमितेः शुद्धसाध्यानुमितावप्रतिबन्धकत्वादित्यत आह, 'एवमिति, 'एवं' निरुक्तस्योपाधित्वरूपत्वे इत्यर्थः, तज्ज्ञानादिति शेषः । यद्वा 'एवमित्यस्य यथायोगोल्लकं धूमवदक्तेरित्यत्रार्द्धेन्धनाभावस्य द्रव्यत्वादिरूपपक्षधर्मविशिष्टसाध्याभावव्याप्यत्वज्ञानानन्तरं तदभावेन हेतुना पक्षे तादृशविशिष्टसाध्याभावः सिद्ध्यति न द्रव्यत्वादेः पञ्चवृत्तित्वनिश्चयवत्त्वात् शुद्धसाध्याभावः सिद्ध्यति तथेत्यर्थः, अन्यथा तत्राप्येतदाशङ्कासम्भवादिति भावः । 'भावत्वव्यावृत्त्येत्यस्य जन्यत्वविशिष्टनित्यत्वाभावाभावव्याप्यत्वज्ञानानन्तरमित्यादि, अग्रेऽपि 'तथेत्यस्य द्रव्यत्वविशिष्टवहिरिन्द्रियप्रत्यक्षत्वाभावव्याप्यत्वज्ञानानन्तरमिति शेषः, 'तथा-

दकमुपाधित्वमिह निरूप्यं तच्च न व्यतिरेकित्वमतिप्र-
सङ्गात् विशेषलक्षणे वह्नि-धूमसम्बन्धे पक्षेतरस्योपाधि-
त्वप्रसङ्गाच्च ।

चेत्यादिग्रन्थस्तु साम्प्रदायिकवद्योजनीयः । 'साध्यव्यावर्तकत्वादित्यस्य
तु निरुक्तसाध्याभावसिद्धिस्वरूपयोग्यत्वाभावादित्यर्थः, इति कृतं
पल्लवितेन ।

'व्यतिरेकधर्मत्वमिति, केवलान्वयिनः प्रमेयत्वादेः स्वरूप-
सम्बन्धेन कुत्रापि नोपाधित्वमिति व्यतिरेकित्वोपादानं, तथाच
तत्सम्बन्धेन स्वप्रतियोग्यनधिकरणे वर्तमानस्याभावस्य प्रतियोगि-
तावच्छेदको यो धर्मस्तद्वत्त्वं तेन रूपेण तत्सम्बन्धेनोपाधित्वमिति
फलितं, तेन प्रमेयत्वादेः समवायसम्बन्धेनाभावप्रतियोगित्वेऽपि न
स्वरूपसम्बन्धेनोपाधित्वं, न वा स्वरूपसम्बन्धेन संयोगाभावादेरुपाधित्वं
तेन सम्बन्धेन तदनधिकरणाप्रसिद्धेः^(१) सम्बन्धविशेषलाभायैव धर्मपद-
मिति भावः । 'तत्तदुपाधेरिति तत्तत्साध्यक-तत्तद्धेतुकोपाधेरित्यर्थः,
लक्षणमित्यनुषज्यते, 'धूम-वह्निसम्बन्धोपाधिरिति धूमाव्यापकत्वे सति
वह्निव्यापकत्वरूपधूम-वह्निसम्बन्धावच्छिन्नत्वेनाभिमतोपाधिपदवाच्य-
ताश्रय इत्यर्थः, व्यतिरेकिधर्मत्वावच्छिन्नोपाधिपदवाच्यताश्रयवा-
रणायाभिमतान्तं वाच्यताविशेषणं । यद्यपि धूमाव्यापकत्वे सति

(१) स्वरूपसम्बन्धेन संयोगाभावाभावस्य संयोगस्य वृत्तादौ सत्वेऽपि
संयोगरूपाभावप्रतियोगिनः संयोगाभावस्यानधिकरणत्वं न वृत्तादे-
रतो न संयोगाभावादेरुपाधित्वमिति भावः ।

केचित्तु साधनव्यापकोऽप्युपाधिः क्वचिद्यत्र पञ्चावृ-
त्तिर्हेतुः यथा करका पृथिवी कठिनसंयोगात् इत्यत्रा-
नुष्णाशीतस्पर्शवत्त्वं । नच तत्र स्वरूपासिद्धिरेव दोषः,
सर्वत्रोपाधेर्दूषणान्तरसङ्करादित्याहुः ।

वन्निव्यापकत्वं यदि उपाधिपदवाच्यतावच्छेदकं स्यात् तदा तदव-
च्छिन्नोपाधिपदवाच्यताश्रयः पक्षेतरः स्यादित्यापादने वैयधिकरणं,
तथापि उपाधिपदवाच्यतावच्छेदकत्वं यदि धूमाव्यापकत्वे सति
वन्निव्यापकतासामान्यनिष्ठं स्यात्तदा पक्षेतरनिष्ठधूमाव्यापकत्वविशि-
ष्टवन्निव्यापकतानिष्ठमपि स्यादित्यापादने तात्पर्यं । 'आपाद्येति
धूमाव्यापकत्वविशिष्टवन्निव्यापकत्वाप्रसिद्ध्या तद्घटितापाद्याप्रसिद्धे-
रित्यर्थः, तद्घटितापादकाप्रसिद्धेऽप्येत्यपि बोध्यं । ननु सामान्यलक्ष-
णमितरभेदकं तत्तत्साध्यक-तत्तद्धेतुकोपाधिलक्षणन्तु दूषणौपयिकं
तच्च यत्किञ्चिद्धर्मावच्छिन्नतत्तत्साध्यव्यापकत्वे सति तत्तत्साधना-
व्यापकत्वं तेन विशिष्टसाध्यव्यापकोपाधौ नाव्याप्तिरित्यत आह,
'विशेषलक्षण इति यत्किञ्चिद्धर्मावच्छिन्नतत्तत्साध्यव्यापकत्वे सति
तत्तत्साधनाव्यापकत्वरूपे तत्तत्साध्यक-तत्तद्धेतुकोपाधिलक्षण इत्यर्थः,
दूषणौपयिक इति शेषः । 'वन्नि-धूमसम्बन्धे' वन्नि-धूमसम्बन्धज्ञाने
वन्नि-धूमव्याप्तिज्ञान इति यावत्, 'पक्षेतरस्येति पक्षेतरनिष्ठद्रूप-
ज्ञानस्य प्रतिबन्धकत्वप्रसङ्ग इत्यर्थः, न चेष्टापत्तिः, पक्षेतरत्वादिनिष्ठ-
साध्यव्यापकत्वे सति साधनाव्यापकत्वज्ञानस्य प्रतिबन्धकतायाः सर्व-

साध्यञ्च नोपाधिः व्यभिचारसाधने साध्याविशिष्ट-
त्वात् अनुमितिमात्रोच्छेदप्रसङ्गाच्च ।

इति श्रीमद्भङ्गेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ
अनुमानाख्यद्वितीयखण्डे उपाधिसामान्यलक्षणं ।

सिद्धत्वेऽपि तन्निष्ठयत्किञ्चिद्धर्मावच्छिन्नसाध्यव्यापकत्वे सति साधना-
व्यापकताज्ञानस्य प्रतिबन्धकतायाः केनाप्यनभ्युपगमादिति भावः ।

ननु स्वव्यतिरेकेण पक्षे साध्याभावोन्नायकत्वस्य लक्ष्यतानियाम-
कत्वमते हृदो वल्लिमान् धूमादित्यादौ साधनव्यापकस्यापि वल्लि-
सामय्यादेरुपाधित्वापत्तिरित्याशङ्कायामिष्टापत्तिमाह, 'केचित्त्विति
स्वव्यतिरेके पक्षे साध्यव्यतिरेकोन्नायकत्वस्य लक्ष्यतानियामकत्ववादि-
नस्वित्यर्थः, 'यत्रेति, साधनस्य पक्षवृत्तित्वे तद्व्यापकधर्मस्यापि पक्ष-
वृत्तित्वावश्यकतया तस्योपाधित्वासम्भवात् यथोक्तस्य लक्ष्यतानियाम-
कत्वमते पक्षवृत्तिधर्मावच्छिन्नसाध्यव्यापकत्वे सति पक्षावृत्तित्वस्य उपा-
धिलक्षणत्वादिति भावः । अत्र दृष्टान्तमाह, 'यथेति, 'तत्रेति पक्षा-
वृत्तिहेतावित्यर्थः ।

ननु उपाधेर्यथोक्तलक्षणस्य साध्येऽपि सत्त्वात् परार्थस्यले साध्य-
स्यापि साध्यतावच्छेदकरूपेण उपाधितयोद्भावेनापत्तिरित्यत आह,
'साध्यञ्चेति, 'नोपाधिः' साध्यतावच्छेदकरूपेण उपाधितया नोद्भाव्यः,
'व्यभिचारसाधने' तद्व्यभिचारादिरूपसाधने, आदिपदात् तदभाव-
परिग्रहः, 'साध्याविशिष्टत्वादिति साध्यव्यभिचारादिरूपस्य साध्यस्या-

विशेषादित्यर्थः, तथाच साधनादिरूपे पक्षे तद्व्यभिचारादेरनिश्चये निश्चये चोभयथैव तद्व्यभिचारादिना हेतुना साध्यव्यभिचारानुमित्यसम्भवात् न तस्योपाधित्वेन उद्भावनमिति भावः । ननु तथापि सन्दिग्धोपाधित्वेन तस्योद्भावनापन्निरित्यत आह, 'अनुमितिमात्रेति परार्थानुमितिमात्रेत्यर्थः, एतच्चापाततः यत्र न तदुद्भावनं तत्रैव परार्थानुमितिसम्भवात्, परन्तु कथं कसम्रदायनिषिद्धत्वात् तदुद्भावनमित्येव तत्त्वं ।

इति श्रीमथुरानाथतर्कवागीश-विरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये अनुमानाख्यद्वितीयखण्डरहस्ये उपाधिसामान्यलक्षणरहस्यं ।

अथोपाधिविभागः ।

स चायं द्विविधः निश्चितः सन्दिग्धश्च, साध्यव्यापकत्वेन साधनाव्यापकत्वेन च निश्चितोव्यभिचारनिश्चयाधायकत्वेन निश्चितोपाधिः यथा वह्निमत्त्वेन धूमवत्त्वे साध्ये आर्द्रैन्धनप्रभववह्निमत्त्वं, यत्र साधनाव्यापकत्वसन्देहः साध्यव्यापकत्वसंशयो वा तदुभयसन्देहो वा तत्र हेतुव्यभिचारसंशयकत्वेन सन्दिग्धो-

उपाधिविभागरहस्यं ।

उपाधिलक्षणं लक्षयित्वा विशेषलक्षणार्थं विभजते, 'स चेति, 'हेतुव्यभिचारसंशयकत्वेनेति^(१) साधनाव्यापकत्वसन्देहे साधने साध्यव्यापकव्यभिचारस्य साध्यव्यभिचारव्याप्यस्य सन्देहात् साध्यव्यभिचारसन्देहः, साध्यव्यापकत्वसन्देहे तु साधनाव्यापकव्याप्यत्वस्य साधनाव्यापकत्वव्याप्यस्य सन्देहात् साध्ये साधनाव्यापकत्वसन्देहः व्याप्यसंशयस्य व्यापकसंशयहेतुत्वादिति भावः । 'सन्दिग्धोपाधिः' सन्दिग्धोपाधित्वं, तेन 'तत्रेत्यत्र सप्तम्यर्थस्य नानन्वयः । प्रथमस्योदाहरणमाह, 'यथेति, 'शाकाद्याहारपरिणतिजत्वमिति शाकादिसंयोगघटितशाकपाकज-

(१) हेतुव्यभिचारसंशयाधायकत्वेनेतीति क० ।

पाधिः यथा मित्रातनयत्वेन श्यामत्वे साध्ये शाका-
द्याहारपरिणतिजत्वं । न च तेनैव हेतुना शाकपाक-
जत्वमपि साध्यं, तत्र श्यामत्वस्योपाधित्वादुभयस्यापि
साधने अर्थान्तरं श्यामत्वमात्रे हि विवादो न तूभ-
यत्र । न चैवं धूमाद्वज्रानुमानेऽपि वह्निसामग्र्युपाधिः
स्यात्, तत्र वह्निनेव तत्सामग्र्यापि समं धूमस्यानौ-

श्यामसामग्रीमत्वमित्यर्थः, तेन नाग्रिमग्रन्यासङ्गतिः । परार्थस्थलाभि-
प्रायेण शङ्कते, 'न चेति, 'तेनैव' मित्रातनयत्वेनैव, 'तदपि'^(१) तादृश-
सामग्रीमत्वमपि, 'साध्यमिति पक्षसत्त्वशङ्काधीनसाधनाव्यापकत्वसन्दे-
हनिरासाय वादिना साधनीयमित्यर्थः, 'उपाधित्वात्' सन्दिग्धो-
पाधित्वेन उद्भाव्यत्वादित्यर्थः । ननु मित्रातनयत्वेन हेतुना युगप-
देवोभयं साधनीयं तत्र च श्यामत्वादेर्नोपाधित्वेनोद्भावनसम्भवः साध्य-
स्योपाधित्वेनानुद्भाव्यत्वनियमादित्यत आह, 'उभयस्यापीति, 'श्याम-
त्वमात्रे हीति, इदमुपलक्षणं युगपदुभयस्य साधनेऽप्येकांशेऽपरस्यो-
पाधित्वेनोद्भावने बाधकाभावात् व्यभिचाराद्यनुमाने साध्याविशि-
ष्टतया स्वस्मिन् साध्य एव स्वस्योपाधित्वेनानुद्भाव्यत्वनियमादिति ध्येयं ।
'न चैवमिति, 'एवं' साध्यसामग्र्या अप्युपाधित्वग्रहविषयत्वे, 'वज्रानु-
मानेऽपि' वज्रानुमित्युपधानस्यत्वेऽपि, 'उपाधिः स्यात्' उपाधिग्रह-

(१) 'शाकपाकजत्वमपि' इत्यत्र 'तदपि' इति कस्यचिन्मूलपुस्तकस्य पाठः
तममुच्यते तादृशपाठोऽस्तौ रहस्यकृतेति सम्भाव्यते ।

पाधिकत्वनिश्चयात्, अत्र तु मित्रातनयत्वव्याप्यश्या-
मसामग्र्या स्यातव्यमित्यत्र 'कार्य-कारणभावादीनां
व्याप्तिग्राहकाणामभावात्। अत एव साध्यसामग्र्या
सह हेतोरपि यत्र व्याप्तिग्राहकमस्ति तत्र सामग्री
नोपाधिः, यत्र तु तन्नास्ति तत्र साध्युपाधिरित्यभि-
सन्धाय सामग्री च क्वचिन्नोपाधिर्न तु सर्वत्र इत्युक्तं,

विषयः स्यात्, दृष्टापत्तौ चानुमित्यसम्भवादिति भावः। 'अनौपा-
धिकत्वनिश्चयादिति व्याप्यत्वनिश्चयादित्यर्थः, साध्यसामग्र्या अयुपा-
धिग्रहविषयत्वे आचार्यसंवादमाह, 'अत एवेति साध्यसामग्र्या अयु-
पाधित्वग्रहविषयत्वादेवेत्यर्थः, 'नोपाधिः' नोपाधित्वग्रहविषयः,
'उपाधिः' उपाधित्वग्रहविषयः, 'क्वचिन्नोपाधिः' नोपाधित्वग्रह-
विषयः, 'न तु सर्वत्रेति, नोपाधित्वग्रहविषय इति शेषः। द्वितीयमु-
दाहरति, 'यथेति, 'तुल्येति साधनीभूतकार्यत्वनिष्ठसाध्योभूतसकर्तृ-
कत्वव्याप्यताग्राहकसहचारग्रह-साधनीभूतकार्यताव्यापकशरीरजन्य-
त्वादिनिष्ठसाध्योभूतसकर्तृकत्वव्यापकताग्राहकसहचारग्रहरूपयोर्योग-
चेमयोरनुकूलतर्कसमवहितत्वेन तुल्ययोः सतीरित्यर्थः, 'उपाधेरिति
कार्यत्वरूपसाधनाव्यापकीभूतशरीरजन्यत्वादेः साध्यव्यापकतासन्देह-
इत्यर्थः, तथाच चितिः सकर्तृका कार्यत्वादित्यत्र यदा साधने
साध्यव्याप्यतानिश्चयकः साधनाव्यापकशरीरजन्यत्वादौ साध्यव्यापक-
तानिश्चयकश्च तर्का नावतीर्णः तदा शरीरजन्यत्वादिकं साध्य-

यथा तुल्ययोगक्षेमयोरुपाधेर्व्यापकतासन्देहे ईश्वरानु-
माने शरीरजन्यत्वाणुत्वादिः, यथा च शाकपाकजत्वस्य
साध्यव्यापकतासन्देहे मित्रातनयत्वे।

यत्तु उपाधिसन्देहो नोपाधिर्न वा हेत्वाभासान्त-
रमिति तदुद्भावेने निरनुयोज्यानुयोग इति । तन्न ।

व्यापकतासन्देहात् सन्दिग्धोपाधिरित्यर्थः । न च तस्य सङ्केततया
कथं तत्रोपाधिरिति वाच्यं । सङ्केतोरपि दशाविशेषे सन्दिग्धोपाधि-
कत्वे बाधकाभावादिति भावः । तृतीयमुदाहरति, 'यथा चेति,
'शाकपाकजत्वस्येति साधनाव्यापकतया सन्दिग्धस्य शाकपाकजत्वस्ये-
त्यर्थः, 'मित्रातनयत्वे' मित्रातनयत्वे हेतौ, शाकपाकजत्वमिति शेषः ।

'न वा हेत्वाभासान्तरं' न वा हेत्वाभासः, 'निरनुयोज्येति, तथाच
परार्थानुमान एव उपाधिसन्देहो दूषणं न तु स्वार्थानुमानेऽपीति
भावः । 'सन्दिग्धानैकान्तिकवदिति अनैकान्तिकत्वसन्देहवदित्यर्थः,
एतच्च दूषकत्वमात्रे दृष्टान्तः, तेन व्यभिचारसंशयाधायकत्वाभावे-
ऽप्यस्य न क्षतिः । 'दूषकत्वात्' उपाधिसन्देहस्य दूषकत्वात्, 'उपाधे-
रिव' उपाधित्वनिश्चयस्येव, 'निश्चयाधायकतया' व्यभिचारनिश्चया-
धायकतया^(१) । न च तथापि उपाधित्वसन्देहः स्वरूपसन्नेव

(१) 'व्यभिचारनिश्चयाधायकतया' इत्यत्र 'निश्चयाधायकतया' इति कस्य-
चिन्मूलपुस्तकस्य पाठो वर्तते तमनुसृत्यैव व्यभिचारनिश्चयाधायक-
तया इति व्याख्यातं मथुरानाथेनेत्यनुमीयते ।

सन्दिग्धानैकान्तिकवद्भ्यभिचारसंशयाधायकत्वेन दूषक-
त्वादुपाधेरिव व्यभिचारनिश्चयाधायकतया ।

इति श्रीमद्भङ्गेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ
अनुमानाख्यद्वितीयखण्डे उपाधिविभागः ।

व्यभिचारसंशयद्वारा दूषको न तु तज्ज्ञानमिति तज्ज्ञानार्थं तदु-
द्भावनमफलं अर्थान्तरापादकञ्चेति वाच्यं । तथासत्यनैकान्ति-
कत्वसन्देहोपाधित्वनिश्चययोरप्युद्भावनस्य तथात्वापत्तेः । यदि चानै-
कान्तिकत्वसन्देहादिना मम व्याप्तिग्रहो मा भूत् इतिज्ञापनाय
तदुद्भावनं कथकसम्प्रदायसिद्धं, तदा उपाधित्वसन्देहान्नम व्याप्तिग्रहो
मा भूदितिज्ञापनाय उपाधित्वसन्देहोद्भावनमपि कथकसम्प्रदाय-
सिद्धमिति तुल्यत्वादिति भावः ।

इति श्रीमथुरानाथतर्कवागीश-विरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये
अनुमानाख्यद्वितीयखण्डरहस्ये उपाधिविभागरहस्यं ।

अथोपाधेर्दूषकतावीजपूर्वपक्षः ।



इदानीमुपाधेर्दूषकतावीजं चिन्त्यते ^(१) ।

नायस्य स्वयतिरेकद्वारा सत्प्रतिपक्षत्वेन दूषकत्वं,

अथोपाधेर्दूषकतावीजपूर्वपक्षरहस्यं ।

प्रसङ्गादुपाधेर्दूषकतावीजं निरूपयितुं शिष्यावधानाय प्रतिजानीते, 'इदानीमिति उपाधिविभागानन्तरमित्यर्थः, 'दूषकतावीजं' दोषप्रयोजकतास्वरूपं, अनुमिति-तत्प्रयोजकान्यतरप्रतिबन्धकज्ञानं दोषः, 'चिन्त्यते' ज्ञायते ।

केचित्तु 'दूषकतावीजं' दूषकव्यवहारविषयतावच्छेदकं, दूषकशब्दोपाधिशब्दयोः पर्यायतापत्त्या दूषकशब्दस्य पारिभाषिकतापत्त्या च यथोक्तलक्षणस्य तद्विषयतावच्छेदकत्वासम्भवादिति भावः इत्याहुः । तदसत् । 'सत्प्रतिपक्षे उपाध्युद्भावनं न स्यादित्याद्यग्निसमन्वयसङ्गतेः ।

'स्वयतिरेकेति लिङ्गतावच्छेदकविधया स्वयतिरेकलिङ्गकपक्षविशेषकसाध्याभावानुमितिप्रयोजकतयेत्यर्थः, तृतीयार्थोऽभेदः, तथाच तादृशानुमितिप्रयोजकत्वं नास्य दूषकमिति फलितं । 'सत्प्र-

तु भूयस्त्वमपि, एकस्मादप्यन्वमितेः^(१) सन्दिग्धोपाधे-
रदूषकतापाताच्च तद्व्यतिरेकस्य सन्दिग्धत्वात्^(२) । अपि

भावसाधकन्यायमात्रं प्रयुक्तं मध्यस्थस्य चैकत्रापि हेतावनुकूलतर्का-
स्फूर्त्या व्याप्तिनिश्चयो न जातस्तत्रैवोपाधुद्भावनमफलमन्यत्र च तदु-
द्भावनं निष्फलमेव अन्यथा व्यभिचाराद्युत्थापकतया दूषकतावादि-
नामप्येतद्दोषस्य दुरुद्धरत्वात् व्याप्तिनिश्चयसत्त्वेन व्यभिचारादिज्ञान-
स्याप्यसम्भवादित्यस्वरसादाह, 'सन्दिग्धोपाधेरिति उपाधित्वसन्देह-
दशायामुपाधेरदूषकतापत्तेश्चेत्यर्थः, 'तद्व्यतिरेकस्य सन्दिग्धत्वादिति
पाठः तद्व्यतिरेकस्य तदानीं साध्याभावव्याप्यतया सन्दिग्धत्वादि-
त्यर्थः, क्वचित्तु 'तद्व्यतिरेकस्य पक्षे सन्दिग्धत्वादिति पाठः, तत्र
'सन्दिग्धोपाधेरित्यस्य पक्षवृत्तितासन्देहदशायामुपाधेरित्यर्थः, अग्रे
'पक्षवृत्तिरित्यस्य पक्षवृत्तितया निश्चितश्चेत्यर्थः । ननु सप्रतिपक्ष-
तया उपाधेरदूषकत्ववादिनये उपाधित्वादिसन्देहदशायां उपाधेर-
दूषकत्वे दृष्टापत्तिरेवेत्यत आह, 'अपि चेति, 'उपाधित्वं न
स्यात्' उपाधेरदूषकत्वं न स्यात्, 'व्यतिरेक इति तद्व्यतिरेकस्यासा-
धारणत्वादित्यर्थः, 'पक्षमात्रवृत्तित्वस्यासाधारण्यरूपत्वादिति भावः ।

(१) 'अनुमितिदर्शनात्' इति पाठः बङ्गेषु आदर्शपुस्तकेषु वर्तते पर-
न्वयं न समीचीनः, 'अनुमितिदर्शनात्' इत्यत्र 'अन्वमितेः' अथवा
'अनुमितेः' इति पाठद्वयमेव पूर्वापरग्रन्थपर्यालोचने समीचीनत्वेन
प्रतिभातं रहस्यकृता व्याख्यातञ्च ।

(२) तद्व्यतिरेकस्य पक्षे सन्दिग्धत्वादिति पा० ।

चैवं बाधोन्नीतपक्षेतरस्योपाधित्वं न स्यात् व्यतिरे-
केऽसाधारण्यात् पक्षवृत्तिश्च^(१) उपाधिर्न स्यात् यथा
घटोऽनित्यो द्रव्यत्वादित्यत्र कार्य्यत्वं अन्यकारो द्रव्यं

ननु पक्षमात्रवृत्तिवरूपासाधारण्यज्ञानं नानुमिति विरोधि किन्तु
धावत्सपक्षव्यावृत्तिवरूपतज्ज्ञानमेव तथा तच्च तत्र नास्ति पक्ष-
स्यैव सपक्षत्वादित्यत आह, 'पक्षवृत्तिश्चेति पक्षवृत्तिताज्ञानदशायां
उपाधिर्दूषको न स्यादित्यर्थः, 'स्वातन्त्र्येणेति स्वाश्रयविषयकलौकिक-
साक्षात्कारविषयान्यत्वे सति लौकिकसाक्षात्कारविषयत्वादित्यर्थः,
त्रसरेणुरात्मा चात्र दृष्टान्तः व्यभिचारश्च गन्धादौ^(२), 'अश्रावणत्व-

(१) पक्षधर्मश्चेति क० ग० ।

(२) त्रसरेणोराश्रयस्य द्युक्कस्य महत्त्वाभावात् आत्मनश्चाश्रयाप्रसिद्ध्या
त्रसरेणोरात्मनि च स्वाश्रयविषयकलौकिकसाक्षात्कारविषयान्यत्वं
उपपद्यते । न च स्वाश्रयविषयकलौकिकसाक्षात्कार एवाप्रसिद्धः
कथं तद्विषयान्यत्वं सम्भवति इति वाच्यम् । स्वाश्रयविषयकलौकिक-
साक्षात्कारविषयान्यत्वपदेन स्वाश्रयविषयकलौकिकसाक्षात्कार-
विषयो यो वस्तदन्यत्वस्य विवक्षितत्वात् । अन्यकारप्रत्यक्षे आलोक-
संयोगनिरपेक्षचक्षुषः कारणत्वेऽपि तदाश्रयप्रत्यक्षे आलोकसंयोग-
सापेक्षस्यैव चक्षुषः कारणत्वात् अन्यकारस्य स्वाश्रयविषयकलौकिक-
साक्षात्कारविषयान्यत्वं । गन्धाश्रयस्य ब्राह्मेनाग्रहणात् गन्धे स्वाश्रय-
विषयकलौकिकसाक्षात्कारविषयान्यत्वविशिष्टलौकिकसाक्षात्कारवि-
षयत्वं वर्तते किन्तु द्रव्यत्वं न वर्तते इति व्यभिचारः स्फुट एवेति
समुदिततावृपर्यम् ।

तदा हि सत्प्रतिपक्षे सत्प्रतिपक्षान्तरवदुपाधेरुद्भावनं
न स्यात् । न च प्रतिपक्षबाहुल्येनाधिकवलार्थमुद्भावनं,

तिपक्षे' स्वयं साध्यसाधकहेतोरुपन्यासानन्तरं वादिना साध्याभाव-
साधकहेतावुपन्यस्ते, 'सत्प्रतिपक्षान्तरवदिति साध्यसाधकहेतुनान्तरस्य
यथा नोद्भावनं तथा उपाधेरप्युद्भावनं न स्यादित्यर्थः, साध्याभावसा-
धकहेतुमत्ताज्ञानात्मकप्रतिबन्धकमुद्भावादुपाधेस्तत्र ययोक्तदूषकला-
सम्भवेन व्यर्थत्वादिति भावः । 'सत्प्रतिपक्षबाहुल्येनेति साध्यसा-
धकानेकहेतुज्ञानसत्त्वेनेत्यर्थः, साध्याभावसाधकहेतुमत्ताज्ञानसत्त्वेऽपि
साध्यानुमितेरुत्पादादिति शेषः, 'अधिकवलार्थमिति साध्याभावसा-
धकानुमितिप्रतिबन्धकसाध्यानुमित्यर्थमेवेत्यर्थः । न चैवं सत्प्रति-
पक्षान्तरस्याप्युद्भावनापत्तिः, इष्टत्वादिति भावः । 'शतमपीति,
'न्यायात्' तान्त्रिकप्रवादात्, तथाच साध्याभावसाधकहेतुज्ञानसत्त्वे
साध्यसाधकानेकहेतुज्ञानात् साध्यानुमित्युत्पादे प्रवादव्याघातः,
'अन्यानां' साध्याभावसाधकहेतुमत्ताज्ञाननिष्ठाप्रामाण्यज्ञानाद्यभाव-
विशिष्टज्ञानविषयाणां साध्यसाधकहेतूनां, 'शतमपि', 'न पश्यति'
न साध्याभावसाधकैकहेतुमत्ताज्ञानसत्त्वे साध्यानुमितिं जनयतीति
तदर्थेदिति भावः । ननु तत्राद्योऽप्रमाणं इत्यत आह, 'एकेनापीति
तदभावसाधकैकहेतुमत्ताज्ञानेनापि, 'बहूनां' तत्साधकानेकहेतुम-
त्ताज्ञानानां, 'फलप्रतिबन्धात्^(१)' फलप्रतिबन्धस्थानुभवसिद्धत्वाच्चे-

(१) एतेन 'प्रतिबन्धादित्यत्र 'फलप्रतिबन्धादिति कस्यचिन्मूलपुस्तकस्य
प्राठोऽनुमीयते ।

शतमप्यन्धानां न पश्यतीति न्यायात् एकेनापि बहूनां
प्रतिबन्धाच्च, व्याप्ति-पक्षधर्मते हि बलं तच्च तुल्यमेव, न

त्यर्थः । नन्विदमसम्भवि तद्वत्ताज्ञानं प्रति तदभावव्याप्यभूयोधर्मव-
त्ताज्ञानत्वेनैव प्रतिबन्धकत्वादित्यत आह, 'व्याप्तीति, 'बलं' ज्ञान-
विषयतया प्रतिबन्धकतावच्छेदकं, 'तच्च' तादृशप्रतिबन्धकतावच्छेद-
कञ्च, 'तुल्यमेवेति तदभावव्याप्यभूयोधर्मवत्ताज्ञान इव तदभाव-
व्याप्यैकधर्मवत्ताज्ञानेऽप्यविशिष्टमेवेत्यर्थः, 'न तु भूयस्त्वमपि' न तु
व्याप्यनिष्ठभूयस्त्वमपीत्यर्थः, 'बलमित्यनुषज्यते, प्रतिबन्धकतावच्छे-
दकमिति तदर्थः, अत्र हेतुमाह, 'एकस्मादपीति यत्र तत्तदभाव-
योरुभयोरेकधर्मिण्येकस्यैव व्याप्यधर्मस्य ज्ञानं^(१) तत्रैकव्याप्यधर्मवत्ता-
ज्ञानादपीत्यर्थः, 'अन्वमितेरिति सवकारः पाठः^(२) 'अनु' पश्चात्,
'अमितेः' विशिष्टमिति विरहात् इत्यर्थः, 'अनुमितेरित्युकारसम्ब-
लितपाठेऽपि 'अनु' पश्चात्, 'मितेः' विशिष्टबुद्ध्यभावस्य प्रमितेरि-
त्यर्थः । ननु सत्प्रतिपक्षे नानुमानदूषणार्थमुपाधूद्भावनमपि तु वज्रपु
व्याप्तिपक्षधर्मतान्यतरभङ्गकल्पनमपेक्ष्य एकत्र तत्कल्पनैव लघीय-
सीति लाघवतर्कसहकृतप्रमाणात् प्रतिपक्षहेतुमत्तापरामर्शेऽप्रामा-
ण्यग्रहार्थमेव तदुद्भावनं, अत एवास्माकं न्यायाः सम्यञ्चो बहवश्चेति
प्रमाणटीकापि, किञ्च यत्र वादि-प्रतिवादिभ्यां साध्यसाधक-तद-

(१) यत्र तत्तदभावयोरुभयोरेव धर्मिण्येकस्यैव व्याप्यधर्मस्यैव ज्ञान-
मिति ग० ।

(२) 'सवत्त्वः पाठः' इति आदर्शेणुल्लेखेन वर्तते प्रत्यक्षं न समीचीनः ।

स्वातन्त्र्येण प्रतीयमानत्वादित्यत्रावणत्वं तद्भातिरेकस्य
पक्षावृत्तित्वात्, न च नायमुपाधिः, तल्लक्षणसत्त्वात्
अन्यथा दूषकत्वसम्भवाच्च ।

किञ्च साध्यव्याप्याव्यापकत्वेनोपाधेः^(१) साध्याव्या-
पकत्वे तद्भातिरेकेण कथं सत्प्रतिपक्षः, न ह्यव्यापक-

मिति, शब्दे चास्य साधनाव्यापकत्वं, 'पक्षावृत्तित्वादिति पक्षवृत्ति-
लाघवादित्यर्थः । 'तल्लक्षणेति साध्यव्यापकत्वे सति साधनाव्यापकत्व-
रूपस्य उपाधिलक्षणेण सत्त्वादित्यर्थः, 'अन्यथापीति पक्षवृत्तित्वं
विनापीत्यर्थः, पक्षवृत्तिताभ्रमेणेति शेषः, 'दूषकत्वसम्भवादिति
कदाचिदूषकत्वसम्भवात्, दूषकतातिप्रसङ्गस्यादोषत्वादिति भावः ।

केचित्तु ननु तन्नोपाधिलक्षणं अपि तु पक्षवृत्तिधर्मावच्छि-
न्नसाध्यव्यापकत्वे सति पक्षावृत्तित्वमेव लक्षणं तच्च तत्र नास्ति
यथोक्तस्य दूषकतारूपत्वान्यथानुपपत्त्या तथैव कल्पनादित्यत आह,
'अन्यथापीति यथोक्तरूपभिन्नस्यापि दूषकत्वसम्भवाच्चेत्यर्थः, तथाच
किं सकलप्रामाणिकोपाधिव्यहारविषयस्य तस्यानुपाधित्वाभ्युपगमे-
नेति भावः इत्याहुः ।

ननु सत्प्रतिपक्षोन्नायकत्वेन दूषकतावादिनो मम पक्षवृत्तित्व-
यददशायां उपाधेरदूषकत्वे दृष्टापत्तिरेवेत्यत आह, 'किञ्चेति,
'साध्यव्याप्येति साध्यव्याप्यतया निश्चितस्य साधनस्याव्यापकताज्ञाने-

(१) साध्यव्यापकव्याप्यत्वेनोपाधेरिति क-चिद्धितपुस्तकपाठः परन्त्वयं न
समीचीनः ।

व्यतिरेकादव्याप्यव्यतिरेकः । नापि व्याप्तिविरहरूपतया,
असिद्धत्वेनानौपाधिकत्वस्य व्याप्तित्वनिरासात् । नाप्य-
नौपाधित्वज्ञानस्य व्याप्तिधीहेतुत्वस्य तत्त्वेन व्याप्ति-
ज्ञानकारणविघटकतया व्याप्यत्वासिद्धेरन्तर्भावः, न
ह्यन्यस्य साध्यव्यापकत्व-साधनाव्यापकत्वज्ञानं अन्यस्य
व्याप्तिज्ञाने स्वतः प्रतिबन्धकमित्युक्तम् । न च साध्य-

नोपाधेः साध्याव्यापकत्वज्ञाने इत्यर्थः, 'सत्प्रतिपक्षः' साध्याभावग्रहः,
'अव्यापकव्यतिरेकादिति अव्यापकतया गृहीतस्य व्यतिरेकादव्याप्य-
तया गृहीतस्य व्यतिरेकग्रह इत्यर्थः । 'असिद्धत्वेनेति हेतुविशे-
षकव्याप्त्यभावप्रकारकज्ञानस्यानुमितिकारणीभूतव्याप्तिज्ञानप्रतिब-
न्धकस्य विशेषणविधया प्रयोजकत्वेनेत्यर्थः, 'दूषकत्वमित्यनुषज्यते
तृतीयार्थश्च पूर्ववत्, उपाध्यभावस्य व्याप्तित्वे हि उपाधिव्याप्त्यभाव-
रूपतया दूषकः स्यात्तदेव च सिद्ध्यसिद्धिव्याघातान्निराकृतमि-
त्याह, 'अनौपाधिकत्वेति । उपाधिर्न दूषकः किन्तु व्याप्यत्वासि-
द्धिरूपहेत्वाभासान्तर्गतएव स इति कस्यचिन्मतं दूषयति, 'नापीति,
'अनौपाधिकत्वज्ञानस्य' उपाधित्वप्रकारकोपाधिज्ञानाभावस्य, 'व्याप्ति-
ज्ञानकारणविघटकतयेति^(१) व्याप्तिज्ञानकारणीभूताभावप्रतियोगि-
ज्ञानविषयतयेत्यर्थः, 'व्याप्यत्वासिद्धेः' व्याप्यत्वासिद्धौ, साधारण्या-
दिभिन्नव्याप्तिज्ञानप्रतिबन्धकज्ञानविषयस्यैव व्याप्यत्वासिद्धित्वादिति

व्यापकाव्याप्यत्वज्ञाने विद्यमाने साधनस्य साध्यव्या-
प्यत्वज्ञानं नोत्पत्तुमर्हतीति वाच्यं । न हि साध्यव्या-
पकव्याप्यत्वज्ञानं व्याप्तिज्ञानकारणं येन तत्प्रतिबन्धकं
स्यात्, किन्तु साध्यव्यापकव्यभिचारित्वेन साध्यव्यभि-

भावः । दूषयति, 'न हीति, 'अन्यस्य' साधनभिन्नस्य, 'अन्यस्य
व्याप्तिज्ञाने' साधनभिन्नान्यस्य व्याप्तिज्ञाने, साधनस्य व्याप्तिज्ञान-
इति यावत्, 'स्वतः प्रतिबन्धकमिति साक्षात्प्रतिबन्धकमित्यर्थः,
भिन्नधर्मिकत्वादिति भावः । तथाचानुमिति-तत्कारणान्यतरं प्रति
साक्षात्प्रतिबन्धकज्ञानविषयस्यैव हेत्वाभासतया कथमस्य हेत्वाभासे-
ऽन्तर्भाव इति हृदयं । भिन्नधर्मिकत्वं परिहरन्नाह, 'न चेति,
'साध्यव्यापकेति अव्याप्यतासम्बन्धेन साध्यव्यापकवत्ताज्ञान इत्यर्थः,
तथाच तद्विषयतयैव उपाधिव्याप्यत्वासिद्धान्तर्गत इति भावः ।
'साध्यव्यापकेति अव्याप्यतासम्बन्धेन साध्यव्यापकाभाववत्ताज्ञानमि-
त्यर्थः, 'येनेति, जनकीभूतं ज्ञानं विघटयत एव ग्राह्याभावाद्यन-
वगाहिनी ज्ञानस्य प्रतिबन्धकत्वनियमादिति भावः । तत्किमव्या-
प्यतासम्बन्धेन उपाधिमत्ताज्ञानं व्याप्तिज्ञानविघटकमेव न भवती-
त्यत आह, 'किन्त्विति, 'साध्यव्यापकेति अव्याप्यतासम्बन्धेन साध्य-
व्यापकोपाधिमत्ताज्ञानेनेत्यर्थः, 'साध्यव्यभिचारित्वेति, व्याप्तिज्ञानं
विघटयत इति शेषः, एतच्च समाधिसौकर्यादुक्तं, वस्तुतोऽव्याप्यता-
सम्बन्धेन हेतावुपाधिमत्तानिश्चयस्य प्रतिबन्धकत्वेऽप्युपाधेर्न व्याप्यत्वा-

चारित्वज्ञानद्वारा । नापि व्यभिचारोन्नायकत्वेन, यथा हि साध्यव्यापकव्यभिचारितया साधनस्य साध्यव्यभिचारित्वमनुमेयं तथा साध्यव्याप्यव्यभिचारित्वेन साध्यव्यभिचारित्वमुपाधेरप्यनुमेयं व्याप्तिग्राहकसाम्यात्^(१) ।

सिद्धित्वसम्भवः उपाधिविशिष्टहेतुनिरूपितविषयित्वस्यैव व्याप्तिग्रह-प्रतिबन्धकतानियततया^(२) तद्विशिष्टहेतोरेव तथात्वसम्भवादन्वया व्याप्यत्वासिद्ध्यन्तर्गतसाध्यादेरपि प्रत्येकं व्याप्यत्वासिद्धित्वापत्तेरिति हेत्वाभासे सुव्यक्तं । ननूपाधिदूषक एव दूषकत्वन्तु तस्य स्वव्यभिचारलिङ्गक-साधनपक्षक-साध्यव्यभिचारानुमितिप्रयोजकत्वेनेति मतं दूषयति, 'नापीति, दूषकत्वमित्यनुषज्यते, तृतीयार्थस्तु पूर्ववत्, 'साध्यव्यापकव्यभिचारित्वेनेति साध्यव्यापकोपाधिव्यभिचारित्वेन इत्यर्थः, 'तथेति, तत्पूर्वमिति शेषः । 'साध्यव्याप्येति साध्यव्याप्यसाधनाव्यापकत्वेनेत्यर्थः, 'साध्यव्यभिचारित्वं' साध्यव्यापकत्वं, 'व्याप्तिग्राहकेति उपाधिनिष्ठसाध्यव्यापकताग्राहकसहचारादिग्रह-हेतुनिष्ठसाध्यव्याप्तिग्राहकसहचारादिग्रहयोस्तुल्यत्वादित्यर्थः । 'साध्यव्यापकाव्याप्यत्वेनेति साध्यव्यापकाव्याप्यत्वलिङ्गेनेत्यर्थः, 'व्याप्तिविरहेति साधनपक्षकसाध्यव्याप्तिविरहानुमितिप्रयोजकतयेत्यर्थः, 'दूषकत्वमित्यनुषज्यते, 'साध्यव्याप्येति साध्यव्याप्यसाधनेत्यर्थः, 'उपाधिर्हेत्वाभासान्तरमिति आभा-

(१) व्याप्तिग्राहकतौल्यादिति ग० ।

(२) व्याप्तिग्रहप्रतिबन्धकतानतिरिक्तवृत्तितयेत्यर्थः ।

नापि साध्यव्यापकाव्याप्यत्वेन व्याप्तिविरहेनानायक-
तया, साध्यव्याप्याव्यापकत्वेनोपाधेरेव साध्याव्यापकत्व-
साधनात्, तस्मादुपाधिर्हेत्वाभासान्तरमिति ।

इति श्रीमद्भङ्गेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ
अनुमानाख्यद्वितीयखण्डे उपाधिदूषकतावीजपूर्व-
पक्षः ।

सस्य दोषस्य यो हेतुः प्रयोजकः तस्मादन्तरमिति व्युत्पत्त्या उपाधि-
रदूषक इत्यर्थः, राजदन्तादित्वात् षष्ठीतत्पुरुषसमासेऽपि हेतुशब्दस्य
पूर्वनिपातः ।

केचित्तु 'हेत्वाभासान्तरमिति वाध-सत्प्रतिपक्षाद्यतिरिक्तानु-
मितिसाक्षात्प्रतिबन्धकज्ञानविषयो हेत्वाभास इत्याहुः । तदसत् ।
जनकज्ञानविघटकतया ग्राह्याभावाद्यनवगाहितया चानुमितिं प्रत्यपि
साक्षात्प्रतिबन्धकत्वासम्भवादिति ध्येयं ।

इति श्रीमथुरानाथतर्कवागीश-विरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये
अनुमानाख्यद्वितीयखण्डरहस्ये उपाधिदूषकतावीजपूर्वपक्षरहस्यं ।

अथोपाधिदूषकतावीजसिद्धान्तः ।

उच्यते आर्द्रैन्धनवत्त्वादेस्तर्कादिना साध्यव्यापकत्व-
साधनाव्यापकत्वे निश्चिते दूषकतावीजचिन्तनं । यदि
च साध्य-साधनसहचारदर्शनेनोपाधौ साध्यव्यापक-
तानिश्चय एव नास्ति तदोपाधित्वनिश्चयाभावात् दूष-

अथोपाधिदूषकतावीजसिद्धान्तरहस्यं ।

‘तर्कादिनेति साध्यव्यापकत्वादिनिश्चयसामग्र्यादिनेत्यर्थः, ‘आदि-
पदात् तत्संशयसामग्रीपरिग्रहः, ‘निश्चिते’ ज्ञाते, ‘दूषकतावीजचि-
न्तनं’ दूषकत्वस्य धर्मिणः सत्त्वं, ‘यदि चेति यदा चेत्यर्थः, ‘साध्य-साध-
नसहचारदर्शनेन’ साध्य-साधनयोर्नियतसहचारदर्शनेन, साध्य-साध-
नयोर्व्याप्यत्वनिश्चयेनेति यावत्, साध्यव्याप्यसाधनाव्यापकतया साध्या-
व्यापकत्वनिश्चयादिति^(१) शेषः । ‘निश्चय एव’ ज्ञानमेव, ‘उपाधित्व-
निश्चयाभावात्’ उपाधित्वज्ञानाभावात्, ‘दूषकतैव’ दूषकताधर्म एव,
‘क्व वह्निर्भावेति कुतस्तत्कालीनदूषकतायां अनुमितिकारणप्रतिव-

कतैव नास्तीति क्व वहिर्भावान्तर्भावचिन्ता । किञ्च
सत्प्रतिपक्षतया व्याप्यत्वासिद्धतया स्वातन्त्र्येण वा यदि
दोषत्वं सर्व्वथा साध्यव्यापकतानिश्चयोवक्तव्यः तेन
विना तेषामभावात् । तस्मादुपाधिनिश्चयाद्वाभिचा-

न्धकज्ञानप्रयोजकतारूपत्व-साक्षादनुमितिप्रतिबन्धकज्ञानप्रयोजकता-
रूपत्वचिन्तनमित्यर्थः । ‘किञ्चेति यत इत्यर्थे, ‘सत्प्रतिपक्षतयेति
स्वव्यतिरेकलिङ्गकसाध्याभावानुमितिप्रयोजकतयेत्यर्थः, ‘व्याप्यत्वासि-
द्धतयेति व्याप्तिविरहरूपत्वेन विशेषणविधया हेतुविशेष्यकव्याप्त्य-
भावप्रकारकज्ञानप्रयोजकतयेत्यर्थः, ‘स्वातन्त्र्येण वेति तदितररूपेण
वेत्यर्थः, तच्च रूपं स्वाव्याप्यत्वलिङ्गक-हेतुपक्षक-साध्यव्याप्तिविरहा-
नुमितिप्रयोजकत्वं वक्ष्यमाणव्यभिचारज्ञानप्रयोजकत्वञ्चेति भावः ।
‘साध्यव्यापकतानिश्चयः’ तद्व्यहः, ‘वक्तव्यः’ अपेक्षणीयः, ‘व्यभिचा-
रज्ञानद्वारेति मानसव्यभिचारप्रत्यक्षप्रयोजकतयेत्यर्थः, अतो नाग्नि-
मेण पौनरुक्त्यं, मानसव्यभिचारनिश्चये उपाधिज्ञानस्य विशेषद-
र्शनतया उपयोगित्वेन तद्विषयतया उपाधेरपि तत्र प्रयोजकत्वादिति
भावः । ‘साध्यव्यापकाव्याप्यत्वेनेति स्वनिष्ठसाध्यव्यापकतावच्छेदकरूपा-
वच्छिन्नाव्याप्यत्वेन हेतुना हेतौ साध्यव्याप्तिविरहानुमितिप्रयोजक-
तया वेत्यर्थः, एतच्च उपाधित्वनिश्चयमधिकृत्य, उपाधित्वसंशयस्य तु
साध्यव्यभिचारवत्साध्यव्याप्तिविरहस्यापि संशयं प्रत्येव क्वचित् प्रयोज-
कत्वं । अत्र साध्यव्याप्तिविरहपदं साध्यवदन्यावृत्तिलविशिष्टसाध्य-

रित्वमुज्ज्वलं । न च साधनाभाववद्दृत्तित्वमुपाधिरिति
वाच्यम् । उपाधिमात्रोच्चेदप्रसङ्गात् सत्प्रतिपक्षे पूर्व-
साधनव्यतिरेकवत् अदृत्तिगगनादौ साध्याव्यापकत्वात्
संयोगादौ हेतौ साधनव्यापकत्वाच्च ।

व्याप्योपाध्यभाववत्तानिश्चयद्वारावसेयं । व्याप्तिविरहानुमाने व्यभि-
चारानुमाने च उपाधिमात्राङ्गते, 'न चेति पक्षीभूतसाधनाभाववद्-
दृत्तिलमित्यर्थः, व्यभिचारास्फुटतादृशायामेव उपाधिना व्याप्तिवि-
रहाद्यनुमानात् यत्राधिकरणे हेतोः साध्यव्यभिचारित्वं तदौयध-
र्मिण्यस्य साध्याव्यापकत्वग्रह इति भावः । 'उपाधिमात्रेति व्यतिरे-
कसाधनकोपाधिव्यभिचारमात्रस्य तादृशोपाध्यव्याप्यत्वमात्रस्य च
निरुपाधित्वोच्चेदप्रसङ्गादित्यर्थः । केवलान्वयिनि साधने पक्षीभूते
पक्षीभूतसाधनाभावस्याप्रसिद्ध्या तद्वद्दृत्तित्वस्य उपाधित्वासम्भवेऽपि
तदतिरिक्ते पक्षीभूते सर्वत्रैव तदुपाधितायाः सुवचत्वादिति भावः ।
'सत्प्रतिपक्ष इति यथा सत्प्रतिपक्षे पूर्वसाधनव्यतिरेकस्य उपाधि-
नियमे सत्प्रतिपक्षमात्रस्य निरुपाधित्वोच्चेदप्रसङ्ग इत्यर्थः,
तीति, व्याप्तिविरहसाधनाभिप्रायेणेदं, साधनाव्याप्यत्वस्य
धित्वाभिधाने तु नैतद्दोष इति ध्येयं । 'संयोगादाविति
साधनाभाववद्दृत्तित्वं यथाश्रुतमभिप्रेत्य, । व
वच्छिन्नाधिकरणतावद्दृत्तित्वस्योपाधित्वाभिधाने तु नायं
इति ध्येयं ।

इति श्रीमद्भग्वेङ्कटेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्ता-
मणौ अनुमानाख्यद्वितीयखण्डे उपाधिदूषकतावीज-
सिद्धान्तः ।

इति श्रीमथुरानाथतर्कवागीश-विरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये
अनुमानाख्यद्वितीयखण्डरहस्ये उपाधिदूषकतावीजसिद्धान्तरहस्यं ।

अथोपाध्याभासनिरूपणं ।

अथोपाध्याभासाः । असाधारणविपर्ययः, यथान्वयव्यतिरेकिणि साध्ये बाधोन्नीतान्वयपक्षेतरत्वम् । अप्रसिद्धसाध्यविपर्ययः, यथा केवलान्वयिनि साध्ये पक्षेतरत्वादिः । बाधितसाध्यविपर्ययः, यथा वह्निरु-

अथोपाध्याभासनिरूपणरहस्यं ।

उपाधिं निरूप्य तदाभासान् गणयितुं शिष्यावधानाय प्रतिजानीते, 'अथेति उपाधिनिरूपणानन्तरमित्यर्थः, 'उपाध्याभासा इति, निरूप्यन्ते इति शेषः । 'असाधारणविपर्यय इति असाधारणः विपर्ययो व्यतिरेको यस्येति वज्रग्रीहिः, साध्याभावे साध्य इति चादौ पूरणीयं, तथाच यदभावः साध्याभावे साध्येऽसाधारणो भवति स उपाध्याभास इत्यर्थः, असाधारणमिह सर्वसपक्षव्यावृत्तत्वमात्रं साध्याभावरूपसाध्यवदवृत्तित्वमिति यावत् तथाच यदभावः साध्याभाववदवृत्तिः स उपाध्याभास इति फलितं, तस्य साध्यव्यापकत्वाभावेनासदुपाधित्वादिति भावः । तस्य उदाहरणमाह, 'यथेति, केवलान्वयिसाध्ये साध्याभावस्याप्रसिद्धा 'अन्वयव्यतिरेकिणीत्युक्तं, 'अन्वयः' साध्यतावच्छेदकसम्बन्धः, तदवच्छिन्न-

ष्णस्तेजस्वादित्यत्राकृतकत्वम् । पञ्चाव्यापकविपर्ययः,
यथा क्षित्यादिकं सकर्तृकं कार्यत्वादित्यत्राणव्यतिरि-
क्तत्वम् । अत्राणव्यतिरिक्तत्वव्यतिरेकस्य क्षित्यादेरेक-
देशवृत्त्या भागासिद्धेः । पूर्वसाधनव्यतिरेकः, यथा

प्रतियोगिताकव्यतिरेकप्रतियोगिनीत्यर्थः, जलहृदो वक्त्रिमान्
द्रव्यत्वादित्यादौ हृदेतरत्वादेर्व्यतिरेकस्य साध्याभाववदवृत्तित्व-
विरहात् 'बाधोन्नीतान्येति पक्षविशेषणं साध्याभाववत्तया प्रमिता-
न्येत्यर्थः, तथाच पर्वतो वक्त्रिमान् धूमादित्यादौ पर्वतेतरत्वा-
दिकमिति भावः ।

प्राञ्चस्तु साध्याभावे साध्य इत्यादौ न पूरणीयं, असाधारणत्वञ्च
सर्वसपक्ष-विपक्षव्यावृत्तत्वं, प्रकृतसाध्यवत्तया निश्चितत्वमेव सपक्षत्वं,
तदभाववत्तया निश्चितत्वञ्च विपक्षत्वं, तथाच यदभावः सकलसाध्य-
वत्तानिश्चितव्यावृत्तत्वे सति सकलसाध्याभाववत्तानिश्चितव्यावृत्तः स
उपाध्याभास इत्यर्थः, अतएव उदाहरणे केवलव्यतिरेकिणि सपक्षस्य
केवलान्वयिनि च विपक्षस्याप्रसिद्ध्या तत्रत्यपक्षेतरत्ववारणाय 'अन्वय-
व्यतिरेकिणीत्युक्तं, वक्त्रिरनुष्णः कृतकत्वादित्यादौ पक्षस्यैव विपक्ष-
तया वक्त्रीतरत्वस्य तद्व्यावृत्तत्वाभावात् तद्वारणाय 'बाधोन्नीतान्ये-
त्युक्तं साध्याभाववत्तया निश्चितान्येति तदर्थः । इदमुपलक्षणं
भूनिर्न्या गन्धवत्त्वात् भूरनित्या भूभिन्नभिन्नत्वादित्यादौ च केवल-
व्यतिरेकिण्यपि पक्षेतरत्वं उदाहरणं बोध्यं तत्र सपक्षस्य प्रसिद्धत्वा-

शर्करारसोऽनित्योऽनित्यवृत्तिगुणत्वात् । स नित्यः^(१)
 रसनेन्द्रियजन्यनिर्विकल्पकविषयत्वात् रसत्ववदि-
 त्यादौ । पूर्वसाधनतायाः प्रयोगानुरोधित्वेनाव्यव-
 स्थितत्वात् कदाचिन्नित्यत्वसाधनव्यतिरेकस्योपाधित्वं
 कदाचिदनित्यत्वसाधानव्यतिरेकित्वस्येति नस्तुव्यवस्था .

दित्याहुः । तदसत् । वक्त्रिरनुष्णः कृतकत्वादित्यादौ बाधोन्नीतपचे-
 तरत्वेऽतिव्याप्तिवारणाय विपक्षव्यावृत्तत्वदलस्यावश्यकत्वेऽपि सपक्षव्या-
 वृत्तत्वदलस्य व्यर्थत्वात्, पृथिवी इतरेभ्यो भिद्यते द्रव्यत्वादित्यादौ
 केवलव्यतिरेकिण्यपि पचेतरत्वस्योपाध्याभासतया तद्वारणस्यायुक्त-
 त्वात् । किञ्चैवं वक्त्रिरनुष्णः कृतकत्वादित्यादौ बाधिते यदा सौ-
 रालोकादावेव साध्याभावनिश्चयो न तु पचे तदा पचेतरत्वस्य उपा-
 ध्याभामत्वापत्तिः, एवं धूमवान् वक्त्रेरित्यादावपि यदा आर्द्रैर्न्वना-
 द्यधिकरण एव साध्य-तदभावयोर्निश्चयो न तु नदनधिकरणे तदा
 तत्राप्यार्द्रैर्न्वनादेरुपाध्याभासतापत्तिः । न चेष्टापत्तिः, साध्यव्यापक-
 त्वादेस्तदानीमपि सत्त्वेनाभासतायां बीजाभावात् । न च यन्मते
 उपाधित्वज्ञानस्य पचे साध्याभावव्याप्योपाध्यभाववत्ताज्ञानद्वारा अनु-
 मितिप्रतिबन्धकत्वं तन्मते तदानीं तेषामभावे साध्याभावव्याप्य-
 त्वज्ञानासम्भव एव उपाध्याभासत्वे बीजमिति वाच्यं । असाधारण्य-
 ज्ञानस्यानुमितिं प्रत्येव प्रतिबन्धकतया तत्सत्त्वेऽपि साध्याभावव्या-

न स्यात् उपाधेर्नित्यशेषत्वात् । न हि यद्येन सौपा-
धिसम्बद्धं तत्तेनानुपाधित्वसम्बद्धं सम्भवति, न तु सत्प्र-
तिपक्षोच्छेदः पूर्वसाधनव्यतिरेकस्यानुपाधित्वे वीजं,
स्थापनाया यत्राभासत्वं तच्च पूर्वसाधनव्यतिरेकस्य

एतज्ज्ञाने बाधकाभावात् असाधारण्यज्ञानस्थान्वयसहचारग्रहप्रति-
बन्धकतया व्याप्तिज्ञानप्रतिबन्धकत्वपक्षेऽप्यन्यव्याप्तिज्ञानं प्रत्येव प्रति-
बन्धकतया तत्सत्त्वेऽपि साध्याभावव्यतिरेकव्याप्तिज्ञाने बाधकाभावा-
च्चेति ध्येयं ।

‘अप्रसिद्धसाध्यविपर्ययः’ यद्वृत्तिसाध्यस्य साध्यतावच्छेदकरूपे-
णाभावोऽस्तीकः अत्यन्ताभावप्रतियोगितानवच्छेदकसाध्यतावच्छेद-
कावच्छिन्नसाध्याश्रय इति यावत्, ‘पक्षेतरत्वादिरिति, आदि-
पदात्पक्षेतरत्वातिरिक्तवस्तुमात्रपरिग्रहः, केवलान्वयिसाध्ये कुत्रचि-
त्साध्यव्यापकत्वस्य कुत्रचित्साधनाव्यापकत्वस्य विरहात् वस्तुमात्रस्यैव
उपाध्याभासत्वादिति भावः । ‘बाधितेति अव्याप्यतासम्बन्धेन बाधितः
साध्यविपर्ययो यत्रेति व्युत्पत्त्या साध्याभावव्याप्य इत्यर्थः, ‘अकृतकत्व-
मिति न विद्यते कृतकं कार्यं यत्रेति व्युत्पत्त्या जन्यधर्मानाश्रयत्वमि-
त्यर्थः, ‘पक्षाव्यापकेति, ‘पक्षः’ साधनवान्, तद्वृत्तिविपर्ययक इत्यर्थः,
क्वचिच्च ‘पक्षव्यावर्तकेति पाठः तस्याप्ययमेवार्थः, ‘चित्यादिकमिति
पृथिव्यादिकमित्यर्थः, ‘अणुव्यतिरिक्तत्वं’ परमाणुभिन्नत्वं, अस्योपाध्या-
भासत्वे वीजमाह, ‘अत्रेति परमाणुव्यतिरिक्तत्वं इत्यर्थः, ‘अणुव्यति-

साध्याव्यापकत्वेनानुपाधित्वात् । न च पूर्वहेतोस्तत-
रुक्साधकत्वात् सत्प्रतिपक्षवैयर्थ्यं तत्रेति वाच्यम् ।
अदृष्टमात्रविशेषदशायां सत्प्रतिपक्षसम्भवात् । पूर्व-

रिक्तत्वव्यतिरेकस्य' परमाणुव्यतिरिक्तत्वव्यतिरेकस्य, 'एकदेशवृत्त्या'
एकदेश एव वृत्त्या नित्यपृथिव्यादावेव वृत्त्येति यावत्, 'भागासिद्धे-
रिति उपाधिलक्षणान्तर्गतस्य साधनाव्यापकत्वभागस्यासिद्धेरित्यर्थः ।

केचित्तु सर्वमतसाधारणेन उपाधाभासान् गणयित्वा पञ्चवृत्ति-
धर्मावच्छिन्नसाध्यव्यापकत्वे सति पञ्चवृत्तिरेवोपाधिरिति मते
उपाधाभासान् गणयति, 'बाधितेति यत्समानाधिकरणसाध्यस्य
साध्यतावच्छेदकरूपेणाभावः पक्षे बाधित इत्यर्थः, "अकृतकत्वं"
अकार्यत्वं, तत्र पञ्चवृत्तिधर्मावच्छिन्नसाध्यस्य पक्षेऽपि सत्त्वेन तादृ-
शसाध्यव्यापकत्वविरहादिति भावः । इदमुपलक्षणं पर्वतो धूमवान्
वज्जेरित्यादावार्द्रैर्न्धनादिकमपि बोध्यं । 'पञ्चाव्यापकेति^(१), पञ्चैकदे-
शावृत्तौत्यर्थः, 'चित्यादिकं' पार्थिवद्व्यणुकादिकं, अणुव्यतिरिक्तत्वस्य
पञ्चाव्यापकविपर्ययकत्वमुपपादयति^(२), 'अत्रेति चित्यादिकं सक-
र्तकं कार्यत्वादित्यत्रेत्यर्थः, 'एकदेशवृत्त्या' एकदेशद्व्यणुक एव
वृत्त्या, 'भागासिद्धेः' पञ्चैकदेशावृत्तेः । यद्वा अणुव्यतिरिक्तत्वस्य
उपाधाभासत्वे वीजमाह, 'अत्रेति अणुव्यतिरिक्तत्व इत्यर्थः, 'भागा-

(१) पञ्चाव्यावर्तकेतीति ग० ।

(२) पञ्चाव्यावर्तकविपर्ययकत्वमुपपादयतीति ग० ।

साधनव्याप्यव्यतिरेकः, यथा अकर्तृकत्वानुमाने नित्य-
त्वादिः । पक्ष-विपक्षान्यतरान्यः, यथा प्रसिद्धानुमाने

सिद्धेरिति उपाधिलक्षणान्तर्गतस्य पञ्चावृत्तित्वभागस्यासिद्धेरित्यर्थः,
इत्याहुः ।

सत्प्रतिपक्षे सर्वत्रैव पूर्वसाधनव्यतिरेकः सदुपाधिरिति मतं
स्वमते^(१) निराकर्तुमाह, 'पूर्वसाधनव्यतिरेक इति पूर्वसाधनव्यतिरे-
कोऽपीत्यर्थः, कचिदुपाध्याभास इति शेषः । एतेन पूर्वसाधनव्यतिरे-
कित्वस्य उपाध्याभासलनियतत्वे आर्द्रेन्धनाभावेन धूमामावस्य स्थाप-
नायां प्रतिहेतौ वक्तावार्द्रेन्धनस्य उपाधित्वं न स्यादिति पूर्वपक्षो-
निरस्तः । 'रसनेन्द्रियजन्येति गुणान्यत्वे सति रसनेन्द्रियजन्यनिर्विक-
ल्पकविषयत्वादित्यर्थः, यथाश्रुते घटादिवृत्तिरसे व्यभिचारपक्षैः
पूर्वसाधनव्यतिरेकस्यासदुपाधितया उदाहरणत्वासङ्गतेश्च । शर्करा-
या रस इत्युपनीतभानविषये शर्करायां व्यभिचारवारणाय निर्वि-
कल्पकत्वेन उपादानं, निर्विकल्पकत्वं सप्रकारकभिन्नत्वं तेषांशिक-
निर्विकल्पकत्वमादाय न तद्दोषतादवस्थं । पूर्वसाधनव्यतिरेकस्य सदु-
पाधित्वनियमे बाधकमाह, 'पूर्वसाधनताया इति, पूर्वसाधनव्यतिरे-
कस्य सदुपाधित्वनियमे इत्यादिः, 'अव्यवस्थितत्वादिति कश्चिन्नित्य-
त्वसाधकोक्तहेतौ कश्चिदनित्यत्वसाधकोक्तहेतौ च संसृष्टादित्यर्थः,
'कदाचिदिति शर्करीयरसो नित्यः गुणान्यत्वे सति रसनेन्द्रियजन्य-

पर्वत-जलहृदान्यतरान्यत्वम् । पक्षेतरसाध्याभावः,
यथाचैव पर्वतेतराग्निसत्त्वं । न चात्र व्यर्थविशेषणत्वं

निर्विकल्पकविषयत्वादिति नित्यत्वसाधकहेतोः पूर्वं प्रयोगदशाया-
मित्यर्थः, 'नित्यत्वसाधनेति नित्यत्वसाध्यक-गुणायत्वे सतीति हेतौ
नित्यत्वसाधकहेतोरभावस्येत्यर्थः, 'उपाधित्वं' सदुपाधित्वं स्यादि-
त्यर्थः, 'कदाचिदिति शर्करारसोऽनित्यः अनित्यवृत्तिगुणत्वादित्य-
नित्यत्वसाधकहेतोः पूर्वं प्रयोगदशायामित्यर्थः, 'अनित्यत्वसाधनेति
अनित्यत्वसाधकानित्यवृत्तिगुणत्वरूपहेतोरभावस्येत्यर्थः, उपाधित्वं
स्यादिति शेषः, 'वस्तुव्यवस्थेति तदुभयहेतौ वस्तुगत्या साध्यव्या-
प्यत्वस्थावस्थानं न स्यादित्यर्थः, व्याप्तेर्निरुपाधित्वनियतत्वादिति
भावः । ननु दशाविशेषे निरुपाधित्वं तत्रास्येवेत्यत आह,
'उपाधेरिति, 'नित्यदोषत्वात्' सदातनदोषत्वात् व्याप्यवृत्तित्वादिति
यावत् । 'यद्येन सोपाधिसम्बद्धमिति यत्साध्यकसोपाधित्वसम्बद्ध-
मित्यर्थः, तत्तेनानुपाधित्वसम्बद्धमिति तत्साध्यकानुपाधित्वसम्बद्धमि-
त्यर्थः, पूर्वसाधनव्यतिरेकस्य सदुपाधित्वानियमे केनचिदुक्तं वीजमा-
शङ्क्य निराकरोति, 'न त्विति, 'अनुपाधित्वे' सदुपाधित्वानियमे,
पूर्वसाधनव्यतिरेकस्य सदुपाधित्वनियमेऽपि तस्योपाधित्वाप्रतिसन्धान-
दशायां सत्प्रतिपक्षसम्भवादिति भावः । स्थानान्तरे पूर्वसाधनव्यति-
रेकस्य उपाध्याभासत्वं दर्शयति, 'स्थापनाया इति तत्साध्यवस्थाप-
नायाः, 'यत्राभासत्वं' व्यभिचारित्वमित्यर्थः, 'तत्र' तत्रापि, 'साध्या-

दूषणं, तत्त्वेऽप्युपाधेराभासत्वात् । तत्तुल्यश्च, यथात्रैव
पर्वतेतरेन्धनवत्त्वम् । एवं वह्निसामग्र्यादिकमूह्यम् ।

व्यापकत्वेनेति तदभावसाधनप्रतिस्थापनायाः साध्यस्याव्यापकत्वेने-
त्यर्थः, 'अनुपाधित्वात्' उपाध्याभासत्वात्, 'ततएवेति व्यभिचारि-
त्वादेवेत्यर्थः । 'अगृह्यमाणेति स्थापनाया व्यभिचाराग्रहदशाया-
मित्यर्थः, 'पूर्वसाधनव्याप्यव्यतिरेक इति, उपाध्याभास इति शेषः ।
'यथेति, कादाचित्कत्वेन सकर्तृकत्वस्य स्थापनायामिति शेषः,
'अकर्तृकत्वानुमान इति अकर्तृकत्वसाधके प्रतिहेतावजन्यत्व इत्यर्थः,
'नित्यत्वादीति, ध्वंसाप्रतियोगित्वरूपस्य नित्यत्वस्य प्रागभावे साध्य-
व्यापकत्वाद्धेतौ साध्यव्यभिचारविरहाच्चायमुपाध्याभास इति भावः ।
'पक्षेति भावप्रधानो निर्द्देशः पक्ष-विपक्षान्यतरान्यत्वमित्यर्थः, क्वचिदु-
पाध्याभास इति शेषः, तेनायोगोलकं धूमवदक्तेरित्यादावयोगोलक-
हृदान्यतरान्यत्वस्य सदुपाधित्वेऽपि न क्षतिः, 'पक्षेतेति पक्षेतर-
त्वविशिष्टसाध्याधारत्वमित्यर्थः, क्वचिदुपाध्याभास इति शेषः, तेनायो-
गोलकं धूमवदक्तेरित्यादावयोगोलकेतरत्वविशिष्टधूमवत्त्वादेः सदु-
पाधित्वेऽपि न क्षतिः । 'अत्रैव' प्रसिद्धानुमान एव, 'आभासत्वात्'
आभासत्वानपायात्, 'तत्तुल्यश्चेति पक्षेतरत्वघटितत्वेन तत्तुल्योद्धर्मा-
न्तरोऽपीत्यर्थः, क्वचिदुपाध्याभास इति शेषः । 'अत्रैव' प्रसिद्धानु-
मान एव, 'जह्यमिति पर्वतो वह्निमान् धूमादित्यादावुपाध्याभास-
त्वेनोद्धर्मात्यर्थः ।

इति श्रीमद्भग्वेत्थोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ
अनुमानाख्यद्वितीयखण्डे उपाध्याभासनिरूपणं, समा-
प्तोऽयमुपाधिवादः ।

इति श्रीमथुरानाथतर्कवागीश-विरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये
अनुमानाख्यद्वितीयखण्डरहस्ये उपाध्याभासनिरूपणरहस्यं, समाप्तमिदं
उपाधिवाटरहस्यं ।

अथ पक्षतापूर्वपक्षः ।

व्याप्त्यनन्तरं पक्षधर्मता निरूप्यते ।

तच्च न तावत् सन्दिग्धसाध्यधर्मात्वं पक्षत्वम्, सन्देहो

अथ पक्षतापूर्वपक्षरहस्यं ।

उपाधिं निरूप्य पक्षधर्मतां निरूपयितुं शिष्यावधानाय प्रतिजानीते, 'व्याप्त्यनन्तरमिति व्याप्तिनिरूपणानन्तरमित्यर्थः, क्वचित्तथैव पाठः, 'पक्षधर्मता' पक्षधर्मः पक्षपदस्य शास्त्रकारौघपरिभाषाविषयतावच्छेदकोऽनुमितिजनको धर्म इति यावत्, भावार्थस्याविवक्षितत्वात्, एतेन व्याप्ति-पक्षधर्मतयोरनुमित्यात्मकैककार्यानुकूलत्वमेव सङ्गतिरिति सूचितं^(१)। अनुकूलत्वञ्च कारण-कारणतावच्छेदकसाधारणं प्रयोजकत्वं, तच्च कारणतावच्छेदकव्यावृत्तान्यथासिद्धिचतुष्टयरहितत्वे^(२)

(१) तथाचात्र व्याप्तिज्ञानजन्याया अनुमितेः किमन्यत् कारणमिति जिज्ञासामादाय एककार्यानुकूलत्वस्य सङ्गतित्वमिति भावः ।

(२) न चात्र कारणतावच्छेदकव्यावृत्तान्यथासिद्धिसामान्याभावनिवेशेनैव सामञ्जस्ये चतुष्टयपदं व्यर्थमिति वाच्यं । अन्यथासिद्धित्वस्यानुगतस्याभावात् तत्तदन्यथासिद्ध्यभावकूटनिवेशस्यावश्यकतया कूटलाघवार्थमेव तदुपादानात् । एतेन तादृशान्यथासिद्धिराहित्यमात्रकथनेनैव सामञ्जस्ये नियतपूर्ववर्तित्वरूपविशेष्यदत्तं व्यर्थमिति पूर्वपक्षोऽपि मिरस्तः, अनियतपूर्ववर्तिगतान्यथासिद्ध्यभावघटितकूटनिवेशे कूटस्य गुह्यरीरतया महागौरवापत्तेरिति ।

हि न विशेषणं परामर्शपूर्वं लिङ्गदर्शन-व्याप्तिस्मरणा-
दिना तस्य नाशात् । नोपलक्षणम् अथावर्तकतापत्तेः ।

सति नियतपूर्ववर्तित्वं, तेन व्याप्तेः अनुमित्यजनकत्वेऽपि न क्षतिः, व्या-
प्तेर्विषयतासम्बन्धेन परामर्शनिष्ठकारणतावच्छेदकतया यथोक्तप्रयोज-
कत्वस्य तत्र सत्तात् । न चातीतानागतव्याप्तेः परामर्शादप्यनुमित्युदयात्
नियतपूर्ववर्तित्वघटितयथोक्तप्रयोजकत्वमपि तत्र नास्तीति वाच्यं ।
व्याप्तिसामान्ये तादृशप्रयोजकत्वस्यासत्त्वेऽपि सत्तावान्द्रव्यत्वादित्यादौ
नित्यसम्बन्धघटितव्याप्तिषु तत्सम्भवात् । न हि लिखिलव्याप्त्या समं
सङ्गतिरपेक्षिता । वस्तुतस्तु व्याप्तिप्रयोज्यानुमितिजनकत्वमेव पक्ष-
तायां व्याप्तेः सङ्गतिः, व्याप्तिप्रयोज्यत्वञ्च व्याप्त्यवच्छिन्नकारणताप्रतियो-
गिक-कार्यताश्रयत्वं^(१) । उपाधि-पक्षतयोरप्युद्भावनद्वारा^(२) विजयस्त-
ल्लणैककार्यानुकूलत्वमेव सङ्गतिः, यथा परकीयहेतावुपाधुद्भावेन
विजयस्तथा स्वीयहेतौ पक्षतोद्भावेऽपि विजयादिति भावः । 'तत्रेति,
तच्छब्दो निरूपणपरः, विषयत्वं सप्तम्यर्थः, अन्वयश्चास्य पक्षत्वमित्यनेन,

(१) तथाच लिखिलव्याप्त्या समं सङ्गतेरपेक्षितत्वेऽपि न क्षतिरिति भावः ।

(२) पक्षतानिरूपणे व्याप्तिनिरूपणानन्तर्यमिव उपाधिनिरूपणानन्त-
र्यमपि वर्तते, अतः पक्षतायां व्याप्तिनिरूपितसङ्गतिरिव उपाधि-
निरूपितसङ्गतिरपि सम्भवत्येव तदप्रदर्शनेन भणिकारस्य न्यूनतां
परिजिहीर्षुः मधुरानाथः 'उपाधिं निरूपयितुं' इत्यभिहितवान्,
इदानीं पक्षतायां व्याप्तिनिरूपितसङ्गतिं सङ्गमय्य उपाधिनिरूपित-
सङ्गतिं सङ्गमयति, 'उपाधि-पक्षतयोरप्युद्भावनद्वारेति ।

तथाच निरूपणविषयीभूतं पक्षत्वमिदं नेत्यर्थः^(१) पक्षत्वं पक्षपदपरि-
भाषाविषयतावच्छेदकोऽनुमितिजनको धर्मः, एवं सर्वत्र । 'सन्दिग्धसा-
ध्यधर्मत्वमिति सन्दिग्धं साध्यं येन रूपेण तत्सन्दिग्धसाध्यं सन्देह-
विशेष्यतावच्छेदकमिति यावत्, तादृशधर्मत्वमित्यर्थः, तथाच विशे-
ष्यतावच्छेदकतासम्बन्धेन साध्यसन्देहवत्त्वं पक्षत्वमिति फलितं^(२) । न चैवं

(१) पक्षत्वमिदं नेत्यन्वय इति ग० ।

(२) अत्र पर्वतो वज्रिमान् वा भूतलं घटवन्न वेति क्रमिकसंशयोत्तरं
पर्वतो वज्रिमान् भूतलं घटवदिति समूहात्मनानुमितेर्विशेष्यता-
वच्छेदकतासम्बन्धेन भूतलत्वे सत्त्वेन व्यभिचारवारणाय साध्यतावच्छे-
दकावच्छिन्नप्रकारतानिरूपितविशेष्यतावच्छेदकतासम्बन्धेन वज्रानु-
मितिं प्रति वज्रित्वावच्छिन्नकोटिताख्यप्रकारतानिरूपितविशेष्य-
तावच्छेदकतासम्बन्धेन वज्रिसंशयस्य कारणत्वं, अथवा वज्रित्वाव-
च्छिन्नविधेयताकत्वविशिष्टवज्रानुमितिं प्रति समानविशेष्यताव-
च्छेदकताप्रत्ययसत्या कारणत्वं वाच्यं । अथ सामाधिकरण्येन वज्रि-
साध्यकस्थले सामानाधिकरण्येन वज्रभावकोटिकावच्छेदावच्छेदेन
वज्रिकोटिकसंशयस्य पक्षतात्वापत्तिरिति चेत् । न । सामानाधि-
करण्येन वज्रानुमितिं प्रति वज्रभावत्वावच्छिन्नप्रकारतानिरूपित-
सांसर्गिकविषयतानिरूपित-निरूपकत्वविषयतानिरूपित-प्रतियोगि-
त्वविषयतानिरूपित-वज्रभावविषयतानिरूपिताभावविषयतानिरू-
पित-प्रतियोगित्वविषयतानिरूपिताभावविषयतानिरूपित-वृत्तित्व-
विषयतानिरूपिताधिकरणविषयतानिरूपिता या धर्मितावच्छेद-
कनिष्ठविषयता सामानाधिकरण्यसंसर्गेण तद्विशिष्टा या विशेष्यता-
वच्छेदकता तत्सम्बन्धेन पक्षतायाः कारणत्वस्य विवक्षितत्वात् । ननु

पक्षतायाः पक्षतावच्छेदकनिष्ठत्वमेव वृत्तं न तु पक्षनिष्ठत्वमिति वाच्यं। अनुमितिकारणीभूतपक्षपदपरिभाषाविषयतावच्छेदकधर्म-
स्यास्य पक्षपदप्रवृत्तिनिमित्तत्वाभावेन पक्षतावच्छेदक-पक्षयोः सत्त्वास-
त्त्वेऽपि क्षतिविरहात्, अनुमित्युद्देश्यत्वस्यैव पक्षपदप्रवृत्तिनिमित्तत्वात्।
न च तथापि समानविशेष्यतावच्छेदकत्वप्रत्यासत्त्या साध्यसन्देहवत्त्वस्या-
नुमितिहेतुत्वे साध्यं पक्षे न वेति साध्यविशेष्यकसन्देहस्यासङ्ग-
ह इति वाच्यं। प्रसिद्धसाध्यकानुमितेः पक्षविशेष्यकत्वनियमेनानुमितिसमा-
नविशेष्यतावच्छेदकतया पक्षतावच्छेदकावच्छिन्नविशेष्यकसाध्यसन्देह-
वत्त्वस्यैव तत्रानुमितिहेतुत्वेन तादृशसन्देहस्यासङ्ग-
हस्यैवोचितत्वात्। न चैवं केवलान्वयिसाध्यके साध्याभावाप्रसिद्ध्या पक्षतावच्छेदकावच्छि-
न्नविशेष्यकसाध्यसन्देहासम्भवात् अनुमितिर्न स्यादिति वाच्यं। त-
त्रापि खण्डशः प्रसिद्ध्या अभावान्तरे प्रतियोगितासम्बन्धेन साध्यप्रका-
रकस्य साध्यसन्देहस्य पक्षे सम्भवात्। न च तथापि पृथिव्यामितरभेद-

तथापि पर्वतो वज्रिमान् इत्यनुमितौ जातिमान् वज्रिमान्न वेति संशयस्य पक्षतात्वापत्तिर्विशेष्यतावच्छेदककृतासम्बन्धेन पर्वतत्वेऽपि वज्रिसंशयस्य सत्त्वादिति चेत्। न। विशेष्यतावच्छेदकतापर्याप्त-
न्युयोगितावच्छेदकत्वसम्बन्धेनानुमितिं प्रति तादृशावच्छेदकत्वपर्याप्त-
न्युयोगितावच्छेदकत्वसम्बन्धेन कारणत्वस्य विवक्षितत्वात्। न च
रक्तदण्डवान् वज्रिमान् न वेति संशयसत्त्वे दण्डरक्तवान् वज्रिमानि-
त्यनुमित्यापत्तिरिति वाच्यं। बुद्धिविषयत्वरूपस्यैव समुदायत्वस्यानु-
योगितावच्छेदकत्वात् तस्य च बुद्धिभेदेन भिन्नत्वान्नानुपपत्तिरिति
ध्येयम्।

इत्याद्यप्रसिद्धसाध्यविशेष्यकानुमितिस्थले पक्षविशेष्यकसाध्यसन्देहा-
सम्भवः इतरत् पृथिवीनिष्ठान्योन्याभावप्रतियोगि न वेति सन्देहस्य
पक्षविशेष्यकसाध्यसन्देहत्वाभावादिति वाच्यं । साध्यविशेष्यकानुमि-
तौ साध्यज्ञानाभावस्यैव पक्षतात्वात्, अत एव उच्छृङ्खलसाध्यज्ञान-
सत्त्वेऽपि न साध्यविशेष्यकानुमितिः किन्तु साध्यप्रकारिकैवेति न
कायनुपपत्तिः ।

भट्टाचार्यान्तु सन्दिग्धः साध्यरूपो धर्मो यस्य पुरुषस्य तत्त्व-
मिति वज्रव्रीहिः, धर्मपदञ्च स्वरूपकथनं, तथाच समवाय-
सम्बन्धेन साध्यसन्देहवत्त्वं पक्षत्वमित्यर्थः, अनुमितिजनकस्यास्य
पक्षपदप्रवृत्तिनिमित्तत्वाभावेन पक्षानिष्ठत्वेऽपि चतिविरहात्, साध्य-
सन्देहपदञ्च पक्षतावच्छेदकावच्छिन्नविशेष्यक-साध्यतावच्छेदकसम्बन्ध-
संसर्गक-साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रकारकनिर्णयनिवर्तनीयसंशयपरं,
तेन पक्षः साध्यवान्न वा, साध्यं पक्षे न वा, साध्यं पक्षवृत्ति न वा,
साध्यं पक्षनिष्ठाभावप्रतियोगि न वेत्यादीनां सर्वेषां सन्देहानाम-
प्रसिद्धसाध्यकस्थले इतरत् पृथिवीनिष्ठान्योन्याभावप्रतियोगि न
वेत्यादिसाध्यप्रतियोगिविशेष्यकसन्देहानाञ्च सङ्ग्रहः, सन्देहपक्ष-
तावादिनामेतदन्यतमसन्देहादेवानुमितिस्वीकारात् । न च साध्यं
पक्षे न वेत्यादिसंशयो न तादृशनिर्णयनिवर्त्यः समानप्रकारक-
निर्णयस्यैव प्रतिबन्धकत्वादिति कुतस्तेषां सङ्ग्रह इति वाच्यं । सन्दे-
हपक्षतावादिनां प्राचां भिन्नप्रकारकनिर्णयस्यापि प्रतिबन्धकत्वात् ।
साध्यतावच्छेदकसम्बन्धसंसर्गकेत्युपादानात् साध्यतावच्छेदकसम्बन्धेन
निर्णयदशायां सम्बन्धान्तरेण सन्देहसत्त्वेऽपि न पक्षत्वं, तादृशनिर्णय-

निवर्त्तनीयत्वञ्च तादृशनिर्णयत्वावच्छिन्नप्रतिबन्धकतानिरूपितप्रतिब-
ध्यत्वं, तेन पर्वतो वज्जिमान् घटवांश्चेति निर्णयनिवर्त्यस्य पर्वतो घट-
वान्न वेति संशयस्य, पर्वतो वज्जिमान् वज्जीरूपवांश्चेति समूहालम्बन-
निर्णयनिवर्त्यस्य वज्जीरूपवान्न वेति शब्देहस्य वा^(१) पर्वतो वज्जिमान्
इत्याद्यनुमितौ न पक्षतात्वं, प्रतिबध्यत्वञ्च पक्षतावच्छेदकाघटकतया
या साध्यतावच्छेदकविशिष्टविषयिता तद्वाप्यं ग्राह्यं, तेन पर्वतो वज्जि-
व्याप्यधूमवान् पर्वतो वज्जभावाव्याप्यजलत्ववान् इत्याद्यनुमितौ पर्वतो
वज्जिमान्न वेति संशयस्य न पक्षतात्वं, वज्जिव्याप्यधूमकालीनः पर्वतो व-
ज्जिव्याप्यधूमवान् इत्याद्यनुमितौ वज्जिव्याप्यधूमकालीनः पर्वतो वज्जिमान्न
वेति संशयस्य पक्षतात्ववारणाय पक्षतावच्छेदकाघटकतयेति विषयि-
ताविशेषणं^(२), संशयत्वेनोपादानञ्च बाधनिश्चयस्यापि पक्षविशेष्यकमा-

(१) तादृशनिर्णयनिवर्त्यत्वे सति साध्यविषयकसंशयत्वं पक्षतात्वमित्युक्तौ
पर्वतो वज्जिमानित्यनुमितौ पर्वतो घटवान्न वेति संशयस्य पक्ष-
तात्ववारणसम्भवात् स्थलान्तरानुसरणमिति तात्पर्यं ।

(२) नन्यतरत् पृथिवीनिष्ठान्योन्याभावप्रतियोगि न वेति संशयस्या-
सङ्गः तत्प्रतिबध्यतायाः साध्यतावच्छेदकविशिष्टविषयिताव्याप्यत्व-
विरहात् । न चैतरभेदादिसाध्यकपक्षतालक्षणे तन्न निवेश्यमिति
वाच्यं । ऋदे धूमव्यापकाभाव इत्याद्यनुमितौ ऋदो धूमवान्न वेति संश-
यस्य पक्षतात्वापत्तेः, एतदोषवारणाय धूमव्यापकाभावरूपाप्रसिद्ध-
साध्यकपक्षतालक्षणे साध्यविषयिताव्याप्यत्वनिवेशे धूमव्यापकं ऋद-
निष्ठाभावप्रतियोगि न वेति संशयस्यासंग्रहापत्तेः इति चेत् । न ।
तत्र पक्षतावच्छेदकाघटकसाध्यतावच्छेदकविशिष्टविषयिताव्याप्यत्व-

दलेन बाधनिश्चयप्रतिबध्यतावच्छेदकविषयिताव्याप्यत्वस्य विवक्षणात् । न च संशयमात्रस्यासंग्रहः तादृशप्रतिबध्यत्वस्य बाधनिश्चयेऽपि सत्त्वात् तत्र बाधनिश्चयप्रतिबध्यतावच्छेदकविषयिताविरहादिति वाच्यं । विरोधिविषयकनिश्चयान्यज्ञानवृत्तित्वविशिष्टप्रतिबध्यतायां व्याप्यत्वनिवेशात् । न च तथपि धूमाभावादिसाध्यकस्थले तादृशज्ञानवृत्तित्वविशिष्टप्रतिबध्यत्वस्य महानसीयधूमवान्न वेति संशयसाधारणत्वात् तत्र बाधनिश्चयप्रतिबध्यतावच्छेदकविषयिताविरहादसंग्रह इति वाच्यं । विरोधिविषयकनिश्चयभेदकूटरूपविरोधिविषयकनिश्चयान्यत्वशरीरे धूमसामान्याभावाप्रकारकत्वे सति धूमत्वनिष्ठावच्छेदकताकप्रकारतानिरूपकत्वरूपनिश्चयत्वनिवेशात् तादृशनिश्चयत्वावच्छिन्नभेदस्य तत्रासत्त्वात् । नद्यास्तु साध्यविषयतापदेन साध्यतावच्छेदकविशिष्टविषयताया विवक्षणात् वैशिष्ट्याच्च स्वावच्छिन्नत्व-स्वाश्रयीभूताभावप्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नत्वान्यतरसम्बन्धेन, तथाच न इतरत् एधिवीनिष्ठान्योन्याभावप्रतियोगि न वेत्यादि-संशयासङ्ग्रहः उक्तसंशयीयेतरत्वावच्छिन्नविषयताया उक्तान्यतरसम्बन्धेन साध्यतावच्छेदकविशिष्टत्वात् साध्यतावच्छेदकविशिष्टविषयिताव्याप्यत्वस्य प्रतिबध्यतायां अक्षतेः इत्याहुः ।

अथ पक्षतावच्छेदकावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपित-साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रकारत्वावच्छिन्नप्रतिबन्धकतानिरूपित-प्रतिबध्यताशालि-संशयत्वनिवेशेनैव सामञ्जस्ये प्रतिबन्धकतायां कथं निश्चयत्वावच्छिन्नत्वनिवेशः पर्वतो वज्रिमानित्यनुमितौ महानसीयवज्रिमान्न वेति संशयवारणन्तु प्रकारतावच्छेदकतापर्याप्तिनिवेशेनैव । न च भूतलं वज्रिमत्पर्वतवन्न वेति संशयस्य सङ्ग्रहापत्तिरिति वाच्यं । मुख्यविशेष्यतानिवेशेनैव तद्वारणात् । न च वज्रिमत्पर्वतो घटवान्न वेति संशयस्य संग्रहापत्तिरिति वाच्यं । अवच्छेदकतानात्मकप्रकारता-

निवेशात् इति चेत् । न । पर्वतो वज्रिमानित्यनुमितौ पर्वतो वज्रि-घटोभयवान् न वेति संशयस्य पक्षतात्वापत्तेः पर्वतो वज्रि-घटो-भयाभाववानिति बुद्धिं प्रति पर्वतो वज्रि-घटोभयवानिति ज्ञानस्यैव एकत्र द्वयमिति रीत्या पर्वतो वज्रि-घटवान् इति ज्ञानस्यापि प्रति-बन्धकत्वं तत्र च तादृशबुद्धित्वावच्छिन्नं प्रति तादृशज्ञानद्वयस्य लाघ-वात् वज्रित्वावच्छिन्नप्रकारतानिरूपित-पर्वतत्वावच्छिन्नविषयतानि-रूपित-घटत्वावच्छिन्नप्रकारताशानिनिश्चयत्वेनैकरूपेण प्रतिबन्ध-कत्वकल्पनात् । न च साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रकारतानिरूपितत्वं विशेष्यतायां निवेश्यं इति वाच्यं । महागौरवापत्तेरिति ध्येयम् ।

अत्र पक्षतावच्छेदकाघटकत्वं पक्षतावच्छेदकावच्छिन्नमुख्यविशेष्य-त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदप्रतियोगितानवच्छेदकत्वरूपं, अवच्छेद-कत्वञ्च निरूपकत्वसम्बन्धावच्छिन्नं ग्राह्यं अतो न प्रमेयपक्षकस्थले तादृशभेदाप्रसिद्धिः, मुख्यविशेष्यतानिवेशनन्तु वज्रिर्वज्रिमानित्यनु-मितौ पक्षतावच्छेदकावच्छिन्नविषयितावच्छेदप्रतियोगितानवच्छेदक-साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नविषयत्वाप्रसिद्ध्या वज्रिर्वज्रिमान्न वेति संश-यस्य पक्षतात्वानुपपत्तिवारणाय इति यदि वाच्यं तदा वज्रिव्याप्यो वज्रिव्याप्यवानित्यनुमितौ वज्रगभावः वज्रिव्याप्ये न वेति संशयस्य संग्रहापत्तिः, अतः पक्षतावच्छेदकविशिष्टवैशिष्ट्यावगाहिबुद्धित्वाव-च्छिन्नजन्यतानिरूपित-जनकतावच्छेदकप्रकारताभिन्नत्वरूपं । न च तथापि वज्रिव्याप्यो वज्रिव्याप्यवानित्यनुमितौ वज्रिव्याप्यो वज्रिमान्न वेति संशयस्य संग्रहापत्तिः वज्रिव्याप्यत्वावच्छिन्नविशेष्यतायाः पक्षतावच्छेदकाघटकत्वादिति वाच्यं । स्वभिन्नत्व-स्वसामानाधिकर-ण्योभयसम्बन्धेन पक्षतावच्छेदकावच्छिन्नविषयताविशिष्टं यत् साध्य-तावच्छेदकविशिष्टविषयित्वं तद्व्याप्यत्वस्यैव प्रकृते निवेशात् । न च तथापि वज्रिर्वज्रिमानित्यनुमितौ वज्रिर्वज्रिमान्न वेति संशयस्या-

संग्रहापत्तिः एकरूपावच्छिन्नप्रतिबध्यत्वस्य प्रतिबध्यभेदेऽप्यैक्यमते
भूतत्वं वङ्गभाववद्ब्रह्मिन्न वेति ज्ञानेऽपि तत्प्रतिबध्यतासत्त्वेन तत्र
पक्षतावच्छेदकाघटकसाध्यतावच्छेदकविशिष्टविषयिताया असत्त्वेन
व्याप्यत्वविरहादिति वाच्यं । स्वावच्छिन्नत्व-स्वसामानाधिकरण्योभय-
सम्बन्धेन मुख्यविशेष्यताविशिष्टं यत्प्रतिबध्यत्वं तत्रैव व्याप्यत्वनि-
वेशात् अत्र तु विशिष्टाधिकरणतानभ्युपगमादित्यवधेयं । एतेन
साध्यतावच्छेदकविषयिताया व्याप्यत्वं कथं न निवेशनीयं इति पूर्व-
पक्षोऽपि निरस्तः । वङ्गिर्वङ्गिमानित्यनुमितौ वङ्गिर्वङ्गिमान्न वेति
संशयस्यासंग्रहापत्तेः तदीयसाध्यतावच्छेदकविषयितायाः पक्षतावच्छे-
दकाघटकत्वादिति । वस्तुतस्तु साध्यतावच्छेदकविशिष्टविषयित्वपदे-
नात्र साध्यतावच्छेदकतावच्छेदकावच्छिन्नविषयित्व-साध्यतावच्छेदका-
वच्छिन्नविषयित्वान्यतरमेव विवक्षणीयं अन्यथा दण्डिमान् दण्डि-
संयोगादित्यत्र दण्डिमान्न वेति संशयस्यासंग्रहापत्तिः तत्प्रतिबध्य-
त्वस्य दण्डित्वेन घटाद्यवगाहिदण्ड्यभाववानिति ज्ञानसाधारणतया
तत्र च साध्यतावच्छेदकविशिष्टविषयिताया असत्त्वेन व्याप्यत्व-
विरहात्, साध्यतावच्छेदकविशिष्टविषयितापदस्य तत्रैव तात्पर्य-
मिति ।

अत्र साध्यविषयित्वावच्छिन्नत्वमनिवेश्य साध्यविषयिताव्याप्यत्व-
निवेशनन्तु वङ्गिस्थाप्यसाध्यकस्थले वङ्गिमान्न वेति संशयस्य पक्षतात्व-
वारणाय, तथाहि वङ्गिस्थाप्यवत्तानिश्चयस्य वङ्गभावप्रकारकज्ञान-
त्वेन प्रतिबध्यत्वं वङ्गभावप्रकारकयावज्ज्ञाने एकमेव कल्प्यते लाघ-
वात् न तु प्रतिबध्यभेदेन प्रतिबध्यताया नानात्वं, तथाच वङ्गिव्याप्या-
त्मकवङ्गभाववान् इति ज्ञाने वङ्गिस्थाप्यवत्तानिश्चयप्रतिबध्यत्वस्य
साध्यविषयित्वावच्छिन्नत्वादित्यपत्तिः, तत्र वङ्गभावत्वावच्छिन्नविष-
यिताया एव वङ्गिस्थाप्यत्वावच्छिन्नत्वात्, व्याप्यत्वनिवेशे च केवलवङ्ग-

वच्छेदकविषयिताशून्यत्वोभयसम्बन्धेन, तथाच वङ्गाभाववत्पर्वताभा-
 वत्तावच्छिन्नविषयतान्तःपातिवङ्गाभावत्तावच्छिन्नविषयतायाः साध्य-
 वत्पक्षग्रहप्रतिबन्धकतावच्छेदकत्वेऽपि तादृशावच्छेदकत्वं न प्रकार-
 तात्तावच्छिन्नमपि तु अवच्छेदकतात्तावच्छिन्नमेवेति नोक्तसंशयस्य
 पक्षतात्तापत्तिः । न च अवच्छेदावच्छेदेन वङ्गिसाध्यकस्थले अथा-
 प्यवृत्तित्वज्ञानकाले अनाहार्यस्य सामानाधिकरण्येन वङ्गावगाह्य-
 वच्छेदावच्छेदेन वङ्गाभावावगाहिसमुच्चये अतिव्याप्तिरिति वाच्यं ।
 साध्य-तदभावान्यतरधर्मिकाव्याप्यवृत्तित्वज्ञानविशिष्टान्यत्वस्य स्वा-
 तन्त्र्येण विशेषणात् उक्तसमुच्चयस्य वारणसम्भवात्, अथाप्यवृत्ति-
 त्वज्ञानवैशिष्ट्यञ्च स्वविशिष्टक्षणोत्पत्तिकत्व-स्वसामानाधिकरण्योभय-
 सम्बन्धेन स्ववैशिष्ट्यञ्च स्वाव्यवहितोत्तरत्व-स्वाश्रयत्वान्यतरसम्बन्धेन,
 संशय-समुच्चययोर्वैलक्षण्याय संशये संसर्गांशे विरोधमानस्य भट्टा-
 चार्य्यसम्मत्तत्वात् अथाप्यवृत्तित्वज्ञानकाले संशयोत्पादासम्भवात्
 संशयस्याव्याप्यवृत्तित्वज्ञानविशिष्टान्यत्वं न तु समुच्चयस्येति न कोपि
 दोष इति सुधीभिर्विभावनीयं । विरोधिविषयताशून्यत्वमात्रनि-
 वेशे भट्टाचार्य्यमते संशयासंग्रहः स्यादतो विरोधिविषयकनिश्चया-
 न्यत्वपर्यन्तानुसरणं । पक्षविशेष्यक-साध्यप्रकारकनिश्चयो भवतु
 इतीच्छायाः पक्षतात्ववारणाय चरमं ज्ञानपदमिति ।

अथात्र निश्चयधर्मिकाप्रामाण्यसंशयाभावव्यक्तीनां कारणताव-
 च्छेदककोटौ निवेशनैव सन्दिग्धाप्रामाण्यकबाधनिश्चयवारणसम्भवात्
 कृतं विरोधिविषयकनिश्चयान्यत्वनिवेशेनेति चेत् । न । यद्यदप्रामा-
 ण्यनिश्चयसत्त्वे साध्यवृत्तानिश्चयनिवर्त्तनीयसंशयसत्त्वे नानुमितिः
 तत्तदप्रामाण्यनिश्चयाभावानां पक्षताघटकतया बाधनिश्चयधर्मिका-
 नन्ताप्रामाण्यज्ञानाभावस्य पक्षताघटत्वमपेक्ष्य साधवात् निरुक्तवि-
 रोधिविषयकनिश्चयान्यत्वनिवेशस्यैवौचित्यात् इति विभावनीयं ।

मितेरपि पक्षतात्वापत्तिरिति वाच्यं । सन्देहपक्षतावादिनामनु-
मितौ सिद्धेरप्रतिबन्धकत्वात् यथोक्तनिश्चयान्यप्रत्यक्षं वा संशयपदेन
विवक्षणीयमतो न काप्यनुपपत्तिरित्याहुः ।

केचित्तु सन्दिग्धं साध्यं येन रूपेण इत्युक्तव्युत्पत्त्या यत्साध्यसन्देहवि-
शेष्यतावच्छेदकं तदेव धर्मा यस्य इति वज्रव्रीहिणा साध्यसन्देहविशेष्य-
तावच्छेदकधर्मवत्त्वमित्यर्थः, यद्वा सन्दिग्धं साध्यं धर्मा यस्येति व्युत्प-
त्त्या सन्दिग्धसाध्यवत्त्वमित्यर्थः, इत्यञ्च पक्षपदप्रवृत्तिनिमित्तत्वेऽपि
अस्य न पक्षतावच्छेदक-पक्षयोरतिप्रसक्त्यप्रसक्तौ इत्याहुः । तदसत् आद्ये
पर्वतत्वादिरूपेण यत्र महानसादेः पक्षत्वं तत्राव्याप्यापत्तेः, पक्षताया-
अनुमितिजनकत्वेनातीतादौ पक्षे^(१) अनुमित्यभावापत्तेश्च । द्वितीये
हृदो वज्रिमान् धूमादित्यादौ बाधितेऽव्याप्यापत्तेः अतीतादौ साध्ये
ऽनुमित्यभावापत्तेश्च ।

अन्ये तु सन्दिग्धः साध्यरूपोधर्मा यत्र तत्त्वमित्यर्थः, यद्वा
सन्दिग्धं साध्यं यत्र तादृशधर्मत्वमित्यर्थः, मतेद्वय एव धर्मपदं
स्वरूपकथनं न तु विवक्षितं प्रयोजनाभावात् आकाशादेः साध्यत्वे
पक्षत्वे चाव्याप्यापत्तेश्च, तथाच विशेष्यतासम्बन्धेन साध्यसन्देहवत्त्वं
पक्षत्वमिति तु फलितमित्याहुः । तदसत् विशेष्यतासम्बन्धेन साध्य-
सन्देहस्यानुमितिहेतुत्वे पर्वतत्वरूपेण यत्किञ्चित्पर्वते साध्यसन्देहात्
तेन रूपेण पर्वतान्तरेऽनुमित्यनुदयापत्तेः रूपान्तरेण साध्यसन्देहात्
निर्णीतरूपेणाप्यनुमित्यापत्तेश्च । यद्यपि साध्यसन्देहस्य पक्षतात्वे यत्र
साध्यसन्देहानन्तरं स्मरणादिरूपसिद्ध्यात्मकः परामर्शस्तत्रानुमित्या-

(१) अतीतादौ पक्षतावच्छेदक इति क० ।

धनिर्णयप्रतिबध्यत्वान्तस्य पक्षतात्ववारणाय । न च बाधनिर्णयस्य पक्ष-
 तात्वेऽपि सामान्यतोविशिष्टबुद्धिमात्रं प्रति बाधनिश्चयस्य प्रतिबन्धक-
 त्वादेव तत्सत्त्वेऽप्यनुमित्यभावोपपत्तिरिति वाच्यं । बाधनिश्चये पक्ष-
 ताव्यवहाराभावात् सन्धिग्धाप्रामाण्यकबाधनिश्चयसत्त्वे सिद्धात्मक-
 परामर्शादनुमित्यापत्तेश्च । अगृहीताप्रामाण्यकत्वेन तादृशनिर्णय-
 निवर्त्यविशेषणे सन्धिग्धाप्रामाण्यकसाध्यसन्देहादनुमित्यनुत्पादापत्तेः ।
 न च सामान्यतः संशयत्वेनोपादानेऽपि वक्ष्यभाववान् पर्वतो घटवान्-
 वेति घटादिसन्देहात्मकबाधनिश्चयस्य पर्वतो वल्लिमानित्यनुमितौ
 पक्षतात्वापत्तिः साध्यसन्देहत्वेनोपादाने च नोक्तसंशयानां सङ्ग्रह-
 इति वाच्यं । संशयपदेन पक्षतावच्छेदकविशिष्टपक्षविशेष्यक-साध्य-
 तावच्छेदकविशिष्टसाध्यवत्त्वग्रहत्वावच्छिन्नविरोधिविषयकनिश्चयान्य-
 ज्ञानस्य विवक्षितत्वात्^(१) । न चैवं तादृशनिर्णयप्रतिबध्यताया अनु-

भाववानिति 'ज्ञानेऽपि प्रतिबध्यतायाः सत्त्वात् तत्र साध्यविषयिता-
 विरहेण नोक्तातिव्याप्तिः । केचित्तु यत्र क्षेत्रविशेषस्य अङ्कुरविशेष-
 अन्यस्य पक्षत्वं अङ्कुरविशेषस्य साध्यत्वं तदङ्कुराभाववत् तत्क्षेत्रमिति
 कस्यापि भ्रमो न जातः तत्र विषयितासम्बन्धेन तदङ्कुराभाववत्तत्-
 क्षेत्रविशिष्टज्ञानत्वेनैव प्रतिबध्यत्वात् तत्र साध्यविषयित्वावच्छिन्न-
 प्रतिबध्यत्वाप्रसिद्ध्या तत्क्षेत्रं तदङ्कुरवन्न वेति संशये अत्याप्तिः, अस्म-
 ऋते तु तत्र साध्यविषयिताव्याप्यत्वसत्त्वान्नात्याप्तिः । अतएव जग-
 दीशेन एतदङ्कुरमनङ्गीकृत्यैव साध्यविषयित्वावच्छिन्नत्वं प्रतिबध्यतायां
 निवेशितं इति विभावनीयं ।

(१) अत्र विरोधिविषयकनिश्चयत्वं पक्षतावच्छेदकविशिष्टपक्षविशेष्य-
 कसाध्यतावच्छेदकविशिष्टसाध्यवत्ताग्रहत्वावच्छिन्नप्रतिबध्यतानिरू-

पितप्रतिबन्धकतावच्छेदकविषयिताविशिष्टान्यज्ञानत्वं, वैशिष्ट्यश्च
 स्वावच्छिन्नप्रतिबन्धतानिरूपितप्रतिबन्धतावच्छेदकविषयिताशून्यत्व-
 स्वनिरूपकत्वोभयसम्बन्धेन । न चैवं अवच्छेदावच्छेदेन वज्रः साध्यत्वे
 सामानाधिकरण्येन सन्दिग्धाप्रामाण्यकबाधनिश्चयात्मकस्य सामा-
 नाधिकरण्येन वज्रिकोटिकस्य अवच्छेदावच्छेदेन वज्रभावकोटिकस्य
 संशयस्यासंग्रहः निरुक्तोभयसम्बन्धेन वज्रमत्त्वग्रहप्रतिबन्धकतावच्छे-
 दकं यत् सामानाधिकरण्येन वज्रभावविषयित्वं तद्वत्त्वस्य सत्त्वा-
 दिति वाच्यं । स्वावच्छिन्नप्रतिबन्धतानिरूपितप्रतिबन्धकतावच्छेदक-
 विषयित्वावच्छिन्नप्रतिबन्धकतानिरूपितप्रतिबन्धतावच्छेदकविषयि-
 ताशून्यत्व-स्वावच्छिन्नप्रतिबन्धतानिरूपितप्रतिबन्धकतावच्छेदकविष-
 यितावत्त्वोभयसम्बन्धेन साध्यवत्त्वग्रहत्ववत्त्वस्यैव तादृशग्रहविरोधि-
 विषयकनिश्चयत्वप्रदेन विवक्षणीयत्वात् उक्तसंशये अवच्छेदावच्छेदेन
 वज्रभावविषयित्वावच्छिन्नप्रतिबन्धकतानिरूपितप्रतिबन्धतावच्छेद-
 कविषयित्वस्यैव सत्त्वेन साध्यवत्त्वग्रहत्वावच्छिन्नप्रतिबन्धतानिरूपित-
 प्रतिबन्धकतावच्छेदकविषयित्वावच्छिन्नप्रतिबन्धकतानिरूपितप्रतिब-
 ण्यतावच्छेदकविषयिताशून्यत्वविरहान्न तत्राव्याप्तिः । न च पर्वतो
 वज्रमानित्यत्र वज्रभाववत्पर्वतवान् न वेति संग्रहस्य पक्षतात्वापत्तिः
 तादृशसंशयस्य साध्यवत्त्वग्रहप्रतिबन्धकतावच्छेदकीभूतवज्रभाव-
 वत्पर्वताभावत्वावच्छिन्नविषयतान्तःपातिवज्रभावत्वावच्छिन्नविषय-
 त्वावच्छिन्नप्रतिबन्धकतानिरूपित-वज्रभाववत्पर्वतवत्ताग्रहत्वाव-
 च्छिन्नप्रतिबन्धतायाः सत्त्वेन सद्योक्तविरोधिविषयकनिश्चयान्यत्व-
 स्यादन्तेरिति वाच्यं । तादृशग्रहत्वावच्छिन्नप्रतिबन्धतानिरूपित-प्रति-
 बन्धकतानिरूपित-प्रकारतात्वावच्छिन्नावच्छेदतावत्प्रकारताविशिष्टा-
 न्यत्वस्य विवक्षणीयत्वान् वैशिष्ट्यश्च स्वनिरूपकत्व-स्वनिरूपप्रकार-
 तात्वावच्छिन्नावच्छेदकतानिरूपितप्रतिबन्धकतानिरूपितप्रतिबन्धता-

नापि साधक-बाधकप्रमाणाभावः, उभयाभावस्य प्रत्ये-

पत्तिः, मननादिस्थले साध्यनिश्चयदशायां सिषाधयिषयाप्यनुमित्य-
नुदयापत्तिश्च, तथापि तदुपेक्ष्य स्फुटतरं दोषमाह, 'सन्देहो
हीति, 'न विशेषणमिति न तत्तत्पुरुषीयत्वविशेषितः सन् समान-
विशेष्यतावच्छेदकताप्रत्यासत्त्या अनुमितिकारणमित्यर्थः, भट्टाचार्य्य-
मते 'न विशेषणं' न समवायघटितसामानाधिकरण्यप्रत्यासत्त्या का-
रणमित्यर्थः, 'परामर्शपूर्वमिति, लिङ्गविशेष्यकव्याप्तिप्रकारकज्ञानो-
त्पत्तिसमय इति शेषः, 'लिङ्गदर्शनेति लिङ्गेन्द्रियसन्निकर्षेणेत्यर्थः,
'आदिपदात् तत्समानकालोत्पन्नसंशयजन्यकोटितावच्छेदकप्रकार-
कसंस्कारादिपरिग्रहः, 'तस्य नाशादिति तस्य क्वचिन्नाशादित्यर्थः,
तेन यत्र संशयाव्यवहितोत्तरमेव स्मरणाद्यात्मकोविशिष्टपरामर्शस्तत्र
परामर्शक्षणे सन्देहसत्त्वसम्भवेऽपि नासङ्गतिः । न च परामर्शक्षणे
सन्देहस्यासत्त्वेऽनुमितिरपि नोत्पद्यत इति वाच्यं । अनुभवविरो-
धादिति भावः । 'नोपलक्षणमिति न तु तत्पुरुषीयत्वाद्यविशेषितः
सन् निरुक्तप्रत्यासत्त्या अनुमितिजनकमित्यर्थः, भट्टाचार्य्यमते च 'नो-
पलक्षणं' न कालिकसामानाधिकरण्यमात्रप्रत्यासत्त्या कारणमित्यर्थः,
'अव्यावर्तकतापत्तेरिति पक्षे साध्यनिश्चयदशायामनुमितेरव्यावर्त-
कतापत्तेरित्यर्थः, तदानीमपि पुरुषान्तरीयसाध्यसन्देहसम्भवादिति
भावः । इदमुपलक्षणं परासन्दिग्धसाध्यकस्थले परामर्शपूर्वं तदुत्प-
त्तिश्चमये वा सन्देहनाशे अनुमित्यनुदयापत्तिश्च तत्र पुरुषान्तरीय-
साध्यसन्देहस्याप्यभावादिति बोध्यं ।

'साधक-बाधकेति साधकप्रमाणं पक्षे साध्यनिश्चयः बाधकप्र-

कसत्त्वेऽपि सत्त्वात् । नाप्यभावद्वयं तथा, बाधकप्रमा-
णाभावस्य व्यर्थत्वात् हृदादेः पक्षत्वेऽपि बाध-हेत्व-
सिद्धादेरावश्यकत्वेनानुमित्यनुत्पादात् । नापि साध-

माणं पक्षे साध्याभावनिश्चयः तदभाव इत्यर्थः, न तु बुष्णप्रत्यया-
र्थविवक्षितः, तथा सति सर्वत्रानुमित्यात्मकसाध्यनिश्चयजनकप्रमा-
णस्यानुमानस्य साध्य-तद्बाधनिश्चयजनकप्रमाणस्यात्मनःसंयोगादेः
सत्त्वात् अनुमित्यनुत्पादापत्तेः । न च केवलान्वयिनि साध्याभाव-
निश्चयाप्रसिद्धा तदभावस्य हेतुत्वासम्भव इति वाच्यं । खण्डशः
प्रसिद्धा अभवान्तरे साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्व-
सम्बन्धेन साध्यभ्रमरूपस्य साध्याभावनिश्चयस्य तत्रापि सम्भवात् । न
च तथापि बाधकप्रमाणपदस्य पक्षविशेष्यकसाध्याभावनिश्चयरूप-
बाधनिश्चयपरत्वे साध्यं पक्षनिष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगीति बाध-
निश्चयस्यासंग्रह इति वाच्यं । तस्य भिन्नप्रकारकतया अनुमित्य-
प्रतिबन्धकत्वात् असंग्रहस्यैवोचितत्वात्, तत्सत्त्वे क्वचिदनुमित्यनुत्पा-
दस्य तदुत्तरं पक्षविशेष्यक-साध्याभावनिश्चयस्याप्युत्पादादेव सम्भ-
वात् भिन्नप्रकारकस्य तस्य प्रतिबन्धकत्वनयेऽपि साध्याभावव्याप्यव-
त्तादिनिश्चयवत्तदसंग्रहे क्षतिविरहाच्च । न हि प्रतिबन्धकमात्रस्यैवा-
भावः पक्षतायां निवेशनीयः ।

केचित्तु 'बाधकप्रमाणपदं यथोक्तबाधद्वयपरमेव, न चैवमननुगमः,
प्रतिबन्धकाभावकूटस्य हेतुत्वेन प्रतिबन्धकाननुगमस्यादोषत्वात् प-
क्षतावच्छेदकविशिष्टविशेष्यक-साध्यतावच्छेदकविशिष्टसाध्यवत्तदसंग्रहवि-

कप्रमाणाभावः, “श्रोतव्यो मन्तव्य इति श्रुत्या^(१) समा-
नविषयकश्रवणानन्तरं मननबोधनात् प्रत्यक्षदृष्टेऽप्य-
नुमानदर्शनात् एकलिङ्गावगतेऽपि लिङ्गान्तरेण तदनु-

रोधिनिश्चयत्वेन वा अनुगमनीयं बाधनिश्चयाभाववत् साध्याभाव-
व्याप्यवत्तादिनिश्चयाभावस्यापि पक्षतायान्निवेशे चतिविरहात्, तद्वा-
कृत्या वा विरोधिता निवेशनीया इत्याहुः ।

साधक-बाधक-मानाभावपदेन तदुभयत्वावच्छिन्नप्रतियोगिता-
काभावो विवक्षितः, प्रत्येकधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावद्वयं वा
विवक्षितं, तत्र नाद्य इत्याह, ‘तदुभयेति, तथाच केवलसिद्धिसत्त्वेऽपि
बाधकाभावमादाय पक्षतासत्त्वादनुमित्यापत्तेरिति भावः । नान्य-
इत्याह, ‘नापीति, ‘व्यर्थत्वादिति अनुमितित्वावच्छिन्नं प्रति जन-
कताकल्पनाया व्यर्थत्वादित्यर्थः । ननु हृदो वल्गिमान् धूमादि-
त्यादावनुमितिवारणायानुमितित्वावच्छिन्नं प्रति तज्जनकत्वमावश्यक-
मित्यत आह, ‘हृदादेः पक्षत्वेऽपीति हृदादेर्यत्र पक्षत्वं तत्रापीत्यर्थः,
‘आवश्यकत्वादिति साध्य-हेत्वादिविशिष्टबुद्धिसामान्यं प्रति अवश्य-

(१) अथ श्रुतिः श्रूयते, आत्मा वारे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्या-
सितव्य-इति द्रष्टव्यः । अस्या अर्थः मुमुक्षुणा आत्मा मुमुक्षोरात्म-
दर्शनमित्यसाधनमिति यावत्, आत्मदर्शनोपायः क इत्याह, श्रोतव्य-
इत्यादि, तेनार्थक्रमेण शाब्दक्रमस्यक्तो भवति अग्निहोत्रं जुहोति
यवागुं पक्षतीत्यादिवत्, तथाच श्रवण-मनन-निदिध्यासनानि तत्त्व-
ज्ञानजनकानीत्युक्तं भवतीति तर्कामृतं ।

मानाच्च मन्तव्यश्चोपपत्तिभिरिति स्मरणात्^(१) । अथ
सिषाधयिषितसाध्यधर्मा धर्मी पक्षः तथाहि मुमुक्षोः
शब्दादात्मावगमेऽपि मननस्य मोक्षोपायत्वेन सिद्धि-

कृत्प्रतिबन्धकत्वादित्यर्थः, 'हेत्वसिद्धादेरित्यादिपदात् धूमवान् वक्त्रे-
रित्यदौ व्यभिचार-व्याप्यत्वासिद्धादेः परिग्रहः, 'नापीति, 'साधक-
प्रमाणं' पक्षे साध्यनिश्चयः, प्रागुक्तयुक्तेः, 'समानविषयकेति आत्म-
विशेष्यकात्मेतरभेदप्रकारकशब्दबोधानन्तरमित्यर्थः, 'मननबोधना-
दिति आत्मपक्षकात्मेतरभेदसाध्यकानुमितिबोधनादित्यर्थः । दूषणा-
न्तरमाह^(२), 'प्रत्यक्षदृष्टेऽपीति प्रत्यक्षतो निश्चितेऽपीत्यर्थः, 'अनुमा-
नदर्शनात्' अनुमित्तया अनुमितिदर्शनात्, 'तदनुमानाच्चेति सिषा-
धयिषया तदनुमानाच्चेत्यर्थः । नन्वेकलिङ्गावगतस्य लिङ्गान्तरेणानु-
मितिरसिद्धेत्यत आह, 'मन्तव्यश्चेति आत्मन्यात्मेतरभेदोऽनुमात-
व्यश्चेत्यर्थः, 'उपपत्तिभिः' वज्रभिर्हेतुभिरित्यर्थः, अन्यथा वज्रवचना-
नुपपत्तेरिति भावः । 'सिषाधयिषितेति सिषाधयिषितः साध्यरूपो
धर्मा यस्य पुरुषस्य स सिषाधयिषितसाध्यधर्मा वज्रव्रीहौ धर्मस्य
धर्मन्निति धर्मशब्दस्य धर्मनादेशात् एवम्भूतः 'धर्मी' पुरुषः, 'पक्षः'
पक्षतावान् इत्यर्थः, धर्मपदञ्च स्वरूपकथनं, अनुमितिजनकस्यास्य

(१) श्रोतव्यः श्रुतिवाक्येभ्यो मन्तव्यश्चोपपत्तिभिः । मत्वा तु सततं ध्येय-
यते दर्शनहेतवः ॥ इति स्मरणादित्यर्थः ।

(२) प्रात्यक्षिकसिद्धभावमात्रं पक्षतेत्युक्तौ मोक्षदोष इति दूषणान्तरबीजं ।

विशेषानुमितीच्छयात्मानुमानम्, अतएव प्रत्यक्षपरि-
कलितमप्यर्थमनुमानेन बुभुक्षन्ते तर्करसिकाः, न हि

पक्षपदप्रवृत्तिनिमित्तत्वाभावेन पक्षानिष्ठत्वेऽपि क्षतिविरहात्, तथा च
तत्पक्षक-तत्साध्यक-तत्पुरुषीयानुमितिगोचरेच्छा तत्पुरुषीय-तत्प-
क्षक-तत्साध्यकानुमितौ पक्षता तेनान्यसाध्यकानुमितौच्छामादाय
सिद्धसाधनस्थले नातिप्रसङ्गः, तत्पुरुषीयत्वेनानुमितिविशेषणात्
अन्यपुरुषीयतादृशानुमितिविषयकैतत्पुरुषीयेच्छामादाय नातिप्र-
सङ्गः, सामानाधिकरण्यप्रत्यासत्या च कार्य-कारणभावः^(१) । तेन
व्यधिकरणतादृशेच्छामादाय नातिप्रसङ्गः ।

प्राञ्चस्तु सिषाधयिषितं साध्यं धर्मी यस्य एवम्भूतो धर्मी पक्ष इत्यर्थः,
तथाच सिषाधयिषितसाध्यवत्त्वं पक्षत्वमिति फलितं, अत्र पक्षपदप्र-
वृत्तिनिमित्तत्वेऽपि अस्य न क्षतिरित्याहुः । तदसत्सपक्षेऽतिव्याप्तेः
बाधितसाध्यकेऽव्याप्तेश्च पक्षताया अनुमितिकारणत्वेन अतीतादौ
साध्येऽनुमितेरभावापत्तेश्च ।

मननस्थले पूर्वाक्ताव्याप्तिं निरस्यति, 'तथा हीति तथाचेत्यर्थः,
'आत्मावगमेऽपि' आत्मन्यात्मेतरभेदनिश्चयेऽपि, 'मननस्य' आत्म-
न्यनुमितिरूपात्मेतरभेदज्ञानस्य, 'मोक्षोपायत्वेन' मोक्षोपायत्वज्ञा-
नेन, एतेन इच्छाकारणं सम्पादितं, 'सिद्धिविशेषेति अनुमितिवि-
शेषणं, 'आत्मानुमानं' आत्मनि आत्मेतरभेदानुमानं, 'अत एवेति
यतएव सिषाधयिषा एक्षणा अत एव वाचस्पतिवचनयोरविरोध इत्य-

(१) समवायसम्बन्धेन कार्य-कारणभाव इत्यर्थः ।

करिणि दृष्टे चीत्कारेण तमनुमिमतेऽनुमातार इति

अयः, 'बुभुत्सन्ते' जानन्ति, सन्प्रत्ययार्थस्याविवक्षितत्वात् तदर्थस्य विवक्षितत्वे विरोधासम्भवात्^(१) । 'तं' करिणं, 'अविरोध इति, अन्यथा 'प्रत्यक्षकलितमित्यनेन प्रत्यक्षकलितस्याप्यर्थस्यानुमितिरित्युक्तं, 'न हि

(१) वचनगतविरोधस्तु विरुद्धार्थप्रतिपादकत्वं, अत्र वाचस्पतिवचनयोः प्रत्यक्षविषयत्वविशिष्टरूपैकधर्म्मिणि अनुमितिविषयत्व-अनुमिति-विषयत्वाभावरूपयोर्विरुद्धयोरर्थयोः प्रतिपादकत्वेनैव विरुद्धत्वं सङ्गच्छते, सन्प्रत्ययार्थस्य विवक्षितत्वे सनः स्वतन्त्रकर्मतावादिमते बुभुत्सन्तइत्यनेन अनुमितीच्छावन्त इत्यर्थः, 'अनुमिमत इत्यनेनानुमितिमन्त इत्यर्थो लभ्यते तथाच प्रत्यक्षविषयत्वविशिष्टे अनुमितीच्छाविषयत्व-अनुमितिविषयत्वाभावरूपयोरविरुद्धार्थयोः प्रतिपादनेन विरुद्धार्थप्रतिपादकत्वरूपो विरोधो न घटते अतः सनः स्वतन्त्रकर्मतावादिमतमनुसृत्य मधुरानाथेन सन्प्रत्ययार्थस्याविवक्षितत्वमुक्तं । जगदीशेन तु सनो न स्वतन्त्रकर्मत्वं अपितु मूलधातोः कर्मत्वमेव सनः कर्मत्वं इति वादिमतमनुसृत्य सन्प्रत्ययार्थो विवक्षितः, तन्मते सनः स्वतन्त्रकर्मत्वाभावेन अनुमितिविषयत्वमेवानुमित्त्वाविषयत्वं तथाच प्रत्यक्षविषयत्वविशिष्टे अनुमितिविषयत्व-अनुमितिविषयत्वाभावरूपयोर्विरुद्धार्थयोः प्रतिपादनेन सन्प्रत्ययार्थस्य विवक्षितत्वेऽपि न विरोधव्याघातः । सनः स्वतन्त्रकर्मतावादिभिः गगनं दिदृक्षते गृहं तिष्ठासनीत्यादिप्रयोगोऽङ्गीक्रियते न तु मूलधातोः कर्मत्वमेव सनः कर्मत्वमितिवादिभिरिति परिचिन्तनीयं ।

वाचस्पतिवचनयोरविरोधः अनुमित्वा-तद्विरहाभ्यां
तदुपपत्तेरिति चेत् । न । सन्देहवत्परामर्शपूर्वं सिषा-

करिणि दृष्टे इत्यनेन प्रत्यक्षकलितस्यार्थस्य नानुमिति रित्युक्तमिति-
वचनद्वयस्य विरोधः स्यादिति भावः । अविरोधमुपपादयति,
'अनुमित्वेति, 'तद्विरहः' सिषाधयिषाविरहः, 'तदुपपत्तेरिति
वचनयोरुपपत्तेरित्यर्थः, अनुमित्वासत्त्वदशायां 'प्रत्यक्षकलितमित्युक्तं,
अनुमित्वाविरहदशायां 'न हि कारणीत्युक्तमिति विशेषादिति
भावः । 'सिषाधयिषाया इति सिषाधयिषाया अपि कचिद-
भावादित्यर्थः, यत्रादौ सिषाधयिषा ततो व्याप्तिस्मरणादिः
ततो व्याप्तिप्रकारकलिङ्गज्ञानं ततः परामर्शः ततोऽनुमितिस्तच्चेति
भावः । ननु सिषाधयिषायोग्यता पक्षता वाच्या सा च सिषाधयिषा-
नाशेऽप्यस्तीत्यत आह, 'योग्यताया इति, 'अनिरूपणात्' निरूपयितु-
मशक्यत्वात् । ननु तत्रापि परामर्शोत्तरमनुमितीष्टसाधनताज्ञा-
नात्पुनरनुमित्वा ततः परामर्शान्तरं ततोऽनुमितिः, अथ वा पराम-
र्शोत्तरं स्मरणात्मकानुमितीष्टसाधनताविषयकपरामर्शान्तरं ततोऽनु-
मित्वा ततोऽनुमिति रिति फलबलात्कल्पनीयमित्यत आह, 'सिषाध-
यिषेति, स्वं तृतीयलिङ्गपरामर्शस्तस्य कारणं यो व्याप्तिस्मरणादिस्तद-
धीनेत्यर्थः^(१), 'अनपेक्षितेति अवुभुक्षितशत्रुसम्पदादेरित्यर्थः, तथाच
व्यतिरेकव्यभिचारेणानुमितौ नास्याः कारणत्वसम्भवः, न च स्वप-

(१) स्वमित्वादिः तदधीनेत्यर्थ इत्यन्तः पाठः ख० ग० पुस्तके नास्ति ।

धियिषाया अप्यभावात् योग्यतायाश्चानिरूपणात्
सिषाधयिषाविरहेऽपि घनगर्जितेन मेघानुमानात्

रसाधारणतत्पक्षक-तत्साध्यक-तत्सिद्धक-तत्पुरुषीयानुमितीच्छामात्रं
तत्पुरुषीयतादृशानुमितौ पक्षता वाच्या, तथाच भगवदिच्छामादायैव
सर्वत्र सङ्गतिरिति वाच्यं । तथा सति भगवदिच्छाया नित्यत्वेन
सिद्धौ सत्यामपि पक्षताप्रसङ्गात् । ननु सिद्ध्युत्तरानुमितित्वमस्याः
कार्यतावच्छेदकमतो नोक्तस्थले व्यतिरेकव्यभिचारः तत्र सिद्धिवि-
रहात्, सिद्ध्युत्तरानुमितित्वञ्च स्वसमानाधिकरणत्वे सति स्वाव्यवहि-
तोत्तरत्वसम्बन्धेन सिद्धिमदनुमितित्वं, स्वाव्यवहितोत्तरत्वञ्च क्षणद्वय-
साधारणं, तच्च स्वाधिकरणसुखवृत्तित्वे सति स्ववृत्तिप्रागभावप्रति-
योगित्वं अधिकरणत्वं वृत्तित्वद्वयञ्च कालिकविशेषणतया बोध्यं तेन
सिद्धिनाशोत्पत्तिचणोत्पन्नानुमितेरपि संग्रहः, संसारस्यानन्तत्वेन
प्रतिक्षणमेवावश्यं कुत्रचित्सुखोत्पादात्सुखस्य क्षणद्वयसात्रस्थायितया
च सिद्धिनाशोत्तरजातानुमितेर्न संग्रहः, न च तथापि सिषाधयि-
षाया अननुगततया न कारणत्वसम्भवः, यादृशयादृशेच्छासत्त्वे सिद्धि-
सत्त्वेऽनुमितिसत्तदिच्छाभावकूटत्वावच्छिन्नाभावत्वेन कारणत्वात् । न
चैवं सिषाधयिषासत्त्वे सिद्ध्यसत्त्वेऽपि सिद्ध्युत्तरानुमित्यापत्तिः^(१) तत्साम-
ग्रीसत्त्वादिति वाच्यं । सिद्ध्युत्तरानुमितिं प्रति सिद्धेरपि हेतुत्वात् ।

(१) अथात्र सिषाधयिषायाः सत्त्वे सिद्ध्यसत्त्वदशायां कथं सिद्ध्युत्तरा-
नुमितिरापादिता तत्कारणीभूतस्य सिद्धिकाणीगतसदिच्छाभावकूट-
त्वावच्छिन्नाभावस्य तदानीमसत्त्वादिति चेत् । न । यत्र स्थानविशेषे

स्वकारणाधीनतृतीयसिद्धपरामर्शबलेनानपेक्षितानु- मानदर्शनाच्च ।

वस्तुतस्तु सिद्ध्युत्तरानुमितित्वं न कार्य्यतावच्छेदकं अपि तु तत्त-
दिच्छाभावकूटत्वावच्छिन्नाभावोत्तरानुमितित्वमेव कार्य्यतावच्छेदकं,
तदवच्छिन्नञ्च तत्र जायत एव इति नापत्तिः । न च तथापि यत्र
सिषाधयिषा नास्ति सिद्धिश्च वर्तते तत्र सिषाधयिषाभावकूट-
त्वावच्छिन्नाभावोत्तरानुमितेरनुत्पादेऽपि अनुमितिसामान्यापत्तिर्दु-
र्वारा सामान्यसामग्र्यौसत्त्वात् तदनुत्तरानुमितौ सामर्थ्यन्तराकल्पना-
दिति वाच्यं । तदनुत्तरानुमितावपि सिद्धभावस्य हेतुत्वकल्पनादि-
ति^(१) । मैवं । गुरुतरकार्य्य-कारणभावद्वयप्रसङ्गात् सुख-दुःखेच्छा-देष-

एकविधानुमित्यैवानुमितिर्जायते वत्र तदिच्छाव्यक्तित्वेन इच्छायाः
प्रवेशादनुगततया तादृशेच्छात्वेनैव हेतुतया तत्रैव सिद्धसत्त्वदशायां
सिद्ध्युत्तरानुमितिरापादिता । वस्तुतस्तु यत्रादौ वङ्गिवाप्यवान् वङ्गि-
वाप्यथाप्यवाञ्छेत्याकारकः परामर्शः ततोऽनुमितिद्वयं जायतामि-
तीच्छा ततो वङ्गानुमित्यात्मकवङ्गिवाप्यानुमितिः ततो वङ्गानुमित्य-
न्तरं तत्र प्रथमानुमितिसमये सिद्ध्युत्तरानुमित्यापत्तिः सिद्धिसत्त्वे
द्वितीयानुमितिजननात् तदिच्छाव्यक्तेः कारणत्वस्यावश्यं वाच्य-
त्वात् इति ।

- (१) सिद्ध्युत्तरानुमितौ सिषाधयिषयाः, सिद्ध्युत्तरानुमितौ सिद्धभावस्य
कारणत्वेन सिद्ध्युत्तरानुमितिभिन्नत्वे सति सिद्ध्युत्तरानुमितिभिन्नाया
अनुमितेरप्रसिद्धेः खनिष्ठकार्य्यतानिरूपितकारणतावच्छेदिका या-
वन्तः यत्तयः तत्प्रत्येकावच्छिन्नसत्त्वस्य खोत्पत्तौ नियामकत्वाच्च न
सिद्धात्मकपरामर्शसत्त्वे अनुमितिसामान्यापत्तिरिति विभावनीयं ।

प्रवृत्ति-निवृत्ति-शब्दानां सप्तानामेव क्षणद्वयमात्रावस्थायितया वि-
निगमनाविरहेण सप्तानामेवोत्तरत्वानुत्तरत्वघटकत्वेन चतुर्दशकार्य-
कारणभावप्रसङ्गाच्च । न च स्वध्वंसाधिकरणसमयध्वंसानधिकरणत्वे^(१)

(१) स्वध्वंसाधिकरणसमयध्वंसानधिकरणत्वे सति स्वाधिकरणसमय-
ध्वंसाधिकरणक्षणोत्पत्तिकत्वमेवाव्यवहितोत्तरत्वं तेन केवलपराम-
र्शजन्यानुमिति-सिद्धिनाशक्षणोत्पन्नानुमित्योः यथाश्रुततादृशध्वंसा-
नधिकरणत्वे सति निरुक्तध्वंसाधिकरणत्वरूपाव्यवहितोत्तरत्वस्य
सत्त्वासत्त्वेऽपि न क्षतिः । अथात्र ध्वंसादिघटितमुत्तरत्वमनुत्तरत्व-
श्चादाय षोडश कार्य-कारणभावा एवापादयितुमुचिताः न तु पञ्च-
दश कार्य-कारणभावा इति चेत् । न । अव्यवहितोत्तरत्वसम्बन्धेन
सिद्धिवैशिष्ट्यस्य कार्यतावच्छेदकतापक्षे स्वध्वंसादिघटिताव्यवहितो-
त्तरत्वस्य सुखादिघटिताव्यवहितोत्तरत्वापेक्षया गुरुतया तस्य निवे-
शयोगात् । नचाव्यवहितोत्तरत्वसम्बन्धेन सिद्धिमद्भिन्नत्वस्य कार्य-
तावच्छेदकतायां कथं तन्निवेश इति वाच्यं । सिद्धिमद्भेदव्यक्तेरेकत्वेन
तस्य तद्व्यक्तित्वेन कार्यतावच्छेदकतया तत्प्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्ध-
गौरवस्याकिञ्चित्कारत्वात् । सिद्धिवैशिष्ट्यस्य नानात्वात् तद्व्यक्तित्वेन
कार्यतावच्छेदकत्वस्य वक्तुमशक्यत्वादिति । वस्तुतस्तु गुरुसम्बन्धस्य
कार्यतावच्छेदकताघटकत्वं स्वीक्रियते, अतएव विनिगमनाविरह-
दानमपि सङ्गच्छते, अभावप्रतियोगितावच्छेदकताघटकत्वन्तु गुरु-
सम्बन्धस्य न स्वीक्रियते तथाच ध्वंसादिघटिताव्यवहितोत्तरत्वसम्ब-
न्धेन सिद्धिमद्भेदप्रतियोगितावच्छेदकतावच्छेदकसम्बन्धत्वं लाघवात्
सुखादिघटिताव्यवहितोत्तरत्व एव कल्पनात् ध्वंसादिघटिताव्यवहि-
तोत्तरत्वसम्बन्धेन सिद्धिमद्भेदस्याप्रसिद्ध्या षोडशकार्य-कारणभावा-
पक्षसम्भव इति ध्येयं । अथात्र स्वध्वंसाधिकरणसमयध्वंसानधि-

इति श्रीमद्भङ्गेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ
अनुमानाख्यद्वितीयखण्डे पञ्चतापूर्वपक्षः ।

सति स्वाधिकरणसमयध्वंसाधिकरणत्वमेवाव्यवहितोत्तरत्वं वक्तव्यं
न तु सुखादिघटितमिति वाच्यं । तथापि प्रत्येकं सुखादिघटिता-
व्यवहितोत्तरत्वमादाय विनिगमकाभावेन पञ्चदशकार्य-कारण-
भावापत्तेर्दुर्वारत्वात् शरीरगौरवस्याधिकत्वादिति निर्गवः ।

इति श्रीमथुरानाथतर्कवागीश-विरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये
अनुमानाख्यद्वितीयखण्डरहस्ये पञ्चतापूर्वपक्षरहस्यं ।

करणत्वे सति स्वध्वंसाधिकरणत्वरूपाव्यवहितोत्तरत्वस्य विवक्षणेनैव
सामञ्जस्ये स्वाधिकरणसमयध्वंसाधिकरणत्वपर्यन्तनिवेशो व्यर्थ इति
चेत् । न । सिद्ध्यनुत्तरानुमितौ सिद्ध्यभावस्य हेतुतायाः प्रागुक्ततया
तत्कार्यतावच्छेदकसिद्ध्यनुत्तरत्वं निरुक्ताव्यवहितोत्तरत्वसम्बन्धेन सि-
द्धिविशिष्टान्यत्वमेव वाच्यं, एवं यत्र क्रमेण सिसाधयिषापेक्षानुद्ध्या-
त्मकसिद्ध्यात्मकपरामर्शानुमितयः तत्रानुमितिर्न स्यात् तदनुमिते-
र्भवदुक्ताव्यवहितोत्तरत्वसम्बन्धेन सिद्धिविशिष्टान्यत्वेन सिद्ध्यभावस्य
कार्यतावच्छेदकाक्रान्तत्वात्, अस्मन्मते तु उक्तानुमितिव्यक्तेः स्वाधि-
करणसमयध्वंसाधिकरणत्वघटिताव्यवहितोत्तरत्वसम्बन्धेन सिद्धिवि-
शिष्टत्वात् न तत्कार्यतावच्छेदकाक्रान्तत्वमिति नानुपपत्तिः । न
चोक्तमिया सिद्ध्यभावस्य कार्यतावच्छेदकसिद्ध्यनुत्तरत्वघटकोत्तर-
त्वस्य स्वाधिकरणसमयध्वंसाधिकरणत्वघटितत्वेऽपि सिषाधयिषायाः

अथ पक्षतासिद्धान्तः ।



उच्यते सिषाधयिषाविरहसहकृतसाधकप्रमाणा-
भावो यच्चास्ति स पक्षः, तेन सिषाधयिषाविरहसहकृतं
साधकप्रमाणं यच्चास्ति स न पक्षः, यत्र साधकप्रमाणे

अथ पक्षतासिद्धान्तरहस्यं ।

‘सिषाधयिषेति, ‘सिषाधयिषाविरहसहकृतं’ तद्विरहविशिष्टं,
यत् ‘साधकमानं’ साध्यनिश्चयः, तदभावो यस्मिन् पुरुषेऽस्ति स पुरुषः
‘पक्षः’ पक्षपदपरिभाषाविषयतावच्छेदकानुमितिजनकधर्मवान् इत्यर्थः,
तथाच विशेषणताविशेषसम्बन्धेन समवायसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगि-
ताकनिरुक्तसाध्यनिश्चयाभाववत्त्वं अनुमितिजनकं पक्षत्वमिति फलितं,
अनुमितिजनकस्यास्य पक्षपदप्रवृत्तिनिमित्तत्वाभावेन आत्मनिष्ठत्वेऽपि
क्षतिविरहात्, पक्षपदप्रवृत्तिनिमित्तत्वमतेऽपि स्वरूपसम्बन्धेन तत्प्र-
वृत्तिनिमित्तत्वाभावात्स्वरूपसम्बन्धेन आत्मनिष्ठत्वेऽपि क्षतिविरहाच्च

कार्यतावच्छेदकोत्तरत्वे तन्निवेशो व्यर्थः स्वध्वंसाधिकरणत्वनिवेशेनैव
सामञ्जस्यात् इति वाच्यं । तथा सति उक्तस्थले भवदुक्तस्वध्वंसा-
धिकरणत्वघटितसिद्ध्युत्तरत्वावच्छिन्नानुमित्यापत्तेः सिषाधयिषात्म-
कतत्कारणसत्त्वात् स्वमते तु स्वाधिकरणसमयध्वंसाधिकरणत्वघटित-
सिद्ध्युत्तरत्वावच्छिन्नानुमितिः स्यादेवेति गोक्तापत्तिसम्भावना इति
विभावनौयं ।

सत्यसति वा सिषाधयिषा यत्र वोभयाभावस्तत्र
विशिष्टाभावात् पक्षत्वं । यद्यपि पक्षत्वस्य केवलान्व-
यित्वात् नास्य भेदकत्वं, तथापि पक्षपदप्रवृत्तिनि-
मित्तमुक्तम् ।

इति श्रीमद्भङ्गेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ
अनुमानाख्यद्वितीयखण्डे पक्षतासिद्धान्तः ।

५

तच्चाग्रे स्फुटीभविव्यति । आत्मनिष्ठत्वाभिधानञ्च विशेषणता-सम-
वायोभयघटितसामानाधिकरण्यप्रत्यासत्त्या हेतुत्वबोधनाय, साधक-
मानपदन्तु यथाश्रुतं न सङ्गच्छते तथा सति साधकमानस्य सिद्धि-
जनकप्रमाणस्यावश्यमनुमितेः पूर्वं सत्त्वात् इच्छां विना क्वाप्यनु-
मितिर्न स्यात् । न चानुमित्यतिरिक्तसिद्धिजनकाभावो वाच्यः,
अनुमित्यनन्तरमपि पक्षतापातात् । न च साधकमानञ्चेह यदि
साध्यनिश्चयस्तदा संग्रयोत्तरं व्याप्यदर्शनात् साध्यप्रत्यक्षस्थलेऽपि
पक्षतापत्तिः साध्यनिश्चयाभावादिति वाच्यं । द्रष्टृत्वात्, समानविषये
लौकिकप्रत्यक्षसामर्थ्याः पृथक् प्रतिबन्धकतया अनुमित्यनुत्पादात् ।
न चैवं संग्रयोत्तरं विना प्रत्यक्षेच्छां व्याप्यदर्शनादलौकिकप्रत्यक्षं
क्वापि न स्यात् अलौकिकप्रत्यक्षं प्रति अनुमितिसामर्थ्याः प्रतिब-
न्धकत्वादिति वाच्यं । द्रष्टृत्वात् । वस्तुतस्तु संग्रयोत्तरं व्याप्यदर्शनोत्प-
त्तिद्वितीयक्षण इव तदुत्पत्तिक्षणेऽपि स्थाणुत्वादिप्रत्यक्षनिश्चयोत्प-
त्तौ बाधकाभावेन सर्वत्र साध्यनिश्चयसत्त्वाच्च पक्षतायाः सम्भवः विशे-

षदर्शनस्य संशयोत्तरप्रत्यक्षनिश्चयहेतुताया वङ्गधा निराकृतत्वात्
इत्येव तत्त्वं । वैशिष्ट्यञ्च एककालावच्छेदेन एकात्मवृत्तित्वं, विशिष्टा-
भावस्याव्यवहितपूर्वसत्तायाः अपेक्षितत्वेन कालान्तरीयसिषाधयिषा-
विरहमादाय सिषाधयिषासत्त्वेऽपि सिद्धिसत्त्वे नानुमित्यनुदयप्रसङ्गः ।
अथञ्च विशिष्टाभावो मननस्थले सिषाधयिषाविरहरूपविशेषणाभा-
वात् घनगर्जितेन मेघानुमानादौ साध्यनिश्चयरूपविशेष्याभावादे-
वेति नाव्याप्तिः । यत्रानुमित्तानन्तरं साध्यनिर्णयात्मकः परामर्श-
स्ततोऽनुमितिः तत्र पक्षतासम्पत्तये विशिष्टान्तं साधकमानविशेषणं,
घनगर्जितादौ पक्षतासम्पत्तये विशेयदलं । सिषाधयिषा च तत्साध्य-
विशिष्टतत्पक्षविषयकत्वप्रकारिकानुमितिविषयिनीच्छा ग्राह्या य-
त्किञ्चिद्विज्ञोचरज्ञानं जायतामितीच्छायामपि^(१) सिद्धिसत्त्वेऽनुमित्य-
नुत्पादात् अनुमितित्वाप्रकारिकायामपि प्रत्यक्षाद्यतिरिक्तं पर्वते
वङ्गिज्ञानं जायतामितीच्छायां सिद्धिसत्त्वेऽनुमित्युत्पादाच्च । एवं

(१) द्रव्यत्वेन द्रव्यगोचरज्ञानं जायतामितीच्छायामपीत्यर्थः, तेन ज्ञानं
जायतामितीच्छोत्तरं सिद्ध्युत्पादे स्वविषयसिद्ध्यनुपहितत्वविशेषणस्य
अवश्यं निवेशनीयत्वादेव तदिच्छावारणं सिद्ध्युत्तरन्तु तादृशेच्छा न
सम्भवति ज्ञानमात्रस्यैव ज्ञानत्वप्रकारकेच्छाविरोधित्वादिति नास-
ङ्गतिः । न च ज्ञानं जायतामितीच्छैव कथमुत्पद्यते इच्छां प्रति
इष्टसाधनताज्ञानस्य कारणत्वेन इच्छायाः पूर्वं इष्टसाधनताज्ञानस्य
अवश्यापेक्षणीयत्वेन ज्ञानत्वप्रकारकेच्छाप्रतिबन्धकसङ्गावादिति वाच्यं ।
तद्धर्मिकेष्टसाधनताज्ञानादिव तदभावधर्मिकद्वेषादपि तदिच्छो-
त्पादस्य सर्वानुभवसिद्धतया ज्ञानाभावधर्मिकद्वेषात् ज्ञानत्वप्रकार-
केच्छोत्पादसम्भवादिति ।

यादृशयादृशेष्टासत्त्वे सिद्धौ सत्यामनुमितिसत्तदिच्छाभावसमुदाय-
 एवावच्छेदकः^(१) । साध्यनिश्चयस्यानुमितिसमानाकारो घातः तेन
 पाषाणमयत्वादिना पर्वते तेजस्वादिना च वज्रेः सिद्धावपि पर्वतत्वेन
 पर्वते वज्रित्वादिना वज्रायनुमितिरिति भावः । अत्र च सिपा-
 धयिषाविरहकूटादीनां परस्परं विशेषण-विशेष्यभावे विनिगमका-
 भावादनन्तकार्य-कारणभावापत्तिः तद्विपरीतज्ञानादेः प्रतिबन्धक-
 ताविचारावसरे अस्तत्वात्तसिद्धान्तरहस्योक्तदिशा निराकरणीया^(१) ।

(१) इदमुपलक्षणं सिद्धिधर्मिकयद्वयप्रामाण्यज्ञानसत्त्वे सिद्धिदशा-
 यामनुमितिसत्तदिच्छाभावसमुदायस्यापि सिद्धौ विशेषणत्वं
 बोध्यं तेनाप्रामाण्यज्ञानास्तन्दितसिद्धिसत्त्वे नानुमित्यनुदयप्रसङ्गः ।
 एवं यादृशयादृशेष्टासत्त्वे इत्यत्र यद्वयदिच्छासत्त्वे इत्येव वक्तव्यं,
 अन्यथा यादृशयादृशेष्टत्वेनानुगतरूपेष्ट्या उत्तेजकत्वे यत्र सिद्ध्या-
 त्मको वज्रिमात्रपरामर्शः तत्रानुमितिर्जायतामितीच्छायामपि वज्रा-
 नुमित्युत्पादात् अनुमितित्वप्रकारकेष्ट्यात्वेन उत्तेजकतया यत्र सिद्ध्या-
 त्मको वज्रिमात्रपरामर्श एव द्रव्यत्वादिसाध्यकसिद्धानात्मकपरा-
 मर्शरूपस्तत्राप्यनुमितिर्जायतामितीच्छायां वज्रानुमित्यापत्तिः प्रका-
 रान्तरेणासम्भवत्स्वविवयसिद्धिकानुमित्याया एव निश्चितार्थगोचर-
 ज्ञानजनकत्वनियमात् तत्र वज्रानुमित्युत्पादस्य सर्वानुभवविरुद्ध-
 त्वादिति ।

(२) तथाच खले कपोतन्यायेन तत्तदिच्छाविरहव्यक्तीनां युगपदेव सिद्धि-
 विशेषणत्वात् नेच्छाविरहव्यक्तीनां विशेष्य-विशेषणभावे विनिगम-
 नाविरहादनन्तकार्य-कारणभावः, खले कपोतन्यायस्तु “वृद्धा युवानः
 पिश्रवः कपोताः खले यथामी युगपत्पतन्ति । तथा तथामी युगपत्
 पदार्थाः परस्पररेणान्ययिनो भवन्ति” ॥ इति ।

नन्वस्य विशिष्टाभावस्यानुमितिजनकत्वे किम्मानमित्यतोऽन्वय-व्यतिरेकौ तत्र प्रमाणयति, 'तेनेति' अस्यानुमितिजनकत्वेनेत्यर्थः, 'स न पक्षः' स न पक्षपदपरिभाषाविषयतावच्छेदकानुमितिजनकधर्मवानित्यर्थः । व्यतिरेकं दर्शयित्वान्वयं दर्शयति, 'यत्रेति, 'साधकप्रमाणे' साध्यनिश्चये, 'उभयाभावः' सिषाधयिषा-साध्यनिश्चययोरभावः, 'तत्रेति, प्रथमे केवलविशेषणाभावकृतो द्वितीये विशेषण-विशेष्योभयाभावकृतस्तृतीये च केवलविशेष्याभावकृतो विशिष्टाभाव इति भावः । 'पक्षत्वं' अनुमितिमत्त्वं, 'पक्षत्वस्य' पक्षपदवाच्यत्वस्य, 'भेदकत्वं' पक्षपदवाच्येतरभेदसाधकत्वं, तदितराप्रसिद्धेरिति भावः । 'पक्षपद-प्रवृत्तिरिति पक्षपदप्रवृत्तेरनुमित्युत्पत्तेर्निमित्तं कारणमित्यर्थः । यदा पक्षपदस्य प्रवृत्तिः शक्तिर्येन रूपेण इति व्युत्पत्त्या 'पक्षपद-प्रवृत्तिः' पक्षपदशक्यतावच्छेदिकानुमितिः, उद्देश्यतासम्बन्धेनानुमितिमत्त्वमेव पक्षपदशक्यतावच्छेदकं, तत्र निमित्तं कारणमित्यर्थः, तथाच नेदमितरभेदसाधकं अपि तु अनुमितिकारणमिति भावः । अथ वा पक्षपदप्रवृत्तिनिमित्तं शास्त्रकारौच्यपक्षपदपरिभाषाविषयतावच्छेदको धर्म इत्यर्थः ।

प्राञ्चस्तु 'पक्षपदप्रवृत्तिनिमित्तं' पक्षपदशक्यतावच्छेदकमित्यर्थः, पक्षपदस्य नानार्थतया साध्य-पक्षभेदेन सिषाधयिषा-साध्यनिश्चययोर्भेदादपि न क्षतिः । न चैवं पर्वतो वज्जिमानित्यनुमितौ घटादेरपि पक्षव्यवहारप्रसङ्ग इति वाच्यं । निश्चयनिष्ठविशेष्यतासम्बन्धेन प्रतियोगितावच्छेदकत्वस्य शक्यतावच्छेदकतानियामकसम्बन्धत्वेनातिप्रसङ्गविरहादित्याहुः ।

अत्र प्राभाकराः प्रत्यक्षादिवदनुमितावपि पक्षता न हेतुः
 गौरवान्मानाभावाच्च विषयान्तरसञ्चारादिविरहे परामर्शादिसत्त्वे च
 धाराबाह्यिकप्रत्यक्षवदनुमितिधाराण्युत्पद्यत एव किन्तु परार्थानुमान-
 एव सिद्धसाधनमर्थान्तरविधया दूषणं । न चैवं लिङ्गोपहितलैङ्गिक-
 भाननयेऽनुमित्यनुव्यवसायानुपपत्तिः अनुमितिसामग्र्या बलवत्त्वेन^(१)
 अनुमितिधाराया एव उत्पत्त्यमानत्वात् इति वाच्यं । लिङ्गोपहितलै-
 ङ्गिकभानस्य मानाभावेन सुदूरपराहतत्वात् । अथ तथापि सिद्धेरप्रति-
 बन्धकत्वेऽविनश्यदवस्थतत्तत्परामर्शादुत्पन्नानुमितिव्यक्तयः पुनः कथं
 नोत्पद्यन्ते^(२) । न च तत्तदनुमितिव्यक्तिं प्रति तत्तत्प्रागभावव्यक्तीनां
 विशिष्य हेतुतया तत्तदनुमितिव्यक्तीनां विशिष्य प्रतिबन्धकतया
 वा उत्पन्नानां न तासां पुनरुत्पाद इति वाच्यं । अनन्तकार्य-
 कारणभावकल्पनामपेक्ष्य लाघवात् सिद्धेः प्रतिबन्धकत्वस्यैव युक्त-
 त्वात् । न च सिद्धेः प्रतिबन्धकत्वेऽपि सिषाधयिषाविरहवैशिष्ट्यस्य तत्र
 विशेषणत्वावश्यकतया यत्र सिषाधयिषा ततोऽनुमित्यात्मकसिद्ध्या-
 त्मकः परामर्शस्तत्र तदनुमितिव्यक्तेः पुनरुत्पादप्रसङ्गे दुर्वार इति
 वाच्यं । सिषाधयिषा-परामर्शोभयकालीनानुमितिव्यक्तिषु तत्तत्प्राग-

(१) भिन्नविषये अनुमितिसामग्र्याः प्रत्यक्षसामग्रीतो बलवत्त्वमिति भावः ।

(२) तथाच यो यत्सामग्रीमान् क्षणः स तदुत्पत्तिक्षणोत्पत्तिकर्ध्वस-
 प्रतियोगी इति नियमात् तत्तदनुमित्युत्पत्तिक्षणो यदि तत्तदनुमिति-
 सामग्रीमान् स्यात् तदा तत्तदनुमित्युत्पत्तिक्षणोत्पत्तिकर्ध्वसप्रतियो-
 गी स्यादित्यापत्तिरिति समुद्रिततात्पर्यं ।

भावव्यक्तीनां विशिष्य हेतुत्वस्य तत्तदनुमितिव्यक्तीनां विशिष्य प्रति-
बन्धकत्वस्य वास्माभिरभ्युपगमात्^(१) । न चैवं सिद्धेः प्रतिबन्धकत्वे किं

(१) न चात्र तदिच्छाव्यक्तेरुत्तेजकत्वाकल्पनादेव न तस्याः पुनरुत्पादप्रसङ्ग-
इति वाच्यं । तदिच्छाव्यक्तेरनुत्तेजकत्वे अनुमित्यात्मकपरामर्शस्यैवा-
नुत्पादप्रसङ्गात् तत्कारणीभूतस्य परामर्शस्य सिद्ध्यात्मकत्वात् तस्य
सिद्ध्यनात्मकत्वे सिद्धाधयिषाकाले तदनुमितेरुत्पादप्रसङ्गात् । न च
तथापि पूर्वोत्पन्नपरामर्शविशिष्टतदिच्छाव्यक्तेः उत्तेजकत्वं कल्प-
मिति वाच्यं । अनुमितिद्वयं जायतामिति च्छाव्यक्तेः ताद्रूप्येण उत्ते-
जकत्वासम्भवात् । एतेनात्र स्वविषयसिद्ध्यनुपहितत्वविशिष्टतादृ-
शेच्छाविरहविशिष्टसिद्धेः सत्त्वात् न तत्र पुनरुत्पादप्रसङ्ग इत्यपि
निरस्तं । अथात्र अनुमित्यात्मकपरामर्शव्यक्तेः साध्यस्य साध्यव्या-
प्यस्य चानुमितिरूपतया तत्कारणीभूतस्य साध्यव्याप्यवत्त्वनिश्चयरूप-
परामर्शस्य विरहादेव न तदनुमितेः पुनरुत्पादप्रसङ्ग इति । न च
सिद्धाधयिषापूर्वोत्पन्नपरामर्श एवापेक्षाबुद्धिरूपः तत्र तत्पराम-
र्शस्य क्षणत्रयस्थायितया अनुमित्यात्मकपरामर्शोत्पत्तिसमयेऽपि
सत्त्वेन अनुमितेः पुनरुत्पादप्रसङ्ग इति वाच्यं । उक्तस्थले तादृशपराम-
र्शचतुर्थक्षणे अनुमितेरुत्पादेन तादृशपरामर्शस्यापेक्षाबुद्धिरूपत्वे
मानाभावात् चतुर्थक्षणे द्वित्वादिप्रत्यक्षानुरोधेनैव क्षणत्रयस्थायित्व-
रूपापेक्षात्वस्वीकारात्, एवं तादृशबुद्धेरपेक्षाबुद्धिरूपत्वे अनुमितेः
परामर्शत्वोत्कीर्तनवैफल्यपत्तेः । एतेन ज्ञानेच्छयोर्यौगपद्यस्वीकारे
यत्र सिद्धाधयिषोत्पत्तिक्षणोत्पन्नपरामर्शादनुमित्यात्मकसिद्ध्यात्मक-
परामर्शः तत्रैव तदनुमितेः पुनरुत्पादापत्तेरित्यपि निरस्तं । इति
चेदत्राहुः यथादौ वज्रिव्याप्येतरवज्रभाववान् पर्वतो वज्रिव्याप्यधूम-
वान् इत्याकारकः परामर्शः ततः सिद्धाधयिषा ततो वज्रिव्याप्ये-

लाघवमिति वाच्यं । सिद्धाधयिषाविरहकालीनाविनश्यदवस्थपरामर्श-
जन्यानुमितिव्यक्तिषु तत्प्रागभावव्यक्तीनां कारणत्वाद्यकल्पनादेव मक्षा-
लाघवादिति चेत् । न । सिद्धेः प्रतिबन्धकत्वाभ्युपगमेऽपि स्व-स्वान-
धिकरणेषु आत्मसु तत्तदनुमितिव्यक्तीनां उत्पादवारणाय पूर्व-पूर्वा-
नुमितिव्यक्त्युत्पत्तिसमकालं भाव्यनुमितिव्यक्तीनां उत्तरोत्तरानुमि-
तिव्यक्त्युत्पत्तिसमकालञ्च अतीतानुमितिव्यक्तीनां उत्पादवारणाय च
तत्तदनुमितिव्यक्तिषु पूर्व-पूर्वात्यन्ततत्तत्परामर्शव्यक्तीनां विशिष्य
हेतुत्वादवश्यकतया तस्या एव उत्पत्तिसम्बन्धेन कारणत्वाभ्युपगमादेव
उत्पन्नपुनरुत्पादवारणसम्भवात् । अथ तथापि यद्विषयविशेषपक्षक-
यद्विषयविशेषसाध्यिका एकैकानुमितिरेव एकैकपुरुषस्य जाता न
तु तत्पूर्वं तत्परतो वा तत्पक्षक-तत्साध्यकः परामर्शः अविनश्यद-
वस्थपरामर्शजन्यतत्पक्षक-तत्साध्यकानुमितिव्यक्तीनां उत्पन्नपुनरु-
त्पादवारणाय लाघवात् तत्पक्षक-तत्साध्यकानुमितिं प्रति तादृश-
सिद्धेः प्रतिबन्धकत्वमेव कल्पयितुं युक्तं तत्रापि तत्तदनुमितिव्यक्तिं
प्रत्युत्पत्तिसम्बन्धेन तत्तत्परामर्शादिव्यक्तेर्विशिष्य हेतुत्वकल्पनेऽनन्त-
कार्य-कारणभावप्रसङ्गादिति । न च स्व-स्वानधिकरणेषु आत्मसु
तत्तदनुमितिव्यक्तीनां उत्पादवारणाय तत्रापि तत्तत्परामर्शव्यक्तीनां
विशिष्य हेतुत्वमावश्यकमिति वाच्यं । क्रिया-संयोगकार्य-कारणभा-

तरवद्भावाववान् पर्वतो वह्निव्याप्यवह्निमान् इत्याकारानुमितिः
तस्याः परामर्शरूपतया तदनन्तरं तस्याः पुनरुत्पादप्रसङ्गसम्भवा-
इति परिचिन्तनीयं ।

वोक्तयुक्ता^(१) समवायिकारण्यक्तीनां स्वस्वसमवेतमानान्यं प्रति तत्तद्व्य-
क्तित्वेन हेतुत्वावश्यकत्वादेव स्व-स्वानधिकरणेषु आत्मसु तत्तद्व्यक्तीनां
उत्पादासम्भवादिति चेत् । न । तादृशविषयविशेषे मानाभावात्
अन्यथा यद्विषयविशेषविशेष्यक-यद्विषयविशेषप्रकारिका एकैकप्रत्य-
क्षव्यक्तिरेव एकैकपुरुषस्य जाता न तु तत्पूज्यं तत्परतो वा तद्विषय-
विशेषयोः सन्निकर्षादिः तद्विषयविशेष्यक-तद्विषयप्रकारकप्रत्यक्षव्य-
क्तीनां उत्पन्नपुनस्तत्पादवारणाय तत्तद्विशेष्यक-तत्तत्प्रकारकप्रत्यक्षं
प्रत्यपि तत्तद्विशेष्यक-तत्तत्प्रकारकसिद्धेः सामान्यतः प्रतिबन्धकत्वप्रस-
ङ्गात् तत्रेष्टापत्तौ अत्रापि दृष्टापत्तेः सम्भवात्, तादृशविषयविशेषा-
नुमितौ पक्षताया हेतुत्वसिद्धावप्यन्यत्र तस्यास्तदसिद्धेश्च । वस्तुतस्तु
प्रत्यक्षादीनामप्युत्पन्नपुनस्तत्पादवारणाय सामान्यतस्तदादात्यसम्बन्धेन
कार्यत्वावच्छिन्नोत्पत्तिं प्रति सत्तावच्छिन्नोत्पत्तिं प्रत्येव वा विशेष-
णताविशेषसम्बन्धेन कार्यसहवर्तितया समयसम्बन्धनाशत्वेन नाशत्वे-
नैव वा प्रतिबन्धकत्वं क्लृप्तं ज्ञानादिनाशस्य विषयवृत्तित्वे माना-
भावात् अधिकरणस्याविद्यमानतादृशायामपि तत्र विशेषणतावि-
शेषसम्बन्धेन तदभावो वर्तत एवेति न तद्दोषतादवस्थं तथाच तत-

(१) सर्वत्र कारणत्वं यदि कार्याव्यवहितप्राक्क्षणावच्छेदेन कार्याधि-
करणवृत्त्यभावाप्रतियोगित्वरूपं तदा श्येन-शैलसंयोगरूपकार्याधि-
करणे शैले क्रियाया चभावात् क्रिया-संयोगकार्य-कारणभावे व्यभि-
चारः सतः यथा तत्र कार्यतावच्छेदकावच्छिन्ना यावत्तः व्यक्तयः
तत्प्रत्येकाधिकरणव्यक्तिष्विद्व्यक्तिवृत्त्यभावाप्रतियोगित्वरूपं कारणत्वं
विवक्षणीयं तथा अत्रापीति न कुत्रापि व्यभिचार इति ध्येयं ।

एव उत्पन्नानुमितेरपि पुनरुत्पादासम्भवः । एतेन तत्परामर्शादिव्य-
 क्तेरनन्तकार्य-कारणभावेषु उत्पत्तेः सम्बन्धकल्पनामपेक्ष्य सिद्धेर-
 तिरिक्तैकप्रतिबन्धकत्वकल्पनैव लघीयसीत्यग्रिमोक्तं प्रत्युक्तमित्याहुः ।
 तदसत् सिद्धेरप्रतिबन्धकत्वे परामर्शनिष्ठाप्रामाण्यग्रहाभावस्य पृथग-
 नुमितिहेतुत्वमते सिद्ध्यात्मकपरामर्शनिष्ठतत्तज्ज्ञानत्वधर्मितावच्छेद-
 ककाप्रामाण्यग्रहाभावानामपि पृथक् हेतुत्वावश्यकत्वेन महागौरवा-
 पत्तेः । अन्यथा इदं ज्ञानं व्याप्यत्वाद्यंगेऽप्रमेत्यप्रामाण्यग्रहात्मक-सिद्ध्या-
 त्मकपरामर्शादनुमित्यापत्तेः । न च तथापि यत्साध्यसिद्धिकालीन-
 परामर्शेषु न तत्तज्ज्ञानत्वधर्मितावच्छेदककाप्रामाण्यज्ञानं तत्र सिद्धेः
 प्रतिबन्धकत्वे मानाभाव इति वाच्यं । तत्रापि सिद्धेरप्रतिबन्धकत्वे
 विनायनुमित्तां स्मरणादिरूपसिद्ध्यात्मकपरामर्शानन्तरमनुमित्या-
 पत्तेः । न चेष्टापत्तिः, अनुव्यवसायविरहात् अनुव्यवसायस्यापि स्वीकारे
 अनुभवापत्तापात् अन्यथा शाब्दबोधादिकं प्रति आकाङ्क्षादिज्ञानस्य
 अनुमितिं प्रति परामर्शादेश्च गौरवादकारणत्वप्रसङ्गात् निराकाङ्क्षा-
 दिस्थलेऽपि शाब्दबोधादौ तदनुव्यवसाये च दृष्टापत्तेः सुवचत्वात्
 विशिष्टज्ञानं प्रत्यपि बाधादेः प्रतिबन्धकत्वविलोपप्रसङ्गाच्च । न च
 वक्त्रिव्याप्यधूमवान् वक्त्रिव्याप्यधूमव्याप्यवान् वक्त्रिव्याप्यधूमव्याप्यव्याप्य-
 वान् इति समूहालम्बनपरामर्शानन्तरं परामर्शानुमितिप्रवाहस्य
 प्राभाकरनये अनुभवसाक्षिकत्वात् भवन्मतेऽपि कुत्रचिदनुभवापत्ता-
 पस्युल्य एव गौरवं पुनरतिरिच्यते इति वाच्यं । तत्र स्थलविशेषे-
 ऽनुमितिधारायाः प्रामाणिकत्वे सिषाधयिषावत् तत्तत्परामर्शव्य-
 क्तीनां उत्तेजकमध्ये प्रवेशे क्षतिविरहात् । किञ्च सिद्ध्यात्मकपरामर्श-

स्थलेऽविनश्यदवस्थपरामर्शजन्यानुमितिस्थले चाप्रामाणिकानन्तानु-
मिति-तत्प्रागभाव-तद्धंसानां कार्य-कारणभावकल्पनामपेक्ष्य लाघ-
वात् पक्षताया एव हेतुत्वं कल्प्यते, प्रत्यक्षादिस्थले च धारावा-
हिकसाक्षात्कारादीनां प्रमाणसिद्धत्वात् गौरवमप्यास्थीयते । न च
विषयान्तरसञ्चारादिविरहे^(१) भवन्मतेऽपि अनुमित्यनन्तरमनुमिति-
समानाकारमानसोपनीतभानोत्पत्तौ बाधकाभावान्नातिरिक्तव्यक्ति-
कल्पना ममापि अनुमितेस्तत्स्थलाभिषिक्तत्वाद्विषयान्तरसञ्चारादि-
सत्त्वे च तत एव ममाप्यनुमित्यनुत्पत्तेरिति वाच्यं । अनुमित्युत्तर-
मनुमितिनिर्व्विकल्पकव्यक्तेस्तदनुव्यवसायव्यक्तेरेव वोपनीतभानाना-
त्मिकाया उत्पत्तेरतिरिक्तकल्पनाभावात् निर्व्विकल्पकादिव्यक्तेर्भव-
तापि खौकारादित्यास्तां विस्तरः ।

इति श्रीमथुरानाथतर्कवागीश-विरचिते तत्त्वचिन्ताभणिरहस्ये
अनुमानाख्यद्वितीयखण्डरहस्ये पक्षताभिद्धान्तरहस्यं, समाप्रमिदं
पक्षतारहस्यं ।

(१) मनसः मानसप्रतिबन्धकीभूतज्ञानादिसामग्रीसमवहितत्वनिरुद्ध-
इत्यर्थः ।

अथ परामर्शपूर्वपक्षरहस्यं ।

—००:००:००—

पक्षधर्मस्य व्याप्तिविशिष्टज्ञानमनुमितिहेतुः । ननु व्याप्यत्वावच्छेदकप्रकारेण व्याप्तिस्मरणं पक्षधर्मता-ज्ञानं तथा लाघवात् परामर्शहेतुत्वेनावश्यकत्वाच्च न च धूमो वह्निव्याप्यो धूमवांश्चायमिति ज्ञानद्वया-द्देवानुमितिस्तु । न चानुमितिं प्रति व्याप्यत्वज्ञान-मेव हेतुर्लाघवात् उपजीव्यत्वाच्चेति वाच्यं । तस्यानु-मितेः पूर्वमसिद्धौ युगपदुपस्थित्यभावात् ।

अथ परामर्शपूर्वपक्षरहस्यं ।

अनुमितिलक्षणैककार्यानुकूलत्वसङ्गत्या^(१) पक्षधर्मतानिरूपणान-न्तरं अनुमितिहेतुत्वेन परामर्शं निरूपयति, 'पक्षधर्मस्येति, 'पक्षध-र्मस्य' पक्षसम्बन्धस्य, 'व्याप्तिविशिष्टज्ञानं' व्याप्तिविशिष्टे ज्ञानं पक्ष-व्याप्तिविशिष्टोभयवैशिष्ट्यावगाहिज्ञानमिति चावत्, तदेवानुमिति-हेतुरित्यर्थः, तेन पक्षविशेष्यकपरामर्श-लिङ्गविशेष्यकपरामर्शयोर्भ-योरेवोपसंग्रहः, वह्निव्याप्यो धूमः धूमवांश्च पर्वत इति ज्ञानस्य लीलांसकनद्ये अनुमितिजनकस्यासंग्रहश्च । पक्षतावच्छेदकावच्छिन्न-विषयतानिरूपितसाध्यव्याप्यत्वावच्छिन्नविषयताशालिज्ञानमेवानुमि-

(१) अनुमितिरूपैककार्यकारित्वमङ्गत्वेति ख० ग० ।

तिहेतुरिति तु समुदायार्थनिष्कर्षः^(१), तथाच तादृशविषयताशालि-

(१) पर्वतधर्मिकवज्रानुमितिं प्रति वज्रिव्याप्यधूमवान् पर्वत इति पर्वत-
विशेष्यक-वज्रिव्याप्यधूमप्रकारकनिश्चयः वज्रिव्याप्यधूमः पर्वते इति आधे-
यत्वसम्बन्धेन पर्वतप्रकारक-वज्रिव्याप्यधूमविशेष्यकनिश्चयश्च हेतुः तवोर्यदि
पर्वतविशेष्यक-वज्रिव्याप्यधूमप्रकारकनिश्चयत्वेन वज्रिव्याप्यधूमविशेष्यका-
धेयतासम्बन्धावच्छिन्न-पर्वतप्रकारकनिश्चयत्वेन च पृथक् पृथक् कारणत्वं
तदा लिङ्गविशेष्यकपरामर्शाव्यवहितोत्तरानुमितौ पक्षविशेष्यक-व्याप्य-
प्रकारकनिश्चयस्यापि कारणत्वेन व्यभिचारः, एवं पक्षविशेष्यक-व्याप्य-
प्रकारकपरामर्शजन्यानुमितौ लिङ्गविशेष्यकपरामर्शस्यापि कारणत्वेन
व्यभिचारश्च अतः पक्षविशेष्यक-आध्यव्याप्यप्रकारकनिश्चयोत्तरानुमितिं
प्रति तादृशपरामर्शत्वेन कारणत्वं, एवं व्याप्यविशेष्यक-पक्षप्रकारकनिश्च-
योत्तरानुमितिं प्रति व्याप्यविशेष्यक-पक्षप्रकारकनिश्चयत्वेन कारणत्वञ्च
वक्तव्यं, तथाच कार्यतावच्छेदककोटौ कारणतावच्छेदककोटौ च व्याप्य-
प्रकारतानिरूपितपक्षविषयतायाः पक्षप्रकारतानिरूपितव्याप्यविषयता-
याश्च स्वातन्त्र्येण प्रवेश इति गौरवमतो व्याप्यत्वावच्छिन्नविषयता-
निरूपितपक्षतावच्छेदकावच्छिन्नविषयताशालिनिश्चयोत्तरानुमितिं प्रति
व्याप्यत्वावच्छिन्नविषयतानिरूपितपक्षतावच्छेदकावच्छिन्नविषयताशालिनि-
श्चयत्वेन एकरूपेणानुमितिहेतुत्वं, अत एव व्याप्य-पक्षोभयवैशिष्ट्यावगाहि-
निश्चयत्वावच्छिन्नकारणताप्रतियोगिककार्यताघटितमेवानुमितिलक्षणं दी-
धीतिहता खीकृतं। न च संयोगसम्बन्धावच्छिन्नवज्रिव्याप्यत्वेन गृहीत-
धूमस्य समवायेन धूमावयवे परामर्शात् संयोगेन धूमावयवे वज्रेरनुमि-
त्यनुत्पादात् तत्सम्बन्धावच्छिन्नं यत् वज्रिव्याप्यत्वं तदवच्छिन्नतत्सम्बन्धा-
वच्छिन्नविषयतानिरूपित-पक्षतावच्छेदकावच्छिन्नविषयताशालि-निश्चयत्वेन
कारणत्वमवश्यं वक्तव्यं, तथाच वज्रिव्याप्यधूमः पर्वते इति परामर्शीय-

वक्रियाप्यधूमत्वावच्छिन्नविशेष्यताया व्याप्यतावच्छेदकीभूतसंयोगसम्बन्धा-
वच्छिन्नत्वविरहात् कथं पक्षविशेष्यकपरामर्श-निष्कृष्टविशेष्यकपरामर्शयो-
रेकरूपेण हेतुत्वमिति वाच्यम् । हेतुतावच्छेदकसम्बन्धानवच्छिन्नप्रकारता-
भिन्ना या व्याप्यत्वावच्छिन्नविषयता तन्निरूपिता या हेतुतावच्छेदकसम्बन्धा-
वच्छिन्नाधेयत्वसम्बन्धानवच्छिन्नप्रकारताभिन्नपक्षतावच्छेदकावच्छिन्नविषयता
तादृशविषयताशक्तिनिश्चयत्वेन अनुमितिं प्रति हेतुत्वात् नोक्तदोषावसरः ।
वक्रियाप्यधूमवान् पर्वत इति ज्ञानीयकालिकसम्बन्धावच्छिन्नधूमप्रका-
रताया हेतुतावच्छेदकसम्बन्धानवच्छिन्नप्रकारतात्वेन वक्रियाप्यधूमः पर्वत-
वान् इति ज्ञानीयकालिकसम्बन्धावच्छिन्नपर्वतप्रकारतायाः संयोगसम्बन्धा-
वच्छिन्नाधेयत्वसम्बन्धानवच्छिन्नप्रकारतात्वेन निरुक्तज्ञानयोः तादृशानुगत-
धर्मानाक्रान्तत्वेन न तादृशज्ञानद्वयादनुमित्यापत्तिः संयोगसम्बन्धेन वक्रि-
व्याप्यधूमप्रकारक-पर्वतविशेष्यकज्ञानीयपर्वतनिष्ठविशेष्यतायाः हेतुतावच्छे-
दकसम्बन्धावच्छिन्नाधेयत्वसम्बन्धानवच्छिन्नत्वेऽपि प्रकारतात्वविरहेण हेतुता-
वच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नाधेयत्वसम्बन्धानवच्छिन्नप्रकारताभिन्नत्वमक्षतमेव, एवं
वक्रियाप्यधूमः पर्वते इति ज्ञानीयधूमनिष्ठविशेष्यतायाः हेतुतावच्छेदक-
सम्बन्धानवच्छिन्नत्वेऽपि प्रकारतात्वविरहात् पक्षविशेष्यकपरामर्श-निष्कृष्टविशे-
ष्यकपरामर्शयोः सङ्ग्रहः । न चैवमपि वक्रियाप्यधूमवत्पर्वतवान् देश-
इति ज्ञानीयपर्वतनिष्ठप्रकारत्व-विशेष्यत्वयोरैकोन हेतुतावच्छेदकसम्बन्धा-
वच्छिन्नाधेयत्वसम्बन्धानवच्छिन्नप्रकारतात्वस्य तादृशज्ञानीयपर्वतनिष्ठविशे-
ष्यतायां सत्त्वात् तादृशज्ञानस्यानुगमानाक्रान्तत्वेन तादृशज्ञानादनुमित्यनु-
पपत्तिरिति वाच्यं । अन्तरा भासमानपदार्थनिष्ठप्रकारता-विशेष्यतयोरैक्ये
वक्रियाप्यधूमवत्पर्वतवान् इति ज्ञानीयवक्रियाप्यधूम-पर्वतत्वैतदुभयध-
र्मावच्छिन्नपर्वतनिष्ठप्रकारताया एव वक्रियाप्यधूमप्रकारतानिरूपितवि-
शेष्यतात्वेन पर्वतत्वनिष्ठप्रकारतानिरूपितत्वेन च पर्वतत्वप्रकारतानिरू-
पितवक्रियाप्यधूमावच्छिन्नविशेष्यतात्वापत्तिः, एवं पर्वतत्वप्रकारतानिरू-

पितृपर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यतात्वापत्तिः वज्रिव्याप्यधूमप्रकारतानिरूपितवज्रि-
व्याप्यधूमावच्छिन्नविशेष्यतात्वापत्तिश्च, अतः अवच्छेदकतानात्मकवज्रिव्याप्य-
धूमप्रकारतानिरूपिता पर्वतत्वावच्छिन्ना एका विशेष्यता अपरा च तादृश-
विशेष्यत्वावच्छिन्ना वज्रिव्याप्यधूम-पर्वतत्वोभयधर्मावच्छिन्ना प्रकारता स्वी-
कृतेत्येति तज्ज्ञानीयपर्वतनिष्ठविशेष्यतायाः हेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छि-
न्नाधेयत्वसम्बन्धानवच्छिन्नप्रकारताभिन्नत्वेन तादृशज्ञानादनुमितिर्निष्प्रत्यूहैव।
वस्तुतः पक्षमुख्यविशेष्यकपरामर्शादेवानुमितिः न तु व्याप्यविशेष्यक-पक्ष-
प्रकारकादिति मताभिप्रायेणेदं । एतेन वज्रिव्याप्यधूमवत्पर्वतवान् देश-
इति ज्ञानीयपर्वतनिष्ठविषयतायां वज्रिव्याप्यधूमप्रकारतानिरूपितत्वेनैव
पर्वतत्वावच्छिन्नत्वं न तु वज्रिव्याप्यधूमप्रकारतानिरूपितविशेष्यतात्वेन
वज्रिव्याप्यधूमावच्छिन्नत्वं किन्तु प्रकारतात्वेनैव उभयधर्मावच्छिन्नत्वमिति
मतानुसारेण प्रकारता-विशेष्यतयोरैक्येऽपि न स्वस्य स्वधर्मितावच्छेद-
कत्वापत्तिनिवन्धनदोष इति निरुक्तानुगमे तादृशज्ञानस्यासंग्रहो दुर्वार-
एवेति प्रत्युक्तम् ।

क्षेचित्तु हेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नव्याप्यप्रकारत्वानिरूपिता या हेतु-
तावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नाधेयत्वसम्बन्धानवच्छिन्ना प्रकारता तदन्यत्वस्य प-
क्षविषयतायां निवेशात् वज्रिव्याप्यधूमवत्पर्वतवान् देश इति ज्ञानस्यान्तरा
भासमानपदार्थनिष्ठप्रकारता-विशेष्यतयोरैक्येऽपि नासंग्रहः तदीयपर्वत-
निष्ठप्रकारतायाः संयोगसम्बन्धावच्छिन्नव्याप्यप्रकारतानिरूपितत्वेन हेतु-
तावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नव्याप्यप्रकारत्वानिरूपिता या प्रकारता तदन्य-
त्वस्य तत्राक्षतत्वात्, एवं व्याप्यत्वावच्छिन्नविषयतायामपि हेतुतावच्छेदक-
सम्बन्धावच्छिन्नाधेयत्वसम्बन्धावच्छिन्नपक्षप्रकारत्वानिरूपिता या हेतुताव-
च्छेदकसम्बन्धानवच्छिन्ना प्रकारता तदन्यत्वं निवेशनीयं अन्यथा संयोगसम्ब-
न्धावच्छिन्नाधेयत्वसम्बन्धेन व्याप्यांशे पक्षप्रकारकस्य पक्षव्याप्यवान् काल-
इति ज्ञानस्य नासंग्रहः इत्याहुः ।

ननु पर्वतो वज्रिव्याप्यधूमवान्न वेति संशयात् अनुमितिवारणाय पर्व-
 तत्वावच्छेदेन वज्रिव्याप्यधूमाभावाप्रकारकत्वे सति पर्वतधर्मिकवज्रिव्याप्य-
 धूमप्रकारकत्वरूपं निश्चयत्वं अनुमितिजनकतावच्छेदकं वाच्यं, एवं वज्रिव्याप्यो
 धूमः पर्वते न वा इति संशयादनुमितिवारणाय व्याप्यधर्मिकपक्षाभावाप्रका-
 रकत्वे सति व्याप्यधर्मिकपक्षप्रकारकत्वमनुमितिजनकतावच्छेदकं वक्तव्यं
 तथाच कथं पक्षविशेष्यक-शिकृविशेष्यकपक्षामर्शयोरेकरूपेण हेतुत्वं ।
 न च पक्षतावच्छेदकावच्छेदेन व्याप्याभावाप्रकारकत्वविशिष्टं सत् व्याप्यवि-
 शेष्यकाधेयतासम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकपक्षाभावाप्रकारकं यस्याप्यत्वाव-
 च्छिन्नविषयतानिरूपितपक्षतावच्छेदकावच्छिन्नविषयताशक्तिं ज्ञानं तत्त्वेन
 हेतुत्वान्नोक्तसंशयादनुमित्यापत्तिरिति वाच्यं । एवमपि पर्वतत्वसामाधिक-
 रण्येन वज्रिव्याप्यधूमाभावगाहिनः पर्वतत्वावच्छेदेन वज्रिव्याप्यधूमावगा-
 हिनश्च पर्वतो वज्रिव्याप्यधूमवान्न वेति संशयादनुमित्यापत्तिः तादृशसंशय-
 स्यापि पर्वतत्वावच्छेदेन वज्रिव्याप्यधूमाभावाप्रकारकत्वात् । न च पर्वतध-
 र्मिकवज्रिव्याप्यधूमाभावाप्रकारकत्वमेव ज्ञाने निवेशनीयं तथाच पर्वतत्वसा-
 मानाधिकरण्येन वज्रिव्याप्यधूमावगाहिनि पर्वतत्वावच्छेदेन वज्रिव्याप्यधूमा-
 वगाहिनि च संशये पर्वतधर्मिकवज्रिव्याप्यधूमाभावाप्रकारकत्वविरहात् न
 तादृशसंशयादनुमित्यापत्तिरिति वाच्यं । एवं सति पर्वतत्वसामानाधिकरण्येन
 वज्रिव्याप्यधूमावगाहिनः पर्वतत्वसामानाधिकरण्येन वज्रिव्याप्यधूमाभाव-
 गाहिनिश्चयादनुमित्यनुपपत्तिः तस्य पर्वतधर्मिकवज्रिव्याप्यधूमाभावाप्रकार-
 कत्वविरहात् इति चेदत्रोच्यते पर्वतत्वावच्छेदेन वज्रानुमितिं प्रति पर्वतत्वा-
 वच्छेदेनैव वज्रिव्याप्यधूमवत्तानिश्चयः कारणं पर्वतत्वसामानाधिकरण्येन
 वज्रिव्याप्यधूमपरामर्शात् पर्वतत्वावच्छेदेन वज्रानुमितेरस्वीकारात् पर्वतत्व-
 सामानाधिकरण्येन वज्रानुमितिं प्रति तु पर्वतत्वसामानाधिकरण्येन वज्र-
 व्याप्यधूमवत्तानिश्चयः कारणं, एवञ्च पर्वतत्वावच्छेदेन वज्रानुमितिं प्रति पर्व-
 तत्वव्यापक-वज्रिव्याप्यधूमप्रतियोगिक-संयोगसम्बन्धानवच्छिन्नप्रकारताभिन्न-

व्याप्यत्वावच्छिन्नविषयतानिरूपितपर्वतत्वव्यापकवह्नियूपधूमप्रतियोगिक-
संयोगसम्बन्धावच्छिन्नाधेयत्वसम्बन्धानवच्छिन्नप्रकारताभिन्नपक्षतावच्छेदकाव-
च्छिन्नविषयताशालिनिश्चयनिरुपकारणतायां पर्वतत्वावच्छेदेन वह्नियूपधूमा-
भावाप्रकारकत्वं व्यवच्छेदकं, एवं वह्नियूप्यत्वावच्छेदेन तादृशाधेयतासम्बन्धा-
वच्छिन्नपर्वताभावाप्रकारकत्वमप्यवच्छेदकं, पर्वतत्वसामानाधिकरण्येन वह्नानु-
मितिं प्रति पर्वतत्वसामानाधिकरण्येन वह्नियूपधूमवक्ताज्ञानकारणता-
यान्तु पर्वतत्वावच्छेदेन वह्नियूपधूमभावाप्रकारकत्वमवच्छेदकं इति न
पर्वतत्वसामानाधिकरण्येन वह्नियूपधूम-तदभावावगाहिनिश्चयादनुमित्य-
नुपपत्तिः । न च वह्नियूपो धूमः पर्वते वह्नियूपधूमाभाववांच्छ पर्वत-
इति समूहालम्बनज्ञानस्य पर्वतत्वावच्छेदेन वह्नियूपधूमाभावप्रकारकत्वेन
निश्चयत्वानुपपत्तिरिति तादृशपरामर्शदशायां अनुमित्यनुपपत्तिरिति
वाच्यं । प्राचीनमते पर्वतत्वावच्छेदेन वह्नियूपधूमाभाववत्ताबुद्धिं प्रति
वह्नियूपधूमिकस्य संयोगसम्बन्धावच्छिन्नाधेयत्वसम्बन्धेन पर्वतप्रकारक-
निश्चयस्यापि कार्यसहभावेन प्रतिबन्धकतया तादृशज्ञानस्याहार्थत्वेन
अनुमितिजनकतावच्छेदकीभूतानाहार्थत्वानाक्रान्ततया तादृशज्ञानादनु-
मित्यनुपपत्तिविरहात् इति ।

केचित्तु हेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नाधेयतासम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिता-
कपक्षाभावप्रकारत्वानिरूपिता या व्याप्यत्वावच्छिन्नविषयता तन्निरूपिता
या हेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नव्याप्याभावप्रकारत्वानिरूपितपक्षतावच्छे-
दकावच्छिन्नविषयता तच्छालिज्ञानत्वेन कारणत्वं संशये प्रकारताद्वयनिरू-
पिता एकैव विशेष्यता तथाच पर्वतो वह्नियूपधूमवान्न वेति संशये
या पक्षतावच्छेदकावच्छिन्नविषयता सा न व्याप्याभावप्रकारत्वानिरूपिता,
वह्नियूपधूमः पक्षे नवेति संशये च या तादृशधूमत्वावच्छिन्नविषयता
सा न पक्षाभावप्रकारत्वानिरूपितेति तादृशसंशययोर्न निश्चयत्वं
इत्याहुः ।

ननु पर्वतो वज्रिव्याप्यधूमवान् इदं ज्ञानं वज्रिव्याप्यधूमाभाववति वज्रिव्याप्यधूमप्रकारकमित्यप्रामाण्यज्ञानास्तन्दितपरामर्शात् पर्वते वज्रानुमितिवारणाय एवं वज्रिव्याप्यो धूमः पर्वते इदं ज्ञानं आधेयतासम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकपर्वताभाववति तेन सम्बन्धेन पर्वतप्रकारकमित्यप्रामाण्यज्ञानास्तन्दितव्याप्यविशेष्यकपरामर्शादनुमितिवारणाय च तादृशाप्रामाण्यज्ञानाभावद्वयं व्याप्यत्वावच्छिन्नविषयतानिरूपितपक्षतावच्छेदकावच्छिन्नविषयताशालिनिश्चयनिष्ठकारणतायां अवच्छेदकं अवश्यं वक्तव्यं, तथाच तयोर्विशेष्यविशेषणभावेन विनिगमनाविरहात् गुरुतरकार्य-कारणभावद्वयमावश्यकं, एवं पर्वतो वज्रिव्याप्यधूमवानिदं ज्ञानं आधेयतासम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकपर्वताभाववति तेन सम्बन्धेन पर्वतप्रकारकमित्यप्रामाण्यज्ञानास्तन्दितपरामर्शात् वज्रिव्याप्यो धूमः पर्वते इदं ज्ञानं वज्रिव्याप्याभाववति वज्रिव्याप्यप्रकारकमित्यप्रामाण्यज्ञानास्तन्दितपरामर्शाच्च सर्वानुमवसिद्धाया अनुमितेरपलापप्रसङ्गः । न च यद्यदप्रामाण्यज्ञानसत्त्वे पर्वतधर्मिकवज्रानुमितेरनुत्पादः तत्तदप्रामाण्यज्ञानाभावानामेव कारणतावच्छेदकतया विरुक्ताप्रामाण्यज्ञानाभादानां कारणतावच्छेदककोटौ चप्रविरुत्वाच्च तत्रानुपपत्तिः इति वाच्यं । यत्र वज्रिव्याप्यधूमवान् पर्वत इदं ज्ञानं आधेयतासम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकपर्वताभाववति तेन सम्बन्धेन पर्वतप्रकारकं भाविज्ञानञ्च तादृशं एवं भाविज्ञानञ्च वज्रभाववति वज्रप्रकारकत्वव्याप्यवदिदं ज्ञानञ्च वज्रिव्याप्यधूमाभाववति वज्रिव्याप्यधूमप्रकारकत्वव्याप्यवत् वज्रिव्याप्यधूमस्य पर्वतव्याप्यवानिति समूहालम्बनपरामर्शः तदुत्तरं पर्वतो वज्रिमान् वज्रिव्याप्यो धूमश्च पर्वते तज्ज्ञानञ्च वज्रिव्याप्यधूमाभाववति धूमप्रकारकं वज्रभाववति वज्रप्रकारकं इति समूहालम्बनानुमितिः तदुत्तरं पुनर्वज्रानुमितिप्रसङ्गः एतादृशस्थलीयपूर्वपरामर्शधर्मिकाप्रामाण्यज्ञानस्य उत्तेजकत्वे अप्रामाण्यज्ञानास्तन्दितवज्रानुमित्यनुपपत्तिः अतस्तस्यानुत्तेजकत्वमवश्यं गन्तव्यं इत्ययिमक्षणे वज्रानुमितेरपत्तिर्निष्पत्त्यैव । न च पर्वतधर्मिक-

वक्रानुमितिं प्रति सिद्धेः प्रतिबन्धकतायां सिद्धिस्वरूपानुमितिधर्मिकतद-
प्रामाण्यज्ञानव्यक्तेरुत्तेजकत्वास्वीकारात् सिद्धिरूपप्रतिबन्धकवशादेव नोत्त-
रक्षणेऽनुमित्यापत्तिरिति वाच्यं । एवं सति वक्रिव्याप्यधूमधर्मिकपर्वतप्र-
कारकपरामर्शधर्मिकतादृशपरामर्शपूर्वोत्पन्नाप्रामाण्यज्ञानमाशात् तादृश
परामर्शद्वितीयक्षणेऽनुमितिर्न स्यात् इति चेत् । न । वक्रिव्याप्याभाववद्विशेष्य-
कत्वावच्छिन्नवक्रिव्याप्यप्रकारकत्वप्रकारतानिरूपितोभयावृत्तिधर्मावच्छिन्न-
ज्ञाननिष्ठविशेष्यताकज्ञानाभावविशिष्टव्याप्यत्वावच्छिन्नविषयतानिरूपिता
या पक्षाभाववद्विशेष्यकत्वावच्छिन्नपक्षप्रकारताकत्वप्रकारतानिरूपितोभ-
यावृत्तिधर्मावच्छिन्न-ज्ञाननिष्ठविशेष्यताक-ज्ञानाभावविशिष्टपक्षतावच्छेद-
कावच्छिन्नविषयता तादृशविषयताशालिज्ञानत्वेन हेतुत्वस्योक्तत्वात्, व्या-
प्यत्वावच्छिन्नविषयतायां तादृशाभावश्च स्वविशेष्यताश्रयनिरूपितत्वं स्वी-
यविशेष्यतानिरूपितप्रकारताकत्वावच्छिन्नविषयतानिरूपितव्याप्यत्वावच्छिन्न-
विषयतानिरूपित-व्याप्तित्वावच्छिन्नविषयतानिरूपित-विषयतावच्छेदकवक्रि-
त्वावच्छिन्नविषयतानिरूपितव्याप्तित्वावच्छिन्नविषयतानिरूपिता सती या
पक्षतावच्छेदकावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपिताप्रकारता तत्त्वञ्च एतदुभयसम्ब-
न्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकः, एवं पक्षविशेष्यतायां तादृशज्ञानाभावः स्वीय-
विशेष्यताश्रयनिरूपितत्वं स्वीयप्रकारकत्वत्वावच्छिन्नविषयतानिरूपितविष-
यतावच्छेदकं यत्पक्षतावच्छेदकं तदवच्छिन्नत्वे सति साध्यव्याप्यत्वावच्छिन्न-
विशेष्यतानिरूपितप्रकारतात्वञ्च एतदुभयसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकः,
एवञ्च वक्रिव्याप्यधूमः पर्वते इदं ज्ञानं वक्रिव्याप्याभाववति वक्रि-
व्याप्यप्रकारकं इत्यप्रामाण्यज्ञानास्कन्धितपरामर्शानुमितिः निर्म्व इति
तथाहि तादृशाप्रामाण्यज्ञानस्य विशेष्यीभूतं वक्रिव्याप्यो धूमः पर्वते
इत्याकारकज्ञानं तन्निरूपितत्वस्य तद्व्याप्यव्याप्यत्वावच्छिन्नविशेष्यतायां
सत्येऽपि तादृशाप्रामाण्यज्ञानोपकारकत्वत्वावच्छिन्नविषयतानिरूपित-
व्याप्यत्वावच्छिन्नविषयतानिरूपितव्याप्तित्वावच्छिन्नविषयतानिरूपितविषय-

तावच्छेदकीभूतवह्नित्वावच्छिन्नविषयतानिरूपितव्याप्तितावच्छिन्नविषयतानिरूपितप्रकारतात्वस्य तत्र विरहात् निरुक्तोभयसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकनिरुक्ताप्रामाण्यज्ञानाभाववत्त्वं तत्राक्षतमेव, ज्ञानभेदेन च विषयताभेदमते अयं परिष्कारः न तु समानाकारकज्ञानस्यैकविषयतावादिमते, तथा सति वह्नित्वाप्यधूमवान् पर्वत इदं ज्ञानं वह्नित्वाप्यधूमाभाववति वह्नित्वाप्यधूमप्रकारकं इत्यप्रामाण्यज्ञानास्कन्दितपरामर्शोऽयं या विषयता तस्या एव अप्रामाण्यज्ञानास्कन्दिततादृशपरामर्शवतया अप्रामाण्यज्ञानास्कन्दितज्ञानीयव्याप्यत्वावच्छिन्नविषयतायामपि निरुक्ताप्रामाण्यज्ञानविशेष्योभूतपरामर्शनिरूपितत्वघटितोभयसम्बन्धेन अप्रामाण्यज्ञानसत्त्वात् अप्रामाण्यज्ञानास्कन्दितपरामर्शादनुमित्यभावापत्तेः एवं प्रकारेण इदं ज्ञानं पक्षाभाववति पक्षप्रकारकमित्यप्रामाण्यज्ञानास्कन्दितवह्नित्वाप्यधूमप्रकारक-पर्वतविशेष्यकपरामर्शात् अनुमितिनिर्व्विहः । न च स्वविशेष्योभूतज्ञाननिरूपितत्व-स्वीयप्रकारत्वत्वावच्छिन्नविषयताश्रयीभूतप्रकारतानिरूपकत्वेतदुभयसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकाप्रामाण्यज्ञानाभाववैशिष्ट्यमेव व्याप्यत्वावच्छिन्नविषयतायां निवेश्यतां किं गुरुतरोक्तसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावनिवेशनेति वाच्यं । एवं सति वह्नित्वाप्यधूमवान् पर्वत इदं ज्ञानं वह्नित्वाप्यधूमाभाववति वह्नित्वाप्यधूमप्रकारकमित्यप्रामाण्यज्ञानमेव वह्नित्वाप्यत्वावच्छिन्ननिरूपितप्रकारितात्वेन ज्ञानान्तरीयप्रकारितामवगाह्य वृत्तं तादृशाप्रामाण्यज्ञानास्कन्दितपरामर्शात् सर्वानुभवसिद्धानुमित्यनुत्पादस्यापलापप्रसङ्गात् तादृशज्ञानीयप्रकारितात्वावच्छिन्नप्रकारिताश्रयीभूतज्ञानान्तरीयप्रकारितानिरूपकत्वस्य तादृशपरामर्शोऽयं विषयतायां विरहात् । एवमिदं ज्ञानं पक्षाभाववति पक्षप्रकारकमित्यप्रामाण्यज्ञानाभावस्यापि उक्तगुरुतरसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वव्यावृत्तिः स्वयमूहनीया । अत्रेदमवधेयं वह्नित्वाप्यधूमत्वावच्छिन्नविषयतानिरूपितपर्वतत्वावच्छिन्नविषयताशालिनिश्चयोत्तरपर्वतधर्मिकव-

ज्ञानुमितिं प्रति तादृशनिश्चयत्वेन हेतुत्वे वक्रिव्याप्यधूमप्रकारकपर्वतवि-
शेष्यकनिश्चयोत्तरानुमितिर्जायतामितीच्छातः पर्वते वक्रैः सिद्धिसत्त्वे
तादृशपरामर्शादेव पर्वते वक्रानुमितिर्जायते न तु वक्रिव्याप्यविशेष्यकप-
र्वतप्रकारकनिश्चयादिति नियमानुपपत्तिः, तथाहि तादृशेच्छाविरहवि-
शिष्टसिद्धभावस्य कार्य्यतावच्छेदकं यदि पर्वतधर्म्मिकवक्रिव्याप्यधूमप्रका-
रकनिश्चयोत्तरानुमितित्वं तदा यदा वक्रिव्याप्यधूमः पर्वते इति निश्च-
योऽस्ति निरुक्तसिद्धभावश्च वर्तते न पुनर्वक्रिव्याप्यधूमवान् पर्वत इति
परामर्शः तदापि पर्वतधर्म्मिकवक्रिव्याप्यधूमवत्तानिश्चयोत्तरानुमिति-
त्वावच्छिन्नस्य निरुक्तसिद्धभावात्मकपक्षतारूपकारणवलात् आपत्तिर्दुर्व्वा-
रैव, यदि च पर्वतधर्म्मिकवक्रिव्याप्यधूमवत्तानिश्चयोत्तरपर्वतधर्म्मिक-
वक्रानुमितित्वावच्छिन्नं प्रति पर्वतधर्म्मिकवक्रिव्याप्यधूमवत्तानिश्चयोत्तरानु-
मितिर्जायतामित्याकारकेच्छाविरहविशिष्टपर्वतधर्म्मिकवक्रिमत्त्वनिश्चया-
भावत्वेन कारणत्वं वक्रिव्याप्यधर्म्मिकाधेयतासम्बन्धेन पर्वतप्रकारक
निश्चयोत्तरपर्वतधर्म्मिकवक्रानुमितिं प्रति तादृशनिश्चयोत्तरानुमितित्वं-
प्रकारकेच्छाविरहविशिष्टसिद्धभावत्वेन कारणत्वं तदा यदा केवलं वक्रि-
व्याप्यधूमवान् पर्वत इति परामर्शा वर्तते सिद्धिश्च नास्ति तदोक्त-
पक्षतादयसत्त्वात् पक्षताकार्य्यतावच्छेदकीभूतवक्रिव्याप्यधूमवत्तानिश्चयो-
त्तरानुमितित्वावच्छिन्नस्येव व्याप्यधर्म्मिकपक्षप्रकारकनिश्चयोत्तरानुमिति-
त्वावच्छिन्नस्याप्यापत्तिः दुर्व्वारैव तादृशपक्षतादयस्य सत्त्वात् तत्कार्य्यता-
वच्छेदकावच्छिन्नापादनस्य सुघटत्वात् । अतएव सिद्धुत्तरानुमितिं प्रति
सिषाधयिषायाः कारणत्वे यत्र सिषाधयिषा वर्तते सिद्धिर्नास्ति तत्र
सिषाधयिषारूपकारणवलात् सिद्धुत्तरानुमितित्वावच्छिन्नापत्तिः मधुरा-
नाथेन पक्षताग्रथे दत्ता सिद्धुत्तरानुमितिं प्रति सिद्धेरपि हेतुत्वमुक्त्वा
तादृशापत्तिर्वारिता, एवञ्च पक्षताया इव परामर्शस्यापि पर्वतधर्म्मि-
कवक्रिव्याप्यधूमवत्तानिश्चयोत्तरानुमितित्वावच्छिन्नं प्रति तादृशनिश्चयत्वेन

एकं हेतुत्वं व्याप्यधर्मिकपक्षप्रकारकनिश्चयोत्तरानुमितिं प्रति तादृश-
निश्चयत्वेनापरं हेतुत्वं, एवञ्चैकविधपरामर्शसत्त्वे अन्यपक्षतावकात् नान्य-
विधानुमितित्वावच्छिन्नापत्तिः एकविधपक्षतायाः अन्यविधपरामर्शस्यास-
हकारित्वात्, एवञ्च मथुरानाथेन यद्व्याप्यत्वावच्छिन्नविषयतानिरूपित-
पक्षतावच्छेदकावच्छिन्नविषयताशाजिनिश्चयोत्तरानुमितित्वावच्छिन्नं प्रति
तादृशनिश्चयत्वेनैकरूपेण कारणत्वमुक्तं तत्पक्षता गुरुणामिव गव्यानामपि
मते नानुमितिहेतुरिति केवलान्वयिग्रथोक्तलिखनानुसारेणेति ।

नैयायिकमते व्याप्यत्वावच्छिन्नविषयतानिरूपितपक्षतावच्छेदकावच्छिन्न-
विषयताशाजिनिश्चयत्वेन कारणत्वं मीमांसकमते तु हेतुतावच्छेदकावच्छे-
देन व्याप्तिनिश्चयत्वं हेतुतावच्छेदकरूपेण पक्षधर्मतानिश्चयत्वञ्च दृग्दृश्य-चक्र-
त्वादिवत् कारणतावच्छेदकं, एतन्मते कारणतावच्छेदकलाघवासम्भवेऽपि
यत्र वज्रिव्याप्यो धूमः धूमवान् पर्वतः इति ज्ञानं तदुत्तरक्षणे मिथ्यादि-
प्रतिबन्धकवशात् न पर्वतो वज्रिमानित्यनुमितिः किन्तु वज्रिव्याप्यधूमवान्
पर्वत इति परामर्शः तत्र मीमांसकमतसिद्धकारणतावच्छेदकद्वयस्य स्वप्र-
काशवादिगुरुमते प्रथमोपस्थितत्वरूपलाघवसम्भवात् इति मथुरानाथे-
नोक्तं, अत्रेदं घिन्यते स्वप्रकाशवादिगुरुमते वज्रिव्याप्यधूम इति
ज्ञानकाले धूमे वज्रिव्याप्तिं जानामि इत्यनुव्यवसायो नियमतोजायते
विषयग्राहकसामग्र्याः विषयप्ररक्षारेण ज्ञानग्राहकत्वनियमात् न तु
तादृशज्ञानकाले धूमे वज्रिं निश्चिनोमीत्याकारकानुव्यवसायः व्याप्त्यभावा-
प्रकारकत्वविशिष्टव्याप्तिप्रकारकज्ञानत्वर्यवसम्भस्य व्याप्तिनिश्चयत्वस्य ज्ञाने
व्याप्तिप्रकारकत्वे व्याप्त्यभावाप्रकारकत्ववैशिष्ट्याहकसामग्र्या अतिरिक्ताया-
अपेक्षणीयत्वात्, तथाच यत्र व्याप्त्यभावाप्रकारकत्ववैशिष्ट्याहकसामग्री
नास्ति किन्तु व्याप्त्यभावाप्रकारकत्ववैशिष्ट्याहकसामग्री वर्तते तत्र वज्रि-
व्याप्यधूमवान् पर्वत इति ज्ञानकाले पर्वते वज्रिव्याप्यं निश्चिनोमि इत्ये-
वानुव्यवसायो जायते न तु धूमे वज्रिव्याप्तिं निश्चिनोमीत्यनुव्यवसायः,

निश्चयत्वमेवानुमितिकारणतावच्छेदकमिति भावः । यद्वा 'पक्षध-
र्मस्य' पक्षतावच्छेदकस्य, 'व्याप्तिविशिष्टज्ञानं' व्याप्यवच्छिन्नविषय-
ताशालिज्ञानं, पक्षतावच्छेदकस्येत्यत्र स्वावच्छिन्नविषयतानिरूपितत्वं
षष्ठ्यर्थः, तस्य च व्याप्यवच्छिन्नविषयतायामन्वयः, तथाच पक्षता-
वच्छेदकावच्छिन्नविषयतानिरूपित-व्याप्यवच्छिन्नविषयताशालिज्ञा-
नमेवानुमितिहेतुरिति पूर्वोक्त एव शब्दार्थः ।

यत्तु 'पक्षधर्मस्य' पक्षतावच्छेदकावच्छिन्नस्य, सप्तम्यर्थे षष्ठौ,
'व्याप्तिविशिष्टज्ञानं' व्याप्तिविशिष्टप्रकारकज्ञानं, पक्षतावच्छेदकाव-
च्छिन्ने व्याप्तिविशिष्टवैशिष्ट्यावगाहिज्ञानमिति यावत्, तदेवानुमि-
तिहेतुरित्यर्थः, नव्यनये पक्षतावच्छेदकावच्छिन्नविशेष्यकव्याप्ति-
विशिष्टवैशिष्ट्यावगाहिज्ञानस्यैवानुमितिहेतुत्वादिति वदन्ति । तद-
सत् । अग्रे व्याप्यविशेष्यकपरामर्शस्यापि हेतुत्वेन वक्तव्यत्वान्तदसङ्ग-
त्वापत्तेः ।

भट्टाचार्यास्तु ननु प्राचां नये पक्ष-व्याप्तिविशिष्टोभयवैशिष्ट्या-
वगाहिनिश्चयत्वावच्छिन्नकारणताप्रतियोगिक-कार्यताघटितमनुमि-
तिलक्षणं प्रागुक्तं तस्यासम्भवि वज्जिव्याघ्रो धूमः धूमवान् पर्वत इति
ज्ञानादथनुमित्युत्पत्तेः तेन रूपेणानुमित्यहेतुत्वादित्यत आह,
'पक्षधर्मस्येति, अर्थस्तु पूर्ववत्, इत्यनुमितिलक्षणोपोद्घातसङ्गत्या
प्रकृतपन्थमवतारयन्ति ।

गुरुः प्रत्यवतिष्ठते, 'नन्विति, 'व्याप्यतावच्छेदकप्रकारेण'

तथाच गुरुमतेऽपि नैयायिकमतसिद्धकारणतावच्छेदकस्य प्रथमोपस्थि-
तत्वरूपलाघवं सम्भवतीति ।

धूमत्वादिप्रकारेण, 'व्याप्तिस्मरणं' व्याप्तिनिश्चयत्वं, व्याप्तिस्मरणत्व-
 प्रवेशे व्याप्यनुभवादनुमित्यनुत्पादापत्तेः, 'पक्षधर्मताज्ञानं' व्याप्यता-
 वच्छेदकप्रकारेण पक्षधर्मतानिश्चयत्वं, धूमत्वाद्यवच्छिन्नविषयतानि-
 रूपित-पक्षतावच्छेदकावच्छिन्नविषयताशालिनिश्चयत्वमिति यावत्,
 'तथा' धूमत्वाद्यवच्छिन्नलिङ्गकानुमितिं प्रति कारणतावच्छेदकं,
 तथाच धूमत्वाद्यवच्छिन्नलिङ्गकानुमितिं प्रति धूमत्वावच्छिन्नविशेष्य-
 ताकव्याप्तिनिश्चयत्वं धूमत्वाद्यवच्छिन्नविषयतानिरूपितपक्षतावच्छेद-
 कावच्छिन्नविषयताशालिनिश्चयत्वञ्च द्वयं दण्डत्व-चक्रत्ववत्कारणताव-
 च्छेदकं, लिङ्गविशेषणकं व्याप्तिज्ञानञ्च^(१) नानुमितिहेतुः, नवैरपि
 तस्मादनुमित्यनभ्युपगमात् इति भावः । 'लाघवादिति नैयायिका-
 भिमतनिरुक्तविषयताशालिनिश्चयत्वरूपकारणतावच्छेदकमपेक्ष्यास्म-
 दुक्तैतत्कारणतावच्छेदकद्वयस्य कुत्रचित् प्राथमिकप्रत्यक्षोपस्थितत्वरू-
 पलाघवादित्यर्थः, यत्र प्रथमं वज्रिव्याप्यधूमः धूमवान् पर्वत इति
 ज्ञानं ततः सिद्ध्यादिप्रतिबन्धकवशेन नानुमितिः सामग्रीविरहात्
 किन्तु वज्रिव्याप्यधूमवान् पर्वत इति विशिष्टपरामर्शस्तत्रैव^(२)
 स्वप्रकाशवादिनां गुरुणां मते तदभिमतस्य कारणतावच्छेद-
 कद्वयस्य नैयायिकाभिमतकारणतावच्छेदकमपेक्ष्य प्रथमं साक्षात्-
 कृतत्वात् तदाश्रयात्मकस्य^(३) तत्प्रत्यक्षस्यैव प्रथममुत्पन्नत्वात् ।
 न चैवं यत्र प्रथमत एव वज्रिव्याप्यधूमवान् पर्वत इति स्मरणा-

(१) व्याप्तिधूमे इत्याकारकज्ञानश्चेत्यर्थः ।

(२) सिद्ध्यादिप्रतिबन्धकवशेनानुमितिसामग्रीविरहात् वज्रिव्याप्यधूम-
 वान् पर्वत इति विशिष्टपरामर्शस्तत्रैवेति क० ख० ।

(३) कारणतावच्छेदकाश्रयात्मकस्येत्यर्थः ।

द्यात्मको विशिष्टेपरामर्शस्तत्र नैयायिकसिद्धकारणतावच्छेदकस्यापि स्वप्रकाशवादिनां गुरुणां नये प्राथमिकप्रत्यक्षविषयत्वमिति वाच्यं । न्यायमतसिद्धकारणतावच्छेदकस्य गुरुमतसिद्धकारणतावच्छेदकद्वय- व्याप्यतया स्वप्रकाशमर्थ्यादया तत्प्रत्यक्षदशायां गुरुमतसिद्धकारण- तावच्छेदकद्वयस्यावश्यं प्रत्यक्षोत्पत्तेरित्यभिमानः^(१), यदा कदाचि- त्प्राथमिकप्रत्यक्षविषयत्वस्य कारणतावच्छेदकतायामविनिगमकत्वात् कल्पनालाघवं विनिगमकमाह, 'परामर्शहेतुत्वेनेति न्यायनये वज्जि- व्याप्यधूमवान् पर्वत इत्यादिविशिष्टपरामर्शस्यानुमितिहेतुत्वेनेत्यर्थः, 'आवश्यकत्वादिति अस्मदुक्तकारणतावच्छेदकद्वयस्य अनुमित्यव- वहितपूर्ववर्तितावच्छेदकत्वेन उभयवासिद्धानुमितिनियतपूर्वव- र्तितावच्छेदकताकत्वादित्यर्थः, नैयायिकसिद्धयथोक्तविशिष्टपराम- र्शस्याप्यस्मदुक्तकारणतावच्छेदकद्वयाक्रान्तत्वात्, तथाच नैयायिकसिद्धे कारणतावच्छेदके अन्यथासिद्धानिरूपकत्व-नियतपूर्ववर्तितावच्छेद- कत्वयोर्द्वयोः कल्पनामपेक्ष्य नियतपूर्ववर्तितावच्छेदकत्वेनोभयवादि- सिद्धस्यास्मदुक्तकारणतावच्छेदकद्वयस्य अन्यथासिद्धानिरूपकत्वमात्र- कल्पनालाघवादिति भावः । यद्यपि न्यायनये वज्जिव्याप्यवानयं इति वज्जिव्याप्यतावच्छेदकाप्रकारकपरामर्शाद्यत्रानुमितिस्तत्र व्याप्यता- वच्छेदकप्रकारकव्याप्तिनिश्चयाद्यभावेन मीमांसकाभिमतकारणता- वच्छेदकद्वयस्याप्युभयवासिद्धनियतपूर्ववर्तितावच्छेदकतया द्वयोः कल्पनमविशिष्टं तथाप्यस्य दोषस्य ग्रन्थकृतैवाग्रे वक्ष्यमाणत्वान्नासङ्गतिः ।

(१) धूमत्वसाभानाधिकरण्येन वज्जिव्याप्यवगाहिनि वज्जिव्याप्यधूमवान् पर्वत इति ज्ञान एव व्यभिचारान्न व्याप्यत्वमित्याशयेनोक्तं व्यभिमान इति ।

प्राञ्चस्तु 'परामर्शहेतुत्वेनेति व्याप्यतावच्छेदकप्रकारकव्याप्ति-
निश्चय-व्याप्यतावच्छेदकप्रकारकपक्षधर्मतानिश्चययोः वक्त्रिव्याप्यधूम-
वान् पर्वत इत्यादिनैयायिकाभिमतानुमितिकारणीभूतविशिष्ट-
परामर्शं प्रति जनकत्वेनेत्यर्थः, 'आवश्यकत्वादिति असदुक्तकारणताव-
च्छेदकद्वयस्य उभयवादिस्तिष्ठानुमितिनियतपूर्ववर्त्तितावच्छेदकता-
कत्वादित्यर्थः^(१) । न च वक्त्रिव्याप्यधूम इत्यादिव्याप्यतावच्छेदक-
प्रकारकव्याप्तिनिश्चयस्य विशेषणतावच्छेदकादिप्रकारकज्ञानविधया
विशिष्टपरामर्शजनकत्वेऽपि^(२) धूमवान् पर्वत इत्यादिव्याप्यताव-
च्छेदकप्रकारकपक्षधर्मतानिश्चयस्य न विशिष्टपरामर्शजनकत्वमिति
वाच्यं । तस्यापि पक्षतावच्छेदकादिप्रकारकज्ञानविधया विशिष्टप-
रामर्शजनकत्वादिति^(३) व्याचक्रुः । तदसत् । तथापि पक्षे लिङ्गवैशि-
ष्ट्यविषयत्वान्तर्भावेण जनकतया तदवच्छिन्नस्य नियतपूर्ववर्त्तित्वा-
सिद्धेः वक्त्रिव्याप्यो धूमः पर्वतश्च इत्यादिकेवलपर्वतत्वादिप्रकार-
कज्ञानादपि वक्त्रिव्याप्यधूमवान् पर्वत इत्यादिविशिष्टपरामर्शसम्भ-

(१) उभयवाद्यसिद्धनियतपूर्ववर्त्तितानवच्छेदकतयेति क० ।

(२) परामर्शस्य साध्यव्याप्तिविशिष्टहेतुवैशिष्ट्यावगाहित्वनियमेन परा-
मर्शं प्रति हेतुविशेष्यक-साध्यव्याप्तिप्रकारकनिश्चयस्य विशेषणतावच्छेदक-
प्रकारकनिश्चयविधया जनकत्वात् तादृशनिश्चयस्य अनुमितिनियतपूर्व-
वर्त्तित्वावश्यकत्वेऽपि पक्षविशेष्यकहेतुप्रकारकनिश्चयस्यानावश्यकत्वेन अनु-
मितिनियतपूर्ववर्त्तित्वमसिद्धमिति भावः ।

(३) विशिष्टबुद्धिं प्रति विशेषणज्ञानस्य सामान्यतो हेतुत्वेन हेतुमान्
पक्षे दृष्टाकारकज्ञानस्यापि पक्षतावच्छेदकादिविशिष्टबुद्ध्यात्मकपरामर्शं
प्रति विशेषणज्ञानविधया जनकत्वमिति भावः ।

वादिति ध्येयं । नन्वस्तु तदुभयरूपेण कारणत्वं किञ्चिच्छिन्नमित्यत-
 आह, 'एवञ्चेति, 'ज्ञानद्वयादेवेत्येवकारोऽप्यर्थः, नैयायिकसिद्धवि-
 शिष्टपरामर्शस्य धूमो वक्त्रिव्याप्यो धूमवांश्च पर्वत इति समूहा-
 लम्बनज्ञानस्य च यथोक्तकारणतावच्छेदकद्वयाक्रान्ततयावधारणा-
 सङ्गतेः, अत्र यथोक्तव्याप्य-पक्षोभयवैशिष्ट्यावगाहिनिश्चयत्वमनुमि-
 तिजनकतावच्छेदकं न वा तादृशनिश्चयासमानकालीनं वक्त्रिव्याप्यो
 धूमो धूमवान् पर्वत इति ज्ञानमनुमित्युपधायकं न वेत्यादयो
 विप्रतिपत्तयः, व्याप्तिविशिष्टवैशिष्ट्यावगाहिनिश्चयस्यैवानुमितिजन-
 कत्वमिति नये^(१) व्याप्तिविशिष्टवैशिष्ट्यावगाहिनिश्चयत्वं अनुमि-
 तिजनकतावच्छेदकं वा इत्यपि विप्रतिपत्तिः सम्भवति, वक्त्रिव्या-
 प्यधूमवानयं इति ज्ञानं अनुमित्युपधायकं वेति न विप्रति-
 पत्तिः परनयेऽपि तादृशज्ञानादनुमित्युत्पत्तेरिति ध्येयं । 'व्याप्य-
 त्वज्ञानमेवेति व्याप्यत्वावच्छिन्नविषयतानिरूपितपक्षतावच्छेदकाव-
 च्छिन्नविषयताशालिनिश्चय एवेत्यर्थः, 'लाघवात्' कारणतावच्छे-
 दकलाघवात्, 'आवश्यकत्वाच्चेति परनयेऽपि तादृशविशिष्टविषय-
 ताशालिनिश्चयस्यानुमितिहेतुत्वावश्यकत्वाच्चेत्यर्थः, 'उपजीव्यत्वाच्चेति
 क्वचित् पाठः तत्र तादृशविषयताशालिनिश्चयस्य परनयेऽप्यनुमितिं
 प्रति कारणत्वाच्चेत्यर्थः । अनुमित्युत्पत्त्यव्यवहितपूर्वं तादृशविशिष्ट-
 विषयताशालिनिश्चयः कापि नास्तीति भ्रमेण दूषयति, 'तस्येति
 तादृशविशिष्टविषयताशालिनिश्चयस्येत्यर्थः, 'अनुमितेः पूर्वं' अनु-

(१) नयनये इत्यर्थः ।

मित्यव्यवहितपूर्वं, 'असिद्धौ' असत्त्वेन, 'युगपदुपस्थित्यभावादिति एकस्मिन् क्षणेऽव्यवहितपूर्वत्व-कालिकविशेषणताभ्यामनुमिति-तादृ-शविषयताशालिविशिष्टपरामर्शयोरुपस्थित्यभावादित्यर्थः, तथाच यदा अव्यवहितपूर्वत्वसम्बन्धेन कार्यं तदा कालिकसम्बन्धेन कारण-तावच्छेदकावच्छिन्नमित्यन्वयसहचारज्ञानस्य कारणताग्राहकस्याभा-वात् कारणताग्रहासम्भव इति भावः ।

केचित्तु 'व्याप्यत्वज्ञानमेवेति व्याप्तिप्रकारकज्ञानमेवेत्यर्थः,(१) एवकारात् व्याप्यतावच्छेदकावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपितत्वस्य व्याप्ति-प्रकारताविशेषणस्य व्यवच्छेदः, 'लाघवादिति व्याप्यतावच्छेदकाव-च्छिन्नविशेष्यतानिरूपितव्याप्तिप्रकारताशालिनिश्चयत्वमपेक्ष्य व्याप्ति-प्रकारकनिश्चयत्वस्यावच्छेदकस्य स्वधृत्वादित्यर्थः, कल्पनालाघवमाह, 'आवश्यकत्वाच्चेति व्याप्यतावच्छेदकावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपितव्या-प्तिप्रकारताशालिनिश्चयत्वावच्छिन्नस्य नियतपूर्ववर्त्तित्वेन व्याप्ति-प्रकारकनिश्चयत्वावच्छिन्नस्य नियतपूर्ववर्त्तिताया आवश्यकत्वाच्चे-त्यर्थः, 'उपजीव्यत्वाच्चेति पाठे व्याप्तिप्रकारकनिश्चयत्वावच्छिन्नस्य व्याप्यतावच्छेदकावच्छिन्न-विशेष्यतानिरूपितव्याप्तिप्रकारताशालिनि-श्चयत्वावच्छिन्नव्यापकत्वाच्चेत्यर्थः, तथाच नियतपूर्ववर्त्तित्वमुभयवादि-सिद्धमिति भावः, इत्याहुः । तदसत् । 'तस्येत्यादिदूषणसङ्गतेः, अनुमितेः पूर्वं व्याप्तिप्रकारकज्ञानस्य उभयवादिसिद्धत्वादिति ध्येयं ।

(१) व्याप्तिज्ञानस्य करणविधया कारणत्वं न तु परामर्शात्मकव्यापार-विधया इति केषाञ्चिदभिप्रायः ।

अथ यथा तत्ताविशिष्टस्मरणे सतीन्द्रियसन्निकृष्टे स
 एवायमित्यभेदप्रत्ययो भवति तथेन्द्रियसन्निकृष्टे धूमे
 वह्निव्याप्यधमस्मरणे धूमत्वासाधारणधर्मदर्शनाद्या-
 प्योऽयमित्यभेदप्रत्ययः स्यात् सामग्र्या वृत्तत्वादिति स
 एवानुमितिहेतुरिति चेत् । न । प्रत्यक्षसाग्रीतोऽनु-

अनुमित्यव्यवहितपूर्वं तादृशविशिष्टविषयताशालिनिश्चयस्या-
 सिद्धिं परिहरति, 'अथेति, 'वह्निव्याप्यधूमस्मरण इति, धूमवान्
 पर्वत इति ज्ञाने चेति शेषः, 'धूमत्वासाधारणेति धूमत्वरूपव्याप्य-
 धर्मदर्शनात् इत्यर्थः, एतच्च संशयोत्तरं प्रत्यक्षाभिप्रायेण, 'व्याप्यो-
 ऽयमितीति अनुमित्यव्यवहितपूर्वं वह्निव्याप्योऽयं पर्वते इत्या-
 कारकनिरुक्तविषयताशालिनिश्चयात्मकः समूहालम्बनाभेदप्रत्ययः
 स्यादित्यर्थः, 'सामग्र्या वृत्तत्वादिति अभेदप्रत्ययसामग्रीवृत्तत्वा-
 तादृशविषयताशालिनिश्चयस्यापि सामग्र्या वर्त्तमानत्वादित्यर्थः, 'स
 एवानुमितिहेतुरिति एवकारोऽप्यर्थे सोऽयनुमित्यव्यवहितपूर्व-
 वर्त्तीत्यर्थः । यद्वा एवकारोभिन्नक्रमेण सोऽनुमित्यव्यवहितपूर्व-
 वर्त्त्येवेत्यर्थः, 'व्याप्याभेदप्रत्यय इति तादृशविषयताशालिनिश्चयात्म-
 काभेदप्रत्यय इत्यर्थः, 'अन्यथा' अनुमितिसामग्र्या बलवत्त्वाभावे,
 'तव' नैयायिकस्य । 'स्मरत इति, पर्वत इत्युच्छृङ्खलज्ञानवत इति
 शेषः, 'प्रथमत एवेति अनुमित्यव्यवहितपूर्वमेवेत्यर्थः, 'भासते'
 पर्वतांशे विशेषणीभूते धूमे भासते, 'आप्तवाक्यादिति, वह्नि-
 व्याप्यधूमवान् पर्वत इति स्मरणं वेत्यपि बोध्यं । 'तत्रोभयचापीति,

मितिसामग्र्या बलवत्त्वात् अनुमितिरेवोत्पद्यते न तु व्याप्याभेदप्रत्ययः, अन्यथा तवापि परामर्शान्तरं परामर्शान्तरम् तदनुव्यवसायो वा भवेन्न त्वनुमितिः । अथ धूमो वह्निव्याप्य इति स्मरतः पर्वतीयधूमेन्द्रियसन्निकर्षे प्रथमत एव व्याप्ति-धूमत्वयोर्वैशिष्टं यत्र

अव्यवहितपूर्वत्व-कालिकविशेषणताभ्यां अनुमिति-तादृशविषयता-शालिनिश्चययोरन्वयसहचारज्ञानादिसत्त्वादिति भावः । 'लाघवादिति अवच्छेदकलाघवादित्यर्थः, न्यायनये च वह्निव्याप्यवानयमित्यादिव्याप्यतावच्छेदकाप्रकारकशाब्दादिपरामर्शादेव यत्रानुमितिस्तत्र व्याप्यतावच्छेदकप्रकारकव्याप्तिनिश्चयाद्यभावेन तदभिमतकारणतावच्छेदकद्वयस्याप्युभयवाद्यसिद्धनियतपूर्ववर्त्तितावच्छेदकताकतया^(१) कल्पनागौरवविरहाच्चेत्यपि बोध्यं, एतत्सूचनायैव यत्र चाप्तवाक्यादिति पूर्वमुक्तं, 'पक्षधर्मव्याप्यत्वज्ञानस्येति पक्षतावच्छेदकावच्छिन्नविषयतानिरूपितव्याप्यत्वावच्छिन्नविषयताशालिनिश्चयत्वस्येत्यर्थः, 'हेतुत्वकल्पनात्' हेतुतावच्छेदकत्वकल्पनात्, 'अन्यत्रापीति वह्निव्याप्यो धूमः धूमवान् पर्वत इति ज्ञानोत्तरं यत्रानुमितिस्तत्रापीत्यर्थः, 'तथेति अनुमितिसामग्र्यभावेन तादृशज्ञानाव्यवहितोत्तरोत्पन्नस्य तादृशविषयताशालिनिश्चयस्यैवानुमित्युपधायकत्वमित्यर्थः, 'लिङ्गे' लिङ्ग-पक्षोभयस्मिन्, 'प्रत्यक्षविशिष्टज्ञानेति

(१) उभयवादिसिद्धनियतपूर्ववर्त्तितानवच्छेदकतयेति क० ।

भासते विशेषणज्ञानस्य पूर्वं वृत्तत्वात् तत्र, यत्र चाप्त-
वाक्यादहिव्याप्यवानयमिति ज्ञानं तत्रोभयत्रापि स्ता-
घवात् पक्षधर्मव्याप्यत्वज्ञानस्य हेतुत्वकल्पनादन्य-
त्रापि तथेति चेत् । न । इन्द्रियासन्निकृष्टेऽतीन्द्रिये च
सिद्धे प्रत्यक्षविशिष्टज्ञानसामग्रीविरहात्तेन विनानु-
मित्यनुत्पादापत्तेः अस्मदुक्तसामग्र्याश्च तत्रापि सत्त्वात् ।

साध्यव्याप्यो हेतुर्हेतुमान् पर्वत इति ज्ञानोत्तरप्रात्यक्षिकतादृश-
विषयताशालिनिश्चयसामग्रीविरहादित्यर्थः, 'तेन विना' तादृश-
विषयताशालिनिश्चयेन विना, 'अनुमित्यनुत्पादेति, दृष्टापत्तौ
अनुभवविरोधादिति भावः । 'अनुमानादिति पक्षीयधूमो वक्त्रि-
व्याप्यो धूमत्वात् इत्यनुमानादिनेत्यर्थः, आदिपदाच्छाब्द-संस्का-
रादिपरिग्रहः, 'परामर्शः' साध्यव्याप्यो हेतुर्हेतुमांश्च पक्ष इति
ज्ञानाध्यवहितोत्तरं तादृशविषयताशालिनिश्चयः, 'अनवस्थानादिति
व्याप्तिप्रकारकज्ञानादेस्तदानीमनवस्थानात्^(१) इत्यर्थः ।

केचित्तु 'अनवस्थानादिति तदानीं धूममात्रमन्निकृष्टत्वेन
धूमत्वस्याप्यमन्निकृष्टतया विनाप्यनुमानं विशिष्टपरामर्शमभवेना-
नवस्थाप्रसङ्गादित्यर्थ इत्याहुः ।

'वहिरस्त्वन्तेणापीति वहिरिन्द्रियामहकारेण या वहिर्विषय-

न चानुमानात् तत्र परामर्शः, अनवस्थानात् । अथ
 यथा स देवदत्तो गौरो न वा परमाणूरूपाधिकरणं
 न वेति संशयो वहिरस्वतन्त्रेणापि मनसा कोटि-
 स्मरण-विशेषादर्शनादिसहकारिवशाज्जन्यते, यथा वा
 निद्रासहकारेण बाह्यस्वप्नानुभवः तथेहापि ज्ञानान्त-
 रोपनीतविशेष्ये व्याप्तिस्मरणसहकृतेन मनसा परा-

कलौकिकप्रत्यक्षजनकता तदनाश्रयेणेत्यर्थः, सहकारित्वस्य भेदगर्भ-
 तथा^(१) प्राणादेरेव तादृशजनकता प्रसिद्धा, प्राणादेरपि मनःसह-
 कारेण तादृशजनकत्वादप्रसिद्धिवारणाय वहिर्द्वं इन्द्रियविशेषणं,
 मनसोऽपि वहिरिन्द्रियासहकारेण सुखादिप्रत्यक्षजनकत्वादहिर्विष-
 यकत्वं प्रत्यक्षविशेषणं, 'निद्रेति, मेधा-मनःसंयोगः 'निद्रा', 'तथे-
 हापीति इन्द्रियासन्निकृष्टातौन्द्रियलिङ्गपक्षस्थलेऽपीत्यर्थः, साध्य-
 व्याप्यो हेतुः हेतुमान् पक्ष इति ज्ञानानन्तरमिति शेषः, 'ज्ञाना-
 न्तरोपनीतेति हेतुमान् पक्ष इति ज्ञानान्तरोपनीतविशेष्य इत्यर्थः,
 'व्याप्तिस्मरणेति साध्यव्याप्योहेतुरितिव्याप्तिस्मरणेत्यर्थः, 'परामर्शः'
 साध्यव्याप्यहेतुमान् पक्षइति निरुक्तविषयताशालिमानसनिश्चयः,
 'तदनन्तरमिति साध्यव्याप्यहेतुमान् पक्ष इत्यादिनिश्चयानन्तरमि-
 त्यर्थः, 'व्याप्तिस्मरणादेः' इन्द्रियासन्निकृष्टलिङ्गविशेष्यकप्रकृतव्या-
 प्तिस्मरणादेः, 'प्रमाणान्तरतापत्तेरिति पक्षविशेष्यक-तादृशल्लिङ्ग-

(१) तत्सहकारित्वस्य तद्विभक्त्ये सति तज्जन्यफलजनकत्वमिति भावः ।

मर्शो जन्यते तदनन्तरमनुमितिदर्शनादिति चेत् । न ।
व्याप्तिस्मरणादेः प्रमाणान्तरतापत्तेः, तदेव हि प्रमाणा-
न्तरं यदसाधारणं सहकारि समासाद्य मनोवहिर्गो-

प्रकारकमानसान्यप्रमायाः करणत्वापत्तेरित्यर्थः, अन्तरपदस्य स्वरू-
पार्थक्यत्वात् एवमग्रेऽपि, एतेन^(१) प्रमाणान्तरत्वं न प्रत्यक्षादिप्रमा-
णचतुष्टयभिन्नप्रमाणत्वं, असिद्धेः, नापि तच्चतुष्टयभिन्नत्वमात्रं,
वक्ष्यमाणापादकस्य इन्द्रियादौ मूलग्रैथिल्यापत्तेः, नापि प्रमाणा-
न्तरत्वं प्रमाणत्वमेव, व्याप्तिज्ञानस्यानुमानात्मकत्वादिष्टापत्तेः, प्रमा-
जनकत्वोक्तावपि विशिष्टपरामर्शात्मकप्रत्यक्षप्रमामानुमित्यात्मकप्रमा-
ञ्चादायेष्टापत्तेः । अत एव मानसातिरिक्तप्रमितिकरणत्वमपि न
तत्, अनुमितिमादाय दृष्टापत्तेः, नापि मानसप्रमित्यजनकत्वं,
नियतव्यापाराभावेन प्रमायामकरणत्वादित्यग्रिमसिद्धान्तासङ्गतेरिति
प्रत्युक्तं । आपत्तिवौजभूतां व्याप्तिं दर्शयति, 'तदेवहीति, 'हि'
यस्मात्, यदसाधारणं सहकार्यासाद्य मनः 'वहिर्गोचरां' यद्वा-
ञ्छार्थविशेष्यक-यत्प्रकारिकां, 'प्रमां' प्रत्यक्षप्रमितिं, जनयति तत्सर्वं
तदर्थविशेष्यक-तत्प्रकारकमानसान्यप्रमायाः करणं भवतीति योजना,
एवकारस्य साकल्यार्थकत्वात्, तथाच यद्वाञ्छार्थविशेष्यक-यदर्थप्रका-
रकप्रत्यक्षमितेर्मनोन्यासाधारणकारणं यद्भवति तत्तदर्थविशेष्यक-

(१) अन्तरपदस्य स्वरूपार्थकत्वेनेत्यर्थः ।

चरां प्रमां जनयति यथेन्द्रियादि, संशय-स्वप्नौ तु न प्रमे इति न निद्रादेः प्रमाणान्तरत्वम् । नच तवापि

तत्प्रकारकप्रमायाः करणं भवतीति व्याप्तिशरीरं^(१), सहकारित्वस्य

(१) यद्वाह्यार्थविशेष्यक तदर्धप्रकारक-प्रत्यक्षप्रमितिवृत्त्यनुभवत्वव्याप्य-
जात्यवच्छिन्नकार्यतानिरूपित-तादात्म्यसम्बन्धानवच्छिन्नकारणताश्रयत्वे सति
स्वभिन्नमनोभिन्नप्रमाणजन्यवृत्तिप्रत्यक्षत्वव्याप्यजात्यवच्छिन्नकार्यतानिरूपि-
तकारणतानाश्रयीभूतं यद्ववति तत्तद्वाह्यार्थविशेष्यक-तदर्धप्रकारकप्रमायाः
करणं भवतीति व्याप्तिशरीरं, दृष्टान्तश्च चक्षुरादिः, तथाच घटविशेष्यक-
घटत्वप्रकारकप्रमितिवृत्तिर्या अनुभवत्वव्याप्यजातिस्वाच्छुपत्वं तदवच्छिन्नका-
र्यतानिरूपिततादात्म्यसम्बन्धानवच्छिन्नचक्षुषावच्छिन्नकारणत्वं चक्षुषि वर्तते
एवं चक्षुर्भिन्नमनोभिन्नप्रमाणां यत् प्रागेन्द्रियं तज्जन्यवृत्तिप्रत्यक्षत्वव्याप्यं
यत् प्राणजत्वं तदवच्छिन्नकार्यतानिरूपित-कारणतानाश्रयत्वं तत्र स्थितं
तत्र घटविशेष्यक-घटत्वप्रकारकप्रमायाः करणत्वमस्ति । व्याप्तिस्मरणरू-
पोपनयस्य यदि व्याप्तिप्रकारकप्रत्यक्षत्वावच्छिन्नं प्रति कारणत्वं नैयायिकैः
स्वीक्रियते तदा व्याप्तिस्मरणोऽपि पर्वतविशेष्यकवज्रिव्याप्यधूमप्रकार-
कप्रत्यक्षप्रमितिवृत्त्यनुभवत्वव्याप्यप्रत्यक्षत्वरूपजात्यवच्छिन्नकार्यतानिरूपित-
कारणताश्रयत्वघटितापादकसत्त्वेन तत्र पर्वतविशेष्यक-वज्रिव्याप्यधूम-
प्रकारकप्रमायाः करणत्वापत्तिः । अत्र प्रमाकरणत्वमात्रस्यापाद्यत्वे पर्वत-
विशेष्यक-वज्रिप्रकारकानुमित्यात्मकप्रमामादाय व्याप्तिस्मरणे प्रमा-करण-
त्वस्येष्टापत्तिसम्भवात् तद्वाह्यार्थविशेष्यक तदर्धप्रकारकप्रमाकरणत्वस्या-
पाद्यत्वमनुसृतं । न च पर्वतोवज्रिव्याप्यधूकवान् पर्वतश्च वज्रिमान्
इति समूहाजम्बनानुमितिरूपप्रमाकरणत्वस्य पक्षीभूतव्याप्तिस्मरणे सत्त्वात्

वाह्यार्थविशेष्यकेत्याद्युपादानेऽपीष्टापत्तिर्वारयितुं न शक्यते । न च तदाह्या-
 र्थविशेष्यक-तदर्थप्रकारकप्रमायाः फलोपहितकरणत्वमेवापादनीयं तथाच
 धूमोवह्निव्याप्यधूमवान्पर्वतः इति स्मरणोत्तरं यत्र वह्निव्याप्यधूमवानिति
 मानसपरामर्शः तदनन्तरं पर्वतो वह्निमान् इत्यनुमितिः तत्स्थलीयव्याप्ति-
 स्मरणस्य पक्षतया तत्र निरुक्तसमूहालम्बनानुमितेः फलोपहितकरण-
 त्वाभावात् नेष्टापत्तिसम्भावेनेति वाच्यं । एवं सति घटविशेष्यक-घटत्व-
 प्रकारकप्रमितिवृत्त्यनुभवत्वव्याप्यचाक्षुषत्वावच्छिन्नकार्यतानिर्हरूपितचक्षुः-
 रूपस्वरूपयोग्यत्वकरणत्वस्य घटचाक्षुषानुपधायकौभूतचक्षुष्यपि सत्त्वात्
 तत्र घटविशेष्यक-घटत्वप्रकारक प्रमायाः फलोपहितकरणत्वाभावात् व्यभि-
 चारापत्तिरिति चेत् । न । स्वावृत्तित्व-स्वनिरूपितत्वैतदुभयसम्बन्धेन तद्वि-
 शेष्यक-तत्प्रकारकप्रमाविशिष्टं यत्कारणत्वं तदाश्रयस्य स्वावृत्तित्व-स्वनि-
 रूपितत्वैतदुभयसम्बन्धेन विशिष्टं यत्कारणत्वं तस्यैव तद्विशेष्यकतत्प्र-
 कारकप्रमाकरणत्वपदार्थत्वात् । न च प्रकृतव्याप्तिस्मरणादौ तस्येष्टापत्तिः,
 तथाहि पर्वतोवह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतश्च वह्निमानित्याकारिका या अनु-
 मितिस्वरूपप्रमा स्वावृत्तित्व-स्वनिरूपितत्वोभयसम्बन्धेन तद्विशिष्टा न
 पर्वतविशेष्यक-वह्निव्याप्यधूमप्रकारकनिश्चयत्वावच्छिन्ना कारणता किन्तु
 तादृशसमूहालम्बनानुमितिपूर्ववर्ति-परामर्शनिष्ठतद्व्यक्तित्वावच्छिन्नकारण-
 त्वैव तदाश्रयीभूततत्तत्परामर्शव्यक्तेः निरुक्तोभयसम्बन्धेन वैशिष्ट्यस्य प्रकृत-
 व्याप्तिस्मरणवृत्तिकारणतायां विरहात् नेष्टापत्तिसम्भावना । घटविशे-
 यक-घटत्वप्रकारकचाक्षुषस्य निरुक्तोभयसम्बन्धेनाधिकरणीभूतं यच्चक्षुः-
 संयोगत्वावच्छिन्नकारणत्वं तदाश्रयस्य निरुक्तोभयसम्बन्धेनाधिकरणत्वं
 चक्षुःचाक्षुषावच्छिन्नकारणतायामस्ति तत्कारणत्वस्य चक्षुषि सत्त्वात् न चक्षुषि
 दृष्टान्तासिद्धिः । पर्वतो वह्निमानित्याकारिका पर्वतविशेष्यका या प्रमा
 निरुक्तोभयसम्बन्धेन तदाश्रयीभूता या पर्वतगच्छक-वह्निव्याप्यधूमत्वावच्छिन्न-
 प्रकारकनिश्चयत्वावच्छिन्ना कारणता तदाश्रयीभूतस्य मानसपरामर्शस्य

निरुक्तोभयसम्बन्धेनाधिकरणीभूता या मानसपरामर्शनिष्ठतद्वाक्तित्वाव-
 च्छिन्नकार्यतानिरूपितव्याप्तिस्मरणनिष्ठतद्वाक्तित्वावच्छिन्नकारणता तदा-
 श्रयत्वस्य प्रकृतव्याप्तिस्मरणे नैयायिकैः द्रष्टापत्तिः कर्तुं शक्यतया
 यदर्थप्रकारकत्वोपादानं, मद्धानसं वज्रिव्याप्यधूमवत्पर्वतश्च वज्रिमान्
 इत्याकारकसमूहालम्बनानुमितिप्रमायाः निरुक्तोभयसम्बन्धेनाधिकरणीभूतं
 यत्पर्वतधर्मिकवज्रानुमितित्वावच्छिन्नकार्यतानिरूपित-पर्वतधर्मिकवज्रि-
 व्याप्यधूमप्रकारकनिश्चयत्वावच्छिन्नकारणत्वं तदाश्रयस्य मानसपरामर्शस्य
 निरुक्तोभयसम्बन्धेनाश्रयीभूतं यत्तद्वाक्तित्वावच्छिन्नव्याप्तिस्मरणनिष्ठकार-
 णत्वं तदाश्रयत्वस्य नैयायिकमते प्रकृतव्याप्तिस्मरणे द्रष्टृत्वात् यद्वाह्यार्थवि-
 श्लेष्यकत्वोपादानं, एवञ्च पर्वतोवज्रिव्याप्यधूमवान् पर्वतोवज्रिमांश्च इति
 समूहालम्बनानुमितिप्रमायाः निरूपितत्वस्य पर्वतधर्मिक-वज्रिव्याप्यधूम-
 प्रकारकनिश्चयत्वावच्छिन्नकारणतायां सत्त्वेऽपि न तादृशसमूहालम्बनानु-
 मित्यवृत्तित्वं इति निरुक्तोभयसम्बन्धेन न तादृशसमूहालम्बनप्रमामादाय
 द्रष्टापत्तिः । अत्र पर्वतोवज्रिव्याप्यवानित्याकारकानुमितिप्रमायाः स्वावृ-
 त्तित्वसम्बन्धेनाधिकरणीभूतं यत्पर्वतोवज्रिमानित्यनुमितिनिष्ठतदनुमिति-
 त्वावेच्छिन्नकार्यतानिरूपित-तन्मानसपरामर्शनिष्ठतद्वाक्तित्वावच्छिन्नकार-
 णत्वं तदाश्रयीभूतपरामर्शस्य निरुक्तोभयसम्बन्धेनाश्रयीभूतकारणताया-
 व्याप्तिस्मरणे सत्त्वाद्विष्टापत्तिरतः स्वनिरूपितत्वं प्रथमसम्बन्धद्वयघटक-
 मिति । न च वज्रिव्याप्यधूमविशिष्टपर्वतत्वावच्छिन्नविश्लेष्यकप्रमायाः निरु-
 क्तोभयसम्बन्धेनाधिकरणीभूतं यत्कारणत्वं तदाश्रयस्य निरुक्तोभयसम्बन्धेन
 विशिष्टं यत्कारणत्वं तदेवापाद्यता किं पर्वतत्वावच्छिन्नविश्लेष्यक-वज्रि-
 व्याप्यधूमप्रकारकप्रमावैशिष्ट्यस्य निवेशेन अखण्डवैशिष्ट्यनिवेशासम्भव एव
 लक्षणीनिरुक्तेः सार्थकत्वसम्भवात् इति वाच्यं । एवं सति वज्रिव्याप्यधूम-
 एव पर्वतत्वस्य धर्मितावच्छेदकतया यत्रानुमितौ भासते तादृशं यद्वज्रि-
 व्याप्यधूमवान् पर्वत इत्याकारकपर्वतोवज्रिमानितिसमूहालम्बनानुमित्या-

त्मकज्ञानं तदनुमित्यवृत्तित्वस्य वङ्गित्याप्यधूमप्रकारतानिरूपितपर्वतत्वा-
वच्छिन्नविशेष्यताशालिनिश्चयत्वावच्छिन्नकारणत्वे सत्त्वात् एवं तदनुमिति-
निरूपितत्वस्य च सत्त्वात् तादृशकारणताश्रयवैशिष्ट्यमादाय सिद्धसाधना-
पत्तिरतः पर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यक-वङ्गित्याप्यधूमत्वावच्छिन्नप्रकारताशा-
लिप्रमाया निरुक्तकारणत्वमापादितं, एवं जातिमान् वङ्गित्याप्यधूमवान्
पर्वतश्च वङ्गिमानिति समूहालम्बनानुमितिरूपप्रमायाः निरुक्तोभयसम्ब-
न्धेन वैशिष्ट्यस्य शुद्धपर्वतत्वावच्छिन्नोद्देश्यक-वङ्गित्यावच्छिन्नविधेयकानुमि-
तित्वावच्छिन्नकार्यतानिरूपित-शुद्धपर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यक-वङ्गित्याप्यधूम-
त्वावच्छिन्नप्रकारताशालिनिश्चयत्वावच्छिन्नकारणतामादाय सिद्धसाधनापत्तिः,
निरूप्य-निरूपकभावापन्नविधयताशालिप्रमाया निवेशे च शुद्धपर्वतत्वा-
वच्छिन्नविशेष्यक-वङ्गित्याप्यधूमप्रकारकप्रमायाः स्वावृत्तित्वसम्बन्धेन वैशि-
ष्ट्यस्य निरुक्तकारणतायामसत्त्वात् न तादृशकारणतामादाय सिद्धसाधन-
मिति, एवञ्च प्रमापदमपि सार्थकं भवति अन्यथा पर्वतोवङ्गित्याप्य-
धूमवान् पर्वतोवङ्गिमांश्चेति समूहालम्बनानुमितिरूपस्य इदं ज्ञानं
वङ्गित्याप्यधूमप्रमाभाववति वङ्गित्याप्यधूमप्रमाप्रकारकमित्यप्रामाण्यविष-
यकज्ञानस्य निरुक्तोभयसम्बन्धेन वैशिष्ट्यस्य तादृशनिरुक्तकारणतायां
सत्त्वादिव्यापत्तितादवस्थामिति, तथाच तादृशाप्रामाण्यज्ञानास्फुटितानु-
मितेर्भ्रमसामान्यभिन्नत्वरूपप्रमात्वविरहात् नेष्टापत्तिसम्भावना । न चैव-
मपि भाविज्ञानं वङ्गित्याप्यधूमाभाववति वङ्गित्याप्यधूमप्रकारकमित्य-
प्रामाण्यज्ञानं ततः पर्वतोवङ्गित्याप्यधूमवान् पर्वतोवङ्गिमांश्चेति समूहा-
लम्बनात्मिकानुमितिः तदनन्तरमपि तादृशानुमितिधर्मेकतादृशाप्रा-
माण्यज्ञानं तादृशानुमितावप्रामाण्यज्ञानाभावविशिष्टपरामर्शत्वावच्छिन्न-
कारणताया असत्त्वेन प्रमापदोपादानेऽपि नेष्टापत्तिव्युदास इति वाच्यं ।
प्रमापदेन एकक्षणावच्छेदेनैकात्म्यवृत्तित्वसम्बन्धेन भ्रमज्ञानविशिष्टान्यत्वस्य
विवक्षितत्वात् तादृशानुमितेश्च भ्रमात्मकाप्रामाण्यज्ञानविशिष्टान्यत्वान्न
दोषः ।

ननु भ्रमज्ञानविशिष्टान्यत्वविशिष्टपर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यक-वह्निय्याप्य-
धूमप्रकारकज्ञाननिरूपितकरणत्वापेक्षया केवलं प्रत्यक्षनिरूपितनिरुक्त-
कारणत्वमेवापाद्यतां तेनैव पर्वतोवह्निमानित्यनुमितिकरणत्वमादाय द्रष्टा-
पत्तिव्युदाससम्भवादिति चेत् । न । अनुमितेरपि प्राभाकरमतेऽनु-
मित्यनुव्यवसायरूपतया प्रत्यक्षकारणत्वनिवेशेऽपीष्टापत्तेर्वारणायोगात् ।
नन्वेवं यत्र पर्वतो वह्निमानित्याकारकानुमितिरेव पर्वते वह्निमनु-
मिनोमीत्याकारकप्रत्यक्षात्मिका तदुच्यते नुमितित्वावच्छिन्नकार्यत्वनिरूपित-
कारणत्वस्य वह्निय्याप्यधूमवान् पर्वत इति परामर्शे सत्त्वात् तत्र च
प्रमाकरणत्वविरहात् प्रमापदस्य प्रत्यक्षप्रमापरत्वेऽपि व्यभिचारोदुर्वार-
हवेति चेत् । न । यद्वाह्यार्थविशेष्यक-यदर्थप्रकारतायां साक्षात्कारत्व-
निरूपितत्वलाभाय प्रमापदस्य प्रत्यक्षपरत्वकथनात् तथाच पर्वतो-
वह्निमानित्यनुमितिकाले पर्वते वह्निं साक्षात्करोमीत्यनुव्यवसायाभावात्
साक्षात्कारत्वनिरूपितवह्निनिष्ठविषयताकत्वं न पर्वतोवह्निमानित्यनुमिते-
रिति नानुमितेः प्रत्यक्षत्वमतेऽपि परामर्शे व्यभिचारः ।

ननु चक्षुःसंयोगस्य कार्यतावच्छेदकं लौकिकविषयतासम्बन्धेन द्रव्य-
चाक्षुषत्वमेवं आलोकसंयोगस्यापि तथाच चक्षुःसंयोगादौ व्यभिचारस्यानु-
भवत्वव्याप्यजात्यवच्छिन्नकार्यतायां सत्यन्तदलप्रविष्टायां लौकिकविषय-
त्वानवच्छिन्नत्वस्य निवेशेऽपि वारयितुं शक्यते इति तद्वारणाय स्वभिन्न-
मनोभिन्नप्रमाणजन्यवृत्तिप्रत्यक्षत्वव्याप्यजात्यवच्छिन्नकार्यतानिरूपितकारण-
सानाश्रयत्वरूपप्रमाणान्तरासहकारित्वनिवेशनं व्यर्थमिति चेत् । न ।
सत्यन्तदलप्रविष्टानुभवत्वव्याप्यजात्यवच्छिन्नकार्यतायां लौकिकविषयत्वानव-
च्छिन्नत्वनिवेशे मनःसंयुक्तसमवाये व्यभिचारवारणाय मणिकुदुक्तार्थे वह्नि-
विशेषणस्य व्यर्थत्वापत्तेः आत्मसमवेतनिष्ठलौकिकविषयतासम्बन्धेन मान-
सत्वावच्छिन्नं प्रत्येव मनःसंयुक्तसमवायस्य कारणतया तत्र लौकिक-
विषयत्वानवच्छिन्नकार्यताप्रतियोगिककारणत्वाभावादेव व्यभिचाराप्रसङ्गेः ।

एवं चाक्षुषं प्रति चक्षुष्टेन यथा कारणता तथा चक्षुर्मनःसंयोग-
त्वेनापि अतएवोक्तं प्राचीनैः “आत्मा मनसा संयुज्यते मन इन्द्रियेण
इन्द्रियमर्थेन ततो ज्ञानं” इति, तथाच चाक्षुषं प्रति चक्षुर्मनोयोगत्वेन
कारणतामादाय चक्षुर्मनोयोगे व्यभिचारस्तादृशकार्यताया शौक्तिविश-
यत्वानवच्छिन्नत्वादतः स्वभिन्नमनोभिन्नप्रमाणजन्येत्यादिविशेष्यदत्तं, एवञ्च
चक्षुर्मनोयोगभिन्नं यच्चक्षुरूपं प्रमाणं तज्जन्यवृत्तिप्रत्यक्षत्वव्याप्या या
चाक्षुषत्वव्याप्यजातिः तदवच्छिन्नकार्यतानिरूपित-कारणताश्रयत्वस्यैव चक्षु-
र्मनोयोगे सत्त्वात् न तत्र व्यभिचारः । नचैवं चक्षुषि दृष्टान्तासिद्धिः चक्षु-
र्भिन्नमनोभिन्नं प्रमाणं यच्चक्षुर्मनोयोगादिः तज्जन्यवृत्तिप्रत्यक्षत्वव्याप्यजा-
त्यवच्छिन्नकार्यतानिरूपितकारणताश्रयत्वस्य चक्षुषि सत्त्वादिति वाच्यम् ।
अनुभवत्वव्याप्यजात्यवच्छिन्नकार्यता इत्यत्रानुभवत्वव्याप्यजातिपर्याप्तावच्छे-
दकताककार्यताया एव विवक्षणीयतया एकपुरुषीयचक्षुर्मनोयोगतः
अन्यपुरुषीयचाक्षुषस्यानुत्पत्त्या तत्पुरुषीयचाक्षुषं प्रति तत्पुरुषीयमनो-
योगत्वेनैव हेतुतया अनुभवत्वव्याप्यजातिपर्याप्तावच्छेदकताकत्वस्य तादृ-
शकार्यतायां विरहात् । न च तथापि चक्षुषि दृष्टान्तासिद्धिः सुषुप्ति-
काले ज्ञानस्यानुत्पत्त्या ज्ञानसामान्यं प्रत्येव तज्जन्योयोगद्वारा त्वक्षो-
हेतुतया चक्षुर्भिन्नमनोभिन्नप्रमाणं यत्त्वक् तज्जन्यं चाक्षुषात्मकज्ञानमपि
भवति तज्जन्यवृत्तिप्रत्यक्षत्वव्याप्यचाक्षुषत्वावच्छिन्नकार्यतानिरूपितकारण-
ताश्रयत्वस्य चक्षुषि सत्त्वादिति वाच्यं । स्वभिन्नमनोभिन्नप्रमाणनिष्ठजनक-
तानिरूपितजन्यतायां द्रव्यावृत्तित्वमुपेक्ष्य यत्किञ्चित्जन्यज्ञानावृत्तित्वस्य
निवेशनीयतया अन्यज्ञानत्वावच्छिन्नायाः त्वक्त्वावच्छिन्नकारणतानिरूपित-
कार्यताया यत्किञ्चित्जन्यज्ञानावृत्तित्वविरहात् । न चानुमितित्वावच्छिन्नं
प्रति ज्ञानत्वेन हेतुतया अनुभवत्वव्याप्यानुमितित्वावच्छिन्नकार्यतानिरूपि-
तकारणताश्रयीभूतं घटादिज्ञानमपि तज्जन्यत्वं घटवदिति घटत्वविशिष्ट-
वैशिष्ट्यावगाहिचाक्षुषेऽपि वर्तते इति तद्वृत्तिप्रत्यक्षत्वव्याप्यजात्यवच्छिन्नका-

भेदगर्भतया मनोन्यत्वलाभात्, प्रमापदस्य प्रत्यक्षपरतया प्रत्यक्षमि-
 तेर्लाभः, दृष्टान्ते च द्न्द्रियपदं चक्षुःपरं, आदिपदात्त्वगादिपरि-
 ग्रहः । अत्र करणत्वस्यासाधारणजनकताघटिततया शरीरात्मादौ
 काल-दिगादौ च व्यभिचारवारणाय मनोन्यासाधारणेति, तादृश-
 प्रमाया मनोन्यासाधारणकारणत्वञ्च तादृशप्रमितिवृत्त्यनुभवत्वव्या-
 प्यजात्यवच्छिन्नकार्यतानिरूपितातादात्म्यसम्बन्धानवच्छिन्नकारणता -
 श्रयत्वे सति मनोऽन्यप्रमाणान्तरासहकारित्वं, सत्यन्तोपादानादेव
 अन्यज्ञानत्वावच्छिन्नजनकस्य शरीरात्मादेः, कार्यत्वावच्छिन्नजनकस्य
 काल-दिगादेः, विशिष्टवैशिष्ट्यानुभवत्वावच्छिन्नजनकस्य विशेषण-
 तावच्छेदकप्रकारकज्ञानादेर्युदासः, तद्व्यक्तित्वेन कार्य-कारणभाव-
 मादाय विशेषणतावच्छेदकप्रकारकज्ञानादावतिप्रसङ्गवारणाय तत्र
 जातिपदं, तदवच्छिन्नत्वञ्च तन्निष्ठावच्छेदकताकत्वमात्रं न तु
 तत्पर्याप्तावच्छेदकताकत्वं, तेन पक्षीभूतव्याप्तिज्ञानादेः तत्तत्प्रकार-
 कप्रत्यक्षत्वावच्छिन्नजनकत्वेऽपि न न्यायनये स्वरूपासिद्धिः । न
 आपत्तौ स्वरूपासिद्धिः न प्रतिकूलेति वाच्यं । तथासत्यापाद्याभावे-
 नापादकाभावसाधने सिद्धसाधनापत्तेः आपाद्याभावेन आपदका-
 भावसाधने एवास्यापादनस्य तात्पर्यात् । तादात्म्यसम्बन्धानवच्छि-

र्यतानिरूपितकारणताश्रयत्वस्य चक्षुषि सत्त्वात् चक्षुषि दृष्टान्तासिद्धिता-
 दवस्थं इति वाच्यं । स्वभिन्नमनोभिन्नप्रमाणायां ज्ञानावृत्तित्वस्य निवेश-
 नीयत्वात् नानुमितित्वावच्छिन्नं प्रति ज्ञानत्वेन कारणतामादाय दृष्टा-
 न्तासिद्धिरिति विभावनीयम् ।

अलोपादानात् विषयत्वेन लौकिकप्रत्यक्षत्वेन तत्तद्विषयकलौकिक-
प्रत्यक्षत्वेन तत्त्वेन सङ्ख्यादिलौकिकप्रत्यक्षत्वेन सङ्ख्यादित्वेनेति
कार्य-कारणभावमादाय सङ्ख्यादिलक्षणविषये न व्यभिचारः । न
च तदपि प्रमाकरणं भवत्येव विशिष्टप्रत्यक्षजनने निर्विकल्पकस्यैव
व्यापारत्वादिति कुतो व्यभिचार इति वाच्यं । तथापि निर्विकल्पाजनके
विषये व्यभिचारस्य दुर्वारत्वात् निर्विकल्पाकादिकमजनयित्वैव सा-
क्षात्तद्विशेष्यक-तत्प्रकारकचाक्षुषादिजनके चक्षुःसंयोगादिव्यक्तिविशेषे
व्यभिचारवारणाय विशेष्यदत्तं तदर्थस्य मनोऽन्यस्वभिन्नप्रमाणजन्य-
वृत्तिप्रत्यक्षत्वव्याप्यजात्यवच्छिन्नकार्यतानिरूपित-कारणतानाश्रयत्वं,
एतच्च शरीरादिसाधारणं अतो न सत्यन्तदलवैयर्थ्यं, चक्षुरादेरपि
मनोरूपप्रमाणजन्यवृत्तिचाक्षुषत्वाद्यवच्छिन्नं प्रति जनकत्वात् स्वात्मक-
प्रमाणजन्यवृत्तितदवच्छिन्नं प्रति जनकत्वाच्च दृष्टान्ताभिद्विवारणाय
मनोऽन्यत्वं स्वभिन्नत्वञ्च प्रमाणविशेषणं । ननु तथापि^(१) चक्षुरादेरालो-
काद्यात्मकप्रमाणजन्यवृत्तिचाक्षुषत्वाद्यवच्छिन्नं प्रति जनकत्वात् अस्मि-
द्धिर्दुर्वारा । न च स्वभिन्नप्रमाणत्वं अनुभवत्वव्याप्यजात्यवच्छिन्नकार्यता-
प्रतियोगिकस्वावृत्तिकारणताश्रयत्वं, अनुभवत्वव्याप्यजात्यवच्छिन्नत्वञ्च
तद्दृष्टजातिपर्याप्तावच्छेदकताकलं, आलोकादिकञ्च न तथा द्रव्यलौ-
किकचाक्षुषत्वादेरेव तत्कार्यतावच्छेदकत्वादिति वाच्यं । द्रव्यवृत्तित्व-
विशिष्टलौकिकविषयतासम्बन्धेन चाक्षुषत्वस्यैव तत्कार्यतावच्छेदकत्वा-
दिति चेत् । न । अनुभवत्वव्याप्यजात्यवच्छिन्नलौकिकविषयत्वानव-

(१) अथ तथापीति ग० ।

भेदगर्भतया मनोन्यत्वलाभात्, प्रमापदस्य प्रत्यक्षपरतया प्रत्यक्षमि-
 तेर्लाभः, दृष्टान्ते च इन्द्रियपदं चक्षुःपरं, आदिपदात्त्वगादिपरि-
 ग्रहः । अत्र करणत्वस्यासाधारणजनकताघटिततया शरीरात्मादौ
 काल-दिगादौ च व्यभिचारवारणाय मनोन्यासाधारणेति, तादृश-
 प्रमाया मनोन्यासाधारणकारणत्वञ्च तादृशप्रभितिवृत्त्यनुभवत्वव्या-
 ष्यजात्यवच्छिन्नकार्यतानिरूपितातादात्म्यसम्बन्धानवच्छिन्नकारणता -
 श्रयत्वे सति मनोऽन्यप्रमाणान्तरासहकारित्वं, सत्यन्तोपादानादेव
 जन्यज्ञानत्वावच्छिन्नजनकस्य शरीरात्मादेः, कार्यत्वावच्छिन्नजनकस्य
 काल-दिगादेः, विशिष्टवैशिष्ट्यानुभवत्वावच्छिन्नजनकस्य विशेषण-
 तावच्छेदकप्रकारकज्ञानादेर्युदासः, तद्व्यक्तित्वेन कार्य-कारणभाव-
 मादाय विशेषणतावच्छेदकप्रकारकज्ञानादावतिप्रसङ्गवारणाय तत्र
 जातिपदं, तदवच्छिन्नत्वञ्च तन्निष्ठावच्छेदकताकत्वमात्रं न तु
 तात्पर्याभावावच्छेदकताकत्वं, तेन पक्षीभूतव्याप्तिज्ञानादेः तत्तत्प्रकार-
 कप्रत्यक्षत्वावच्छिन्नजनकत्वेऽपि न न्यायनये स्वरूपासिद्धिः । न
 आपत्तौ स्वरूपासिद्धिः न प्रतिकूलेति वाच्यं । तथासत्यापाद्याभावे-
 नापादकाभावसाधने सिद्धसाधनापत्तेः आपाद्याभावेन आपदका-
 भावसाधने एवास्यापादनस्य तात्पर्यात् । तादात्म्यसम्बन्धानवच्छि-

र्यतानिरूपितकारणताश्रयत्वस्य चक्षुषि सत्त्वात् चक्षुषि दृष्टान्तासिद्धिता-
 दवस्थं इति वाच्यं । स्वभिन्नमनोभिन्नप्रमाणायां ज्ञानावृत्तित्वस्य निवेश-
 नीयत्वात् नानुमितित्वावच्छिन्नं प्रति ज्ञानत्वेन कारणतामादाय दृष्टा-
 न्तासिद्धिरिति विभावनीयम् ।

कथं स धूमेवह्निव्याप्य इति व्यवहारः तदानीं तद्व्याप्यत्वानुभावकाभावादिति वाच्यं । तत्र स्मृतधूमे धूमत्वेन वह्निव्याप्यत्वानुमानात् । नच तन्मते धूमत्वेन व्याप्यनु-

न्यायनये स्वरूपासिद्धिः कालत्वेन कार्यत्वेन द्रव्यत्वेन जन्यसत्त्वेन कार्य-कारणभावमादाय चचुरादेरपि त्वगादिप्रमाणान्तरजन्यत्वा-चादिवृत्तिकार्यताप्रतियोगिककारणताश्रयत्वात् दृष्टान्तासिद्धिश्चातः तद्वारणाय प्रत्यक्षत्वव्याप्यजात्यवच्छिन्नत्वं सहकारिताघटककार्यता-विशेषणं, प्रत्यक्षत्वव्याप्यत्वञ्च प्रत्यक्षनिष्ठान्योन्याभावप्रतियोगितावच्छेदकत्वे सति प्रत्यक्षवृत्तित्वं, तेन पचीभूतव्याप्तिस्ररणादेरपि परामर्श-पक्षताद्यात्मकनिरुक्तस्वभिन्नप्रमाणजन्यवृत्त्यनुमितित्वावच्छिन्नकार्यतानिरूपितकारणताश्रयत्वेऽपि न स्वरूपासिद्धिः, स्वभिन्नप्रमाणत्वघटकानुभवत्वव्याप्यजात्यवच्छिन्नत्वं वा तादृशजातिपर्याप्तावच्छेदकताकत्वं वक्तव्यं परामर्शादिः कार्यता न तथा, एवञ्च प्रत्यक्षवृत्तित्वं नोपादेयं किन्तु तादृशजात्यवच्छिन्नत्वं मुख्यविशेष्यविधया समवायसम्बन्धेन तादृशजात्यवच्छिन्नत्वं वक्तव्यं^(१) तेन व्याप्ति-

- (१) मुख्यविशेष्यविधया अवच्छेदकत्वं इत्यस्य कार्यताज्ञानीयमुख्यविशेष्यतानिरूपितप्रकारतासमानाधिकरणावच्छेदकत्वं इत्यर्थः, चाक्षुषं चाक्षुः-कार्यमित्याकारक-कार्यताज्ञानीय-मुख्यविशेष्यतानिरूपित-प्रकारतासमानाधिकरणावच्छेदकत्वं चाक्षुषत्वादावेव वर्तते, तथा धूम-

भवः सम्भवति, अत एव यो वह्निव्याप्यवान् सोऽवश्यं वह्निमान् इति व्याप्तिज्ञानवतोऽनुमितिर्नान्यथा। अथ

स्मरणदेरपि कार्यतावच्छेदककोटौ प्रत्यक्षत्वन्यूनवृत्तिधूमत्वादेः प्रवेगोऽपि नासिद्धिः^(१) स्वभिन्नप्रमाणत्वघटककारणतायां स्वावृत्तित्वविशेषणादेव व्याप्तिज्ञानादिव्यक्त्यन्तरजन्यानुमितिव्यक्तिमादाय नासिद्धिः। न च तथापि महत्त्वे व्यभिचारः प्राचीननये तस्य द्रव्य-लौकिकप्रत्यक्षत्वावच्छिन्ने द्रव्यवृत्तित्वविशिष्टलौकिकविषयतादिसम्बन्धेन प्रत्यक्षत्वावच्छिन्ने वा जनकतया निरुक्तासहकारित्ववत्त्वादिति

त्वप्रकारकप्रत्यक्षं धूमत्वज्ञानकार्यं इत्याकारककार्यताज्ञानीयमुख्य-विशेष्यतानिरूपितप्रकारतासमानाधिकरणावच्छेदकत्वं प्रत्यक्षत्वादावेव न तु धूमत्वादौ इति तस्य प्रत्यक्षत्वव्याप्यत्वेऽपि नासिद्धिः। यदिच परम्परायाः संसर्गत्वमभ्युपेयते तदा धूमत्वादेरप्यवच्छेदकत्वं सम्भवति स्वप्रकारकप्रत्यक्षत्ववत्त्वसम्बन्धेन धूमत्वावच्छिन्नं प्रति धूमत्व-ज्ञानत्वेन हेतुत्वकल्पनात् अत उक्तं समवायेनेति।

(१) व्याप्तिस्मरणभिन्नं मनोभिन्नञ्च यच्चक्षुरूपं प्रमाणं तज्जन्यं यत् वह्नि-व्याप्यधूमवान् पर्वत इत्याकारकं धूमांशेऽलौकिकं पर्वतांशे लौकिकं प्रत्यक्षात्मकं ज्ञानं तद्वृत्तिप्रत्यक्षत्वन्यूनवृत्ति यत् धूमत्वं तदवच्छिन्न-कार्यतानिरूपितकारणताश्रयत्वं व्याप्तिस्मरणे वर्तते धूमत्वप्रकारक-प्रत्यक्षं प्रति धूमत्वज्ञानस्य हेतुत्वकल्पनात् अतः स्वरूपासिद्धिसङ्ग-तिरिति विभावनीयं।

पर्वतीयधूमे धूमत्वेन ज्ञाते वह्निव्याप्योऽयं न वेति
संशयेऽप्यनुमितिः स्यादिति चेत् । न । धूमे वह्निव्याप्य-
इति स्मरणे विद्यमाने धूमत्वज्ञानस्य विशेषदर्शनत्वेन

वाच्यं । तन्मताभ्युपगमेऽसाधारणकारणतायां सत्यन्तदले तादात्म्य-
सम्बन्धानवच्छिन्नत्ववन्महत्त्वावृत्तित्वेनापि कारणताया विशेषणीय-
त्वात् । न च तथापि उद्भूतरूपे व्यभिचारः तस्य मानसेतरद्रव्य-
लौकिकप्रत्यक्षत्वावच्छिन्ने उद्भूतरूपवद्द्रव्यवृत्तित्वविशिष्टलौकिकविष-
यतासम्बन्धेन^(१) प्रत्यक्षत्वावच्छिन्ने वा जनकतया निरुक्तासहकारित्व-
वत्त्वादिति वाच्यं । तस्य लाघवेन द्रव्यलौकिकचाक्षुषत्वाद्यवच्छिन्नं
प्रत्येव जनकत्वात् मौमांसकेन पूर्वपक्षिणा वायोरपि प्रत्यक्षत्वाभ्युपग-
मात् जरनैयायिकनये तु महत्त्वावृत्तित्ववद्रूपावृत्तित्वस्यापि^(२) सत्य-
न्तदले कारणतायां प्रवेशनीयत्वात् । मनःसंयुक्तसमवायादिलक्षणस्य
सुखादिसन्निकर्षस्यापि मनोऽन्यप्रमाणान्तरासहकारित्वात् तत्र व्यभि-
चारवारणाय वह्निं अर्थविशेषणं, तच्च मानसलौकिकप्रत्यक्षाविष-
यत्वं, परनये ज्ञानलक्षणाया असन्निकर्षतया सुखादिप्रत्यक्षे वह्निरर्थस्य,
कदाचिदप्यभानान्न व्यभिचारतादवस्थं, परामर्शादेरभावज्ञानत्वाद्य-
वच्छिन्नस्ववृत्तिकारणताश्रयस्य व्याप्तिज्ञानादेरेव सहकारितया तत्र

(१) मूर्त्तत्वविशिष्टलौकिकविषयतासम्बन्धेनेति ग० ।

(२) उद्भूतरूपावृत्तित्वस्यापीति ख० ।

संशयाभावात्, अन्यथा परामर्शोऽपि कुतो न स्यात्
संशयेन प्रतिबन्धादिति चेत्तुल्यं। नच सामान्यनिश्च-
यस्य सामान्यसंशयनिवर्त्तकत्वाद्भूमसामान्ये एव संशयो

व्यभिचारवारणाय सामान्यतोज्ञानत्वादिकमपहाय प्रत्यक्षमितित्वेन
प्रवेशः, विपरीतज्ञानोत्तरप्रत्यक्षं प्रति विशेषदर्शनादेर्न कारणत्वं
अपि तु विपरीतज्ञाननिवर्त्तकतया कथञ्चिदुपयोगित्वमेव तस्येति
न व्यभिचार इति सर्वं चतुरस्रं।

केचित्तु 'व्याप्तिस्मरणादेः' प्रकृतव्याप्तिस्मरणादेः, 'प्रमाणान्तरताप-
त्तेरिति प्रत्यक्षविजातीयविशिष्टपरामर्शरूपप्रमाकारणत्वापत्तेरित्यर्थः,
'तदेव हीत्यादि, 'हि' यस्मात्, यदसाधारणं मनोरूपं सहकार्यासाद्य
वहिर्गोचरां प्रमां जनयति 'तदेव प्रमाणान्तरं' तत्सर्वं प्रमाणान्तरं, इति
योजना, यदित्यसाधारणविशेषणं, 'असधारणं' यच्चातीयप्रमासा-
मग्र्यसमवहितं, मनोरूपं सहकार्यासाद्येति स्वरूपकथनं, 'वहिर्गोचरां
प्रमां जनयति' यद्विशेष्यक-यत्प्रकारकप्रमां जनयति, 'प्रमाणान्तरं'
तद्विजातीयतद्विशेष्यक-तत्प्रकारकप्रमाकरणं, तथाच यद्यच्चाती-
यप्रमासामग्र्यसमवहितं सत् यद्विशेष्यक-यत्प्रकारकप्रमाजनकं भवति
तत्तद्विजातीयतद्विशेष्यक-तत्प्रकारकप्रमाजनकं भवति यथा चक्षुरा-
दिकमनुमानाद्विजातीयप्रमासामग्र्यसमवहितं सत् घटादिविशेष्यक-
घटत्वादिप्रकारकप्रमाजनकं भवति तदनुमानादिविजातीयतादृ-
शप्रमाजनकं भवत्येवेति निष्कृष्टं व्याप्तिशरीरं, प्रकृते व्याप्तिस्मरणमपि

मा भूत् विशेषसंशयश्च विशेषनिश्चयनिवर्तनीय इति धूमविशेषे संशयनिरासार्थं पृथग्व्याप्तिनिश्चयो वाच्य-
इति वाच्यं । यत्र हि यद्व्यावर्तकधर्मदर्शनं तत्र न तत्सं-

यदि प्रत्यक्षजातीयप्रमाया लौकिकसन्निकर्षाद्यात्मकसामर्थ्यसमवहितं
सत् विशिष्टपरामर्शरूपप्रमाजनकं स्यात्तदा प्रत्यक्षविजातीयतादृशप्र-
माजनकं स्यात्सामग्री च उभयवादिसिद्धत्वेन विशेषणीया, तेनोप-
नयसन्निकर्षमादाय नासिद्धिः परजये उपनयस्य सन्निकर्षत्वाभावा-
दिति व्याचक्रुः । तदसत् । 'नियतव्यापाराभावेन प्रमायामकरणत्वा-
दित्यग्निसंज्ञासङ्गतेः प्रमाकरणत्वस्थापाद्यत्वाभावात्, । न च प्रत्यक्ष-
विजातीयविशिष्टपरामर्शकरणत्वमेवापादनीयं^(१) व्याप्तावपि साध्ये
करणत्वमेव निवेशनीयमिति वाच्यं । अनुमानादिविजातीयप्रमा-
सामग्रीमादाय चक्षुःसंयोगादौ व्यापारे व्यभिचारापत्तेरिति दिक् ।

ननु प्रागुक्तसंशय-स्वप्नजनके निद्रादिजन्यपदार्थापस्थितिरूपोपन-
यसन्निकर्षेऽयं नियमो व्यभिचारौ तत्र मनसो निद्रायाश्च करणत्वेन
तज्जन्यपदार्थापस्थितिरूपोपनयस्याकरणत्वादित्यत आह, 'संशय-स्वप्नौ
त्विति प्रागुक्तसंशय-स्वप्नौ त्वित्यर्थः, 'न प्रमे' न विशिष्टप्रत्यक्षरूपौ,
किन्तु स्मरणादिरूपधर्मिज्ञान-विशेषणज्ञानरूपौ, विशेषण-विशेष्य-

(१) तथाच प्रमाणान्तरतापत्तेरित्यस्य प्रत्यक्षविजातीयविशिष्टपराम-
र्शरूपप्रमाकरणतापत्तेरित्यर्थो वाच्य इति भावः ।

शयः तच्च सामान्ये विशेषे वेति। वस्तुतस्तु धूमत्वपूर-
स्कारेण व्याप्तिस्मरणे पक्षधर्मताज्ञाने चानुमिति-
र्भवत्येव। ननु भावोऽभावो वा उभयथापि प्रमेय-

योलौकिकसन्निकर्षसत्त्वे एव तयोः प्रत्यक्षरूपत्वादिति भावः।
निद्रादेः' निद्रादिजन्यपदार्थोपस्थितेः, 'न प्रमाणान्तरत्वं' न विशिष्ट-
प्रत्यक्षमितेरसाधारणकारणत्वं, तथाच हेत्वभावादेव न व्यभिचार
इति भाव इति सम्प्रदायविदः।

सृजवस्तु नन्वेतादृशनियमे निद्रादिजन्यपदार्थोपस्थितेरपि
संशय-स्वप्नकरणत्वापत्तिरित्यत आह, 'संशयेति, 'न प्रमाणा-
न्तरत्वं' न प्रमाणान्तरत्वप्रसङ्गः न संशय-स्वप्नकरणत्वप्रसङ्ग इति
यावत्, शेषं पूर्ववदित्याहुः। तदुभयमप्यसत्। 'संशय-स्वप्नौ तु न प्रमे'
इत्यभिधानस्यानुपयुक्तत्वापत्तेः निद्रादिजन्यपदार्थोपस्थितेर्न संशय-
स्वप्नासाधारणकारणत्वमित्यस्यैव वक्तुमुचितत्वात् तन्नये ज्ञानलक्षण-
सन्निकर्षस्य प्रत्यक्षाजनकतया तयोर्विशिष्टप्रत्यक्षरूपत्वेऽपि निद्रादि-
जन्यपदार्थोपस्थितौ तदसाधारणकारणत्वासम्भवात्।

वस्तुतस्तु प्रागुक्तसंशय-स्वप्नस्थले वहिरिन्द्रियलौकिकसन्निकर्षं
विनापि बाह्यार्थविषयकविशिष्टप्रत्यक्षजनने क्लृप्तशक्तिकेन मनसा
प्रकृतेऽपि तेन विना विशिष्टप्रत्यक्षं जनयितव्यं^(१) केन वारणीयं

मित्यत्र भावत्वाभावत्वयोर्व्याप्यत्वावच्छेदकयोरग्रहा-
दनुमानं न स्यात् तदन्यान्यत्वरूपस्यान्यतरत्वस्य
लिङ्गत्वाभावादिति चेत् । न । भावत्वाभावत्वान्यान्य-

न ह्यापत्तिभिर्या सामग्री कार्यं नार्जयिष्यति । न च वहिरिन्द्रिय-
व्यापारं विना मनसा वाह्यार्थविषयकविशिष्टप्रत्यक्षजनने दोषस्य सह-
कारितया प्रकृते दोषाभावादेव न तेन विशिष्टप्रत्यक्षजननसम्भव-
इति वाच्यं । दोषं विनापि स वृत्तः संयोगवान्न वेतिकोटिद्वयप्र-
मारूपसंशयजनने दोषस्य व्यभिचारादित्यत आह, 'संशयेति लौकि-
कसन्निकर्षाजन्यसंशय-स्वप्नौ त्वित्यर्थः, 'न प्रमे' न विशिष्टप्रत्यक्षरूपौ,
किन्तु स्मरणाद्यात्मकधर्मिज्ञान-विशेषणज्ञानरूपौ, 'निद्रादेरिति
पञ्चमी निद्रादिसहकारादित्यर्थः, 'प्रमाणान्तरत्वं' मनसः प्रमाणत्वं
मनसो वहिरिन्द्रियलौकिकसन्निकर्षं विना वाह्यार्थविषयकविशिष्ट-
प्रत्यक्षकारणत्वमिति यावत् । यदा 'निद्रादेरित्यस्यैव 'निद्रा'
मेध्यामनःसंयोगः, तस्य 'आदिः' कारणं, इति व्युत्पत्त्या मनस-
इत्यर्थः । 'न चेति, इन्द्रियासन्निकृष्टे धूमे इति शेषः, 'तवापीति,
धूमो वक्त्रिव्याप्य इति विशिष्टस्मरणाद्यभावदशायामिति शेषः,
'तद्व्याप्यत्वानुभावकेति तद्धूमे वक्त्रिव्याप्यत्वानुभावकाभावादित्यर्थः,
तत्र मानसस्य त्वयानङ्गीकारात् विशिष्टव्यवहारं प्रति च विशिष्ट-
ज्ञानस्य हेतुत्वादिति भावः । 'व्याप्यत्वानुमानादिति खण्डशः
धूमत्वत्वादिना धूमत्वादौ वक्त्रिव्याप्यव्याप्यत्वस्मरणस्य धूमत्वत्वादिना

धर्मवत्त्वस्य तत्र लिङ्गत्वात्, एवं धूमालोकान्यतरत्व-
मपि लिङ्गम् । अथ यद्यतिरेकज्ञानं यदुत्पत्तिप्रति-
बन्धकं तत्तन्निश्चयसाध्यं तथाच पक्षधर्मस्य व्याप्य-

तद्धूमे धूमत्वादिमत्तास्मरणस्य च मत्त्वात्, यदा तु न तादृशस्मरणं
तदा असंसर्गाग्रहादेवेति भावः । 'न च तन्मत इति, वक्त्रिव्याप्ति-
व्याप्यधूमत्ववान् स धूमः वक्त्रिव्याप्तिव्याप्यं धूमत्वं तद्धूमे इति विशि-
ष्टस्मरणाभावात् तद्धूमस्यासन्निकृष्टत्वेन प्रात्यक्षिकतादृशविशिष्टपरा-
मर्गस्यासम्भवात्, तथाच भवन्मत एव तादृशविशिष्टपरामर्गविरह-
दशायां तादृशविशिष्टव्यवहारो न स्यादिति भावः । व्याप्यताव-
च्छेदकप्रकारकव्याप्तिज्ञानाभावात् वक्त्रिव्याप्यवानयमिति शाब्दादि-
ज्ञानजन्यानुमितौ स्वमते व्यभिचारमुद्धरति, 'अत एवेति यत
एवातौन्द्रियादौ व्यभिचारात् विशिष्टज्ञानं न कारणं अपि तु
व्याप्यतावच्छेदकयद्धर्मावच्छेदेन व्याप्तिग्रहस्तत्प्रकारकपक्षधर्मताज्ञानं
कारणं अत एवेत्यर्थः, वक्त्रिव्याप्यवानयमिति शाब्दज्ञानोत्तरमिति
शेषः, 'व्याप्तिज्ञानवत इति व्याप्तिस्मरणवत इत्यर्थः, अत्र वक्त्रिव्याप्य-
त्वस्यैव वक्त्रिव्याप्यतावच्छेदकस्य प्रकारत्वादिति भावः । 'पर्वतीयधूम-
इति धूमत्वरूपेण धूमे पर्वतवत्त्वे ज्ञाते इत्यर्थः, 'वक्त्रिव्याप्यः' वक्त्रि-
व्याप्यो धूमः, 'अयं न वा' पर्वतवान्न वा, अस्मन्मते च वक्त्रिव्याप्यो
धूमः पर्वतवान् इति विशिष्टनिश्चयाभावाच्च तदानीमनुमिति-
रिति भावः । 'स्मरणे विद्यमाने' धर्मितावच्छेदकप्रकारकधर्मिस्मरणे

भेदज्ञानमनुमितिप्रतिबन्धकम् अतो व्याप्याभेदज्ञानं
तद्धेतुः सिध्यतीति चेत् । न । धूमत्वपुरस्कारेण व्याप्ति-
स्मरणे पक्षधर्मज्ञाने च सति विशेषदर्शनान्न धूमे

विद्यमानेऽपीत्यर्थः^(१), 'धूमत्वज्ञानस्य' धूमत्वरूपेण धूमे पर्वतवत्ता-
निश्चयस्य, 'विशेषदर्शनत्वेन' व्यावर्त्तकधर्मदर्शनत्वेन, 'संशयाभावात्'
संशयस्यासम्भवात्, 'अन्यथेति व्यावर्त्तकधर्मदर्शने सत्यपि यदि तत्र
संशयस्तदेत्यर्थः, संशयानन्तरमिति शेषः, 'परामर्शोऽपि कुतो न
स्यादिति तव वक्तव्याप्यो धूमः पर्वतवानिति विशिष्टनिश्चयस्या-
पत्तेः यैव ममानुमितिसामग्री तस्या एव तव परामर्शसामग्री-
त्वादित्यर्थः, तस्मात्तत्र संशयो न जायते किन्तु विशिष्टनिश्चय एव
जायते ततोऽनुमितिरिति त्वयापि स्वीकरणीयमिति भावः । ननु
मम विशिष्टपरामर्शस्यापि आपत्तिर्नास्त्येति संशयस्य प्रतिबन्धक-
त्वादित्याशङ्कते, 'संशयेन प्रतिबन्धादिति, न विशिष्टपरामर्शस्याप-
त्तिरिति शेषः । 'तुल्यमिति ममाप्यनुमितिं प्रति संशयः प्रतिबन्धकः
सुवच इत्यर्थः, एतच्चाभ्युपगमवादः तादृशसंशयस्यानुमितिं प्रत्य-
तिरिक्तप्रतिबन्ध-प्रतिबन्धकत्वकल्पने गौरवात् । वस्तुतस्तु विशेषदर्शन-
सत्त्वात् संशय एव न जायत इत्यत्रैव निर्भरो बोध्यः, अत एव
तत्रैवाशङ्कते, 'न चेति, 'सामान्यनिश्चयस्येति धूमत्वरूपसामान्यधर्म-

(१) संशयं प्रति धर्मितावच्छेदकप्रकारकधर्मिज्ञानं कारणमित्यभि-
प्रेत्याह, धर्मितेति ।

व्याप्यभेदज्ञानं किन्तु अनुमितेरेवोत्पत्तिः तत्सामग्री-
सत्त्वात् अतो व्याप्यभेदज्ञानं नानुमितिप्रतिबन्धकं
येन व्याप्याभेदज्ञानं तद्धेतुः स्यात् । न च धूमत्वप्रकारेण

धर्मितावच्छेदककनिश्चयस्येत्यर्थः, 'सामान्यमंग्रयेति धूमत्वरूपसामा-
न्यधर्मधर्मितावच्छेदककसंग्रयेत्यर्थः, 'निवर्त्तकत्वात्' प्रतिबन्धकत्वात्,
तत्सत्त्व इति शेषः, 'धूमसामान्ये' धूमत्वावच्छिन्ने, 'विशेषमंग्रय-
इति वक्ष्यव्याप्यधूमत्वरूपविशेषधर्मावच्छिन्नविशेष्यताकसंग्रय इत्यर्थः,
'विशेषनिश्चयेति तादृशविशेषधर्मावच्छिन्नविशेष्यताकनिश्चयेत्यर्थः,
'निवर्त्तनीयः' प्रतिबन्धः, 'धूमविशेषे' वक्ष्यव्याप्यधूमत्वावच्छिन्ने,
'संग्रयनिरासार्थमिति पर्वतसंग्रयानन्तरमनुमितिनिरासार्थमित्यर्थः,
'पृथगिति वक्ष्यव्याप्यो धूमः पर्वतवान् इति विशिष्टनिश्चय एवा-
नुमितिहेतुर्वाच्यः इत्यर्थः । 'यत्र हीति यद्धर्मावच्छिन्ने हीत्यर्थः,
'तत्र' तद्धर्मावच्छिन्ने, 'तच्च' तद्धर्मावच्छिन्ने तत्संग्रयात्मकज्ञानञ्च,
'सामान्ये विशेषे वेति तद्धर्मावच्छिन्ने तद्धर्मघटितविशेषधर्मावच्छिन्ने
वेत्यर्थः, तथाच सामान्याभाव-तद्व्याप्यादिबुद्धेः सामान्यघटितविशेष-
वत्ताबुद्धिप्रतिबन्धकत्ववत् सामान्यधर्मधर्मितावच्छेदककतद्व्यावर्त्तक-
धर्मवत्ताज्ञानमपि^(१) सामान्यघटितविशेषधर्मधर्मितावच्छेदककतद्व-
त्ताबुद्धिं प्रति प्रतिबन्धकं भूतलं घटाभाववदिति निश्चये भूतलं
घटवदिति ज्ञानवत् नीलभूतलं घटवदिति बुद्धेरप्यनुदयात्, तद्व्या-

(१) तद्व्यावर्त्तकधर्मदर्शनमपीति ग० ।

व्याप्तिस्मरणपक्षधर्मताग्रहे इयं धूमव्यक्तिर्वह्निव्याप्या
नेति भ्राम्यतोऽनुमित्यापत्तिरतो विशिष्टज्ञानं हेतुरिति
वाच्यं । धूमत्वस्य विशेषस्य दर्शनेन तादृशममानुत्यक्तेः

वर्तकधर्मश्च तदत्यन्ताभावः, तदत्यन्ताभावव्याप्यः, तदत्यन्ताभावो
यद्धर्मावच्छेदेन गृहीतः स धर्मः, तददन्योन्याभावः, तददन्योन्या-
भावव्याप्यः, तददन्योन्याभावो यद्धर्मावच्छेदेन गृहीतः स धर्मः,
तादात्म्यसम्बन्धेन तद्वत्तावुद्धौ तज्ज्ञेदादिदर्शनमपि बोध्यं । न च
तथापि वह्निव्याप्यः पर्वतवान्न वेति संशये न किमपि बाधकं तच्च
धर्मितावच्छेदके धूमत्वाप्रवेशादिति वाच्यं । तादृशसंशयसत्त्वेऽनुमिते-
रिष्टत्वात् वह्निव्याप्यो धूमः पर्वतवानिति विशिष्टनिश्चयदशायां
तादृशसंशयसत्त्वेऽनुमितेस्त्वव्याप्यभ्युपगमादिति भावः । वस्तुतस्तु
'अन्यथेत्यादिग्रन्थोऽन्यथैव योजनीयः, तथाहि 'अन्यथा' धूमत्वा-
वच्छिन्नविशेष्यक-पर्वतवत्तानिश्चयो यदि व्यावर्तकधर्मदर्शनत्वेनापि
न वह्निव्याप्यधूमत्वावच्छिन्नविशेष्यक-पर्वतसंशयाभावप्रयोजकः तदा,
'परामर्शोऽपीति वह्निव्याप्यो धूमः पर्वतवानिति विशिष्टनिश्चयो-
ऽपीत्यर्थः, 'कुतो न स्यादिति वह्निव्याप्यो धूमः पर्वतवान्न वेति
संशयाभावाप्रयोजकः कुतो न स्यादित्यर्थः । अथ विशिष्टनिश्चयस्य
तादृशसंशयनिष्ठप्रतिबन्धतानिरूपितप्रतिबन्धकतावच्छेदकाश्रयत्वात्
न तादृशसंशयाभावाप्रयोजकत्वमिति चेत्, तर्हि धूमः पर्वतवानिति
निश्चयस्यापि तदाश्रयत्वात् तस्यापि न तादृशसंशयाभावाप्रयोजकत्व-
मित्याह, 'संशयेन प्रतिबन्धादिति संशयनिरूपितप्रतिबन्धकता-

तच्चानुमितिसङ्गावादेव अन्यथा निश्चयसामग्र्यां सत्यां
भ्रमानन्तरं परामर्श एव कुतो न भवति । अस्तु वा
व्याप्यतया पक्षधर्मतया चावगतस्य भेदाग्रह एवानु-

वच्छेदकाश्रयत्वादित्यर्थः । तत्र तादृशसंग्रयप्रतिबन्धकतावच्छेदक-
वत्त्वमेवासिद्धमित्यभिप्रायेणाशङ्कते, 'न चेति, 'सामान्यनिश्चयस्येति
पूर्ववत् धूमसामान्ये संग्रयो मा भूत् तत्सत्त्वे धूमत्वावच्छिन्नविशे-
ष्यकसंग्रय एव न जायते स धूमत्वावच्छिन्नविशेष्यकसंग्रयाभावस्यैव
प्रयोजक इति यावत्, 'एवकारात् वल्लिव्याप्यधूमत्वावच्छिन्नविशे-
ष्यकसंग्रयाभावस्य व्यवच्छेदः, 'विशेषसंग्रयश्चेत्यादि व्याख्यातार्थकं,
'धूमविशेषे संग्रयनिरासार्थमिति पृथक् व्याप्तिनिश्चयो धूमविशेषे
संग्रयनिरासार्थमवश्यं वाच्य इति योजना, 'पृथक् व्याप्तिनिश्चयः'
वल्लिव्याप्यो धूमः पर्वतवानिति निश्चयः, 'धूमविशेषे संग्रयनिरा-
सार्थं' वल्लिव्याप्यधूमत्वावच्छिन्नविशेष्यकसंग्रयाभावप्रयोजकं, प्रधान-
कर्मतया विकारकर्मतया वा न प्रथमा "दुहादेर्गौणकं कर्मत्याद्यनु-
शासनात्, 'यत्र हीत्यादिग्रन्थोऽपि पूर्ववत् । ननु तथापि यत्र प्रथमं
वल्लिव्याप्यो धूमः पर्वतवान्न वेति संग्रयः ततः पर्वतो धूमवानिति
निश्चयः तच्चानुमित्यापत्तिर्दुर्वारा संग्रयस्यैव व्याप्यतावच्छेदकप्रकार-
कव्याप्तिनिश्चयत्वादित्यस्वरसादिष्टापत्तिमाह, 'वस्तुतस्त्विति, 'स्मरणे'
निश्चये ।

केचिन्नु अनुमितिसामग्र्या बलवत्त्वात् न तादृशसंग्रयसम्भव-
इत्याह, 'वस्तुतस्त्विति, 'धूमत्वपुरस्कारेणेति, धर्मितावच्छेदकप्रका-

मितिहेतुः परामर्शहेतुतया तस्यावश्यकत्वात् । अत-
एवासन्निकृष्टधूमज्ञानादप्यनुमितिः । न चैवं गौरवं, तदा
विशिष्टज्ञानानुपस्थितेः । न च जनकज्ञानाविरोधिना

रकधर्मिज्ञानस्य संशयहेतुतया तस्य प्रथममावश्यकत्वादिति भावः ।
'पञ्चधर्मताज्ञाने' धूमत्वरूपेण पञ्चप्रकारकज्ञाने, 'अनुमितिर्भवत्ये-
वेति, 'एवकारोभिन्नक्रमे अनुमितिरेव भवति न तु संशयः अनु-
मितिसामग्र्या बलवत्त्वादित्यर्थः । न च धूमत्वरूपेण पञ्चप्रकारक-
ज्ञानदृष्टायामेव संशयसम्भव इति वाच्यं । प्रतिबन्धकाभावस्य का-
र्यसहभावेन हेतुतया तदानीं संशयासम्भवादिति भावः, इति
व्याचक्रुः । तदसत् । धूमत्वरूपेण पञ्चप्रकारकनिश्चयात् पूर्वं संशय-
सम्भवात् ।

मिश्रास्तु भवतु संशयः भवतु च तन्निरासार्थं^(१) कचिद्विशिष्ट-
निश्चयोऽपेक्षितः तथापि धूमत्वरूपेण व्याप्तिस्मरणे तेन रूपेण
पञ्चधर्मताज्ञाने चानुमितिर्भवत्येव यत्र न संशयस्तत्रैव तादृशज्ञान-
द्वयादनुमित्युत्पत्तेः तावतैव सिद्धं नः समीहितमित्याह 'वस्तु-
तस्त्वित्येतादृशः । .

'नन्विति^(२), इदमिति पक्षः^(३) पूरणीयः, 'भावो वा' भावत्व-

(१) संशयानन्तरमनुमितिनिरासार्थमित्यर्थः ।

(२) नन्वित्यादिना नैयायिकशङ्का ।

(३) नीषत्वेन प्रतीयमानस्य तमसः पक्षत्वमिति भावः ।

ज्ञानस्याप्रतिबन्धकत्वात् भेदग्रहे न प्रतिबन्धक इति वाच्यम् । अभेदज्ञानस्याजनकत्वात् त्वयापि लिङ्गपरा-

वद्वा, 'अभावो वा' अभावत्ववद्वा, 'प्रमेयं' प्रमेयत्वव्याप्यवत्, 'भाव-
त्वाभावत्वयोरिति धर्मपरो निर्देशः भावत्वाभावत्वत्वरूपव्याप्यता-
वच्छेदकप्रकारकव्याप्ति-पञ्चधर्मतानिश्चयाभावादित्यर्थः, 'अनुमानं'
अनुमितिः, ननु तत्र भावाभावान्यतरत्वप्रकारेण भावाभावान्यतरत्व-
निष्ठप्रमेयत्वव्याप्तिज्ञानात् तेन रूपेण तस्य पञ्चधर्मताज्ञानाच्चानु-
मितिः फलवलेन तादृशज्ञानकल्पनादित्यत आह, 'तदन्यान्य-
त्वेति भावभिन्नत्वे सति अभावभिन्नो यस्तदन्यत्वरूपस्य भावाभावा-
न्यतरत्वस्येत्यर्थः, 'लिङ्गत्वाभावादिति, अप्रसिद्धेरिति भावः । 'भाव-
त्वाभावत्वेति भावत्वाभावत्वान्यतरधर्मरूपेण भावत्वाभावत्वान्यतर-
धर्मनिष्ठव्याप्ति-पञ्चधर्मताज्ञानादेव तत्रानुमित्युत्पादात् फलवलेन
तादृशज्ञानकल्पनादित्यर्थः, 'एवमिति, 'लिङ्गं' लिङ्गतावच्छेदकं,
यत्रायं धूमवान् वा आलोकवान् वा उभयथापि वक्षिवाप्यवानिति
ज्ञानानन्तरमनुमितिस्तत्रापि धूमालोकान्यतरत्वरूपेण धूमालोका-
न्यतरनिष्ठव्याप्ति-पञ्चधर्मतानिश्चयादेवानुमितिः फलवलेन तादृश-
ज्ञानकल्पनादित्यर्थः, 'यद्वातिरेकज्ञानमिति यद्वर्मावच्छिन्नविशेष्य-
कयद्वर्मावच्छिन्नवद्भेदज्ञानत्वावच्छिन्नमित्यर्थः, 'तन्निश्चयसाध्यमिति
तद्वर्मावच्छिन्नविषयतानिरूपिततद्वर्मावच्छिन्नविषयताशालिनिश्चय-
त्वावच्छिन्नकारणताप्रतियोगिककार्यतावदित्यर्थः 'पञ्चधर्मस्येति पञ्च-

मर्शे तादृशस्य प्रतिबन्धकत्वस्वीकाराच्च । अथ गोत्वं
मधुरत्वावान्तरजातिर्वा लिङ्गं न स्यात् तद्गतधर्मान्तर-

तावच्छेदकावच्छिन्नपक्षवत् इत्यर्थः, 'व्याप्यभेदज्ञानमिति साध्यव्या-
प्यहेतौ भेदज्ञानमित्यर्थः, 'व्याप्याभेदज्ञानमिति साध्यव्याप्यत्वाव-
च्छिन्ने पक्षतावच्छेदकावच्छिन्नवतोऽभेदस्य पक्षतावच्छेदकावच्छिन्न-
वत्त्वरूपस्य ज्ञानं साध्यव्याप्यत्वावच्छिन्नविषयतानिरूपितपक्षता-
वच्छेदकावच्छिन्नविषयताशालिनिश्चयत्वावच्छिन्नमिति यावत्,
यथाश्रुते सिद्धसाधनापत्तेः, एवमग्रेऽपि, 'पक्षधर्मताज्ञाने' पक्ष-
प्रकारकनिश्चये, 'विशेषदर्शनात्' व्यावर्त्तकधर्मदर्शनात्, पक्षस्यैव
पक्षतावच्छेदकावच्छिन्नवद्भेदव्यावर्त्तकत्वादिति भावः, 'धूमे व्याप्य-
भेदज्ञानं' धूमत्वावच्छिन्ने वक्ष्यव्याप्यत्वावच्छिन्नविशेष्यकपक्षवद्भेद-
ज्ञानमिति यावत्, 'अत इति, 'व्याप्यभेदज्ञानं' साध्यव्याप्यहेतुत्वाव-
च्छिन्ने पक्षवद्भेदज्ञानं, स्वाभावेतरसकलकारणसत्त्वे यत्सत्त्वे कार्या-
नुत्पादस्तस्यैव प्रतिबन्धकत्वादिति भावः । ननु धूमत्वावच्छिन्न-
विशेष्यक-पक्षप्रकारकनिश्चयस्य धूमत्वावच्छिन्नविशेष्यक-पक्षवद्भेद-
प्रकारकनिश्चयं प्रत्येव विरोधितया तत्सत्त्वेऽपि वक्ष्यव्याप्यधूमत्वाव-
च्छिन्नविशेष्यक-पक्षवद्भेदप्रकारकभ्रमे बाधकाभाव इति भ्रमेणाशङ्कते,
'न चेति, 'पक्षधर्मताग्रहे' पक्षप्रकारकनिश्चये, विद्यमानेऽपीति शेषः,
'इयमिति वक्ष्यव्याप्यधूमव्यक्तिरियं पर्वतीया नेति योजना, 'भ्राम्यतः'
भ्रमे बाधकविरहवतः, 'अनुमित्यापत्तिः' तदनन्तरमनुमित्यापत्तिः ।
भ्रमं निराकृत्य समाधत्ते, 'धूमत्वस्येति, घटितत्वं षष्ठ्यर्थः, धूम-

स्याभावात् स्वत एव तस्य विलक्षणत्वात् इति चेत् । न ।
व्यक्तेरेव तत्र प्रकारत्वात्, न हि गौर्गौत्वमिति ज्ञानयो-

त्वघटितविशेषस्येत्यर्थः, 'दर्शनैर्न' विशेष्यतावच्छेदकतया भानेन,
'तादृशभ्रमेति, सामान्यधर्मावच्छिन्नविशेष्यक-तद्भावरत्तकधर्मवत्ता-
निश्चयस्य सामान्यघटितविशेषधर्मावच्छिन्नविशेष्यक-तन्निश्चयं प्रत्यपि
विरोधित्वात् । न च तथापि वक्त्रिव्याप्यः पर्वतवान्नेति भ्रमे बाध-
काभावः तत्र धूमत्वस्य विशेष्यतावच्छेदकस्याप्रवेशादिति वाच्यं ।
तादृशभ्रमसत्त्वेऽनुमितेरिष्टत्वात् वक्त्रिव्याप्यो धूमः पर्वतवानिति नि-
श्चयसत्त्वे वक्त्रिव्याप्यः पर्वतवान्नेति भ्रमेऽप्यनुमितेस्त्वयाप्यभ्युपगमात्,
एवं यत्र प्रथमं वक्त्रिव्याप्यो धूमः पर्वतवान्नेति भ्रमः ततो धूमः
पर्वतवानिति निश्चयस्तत्राप्यनुमितिरिष्टैवेति भावः । पूर्वं 'यत्र
हीत्यादिना सामान्यधर्मावच्छिन्नविशेष्यकतद्भावरत्तकधर्मदर्शनस्य सा-
मान्यघटितविशेषधर्मावच्छिन्नविशेष्यकतत्त्वग्रथं प्रत्यपि विरोधित्व-
मुक्तं अत्र तु तादृशनिश्चयं प्रतीत्यतो न पौनरुक्त्यं । 'अन्यथेति यदि
सामान्यधर्मावच्छिन्नविशेष्यक-तद्भावरत्तकधर्मदर्शनस्य न सामान्य-
घटितविशेषधर्मावच्छिन्नविशेष्यक-तन्निश्चयप्रतिबन्धकत्वं तदेत्यर्थः,
'निश्चयसामग्र्यां' विशेष्यतावच्छेदकप्रकारकनिश्चयादिरूपविशिष्ट-
परामर्शसामग्र्यां, 'भ्रसानन्तरमिति पाठः धूमो न पर्वतवानिति
धूमत्वधर्मितावच्छेदकभ्रमानन्तरमित्यर्थः, 'विशिष्टपरामर्श एवेति(१),

(१) विशिष्टपरामर्श एवेत्यत्र परामर्शएवेति पाठः असाक्षत्वाददर्शपुस्त-
केषु वर्तते इति ।

रविशेषः, अन्यथा गोत्वमिति ज्ञानस्य निर्विकल्प-
कत्वापत्त्या व्याप्यत्वग्रहे परामर्शे चानुपयोगात् गवेत-
रावृत्तित्वे सति सकलगोवृत्तित्वं गोत्वत्वमित्यनुभवाच्च ।

वक्त्रिव्याप्यधूमः पर्वतवानिति विशिष्टपरामर्श एवेत्यर्थः, तथाच
धूमत्वरूपसामान्यधर्मावच्छिन्नविशेष्यक-पर्वतवद्भेदग्रहानन्तरं यथा न
तद्घटितविशेषधर्मावच्छिन्नविशेष्यक-पर्वतवत्तानिश्चयः तथा तादृ-
शसामान्यधर्मावच्छिन्नविशेष्यक-पर्वतवत्तानिश्चयानन्तरमपि न तद्-
घटितविशेषधर्मावच्छिन्नविशेष्यक-पर्वतवद्भेदवत्तानिश्चय इति भावः ।
अभ्युपगमवादेनाह, 'अस्तु वेति, 'व्याप्यतयेति व्याप्यतावच्छेदक-
रूपेण साध्यव्याप्यतयावगते पञ्चवत्तयावगतस्य भेदाग्रह इत्यर्थः ।
कल्पनालाघवं हेतुमाह, 'परामर्शहेतुतयेति । न चैवं यद्व्यतिरेक-
ज्ञानमित्यादिव्याप्तिवलादेव विशिष्टपरामर्शत्वेन हेतुत्वसिद्धिरिति
वाच्यं । यत्त्व-तत्त्वयोरननुगमात् उभयवादिसिद्धदृष्टान्ताभावाच्च
तद्व्याप्तेरसिद्धेः । न च व्यतिरेकेण दृष्टान्तः सुलभ इति वाच्यं ।
साध्यस्याप्रसिद्ध्या^(१) व्यतिरेकदृष्टान्तस्याप्यसम्भवादिति भावः । 'अस-
न्निकृष्टधूमज्ञानादपीति धूमेन्द्रियसन्निकर्षविरहदशायामपि धूमत्व-
रूपेण खण्डशः साध्यव्याप्यत्व-पञ्चवत्त्वस्मरणादनुमितिरित्यर्थः ।

(१) वक्त्रिव्याप्यधूमत्वावच्छिन्नविशेष्यक-पर्वतवत्तानिश्चयत्वावच्छिन्नजनक-
तानिरूपितजन्यत्वरूपसाध्याप्रसिद्धेत्यर्थः ।

न चैवमनवस्था, तदितरावृत्तित्वे सति तद्वृत्तित्वस्यानु-
भवेनापलापासम्भवात् ।

इति श्रीमद्भग्वेत्तेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ
अनुमानाख्यद्वितीयखण्डे परामर्शपूर्वपक्षः ।

‘गौरवमिति कारणतावच्छेदकशरीरगौरवमित्यर्थः, विशिष्टपरा-
मर्शत्वमपेक्ष्य यथोक्तभेदाग्रहत्वस्य गुरुत्वादिति भावः । ‘तदेति
धूमेन्द्रियसन्निकर्षविरहदशाचामित्यर्थः, ‘अनुपस्थितेः’ अनुपपत्तेः,
तथाचानायत्या गौरवमप्यास्थीयत इति भावः^(१) । ‘भेदग्रहः’
व्याप्यतावच्छेदकप्रकारेण साध्यव्याप्यतयावगते पक्षवद्भेदग्रहः ।
‘अभेदज्ञानस्य’^(२) साध्यव्याप्यत्वविशिष्टहेतौ पक्षवदभेदप्रकारकनिश्च-
यस्य तादृशहेतौ पक्षप्रकारकनिश्चयस्येति यावत्, ‘अजनकत्वात्’
जनकत्वासम्भवात्, तथाचानायत्या कारणीभूतज्ञानाविरोधिनोऽपि

(१) ननु यत् यस्य प्रतिबन्धकं ज्ञानं तत् तस्य जनकौभूतज्ञानविघटकं
भवतीति व्याप्तिवन्तात् तादृशभेदज्ञानं नानुमितिप्रतिबन्धकं स्यादि-
त्यत आह मूले न चेति ।

(२) ननु तादृशभेदज्ञानं यदि नानुमितिप्रतिबन्धकं तदा तत्सत्त्वे अनु-
मितिरेव कुतो न स्यात् तत्र विशिष्टनिश्चयरूपकारणाभावादतो
नानुमित्युत्पादः इत्यत आह अभेदज्ञानस्येति ।

तादृशभेदज्ञानस्य प्रतिबन्धकत्वमास्थीयत इति भावः । उक्तव्याप्ते-
र्व्यभिचारमप्याह, 'तथापीति, 'तादृशस्य' कारणीभूतज्ञानाविरो-
धिनो यथोक्तभेदग्रहस्य^(१) । 'अथेति यदि च व्याप्यतावच्छेदक-
प्रकारेण व्याप्तिज्ञानं व्याप्यतावच्छेदकप्रकारेण पञ्चधर्मताज्ञानं
व्याप्यतावच्छेदकप्रकारेण व्याप्यतयावगते पञ्चवद्भेदग्रहाभावो वानु-
मितिहेतुः तदा गोत्व-मधुरत्वावान्तरजातिलिङ्गकानुमितिर्न स्या-
दित्यर्थः,^(२) जातिपदं धर्मपरं, स च धर्मः परेषामखण्डोपाधिः
अस्माकं जातिरेवेति फलतो न कश्चिद्विशेषः । 'धर्मान्तरेति
अनतिप्रसक्तधर्मान्तरेत्यर्थः । न च गोत्वे गोपदप्रवृत्तिनिमित्तत्व-
मेव तादृशोधर्मः सम्भवतीति वाच्यं । पृथिवीत्वस्यापि गोपदप्रवृत्ति-
निमित्ततया तस्यातिप्रसक्तत्वात् मधुरत्वावान्तरजातेस्तदसम्भवाच्च,
अत एव पृथक् तदुत्कीर्तनं । नन्वेवं भवन्मतेऽपि कथं तस्य गवा-
दावितरव्यावृत्तिसाधकत्वमत आह, 'स्वतएवेति स्वरूपत एवेत्यर्थः,
अस्मन्नय इति शेषः, 'विलक्षणत्वात्' व्यावर्त्तकत्वात् । 'व्यक्तेरेवेति
गोत्वाद्यवच्छिन्नगवादिव्यक्तेरेवेत्यर्थः, समवेतत्वसम्बन्धेनेति शेषः,
'प्रकारत्वात्' अनतिप्रसक्तधर्मत्वात् । ननु समवेतत्वस्य सम्बन्धत्वे
मानाभाव इत्यत आह, 'न हीति, समवेतत्वसम्बन्धेन गोत्वे गोप्रका-
रकत्वस्यैव तत्र विशेषत्वादिति भावः । ननु गौरिति ज्ञाने गोत्वं

(१) तथाच यत् यस्य प्रतिबन्धकीभूतं ज्ञानं भवति तत् तस्य जनकीभूत-
ज्ञानविघटकं स्यात् इति व्याप्तौ परामर्शप्रतिबन्धके भेदग्रहे परा-
मर्शजनकज्ञानविघटकत्वाभावात् व्यभिचार इति भावः ।

(२) गोत्वादेः स्वरूपतो भानमित्यभिप्राय इति ।

प्रकारः गोत्वमित्यत्र तु न तथेत्येव विशेष इत्यत आह, 'अन्यथेति,
 'व्याप्यत्वग्रहे इति गोत्वघटितव्याप्यत्वग्रहे तादृशव्याप्यत्वविशिष्टवत्ता-
 परामर्शं चानुपयोगप्रसङ्गादित्यर्थः, विशेषणतावच्छेदकप्रकारक-
 ज्ञानविधयेव तत्र तस्य उपयोगादिति भावः । ननु गोनिष्ठाभावा-
 प्रतियोगित्वादिगर्भव्याप्यत्वग्रहे तादृशव्याप्यत्वविशिष्टवत्तापरामर्शं च
 विशेषणज्ञानविधयेवासन्नन्त्ये तस्योपयोग इत्यत आह, 'गवेतरेति,
 गोवृत्ति गोत्वमित्येव पाठः, तथाच गवेतरासमवेतत्वे सति सकल-
 गोसमवेतत्वमेव तत्रानतिप्रसक्तो धर्मस्तस्यानुभवसिद्धत्वेनापक्लवासम्भ-
 वादिति भावः । 'न चैवमिति, 'एवं' गोत्वेऽपि अनतिप्रसक्तधर्म-
 स्वीकारे, 'अनवस्थेति तत्रापि धर्मान्तरस्वीकारेऽनवस्थेत्यर्थः, 'अनु-
 भवेनेति अनुभवसिद्धत्वेनेत्यर्थः, तथाच प्रामाणिकत्वादनवस्थेयं न
 दोषायेति भावः ।

इति श्रीमथुरानाथतर्कवागीश-विरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये
 अनुमानाख्यद्वितीयखण्डरहस्ये परामर्शपूर्वपक्षरहस्यं ।

अथ परामर्शसिद्धान्तः ।



अत्रोच्यते अयमालोको धूमो वा उभयथापि वह्नि-
व्याप्य इति ज्ञानं ततोऽनुमितिः । न च धूमत्वेनालोक-
त्वेन वा तत्र निश्चयः । अथ तदन्यान्यत्वमेव तत्र लिङ्गं ।
न च तदज्ञानदशायामनुमितिदर्शनात् न तथेति
वाच्यं । धूमालोकान्यान्यत्वज्ञानं विना तवापि तत्र
व्याप्यत्वानिश्चयेन तदर्थं तदोधावश्यकत्वादिति चेत् ।

अथ परामर्शसिद्धान्तरहस्यं ।

यत्रायं पक्षः व्याप्यत्वसम्बन्धेन संयोगसम्बन्धेन वा वह्निः साध्यः
तादात्म्यसम्बन्धेनालोको धूमो वा हेतुः तत्रायं धूमो वा आलोको
वा उभयथापि वह्निव्याप्य इति व्याप्यतावच्छेदकधूमत्वादिप्रकारक-
संगत्यात्मकव्याप्यतावच्छेदकतादात्म्यसंमर्गकवह्निव्याप्यप्रकारकज्ञानान-
न्तरमपि व्याप्यत्वादिसम्बन्धेन वह्नेरनुमितिः परस्याप्यभिमतता सा
कथं स्यात् व्याप्यतावच्छेदकधूमत्वादिप्रकारकव्याप्ति-पक्षधर्मतानिश्चय-
विरहादिति समाधत्ते, 'अयमिति, 'आलोको धूमो वेति, अत्र
तादात्म्यसम्बन्धेनालोकादिरेव कोटिः, 'इति ज्ञानमिति इत्या-
कारकं व्याप्यतावच्छेदकतादात्म्यसम्बन्धेन पक्षे वह्निव्याप्यप्रकारक-

न । न हि धूमालोकान्यान्यत्वं धूमान्यान्यत्वं वा व्याप्या-
वच्छेदकं, गौरवात् व्यभिचारादारकविशेषणवत्त्वाच्च,
किन्तु धूमत्वादिकं, तच्च तत्र सन्दिग्धमेव । ननु तद-
न्यान्यद्वह्निव्याप्यमेव व्यभिचाराभावेन व्याप्तिविरह-
साधनस्य बाधितत्वात्, पुरुषस्तु तत्र नीलधूमवत्त्वादि-

ज्ञानमित्यर्थः । न चेदन्तावच्छिन्ने वक्ष्यव्याप्तिप्रकारकनिश्चयस्यैवाय-
माकारो न तु व्याप्यप्रकारकनिश्चयस्येति वाच्यं । धर्मप्रकारक-
निश्चयस्यैव तादात्म्यसम्बन्धेन धर्मिप्रकारकनिश्चयाकारत्वात् । अत एव
गोत्वप्रकारकज्ञानस्येव तादात्म्यसम्बन्धेन गवादिप्रकारकज्ञानस्यापि
अयं गौरित्याकार इति सर्व्वजनसिद्धं, 'ततोऽनुमितिः' तदनन्तर-
मपि व्याप्यत्वादिसम्बन्धेन वक्षेरनुमितिः, परस्याभिमत्येति शेषः, 'तत्र
निश्चयः' तत्र व्याप्ति-पक्षधर्मतयोर्निश्चयः । यद्यपि पर्व्वतो वक्षिमान्
धूमादित्यत्र पर्व्वतो धूमवान् आलोकवान् वा उभयथापि वक्ष्यव्याप्य-
वानिति व्याप्यतावच्छेदकधूमत्वादिप्रकारकसंशयात्मकपरामर्शद्वङ्ग्य-
नुमितिरनुभवसिद्धा सा तन्मते न स्यादित्येव वक्तुं युक्तं प्रसिद्धोदा-
हरणत्वात्, तथापि तैः^(१) तत्र तादृशसंशयात्मकपरामर्शानन्तरं
वङ्ग्यनुमितिर्जायते इति स्वशास्त्रे व्याप्यलिखनात् तत्परित्यागः ।
'तदन्यान्यत्वमेवेति धूमालोकान्यतरत्वमेवेत्यर्थः,^(२) 'तत्र लिङ्गं' तत्र

(१) मीमांसकैरित्यर्थः ।

(२) धूमालोकान्यान्यत्वमेवेत्यर्थ इति ग० ।

त्यत्रैवाधिकेन निगृह्यते, न तु व्याप्यत्वासिद्धेति चेत् । न ।
तदन्यान्यधूमालोकस्वरूपमेव तच्च व्याप्यमिति सत्यं ।
न च वस्तुगत्या व्याप्यज्ञानादनुमितिः, अतिप्रसङ्गात् ।
किन्तु व्याप्यतावच्छेदकप्रकारकज्ञानात्, न च तदन्या-
न्यत्वं वह्निव्याप्यतावच्छेदकं, इत्युक्तम् । न चैवं तदन्या-
न्यत्वादह्निव्याप्यत्वमपि तत्र नानुमेयं व्यर्थविशेषण-

वह्निव्याप्यंशे^(१) विशेष्यतावच्छेदकं सत्यचधर्मताग्रहे विशेषणतावच्छे-
दकं, तथाच तत्र साध्यवह्निव्याप्यधूमालोकान्यतरोऽयमिति ज्ञानं
ततोऽनुमितिरिति भावः । 'तदज्ञानदशायामपीति धूमालोका-
न्यतरत्वाज्ञानदशायामपीत्यर्थः, 'अनुमितिदर्शनात्' तादृशसंशया-
त्मकपरामर्शानन्तरं व्याप्यत्वादिसम्बन्धेन वह्नेरनुमितिदर्शनात्, 'न
तथा' न मध्ये तादृशज्ञानं । 'धूमालोकान्यान्यत्वज्ञानमिति पक्षे
तादात्म्यसम्बन्धेन धूमालोकान्यतरत्वप्रकारक-धूमालोकान्यतरवत्ता-
निश्चयं विनेत्यर्थः, 'व्याप्यत्वानिश्चयेनेति पक्षे प्रत्यक्षतो वह्निव्याप्यत्व-
प्रकारक-वह्निव्याप्यवत्तानिश्चयासम्भवेनेत्यर्थः, संशयादिनिरासार्थं
विशेषदर्शनविधया तन्निश्चयस्योपयोगादित्यभिमानः । 'धूमान्यान्यत्वं
वेति, 'वाग्भट्ट इवार्थः, 'गौरवादिति । न चैकस्यावच्छेदकत्वापेक्षया
धूमत्वालोकत्वधर्मद्वयस्यावच्छेदकत्व एव गौरवमिति वाच्यं । तादृश-
धर्मस्यैकत्वेऽपि वज्रतरभेदादिघटिततया चरमोपस्थितत्वेन च तद्-

(१) व्याप्यंशे इति ख०, ग० ।

णमित्यन्यथापि तथा । अथ वह्निव्याप्यत्वमपि वह्नि-
व्याप्यतावच्छेदकं तथाहि वह्निनिरूपिता धूमादि-
प्रत्येकवृत्तिरेव व्याप्तिर्व्याप्तित्वेन सकलधूमादिवृत्ति-

हेतुर्नेत्यर्थः, शेषं पूर्ववदित्याहुः । तन्न । धूमालोकान्यान्यत्वस्य धूम-
त्वाद्यतिरिक्तत्वे भिन्नधर्मिकतया धूमप्रागभाववदवैयर्थ्यात् धूमत्वादि-
रूपत्वेऽपि च धूमत्वत्वादेरप्रवेशेन वैयर्थ्यविरहादिति द्रष्टव्यं ।

न भवत्येव तत्र तेन हेतुना वह्निव्याप्यत्वानुमितिः किन्तु प्रत्यक्षत-
एव तत्र व्याप्तिर्गृह्यते इति समाधत्ते, 'प्रत्यक्षं हीति, 'विशेषदर्शना-
दिति, एतच्च संशयोत्तरव्याप्तिप्रत्यक्षाभिप्रायेण, 'विशेषण-विशेष्य-
सम्बन्धेति, एतच्च सम्बन्धांशे लौकिकप्रत्यक्षाभिप्रायेण, यथार्थप्रत्यक्षं
प्रति विशेषण-विशेष्यसम्बन्धस्य गुणतया तत्सम्पादनाय इदमित्यपि
कश्चित् । 'विशेषण-विशेष्येन्द्रियेति, विशेषणस्य ज्ञानसत्त्वेऽपि पुनरि-
न्द्रियसन्निकर्षाभिधानं तदंशे लौकिकप्रत्यक्षाभिप्रायेण, 'प्रत्यक्षसत्त्वा-
दिति प्रत्यक्षसम्भवादित्यर्थः, इदमुपलक्षणं व्यर्थविशेषणतया तद्भ्रमा-
वच्छिन्नघटितव्यापकसामानाधिकरण्यरूपव्याप्तेर्विरहेऽपि तद्भ्रमेण
साध्याभाववद्वृत्तित्वरूपव्याप्तिज्ञानेन वा अनुमितेरपि सम्भवाच्च, न
हि गुरुतया इव न्यायनयेऽपि व्याप्यतावच्छेदकप्रकारकज्ञानमेव कारणं
अन्यथाख्यात्यनभ्युपगमो वेति श्रेयं । 'न चैवमिति, 'एवं' गुरुतयान-
वच्छेदकत्वे, 'प्रत्यक्षेऽपीति, गुरुतया विषयितया ज्ञाननिष्ठप्रत्यक्ष-
कारणतावच्छेदकतासम्भवादिति भावः । 'गुरोरपीति, तस्य बुद्धे-

व्याप्यवच्छेदिका आश्रयभेदेनावच्छेदकभेदेन च व्या-
प्तिभेदादिति चेत् । न । सकलधूमादिवृत्तिव्याप्तौ माना-
भावात् यत्र वह्निव्याप्यस्तत्र वह्निरिति व्याप्तिबुद्धौ

रिति शेषः, 'विशेषदर्शनत्वेनेति व्यावर्त्तकधर्मदर्शनविधया विपरीत-
ज्ञानविरोधिदर्शनत्वेनेत्यर्थः, 'प्रत्यक्षसहकारित्वात्' प्रत्यक्षोपयोगित्वात्,
न तु तदन्यान्यत्वज्ञानत्वेन कारणत्वमिति भावः । 'तदन्यान्यत्वज्ञान-
मिति पक्षे धूमालोकान्यान्यत्वप्रकारक-धूमालोकान्यान्यवत्ताज्ञान-
मित्यर्थः, 'तत्रेति अयमालोको धूमो वेत्यादिसंशयपरामर्शस्थल-
इत्यर्थः, 'व्याप्यताज्ञानोपक्षीणमिति पक्षे वह्निव्याप्यत्वप्रकारक-वह्नि-
व्याप्यवत्ताप्रत्यक्षोपयुक्तमित्यर्थः, 'न लिति, व्याप्यतावच्छेदकप्रकारक-
व्याप्तिपक्षधर्मताज्ञानस्यैव भवन्मतेऽनुमितिहेतुत्वात् अन्यतरत्वस्य च
गौरवादिना व्याप्यतानवच्छेदकत्वादिति भावः । इदमुपलक्षणं
संशयादिसामग्र्याः सर्वज्ञानावश्यकत्वेन यत्रेतरकारणाभावात् संशया-
द्यभावः तत्र धूमालोकान्यतरवत्ताज्ञानमपि नावश्यकमिति मन्तव्यं ।
अस्तु वा गुरुरपि धर्मे व्याप्यतावच्छेदकः अस्तु वा उक्तस्थले धूमा-
लोकान्यान्यवत्ताज्ञानमावश्यकं तथापि शुद्धव्याप्तिप्रकारकशब्द-
ज्ञानस्थले व्यभिचारान्न व्याप्यतावच्छेदकप्रकारकव्याप्यादिज्ञानस्यैव
हेतुतानियम इत्याह, 'किञ्चेति, 'शब्दज्ञाने' शब्दज्ञानजन्यानु-
मितौ, 'व्याप्यत्वज्ञानं कारणमिति पक्षेनावच्छेदकावच्छिन्नपक्षद्वय-
तानिरूपित-व्याप्यत्वावच्छिन्नविषयताज्ञानमेव कारणमित्यर्थः,

त्वादिति वाच्यं । प्रत्यक्षं हि तदन्यान्यत्वविशेषदर्शना-
 द्वाप्यत्वज्ञानं जनयति विशेषणज्ञान-विशेषणविशेष्यस-
 म्वन्ध-विशेषणविशेष्येन्द्रियसन्निकर्ष-तदसंसर्गाग्रहवि-
 शेषदर्शनानां सत्त्वेन वह्निव्याप्यत्वप्रत्यक्षसत्त्वात् । न चैवं
 न प्रत्यक्षेऽपि तदन्यान्यत्वज्ञानं सहकारीति वाच्यम् ।

घटकधर्मद्वयस्यैवावच्छेदकत्वौचित्यात् लाघवद्वयसत्त्वेनैकत्वरूपलाघव-
 स्याकिञ्चित्करत्वादिति भावः, 'व्यभिचारेति अन्यान्यत्वलक्षणव्यभि-
 चारावारकधर्मघटितत्वाच्चेत्यर्थः, 'सन्धिग्धमेव' सन्देहकोटिताव-
 च्छेदकमेव, तदन्यान्यत्वस्य व्यभिचारावारकधर्मघटिततया तदन्या-
 न्यवह्निव्याप्यमेव नेत्युक्तमिति भ्रमेणाशङ्कते, 'नन्विति ।

केचित्तु वस्तुगत्या व्याप्यस्य पक्षधर्मताज्ञानं कारणमित्याशयेना-
 शङ्कते, 'नन्वित्तीत्याहुः ।

'तदन्यान्यदिति पाठः, 'तदन्यान्यत्वमिति पाठे तदन्यस्यान्यत्वं
 यत्र इति वज्रघ्नीहिरिति^(१) एवमुत्तरत्र, 'वह्निव्याप्यमेव, धूमालोकत्वरूपेण
 वह्निव्याप्यमेव । नन्वेवं धूमालोकान्यतरस्मादिति प्रयोगे कथं निग्रह-
 इत्यत आह, 'पुरुषेति, 'नीलधूमवत्त्वादित्यत्रेवेति, नीलधूमत्वस्य
 व्यर्थविशेषणघटिततया तेन रूपेण व्याप्तिविरहेऽपि धूमत्वरूपेण
 व्याप्तिसत्त्वादिति भावः । भ्रमं निराकृत्य समाधत्ते, 'तदन्यान्यदिति,

(१) तदन्यान्यत्वं यत्रेति वज्रघ्नीहिरिति ग० । तदन्यत् अन्यत् यत इति
 वज्रघ्नीहिरिति घ० ।

अन्वय-व्यतिरेकाभ्यां गुरोरपि तस्य विशेषदर्शनत्वेन
प्रत्यक्षसहकारित्वात् तस्मात्तदन्यान्यत्वज्ञानं तत्र व्याप्य-
ताज्ञानोपक्षीणं न तु साक्षादनुमितिहेतुरिति, किञ्च
वह्निव्याप्यवानयमिति शाब्दज्ञाने व्याप्यत्वज्ञानं कार-

‘व्याप्यज्ञानात्’ व्याप्यस्य पक्षधर्मताज्ञानात्, ‘अतिप्रसङ्गादिति वक्त्रि-
व्याप्योधूस्रः द्रव्यवान् पर्वत इत्यादिज्ञानादपि भवन्मतेऽनुमिति-
प्रसङ्गादित्यर्थः, ‘व्याप्यतावच्छेदकप्रकारकज्ञानादिति व्याप्तिग्रहविशे-
षतावच्छेदकौभूतो यो व्याप्यतावच्छेदकधर्मस्तत्प्रकारकपक्षधर्मता-
ज्ञानादित्यर्थः । ‘न चैवमिति, ‘एवं’ धूमालोकान्यान्यत्वस्य व्याप्यता-
वच्छेदकत्वाभावे, धूमत्वालोकत्वादिरूपेण व्याप्तिज्ञानविरहदशाया-
मिति शेषः, ‘तदन्यान्यत्वादिति धर्मिपरो निर्देशः तादात्म्यसम्ब-
न्धेन धूमालोकान्यतरेण हेतुनेत्यर्थः, ‘नानुमेयं’ नानुमातुं शक्यं,
‘व्यर्थविशेषणत्वादिति व्यर्थविशेषणतया तस्य व्याप्यतावच्छेदकत्वा
भावेन तद्वर्मावच्छिन्नस्य व्याप्यघटकत्वादित्यर्थः, तद्वर्मावच्छिन्नस्य
व्याप्तिघटकत्वे तद्वर्मस्य व्याप्यतावच्छेदकत्वस्याप्यावश्यकत्वात् यद्वर्मा-
वच्छिन्नसमानाधिकरणाभावप्रतियोगितानवच्छेदकं साध्यतावच्छेदकं
तस्यैव व्याप्यतावच्छेदकत्वात् इति भावः ।

केचित्तु ‘न चैवमिति, ‘एवं’ व्यर्थविशेषणत्वस्य व्याप्यतावच्छेदक-
ताविघटकत्वे, धूमत्वादिना व्याप्तिज्ञानविरहदशायामिति शेषः,
‘तदन्यान्यत्वादिति विशेषणताविशेषसम्बन्धेन धूमालोकान्यान्यत्वेन

शाब्दव्याप्यत्वबुद्धौ च प्रत्येकवृत्तिव्याप्त्याश्रयत्वस्यैव
विषयत्वात् प्रत्येकवृत्तिव्याप्तिज्ञानं विना तद्विधाभा-
वात् । अपि च यत्र धूमत्व-व्याप्त्योर्वैशिष्ट्यं प्रथममेव

‘अन्यत्रापि’ वक्त्रिव्याप्त्यो धूमः धूमवान् पर्वत इत्यादिज्ञानोत्तरमनु-
मितावपि, ‘तथा’ तादृशविषयताशालिज्ञानं कारणं, न तु सर्वत्र
व्याप्यताच्छेदकप्रकारकव्याप्त्यादिज्ञानमेव कारणमिति नियमोऽत्रैव
व्यभिचारादिति भावः । व्यभिचारमुद्धरति, ‘अथेति, तथाच व्याप्यत्व-
प्रकारकज्ञानस्यैव व्याप्यतावच्छेदकप्रकारकज्ञानत्वान्नियमस्य न व्यभि-
चार इति भावः । ननु व्याप्तेर्व्याप्यतावच्छेदकत्वे आत्माश्रयः इत्यत-
आह, ‘तथाहीति, ‘प्रत्येकवृत्तिः’ प्रत्येकमात्रवृत्तिः, ‘सकलधूमा-
दीति सकलधूमालोकादिनिष्ठेत्यर्थः । ननु यत्र यत्र वक्त्रिव्याप्यस्तत्र
वक्त्रिरिति प्रतीतिरेव मानमित्यत आह, ‘यत्रेति, ‘शाब्दव्याप्यत्वबुद्धौ
चेति, ‘चशब्द इवार्थे, शाब्दवक्त्रिव्याप्यवानयमिति बुद्धाविवेत्यर्थः ।
ननु प्रत्येकवृत्तिव्याप्तिज्ञानाभावदशायामपि तादृशप्रतीत्युत्पत्तेर्न
तस्याः प्रत्येकवृत्तिव्याप्त्याश्रयत्वं विषय इत्यत आह, ‘प्रत्येकेति, तवा-
पीतिशेषः, प्रत्येकव्याप्तेर्महाव्याप्यवच्छेदकत्वादिति भावः । इदमापा-
ततः यत्र यत्र धूमस्तत्र वक्त्रिरित्यस्य धूमत्वावच्छिन्नव्याप्तिविषयकत्ववत्
यत्र यत्र वक्त्रिव्याप्यस्तत्र वक्त्रिरित्यस्यापि व्याप्यत्वावच्छिन्नव्याप्तिविष-
यताकत्वस्य सर्वानुभवसिद्धत्वात्, न ह्येतस्य धूमादिसमानाधिकरणा-
भावाप्रतियोगित्वादिरूपव्याप्यत्वं विषय इति कश्चित् प्रत्येति । वस्तु-

प्रत्यक्षेण युगपत्पक्षधर्मे भासते तत्र लाघवात् व्याप्यत्व-
ज्ञानत्वमेव कारणतावच्छेदकं । न चैवमतिरिक्तविशि-
ष्टज्ञानकारणत्वे गौरवं दोषाय, सप्रमाणकत्वात् कार-
णताग्रहदशायां फलमुखगौरवस्य सिद्धासिद्धिभ्याम-

तो विशेषव्याप्यवच्छिन्ना महाव्याप्तिरतिरिच्यतां तथापि प्रकृते
व्याप्तेर्व्याप्यवच्छेदकत्वेन व्याप्यतावच्छेदकप्रकारक-पक्षधर्मताज्ञानसत्त्वे-
ऽपि वक्ष्यव्याप्यो वक्ष्यव्याप्य इति तत्प्रकारकव्याप्तिज्ञानाभावात्
कथमनुमितिः स्यात् । न च तदनन्तरं यो यो वक्ष्यव्याप्यवान् सोऽ-
भिमान् इति व्याप्तिज्ञानं कल्प्यते ततोऽनुमितिरिति वाच्यं । तथा
सति कल्प्यत्वाविशेषेण लघुरूपावच्छिन्नस्यैव नियतपूर्ववर्तितायाः
कल्पयितुं युक्तत्वादित्येव तत्त्वं । ननु शाब्दपरामर्शमात्रादनुमिति-
रभिद्वैव इत्यत आह, 'अपि चेति, 'विशिष्टमिति पाठः, 'यत्र प्रथमं'
यदनुमितेरव्यवहितपूर्वं, वक्ष्यव्याप्यत्व-धूमत्वविशिष्टमेव 'प्रत्यक्षेण',
'युगपत्' विशिष्टस्य वैशिष्ट्यमिति रीत्या, 'पक्षधर्मे' पक्षतावच्छेद-
कावच्छिन्ने, 'भासते' ज्ञायते, 'तत्र', इति योजना, क्वचित्
'वैशिष्ट्यमिति पाठः, तत्रावच्छिन्नस्येत्यादिः, तथाच वक्ष्यव्याप्यत्व-
धूमत्वावच्छिन्नस्य वैशिष्ट्यमेवेत्यर्थः, शेषं पूर्ववत् । 'व्याप्यत्वज्ञानत्व-
मेवेति पक्षतावच्छेदकावच्छिन्नपक्षविषयतानिरूपितसाध्यव्याप्यत्वाव-
च्छिन्नविषयताशालिनिश्चयत्वमेवेत्यर्थः । 'न चैवमिति, यत्र वक्ष्य-
व्याप्यो धूमः धूमवान् पर्वत इति ज्ञानानन्तरमनुमितिस्तत्रेति

दोषत्वात् । न चासन्निकृष्टे धूमे तदभावः, भवन्मतानु-
मितिहेतुव्याप्तिस्मरण-धूमत्वज्ञानसहितेन मनसा तदु-
त्पादात् यथा परमाणुर्निरवयवद्रव्यं नित्यपरिमाण-
वत्त्वात् आकाशवदित्यादौ प्रत्येकानुमानोपनीताती-

शेषः, 'कारणत्वे' पूर्ववर्तित्वकल्पने, 'सप्रमाणकत्वादिति कार्य-
कारणभावग्रहाधीनप्रमाणगम्यत्वादित्यर्थः^(१) अयं क्षणः विशिष्टपरा-
मर्शवान् अव्यवहितपूर्ववर्तितासम्बन्धेनानुमितिमत्त्वात् इत्यनुमानेन
विशिष्टपरामर्शसिद्धावनुकूलतर्कविधया कारणताग्रहस्य वीजत्वा-
दिति भावः^(२) । तावतैव कथं न तस्य दोषत्वं तदाह, 'कारणता-
ग्रहदशायामिति तत्प्राग्दशायामित्यर्थः^(३), 'फलेति, 'फलं' विशि-
ष्टपरामर्शानुमित्योः कार्य-कारणभावग्रहः^(४) स एव 'मुखं' निश्च-
यवीजं, यस्य एतादृशं गौरवमतिरिक्तविशिष्टपरामर्शरूपं तस्येत्यर्थः,
'सिद्धसिद्धिभ्यामिति ज्ञानाज्ञानाभ्यामित्यर्थः, तदानीं^(५) तस्य^(६)

(१) तादृशविशिष्टपरामर्शत्वावच्छिन्नकारणतानिरूपितकार्यताप्रकार-
कानुमितिविशेष्यकनिश्चयप्रयोज्यानुमानजन्यज्ञानविषयत्वादित्यर्थः ।

(२) एतादृशपरामर्शविषयकानुमितिनिरूपितानुकूलतर्कप्रयोज्यकारण-
ताग्रहनिष्ठप्रयोजकत्वादित्यर्थः ।

(३) कारणताग्रहपूर्वदशायामित्यर्थः ।

(४) अनुमितिमत्त्वं विशिष्टपरामर्शकार्यं इत्याकारग्रहः ।

(५) पूर्वदशायामित्यर्थः ।

(६) गौरवस्येत्यर्थः ।

न्द्रियसाध्य-साधनयोरकाशवृत्तितया स्मरणे व्यभि-
चाराज्ञाने मनसा व्याप्यनुभवः अनुमानयोः प्रत्येक-
तदुभयसहचाराविषयत्वेन व्याप्यग्राहकत्वात् । न चा-
तीन्द्रियव्याप्यत्वमतीन्द्रियेऽनुमेयं, तचापि व्याप्तिग्राह-
काभावात् । न च तदुपनयसहितस्य मनसो बहिरर्थ-

ज्ञानसत्त्वे कार्य-कारणभावग्रहस्य तन्निश्चयप्रयोजकतया संशयरूपमेव
तज्ज्ञानं भविष्यतीति तच्च न दोषताप्रयोजकं निश्चितगौरवस्यैव
दोषत्वात्,^(१) एतदज्ञानञ्चेत् तथापि न दोषाय स्वरूपसङ्गौरव-
स्यादोषत्वादिति भावः ।

केचित्तु 'सप्रमाणकत्वादिति अनुमित्यात्मककार्यरूपप्रमाणगन्ध-
त्वादित्यर्थः,^(२) उक्तानुमानेनैव तत्सिद्धेरिति भावः । ननु कार्यस्य
सप्रमाणत्वं कार्य-कारणभावग्रहे सति स्यादनुकूलतर्कविधया तस्य
तत्रोपयोगात् स एव न सम्भवति गौरवेण प्रतिबन्धादित्यत आह,
'कारणतेति, अर्थस्तु पूर्ववदित्याहुः ।

'सप्रमाणकत्वादिति यथाश्रुतन्तु न सङ्गच्छते सप्रमाणकत्वस्या-
दोषत्वप्रयोजकत्वे गौरवमात्रस्यैवादोषतापत्तेः, न ह्यप्रामाणिकं
गौरवमस्तीति ध्येयं । इन्द्रियासन्निकृष्टस्थले प्रागुक्तव्यभिचारमुद्धरति,

(१) दोषताप्रयोजकत्वादिति घ० ।

(२) अनुमित्यात्मकपरामर्शकार्यरूपप्रमाणगन्धत्वादित्यर्थ इति घ० ।

प्रमाहेतुत्वे उपनयस्य प्रमाणान्तरत्वम्, इन्द्रियादेः
सन्निकर्षवदुपनयस्य नियतव्यापाराभावेन प्रमायाम-
करणत्वात्, सहकारिता च तदभावेऽपि भवति वहि-
रिन्द्रियलिङ्गसादृश्यादिव्यापारं विनापि चिन्तोपनी-

‘न चेति, ‘धूमत्वज्ञानेति धूमत्वप्रकाररूपचधर्मताज्ञानेत्यर्थः । ननु
गुरूणां उपनीतमानानङ्गीकर्तृणां कथं मानसबोध इत्यत आह,
‘यथेति, ‘प्रत्येकानुमानेति आकाशं निरवयवद्रव्यं परममहत्त्वात्
आकाशं नित्यपरिमाणवत् अमूर्त्तद्रव्यत्वादित्यनुमानाभ्यां आकाश-
वृत्तितयोपनीतेत्यर्थः, ‘आकाशवृत्तितया स्मरण इति, एतेन सह-
चारज्ञानं स्यादितं, ‘मनसा व्याप्यनुभव इति,^(१) न च तत्र
स्मरणरूपमेव व्याप्तिज्ञानं स्यादिति वाच्यं । व्याप्यस्मरणेऽप्यनुमि-
त्युत्पत्तेरिति भावः । ननु तत्र साध्य-साधनग्राहकप्रत्येकानुमाना-
भ्यामेव व्याप्तिज्ञानं स्यात् किं मानसेन इत्यत आह, ‘अनुमान-
योरिति, ‘व्याप्यग्राहकत्वादिति व्याप्यविषयकत्वादित्यर्थः, न हि
सहचारविषयकं ज्ञानं नियतसहचारात्मकव्याप्तिविषयकं सम्भव-
तीति ध्येयं । ‘तत्रापीति, न च तत्राप्यनुमानान्तराद्याप्तिग्रह इति
वाच्यं । तादृशाविरललग्नव्याप्यनुमितिधाराविरहेऽप्यनुमितेरानुभवि-
कत्वादिति भावः । ‘तदुपनयसहितस्य’ तत्तदुपनयरूपासाधारण-
कारणसहितस्य, ‘वहिरर्थप्रमाजनकत्वे’ पर्वतादिवह्निर्विशेष्यक-लिङ्ग-

(१) व्यापकत्ववटकयत्पदार्थोपस्थितिदशायामित्यादि, अन्यथा व्यापक-
त्वस्योपभायकाभावात् व्याप्त्यनुभवेन सम्भवतीति भावः ।

तपदार्थानां बाधकानवतारे मनसा संसर्गानुभवस्य
सकलजनसिद्धत्वात् कथमन्यथा कविकाव्यादिकमिति ।

स्यादेतत् पक्षधर्मस्य व्याप्यताज्ञानं नेन्द्रियेण वहे-
रसन्निकर्षे तन्नियतसामानाधिकरण्यस्य व्याप्यत्वस्या-

प्रत्यक्षजनकत्वे, 'उपनयस्य' तत्तदुपनयस्य, 'प्रमाणान्तरत्वं' प्रमाणा-
न्तरत्वप्रसङ्गः पर्वतादिविशेष्यक-लिङ्गविषयकप्रमाकरणत्वप्रसङ्ग इति
यावत्, यदसाधारणमित्याद्युक्तव्याप्तेरिति भावः । 'नियतव्यापारा-
भावेन' करणत्वव्यापकस्य तन्ननकव्यापारवत्त्वस्याभावेन, 'प्रमाया-
मकरणत्वात्' पर्वतादिविशेष्यकवह्निव्याप्यादिप्रकारकप्रमायाः करण-
त्वापादनासम्भवात्, यस्य तु व्यापारसम्भवस्तस्य करणत्वमिष्टमेव ।
यद्यप्यापत्तौ बाधोऽनुगुण एव, तथापि तदर्थविषयकज्ञानहेतु-
व्यापारवत्त्वे सति तदर्थविषयकज्ञानासाधारणकारणत्वमेव तदर्थ-
विषयकप्रमाकरणत्वयोग्यं^(१) न तु यदसाधारणमित्याद्युक्तो 'हेतु-
र्मानाभावात्' इति भावः । ननु व्यापाराभावे सहकारितैव कुत-
इत्यत आह, 'सहकारिता चेति, यदसाधारणेत्यादिव्याप्तौ व्यभि-
चारमप्याह, 'वहिरिन्द्रियेति, 'बाधकानवतारे' असत्यां बाधादि-
बुद्धौ, 'सकलजनसिद्धत्वाच्चेति पाठः, चकारशून्यपाठे चकारः
पूरणीयः, 'कथमन्यथेति, वाक्यार्थज्ञानं विना वाक्यप्रयोगासम्भवा-
दिति भावः ।

(१) तेदर्थविषयकप्रमाकरणत्वव्याप्यमित्यर्थः, कश्चित्तथैव पाठः ।

योग्यत्वात् । न च धूमत्वेन सकलधूमव्याप्यतावगमात्
 धूमविशेषे संस्कारात् स्मरणादोपनीतव्याप्याभेदग्रहः
 प्रत्यभिज्ञाने तत्ताविशिष्टस्येवेति वाच्यम् । एवं हि
 धूमवत्त्वेन वह्निसत्त्वज्ञानात् धूमवद्विशेषे पर्वते

नव्यास्तु 'प्रसायासकरणत्वादिति, तथाचोक्तव्याप्तौ तज्जनक-
 व्यापारवत्त्वसुपाधिरिति भावः^(१) । ननु पक्षे साधनस्य विवादग्रस्ततया
 साधनाव्यापकत्वनिश्चयस्थलमेवास्य दुर्लभमित्यत आह, 'वहिरिन्द्रि-
 येति, तथाचात्रैव साधनाव्यापकत्वनिश्चय इति भाव इति व्याचक्रुः ।

प्रात्यक्षिकपरामर्शप्रतिबन्धिमुखेन अनुमितित्वजातिं खण्डयति,
 'स्यादेतदिति, 'पक्षधर्मस्य' पक्षसम्बद्धस्य, 'व्याप्यताज्ञानं' वक्त्रिव्याप्य-
 त्वप्रकारेण पक्षीयधूमे ज्ञानं वक्त्रिव्याप्यो धूमः पर्वते इति ज्ञानमिति
 यावत्, 'नेन्द्रियेण' वक्त्रौ लौकिकसन्निकर्षविरहदशायां कदाचिदपि
 नेन्द्रियेण, 'तन्नियतसामानाधिकरण्यस्येति नियततत्सामानाधिकर-
 ण्यस्येत्यर्थः, 'अयोग्यत्वादिति इन्द्रियेण ग्रहीतुमशक्यत्वादित्यर्थः, याव-
 द्दिषयसन्निकर्षस्य प्रत्यक्षहेतुत्वादिति गूढाभिसन्धिः । 'धूमत्वेनेति
 महानसीयधूमे वक्त्रिव्याप्तिप्रत्यक्षदशायां धूमत्वसामान्यलक्षणप्रत्या-
 सत्त्या धूमत्वरूपेण सर्वस्यैव धूमस्य व्याप्तित्वसामान्यलक्षणाधीन-वक्त्रि-
 व्याप्यत्वप्रकारकानुभवादित्यर्थः, 'धूमविशेष इति, 'संस्कारात् स्मर-

(१) नियतव्यापाराभावेनेत्यादियन्त्र उपाध्यभावेन हेतुना साध्याभाव-
 साधनाभिप्रायक इति तात्पर्यम् ।

संस्कारवशात् प्रत्यक्षेण व्याप्तिज्ञानापेक्षेण वह्निमदभेद-
ग्रहो वह्निमत्त्वग्रहो वास्तु^(१) किमनुमानेन, पृथक्
वह्निमत्त्वस्मरणं तत्र नास्ति किन्तु व्याप्यवच्छेदक-
तयेति चेत् । न । वह्निमान्न वेति संशयानुरोधेन

णाद्वा धूमविशेषे उपनीतव्याप्याभेदग्रहः' इति योजना, 'संस्कारात्'
धूमत्वावच्छिन्नसकलधूमविशेष्यक-निखिलवह्निव्याप्तिप्रकारक-संस्का-
रात्, एतच्च "सविषयकमात्रं प्रत्यासत्तिः विशिष्टाधिकरणकवैशिष्ट्य-
बुद्धावपि^(२) स्वविशेष्यतावच्छेदकधर्मप्रकारकसविषयकमात्रं कारणं"
इति प्राचीनमते, 'स्मरणाद्वा' धूमत्वावच्छिन्नसकलधूमविशेष्यक-
निखिलवह्निव्याप्तिप्रकारकस्मरणाद्वा, एतच्च "ज्ञानमेव प्रत्यासत्तिः
विशिष्टाधिकरणकवैशिष्ट्यबुद्धावपि स्वविशेष्यतावच्छेदकप्रकारक-
विशेष्यविषयकज्ञानमेव हेतुः" इति नयनये, 'धूमविशेषे' पक्षीयधूमे,
'उपनीतव्याप्याभेदग्रहः' स्वविषयीभूतवह्निव्याप्याभेदप्रकारेणालौ-
किकसम्बन्धसाक्षात्कारः, 'स्वं' संस्कारादिः, 'वह्निव्याप्याभेदः' वह्नि-
व्याप्यत्वं, 'प्रत्यभिज्ञाने' प्रत्यभिज्ञाविशेष्यीभूते इदमंशे, प्रत्यभिज्ञाय-
तेऽस्मिन्निति व्युत्पत्तेः, 'तत्ताविशिष्टस्येव', संस्कारात् स्मरणाद्वा
तत्ताविशिष्टस्य सम्बन्धसाक्षात्कार इति भावः । 'धूमवत्त्वेनेति वह्नि-
व्याप्यधूमवत्त्वप्रकारेणेत्यर्थः, 'वह्निमत्त्वज्ञानात्' व्याप्तिघटकतया

(१) वह्निमत्त्वसंसर्गग्रहो वास्त्विति क० ।

(२) वह्निव्याप्यधूमः पर्वते इति ज्ञानेऽपीत्यर्थः ।

स्वतन्त्रवह्निमत्त्वस्मरणात् । न च विशिष्टज्ञाने स्वतन्त्रविशेषणज्ञानत्वेन हेतुत्वं, गौरवात् । अथ यो यच्च विशिष्य पूर्वमवगतः स तच्च संस्कारवशाद्यथार्थप्रत्यक्षे भासते यथा तत्ताप्रत्यभिज्ञाने, न च पर्वते विशिष्य

वह्निमत्त्वत्वरूपेण निखिलवह्निमत्त्वविषयकज्ञानात्^(१) परामर्शरूपात्, संशयोत्तरप्रत्यक्षं प्रति विशेषदर्शनस्य हेतुतया अनुमितिस्यत्वे च संशयस्यावश्यकत्वात् तत्सम्पादनाय प्रकारकान्तं ज्ञानविशेषणं, 'धूमवद्विशेष इति वह्निव्याप्यधूमवत्त्वांगे विशेष्यीभूत इत्यर्थः, समानधर्मिकविशेषदर्शनस्यैव संशयोत्तरप्रत्यक्षं प्रति हेतुत्वमते तत्सम्पत्त्यर्थमिदमभिहितं, 'संस्कारवशात्' लौकिकसन्निकर्षवशात्, वह्निरिन्द्रियजप्रत्यक्षे मुख्यविशेष्येण समं, लौकिकसन्निकर्षस्थापेक्षिततया तत्सम्पत्त्यर्थमिदमभिहितं, 'प्रत्यक्षेण' इन्द्रियेण, 'व्याप्तिज्ञानापेक्षेण' 'व्याप्तिज्ञानजननेत्यर्थः, एतच्च पर्वतेन समं परामर्शजनकेन्द्रियसन्निकर्षविरहस्थलाभिप्रायेण, तेन कचिदिन्द्रियान्तरात् प्रत्यक्षसम्भवेऽपि न क्षतिः, 'वह्निमदभेदग्रह इति अभेदसम्बन्धेन वह्निमत्प्रकारकग्रह इत्यर्थः, संयोगादिसम्बन्धेन वह्निप्रकारकग्रहस्यानुभवसिद्धत्वादाह, 'वह्निमत्त्वग्रहो वेति संयोगादिसम्बन्धेन वह्निप्रकारकग्रहो वेत्यर्थः, 'किमनुमानेनेति किं वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतइति परामर्शानन्तरं प्रत्यक्षत्रिजातीयज्ञानकल्पनेनेत्यर्थः, 'पृथग्वह्निमत्त्वस्मरणमिति स्वत-

(१) निखिलवह्निमत्त्वप्रकारकज्ञानादिति पा० ।

पुरा वह्निरवगतः, यत्र चन्दने सौरभमुपलब्धं तत्र संस्कारवशाच्चक्षुषा सुरभि चन्दनमिति ज्ञानमन्यथानुमितिरिति चेत्, तर्हि पक्षधर्मधूमेऽपि न पुरा विशिष्य व्याप्तिरवगतेति कथं संस्कारवशात्तद्गतव्या-

न्वतया वक्त्रिमत्त्वज्ञानमित्यर्थः, 'तत्र नास्तीति अनुमितिपूर्वसमये सर्वत्र नास्तीत्यर्थः, यत्रोद्बोधकादिवशात् दृष्टान्तरूपसाध्याधिकरणमेव सामानाधिकरण्यघटकतया परामर्शं भातं यत्र वा वज्र-भाववदवृत्तित्वरूपव्याप्त्यवगाहिपरामर्शस्तत्र तदभावादिति भावः । 'व्याप्त्यवच्छेदकतयेति व्याप्तिघटकतयेत्यर्थः, तथाच स्वातन्त्र्येण विशेषणज्ञानस्य विशिष्टप्रत्यक्षहेतुत्वेन तदभावात् कथं पक्षे साध्य-विशिष्टबुद्धिः प्रत्यक्षेणेति भावः । स्वातन्त्र्यञ्च यद्यपि नाविशेषणत्वं धारावाहिकप्रत्यक्षोच्छेदापत्तेः, नापि विशेषणाविशेषणत्वं घटवद्भूतलमिति ज्ञानोत्तरं धारावाहिक-घटवद्भूतलमिति घटत्वविशिष्टवैशिष्ट्यप्रत्यक्षानापत्तेः घटत्वस्य पूर्वं विशेषणविशेषणतयैव ज्ञानान्त-थापि फलीभूतविशिष्टप्रत्यक्षविशेष्येतरमात्राविशेषणत्वं स्वातन्त्र्यप-दार्थः, चैत्र-मैत्रोभयविशेष्यकदण्डादिप्रकारकज्ञानानन्तरं दोषवशा-ज्जायमाने केवलचैत्रविशेष्यकदण्डादिप्रकारकप्रत्यक्षे व्यभिचारवार-णाय मात्रपदं, तथाच फलीभूतप्रत्यक्षविशेष्यत्वानिरूपित-विशेषण-तातिरिक्तविशेषणविषयताशालि ज्ञानं^(१) हेतुरिति फलितं । ननु

(१) फलीभूतप्रत्यक्षविशेष्यनिरूपितविशेष्यत्वानिरूपितेत्यर्थः तेन चैत्रत्वाव-च्छिन्नविशेष्यताया उभयत्वावच्छिन्नविशेष्यतातोभेदेऽपि न क्षतिः ।

सिबोधः प्रत्यक्षेण । न च सहचारदर्शनजन्यसंस्कार-
सहितेनेन्द्रियेण व्यभिचारज्ञानाभावे सति महान-
सीयधूमवत् पर्वतीयधूमे व्याप्त्यवगमो वहेत्सु न प्रत्य-
क्षसामग्री सन्निकर्षाभावादिति वाच्यं । हेतु-साध्य-

तत्स्मरणस्य संशयेन विनाशात् न तावत्कालमवस्थानं । न च
कोटिस्मरणस्य नाशेऽपि संशय एव स्वतन्त्रविशेषणोपस्थितिरूपो
वर्तत इति वाच्यं । यत्रादौ संशयस्ततो व्याप्तिस्मरणं ततः परा-
मर्शस्ततः संशयस्यापि नाशादित्यस्वरसादाह, 'न चेति न वेत्यर्थः,
'विशिष्टज्ञाने' विशिष्टप्रत्यक्षे, अन्यथा स्वतन्त्रविशेषणज्ञानस्य विशिष्ट-
ज्ञानसामान्यहेतुत्वाभ्युपगमेऽनुमितेरप्यसम्भवात् अनुमितेरपि विशि-
ष्टज्ञानत्वादिति ध्येयं । 'यो यत्रेति, परामर्शेऽपि वक्त्रिमत्त्वसामान्य-
सञ्चय्या पर्वते वक्त्रिज्ञानादुक्तं 'विशिष्येति तद्व्यक्तित्वरूपेणेत्यर्थः^(१),
कचिच्च 'विशिष्येति न पाठः तत्रापि 'यो यत्रेत्यनन्तरं तत्पूर-
णीयं, 'संस्कारवशात्' संस्काराद्युपनयवशात्, 'न च पर्वत इति,
सर्वत्रेति शेषः, 'विशिष्य' तद्व्यक्तित्वरूपेण, एवमग्रेऽपि । नन्वेवं
एकस्मिन् चन्दने सौरभज्ञाने चन्दनान्तरे चक्षुषा सौरभज्ञानं न स्यात्

(१) पर्वतीयवक्त्रिप्रकारकप्रत्यक्षे पर्वतीयवक्त्रित्वावच्छिन्नप्रकारकज्ञानत्वे-
नैव हेतुत्वं फलितं तथाच प्रकृते पर्वते वक्त्रिज्ञानसत्त्वेऽपि पर्वतीय-
वक्त्रित्वावच्छिन्नप्रकारकज्ञानविरहात् न पर्वते वक्त्रिप्रकारकालौकि-
कप्रत्यक्षमिति भावः ।

साक्षात्कारं विना प्रत्यक्षेण व्याप्तग्रहात् । न च पर्वते
वह्निःसाक्षात्कारः, न च पक्षधर्मस्य साध्यसामानाधि-

इत्यत्रेष्टापत्तिमाह, 'यत्रेति,^(१) 'पक्षधर्मधूमेऽपीति, तथाच तत्रैवोक्त-
नियमस्य व्यभिचार इति भावः । ननु संस्काराद्युपनयवगात् न
व्याप्तिबोधः किन्तु पर्वतीयधूमे व्याप्तेर्लौकिकसाक्षात्कारएव व्याप्तेः^(२)
सामानाधिकरण्यात्मकत्वेन संयोगादिरूपत्वादित्यभिमानेन^(३) व्यभि-
चारमुद्धरति, 'न चेति, 'महानसीयधूमवदिति, सप्तम्यन्तात् वतिः,
'पर्वतीयधूमे व्याप्त्यवगमः' पर्वतीयधूमे व्याप्तेर्लौकिकसाक्षात्कारएव^(४),
सन्निकर्षाभावादिति लौकिकसन्निकर्षविरहादित्यर्थः । न चोपनय-
एव सन्निकर्षोऽस्तीति वाच्यं । 'यो यत्रेत्यादिनियमात् उपनय-

(१) यत्रेतीत्यनन्तरं "नन्वत्रापि सौरभज्ञानस्यानुभविकत्वं तत् कथमुप-
पद्यतामत आह, 'अन्यत्रेति तच्चन्दनं सुरभिः/चन्दनत्वात् एतच्चन्दन-
वदित्यनुमित्यात्मकमित्यर्थः" इत्यधिकः पाठः गच्छिजितपुस्तके वर्तते,
परन्त्वेतत्पाठं सरसेन मूले 'अन्यथेत्यत्र 'अन्यत्रेति पाठः समीचीन-
त्वेन प्रतिभाति ।

(२) ननु व्याप्तेर्लौकिकसन्निकर्षाभावात् कथं व्याप्तेर्लौकिकसाक्षात्कार-
इत्यत आह, व्याप्तेरिति ।

(३) तथाच चक्षुःसंयुक्तधूमसमवायरूपसन्निकर्षस्य व्याप्तौ सत्त्वादिति
भावः ।

(४) तथाच यथा प्रत्यक्षेण महानसीयधूमे पुरा व्याप्तिरवगता तथा
पर्वतीयधूमेऽपि व्याप्तेर्लौकिकसाक्षात्कार एवेति न तत्र व्यभिचार-
इति भावः ।

कारणविशेषो व्याप्तिः पक्षे साध्यग्रहं विना, इत्युक्तम् ।
 उच्यते । विशेषणज्ञानं तस्य विशेष्ये सम्बन्धस्तयोरसं-
 सर्गाग्रहे विशेषदर्शनं विशेषण-विशेष्येन्द्रियसन्निकर्षो
 गौरयमित्यादियथार्थविशिष्टप्रत्यक्षकारणम्, अस्ति

सन्निकर्षवशेन प्रत्यक्षासम्भवादिति भावः । 'हेतु-साध्येति पक्षीय-
 हेतु-साध्यलौकिकसन्निकर्षजसाक्षात्कारं' विनेत्यर्थः, 'व्याप्त्यग्रहात्'
 पक्षीयहेतौ पक्षीयसाध्यस्य व्याप्तिलौकिकप्रत्यक्षासम्भवात्, सम्बन्धि-
 द्वयनिरूप्यपदार्थलौकिकप्रत्यक्षं प्रति समानेन्द्रियजन्य-सम्बन्धिद्वय-
 लौकिकसाक्षात्कारस्य हेतुत्वादिति भावः^(१) । ननु पर्वतीयधूमस्य
 लौकिकसाक्षात्कारोऽस्येवेत्यत आह, 'न चेति, 'पर्वते वह्नि-सा-
 क्षात्कारः' पर्वतीयवह्नेः लौकिकसाक्षात्कारः, तथाच पक्षीयसाध्यस्य
 लौकिकसाक्षात्कारो नास्तीति भावः । ननु तादृशपदार्थसामान्य-
 प्रत्यक्षं प्रति सम्बन्धिद्वयसाक्षात्कारस्य हेतुत्वे मानाभाव इत्यस्त्व-
 रसादाह, 'न चेति न वेत्यर्थः, 'पक्षे साध्यग्रहं विना' पक्षीयसा-
 ध्यज्ञानलक्षणसन्निकर्षं विना, लौकिकप्रत्यक्षेण ग्रहीतुं शक्यत इति
 शेषः, पक्षीयहेतुर्निष्ठव्याप्तेः पक्षीयसाध्यघटितमूर्त्तिकत्वेन तत्प्रत्यक्षस्य
 पक्षीयसाध्यप्रत्यक्षरूपतानियमात् पक्षीयसाध्यप्रत्यक्षसामग्रीं विना
 असम्भवात् लौकिकसन्निकर्षस्य च पक्षीयसाध्येन सममभावात्,

(१) तथाच तत्र व्याप्तिप्रत्यक्षानुरोधेन पर्वते वह्निप्रत्यक्षमवश्यमपेक्ष-
 णीयं तच्चोपनयजन्यमेवेति 'यो यथेत्यादिनियमे' धर्मिचारस्तत्र पर्वते
 पुरा पर्वतीयवह्नेरनवगमादिति समुदिततात्पर्यम् ।

चात्रापि व्याप्तिस्मरणं स्मृतव्याप्तेः पञ्चवृत्तिधूमे सत्त्वम्
एकैव हि सा व्याप्तिः तथैव संसर्गाग्रहो धूमत्वविशेष-

तथाच तत्रोक्तनियमस्य व्यभिचारो दुर्वार एवेति भावः । 'यो यत्र
विशिष्येत्याद्युक्तनियमस्य व्यभिचारं वारयितुं पक्षीयसाध्यप्रत्यक्ष-
सामग्रीं विनापि व्याप्तेर्लौकिकप्रत्यक्षसुप्रपादयति, 'उच्यत इति,
'तस्येति विशेषणस्य विशिष्ये सम्बन्ध इत्यर्थः, एतच्च विशेषण-विशिष्य-
सम्बन्धांशे लौकिकप्रत्यक्षाभिप्रायेण तत्र विषयविधया तस्य हेतुत्वात्,
'विशेषदर्शनमिति, इदञ्च विपरीतज्ञानोत्तरप्रत्यक्षे उपयुज्यते, 'विशे-
षणेति विशेषण-विशिष्याभ्यां इन्द्रियलौकिकसन्निकर्ष इत्यर्थः, 'विशि-
ष्टप्रत्यक्षकारणं' विशिष्टलौकिकप्रत्यक्षकारणं । ननु पर्वतीयधूमनिष्ठ-
व्याप्तेः पूर्वमननुभूतत्वेन महानसीयधूमव्याप्तेरेव स्मृतत्वान्न तस्याः पर्व-
तीयधूमे सत्त्वं व्याप्तेः सामानाधिकरण्यात्प्रत्यक्षतया प्रतिव्यक्तिभिन्नत्वा-
दित्यत आह, 'एकैव हीति, व्याप्तेर्धूमत्वादिरूपत्वादिति भावः ।
यद्यपि व्याप्तेः प्रतिव्यक्तिभिन्नसाध्यसामानाधिकरण्यरूपत्वेऽपि न
चतिः सामान्यतो वक्लि-धूमसामानाधिकरण्यत्वेन गृहीतानां सक-
लसामानाधिकरण्यानां तथैव स्मरणसम्भवात्, तथापि व्याप्तेर्वक्लि-
सामानाधिकरण्यरूपत्वेन पर्वतीयधूमनिष्ठपर्वतीयवक्लिसामानाधि-
करणस्य पर्वतीयवक्लि-तदधिकरणघटितया पर्वतीयवक्लिप्रत्यक्ष-
सामग्रीं विना न पर्वतीयधूमे वक्लिव्याप्तेर्लौकिकप्रत्यक्षसम्भवः,
वक्लिसामानाधिकरणवृत्तिधूमत्वरूपत्वे तु पर्वतीयवक्लिप्रत्यक्षसामग्रीं
विनापि महानसीयादियत्किञ्चिद्वक्लिप्रत्यक्षसामग्रीत एव पर्वतीय-

दर्शनं व्याप्तिविशिष्टधूमेन्द्रियमन्निकर्षश्च व्याप्तिविशिष्ट-
ज्ञानकारणं । न च वह्निविशिष्टज्ञानसामग्री, वह्ने-
रसन्निकर्षात् ।

धूमे महानसीयादिवह्निसामानाधिकरण्यमात्रविषयक-वह्निव्याप्ति-
लौकिकप्रत्यक्षसम्भवः पर्वतीयधूमे महानसीयादिवह्निसामानाधि-
करण्यस्य बाधितत्वेऽपि तत्समानाधिकरणवृत्तिधूमत्वस्य तत्राबाधि-
तत्वात् इत्यभिप्रायेण 'एकैव हीत्युक्तं, 'व्याप्तिविशिष्टधूमेन्द्रिय-
मन्निकर्षश्चेति व्याप्ति-पर्वतीयधूमयोर्लौकिकमन्निकर्षश्चेत्यर्थः, व्याप्ते-
धूमत्वादिरूपतया संयुक्तसमवायादेरेव लौकिकमन्निकर्षस्य तत्र
सम्भवादिति भावः । 'व्याप्तिविशिष्टज्ञानकारणं' पर्वतीयधूमे वह्नि-
व्याप्तिविशिष्टलौकिकप्रत्यक्षकारणं, अतः पर्वतीयवह्निप्रत्यक्षसामग्रीं
विनापि पर्वतीयधूमे वह्निव्याप्ति-लौकिकप्रत्यक्षसम्भव इति शेषः ।
न च व्याप्तेर्वह्निमत्त्वघटितमूर्त्तिकतया वह्निप्रत्यक्षसामग्रीं विना
कथं तल्लौकिकप्रत्यक्षमिति वाच्यं । 'यो यत्रेत्याद्युक्तनियमात् पर्व-
तीयवह्निमत्त्वविषयकोपनीतप्रत्यक्षसामग्र्यसत्त्वेऽपि महानसीयादि-
वह्निमत्त्वविषयकोपनीतप्रत्यक्षसामग्रीसत्त्वात् महानसादौ विशिष्टापि
पुरा वह्नेरवगमात् हेतुपरामर्शं सामानाधिकरण्यप्रतियोगितया
सकलवह्निभाने मानाभावात् । न चैवमनुमितावपि कथं पर्वतीय-
वह्निभानं विशेषणज्ञानविरहादिति वाच्यं । स्वरूपतोविशेषणविष-
यकविशिष्टप्रत्यक्षं प्रति स्वरूपतो विशेषणज्ञानस्य हेतुत्वेऽपि अन्यत्र

कश्चित्तु धूमत्वे परम्परासम्बन्धेन वह्निव्याप्यत्वं पूर्व-
गृहीतं तथाच संस्कारोपनीतं वह्निव्याप्यत्वं परम्परा-

तद्धेतुत्वे मानाभावात् इति भावः । 'न च वह्निविशिष्टज्ञानसा-
मग्रीति न च सर्वत्र पर्वते वह्निविशिष्टलौकिकप्रत्यक्षसामग्रीत्यर्थः,
'वक्त्रेऽसन्निकर्षादिति सर्वत्र वह्निना समं लौकिकसन्निकर्षविरहा-
दित्यर्थः । अथ लौकिकप्रत्यक्षसामग्रीविरहेऽप्युपनयसन्निकर्षादुपनी-
तज्ञानमेव पर्वते वह्नेर्भविष्यति यत्र च पूर्वं पर्वतीयवह्नेर्न ज्ञानं
तत्रापि वह्नित्वरूपेण परामर्शविषयवह्नेर्भानसम्भवात् तावतापि पर्वतो
वह्निमानिति ज्ञाननिर्वाहात् । न च परामर्शानन्तरं जायमानस्य
तादृशज्ञानस्य सर्वत्र पर्वतीयवह्निव्यक्तिविषयकत्वपर्यन्तमनुभवसिद्धं,
तथाच महानसीयवह्नेरेव पर्वते उपनीतभानमस्तु किमनुमिति-
स्वीकारेण । न चेवं भ्रमत्वापत्तिरिति वाच्यं । तत्तद्व्यक्तित्वावच्छिन्न-
भाववति तत्तद्व्यक्तिप्रकारकत्वरूपस्य तद्व्यक्तिभ्रमत्वस्य दृष्टत्वात् इति
चेत् । न । यो यत्रेत्याद्युक्तनियमादुपनीतभानस्यापि सर्वत्रासम्भवा-
दिति निगर्हः । अधिकञ्चासत्त्वतसिद्धान्तरहस्येऽनुसन्धेयं । धूमव्या-
पकवह्निसमानाधिकरणवृत्तिधूमत्वमेव व्याप्तिः तद्विशिष्टस्य धूमस्य
पर्वते व्याप्यंशे लौकिकप्रत्यक्षात्मक एव परामर्शा वह्नौ लौकिक-
सन्निकर्षविरहदशायामप्यनुमितिहेतुरिति 'यो यत्रेत्याद्युक्तनियमस्य
न भङ्ग इति स्वयमुक्तं ।

केचित्तु धूमव्यापकवह्निसमानाधिकरणमेव व्याप्तिः स्वाश्रयवृ-
त्तित्वरूपपरम्परासम्बन्धेन तद्विशिष्टस्य धूमत्वस्य स्वाश्रयसंयोगित्वरूप-
परम्परासम्बन्धेन पर्वते परामर्शादिव उदयानुमितिरित्यो 'यो यत्रेत्या-

सम्बन्धेन पक्षवृत्तिधूमत्वे प्रत्यभिज्ञायते तद्वृत्तित्वेन
पूर्वमनुभवात्, एवञ्च धूमत्वव्याप्यत्वपरामर्शादेवानु-
मितिरिति ग्राह्यम् ।

द्वितीयसमझं विनैव वक्तुं लौकिकसन्निकर्षविरहदशायामपि व्याप्यंशे
उपवीतमानात्मकप्रत्ययरूप एव परामर्शाऽनुमितिहेतुरित्यपि वदन्ति,
तत्त्वतुल्यस्यति, 'कश्चित्त्विति, 'वक्तव्याप्यत्वं' धूमव्यापकवक्तिसा-
मानाधिकरणरूपं वक्तव्याप्यत्वं, 'पक्षवृत्तिधूमत्व इति स्वाश्रय-
संयोगित्वरूपपरम्परासम्बन्धेन पक्षांशे प्रकारीभूतधूमत्वे इत्यर्थः,
'पूर्वमनुभवदिति विशिष्य पूर्वमनुभवदित्यर्थः, अतो न 'यो यत्रे-
त्यादिनिश्चयसमझ इति भावः । नन्वेवमनुमितिकारणपरामर्शा-
निर्वाह इत्यत आह, 'एवञ्चेति, 'धूमत्वव्याप्यत्वेति वक्तव्याप्यधूमत्व-
वान् पर्वत इति परामर्शादित्यर्थः ।

'लिङ्गं स्यादिति लिङ्गव्यवहारविषयः स्यादित्यर्थः, यादृशं व्या-
प्तिज्ञानं^(१) अनुमितिहेतुः तादृशज्ञानस्यैव^(२) लिङ्गव्यवहारहेतुत्वा-
दिति भावः^(३) । अत्रेष्टापत्तिमाशङ्क्याह, 'तथाचेति, 'सर्वोपसंहारेणेति

(१) यत्सम्बन्धेन व्याप्तिप्रकारकं ज्ञानमित्यर्थः ।

(२) तादृशसम्बन्धेन व्याप्तिप्रकारकज्ञानस्यैवेत्यर्थः ।

(३) तथाच यद्धर्मावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपितयत्सम्बन्धावच्छिन्नव्याप्तिप्रका-
शताशालिज्ञानत्वं तद्धर्मावच्छिन्नहेतुकानुमितिजनकतावच्छेदकं तद्ध-
र्मावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपित-तत्सम्बन्धावच्छिन्नव्याप्तिप्रकारकज्ञानं त-
द्धर्मावच्छिन्ने लिङ्गत्वव्यवहारप्रयोजकमित्यर्थः ।

भवतु तावदेवं तथापि जातिरेव लिङ्गं स्यात्
न तु व्यक्तिः, तथाच सर्वोपसंहारेण व्यक्तौ व्याप्ति-

सर्वां धूमव्यक्तिं विशेष्यीकृत्येत्यर्थः, 'व्यक्तौ' असन्निकृष्टधूमव्यक्तौ,
तादृशव्याप्तिज्ञानस्यानुमितौ लिङ्गादिव्यवहारे च प्रयोजकत्वादिति
भावः । ननु लिङ्गादिव्यवहारं प्रति साक्षात्सम्बन्धेन भवदुक्तव्याप्ति-
ज्ञानमेव हेतुरनुमितौ तु लाघवात् परम्परासम्बन्धेन धूमत्वव्याप्यत्व-
परामर्श एव हेतुरित्यत आह, 'दृश्यते चेति, 'परम्परेति परम्परा-
सम्बन्धेन पक्षधर्मताज्ञानं विनापि, 'जातिव्याप्तिमविदुषोऽपीत्यन्वयः,
अपेक्षभयत्रान्नयः, अन्यथा सम्बन्धज्ञानस्यानुपयोगित्वात्^(१) यथाश्रुता-
सङ्गतेः, 'व्याप्यताग्रहः' परम्परासम्बन्धेन व्याप्यताग्रहः, 'मानाभा-
वादिति, तन्निष्ठावच्छेदकान्तरग्रहमन्तरेणासम्भवाच्चेत्यपि^(२) द्रष्टव्यं ।
स्वमते तृतीयलिङ्गं परामर्शस्वरूपं निर्द्धारयति, 'तस्मादिति, 'पक्षधर्म'
पक्षधर्मस्य पक्षसम्बन्धस्येति यावत्, 'व्याप्तिविशिष्टज्ञानं' व्याप्तिविशिष्टे
ज्ञानं, 'तृतीयलिङ्गपरामर्श इति सम्बध्यते, तथाच वक्ष्यव्याप्यधूमः
पर्वते इत्याकारकं व्याप्तिविशिष्टविशेष्यकं पक्षप्रकारकं ज्ञानं तृतीय-
लिङ्गपरामर्श इति भावः । 'तदनन्तरमिति, 'तदनन्तरं' पक्षे
विशिष्टवैशिष्ट्यज्ञानं तृतीयलिङ्गपरामर्श इति योजना, 'तदनन्तरं'

(१) परामर्शीयसांसर्गिकविषयतायाः प्रकारतानात्मकतया तदाश्रय-
प्रकारकप्रत्यक्षे तादृशसम्बन्धज्ञानस्याहेतुत्वादिति भावः ।

(२) ननु धूमत्वस्य धर्मितानवच्छेदकत्वेन स्वरूपतो धूमत्वधर्मिकस्य पर-
म्परासम्बन्धेन वक्ष्यव्याप्तिप्रकारकज्ञानस्यासम्भवादित्याह तन्निष्ठेति ।

ग्रहार्थं सामान्यलक्षणप्रत्यासत्त्युपादानमफलं स्यात्,
दृश्यते च परम्परासम्बन्धज्ञानं विना जातिव्याप्तिम-

हेतौ व्याप्तिप्रकारकज्ञानानन्तरं, 'विशिष्टवैशिष्ट्यज्ञानं' व्याप्तिविशिष्ट-
निरूपितवैशिष्ट्यज्ञानं, तथाच वक्त्रिव्याप्यो धूम इत्याकारकज्ञानो-
त्तरोत्पन्नं वक्त्रिव्याप्यधूमवान् पर्वतइत्याकारकं पञ्चविशेष्यक-व्याप्ति-
विशिष्टवैशिष्ट्यावगाहिज्ञानं तृतीयलिङ्गपरामर्श इति भावः ।
'वाग्वदस्यार्थे, विनिगमनाविरहेण व्याप्यविशेष्यक-पञ्चविशेष्यकयो-
रेव परामर्शयोरनुमितिहेतुत्वादिति सम्प्रदायविदः, तत्त्वं पुनरस्मात्-
कृतसिद्धान्तरहस्येऽनुसन्धेयं । न चानयोः परामर्शयोस्तृतीयत्वं
कथमिति वाच्यं । आदौ वक्त्रिव्याप्तिरिति विशेषणीभूतव्याप्तिस्मरणं
ततो वक्त्रिव्याप्यो धूम इति धूमे व्याप्तिविशिष्टज्ञानं विशेषणज्ञानस्य
विशिष्टबुद्धौ हेतुत्वात् तत्तत्तृतीयचरणे अनयोरुत्पत्तिः विशिष्टाधि-
करणकवैशिष्ट्यबुद्धौ विशेष्यतावच्छेदकप्रकारकज्ञानस्य विशिष्टनि-
रूपितवैशिष्ट्यबुद्धौ च विशेषणतावच्छेदकप्रकारकज्ञानस्य हेतुत्वा-
दिति रीत्या तृतीयत्वात् । एतस्य न सार्वत्रिकत्वं क्वचित् प्रथम-
द्वितीयचरणयोरपि तादृशपरामर्शयोरुत्पत्तिसम्भवात् ।

प्राञ्चस्तु 'पञ्चधर्मे' पञ्चवृत्तित्वविशिष्टे, 'व्याप्तिविशिष्टज्ञानं'
व्याप्तिप्रकारकज्ञानं, तथाच पर्वतवृत्तिधूमो वक्त्रिव्याप्य इत्याकारकं
पञ्चवृत्तित्वविशिष्टे व्याप्तिप्रकारकं ज्ञानं तृतीयलिङ्गपरामर्श इति
भावः, शेषं पूर्ववत् । न चास्य तृतीयत्वं कुत इति वाच्यं । आदौ पर्वत-
वृत्तित्वप्रकारेण धूमज्ञानं ततो व्याप्तिस्मरणं ततः पर्वतवृत्तित्व-

विदुषोऽपि धूमादज्ञानुमानं, न हि व्याप्यतावच्छेदक-

विशिष्टधूमे वज्जिव्याप्तिविशिष्टज्ञानमिति क्रमेण तृतीयवसम्भवादि-
त्याहुः । तदन्तत् । वज्जिव्याप्यो धूमः पर्वत इत्याकारकस्य व्याप्ति-
विशिष्टविशेष्यक-पक्षप्रकारकज्ञानस्यैव वज्जिव्याप्यधूमवान् पर्वत इत्या-
दिपक्षविशेष्यकपरामर्शेन समं विनिगमनाविरहेणानुमितिहेतुत्वाभ्यु-
पगमात् पर्वतवृत्तिधूमो वज्जिव्याप्य इत्यादिज्ञानस्य च यथोक्तपक्ष-
विशेष्यक-परामर्शापेक्षया गुरुत्वात् पक्षतावच्छेदकावच्छिन्न-पक्षविष-
यतानिरूपित-व्याप्यत्वावच्छिन्नविषयताप्रतियोगिकनिश्चयत्वेन व्याप्य-
विशेष्यक-पक्षविशेष्यकपरामर्शाभयसाधारणधर्मेण हेतुतामते तस्य
कारणतावच्छेदकानाक्रान्तत्वादिति ध्येयं ।

व्यापकतापरामर्शस्य हेतुतावादिनां मतमाह, 'अन्ये त्विति,
'अप्रतियोगित्वं' प्रतियोगितानवच्छेदकसाध्यतावच्छेदकवत्त्वं, 'व्याप-
कताज्ञानमिति साध्यतावच्छेदकविशेष्यक-हेतुसमानाधिकरणाभाद-
प्रतियोगितानवच्छेदकत्वज्ञानमित्यर्थः, 'अनुमितिहेतुः' अनुमिति-
कारणं, 'साध्यस्येति साध्यविशेष्यकं हेतुतावच्छेदकविशिष्टे उपलक्षण-
विधया पक्षवृत्तित्वप्रकारकं उपलक्षणविधया हेतुतावच्छेदकसम्बन्धा-
वच्छिन्नाधेयतासम्बन्धेन पक्षप्रकारकं वा हेतुतावच्छेदकविशिष्टवज्जि-
ष्ठाभावप्रतियोगितानवच्छेदकसाध्यतावच्छेदकवत्त्वज्ञानमित्यर्थः, 'परा-
मर्शः' अनुमितिजनकपरामर्शः, तथाच पर्वतवृत्तिधूमव्यापको वज्जि-
रित्याकारकं पर्वतवद्धूमव्यापको वज्जिरित्याकारकं वा साध्यविशेष्यक-
ज्ञानं अनुमितिजनकपरामर्श इति भावः । अत्र च पर्वतवृत्तित्वा-

तथा भासमानस्यावश्यं व्याप्यताग्रहः, मानाभावात् ।

दिकसुपलक्षणविधया धूमादौ प्रकारः, न तु व्यापकतायां तदन्तर्भावः, तेन विशिष्य पर्वतीयधूमव्यापकत्वस्य प्रागननुभूतत्वेऽप्यनुमितिर्नानुपपन्ना, न वा 'अतएवेत्याद्यग्निसमग्रविरोध इति ध्येयं । 'साध्यव्याप्तस्येति, सप्तम्यर्थे षष्ठी, 'पचधर्मताज्ञानं' पचद्वैशिष्यज्ञानं, तथाच वक्त्रिव्याप्यो धूमः पर्वते इत्याकारक-व्याप्यविशेष्यक-पचप्रकारकज्ञानमित्यर्थः ।

प्राञ्चस्तु 'पचधर्मताज्ञानं' पचवृत्तिताज्ञानं तथाच वक्त्रिव्याप्यो धूमः पर्वतवृत्तिरित्याकारकं ज्ञानमित्यर्थः, यद्वा 'साध्यव्याप्तस्येति' व्याप्तपदं भावसाधनं साध्यव्याप्तेरित्यर्थः, 'पचधर्मताज्ञानं' पचवृत्ति-त्वप्रकारेण ज्ञानं, तथाच पर्वतवृत्तिधूमो वक्त्रिव्याप्य इत्याकारकं ज्ञानमित्यर्थः 'तस्मादित्यादिना तादृशज्ञानस्यैव पूर्वमनुमितिजन-कपरामर्शत्वाभिधानादित्याहुः ।

'साध्यव्याप्यवदिति साध्यव्याप्तिविशिष्टप्रकारकं पचविशेष्यकज्ञानं वेत्यर्थः, 'गौरवादिति सामानाधिकरण्यांगविषयत्वस्याधिकस्य कार-णतावच्छेदककोटौ निवेशनगौरवादित्यर्थः । न चैवं हेतौ साध्य-सामानाधिकरण्यस्य संग्रहे व्यतिरेकनिश्चये वा नुमित्यापत्तिरिति वाच्यं । साध्याभाववद्वृत्तित्वज्ञानस्यैव हेतुतावादिनामिवेष्टत्वात् । न चैवं पचवृत्तिधूमव्यापको वक्त्रिरिति ज्ञानाद्वह्यसामानाधिकरण-धूमवान् पर्वत इति ज्ञानसत्त्वेऽप्यनुमितिः स्यादिति वाच्यं । साध्यासमा-नाधिकरणधर्मान्तरवत्ताग्रहस्यैव तस्याप्यनुमितिं प्रति साक्षाद्विरो-

तस्मात् पक्षधर्मे व्याप्तिविशिष्टज्ञानं तदनन्तरं विशिष्ट-
वैशिष्ट्यज्ञानं पक्षे वा तृतीयलिङ्गपरामर्शः ।

अन्ये तु स्वसमानाधिकरणात्यन्ताभावाप्रतियोगित्वं

धित्वात् । न चैवं वङ्गिव्याप्यधूमवान् पर्वत इति ज्ञानात् कथमनु-
मितिरिति वाच्यं । लाघवात्तादृशपरामर्शस्यैव हेतुत्वे सिद्धे तत्रा-
प्यन्तरा तत्कल्पनात् पर्वतवृत्तिधूमव्यापको वङ्गिरिति शाब्दादि-
परामर्शस्थले त्वयाप्यन्तरा व्याप्यत्वपरामर्शस्य कल्पनीयत्वात् । न
चाप्रसिद्धसाध्यकव्यतिरेकिणि साध्यविशेष्यकानुमितिजनकपरामर्श-
स्यासम्भव इति वाच्यं । साध्याभावस्य भावात्मकस्य व्यापकतया हेत्वभा-
वावगाहिपरामर्शस्यैव तत्र पृथक् हेतुत्वकल्पनात्, तवापि तत्र व्याप्यत्व-
परामर्शासम्भवादिति भावः । ननु व्यापकसामानाधिकरण्यरूपव्याप्ते-
ज्ञानं नानुमितिहेतुः किन्तु साध्यवदन्यावृत्तित्वरूपतज्ज्ञानं कारणं,
तथाच तवैव गौरवं विषयाधिक्याभावेऽपि कारणतावच्छेदकघटक-
विषयताधिक्यात् । न चैवं केवलान्वयिन्यव्याप्तिः, तत्र व्याप्तिधर्मादेवा-
नुमित्युत्पत्तेरित्यत आह, 'अतएवेति यतो व्यापकताज्ञानं कारणं
अतएवेत्यर्थः, 'साध्यायोगव्यवच्छेदेनेति, अभेदे तृतीया, वङ्गयोग-
व्यवच्छेदरूपा वङ्गनिष्ठधूमव्यापकता प्रदर्श्यते इत्यर्थः, वङ्गयोगव्यव-
च्छेदश्च वङ्गनिष्ठधूमसमानाधिकरणाभावप्रतियोगितानवच्छेदक-
वङ्गित्वायोगव्यवच्छेदः वङ्गनिष्ठतादृशवङ्गित्ववत्त्वमिति यावत् ।

केचित्तु सहार्थे तृतीया तथाच वङ्गयोगव्यवच्छेदेन सह वङ्ग-
निष्ठधूमव्यापकता प्रदर्श्यते इत्यर्थः, वङ्गयोगव्यवच्छेदश्च वङ्गिमदभेद-
इति प्राज्ञः ।

व्यापकत्वं, तत्सामानाधिकरण्यञ्च व्याप्यत्वं, तथाच
 लाघवात् व्यापकताज्ञानमनुमितिहेतुः, साध्यस्य पक्ष-
 धर्मेव्यापकताज्ञानञ्च परामर्शः, न तु साध्यव्याप्तस्य
 पक्षधर्मताज्ञानं साध्यव्याप्यवत्पक्षज्ञानं वा गौरवात् ।
 अतएव श्रियोधूमवान् सोऽग्निमानित्युदाहरणवाक्ये

ननुदाहरणवाक्यात् कथं व्यापकत्वलाभः तस्यापदार्थत्वादिति
 चेत्, अत्र केचित्, धूमवति धूमव्यापकविशिष्टाभेदसम्बन्धेन वक्त्रिमतो-
 ऽन्वयात् संसर्गमर्थ्यादयैव वक्त्रौ धूमव्यापकत्वलाभः, वक्त्रिमदभेदस्य
 वक्त्रिरूपत्वात् वीष्मा च तात्पर्यग्राहिकेत्याहुः । तन्न^(१) । संसर्गमर्थ्या-
 दया व्यापकताज्ञानस्य परामर्शानुपयोगितया तद्वददर्शनस्य व्यर्थत्वा-
 पत्तेः । वस्तुतस्तु वक्त्रिवाचकपदस्य धूमव्यापकवक्त्रौ लक्षण्या धूमवत्य-
 भेदसम्बन्धेन धूमव्यापकवक्त्रिमतोऽन्वयात् वक्त्रौ प्रकारतयैव धूम-
 व्यापकत्वलाभात् वीष्मा च तात्पर्यग्राहिकेत्येव तत्त्वं । ‘अन्यथेति यदि
 साध्यवदन्यावृत्तित्वज्ञानं कारणं तदेत्यर्थः, ‘अन्ययोगेति, अन्ययोग-
 व्यवच्छेदश्च साध्यवदन्यस्मिन् योगव्यवच्छेदः साध्यवदन्यवृत्तित्वव्यव-
 च्छेद इति यावत्, बोधकत्वं तृतीयार्थः, तथाच साध्यवदन्यवृत्तित्व-
 व्यवच्छेदबोधकमुदाहरणस्वरूपं स्यादित्यर्थः । ननु यदि हेतुनिष्ठ-
 व्याप्तिज्ञानं न तत्त्वं तदा तद्विघटनाय हेतुनिष्ठतया दोषोद्भावनं
 न स्यात् किन्तु साध्यनिष्ठतयैव तदुद्भावनं स्यादित्यत्र दृष्टापत्ति-
 माह, ‘दोषोऽपीति, ‘आदिना व्याप्यत्वासिद्धिपरिग्रहः, ‘न पक्षधर्म-
 व्यापकमिति न हेतुतावच्छेदकावच्छिन्नव्यापकतावच्छेदकं साध्यता-

साध्यायोगव्यवच्छेदेन धूमव्यापकता वह्नेरुपदर्श्यते,
अन्यथा वह्निमानेव धूमवानित्यन्ययोगव्यवच्छेदेना-
दाहरणशरीरं स्यात्, दोषोऽपि व्यभिचारादिर्न पक्ष-
धर्मव्यापकं साध्यमित्येवोद्भाव्यः ।

वच्छेदकमित्यर्थः, एतच्च समानप्रकारकज्ञानस्यैव प्रतिबन्धकत्ववादिनां
नव्यानां मतमाश्रित्योक्तं, प्राचीननये हेतौ साध्याभाववद्वृत्तित्वबुद्धेरपि
साध्ये हेतुव्यापकत्वधौ विरोधित्वादिति^(१) मन्तव्यं । ‘परामर्शा यदौति,
अनुमितिहेतुरिति शेषः, ‘पर्वतीयधूमं प्रतीति वक्त्रौ पर्वतवृत्तित्व-
रूपेण धूमव्यापकताविषयकत्वस्येत्यर्थः, ‘पर्वतधूमसामानाधिकरण्य-
नैयत्यात्’ वक्त्रौ पर्वतीयधूमसामानाधिकरण्यविषयकत्वव्याप्यत्वात्,
‘पर्वतवक्त्रिरिति, अन्यत्र पर्वतीयधूमसामानाधिकरण्यस्य विरहादिति
भावः । ‘किमनुमेयमिति, सिद्धसाधनादिति भावः । ‘भानं’ विषयित्वं,
‘साध्यसामानाधिकरण्येति पर्वतीयधूमे साध्यसामानाधिकरण्यविष-
यित्वनियतमित्यर्थः, ‘व्याप्यत्वभानेऽपि’ व्याप्यत्वपरामर्शस्यानुमितिहेतु-
त्वेऽपि, ‘तुल्यं’ सिद्धसाधनात् अनुमितेरसम्भवित्वं तुल्यं । ‘अवगम्यत-
इति परामर्शेन विषयीक्रियते, न तु विशेषाकारेण पर्वते वक्त्रिसिद्धि-
रतो न सिद्धसाधनमिति शेषः । ‘व्यापकत्वेऽपि’ व्यापकतापरामर्शस्य
हेतुत्वेऽपि,^(२) किञ्च वक्त्रौ पर्वतवृत्तित्वरूपेण धूमव्यापकताविषयक-

(१) अनुभवसिद्धप्रतिबन्धकत्वस्य प्राचीनसम्प्रदायसिद्धतया भिन्नप्रका-
रकज्ञानस्यापि प्रतिबन्धकत्वादिति भावः ।

(२) ‘व्यापकत्वेऽपि’ व्यापकतापरामर्शस्यानुमितिहेतुत्वेऽपि, ‘समानं’
न सिद्धसाधनमिति ख० ।

अथ पर्वतवृत्तिधूमव्यापकोवह्निरिति परामर्शो यदि तदा पर्वतीयधूमं प्रति व्यापकतायाः पर्वतधूमसामानाधिकरण्यनैयत्यात् पर्वतवह्निः परामर्शविषय एवेति किमनुमेयमिति चेत्, तर्हि पर्वतीयधूमे नियतसाध्य-

त्वस्य वक्तुं पर्वतधूमसामानाधिकरण्यविषयकत्वव्याप्यत्वमेवासिद्धमित्याह, 'वस्तुतस्त्विति, 'तद्वन्निष्ठेति धूमवन्निष्ठेत्यर्थः, 'न तु धूमसामानाधिकरण्यं' न तु वन्निष्ठपर्वतीयधूमसामानाधिकरण्यघटितं, येन यथोक्तव्यापकताविषयकत्वं तद्विषयकत्वव्याप्यं स्यादिति भावः । 'सामानाधिकरण्यविशेषः' नियतसाध्यसामानाधिकरण्यं । 'मानस-एवेति वह्निरिन्द्रियाजन्य इत्यर्थः, 'सर्वत्र' वह्निरिन्द्रियासन्निकृष्टे सर्वत्र, यथाश्रुतन्तु न सङ्गच्छते शाब्दादिनापि क्वचित् परामर्श-सम्भवात् यत्र साध्येन समं चक्षुरादिसन्निकर्षोऽस्ति तत्र चक्षुरादिनापि परामर्शसम्भवाच्च, 'चक्षुरन्वयेति चक्षुरसन्निकृष्टस्थलेऽपि क्वचिच्च चक्षुरन्वय-व्यतिरेकानुविधानञ्चेत्यर्थः, 'उपनयोपचीणं' उपनयेनान्यथासिद्धं । 'अथेति, 'उपसर्जनतया' विशेषणतया, 'प्राधान्येन' विशेष्यत्वेन, 'तथात्वमिति पक्षविशेष्यकत्वमित्यर्थः । 'अन्यथेति यद्युक्तनियमस्तदेत्यर्थः, 'पक्षविशेष्यकत्वनियम इति प्रसिद्धसाध्यकानुमितेः पक्षविशेष्यकत्वनियम इत्यर्थः, व्याप्यविशेष्यकपरामर्शाब्जायमानायास्तादृशानुमितेरेवोक्तनियमबलेन पक्षविशेष्यकत्वानुपपत्तेः जनकीभूतज्ञाने पक्षोपसर्जनतया भावात् । तत्राप्यन्तरा पक्षविशेष्यकपरामर्शादेव तादृशानुमितिरिति चेत्, तर्हि यत्र पक्षविशेष्य-

सामानाधिकरण्यस्य व्याप्यत्वस्य भानं साध्यसामाना-
धिकरण्यभाननियतमिति व्याप्यत्वभानेऽपि तुल्यम् ।
यदि च स्मृता व्याप्तिधूमेऽवगम्यते तदा व्यापकत्वेऽपि
समानं । वस्तुतस्तु व्यापकत्वं तद्वन्निष्ठात्यन्ताभावा-

कपरामर्शस्याभावात् लिङ्गविशेष्यकपरामर्श एव हेतुर्वाच्यः^(१) स च न
सम्भवति तत्र पक्षस्योपसर्जनत्वादिति भावः । ननु कारणीभूतज्ञाने
यद्विशेष्यतया भासते तत् कार्याभूतज्ञाने विशेष्यतातिरिक्तरूपेण
न भासते इत्येव नियमः अतो न पक्षविशेषणकपरामर्शात् पक्षविशे-
यकानुमित्यनुपपत्तिरित्यत आह, 'न हीति, 'तथा' तथैव, 'तत्र
चेति पुरुषस्य दण्ड इतिज्ञानजन्ये दण्डी पुरुष इतिज्ञाने चेत्यर्थः, 'पक्ष-
वृत्तिलिङ्गपरामर्शस्येति पक्ष-साध्यव्याप्योभयवैशिष्ट्यावगाहिपरामर्श-
स्येत्यर्थः, 'अयं स्वभावः' अयं नियमः, 'स्वाश्रयविशेष्यिकां' पक्ष-
विशेष्यिकां, 'नातथाभूतां' न पक्षविशेषणिकां,^(२) यावद्विशेष्यसामग्री-
विरहादिति भावः । अत्रेदमस्वरसवीजं यदि अनुभवमपलप्य लाघ-
वात् व्यापकतापरामर्श एव हेतुरुपेयते तदास्मादप्यतिलघुतया
साध्यवदन्यावृत्तित्वरूपव्याप्यत्वपरामर्श एव हेतुरुचितः केवलान्वयिनि
च तद्ध्रमादेवानुमितिर्नान्यथा । न चैवं यो यो धूमवान् इत्युदा-
हरणानुपपत्तिरिति^(३) वाच्यं । वक्त्रिमानेव धूमवानित्यस्यैवोदा-

(१) लिङ्गविशेष्यकपरामर्श एव जातः तत्र स एव हेतुर्वाच्यः इति ख० ।

(२) न पक्षाविशेष्यिकामिति ख० ।

(३) साध्यवदन्यावृत्तित्वरूपव्याप्तिज्ञानस्यानुमितिहेतुत्वे वीप्सार्थक-योय-
इतिपदघटितस्य यो यो धूमवान् स वक्त्रिमान् इत्युदाहरणवाक्यस्य
व्यापकताबोधकत्वेनानुमितावनुपयोगित्वमिति भावः ।

प्रतियोगित्वं, न तु धूमसामानाधिकरण्यं, व्याप्यत्वन्तु सामानाधिकरण्यविशेष इति तवैवानुमितिरफला स्यात् । न चैवं परामर्शस्य चाक्षुषत्वं न स्याद्वापकस्य विशेष्यस्येन्द्रियासन्निकर्षादिति वाच्यम् । इष्टत्वात्,

हरणत्वात् । न चैवं कथकसम्प्रदायविरोध इति वाच्यं । युक्तेर्दीर्घा सति तस्याकिञ्चित्करत्वात्^(१), प्राचीनैरेतत्सूक्ष्मानालोकेनैव तदभ्युपगमात्^(२) अन्यथा तवापि वक्त्रिव्याप्यधूमवानयमित्युपनयविरोधात् पर्वतवृत्तिधूमव्यापको वक्त्रिरित्येतस्यैवोचितत्वादिति^(३)दिक् ।

पूर्वं 'न तु परामृश्यमाणं लिङ्गं कारणमिति वक्ष्यते' इति यदुक्तं तदेव प्रसङ्गादाह, 'एवमिति यथानुमितिकारणतावच्छेदकतया मीमांसकाभिमतं व्याप्यतावच्छेदकप्रकारकव्याप्तिनिश्चयत्वादिकं नानुमितिकारणतावच्छेदकं अपि तु पक्षतावच्छेदकावच्छिन्नविषयतानिरूपित-व्याप्यतावच्छिन्नविषयताप्रतियोगिकज्ञानत्वरूपं लिङ्गपरामर्शत्वं तथेत्यर्थः । 'लिङ्गपरामर्श एव' यथोक्तलिङ्गपरामर्श एव यथोक्तलिङ्गपरामर्शत्वमेवेति यावत्, 'कारणं' कारणतावच्छेदकं, एवकारव्यावृत्तमेव^(४) विवृणोति, 'न त्विति, 'परामृश्यमाणं लिङ्गं' आचार्याभिमतं परामृश्यमाणत्वरूपं लिङ्गत्वमपि, परामृश्यमाणत्वञ्च साध्यव्याप्यतावच्छिन्नविषयतावत्त्वं, साध्यव्याप्यत्वञ्च साध्याभाववदवृत्तित्वं । वस्तुतस्तु

(१) तद्विरोधस्याकिञ्चित्करत्वादिति ड० ।

(२) 'तथोदाहरणाभ्युपगमादिति ड० ।

(३) इत्युपनयस्यैवोचितत्वादित्येति ड० ।

(४) एवकारव्यवच्छेद्यमेवेति ख० ड० ।

असन्निकृष्टधूमादाविव मानस एव हि सर्व्वञ्च परामर्शः,
चक्षुरन्वय-व्यतिरेकानुविधानञ्च पक्षवृत्तिधूमापनयो-
पक्षीणम् ।

अथ जनकज्ञाने उपसर्जनतया भातस्य पक्षस्य

साध्यव्याप्यत्वं, साध्यसम्बन्धितावच्छेदकरूपवत्त्वं, आचार्य्यमते स्वरूप-
सम्बन्धात्मकावच्छेदकताघटिततया लाघवेन तज्ज्ञानस्यैवानुमिति-
हेतुत्वादिति भावः । मानाभावादिति हेतुरुक्तः । आचार्य्योक्तं प्रमा-
णमाशङ्कते, 'अथेति, 'परामर्शमात्रं' ज्ञानमात्रं, 'लिङ्गपरामर्शः' यथो-
क्तलिङ्गपरामर्शत्वाश्रयः, 'तथाचेति, यथोक्तलिङ्गपरामर्शत्वस्य जनक-
तावच्छेदकतयेति शेषः, 'लिङ्गमपि हेतुः' साध्यव्याप्यत्वावच्छिन्न-
विषयतावत्त्वरूपं लिङ्गत्वमपि हेतुतावच्छेदकं, 'विशिष्टेति यथोक्त-
लिङ्गपरामर्शत्वरूपविशिष्टधर्मस्य कारणतावच्छेदकताग्राहकं यन्म्यानं
तादृशधर्मावच्छिन्नान्वय-व्यतिरेकसहकृतं प्रत्यक्षं तेनेत्यर्थः, 'बाधकं
विनेति अन्यथासिद्धि-व्यभिचारादिकं विनेत्यर्थः, 'विशेषणस्यापि
हेतुत्वग्रहात्' विशेषणवच्छेदेनापि हेतुत्वग्रहात् विशेषणीभूतस्यापि
यथोक्तविषयतारूपस्य लिङ्गत्वस्य स्वरूपसम्बन्धेन परामर्शकार्य्यता-
वच्छेदकावच्छिन्नं प्रति कारणतावच्छेदकत्वग्रहादिति यावत् । न
चैवं यथोक्तविषयताप्रतियोगिकज्ञानत्ववत् व्याप्यत्वावच्छिन्नविषय-
तानिरूपित-पक्षतावच्छेदकावच्छिन्नविषयताप्रतियोगिकज्ञानत्वस्यापि
विनिगमनाविरहेण लिङ्गपरामर्शत्वरूपतयानुमितिकारणतावच्छे-
दकत्वेन तद्विशेषणीभूतस्यापि पक्षतावच्छेदकावच्छिन्नविषयताव-
त्त्वरूपपक्षत्वस्यानुमितिकारणतावच्छेदकत्वापत्तिरिति वाच्यं । इह-

पर्वतादेरनुमितौ प्राधान्येन भानं न स्यात् । न हि
जनकज्ञाने उपसर्जनतयावगतं जन्यज्ञाने प्राधान्येन
भासते, तथादर्शनात् । न चानुमितेस्तथात्वमसिद्धं,
पर्वतोऽयं वह्निमानित्यनुमितेर्लोकसिद्धत्वादिति चेत् ।
न । पुरुषस्य दण्ड इति ज्ञानानन्तरं दण्डी पुरुष इति-

त्वात्, लिङ्गसामान्यस्येव पक्षसामान्यस्यापि अव्यभिचारादिति भावः ।
अन्यथासिद्धत्वरूपबाधकमाशङ्क्य निराकरोति, 'न चेति, 'लिङ्गं'
यथोक्तविषयताश्रयो धूमादिः, 'परामर्शपरिचायकत्वेनेति जनकीभू-
तपक्षनिश्चयस्य स्वाविषयकनिश्चयादिषयितया व्यावर्त्तकत्वेनेत्यर्थः,
व्यावर्त्तकत्वं भेदसाधकत्वं, व्यावर्त्तकत्वं हि द्विविधं व्यावर्त्तकधर्मान्त-
रोपस्थितिद्वारा परस्परया व्यावर्त्तकत्वं, साक्षाद्वावर्त्तकत्वञ्च, तत्राद्यं
लिङ्गे न सम्भवति, किन्तु साक्षाद्वावर्त्तकत्वमेव तस्य इत्याह, 'परिचेय-
इति व्यावर्त्तनीये पक्षनिश्चये इत्यर्थः, 'विशेषान्तराभावेनेति लिङ्गो-
पस्थापनीयसाक्षाद्वावर्त्तकधर्मान्तराभावेनेत्यर्थः, 'लिङ्गमेव विशेषकं'
लिङ्गं विशेषकमेव, लिङ्गं विषयितासम्बन्धेन साक्षाद्वावर्त्तकमिति
यावत्, 'तथाचेति स्वयमेव साक्षाद्वावर्त्तकत्वे चेत्यर्थः, (१) व्यावर्त्तक-
धर्मान्तरोपस्थितिद्वारा व्यावर्त्तकस्यैवान्यथासिद्धत्वादिति भावः ।
'अन्यथेति व्यावर्त्तकतामात्रेणान्यथासिद्धत्वं इत्यर्थः, 'परिचायकतया'
जनकीभूतचक्षुरादिसंयोगस्याजनकसंयोगेभ्यः प्रतियोगितासम्बन्धेन
व्यावर्त्तकतया, 'संयोगेनेति, अन्यथासिद्धमिन्द्रियमपि संयोगसम्बन्धेन

(१) स्वस्यैव साक्षाद्वावर्त्तकत्वे चेत्यर्थः इति का० घ० ।

ज्ञानजन्यज्ञानदर्शनात्, अन्यथा तवापि कथं पक्षविशेष्यकत्वनियमः, न हि कारणीभूतज्ञाने यद्विशेष्यतया भासते तत्कार्यीभूतेऽपि तथा, इह भूतले घटोनास्तीतिज्ञानजन्ये घटाभाववद्भूतलमितिज्ञाने तत्र च व्यभि-

न हेतुः स्यादिति योजना, विशिष्टाधिकरणकवैशिष्ट्यानुभवे विशेष्यतावच्छेदक-विधेययोः समानकालीनत्वमसति बाधादिप्रतिबन्धके^(१) अवश्यं भासते, तद्ज्ञानञ्च न प्रकारतया, दण्डी पुरुषः कुण्डलीत्यादौ दण्डादिसमानकालीनत्वस्य प्रकारत्वानुभवात् समानकालीनत्वस्याज्ञानदशायां तस्य प्रकारत्वासम्भवाच्च, किन्तु संसर्गतयेति सर्वजनसिद्धसिद्धान्तः, तस्य संसर्गता च विधेये विशेष्यतावच्छेदकस्य, समानकालीनतासम्बन्धेन विशेष्यतावच्छेदकस्य विधेयेऽपि प्रकारत्वात्। अतएव दण्डी पुरुषः कुण्डलीत्यादौ दण्डादिकं संयोगसम्बन्धेन पुरुष इव समानकालीनत्वसम्बन्धेन विधेये कुण्डलेऽपि प्रकार इति प्राञ्चः। तदसत्। दण्डी पुरुषः कुण्डलीत्यादौ दण्डादिसमानकालीनत्ववत् समानकालीनत्वसम्बन्धेन दण्डादेरपि कुण्डलादौ प्रकारत्वस्यानुभवबाधितत्वात् तथा सति दण्डी पुरुषो-दण्डवत्कुण्डलीति तदाकारापत्तेः।

केचित्तु उद्देश्ये विधेयस्य संसर्गस्तत्, विशेष्यतावच्छेदकसमानकालीनत्वविशिष्टविधेयतानियामकसम्बन्धेन विधेयस्य उद्देश्ये प्रकारत्वात्। अत एव दण्डी पुरुषः कुण्डलीत्यादौ दण्डादिसमानकालीनत्वविशिष्टसंयोगसम्बन्धेन पुरुषे कुण्डलादिकं प्रकार इत्याहुः।

चारात्, तस्मात् पक्षवृत्तिलिङ्गपरामर्शस्यायं स्वभावे
यत्स्वाश्रयविशेषिकामनुमितिं जनयति नातथाभूता-
मेवं ममापि तुल्यमिति ।

एवं लिङ्गपरामर्श एव कारणं न तु परामृष्यमाणं

अन्येतु विशेष्यतावच्छेदक-विशेष्ययोः संसर्गस्तत्, विधेयसमानकाली-
नत्वविशिष्टविशेष्यतावच्छेदकतानियामकसम्बन्धेन विशेष्यतावच्छेदकस्य
विशेष्ये प्रकारत्वात्, अतएव दण्डी पुरुषः कुण्डलीत्यादौ कुण्डलादिस-
मानकालीनत्वविशिष्टसंयोगसम्बन्धेन दण्डादिकं पुरुषे प्रकारइत्याहुः ।

तत्र मध्यमतानुसारेणानुमानात् लिङ्गस्य कारणत्वं साधयति,
'अपि चेति, 'धूमवानित्यादि अनुमित्यन्तं पक्षनिर्देशः, धूमवानयं
वह्निमानिति या वह्नि-धूमयोः समानकालीनत्वविषयता तच्छालि-
नीति विषयान्तार्थः, धूमसमानकालीनत्वविषयतायाः पर्वतनिष्ठ-
विशेष्यतानिरूपितत्वलाभाय इत्यन्तं विषयताविशेषणं, वह्निपदञ्च
स्वरूपकथनं, तथाच पर्वतनिष्ठविशेष्यतानिरूपिता या धूमसमान-
कालीनत्वविषयता तच्छालिनीति पर्यवसितार्थः, 'अधूमविशेषणिके-
त्यकारप्रक्षेपः, तथाच धूमः समानकालीनत्वांशे विशेषणं यत्रेति
व्युत्पत्त्या धूमविशेषणकं धूमसमानकालीनत्वज्ञानं तत् जन्यतासम्बन्धेन
न विद्यते यत्रेति व्युत्पत्त्या धूमसमानकालीनत्वज्ञानाजन्येत्यर्थः,
एवञ्च पर्वतनिष्ठविशेष्यतानिरूपितधूमसमानकालीनत्वविषयताशा-
लिनी धूमसमानकालीनत्वज्ञानाजन्यानुमितिः पक्ष इति भावः ।
प्रत्येकदलव्यावृत्तिस्तु हेतुव्याख्यानावसरे स्फुटीभविव्यति । 'ज्ञायमा-
नविशेषणेति पर्वतविशेष्यक-धूमप्रकारकज्ञानविशिष्टधूमजन्येत्यर्थः.

लिङ्गम् । अथ परामर्शमात्रं न हेतुरपि तु लिङ्गपरा-
मर्शः, तथाच लिङ्गमपि हेतुः विशिष्टकारणताग्राहक-
मानेन बाधकं विना विशेषणस्यापि हेतुत्वग्रहात् । न
च लिङ्गं परामर्शपरिचायकत्वेनान्यथासिद्धं, परिचेये
अन्यथा पर्वतत्व-वज्रादिरूपविशेषणजन्यतयार्थान्तरापत्तेः । लिङ्गस्य
कारणत्वे किं पक्षविशेष्यक-तज्ज्ञानस्य कारणत्वमेव नेत्याशङ्कामपनेतुं
पर्वतविशेष्यक-धूमप्रकारकज्ञानस्यापि कारणतासिद्धये विशिष्टान्तं
धूमविशेषणं, वैशिष्ट्यञ्च प्रकारतासम्बन्धेन । न च विशिष्टान्तोपादान-
एव कथं तादृशज्ञानस्य जनकत्वसिद्धिरिति वाच्यं । आचार्य्यमते
विशिष्टकारणताग्राहकप्रमाणेनासति बाधके विशेषणस्यापि कारण-
त्वग्रहनियमेन तत्सिद्धेः । पर्वतविशेष्यक-स्वजनकज्ञानप्रकारीभूतधूम-
जन्येत्येव वा साध्यं, तथाच स्फुटैव तत्सिद्धिः । न च एतावता
धूमस्य जनकत्वसिद्धावपि लिङ्गत्वस्य तदवच्छेदकत्वासिद्ध्या नोद्देश्य-
सिद्धिरिति वाच्यं । धूमस्य जनकत्वसिद्धौ सामान्यतोलिङ्गत्वस्यैव लाघ-
वात्तदवच्छेदकत्वकल्पनादिति हृदयं । 'विशेषणसमानकालतयेति
विशेषणपदं धूमपरं, विशेष्यपदं पर्वतपरं, विशिष्टपदञ्च विलक्षणपरं,
तथाच धूमसमानकालीनतया पर्वते शाब्दान्यविलक्षणज्ञानत्वाद्वि-
त्यर्थः, विलक्षणञ्च धूमसमानकालीनत्वज्ञानाजन्यत्वं, इत्यञ्च पर्वतनिष्ठ-
विशेष्यतानिरूपितधूमसमानकालीनत्वविषयताशालिशब्दान्यधूमस-
मानकालीनत्वज्ञानाजन्यज्ञानत्वादिति हेतुः फलितः, धूमान्यलिङ्ग-
कानुमितिषु व्यभिचारवारणाय शाल्यन्तं चरमज्ञानविशेषणं, पर्वता-
न्यपक्षकधूमलिङ्गकानुमितिषु पर्वतविशेष्यकज्ञानविशिष्टधूमाजन्यतया

विशेषणान्तराभावेन लिङ्गमेव विशेषकं तथाचा-
नन्यथासिद्धत्वात् तदपि हेतुः अन्यथा परिचायकतया
संयोगेनान्यथासिद्धमिन्द्रियमपि कारणं न स्यात् ।
अपि च धूमवान् वह्निमानिति धूमसमानकालवह्नि-

व्यभिचारवारणाय निरूपितान्तं विषयताविशेषणं, अतएव तादृ-
शानुमितिषु बाध-भागासिद्धिवारणाय पक्षेऽपि शाख्यन्तमनुमिति-
विशेषणं । न चैवं तादृशविषयताशाख्यनुमितौ लिङ्गस्य हेतुत्वसिद्धा-
वपि अनुमितिमात्रं प्रति लिङ्गस्य न हेतुत्वसिद्धिरिति वाच्यं । आचा-
र्य्यमते लिङ्गोपहितलैङ्गिकभाननियमेनानुमितिमात्रस्यैव लिङ्गविशि-
ष्टपक्षे साध्यवैशिष्ट्यविषयकतया लिङ्गसमानकालीनत्वस्य संसर्ग-
घटकतया पक्षेऽवश्यं भानात् । न च धूमविशिष्टपर्वतविशेष्यताशालि-
नीत्येवोच्यतां किं समानकालीनत्वप्रवेशेनेति वाच्यं । धूमवान् पर्वतो
वह्निमान् धूमध्वंसादित्यनुमितेर्धूमाजन्यत्वात् व्यभिचारापत्तेः ।
न च समानकालीनलोपादानेऽपि तद्दोषतादवस्थं तत्रापि धूमस्य
विशेष्यतावच्छेदकतया तत्समानकालीनत्वस्य संसर्गघटकतया भाना-
दिति वाच्यं । आचार्य्यनये शाब्दाद्यतिरिक्तज्ञाने तत्समानकालीन-
त्वस्य ज्ञानं विना तत्समानकालीनत्वभानं प्रति तज्जन्यत्वस्य नियाम-
कतया लिङ्गातिरिक्तविशेष्यतावच्छेदकसमानकालीनत्वस्याज्ञातस्य
संसर्गतयानुमितावभानात् लिङ्गातिरिक्तविशेष्यतावच्छेदकस्यानुमि-
तावहेतुत्वात् अतएव तदानीं धूमवान् पर्वतो वह्निमान्तद्धूमादित्य-
तीतादिलिङ्गकानुमितावपि न व्यभिचारः अतीतादिलिङ्गस्याजन-
कतया तत्समानकालीनत्वस्याभानात्, शाब्दबोधे विषयस्याहेतुतया

विषयाधूमविशेषणिकानुमितिः ज्ञायमानविशेषण-
जन्या विशेषणसमानकालतया विशेष्यविषयेऽशाब्द-
विशिष्टज्ञानत्वात् दण्डी पुरुष इति प्रत्ययवत् । अत-

धूमवान् पर्वतो वज्जिमान् इत्यादिधूमसमानकालीनत्वविषयकशाब्द-
बुद्धौ व्यभिचारवारणाय शाब्दान्येति, एवमुपमित्यन्यत्वं धूमाजन्य-
प्रत्यक्षान्यत्वञ्च वाच्यं तेन धूमवत्पर्वतविशेष्यकोपमितौ तादृशोप-
नीतमाने च न व्यभिचारः । यत्र धूमसमानकालीनत्वविशिष्टसंयो-
गादिसम्बन्धेन पर्वते वह्न्यादिकं साध्यं धूमध्वंसादिष्व हेतुर्यत्र वा धूम-
समानकालीनत्वविशिष्टसंयोगादिसम्बन्धेन वह्न्यादिविशिष्टः पर्वतः
पक्षः धूमध्वंसादिर्हेतुः तत्र व्यभिचारवारणायानुमित्यन्तं ज्ञानविशेषणं,
धूमसमानकालीनत्वस्य पक्षतावच्छेदकघटकत्वे साध्यतावच्छेदकसम्ब-
न्धघटकत्वे वा तज्ज्ञानस्यावश्यं जनकत्वात् । एवं यत्रेतरसम्बन्धेन बाधात्
धूमकालीनत्वविशिष्टसंयोगादिसम्बन्धेनानुमितिस्तत्रापीतरत्वप्रतियो-
गितया बाधज्ञानस्यैव धूमकालीनत्वविषयकत्वेन तज्ज्ञानजन्यत्वात्
न व्यभिचार इति भावः । अतएव तादृशानुमितिषु बाध-भागासिद्धि-
वारणाय पक्षेऽप्यजन्यान्तं अनुमितिविशेषणं । न चैवं यत्र धूमका-
लीनत्वं प्रकारतया संसर्गतया वा साध्यतावच्छेदक-पक्षतावच्छेदक-
घटकं साध्यतावच्छेदकसम्बन्धघटकं वा तादृशधूमलिङ्गकानुमितीनां
पक्षवद्भिर्भूततया न तासां धूमजन्यत्वसिद्धिरिति वाच्यं । हेत्वन्तरेण
तत्रापि तत्सिद्धिसम्भवादिति भावः । या यन्निष्ठविशेष्यतानिरूपित-
यद्भूमसमानकालीनत्वविषयताशालितद्भूमसमानकालीनत्वग्रहाजन्य-
शाब्दाद्यतिरिक्तधीर्भवति सा तद्विशेष्यक-तत्प्रकारकज्ञानविशिष्ट-

एव ज्ञायमानविशेषणजन्यत्वेन विशेषणकालवृत्तितया विशेष्यभाननैयत्यं यथा दण्डी पुरुष इतिप्रत्यक्षे, तेन धूमसमानकालीनवह्निसिद्धिः, अन्यथा तत्तद्धूमकाल-

तद्धर्मजन्या भवतीति सामान्यतो व्याप्यभिप्रायेण दृष्टान्तमाह, 'दण्डी पुरुषइतीति, तदपि पुरुषनिष्ठविशेष्यतानिरूपित-पुरुषत्वकालीनत्वविषयताशालिपुरुषत्वसमानकालीनत्वग्रहाजन्यवुद्धिर्भवति अथच पुरुषविशेष्यकज्ञानविशिष्टपुरुषत्वजन्यापि भवति, लौकिकप्रत्यक्षं प्रति विषयस्य हेतुताया विशिष्टाधिकरणकवैशिष्ट्यवुद्धिं प्रति विशेष्यतावच्छेदकप्रकारकविशेष्यज्ञानस्य हेतुतायाश्च सर्वसिद्धत्वादिति भावः । न चात्र पुरुषत्वकालीनविषयतैव नास्ति कुतोऽस्य दृष्टान्तत्वं किञ्चिद्धर्मविशिष्टे विशेषणं सत् यद्विशेष्यतावच्छेदकं तत्समानकालीनत्वस्यैव विशिष्टाधिकरणकवैशिष्ट्यानुभवे संसर्गतया भाननियमात् इति वाच्यं । तादृशनियमे मानाभावात्^(१), विशेष्यतावच्छेदकमात्रस्यैवासति बाधके समानकालीनत्वस्य भानात् ।

केचित्तु 'दण्डी पुरुष इति प्रत्यक्षवदित्यस्य^(२) दण्डी पुरुषो गच्छतीति प्रत्यक्षवदित्यर्थः, तथाच दण्डसमानकालीनत्वभानमादायैव दृष्टान्ततेत्याहुः ।

न च तथापि नीलपर्वतो वज्रिमान् धूमात् पर्वतो वज्रिमान्धूमादित्यादावनुमितेर्नीलपर्वतत्वादिरूपपक्षतावच्छेदकाजन्यतया तादृश-

(१) तादृशविषयविशेषे मानाभावादिति ग०, तादृशविषयस्वीकारे मानाभावादिति ख० ।

(२) अनेन 'प्रत्यक्षवत्' इत्यत्र 'प्रत्यक्षवत्' इति कस्यचिन्मूलपुस्तकस्य पाठोऽनुमीयत इति ।

वृत्तिवद्भ्यनुमानं न स्यात् समयविशेषमन्तर्भाव्य व्याख्य-
ग्रहात् । किञ्च लिङ्गकरणत्वपक्षे परामर्श एव तद्यापारः
परामर्शस्य तु न व्यापारान्तरमस्ति चरमकारणत्वा-
दिति न तत् करणम् ।

सामान्यव्याप्तेर्व्यभिचारः पक्षतावच्छेदकस्यापि विशेष्यतावच्छेदकत्वेन
तत्समानकालीनत्वस्यापि भानादिति वाच्यं । आचार्यनये शाब्दाद्य-
तिरिक्तज्ञाने उद्देश्य-विधेयभावमहिम्ना तत्समानकालीनत्वभानं प्रति
तज्जन्यत्वस्यापि नियामकतया लिङ्गातिरिक्तविशेष्यतावच्छेदककाली-
नत्वस्याज्ञातस्य संसर्गतया अनुमितावभानात् लिङ्गातिरिक्तविशेष्यता-
वच्छेदकस्यानुमितावहेतुत्वादिति दिक् । नन्विदमप्रयोजकं इत्यत-
आह, 'अतएवेति पर्वतो वक्त्रिमान् धूमादित्यादावनुमितेर्धूमजन्य-
त्वादेवेत्यर्थः, अनुमितावपीति शेषः, 'ज्ञायमानविशेषणजन्यत्वेन'
विशेष्ये ज्ञायमानं सदेव यद्विशेषणं तज्जन्यत्वनियमेन, विशेष्यतावच्छे-
दकजन्यत्वनियमेनेति यावत्, 'विशेषणकालवृत्तितया' विशेषणसमान-
कालीनतासम्बन्धेन, 'विशेष्यभाननैयत्यं' विशेष्ये विधेयस्य भाननियम-
इत्यर्थः, 'यथेति, यथा दण्डी पुरुष इति प्रत्यक्षे तथा नियम इत्यर्थः,
अन्यथा शाब्दाद्यतिरिक्तज्ञाने उद्देश्य-विधेयभावमहिम्ना तत्समानका-
लीनत्वभानं प्रति तज्जन्यत्वस्य नियामकतया यत्रानुमितिप्रागभावः
सिद्धभाजो वानुमितिजनकः पक्षतावच्छेदकस्तत्रानुमितिप्रागभावादि-
रूपविशेष्यतावच्छेदकसमानकालीनत्वभानसम्भवेऽपि सर्वत्र विशेष्य-
तावच्छेदकसमानकालीनत्वभानासम्भवेनानुमितौ तथा भाननियमो
न स्यादिति भावः । ननु मास्तु अनुमितौ तथा भाननियमः किञ्च-

आत्रोच्यते ।

अतीतानागतधूमादिज्ञानेऽप्यनुमितिदर्शनान्न लिङ्गं
तद्धेतुः व्यापार-पूर्ववर्तितयोरभावात् । न च विद्यमानं

श्चिन्नमित्यत आह, 'तेनेति अनुमितावपि तथा भानस्यावश्यक-
त्वेनेत्यर्थः, 'धूमसमानकालीनेति पर्वतो वक्लिमान् धूमादित्यादौ धूम-
कालीनतासम्बन्धेन वङ्गानुमतिरित्यर्थः, 'तेनेत्यादिकमेव विवृणोति,
'अन्यथेति अनुमितौ तथा भाननियमाभाव इत्यर्थः, 'तत्तदिति वक्लि-
मान् धूमादित्यत्र तत्तत्त्वचणात्मकधूमकालवृत्तितासम्बन्धेन वङ्गानु-
मितिर्न स्यादित्यर्थः, 'समयविशेषेति तत्तत्त्वचणात्मकधूमकालघटित-
सम्बन्धेन व्याप्यग्रहादित्यर्थः । न चेष्टापत्तिः, अनुभवविरोधादिति
भावः । यद्वा ननु मास्तु वक्लिमान् धूमादित्यत्र धूमकालीनता-
सम्बन्धेनापि वह्न्यनुमितिः किञ्चश्चिन्नमित्यत आह, 'अन्यथेति
वक्लिमान् धूमादित्यत्रानुमितेर्धूमकालीनतासम्बन्धेन वह्न्यविषयकत्वे
इत्यर्थः, तत्रेति शेषः, 'तत्तदिति वङ्गौ तत्तत्त्वचणात्मकधूमकाल-
वृत्तित्वविषयिन्यनुमितिर्न स्यादित्यर्थः, 'समयविशेषेति तत्तत्त्वचणा-
त्मकधूमकालवृत्तिवक्लित्वप्रकारेण व्याप्यग्रहादित्यर्थः । परामर्शस्य
करणत्वं नैयायिकाभिमतमितिभ्रमेण दूषयति, 'किञ्चेति, 'परामर्श-
एवेति, विषयविधया तस्य लिङ्गजन्यत्वादिति भावः । 'चरमेति
स्वाव्यवहितोत्तरमेवानुमितिजनकत्वादित्यर्थः, 'न तत्करणमिति,
'तत्' परामर्शः, तच्छब्दस्य सर्वनामप्रतिरूपकाव्ययतया परामर्श-
शब्दस्य पुंलिङ्गत्वेऽपि नपुंसकलिङ्गता, 'तत्' परामर्शात्मकं ज्ञानं,
इत्यपि कश्चित् ।

लिङ्गान्तरमेव तद्धेतुः, तदा तस्यापरामर्शात् परामर्श-
विषयस्य कारणताग्राहकाभावात्, भाविनि पक्षे व्यक्त्यै-
क्यमेव वा यत्र लिङ्गं तत्र लिङ्गान्तराभावाच्च । यदि च

साध्यव्याप्यत्वावच्छिन्नानुमादनिष्ठनिश्चयविषयतावत्त्वं लिङ्गत्व-
मिति भ्रमेण दूषयति, 'अतीतानागतेति अतीतानागतधूमादीनां
साध्यव्याप्यतया पक्षे ज्ञानादपीत्यर्थः, 'अनुमितिसत्त्वात्' अनुमित्यु-
त्पादात्, 'लिङ्गं नानुमितिहेतुः' लिङ्गत्वं नानुमितिकारणतावच्छे-
दकं, 'व्यापारेति लिङ्गत्वावच्छिन्नस्य तदनुमितिव्यक्त्यव्यवहितपूर्व-
वर्त्तिव्यापकत्व-तत्तद्व्यक्त्यव्यवहितपूर्ववर्त्तित्वयोरुभयोरेवाभावादित्यर्थः,
अतीतादिलिङ्गस्य परामर्शजनकतया परामर्शस्य तद्व्यापारत्वासम्भवात्
तथाच व्यभिचारान्न कारणतावच्छेदकत्वमिति भावः । 'लिङ्गान्त-
रमेव' साध्यव्याप्यान्तरमेव, 'तद्धेतुः' तदनुमित्यव्यवहितपूर्ववर्त्ति ।
ननु मास्तु तदानीं तस्य परामर्शः किन्तेनेत्यत आह, 'परामर्श-
विषयस्येति, 'कारणताग्राहकेति कारणतावच्छेदकस्य लिङ्गत्वस्या-
भावादित्यर्थः, लिङ्गत्वं हि साध्यव्याप्यत्वावच्छिन्नानुमादनिष्ठनिश्चय-
विषयतावत्त्वमिति भावः । ननु तदानीं तस्यापरामर्शेऽपि यदा
कदाचित् परामर्शसत्त्वादेव तादृशानुमादनिश्चयविषयतावत्त्वरूप-
लिङ्गत्वसम्भवः कारणतावच्छेदकविशिष्टपूर्वसत्त्वञ्च न कार्योत्पत्तौ
तन्त्रमित्यत आह, 'भाविनीति भाविनि धूमादावेवेत्यर्थः, 'पक्षे'
लिङ्गे, अनुमादपरामर्शविषय इति यावत्, भाविधूमादिव्यक्तिरेव
यत्र तादृशानुमादनिश्चयविषयतावत्त्वरूपलिङ्गत्वाश्रय इति फलि-

वर्तमानमेव तत्र लिङ्गं तदा वर्तमानवज्ज्ञानुमानोप-
पत्तिः । अथ भावि भूतं वा धूमादि न लिङ्गं किन्तु

तार्थः, 'व्यक्त्येकमेवेति,^(१) एवकारोऽत्रान्यार्थकः, तथाच 'व्यक्त्येकमेव
वा' भावि-वर्तमानान्यधूमादिव्यक्तिरेव वा, अतीतधूमादिव्यक्तिरेव
वेति यावत्, 'लिङ्गं' अनुमात्परामर्शविषयः, 'लिङ्गान्तराभावाच्चेति
विद्यमानस्य लिङ्गत्वाभावाच्चेत्यर्थः, तथाच यस्य पुरुषस्य कदाचिदपि
विद्यमानधूमः^(२) न वक्त्रिव्याप्यत्वपरामर्शविषयः, किन्तु अतीतानागत-
धूमादिव्यक्त्येव वक्त्रिव्याप्यत्वरूपेण परामर्शादेव वज्ज्ञानुमितिस्तस्य पुरुषस्य
तदनुमितौ व्यभिचार इति भावः । नन्विदमयुक्तं सर्वत्रान्तः
साध्य-तत्प्रकारकप्रमाविशेष्यत्वादेर्वर्तमानधर्मस्यापि परामर्शादेवानु-
मितिर्नान्यथेत्यभ्युपगमादित्यत आह, 'यदि चेति, 'एवकारोऽप्यर्थः,
'तत्र लिङ्गं' तत्र कारणीभूतपरामर्शविषयः, 'तदेति, उद्देश्य-विधेय-
भावमहिम्ना तत्कालीनतया विधेयभानं प्रति तज्जन्यत्वस्य नियामक-
तया विशेष्यतावच्छेदकवर्तमानलिङ्गकालीनत्वेन वक्त्रेर्भानादिति
भावः । ननु भावि-भूतधूमादिपरामर्शात् यस्य पुरुषस्यानुमितिस्तस्य
धूमप्रागभावादिरूपविद्यमानधर्मोऽपि हेतुतानवच्छेदकविशेषणता-
विशेषादिसम्बन्धेन पक्षे यत्र कुत्रचित् धर्मिणि वा साध्यव्याप्यत्व-
विशिष्टधीविषयस्तथाच न व्यभिचारः । न चैवं वर्तमानसाध्यानु-

(१) 'व्यक्त्येक्यं' इथ्यत्र 'व्यक्त्येकं' इति मूलपुस्तकान्तरपाठानुमापकमी-
दृशपाठधारणमिति ।

(२) विद्यमानधर्म इति ग० ड० ।

तत्प्रागभावस्तद्धंसश्च वर्तमान एव तयोरपि वह्निसमा-
नदेशत्वनियमादिति चेत् । न । अतीतभाविदिनवृत्ति-

मानापत्तिरिति वाच्यं । तस्यानुमितौ विशेष्यतानवच्छेदकतया
तत्कालीनत्वाभानात् आचार्य्यनयेऽनुमितिकारणीभूतपरामर्शविषय-
लिङ्गस्यैवानुमितौ विशेष्यतावच्छेदकत्वात्, अस्तु वा तदानीं साध्ये
तदधिकरणकालावृत्तित्वज्ञानमप्यावश्यकं फलबलेन तथैव कल्पना-
दित्याशयेन शङ्कते, 'अथेति, 'धूमादि' धूमाद्येव, 'न लिङ्गं' न
साध्यव्याप्यत्वरूपेण विशिष्टधीविषयः, 'विद्यमान एव' ^(१) विद्यमा-
नोऽपि, हेतुतानवच्छेदकविशेषणताविशेषादिसम्बन्धेन पक्षे यत्र
कुत्रचिद्भूमिणि वा साध्यव्याप्यत्वविशिष्टवैशिष्ट्यधीविषय इति शेषः ।
ननु धूमप्रागभाव-धूमध्वंसयोस्तदानीं विशेषणताविशेषघटितसाध्यव्या-
प्यत्वविशिष्टवैशिष्ट्यधीविषयत्वेऽपि ^(२) हेतुतावच्छेदकसंयोगसम्बन्धघ-
टितसाध्यव्याप्यत्वस्य तत्र बाधितत्वेन तादृशसाध्यव्याप्यत्वावच्छिन्न-
विषयतावत्त्वस्य तत्राभावाद्वाभिचारो दुर्वार एव हेतुतावच्छेदकस-
म्बन्धभेदेन साध्यव्याप्यत्वस्य विभिन्नतया तद्घटितयथोक्तलिङ्ग-
त्वस्यापि कारणतावच्छेदकस्य नानात्वादित्यत आह, 'तयोर-
पीति, 'वह्निसमानदेशत्वेति धूम-तद्धंस-तत्प्रागभावान्यतमत्वादिरूप-

(१) ईदृशपाठधारणेन 'वर्तमान एव' इत्यत्र 'विद्यमान एव' इति
कस्यचिन्मूलपुस्तकस्य पाठोऽनुमीयत इति ।

(२) विशेषणताविशेषादिसंसर्गघटितसाध्यव्याप्यत्वविशिष्टवैशिष्ट्यधीवि-
षयत्वेऽपीति ग० ।

तथा निश्चितात् वर्तमानतया सन्दिग्धात् धूमादनुमितौ
हि न प्रागभाव-ध्वंसौ लिङ्गे तयोः सन्दिग्धत्वात् । नापि

हेतुतावच्छेदकसंयोगसम्बन्धघटितवह्निसामानाधिकरण्यावच्छेदकध-
र्मवत्त्वादित्यर्थः, नियम्यतेऽवच्छिद्यतेऽनेनेति व्युत्पत्त्या नियमपदस्या-
वच्छेदकपरत्वात्, तथाच हेतुतावच्छेदकसंयोगसम्बन्धघटितसाध्य-
व्याप्यत्वमपि तत्र न बाधितं । न च तथापि साध्यव्याप्यत्वावच्छि-
न्नहेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नविषयतावत्त्वं कारणतावच्छेदकं तत्र
बाधितमेव सर्वत्र संयोगसम्बन्धेन प्रागभावादेर्भ्रमे मानाभावा-
दिति वाच्यं । विशिष्टधर्मस्यावच्छेदकत्वाद्दकमानेन विशेषणी-
भूतसाध्यव्याप्यत्वावच्छिन्न-हेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नविषयत्वस्याव-
च्छेदकत्वं गृह्यते सामान्यतः साध्यव्याप्यत्वावच्छिन्नविषयतात्वरूपेणैव
ग्रहात् विशेषणताविशेषादिसम्बन्धावच्छिन्नविषयताया अपि कारण-
तावच्छेदकत्वादिति भावः । 'अतीतेति अतीतानागतदिनावच्छे-
देन पर्वते वह्निव्याप्यधूमत्वरूपेण निश्चितादित्यर्थः, एतच्चानुमिति-
कारणसम्पत्तये, दिनावच्छेदेनेति स्वरूपकथनं, 'वर्तमानतया सन्दि-
ग्धादिति वह्निव्याप्यधूमप्रागभाववान्न वा वह्निव्याप्यधूमध्वंसवान्न
वा इत्याकारको यः पर्वतवृत्तितया स्वप्रागभाव-स्वध्वंसयोः सन्देह-
स्तद्विषयादित्यर्थः, 'धूमात्' अतीतानागतधूमात्, 'लिङ्गे' कारणे,
'सन्दिग्धत्वादिति पक्षे सन्दिग्धतया निरुक्तलिङ्गत्वरूपकारणताव-
च्छेदकानाक्रान्तत्वादित्यर्थः । न च तदानीं पक्षे सन्दिग्धत्वेऽपि
कालान्तरे पक्षे तदानीमेव धर्मान्तरे च वह्निव्याप्यत्वरूपेण

धूमः, तस्यावर्त्तमानत्वात् । किञ्च भूत-भावि-वर्त्तमानत्वाविषयात् पर्वते धूमइति ज्ञानाद्यचानुमानं तत्र

विशिष्टधीविषयतया लिङ्गत्वसम्भव इति वाच्यं । धर्मान्तरे कालान्तरेऽपि तयोस्तस्य पुरुषस्य वङ्गिव्याप्यत्वरूपेण विशिष्टधीविरहादिति भावः । 'नापि धूम इति कारणमिति शेषः, 'अवर्त्तमानत्वात्' अव्यवहितपूर्वमवर्त्तमानत्वात् । स्थलान्तरेऽपि व्यभिचारसाह, 'किञ्चेति, 'भूत-भावि-वर्त्तमानत्वाविषयादिति, 'भूतत्वं' पर्वते धूमस्य भूतत्वं, पर्वते धूमस्य ध्वंस इति यावत्, 'भावित्वं' पर्वते धूमस्य भावित्वं, पर्वते धूमस्य प्रागभाव इति यावत्, 'वर्त्तमानत्वं' पर्वते वर्त्तमानधूमस्य सम्बन्धः, तदविषयात् तद्विषयकज्ञानाकालीनादित्यर्थः, 'धूमः' वङ्गिव्याप्योधूमः, 'यचानुमानं यस्मिन् पुरुषे वङ्गानुमितिः, तथाच, (१) तस्य पुरुषस्य धर्मान्तरे कालान्तरेऽपि च न धूमध्वसादिरूपविद्यमानधर्मस्य वङ्गिव्याप्यत्वरूपेण विशिष्टधीरिति शेषः, 'तत्र का गतिरिति तत्पुरुषीय-पर्वतपक्षक-वङ्गानुमितौ का गतिरित्यर्थः, धूमस्य यथोक्तलिङ्गत्वाश्रयत्वेऽपि नाव्यवहितपूर्वसत्त्वं, धूमध्वंसादेरव्यवहितपूर्ववर्त्तित्वेऽपि न कारणतावच्छेदकौभूत-यथोक्तलिङ्गत्वाश्रयत्वमिति व्यभिचारस्य दुर्वारत्वादिति भावः । पूर्वं धूमध्वंसप्रागभावयोः पक्षे सन्दिग्धतया न लिङ्गत्वमित्युक्तं अत्र तु तयोरज्ञानान्न लिङ्गत्वमित्यभिप्राय इति नाभेदः । 'सर्वत्रेति षष्ठ्यर्थे सप्तमी, भूत-भावि-वर्त्तमानधूमाज्ञानात् यस्य पुरुषस्यानुमितिस्तस्य

का गतिः, सर्वत्र प्रागभावाद्यन्यतमत्वं धूमाद्यत्यन्ताभा-
वाभावत्वं वा लिङ्गमिति चेत्, न, व्यर्थविशेषणत्वेन

सर्वस्यैव इत्यर्थः, 'प्रागभावाद्येति धूम-तद्ध्वंस-तत्प्रागभावैतत्त्रयसा-
धारणं धूमप्रागभावाद्यन्यतमत्वं धूमाद्यत्यन्ताभावाभावत्वं वेत्यर्थः,
प्राचां सते प्रतियोगि-तद्ध्वंस-तत्प्रागभावानां त्रयाणामेवात्यन्ता-
भावाभावरूपतया^(१) धूमाद्यत्यन्ताभावाभावत्वमपि त्रितयसाधारण-
मिति भावः । 'लिङ्गं' लिङ्गतावच्छेदकं, अनुमितिजनकपरामर्श-
विषयतावच्छेदकमिति यावत्, तथाच भूत-भावि-धूमाज्ञानात्
यस्य पुरुषस्यानुमितिस्तस्य कस्यचिदिशिष्य धूमप्रागभावत्वादिरूपेण
धूमप्रागभावादीनां परामर्शविरहेऽपि तदन्यतमत्वादित्रितयसाधार-
णधर्मेण तेषां परामर्शः सर्वस्यैवास्ति तथाच न व्यभिचारः प्राग-
भावादेरेव यथोक्तलिङ्गत्वाश्रयत्वस्य सर्वत्र पूर्वं सत्त्वादिति भावः ।
'व्यर्थविशेषणत्वेनेति व्यर्थविशेषणरूपत्वेनेत्यर्थः, 'तेषामिति अन्यतमत्व-
घटकभेदानामत्यन्ताभावाभावत्वघटकात्यन्ताभावत्वादीनाञ्चेत्यर्थः^(२)
'अलिङ्गत्वात्' परामर्शविषयतानवच्छेदकत्वात्, किन्तु धूमत्वादि-
प्रत्येकधर्म एव परामर्शविषयतावच्छेदक इति भावः । ननु व्यर्थवि-
शेषणत्वेऽपि पक्षांशे प्रकारतावच्छेदकत्वे न किमपि बाधकमित्या-
शयेनाह, 'अन्यतमत्वाद्यज्ञानेऽपीति अनुमातुरन्यतमत्वादिप्रकारेण

(१) अत्यन्ताभावस्य प्रतियोगिनेव प्रतियोगिप्रागभावेन प्रतियोगिध्वं-
सेन च समं विरोधित्वं प्राचीनसम्मतमिति भावः ।

(२) अन्यतमत्वघटकभेदानां अत्यन्ताभावत्वादीनाञ्चेति ग०, घ० ।

तेषामलिङ्गत्वात् अन्यतमत्वाद्यज्ञानेऽपि धूमज्ञानाद-
नुमितिसत्त्वाच्च । अपि च न धूमप्रागभावादि लिङ्गं,

कदाचिदपि परामर्शविरहेऽपीत्यर्थः, 'धूमज्ञानात्' अतीतादिधूम-
ज्ञानात्, 'अनुमितिसत्त्वाच्च' अनुमितेरनुभवसिद्धत्वाच्च^(१) । ननु सा-
ध्यव्याप्यत्वावच्छिन्नानुमादनिश्चयविषयत्वं न लिङ्गत्वं अपि तु सा-
मान्यतस्तादृशस्व-परसाधारणनिश्चयविषयतावत्त्वमेव लिङ्गत्वं, तथा-
च धूमप्रागभावादेर्धूमप्रागभावत्वादिरूपेणानुमादपरामर्शविषयत्वेऽपि
अनन्तसंसारेऽवश्यं कस्यचित् पुरुषस्यान्ततो भगवत एव साध्यव्याप्य-
त्वावच्छिन्नविशिष्टधीविषयत्वादेव यथोक्तलिङ्गत्वमक्षतमित्यत आह,
'अपि चेति, 'न लिङ्गं' न व्याप्यं, तथाच कुतो व्याप्यत्वावच्छिन्नवि-
षयत्वं तच्चेति भावः । ननु व्याप्यत्वाभावेऽपि व्याप्यत्वावच्छिन्नभ्रमरू-
पविशिष्टधीविषयेत्वे न किमपि बाधकमित्यत आह, 'न वेति, 'तद्धीः'
पुरुषान्तरीय-व्याप्यत्वविशिष्टवैशिष्ट्यधीः, 'अनुमितीति अतीताना-
गतधूमज्ञानजन्यपुरुषान्तरीयानुमितिकारणमित्यर्थः, 'न लिङ्गमि-
त्यत्र हेतुमाह, 'प्रागभावादीनामिति, लाघवात् प्रतियोगिन एव

(१) अनुमितिदर्शनात् अनुमितिसत्त्वाच्च अनुमितेरनुभवसिद्धत्वाच्चेति
यावत् इति क०-छ०-चिह्नितपुस्तकपाठः, परन्त्वयं पाठः 'अनुमिति-
सत्त्वाच्च' इत्यत्र 'अनुमितिदर्शनाच्च' इति मूलपाठेन सङ्गच्छते गान्य-
येति ।

न वा तद्धीरनुमितिकारणं, प्रागभावादीनां व्यर्थत्वात्
आवश्यकधूमज्ञानादेवानुमितिसम्भवाच्च । किञ्च लिङ्गं

व्याप्यत्वादिति भावः । एतच्चापाततः भिन्नधर्मिकत्वेन वैयर्थ्यविरहात्^(१)
वैयर्थ्येऽपि व्याप्तिसत्त्वे^(२) बाधकाभावाच्चेति मन्तव्यं । नानुमितिकार-
णमित्यत्र हेतुमाह, 'आवश्यकेति, 'धूमज्ञानादेवेति अनुमातुर-
तीतानागतधूमपरामर्शादेवेत्यर्थः, 'अनुमितिवन्मवात्' अनुमित्यु-
त्पादात्, 'एवकारेण पुरुषान्तरीयधूमप्रागभावादिष्वसम्भवाच्चेदः
तस्य अधिकरणत्वादिति भावः । ननु पुरुषान्तरीयव्याप्यत्वविशि-
ष्टधूमप्रागभावादिवैशिष्ट्यबुद्धेः फलीभूतानुमित्यजनकत्वेऽपि तद्विष-
यत्वमादाय यथोक्तलिङ्गत्वमत्रमेव, न हि फलीभूतानुमितिजन-
कपरामर्शस्य निरुक्तविषयतावत्त्वमेव लिङ्गत्वमित्यत आह, 'किञ्चेति,
'धूलीपटलात्' अतीतानागतधूलीपटलज्ञानात्, 'धूलीपटलपदं
अतीतानागतलिङ्गमात्रोपलक्षकं, 'लिङ्गभ्रमेण' साध्यव्याप्यत्वभ्रमेण,
कदाचिदपि कुत्रचिद्धर्मिणि साध्यव्याप्यत्वरूपेण विद्यमानधर्मवै-
शिष्ट्यमविदुषोऽपि पुरुषस्य इति शेषः, 'अनुमित्युत्पत्तेरिति संयो-

(१) तथाच भिन्नधर्मिकत्वेन स्वसमानाधिकरणत्वविरहात् न स्वस-
मानाधिकरण-व्याप्यतावच्छेदक-धर्मान्तरघटितत्वरूपव्यर्थविशेषणघ-
टितत्वमिति भावः ।

(२) तथाच व्याप्तिसत्त्वे व्यर्थविशेषणाघटितत्वरूपविशेषणस्याप्रविष्ट-
त्वात् व्यर्थविशेषणघटितत्वेऽपि न व्याप्तिसत्त्वे किञ्चिद्बाधकमिति
भावः ।

नानुमितिमात्रे हेतुः लिङ्गं विनापि धूलौपटस्नात्
लिङ्गभ्रमेणानुमित्युत्पत्तेः । नापि लिङ्गं प्रमानुमितौ,

गादिव्यधिकरणसम्बन्धेन पराज्ञातगुणादिव्यक्तिसाध्यकानुमित्युत्पत्ते-
रित्यर्थः, भगवतो योगिनश्च भ्रमविरहेण तदीयविशिष्टवैशिष्ट्य-
धीविषयतामादायापि विद्यमानस्य तत्र लिङ्गत्वसम्भवादिति भावः ।
'प्रमानुमिताविति साध्यवद्विशेष्यकानुमितावित्यर्थः, तत्रान्ततो-
भगवतः साध्यव्याप्यत्वविशिष्टवैशिष्ट्यधीविषयतामादायैव विद्यमानस्य
लिङ्गत्वसम्भवादिति भावः । 'तद्विशेषेति परामर्शस्य चो विशेषौ
प्रमात्वाप्रमात्वे ताभ्यामेवेत्यर्थः, 'अनुमितितथात्वादिति अनुमितेः
प्रमात्वाप्रमात्वादित्यर्थः, अन्यथा विद्यमानलिङ्गकभ्रमानुमितिस्थ-
लेऽपि प्रमानुमित्यापत्तेः लिङ्गस्याविशेषादिति भावः । नन्वेतावता
प्रमापरामर्श-लिङ्गयोरुभयोरेवानुमितिप्रमात्वप्रयोजकत्वमस्तु । न च
प्रमापरामर्शस्य तत्प्रयोजकत्वावश्यकत्वे लिङ्गस्यापि तत्र प्रयोजक-
त्वकल्पनं व्यर्थं गौरवग्रस्तञ्चेति वाच्यं । तत्कारणत्वस्यापि विशिष्ट-
धर्मावच्छेदेन कारणताग्राहकप्रमाणमसति बाधके विशेषणावच्छेदे-
नापि कारणत्वं गृह्यतीति नियमसिद्धतया व्यर्थत्वेन गौरवेण
च निराकर्तुमशक्यत्वादित्यतो बाधकमाह, 'यत्सामान्य इति,
'तद्विशेषस्येति तद्विशेषस्यैव, तथाच तदवच्छिन्नकार्यताप्रतियोगिक-
कारणतावच्छेदक-व्याप्यधर्म एव तदवच्छिन्नकार्यताव्याप्य-कार्यता-
प्रतियोगिककारणतावच्छेदक इति नियमादनुमितिसामान्यजनक-
तावच्छेदकाव्याप्यस्य लिङ्गत्वस्य नानुमितित्वावच्छिन्नकार्यताव्याप्य-

परामर्शोऽनुमितिमात्रे हेतुः तद्विशेषप्रमात्वाप्रमात्वा-
भ्यामेवानुमितितथात्वात्, यत्सामान्ये यत्सामान्यं प्र-
योजकं तद्विशेषे तद्विशेषस्य प्रयोजकत्वात् ।

प्रमानुमितित्वावच्छिन्नकार्यताया जनकतावच्छेदकत्वसम्भवः । एतेन
पक्षतावच्छेदक-साध्यतावच्छेदकभेदेन साध्यत्व-हेतुत्वावच्छेदकसम्बन्ध-
भेदेन च लिङ्गत्वस्य तदवच्छिन्नकार्य-कारणभावस्य विभिन्नतया
यत्र विद्यमानस्य धर्मस्य स्व-परसाधारणनिश्चयघटितं लिङ्गत्वं
सम्भवति तत्रैव विशिष्टकारणताग्राहकेत्याद्युत्सर्गवलात् लिङ्गं हेतुर्न
तु सर्वत्र तथाच न व्यभिचार इति परास्तं । लिङ्गत्वस्यानुमितित्वा-
वच्छिन्नं प्रति जनकतावच्छेदकस्य व्याप्यादिज्ञानत्वादेरव्याप्यतया
अनुमितित्वावच्छिन्नकार्यताव्याप्यकार्यताप्रतियोगिककारणतावच्छेद-
कत्वसम्भवात् इति भावः । एतच्चोपलक्षणं परामर्शविरहदशायामपि
लिङ्गमात्रादनुमित्यापत्तिवारणाय परामर्शस्यापि पृथक् कारण-
त्वावश्यकत्वे लिङ्गस्य पृथक् कारणत्वकल्पनं व्यर्थं गौरवग्रस्तञ्च ।
न च विशिष्टकारणताग्राहकेत्याद्युत्सर्गवलेन तत्कारणत्वस्य प्रमाण-
सिद्धतया व्यर्थत्वेन गौरवेण च प्रत्याख्यानसम्भव इति वाच्यं ।
विशेषणावच्छेदेनापि स्वतन्त्रान्वय-व्यतिरेकग्रहसत्त्व एव विशिष्ट-
धर्मावच्छेदेन कारणत्वग्राहकस्यान्वय-व्यतिरेकग्रहस्य विशेषणावच्छे-
देनापि कारणताग्राहकत्वात् यथेन्द्रियत्व-तत्संयोगत्वयोः, न चेह-
सोऽस्ति, अन्यथानुमितिं प्रति लिङ्गवद्वाप्यत्वादिघटकपदार्थान्तरा-
वच्छिन्नस्यापि हेतुत्वापत्तेः इच्छा-शाब्दबोधादिकं प्रत्यपि इष्ट-

अथ परामर्शस्य प्रमात्वं विद्यमानलिङ्गविषयत्वं,
तथाद्यायातं लिङ्गस्य प्रमानुमितिहेतुत्वमिति चेत् ।

साधनत्वाकाङ्क्षादिकुचिनिचितविद्यमानसकलपदार्थस्य हेतुत्वापत्ते-
श्चेत्यपि बोध्यं ।

केचित्तु प्रमानुमितिं प्रति प्रमापरामर्शो न हेतुर्गौरवात् किन्तु
साध्यतावच्छेदकसम्बन्धेन पचनिष्ठतया लिङ्गमेव हेतुः, लिङ्गत्वञ्च
साध्यतावच्छेदकसम्बन्धेन साध्यव्याप्यत्वं, अनुमितिसामान्यं प्रति
परामर्शस्य हेतुतयैव परामर्शविरहदशायां केवललिङ्गाच्च प्रमानु-
मितिः । न चैवं यत्र साध्यतावच्छेदकसम्बन्धेन पचनिष्ठं सर्वमेव
निरुक्तलिङ्गमतीतमनागतं वा तत्र परामर्शसत्त्वेऽपि प्रमानुमितिर्न
स्यात् इति वाच्यं । तत्र परामर्शप्रमात्वस्यैवाभावात् साध्यतावच्छेद-
कसम्बन्धेन विद्यमाननिरुक्तलिङ्गवति पचे साध्यव्याप्यतया यत्किञ्चि-
द्धर्मावच्छिन्नावगाहित्वस्यैव परामर्शप्रमात्वरूपत्वात् । न च तथापि
प्रमापरामर्शस्यैव प्रमानुमितिहेतुत्वं 'यत्सामान्येत्याद्युक्तव्याप्त्या लाघवे-
ऽपि लिङ्गस्य हेतुत्वासम्भवादिति वाच्यं । गौरवादिरूपबाधकासत्त्व-
एव^(१) तादृशव्याप्तेरभ्युपगमादित्याहुः, तन्मतमुपन्यस्यति, 'अथेति,
'विद्यमानलिङ्गविषयत्वमिति साध्यव्याप्यतावच्छेदकसम्बन्धेन विद्य-
मानलिङ्गवति पचे साध्यव्याप्यतया यत्किञ्चिद्धर्मावगाहित्वमित्यर्थः,
'तथाद्यायातमिति, व्यभिचाराभावात् लाघवाच्चेति भावः, 'प्रमा-
नुमितिहेतुत्वमिति साध्यतावच्छेदकसम्बन्धेन पचनिष्ठतया प्रमानु-

(१) गौरवादिरूपबाधकाभावसत्त्व एवेति घ० ।

न। भाविना भूतेन वा यदाकदाचिद्विद्यमानेनापि
लिङ्गेन परामर्शप्रमात्वसम्भवान्नानुमितिपूर्वसमये तत्प्र-

मितिहेतुत्वमित्यर्थः, लिङ्गत्वमपि साध्यतावच्छेदकसम्बन्धेन साध्य-
व्याप्यत्वमिति भावः। 'यदाकदाचिद्विद्यमानेनेति यदाकदाचि-
त्साध्यतावच्छेदकसम्बन्धेन पक्षे वर्तमानेनापीत्यर्थः, 'अनुमितीति
प्रमानुमितीत्यर्थः, 'तत्प्रमात्वेति परामर्शप्रमात्वेत्यर्थः, 'लिङ्गस्य
सत्त्वमिति साध्यतावच्छेदकसम्बन्धेन पक्षे लिङ्गस्य सत्त्वमित्यर्थः,
'कारणत्वं वेति 'वाग्बोध्यत इत्यर्थे, यतः कारणत्वमित्यर्थः,
ननु यदि लिङ्गं न कारणं तदा धूमादिलिङ्गकवज्ज्ञाद्यनुमितौ
धूमादिकालावच्छिन्नत्वसम्बन्धेन कथं वज्ज्ञादेर्भानं शाब्दाद्यतिरिक्त-
भाने उद्देश्य-विधेयभावमहिम्ना तत्कालावच्छिन्नत्वभानं प्रति तज्ज्ञा-
नजन्यत्वमात्रस्य नियामकत्वात्। न च तस्य नियामकत्वे मानाभाव-
इति वाच्यं। तथापि त्वया लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानानभ्युपगमेन
धूमस्य विशेष्यतानवच्छेदकतया तत्कालावच्छिन्नत्वभानासम्भवादि-
त्यत आह, 'धूमकालीनेति धूमकालावच्छिन्नत्वसम्बन्धेन वज्ज्ञानुमि-
तिश्चेत्यर्थः, 'यदेति यत्र धूमस्तत्र वज्जिर्यदा धूमस्तदा वज्जिरिति
षोडश्या, तथाच यत्र धूमस्तत्र धूमकालावच्छिन्नत्वविशिष्टसंयोग-
सम्बन्धेन वज्जिरिति व्याप्तिज्ञानादेवेत्यर्थः। 'अथ वेति, यत्रेति
शेषः, 'पक्षतावच्छेदक इति, तत्रेति शेषः, 'पक्षतावच्छेदकधर्मस-
मानाधिकरणश्चेति पक्षतावच्छेदककालाद्यवच्छिन्नत्वविशिष्टव्यापक-
तावच्छेदकसम्बन्धेन साध्यमित्यर्थः, 'पक्षधर्मतावत्वात्' तेन सम्बन्धेन

मात्वानुरोधेन लिङ्गस्य सत्त्वं कारणत्वं वा, धूमकाली-
नवह्यनुमानञ्च यदा यच्च धूमस्तदा तच्च वह्निरितिव्या-
प्तिज्ञानादेव । अथवा धूमकालः पक्षतावच्छेदकः पक्ष-

बाधाद्यभावसहकारात्, 'धूमकालीनवह्निसिद्धिरिति धूमकालाव-
च्छिन्नत्वसम्बन्धेन वह्निसिद्धिरित्यर्थः, एतच्च शाब्दाद्यतिरिक्तज्ञाने
उक्तरीत्या तत्समानकालीनत्वभावे तज्जन्यत्वस्य नियामकत्वसम्भुपे-
त्योक्तं । वस्तुतस्तु शाब्दादिज्ञानवदनुमितावपि उक्तरीत्या तत्का-
लावच्छिन्नत्वभावं प्रति तज्जन्यत्वस्य नियामकत्वे मानाभावात् यच्च
धूमः पक्षतावच्छेदकस्तत्रापि धूमकालावच्छिन्नत्वसम्बन्धेन वल्लेभायं
बोध्यं । न च तज्जन्यत्वस्य नियामकत्वमते अनुमितावुद्देश्य-विधेय-
भावमहिम्ना विशेष्यतावच्छेदकसमानकालीनत्वभावं कुचेति बाध्यं ।
यच्च सिद्धभावोऽनुमितिप्रागभावादिर्वा अनुमितिजनकरूपः पक्ष-
तावच्छेदकस्तत्रैव तद्मानात् ।

केचित्तु धूमं विहाय धूमकालस्यैव पक्षतावच्छेदकत्वस्यले
धूमकालीनत्वभानाभिधानात् मणिकारमते प्रत्यक्ष एव उद्देश्य-
विधेयभावमहिम्ना विशेष्यतावच्छेदकसमानकालीनत्वभावं नान्यत्रे-
त्याहुः । तदसत्^(१) । तज्जन्यत्वस्य नियामकत्वाभ्युपगमेनापि धूमपरि-
त्यागसम्भवात् । न च तज्जन्यत्वस्य नियामकत्वं न कारणत्वं किन्तु
व्यापकत्वं तथाच तदजन्यज्ञाने बाधाभावरूपसामान्यकारणमर्थ्या-

साधच्छेदकधर्मसमानाधिकरणञ्च पक्षधर्मतावलात्
साध्यं सिध्यतीति धूमकालीनवह्निसिद्धिः ।

यत्तु व्यापाराभावान्न परामर्शः कारणमिति, तत्त-
थैव, किन्तु व्याप्तिज्ञानं कारणं परामर्शव्यापारः ।

दया तद्भाने किं बाधकमिति, न हि व्यापकत्वभङ्गभिया
ह्यमग्नौ कार्यं नार्जयति, इति वाच्यं । तद्व्यत्यस्य व्यापकत्वे
थावद्विशेषसामग्रीविरहादेव तदजन्यज्ञाने तद्भानादिति निगर्वः ।

तटस्थः शङ्कते, 'न चेति, 'व्यापारः' अवश्यं व्यापारः, अन्यथा
संस्कारोत्पत्तिरसमय एवानुमित्यापत्तिरिति भावः । दृष्टापत्या
परिहरति, 'परामर्शस्य चेति, 'चरमकारणत्वेन' साधवात् संस्का-
रानपेक्ष्यकारणत्वेन । 'नापि तर्क इति, परामर्शव्यापार इति शेषः,
'व्याप्तिग्राहकस्येति, धूमो यदि वह्नियभिचारो स्याद्वह्निजन्यो
न स्यादित्यादिसाध्यव्यभिचारित्वाद्यापादककर्तृका व्याप्तिग्राहककर्तृका,
पर्वतो यदि निर्वह्निः स्यात् निर्धूमः स्यादित्यादिग्राह्याभावापा-
दककर्तृका विषयपरिशोधककर्तृकस्य, विषयं ग्राह्यं परिशोधयति
ग्राह्याभावग्रहप्रतिबन्धकद्वारा निश्चाययतीति व्युत्पत्तेरिति भावः ।
'तदजन्यत्वादित्युपलक्षणं अनुमितिजनकत्वाच्चेत्यपि बोध्यं । न च
पर्वतो निर्वह्निः स्यान्निर्धूमः स्यादित्यादिविषयपरिशोधककर्तृकस्य
कथमनुमित्यादावुपयोगित्वं ग्राह्याभावसन्देहस्य तत्राप्रतिकूलतया
तस्मिन्निवृत्तिदारोपयोगित्वासम्भवादिति वाच्यं । तदापादककापत्तेः

न च परामर्शस्य संस्कारो व्यापारः, परामर्शस्य च चरमकारणत्वेन संस्कारोत्पादनसमयेऽनुमित्युत्पादनात् । नापि तर्कः, व्याप्तिग्राहकस्य विषयपरिशोधकस्य वा तस्य तदजन्यत्वादिति ।

इति श्रीमद्भक्तेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ अनुमानाख्यद्वितीयखण्डे परामर्शसिद्धान्तः । सम्पूर्णोऽयं परामर्शः ।

तद्विशिष्टबुद्धिमात्रप्रतिबन्धकतया ग्राह्याभावनिश्चयप्रतिबन्धकद्वारैव तत्रापि तस्योपयोगित्वसम्भवात्, परामर्शात् पूर्वं बाधनिश्चयोत्पत्तौ यत्र शाब्दाद्यात्मकः परामर्शस्तत्र परामर्शोत्तरं लौकिकबाधनिश्चयोत्पत्तौ च परामर्शस्य प्रतिबन्धकत्वसम्भवादिति समासः ।

इति श्रीमथुरानाथतर्कवागीश-विरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये अनुमानाख्यद्वितीयखण्डरहस्ये परामर्शसिद्धान्तरहस्यं, सम्पूर्णमिदं परामर्शरहस्यं ।

अथ केवलान्वय्यनुमानं ।



तच्चानुमानं त्रिविधं केवलान्वयि-केवलव्यतिरेक्य-
न्वयव्यतिरेकिभेदात् । तच्चासद्विपक्षं केवलान्वयि,

अथ केवलान्वय्यनुमानरहस्यं ॥

सामान्यतः सपरिकरं अनुमानं लक्षयित्वा विशेषलक्षणार्थं
तद्विभजते, 'तच्चेति, 'अनुमानं' अनुमितिकरणं, 'त्रिविधं' त्रैवि-
ध्यवत्^(१), अनुमानविभाजकोपाधित्रयवदिति यावत्, अनुमानवि-
भाजकोपाधित्रयमनुमानवृत्तीति समुदितार्थः, तेन विभाजकोपा-

(१) अत्र अनुमानं त्रिविधं इत्यत्र विधप्रत्ययस्य उद्देश्यतावच्छेदकसम-
नियत-वस्तुमदन्यसंख्यावाचित्वं, तथाच अनुमानस्य प्रक्षत्वं स्वाश्र-
याश्रयत्वसम्बन्धेन केवलान्वयित्व-केवलव्यतिरेकित्वान्वयव्यतिरेकित्व-
गतचित्वसंख्यायाः साध्यत्वं केवलान्वयिभेद-केवलव्यतिरेकिभेदान्वय-
व्यतिरेकिभेदान्यतमभेदस्य प्रतियोगितासम्बन्धेन हेतुत्वं । विध-
प्रत्ययार्थान्तर्गतसमनियतत्वघटकं व्याप्यत्वं व्यापकत्वञ्च स्वाश्रयाश्र-
यत्वसम्बन्धेन, वस्तुमदन्यत्वघटकवस्तुमत्त्वञ्च स्ववृत्तित्व-स्वसमानाधि-
करणस्वभिन्नवृत्तित्वोभयसम्बन्धेन, तादृशविशेषणदानेन केवलान्व-
यित्व-केवलव्यतिरेकित्वान्वयव्यतिरेकित्वानुमानत्वरूप-सामान्यधर्मे-
गतचतुष्टयत्वसंख्याव्युदासः, तादृशचतुष्टयत्वसंख्यायाः उक्तोभय-
सम्बन्धेन केवलान्वयित्वादिरूपवस्तुविशिष्टत्वात् । उक्तचतुष्टयत्वसं-
ख्याव्युदासाभावे अनुमानं त्रिविधमिति वत् अनुमानं चतुर्विधमिति
विभागापत्तिरिति ध्येयं ।

तथाहि केवलान्वयिनोऽभिधेयत्वस्य न विपक्षः
अभिधानेऽनभिधाने च विपक्षत्वव्याघातात् । अथ
यथा आकाशशब्दाच्छब्दाश्रयत्वमनभिधेयमप्युपति-

धित्रयवत्त्वस्यैकत्रासत्वेऽपि न क्षतिः^(१) । ननु विभाजकोपाधीनां
परस्परभेदविरहेण त्रयत्वमेवासिद्धमित्यत आह, 'केवलान्वयीति,
'केवलान्वयिपदं केवलान्वयिसाध्यकपरं, तथाच केवलान्वयिसाध्यक-
केवलव्यतिरेकिसाध्यकान्वयव्यतिरेकिसाध्यकरूपाणां तादात्म्यसम्बन्धेन
अनुमानविभाजकोपाधीनां परस्परं भेदसत्त्वादित्यर्थः । यद्वा
'केवलान्वयादिपदं केवलान्वयिसाध्यकत्वादिपरं'^(२), तथाच केवलान्व-
यिसाध्यकत्व-केवलव्यतिरेकिसाध्यकत्वान्वयव्यतिरेकिसाध्यकत्वरूपाणां
अनुमानविभाजकोपाधीनां परस्परं भेदसत्त्वादित्यर्थः ।

केचित्तु सामान्यतः सपरिकरामनुमितिं लक्षयित्वा विशेषल-
क्षणार्थं तां विभजते, 'तच्चेति, 'अनुमानं' अनुमितिः, 'त्रिविधं'
अनुमितिविभाजकोपाधित्रयवती, शेषं पूर्ववदित्याहुः ।

केवलान्वयित्वस्य ग्रह एव केवलान्वयिसाध्यकत्वमपि सुग्रहमि-
त्यभिप्रेत्य केवलान्वयित्वमेव निरूपयति, 'तच्चेति, 'तत्र' केवलान्व-
यिसाध्यकत्वे, सप्तम्यर्थो विशेषणत्वं, 'असदिपक्षमिति असन्विपक्षो-

(१) अनुमानविभाजकोपाधित्रयत्वावच्छिन्ने अनुमानवृत्तित्वस्याबाधित-
त्वान्न क्षतिरिति भावः ।

(२) भावप्रधाननिर्देशात् केवलान्वयिपदस्य केवलान्वयिसाध्यकत्वपरत्व-
मिति समुदिततात्पर्यं ।

ष्ठते, तथाभिधेयत्वविपक्षस्यानभिधेयत्वेऽपि पदादुप-
स्थितिः स्यात्, एवञ्चाभिधेयत्वं कुतोऽपि व्यावृत्तं धर्म-

ऽभाववान् यस्य तत्केवलान्वधीत्यर्थः^(१) । न च सिद्धासिद्धिव्याघातः,
अत्यन्ताभावप्रतियोगितानवच्छेदको यो धर्मः तद्वत्त्वं तेन रूपेण
केवलान्वयित्वमिति विवक्षितत्वात् । तादृशधर्मावच्छिन्नसाध्यताक-
त्वञ्च केवलान्वयिसाध्यताकत्वं, साध्यता च व्यापारानुबन्धिनी
विधेयता, स्वकरणकानुमितिविधेयतेति यावत्, तेन व्याप्यादिज्ञा-
नरूपे अनुमाने वाच्यत्वादेरविधेयत्वेऽपि न क्षतिः, तथाचात्यन्ता-
भावप्रतियोगितानवच्छेदकधर्मावच्छिन्नविधेयताकानुमितिकरणत्वं
केवलान्वयिसाध्यकानुमानत्वमिति निष्कर्षः । अनुमितिविभागपक्षे
च साध्यता विधेयतैव तथाचात्यन्ताभावप्रतियोगितानवच्छेदकध-
र्मावच्छिन्नविधेयताकानुमितित्वं केवलान्वयिसाध्यकानुमितित्वमिति
निष्कर्षः । वाच्यत्वादेर्व्यतिरेकित्वभ्रमदशायामपि तत्साध्यकं केवला-
न्वयिसाध्यकमेव, वज्रादिरूपव्यतिरेकिसाध्यकन्तु कदाचिदपि न
केवलान्वयिसाध्यकमिति भावः ।

(१) न च विपक्षपदस्याभावपरत्वेनापि असन् विपक्षः अभावो यस्य तत्
केवलान्वयि इति सामञ्जस्ये विपक्षपदस्याभाववत्परत्वं विफलमिति
वाच्यं । गगनाभावस्य केवलान्वयित्वानुपपत्तेः गगनस्वरूपस्य तदभा-
वस्य विद्यमानत्वात्, विपक्षपदस्याभाववत्परत्वे तु गगनस्यावृत्ति-
प्रदार्थत्वात् गगनाभावाभाववतो न कुत्रापि सत्त्वमिति ।

त्वात् गोत्ववदिति चेत् । न । व्यावृत्तत्वस्याव्यावृत्तत्वे
व्यावृत्तत्वमेव केवलान्वयि, व्यावृत्तत्वे यतएव व्यावृत्तं

केचित्तु वज्रादिसाध्यकमपि कदाचित् केवलान्वयिसाध्यकं यदा
तन्वयसहचारज्ञानजन्यान्यव्याप्तिज्ञानमात्रादनुमितिः, वाच्यत्वादि-
साध्यकमपि कदाचित् केवलव्यतिरेकिसाध्यकं यदा व्यतिरेकसह-
चारभ्रमजन्यान्यव्याप्तिज्ञानमात्रादनुमितिः, कदाचिच्चान्वय-व्यति-
रेकिसाध्यकं यदा चोभयसहचारज्ञानेनान्वयव्यप्तिज्ञानादनुमितिः,
न तु तदानीं केवलान्वयिसाध्यकं, व्यतिरेकव्याप्तिज्ञानञ्च न क्वाप्यनु-
मितिहेतुः केवलव्यतिरेकिण्यपि व्यतिरेकसहचारेणान्वयव्याप्तेरेव
ग्रहात्, तथाच व्यतिरेकसहचारज्ञानजन्यव्याप्तिग्रहाजन्यानुमितिकर-
णत्वं केवलान्वयिसाध्यकानुमानत्वं, तादृशानुमितित्वञ्च^(१) केवलान्वयि-
साध्यकानुमितित्वं, व्यतिरेकसहचारज्ञानज्ञाभावादौ साध्यादिप्रका-
रकविलक्षणविषयतागालिज्ञानं^(२) तच्च केवलान्वयिन्यपि खण्डशः प्र-
सिद्ध्या भ्रमरूपं प्रसिद्धं, व्याप्तिज्ञानमपि हेत्वादिरूपतावत्पदार्थानां^(३)

(१) व्यतिरेकसहचारज्ञानजन्यव्याप्तिग्रहाजन्यानुमितित्वञ्चेत्यर्थः ।

(२) तद्याद्याखण्डसाध्याभावसहचारज्ञानस्याप्रसिद्धत्वेऽपि वाच्यत्वादिसा-
ध्यकस्थले घटाभावादौ प्रतियोगितासम्बन्धेन वाच्यत्वप्रकारकं भ्रमरूपं
व्यतिरेकसहचारज्ञानं सुप्रसिद्धमेवेति भावः ।

(३) तथाच हेतुविषयतानिरूपिताधिकरणविषयतानिरूपितवृत्तित्ववि-
षयतानिरूपिताभावविषयतानिरूपितप्रतियोगित्वविषयतानिरूपि-
ताभावविषयतानिरूपितसाध्यविषयतानिरूपिताधिकरणविषयता-

व्यवृत्तत्वं तदेव केवलान्वयीति धर्मत्वस्यानैकान्तिक-
त्वात्, एवमत्यन्ताभावप्रतियोगित्वस्यात्यन्ताभावाप्रति-

तथाविधपरस्परपक्षेष्वावगाहिज्ञानं, तेन यत्राखण्डव्याप्तिरप्रसिद्धा
तत्र व्याप्तिः । एवमन्वयसहचारज्ञानजन्यव्याप्तिज्ञानजन्यानुमिति-
करणत्वं केवलव्यतिरेक्यनुमानत्वं, तादृशानुमितित्वञ्च केवलव्यतिरेक्य-
नुमितित्वं, अन्वयसहचारज्ञानजन्यव्याप्तिग्रह-व्यतिरेकसहचारज्ञान-
जन्यव्याप्तिग्रहोभयजन्यानुमितिकरणत्वं अन्वय-व्यतिरेक्यनुमानत्वं^(१),
तादृशानुमितित्वञ्च अन्वय-व्यतिरेक्यनुमितित्वं, शेषं पूर्ववदित्याहुः ।
तदसत् । व्यतिरेकसहचारज्ञानस्य व्याप्तिग्रहहेतुत्वे मानाभावात्^(२)

निरूपितवृत्तित्वविषयतानिरूपितहेतुविषयताशालिज्ञानमेव व्याप्ति-
ज्ञानपदेन विवक्षणीयं, तेन धूमवान् वज्जेरित्यादौ वज्जिसमानाधि-
करणाभावाप्रतियोगिधूमसामानाधिकरण्यरूपाखण्डव्याप्तेरप्रसिद्धत्वे-
ऽपि अन्वयसहचारज्ञानमात्रेण व्याप्तिज्ञानदशायां तत्साध्यकानुमा-
नस्य न केवलान्वय्यनुमानत्वव्याघात इति ध्येयम् ।

(१) यत्र व्याप्तिग्रहस्य द्विधा निवेशे प्रयोजनविरहात् अन्वय-व्यति-
रेकोभयसहचारज्ञानजन्यव्याप्तिज्ञानजन्यानुमितिकरणत्वं अन्वय-
व्यतिरेक्यनुमानत्वमित्येव वक्तव्यमिति ।

(२) न चाध्वार्थमते धर्मविशेषमन्तर्भाव्य व्यभिचारज्ञाने सहचारज्ञानस्य
विरोधित्वात् व्यभिचारज्ञानविघटकतया सहचारज्ञाने व्याप्तिग्रहहे-
तुत्वस्य युक्तिसङ्गततया कथं व्यतिरेकसहचारज्ञानस्य व्याप्तिग्रहहे-
तुत्वे मानाभाव इति वार्त्तम् । समानप्रकारकज्ञानस्यैव विरोधित्वात्
विरोध्यविषयकस्य सहचारज्ञानस्य व्यभिचारज्ञानविघटकत्वाभावा-
दिति निगूढाभिप्रायः ।

योगित्वे अत्यन्ताभावप्रतियोगित्वमेव केवलान्वयि,
अत्यन्ताभावप्रतियोगित्वे यन्निष्ठात्यन्ताभावप्रतियोग्य-
त्यन्ताभावप्रतियोगित्वं तदेव केवलान्वयि । न चात्य-
न्ताभावप्रतियोगित्वं व्यावृत्तत्वञ्च नानेति वाच्यम् ।

यत्र साध्याभाववदवृत्तित्वरूपव्याप्तिज्ञानादनुमितिस्तदनुमानस्य केव-
लान्वयि-केवलव्यतिरेक्युभयत्वापत्तेश्च साध्याभाववदवृत्तित्वरूपव्याप्ति-
ज्ञानं प्रति अन्वय-व्यतिरेकोभयसहचारज्ञानस्यैवाहेतुत्वात् ।

अन्ये तु वज्रादिसाध्यकमपि कदाचित् केवलान्वयिसाध्यकं यदा-
न्वयव्याप्तिज्ञानमात्रादनुमितिः, वाच्यत्वादिसाध्यकमपि कदाचित्
केवलव्यतिरेकि यदा व्यतिरेकव्याप्तिज्ञानमात्रादनुमितिः, कदाचि-
च्चान्वय-व्यतिरेकि यदान्वय-व्यतिरेकोभयव्याप्तिज्ञानादनुमितिः,
अन्वयव्याप्तिज्ञानवत् व्यतिरेकव्याप्तिज्ञानस्याप्यनुमितिहेतुत्वात् तथाच
व्यतिरेकव्याप्तिज्ञानाजन्यानुमितिकरणत्वं केवलान्वयिसाध्यकानुमा-
नत्वं, तादृशानुमितित्वञ्च केवलान्वयिसाध्यकानुमितित्वं, व्यतिरेक-
व्याप्तिज्ञानञ्च साध्य-तदभावादिरूपतद्घटकतावत्पदार्थानां तथा-
विधपरस्परपक्षेपावगाहिज्ञानं, तेन यत्राखण्डव्याप्तेरप्रसिद्धिस्तत्र
नाव्याप्तिः, न वा केवलान्वयिन्यप्रसिद्धिः खण्डशः प्रसिद्ध्या भ्रमरूपस्य
तादृशज्ञानस्य तत्रापि सम्भवात् एवमग्रेऽपि । अन्वयव्याप्तिज्ञानाजन्या-
नुमितिकरणत्वं केवलव्यतिरेक्यनुमानत्वं, तादृशानुमितित्वञ्च केवल-
व्यतिरेक्यनुमितित्वं, अन्वय-व्यतिरेकोभयव्याप्तिज्ञानजन्यानुमिति-

अनुगतप्रतीतिबलेन गोत्ववत्तयोः सिद्धेः । तत्र न तावद्व्याप्यवृत्त्यन्ताभावः केवलान्वयी, तस्य प्रति-

करणत्वं अन्य-व्यतिरेक्यनुमानत्वं, तादृशानुमितिलञ्चान्वयव्यतिरेक्यनुमितित्वमित्याहुः ।

अभिधेयत्वादौ केवलान्वयिलक्षणं सङ्गमयति, 'तथाहीति, 'अभिधेयत्वस्य' शब्दशक्तिविषयत्वस्य, 'न विपक्ष इति नात्यन्ताभावाधिकरणमित्यर्थः, 'अभिधान इति, अभिधेयत्वं यदधिकरणनिष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगितया अभिमतं तदधिकरणस्य 'अभिधाने' शब्दशक्तिविषयत्वे, 'विपक्षत्वव्याघातात्' अभिधेयत्वात्यन्ताभावाधिकरणत्वासिद्धेः, प्रतियोग्यभावयोरेकत्र सत्तासम्भवात्, 'अनभिधाने च' शब्दशक्त्यविषयत्वेऽपि, 'विपक्षत्वव्याघातात्' अभिधेयत्वात्यन्ताभावाधिकरणत्वासिद्धेः, वस्तुपदादेरप्यशक्यतया वस्तुपदादिज्ञानजन्यज्ञानस्याप्यविषयत्वेनालौकत्वादित्यर्थः । 'अनभिधेयमपि' आकाशपदाशक्यमपि^(१), 'उपतिष्ठते' शाब्दबोधविषयो भवति, 'अनभिधेयत्वेऽपि' वस्तुपदादिशक्त्यविषयत्वेऽपि, 'पदात्' वस्त्वादपदात्, 'उपस्थितिः

- (१) आकाशमस्तीत्यादौ कदाचित् अष्टम्यातिरिक्तद्रव्यमस्ति इत्याकारको बोधः, कदाचित्च शब्दाश्रयोऽस्तीत्याकारको बोधः, अतः न किञ्चिद्धर्मविशिष्टे आकाशपदस्य शक्तिः किन्तु आकाशपदात् आकाशस्य यदा यद्धर्मरूपेणोपस्थितिः तदा तद्धर्मैव शाब्दबोधः इत्यत्र तात्पर्यम् ।

योग्यवच्छिन्नेऽप्यत्यन्ताभावात् अत्यन्ताभावाप्रतियो-
गिनश्च केवलान्वयित्वात् । नाप्याश्रयनाशजन्यगुणना-

स्यादिति शब्दबोधः स्यादित्यर्थः, तथाच नालीकत्वमिति भावः ।
नन्वेतावता व्याघाते निरस्तेऽपि वस्तुपदाभिधेयत्वस्य^(१) विपक्षसत्त्वे
मानाभाव इत्यत आह, 'एवञ्चेति उक्तक्रमेण व्याघाते निरस्ते च
इत्यर्थः, अन्यथा व्याघातादेवानुमानं बाधितं स्यादिति भावः । 'कुत
इति किञ्चिन्निष्ठान्योन्याभावप्रतियोगितावच्छेदकमित्यर्थः, अवच्छेद-
कत्वञ्च लघु-गुरुसाधारणं तेन कम्बुग्रीवादिमत्त्वादौ गुरुधर्मं न व्यभि-
चारः^(२), तथाचाभिधेयत्वं यन्निष्ठान्योन्याभावप्रतियोगितावच्छेदकं
स एव विपक्ष इति भावः । 'धर्मत्वादिति आकाशादौ व्यभिचार-
वारणाय, तथाच यो यत्सम्बन्धेन वृत्तिमान् स तत्सम्बन्धावच्छिन्न-
प्रतियोगितावच्छेदकताकान्योन्याभावप्रतियोगितावच्छेदकत्ववान् इति
यत्तद्भ्यां व्याप्तिः, अत एव 'गोत्ववदिति न दृष्टान्तासङ्गतिः, न वा
सम्बन्धान्तरावच्छिन्नप्रतियोगितावच्छेदकताकान्योन्याभावप्रतियोगि-
तावच्छेदकतामादायार्थान्तरं, 'गोत्ववदिति व्यतिरेकेण वा दृष्टान्तः,

(१) अभिधेयत्वस्येति ग०, घ० ।

(२) गुरुधर्मस्य प्रतियोगितावच्छेदकत्वे किञ्चिन्निष्ठान्योन्याभावप्रति-
योगितावच्छेदकत्वाभाववति कम्बुग्रीवादिमत्त्वरूपगुरुधर्मं हेतोर्धर्म-
त्वस्य वर्तमानत्वेन व्यभिचारः स्यादतो गुरुधर्मस्यावच्छेदकत्वाङ्गी-
कारः, धर्मत्वञ्च वृत्तिमत्त्वं अतः किञ्चिन्निष्ठान्योन्याभावप्रतियोगि-
तावच्छेदकत्वाभाववति आकाशे न व्यभिचारः ।

शात्यन्ताभावः तस्य नाशस्य सर्वत्रात्यन्ताभावादिति वाच्यं । यत्र हि प्रतियोगिप्रागभावो वर्तते तत्र न

अन्यथा सिद्धसाधनवारणाय विशेषणताविशेषसम्बन्धावच्छिन्नव्यावृत्त-
त्वस्यैव साध्यतया तद्वैकल्यात् तेन सम्बन्धेन तत्र धर्मत्वरूपहेतौर्वि-
रहाच्चासङ्गतिः स्यादिति^(१) । 'व्यावृत्तत्वस्य' अन्योन्याभावप्रतियोगि-
तावच्छेदकत्वरूपसाध्यस्य, 'अव्यावृत्तत्वे' अन्योन्याभावप्रतियोगिताव-
च्छेदकत्वास्वीकारे, 'व्यावृत्तत्वमेव' अन्योन्याभावप्रतियोगितावच्छेद-
कत्वरूपं साध्यमेव, 'केवलान्वयीति, अन्योन्याभावप्रतियोगितावच्छेद-
कत्वरूपसाध्याभाववदित्यर्थः, 'व्यावृत्तत्व इति अन्योन्याभावप्रतियो-
गितावच्छेदकत्वरूपस्य साध्यस्यान्योन्याभावप्रतियोगितावच्छेदकत्वरूप-
व्यावृत्तत्वस्वीकार इत्यर्थः, 'यत एवेति यदधिकरणनिष्ठान्यो-
न्याभावप्रतियोगितावच्छेदकमन्योन्याभावप्रतियोगितावच्छेदकत्वमि-
त्यर्थः, 'तदेव' तदधिकरणमेव, 'केवलान्वयीति अन्योन्याभावप्रति-
योगितावच्छेदकत्वरूपसाध्याभाववदित्यर्थः, 'अनैकान्तिकत्वादिति
अन्योन्याभावप्रतियोगितावच्छेदकत्वरूपे साध्ये तादृशसाध्यवद्भिन्नत्वे-
नाभिमतं अधिकरणे वा अनैकान्तिकत्वादित्यर्थः । ननु अन्योन्या-
भावप्रतियोगितावच्छेदकत्वमाकाशाद्यवृत्तिनिष्ठान्योन्याभावप्रतियो-
गितावच्छेदकमतो न व्यभिचारः तत्र धर्मत्वाभावादित्यस्वरसात्
स्थलान्तरे व्यभिचारमाह, 'एवमिति, 'केवलान्वयीति अन्योन्याभाव-
प्रतियोगितावच्छेदकत्वरूपसाध्याभाववदित्यर्थः, अत्यन्ताभावप्रति-

(१) धर्मत्वादित्येत्यादिः स्यादित्यन्तः पाठः ग०, ड० पुस्तकद्वये नास्ति ।

तदत्यन्ताभावो वर्तते, तथाच नाशस्य प्रागभावो यच्च
नाशप्रतियोगिसमानदेशे वर्तते तच्च कथं नाशात्यन्ता-

योगिन एवान्योन्याभावप्रतियोगितावच्छेदकत्वनियमादिति भावः ।
तथाचात्यन्ताभावप्रतियोगित्वे एव धर्मत्वं व्यभिचारीति हृदयं ।
'अत्यन्ताभावप्रतियोगित्व इति अत्यन्ताभावप्रतियोगित्वस्यात्यन्ताभा-
वप्रतियोगित्वे इत्यर्थः, 'यन्निष्ठात्यन्ताभावप्रयोगीति प्रथमान्तं, अत्य-
न्ताभावप्रतियोगित्वं यदधिकरणनिष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगीति योज-
ना, 'तदेव केवलान्वयीति तदधिकरणमेवान्योन्याभावप्रतियोगिता-
वच्छेदकत्वरूपसाध्याभाववदित्यर्थः, अत्यन्ताभावप्रतियोगिन एवान्यो-
न्याभावप्रतियोगितावच्छेदकत्वनियमादिति भावः । तथाच तदधि-
करण एव धर्मत्वं साध्यव्यभिचारि अवृत्तावत्यन्ताभावप्रतियोगित्वा-
भावासम्भवेन तदधिकरणे वृत्तिमत्त्वरूपधर्मत्वस्यावश्याभ्युपेयत्वादिति
हृदयं । 'न चेति, 'व्यावृत्तत्वं' अन्योन्याभावप्रतियोगितावच्छेदकत्वं,
'नानेति व्यक्तिभेदान्नानेत्यर्थः, तथाच चालनीन्यायेन निर्घटादि-
निष्ठान्योन्याभावप्रतियोगितावच्छेदकीभूतघटादिनिष्ठान्योन्याभावप्र-
तियोगितावच्छेदकत्वमेव तयोरिति न कापि व्यभिचार इति भावः ।
'तयोरिति, अनुगतयोरिति शेषः । न च तयोर्व्यक्तिभेदादननुगतत्वे-
ऽप्यत्यन्ताभावप्रतियोगितात्वादिरूपविशेषणतावच्छेदकानुगमादनुग-
तप्रत्यय इति वाच्यम् । तावता स्फुटव्यभिचारविरहेऽप्यप्रयोजकत्वा-
दिति भावः । लक्षणस्याव्याप्तिनाशङ्कते, 'तच्चेति केवलान्वयिषु
मध्य इत्यर्थः

भावो वर्त्ततां। तर्हि नाशस्य तत्र वृत्तिः स्यादिति चेत् ।
न । पूर्वं तत्र नाशप्रागभावस्यैव सत्त्वादुत्तरकाले

केचित्तु 'तत्र' तस्मिन् लक्षणे सतीत्यर्थः, इत्याहुः । तदसत् ।
अत्यन्ताभावाप्रतियोगिन एव केवलान्वयित्वादित्युत्तरग्रन्थस्य पुनरुक्त-
त्वापत्तेः ।

‘अव्याप्यवृत्त्यत्यन्ताभावः’ अव्याप्यवृत्तिसंयोगादेरत्यन्ताभावः,
‘केवलान्वयी’ संयोगाभावत्वादिरूपेण केवलान्वयी, स्यादिति शेषः,
‘प्रतियोग्यवच्छिन्ने’ प्रतियोग्यधिकरणे, ‘अत्यन्ताभावाप्रतियोगिन-
इति, भवन्मत इत्यादिः, भवन्मते अत्यन्ताभावप्रतियोगितानवच्छेदक-
तद्धर्मवत् एव तद्धर्मरूपेण केवलान्वयित्वादित्यर्थः । अव्याप्यन्तरमा-
शङ्कते, ‘नापीति ‘वाच्यमित्यनेनान्वयः, ‘आश्रयनाशजन्येति आश्रय-
नाशजन्यो यो गुणादिनाशस्तदत्यन्ताभाव इत्यर्थः, केवलान्वयीति
शेषः, ‘सर्वत्रेति, नाशस्य प्रतियोगिसमवाच्यादिदेशमात्रवृत्तित्वनिय-
मात् तत्र च प्रतियोगिसमवाचिदेशस्थाभावादिति भावः । ‘इति
वाच्यमिति इति भवता वक्तुं शक्यमित्यर्थः । न चेह भूतले घटरूपं
नष्टं तदानीं घटरूपं नष्टमित्यादिप्रतीतिबलात् प्रतियोगिसमवाचि-
देशवत् भूतलादिदेशे समये च ध्वंसस्य वर्त्तमानत्वात् कथमाश्रय-
नाशजन्यगुणादिनाशात्यन्ताभावस्य सर्वत्र वर्त्तमानत्वमिति वाच्यम् ।
इह घटे रूपं नष्टं इत्यादिप्रतीतिसाक्षिकप्रतियोगिसमवाचिदेश-
मात्रवृत्तिदेशिकविशेषणताविशेषेण तदत्यन्ताभावस्योक्तत्वात् स च
तेन सम्बन्धेन भूतलादिदेशे समये च न वर्त्तते ध्वंसस्यावच्छेदकता-

आश्रयस्यैवाभावात् । नाप्याकाशान्ताभावः केवलान्वयी, तस्यापि प्रतियोगिरूपात्यन्ताभावप्रतियोगि-

सम्बन्धेनैव भूतलादिदेशवृत्तेः कालिकतयैव च समये वृत्तेरिति भावः । 'प्रतियोगिप्रागभाव इति तत्प्रतियोगिप्रागभाव इत्यर्थः । शङ्कते, 'तर्हीति, 'नाशस्य' आश्रयनाशजन्यगुणादिनाशस्य, 'तत्र' प्रतियोगिसमवाचिदेशे, 'पूर्वमिति प्रतियोगिसमवाचिदेशसत्त्वदशायामित्यर्थः, इदमापाततः प्रागभावस्यात्यन्ताभावविरोधित्वे मानाभावात् तादृशगुणादिनाशोत्पत्तिपूर्वमेव तदत्यन्ताभावस्य प्रतियोगिसमवाचिदेशे सत्त्वात्, परमार्थतस्तु तदत्यन्ताभावस्य सर्वत्र वर्त्तमानत्वेऽपि आकाशात्यन्ताभाववत्प्रतियोगिरूपात्यन्ताभावप्रतियोगित्वान्न केवलान्वयित्वसम्भव इत्येव तत्त्वं । 'प्रतियोगिरूपेति आकाशरूपेत्यर्थः^(१) । नन्वाकाशस्याकाशात्यन्ताभावाभावत्वे मानाभावः प्रमेयत्वं नास्तीति प्रतीतिवदाकाशात्यन्ताभावो नास्तीति प्रतीतेरसिद्धत्वात् आकाशात्यन्ताभावाभावस्यैवासिद्धेः । न चैवं घटादेरपि घटात्यन्ताभावाभावत्वे मानाभाव इति वाच्यम् । घटवति भूतले घटात्यन्ताभावो नास्तीति प्रतीतिबलाद्घटात्यन्ताभावाभावे प्रमाणसिद्धे तत्र लाघवाद्घटस्यैव तथात्वकल्पनात् । न च भूतलादावाकाशाधिकरणत्वं भ्राम्यतोभूतलादावाकाशात्यन्ताभावो नास्तीति प्रतीतेराकाशात्यन्ताभावाभावोऽपि प्रामाणिक इति वाच्यम् । तत्प्रतीतेरभावान्तरे प्रतियोगितासम्बन्धेन आकाशात्यन्ताभावावगाहित्वात् अन्यथा प्रमेयत्वे

(१) 'प्रतियोगिरूपाभावेति आकाशरूपाभावेत्यर्थ इति क० ।

त्वात् अभावात्यन्ताभावस्य भावत्वात् । अथाभावात्यन्ताभावो न प्रतियोगिरूपस्तथासत्यन्योन्याभावात्य-

घटावृत्तित्वं भ्राम्यतो घटे प्रमेयत्वं नास्तीति प्रतीतेः प्रमेयत्वात्यन्ताभावस्यापि सिद्ध्यापत्तेरित्यत आह, 'अभावाभावस्येति सावधारणं तदभावाभावस्यैवेत्यर्थः, 'भावत्वात्' तस्याभावस्य प्रतियोगित्वात्, तथाचाकाशस्याकाशाभावाभावत्वविरहे तत्प्रतियोगित्वमेवानुपपन्नं अभावविरहात्मत्वस्य प्रतियोगितारूपत्वात्, यदाह्वराचार्याः "अभावविरहात्मत्वं वस्तुनः प्रतियोगिता" इति भावः । एतच्च प्राचीनमतानुसारेणोक्तं, वस्तुतस्तु स्वरूपसम्बन्धविशेषस्यैव प्रतियोगितारूपतया आकाशस्याकाशाभावाभावत्वाभावेऽपि प्रतियोगित्वसम्भवात् आकाशाभावो नास्तीति प्रतीतेः सिद्धत्वादाकाशाभावस्याभावे आकाशस्य तद्रूपत्वे च मानाभावः । एवं कालाद्यभावाभावोऽपि न कालादिः, संयोगादिव्यधिकरणसम्बन्धावच्छिन्नद्रव्यत्वाभावाद्यभावोऽपि न द्रव्यत्वादिः तदभावाभावस्यासिद्धेः इति मन्तव्यं । 'न प्रतियोगिरूप इति किन्त्वतिरिक्त इत्यर्थः, तथाच अभावाभावत्वं न प्रतियोगित्वमिति भावः । ननु लाघवाद्भावाभावः प्रतियोग्येव न त्वतिरिक्त इत्यत आह, 'तथासतीति, 'प्रतियोगिसमानदेश इति संयोगादिसम्बन्धेन घटादिसति देशे घटाद्यन्योन्याभावो न स्यादित्यर्थः, स्वात्यन्ताभावेन खलं स्वस्य विरोधादिति भावः । एतच्चापाततः, यथा घटात्यन्ताभावाभावस्यातिरिक्तत्वेऽपि कालिकविशेषणताद्विना तद्वति भूतलादौ घटाद्यभावोवर्तते अभावीयविशेषणता-

न्ताभावः प्रतियोगिरूप इति प्रतियोगिसमानदेशो-
ऽन्योन्याभावो न स्यादिति चेत् । न । अत्यन्ताभावा-

विशेषेणैव तयोर्विरोधात् तथा घटाद्यन्योन्याभावाभावस्य घटादि-
रूपत्वेऽपि संयोगादिना घटादिमति घटाद्यन्योन्याभावो वर्तते
तदात्म्य-विशेषणताभ्यामेव तयोर्विरोधात् इति सुवचत्वात् । न च
तथापि घटान्योन्याभावाभावस्य घटरूपत्वे घटे घटान्योन्याभावो
नास्तीति प्रतीतिर्न स्यात् तादात्म्यसम्बन्धस्य वृत्त्यनियामकत्वात्
अन्यथा^(१) घटे घट इत्यपि प्रतीत्यापत्तेरिति वाच्यम् । तादात्म्य-
सम्बन्धस्य घटत्वावच्छिन्नवृत्त्यनियामकत्वेऽपि प्रतीतिवत्त्वात्^(२) अन्यो-
न्याभावात्यन्ताभावत्वावच्छिन्नवृत्तिनियामकत्वस्य सुवचत्वात् । वस्तुतस्तु
यत्र प्रतियोगिनो नानात्वं प्रतियोगितावच्छेदकधर्मस्यैकस्तत्र प्रति-
योगिनां नान्योन्याभावाभावत्वसम्भवो गौरवात् किन्तु प्रतियोगिता-
वच्छेदकरूप एव तदभावः । न चैवं यत्र प्रतियोगिनो नानात्वं
प्रतियोगितावच्छेदकस्यैकस्तत्रात्यन्ताभावाभावस्यापि प्रतियोगिरूपत्वं
न स्यात् लाघवात् स्वाश्रयात्मकपरम्परासम्बन्धेन प्रतियोगिताव-
च्छेदकस्यैव तथात्वौचित्यादिति वाच्यम् । स्वाश्रयात्मकपरम्परासम्ब-
न्धेन घटत्वादेरेव घटात्यन्ताभावाद्यभावरूपत्वे घटशून्यदेशे घटा-

(१) तादात्म्यस्य वृत्तिनियामकत्व इत्यर्थः ।

(२) घटे घटान्योन्याभावो नास्तीति प्रतीतिसामर्थ्यात् तादात्म्यसम्बन्धस्य
घटान्योन्याभावात्यन्ताभावत्वावच्छिन्नवृत्तिनियामकत्वं न तु घटत्वा-
वच्छिन्नवृत्तिनियामकत्वं घटे घट इति प्रतीतेरसिद्धेरिति ।

त्यन्ताभावः प्रतियोग्येव अन्योन्याभावात्यन्ताभावस्तु
प्रतियोगिवृत्तिरसाधारणो धर्म इति ।

इति श्रीमद्भङ्गेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ
अनुमानाख्यद्वितीयखण्डे केवलान्वय्यनुमानपूर्वपक्षः ।

त्यन्ताभावात्यन्ताभावो नास्तीति प्रतीत्यनुपपत्तेः^(१) तादात्म्याति-
रिक्तवृत्त्यनियामकसम्बन्धस्याभावप्रतियोगितानवच्छेदकत्वात्, किञ्च
तादात्म्यसम्बन्धस्यान्योन्याभावाभावत्वावच्छिन्नघटनिष्ठघटवृत्तित्वनि-
यामकत्वे तादृशवृत्तितामादायैव तादात्म्यसम्बन्धेन घटो घटवृत्ति-
रिति घटत्वधर्मितावच्छेदकघटविशेष्यकप्रतीतेः घटे घटवृत्तित्वा-
शस्य प्रमात्वापत्तेर्दुर्वारत्वात्, अतएवाधिकरणस्वरूपाभाववादिमतम-
प्यपास्तं इत्येव तत्त्वं । 'अत्यन्ताभावात्यन्ताभाव इति तथाचात्यन्ताभा-
वस्य प्रतियोगित्वमभावाभावत्वमिति भावः । 'प्रतियोगिवृत्तिरसाधा-
रण इति प्रतियोगितावच्छेदकधर्म इत्यर्थः, इति साम्प्रदायिकाः ।

नव्यास्तु प्रतियोगिवृत्त्यसाधारणधर्ममात्रमेवान्योन्याभावात्यन्ता-
भावः न तु नियमतः प्रतियोगितावच्छेदकमेव । न चैवं कम्बुग्री-
वादिमत्त्वादीनां घटादिवृत्तिरूपादीनाञ्च अन्योन्याभावाभावत्वात्
घटान्योन्याभावग्रहे तेषामपि ग्रहे न स्यादिति वाच्यम् । घटा-

(१) तथाच घटात्यन्ताभावाभावस्य स्वाश्रयात्मकपरम्परासम्बन्धेन घटत्व-
स्वरूपस्य तादृशपरम्परासम्बन्धेनाभाव एव घटात्यन्ताभावाभावभावः
स चाप्रसिद्धः तादृशपरम्परारूपवृत्त्यनियामकसम्बन्धावच्छिन्नप्रति-
योगित्वे मानाभावादिति भावः ।

न्योन्याभावग्रहस्य घटान्योन्याभावात्यन्ताभावत्वप्रकारेण ग्रहे घट-
त्वग्रहे च प्रतिबन्धकतया कम्बुग्रीवादिमानित्यादिग्रहे बाधका-
भावात् । न च घटत्ववत्ताज्ञानवत् कम्बुग्रीवादिमत्त्वादिग्रहस्यापि
घटभेदग्रहप्रतिबन्धकत्वापत्तिः तस्य घटभेदाभावरूपत्वादिति वा-
च्यम् । तदभावत्वप्रकारकज्ञानस्यैव तद्वत्ताज्ञानं प्रति प्रतिबन्धक-
त्वात् अन्यथातिप्रसङ्गात्^(१) घटत्वादिज्ञानस्य तु स्वातन्त्र्येणैव प्रति-
बन्धकत्वात् । न च तथापि कम्बुग्रीवादिमत्त्वग्रहस्य तदभावत्वग्रहे
प्रतिबन्धकत्वात् घटत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदस्य च तथात्वात्
तत्सत्त्वे कथं ग्रह इति वाच्यम् । तस्य तदभावत्वप्रकारकग्रहं प्रत्येव प्रति-
बन्धकत्वात् अयन्तु घटभेदत्वप्रकारक इति । न च स्वरूपतो यद्वत्ता-
ज्ञानं यदभाववत्ताज्ञानप्रतिबन्धकं तदेवाभावाभावः, कम्बुग्रीवादिम-
त्त्वादिकञ्च न तथेति वाच्यम् । अप्रयोजकत्वात् । न च कम्बुग्रीवादि-
मत्त्वादीनां प्रतियुक्तिभिन्नानां अनन्तरूपादीनाञ्चान्योन्याभावाभाव-
त्वकल्पनमपेक्ष्य लाघवात् प्रतियोगितावच्छेदकस्य घटत्वस्यैव तथात्वं
कल्प्यते इति वाच्यम् । तथापि कम्बुग्रीवादिमत्त्वाद्यवच्छिन्नान्योन्या-
भावाभावत्वस्य घटत्वादौ दुर्वारत्वात् प्रतियोगितावच्छेदकापेक्षया
घटत्वस्य लघुत्वात् । न च कम्बुग्रीवाद्यवच्छिन्नान्योन्याभाव एवा-
प्रसिद्ध इति वाच्यम् । तदनङ्गीकारेऽपि तदेकत्वाद्यवच्छिन्नान्योन्या-

(१) तद्वत्ताग्रहे तदभावत्वेन तदभावग्रहस्यैव प्रतिबन्धकत्वं इति नियमा-
भावे प्रमेयत्वेन तदभावग्रहोऽपि तद्वत्ताग्रहे प्रतिबन्धकः स्यात् इत्ये-
वातिप्रसङ्ग इति ।

भावाभावत्वस्य तत्समनियतपरिमाणव्यक्तीनां दुर्वारत्वात् । न च
 प्रतियोगितावच्छेदकं विना धर्मान्तरस्य ग्रहे अन्योन्याभावाभाव-
 व्यवहाराभावान्न तस्य तदभावत्वमिति वाच्यम् । धर्मान्तरस्यान्यो-
 न्याभावाभावत्वेन ग्रहदशायां तदग्रहेऽप्यन्योन्याभावाभावव्यवहारात्
 प्रतियोगितावच्छेदकस्यान्योन्याभावाभावत्वमविदुषः प्रतियोगिता-
 वच्छेदकवत्त्वग्रहेऽप्यन्योन्याभावाभावव्यवहाराभावात् तस्माच्च प्रति-
 योगितावच्छेदकधर्मलघुः स एव तत्रान्योन्याभावाभावः, चत्र प्रति-
 योगितावच्छेदकापेक्षया धर्मान्तरं लघु तत्र तदेव तदभावाभावः,
 अत्र च प्रतियोगितावच्छेदकधर्मधर्मान्तरञ्च लघु तत्र उभयमेव
 तथेति विषयविभागः, सूत्रे 'प्रतियोगिवृत्तिरसाधारणधर्म इत्यस्य
 प्रतियोगिवृत्तिलघुधर्म इत्यर्थ इति प्राज्ञः ।

मिश्रास्तु स्वप्रतियोगिनिरूपितस्वप्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्ध एव
 सर्वत्राभावाभावः, स चान्योन्याभावस्य तादात्म्यं अत्यन्ताभावस्य
 संयोगादिः, यत्किञ्चित्संयोगवति संयोगसम्बन्धसामान्यावच्छिन्न-
 घटाभावाभावप्रत्ययपत्तिवारणाय स्वप्रतियोगिनिरूपितत्वं सम्बन्ध-
 विशेषणं, प्रतियोगितावच्छेदकतानियामकसम्बन्धेन च तस्याभाव-
 विरोधितया न सम्बन्धान्तरेण प्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धवति
 अभावविलयप्रसङ्गः, अन्यथात्यन्ताभावाभावस्य प्रतियोगिरूपत्वेऽन्यो-
 न्याभावाभावस्य च प्रतियोगिवृत्त्यसाधारणधर्मरूपत्वेऽनुगतानतिप्रस-
 क्तात्त्वसम्भवात् अभावाभावत्वप्रकारकग्रहदशायां केवलप्रतियोगिता-
 वच्छेदकसम्बन्धज्ञानेऽप्यभावाभावव्यवहारात् तदग्रहदशायां तत्र
 प्रतियोग्यादिग्रहेऽप्यभावाभावव्यवहारविरहात्, स्वरूपेण यदन्ता-

ज्ञानमभावज्ञानप्रतिबन्धकं तदेवाभावाभाव इति नियमे च माना-
भावात् । न चैवं संयोगादिव्यधिकरणसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताक-
द्रव्यत्वाभावादीनां स्वप्रतियोगिनिरूपितस्वप्रतियोगितावच्छेदकसम्ब-
न्धाप्रसिद्ध्या तदभावविलयप्रसङ्गइति वाच्यम् । तादृशद्रव्यत्वाभावा-
दीनामभाव एव मानाभावात्, यस्य हि अभावाभावः प्रामाणिकस्त-
दीयाभावस्यैव प्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धरूपत्वकल्पनादित्याहुः ।
तदसत् । स्वत्वघटितत्वेनार्थानुगमस्यासम्भवात् शब्दानुगमस्याकिञ्चि-
त्करत्वात् । किञ्चाभावाभावस्य स्वप्रतियोगिनिरूपितस्वप्रतियोगिता-
वच्छेदकसम्बन्धरूपत्वे समवायसम्बन्धावच्छिन्नरूपाभावाभावस्य रूप-
निरूपितसमवायरूपतया समवायावच्छिन्नरूपात्यन्ताभावाभाववान्
वायुरित्यपि प्रत्ययः स्यात् रूपनिरूपितसमवायस्य समवायानति-
रिक्ततया वाख्यादावपि तत्सत्त्वात्, एवं संयोगसम्बन्धावच्छिन्नघटा-
द्यभावाभावस्य घटसंयोगादिरूपतया तादृशघटाभावाभाववान् घट-
इत्यपि प्रत्ययः स्यात् स्वसंयोगस्य स्वस्मिन्नपि सत्त्वात् । न च
स्वप्रतियोगिनिरूपितत्वविशिष्टस्वप्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धोऽभावा-
भाव इति वाच्यम् । विशिष्टस्थानतिरिक्ततया तद्दोषतादवस्थात् ।
न च यथा रूपनिरूपितसमवायस्य समवायानतिरिक्तत्वेऽपि रूप-
निरूपितत्वविशिष्टसमवायत्वावच्छिन्नतदाधारत्वस्य वाख्यादावभावा-
द्रूपनिरूपितसमवायवान् वायुरिति न प्रत्ययः यथा वा विशिष्ट-
सत्त्वाभावाभावस्य विशिष्टसत्त्वस्य सत्त्वानतिरिक्तत्वेऽपि विशिष्टसत्त्वा-
भावाभावत्वावच्छिन्नतदाधारत्वस्य गुणादावभावात् विशिष्टसत्त्वा-
भावाभाववान् गुण इति न प्रत्ययः तथा समवायसम्बन्धावच्छिन्न-

रूपाभावाभावत्वावच्छिन्नरूपसमवायाद्याधारत्वस्य वाय्वादावभावा-
 न्नोक्तप्रत्यय इति वाच्यम् । तथा सति सर्वेषामेवाभावानामभावस्य
 गगनाभावस्वरूपत्वसम्भवेनाननुगतप्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धरूपता-
 भ्युपगमस्यान्याय्यत्वात् । अथ समवायावच्छिन्नरूपाद्यभावाभावस्य
 गगनाभावरूपत्वे तादृशरूपाभावाभावोविशेषणताविशेषेण वायुवृ-
 त्तिरित्यपि प्रत्ययः स्यात् न स्याच्च तादृशरूपाभावाभावो न विशे-
 षणताविशेषेण वायुवृत्तिरिति प्रत्ययः गुणाद्यन्यत्वविशिष्टसत्ताया-
 गुणादिवृत्तित्ववत् विशिष्टस्थानतिरिक्ततया तादृशरूपाभावाभावत्व-
 विशिष्टस्यापि वाय्वादौ वृत्तेः, एवं संयोगादिसम्बन्धावच्छिन्नघटाभा-
 वाद्यभावस्यापि गगनाभावस्वरूपत्वे तादृशघटाभावाभावो घटवृत्ति-
 रित्यपि प्रत्ययः स्यात् न स्याच्च तादृशघटाभावाभावो न घटवृत्ति-
 रिति प्रत्यय इति चेत्, तुल्यमिदमापत्तिदानं,^(१) प्रतियोगिनिरूपि-
 तप्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धरूपत्वेऽपि विशिष्टस्थानतिरिक्ततया सम-
 वायसम्बन्धावच्छिन्नरूपाभावाभावत्व-संयोगसम्बन्धावच्छिन्नघटाभावा-
 भावत्वविशिष्टस्य रूपसमवाय-घटसंयोगादेर्वायु-घटादावपि वृत्तेः ।
 न च तवापि विशिष्टसत्ताभावाभावस्य विशिष्टसत्तारूपत्वे विशिष्टस-
 त्ताभावाभावो गुणवृत्तिरिति प्रत्ययः स्यात् न स्याच्च विशिष्टसत्ताभा-
 वाभावो न गुणवृत्तिरिति प्रत्ययः विशिष्टस्थानतिरिक्तत्वादिति
 वाच्यम् । दृष्टत्वात् । सर्वेषामेव विशिष्टाभावानां अभावस्य गगनाभा-
 वरूपत्वे विशिष्टसत्ताभावाभावोजात्यादिवृत्तिरित्यादिप्रत्ययापत्तेः

स्वीकरणीयं वा तादृशप्रतीत्यापत्तिवारणाय^(१) अवच्छेदकतासम्बन्धेन गुणाद्यन्यत्व-सत्तयोः सामानाधिकरण्यस्य समवायसम्बन्धेन द्रव्य-त्वस्यैव वा विशिष्टसत्ताभावाभावत्वं न तु विशिष्टसत्त्वस्येति न किञ्चिदेतत् ।

इति श्रीमधुरानाथ-तर्कवागीशविरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये अनुमानाख्यद्वितीयखण्डरहस्ये केवलान्वय्यनुमानपूर्वपक्षरहस्यं ।

अथ केवलान्वय्यनुमानसिद्धान्तः ।



उच्यते । वृत्तिमदत्यन्ताभावाप्रतियोगित्वं केवलान्वयित्वं, आकाशात्यन्ताभावो यद्यपि प्रतियोगिरूपात्यन्ताभावप्रतियोगी तथापि स न वृत्तिमानित्याकाशात्यन्ताभाव एव केवलान्वयी, तथा प्रमेयत्वाभिधेयत्वादि

अथ केवलान्वय्यनुमानसिद्धान्तरहस्यं ।

‘वृत्तिमदिति वृत्तिमान् योऽत्यन्ताभावस्तदप्रतियोगित्वमित्यर्थः, आकाशात्यन्ताभावेऽव्याप्तिमुद्धरति, ‘आकाशात्यन्ताभाव-एवेति आकाशात्यन्ताभावोऽपीत्यर्थः, आकाशात्यन्ताभावः केवलान्वयेवेति व्युत्क्रमेण वा अन्वयः । प्रमेयत्वादौ लक्षणं सङ्गमयति ‘तथेत्यादिना । नन्विदानीं आकाशमिह दिग्शाकाशमिति प्रतीतिवलादाकाशस्यापि काल-दिङ्गिरूपितविशेषणतया वृत्तिमत्त्वात् आकाशात्यन्ताभावे तथाप्यव्याप्तिः । न च वृत्तिः संयोगः समवायोवा विवक्षित इति वाच्यम् । घटादेरपि केवलान्वयित्वापत्तेः । न च काल-दिङ्गिरूपितविशेषणतातिरिक्तसम्बन्धेन वृत्तिमत्त्वं विवक्षितमिति वाच्यम् । तथापि संयोगादिव्यधिकरणसम्बन्धावच्छिन्नद्रव्यत्वात्यन्ताभावादावव्याप्तेस्तस्य प्रतियोगिरूपतादृशवृत्तिम-

केवलान्वयि वृत्तिमतोऽत्यन्ताभावस्याप्रतियोगित्वात् ।
न च प्रमेयत्वं प्रमाविषयत्वं तच्च न केवलान्वयि प्रमा-
याविषयत्वस्य चाननुगमादिति वाच्यं । प्रमात्वमेव हि
परम्परासम्बन्धात् घटादौ प्रमेयत्वमनुगतं प्रमाजाती-

दत्यन्ताभावप्रतियोगित्वात् अव्याप्यवृत्त्यत्यन्ताभावेऽव्याप्तेश्च । न च
वृत्तिमत्पदेन निरवच्छिन्नवृत्तिमत्त्वं विवक्षितमतोनाव्याप्यवृत्त्यत्य-
न्ताभावेऽव्याप्तिः न वाकाशाभावादौ संयोगादिव्यधिकरणसम्बन्धाव-
च्छिन्नद्रव्यत्वात्यन्ताभावादौ चाव्याप्तिः उक्तयुक्त्या तदत्यन्ताभावस्यैवा-
सिद्धेरिति वाच्यम् । तथापि कालिकसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताके
गोत्वादेः कालिकाव्याप्यवृत्तेरभावेऽव्याप्तेः गोत्वादेः समवायसम्बन्धे-
नानवच्छिन्नवृत्तिमत्त्वादिति चेत् । न । प्रतियोग्यनधिकरणे वृत्ति-
मत्त्वस्य वृत्तिमत्पदेन विवक्षितत्वात् आकाशात्यन्ताभावाभावादेः
प्रतियोग्यनधिकरणस्यैवाप्रसिद्धत्वान्नाव्याप्तिः । न चैवं समवायसम्बन्धे-
नापि ज्ञानादेः कालिकसम्बन्धेनापि गगनाभावादेश्च केवलान्वयि-
त्वापत्तिः समवायसम्बन्धावच्छिन्नज्ञानाद्यभावस्य कालिकसम्बन्धाव-
च्छिन्नगगनाभावाभावस्य च प्रतियोग्यनधिकरणाप्रसिद्धेः^(१) इति
वाच्यम् । यत्सम्बन्धेन प्रतियोग्यनधिकरणे वृत्तिमतोऽभावस्याप्रति-
योगित्वं तेन सम्बन्धेन केवलान्वयित्वमिति विवक्षितत्वात् । न च
तथापि तादात्म्यसम्बन्धेन प्रमेयादेः केवलान्वयित्वानुपपत्तिः

(१) तथाच विषयतासम्बन्धेन ज्ञानस्य विशेषणताविशेषेण गगनाभावस्य
च सर्वत्र सत्त्वमिति भावः ।

यविषयत्वं वा । तथापि केवलान्वयिनि सन्देहाभावात्
कथमनुमितिः, प्रमेयत्वमत्र वर्तते न वेति संशयश्च
न प्रमेयपक्षकः किन्तु प्रमेयत्वपक्षको भिन्नविष-

चालनीन्यायेन सर्वस्यैव प्रमेयस्य तादात्म्यसम्बन्धेन प्रतियोग्यनधि-
करणे वर्तमानस्याभावस्य प्रतियोगित्वादिति वाच्यम् । तादृशा-
भावस्य प्रतियोगितानवच्छेदको यो धर्मस्तद्वत्त्वं तेन रूपेण तत्सम्बन्धेन
केवलान्वयित्वमिति विवक्षणात्, इत्यञ्च प्रतियोग्यनधिकरणत्वं प्रति-
योगितावच्छेकावच्छिन्नानधिकरणत्वमेव वक्तव्यं न तु प्रतियोग्य-
नधिकरणत्वमात्रं तथा सति द्रव्यभेद-गुणभेदयोरन्यतरत्वरूपेण
केवलान्वयित्ववदुभयत्वरूपेणापि केवलान्वयित्वापत्तेः । नचैवं विरुद्ध-
योरपि द्वित्वेन केवलान्वयित्वापत्तिः तदवच्छिन्नाधिकरणाप्रसिद्ध्या
तदवच्छिन्नाभावस्य प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नानधिकरणवृत्ति-
मत्त्वस्यासम्भवात् समवायादिना प्रमेयत्वादेर्गगनादेश्च केवलान्वयि-
त्वापत्तिः समवायावच्छिन्नप्रमेयत्वाभावादेस्तादृशगगनाभावादेश्च
समवायसम्बन्धेन प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नानधिकरणाप्रसिद्धे-
रिति वाच्यम् । तत्सम्बन्धेन तद्वर्मावच्छिन्नवति येन केनचित्सम्बन्धेन
सम्बन्धित्वे सतीत्यनेनापि विशेषणात्, इत्यञ्च समवायादिसम्बन्धेन विरु-
द्धघटत्व-पटलोभयत्वावच्छिन्नवतस्तत्सम्बन्धेन प्रमेयत्वत्व-गगनत्वावच्छि-
न्नवतश्चाप्रसिद्धत्वान्नातिशयिभिः विशेषणताविशेषेण वर्तमानस्य घटत्व-
पटत्वाद्यभावस्येव विशेषणताविशेषेणावर्तमानस्यापि गगनादेः विशेष-
णताविशेषसम्बन्धेन प्रमेयत्वादिरूपेण केवलान्वयित्वमिष्टमेव, तदनभ्यु-

यकः, प्रमेयत्वपक्षके चास्तित्वसाध्यस्यान्वय-व्यतिरेकित्वं
तथाच घटः प्रमेयो न वेति संशयो मृग्यते स च
नास्त्येव । अथ पक्षः साध्यवान्न वा पक्षे साध्यमस्ति
न वेति संशयौ समानविषयकावेव तदस्यास्त्यस्मिन्निति

पगमे तु येन केनचित्सम्बन्धेन इत्यपह्नाय तत्सम्बन्धेनेति वक्तव्यं^(१) ।
नचैवमपि आश्रयनाशजन्यगुणादिनाशात्यन्ताभावेऽव्याप्तिस्तदवस्थै-
वेति वाच्यं । प्रागभावस्यात्यन्ताभावविरोधित्वे मानाभावात् प्रति-
योगिसमवायिदेशेऽपि तादृशनाशात्यन्ताभावोवर्त्तत एवेत्यभिप्राया-
दिति न कोपि दोषः ।

सोन्दड़ोपाध्यायास्तु^(२) अन्योन्याभावप्रतियोगितानवच्छेदकधर्म-
वत्त्वं केवलान्वयित्वं अन्योन्याभावोव्याप्यवृत्तिरेवेति नाव्याप्यवृत्त्यत्यन्ता-
भावेऽव्याप्तिः धर्मलोपादानान्नाकाशेऽतिव्याप्तिरित्याहुः । तदसत् ।
विषयतया ज्ञानस्य केवलान्वयित्वानुपपत्तेः समवायेनान्योन्याभावस्य
प्रतियोगितावच्छेदकत्वात् केवलान्वयितावच्छेदकसम्बन्धेन अन्योन्या-
भावप्रतियोगितानवच्छेदकलोक्तावपि तादात्म्येन मेयसामान्यस्य केव-
लान्वयित्वानुपपत्तिः चालनीन्यायेन सर्वेषामेव मेयानां अन्योन्या-
भावप्रतियोगितावच्छेदकत्वादित्यास्तां विस्तरः ।

यथाश्रुताभिप्रायेणाशङ्कते, 'न चेति, 'प्रमाया इति दृष्टा-

(१) मन्तव्यमिति क० ।

(२) उपाध्यायास्त्विति ख० ग० घ० ङ० ।

मतुपोविधानादिति चेत् । न । विशेषण-विशेष्यभाव-
भेदेनार्थभेदात् । मैवं । य एव हि संशयः पक्षे साध्य-
सिद्धिविरोधी स एवानुमानाङ्गमावश्यकत्वात् लाघ-

न्तार्थं, प्रमाव्यक्तयो यथा पुरुषभेदेन विभिन्नास्तथा विषयस्वरूपस्य
तद्विषयत्वस्यापि विषयभेदेन विभिन्नत्वादित्यर्थः, तथाच चालनी-
न्यायेन सर्वासामेव प्रमाविषयत्वव्यक्तीनां तादृगात्यन्ताभावप्रतित्वात् न
केवलान्वयित्वसम्भव इति भावः । 'प्रमात्वमेवेति, 'परम्परासम्बन्धात्'
स्वाश्रयविषयत्वरूपसम्बन्धात्^(१) । न च प्रमात्वमपि विषय-प्रकारभेदेन^(२)
अननुगतमिति वाच्यम्^(३) । प्रकृते प्रमात्वपदेनानुभवत्वस्य विवक्षितत्वा-
दिति भावः । ननु प्रमेयत्वस्य परम्परासम्बन्धेन प्रमात्वरूपत्वे प्रमेत्येव धीः
स्यान्न तु प्रमेयमिति सम्बन्धस्य प्रकारत्वासम्भवादित्यत आह, 'प्रमा-
जातीयेति प्रमात्वाश्रयविषयत्वमेवेत्यर्थः । न चैवं उक्तदोषतादवस्थ्यं,
लक्षणस्यानवच्छेदकघटनाया आवश्यकत्वेन प्रमाविषयत्वस्याननुगत-
त्वेऽपि प्रमाविषयत्वत्वधर्मस्यानुगतस्य तादृगाभावप्रतियोगितान-
वच्छेदकत्वादेव लक्षणसङ्गतेरिति भावः । वस्तुतस्तु विषयताया ज्ञान-
स्वरूपत्वेन भगवतोऽस्मदादेर्योगिनां वा सर्वविषयकप्रमाव्यक्तेस्तद्वि-

(१) प्रमारूपसम्बन्धादिति ख० ग० घ० ङ० ।

(२) विशेष्य-प्रकारभेदेनेत्यर्थः ।

(३) तद्विषयक-तत्प्रकारकज्ञानत्वरूपप्रमात्वस्य विषयविशेषनिय-
न्तितत्वादननुगतत्वमिति भावः ।

वाच न तु समानविषयकत्वमपि तत्र तन्नं गौरवात्
प्रमेयत्वं घटनिष्ठात्यन्ताभावंप्रतियोगि न वेति संशयश्च

षयत्वस्यानुगतस्यैव प्रमेयत्वरूपतया यथाश्रुतलक्षणमपि तत्र सम्भवति,
एतेन सकलप्रमाविषयत्वसाधारणस्य प्रमाविषयत्वत्वस्यैकस्यानभ्युप-
गमेऽपि न चतिरिति मन्तव्यम् । साध्यसन्देहः पक्षतेत्यभिप्रायेण
शङ्कते, 'तथापीति, 'सन्देहाभावादिति साध्यसन्देहाभावादित्यर्थः,
साध्याभावस्याप्रसिद्धेरिति भावः । 'कथमनुमितिरिति, तथाच केवला-
न्वयिसाध्यकानुमितेरप्रसिद्धत्वात् तादृशानुमितिकरणत्वरूपस्य तादृ-
शानुमितित्वरूपस्य वा केवलान्वयिसाध्यकत्वस्य कथं विभाजकता-
वच्छेदकत्वमिति भावः । ननु तत्रापि प्रमेयत्वं अत्र वर्तते न वेत्या-
कारकः सन्देहः सम्भवतीत्यत आह, 'प्रमेयत्वमिति, 'न प्रमेयपक्षकः'
न प्रमेयविशेष्यकः, 'प्रमेयत्वपक्षकः' प्रमेयत्वविशेष्यकः, 'भिन्नेति
वृत्तित्व-तदभावप्रकारक इत्यर्थः, स च न प्रयोजकः पक्षविशेष्यक-
साध्यसन्देहस्यैव पक्षतारूपत्वादिति भावः । ननु मास्तु घटादिपक्षक-
प्रमेयत्वादिसाध्यकानुमितिस्तथापि प्रमेयत्वादपक्षक-घटादिवृत्तित्व-
साध्यकानुमितिः सम्भवत्येव सैव केवलान्वयिसाध्यकानुमितिः प्रसिद्धे-
त्यत आह, 'प्रमेयत्वेति, 'अस्तित्वसाध्यस्य' घटादिवृत्तित्वसाध्यस्य,
यथाश्रुते अस्तित्वस्य कालसम्बन्धित्वरूपस्य केवलान्वयित्वादसङ्गतेः,
'साध्यसिद्धिविरोधीति साध्यसिद्धिप्रतिवञ्च इत्यर्थः, साध्यसिद्धि कृतो-
विरधोऽस्यास्तीति व्युत्पत्तेः, 'आवश्यकत्वादिति साध्य-तदभाव-
प्रकारक-पक्षविशेष्यकसंशयत्वभावेन नानुमित्यङ्गता आहार्थसंशय-

घटः प्रमेय इति साध्यसिद्धिविरोधी भवत्येव । यद्वा
संशययोग्यतैवानुमानाङ्गं संशयस्य तदानीं विनाशात् ।

स्योत्कटदोषाधीनसंशयस्य चानुमित्यप्रतिबध्यत्वेन तदङ्गत्वाभावात्
तथाच साध्यसिद्धिप्रतिबध्यत्वमपि विशेषणं देयमित्यावश्यकत्वात्
लाघवाच्च तेनैव रूपेणाङ्गतेत्यर्थः, 'समानविषयकत्वमपीति समान-
विशेष्यक-समानप्रकारकत्वमपीत्यर्थः, 'गौरवादिति साध्यसिद्धि-
प्रतिबध्यत्वप्रवेशस्यावश्यकत्वेन गौरवादित्यर्थः, तथाच मेयत्वं घटवृत्ति
न वेति संशयस्यापि साध्यसिद्धिप्रतिबध्यत्वेन स एव केवलान्वयिनि
अनुमितिहेतुरिति भावः । नन्वेवमपि प्रमेयत्वं घटनिष्ठात्यन्ता-
भावप्रतियोगि न वेति सन्देहस्य न संग्रह इति तटस्याशङ्कायामाह,
'प्रमेयत्वमिति, 'साध्यसिद्धिविरोधी' साध्यसिद्धिप्रतिबध्यः, 'तदानी-
मिति अनुमितिपूर्वकाले कचिद्विनाशादित्यर्थः । 'सापि' संशय-
योग्यतापि, 'साधकेति साध्य-तदभावनिश्चयाभाव इत्यर्थः, 'प्रमेय-
त्वाभावेति, तथाचेत्यादिः, 'तत्प्रमाणेति तन्निश्चयेत्यर्थः, 'पक्षनिष्ठेति
नञ्ज्यत्यासेन पक्षनिष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वज्ञानाभावस्येत्यर्थः, (१)
'साध्यसाधकत्वेनेति प्रतिबन्धकाभावविधया पक्षविशेष्यकसाध्यविशि-
ष्टबुद्धिसामान्यजनकत्वेनेत्यर्थः, 'तदभावस्यैवेति स एव योऽभावस्त-
स्यैव साध्ये पक्षनिष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वज्ञानाभावस्यैवेति यावत्,
'योग्यतात्वात्' संशययोग्यतात्वात्, संशयस्यापि साध्यादिविशिष्ट-
बुद्धिरूपत्वादिति भावः । 'प्रमेयत्वमिति अत्यन्ताभावान्तरे प्रति-

(१) पक्षनिष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वज्ञानभावलाभ इति क० ।

न च सापि साधक-बाधकप्रमाणाभावः प्रमेयत्वाभा-
वासिद्धौ तत्प्रमाणासिद्धेस्तदभावासिद्धिरिति वाच्यं ।
पक्षनिष्ठात्यन्ताभावाप्रतियोगित्वज्ञानस्यैव साध्यसाध-
कत्वेन तदभावस्यैव योग्यतात्वात् । प्रमेयत्वमत्यन्ता-

योगित्वसम्बन्धेन प्रमेयत्वस्य भ्रमवतः पुरुषस्येत्यर्थः, 'सन्देह इति
प्रतियोगितासम्बन्धेन प्रमेयत्वमभावान्तरे प्रकारः अभावश्च पक्षे
प्रकार इति क्रमेण पक्षः प्रमेयो न वेति सन्देह इत्यर्थः । 'एकरूपेति
विपक्षासत्त्वविकलमित्यर्थः, 'इदं' केवलान्वयिसाध्यकं लिङ्गं, 'कथं
गमकमिति पक्षसत्त्व-सपक्षसत्त्व-विपक्षासत्त्वावाधितत्वासत्प्रतिपक्षात्म-
कपञ्चरूपोपन्नलिङ्गस्यैव गमकत्वादिति भावः, 'तत्त्वे वेति विपक्षासत्त्व-
विकलस्य गमकत्वे वेत्यर्थः, 'व्यतिरेकेति विपक्षासत्त्वेत्यर्थः, 'रूपान्तरेति
पक्षसत्त्वावाधितत्वादीत्यर्थः^(१) । अन्वय-व्यतिरेकिस्थल एव विपक्ष-
व्यावृत्तत्वज्ञानमङ्गमिति समाधत्ते, 'अन्वयेति, इदञ्च 'युगपदुभय-
व्याप्युपस्थितौ उभयोरपि प्रयोजकत्वे' इत्यत्र हेतुः, 'युगपदिति, सम्भेदे
नान्यतरवैयर्थ्यमिति भावः । 'प्रयोजकत्वे' प्रयोजकत्वस्थले, एतावता-
न्वय-व्यतिरेकी लब्धः, 'व्यतिरेकोपासनेति विपक्षव्यावृत्तत्वज्ञानापे-
क्षेत्यर्थः, न तु केवलान्वयिनीति भावः । अत्र हेतुमाह, 'व्यतिरेक-
श्चेति, 'चः' हेतौ, 'व्यतिरेकः' विपक्षसत्त्वव्यतिरेकः, 'विपक्षवृत्तित्व-
शङ्कानिवृत्तिद्वारेति सावधारणं, तद्वृत्तित्वशङ्कानिवृत्तिद्वारैवेत्यर्थः,
'व्यतिरेकव्याप्तौ' साध्याभाव-हेत्वभावयोर्थ्यौ व्यतिरेकौ साध्य-हेतू

(१) सपक्षसत्त्वावाधितत्वादीत्यर्थः इति क० ।

भावप्रतियोगीति भ्राम्यतः सन्देह इत्यन्ये। नन्वेकरूप-
विकलमिदं कथं गमकं तत्त्वे वा व्यतिरेकविकलवत्
रूपान्तरविकलमपि गमकं स्यादिति चेत्। न। अन्वय-
व्यतिरेकव्याप्त्योरन्यतरनिश्चयेनानुमित्यनुभवात् युग-
तयोर्व्याप्तिग्रहे अन्वयव्याप्तिग्रह इति यावत्, 'अत्र तु' केवलान्वयिनि
तु, 'व्यतिरेकव्याप्ताविति यथाश्रुतन्तु न सङ्गच्छते व्यतिरेकव्याप्तिग्रहं
प्रत्येव तस्य विपक्षवृत्तित्वशङ्कानिवृत्तिमात्रद्वारा उपयोगितया केव-
लान्वयिनि तन्निवृत्त्यसम्भवेऽपि तस्यान्वयव्याप्तिग्रहोपयोगित्वे बाध-
काभावात्। न च 'व्यतिरेकव्याप्तावित्यस्य व्यतिरेकव्याप्तिग्रह एवेत्यर्थः
इति वाच्यम्। अन्वयव्याप्तिग्रहं प्रत्यपि तादृशशङ्कानिवृत्तिद्वारो-
पयोगित्वस्य सर्वसिद्धतया अवधारणासङ्गतेः 'अत्र तु विपक्षाभावेन
शङ्कैव नोदेतीत्यभिधानस्यासङ्गतत्वापत्तेश्च अत्र तु व्यतिरेकव्याप्ति-
ज्ञानमेव नेत्येव वक्तुमुचितत्वादिति ध्येयम्।

केचित्तु विपक्षव्यावृत्तत्वग्रहस्य व्यातिरेकव्याप्तिग्रहद्वारा सर्वत्रा-
नुमितावावश्यकत्वं अन्वयव्याप्तिग्रहानुकूलतया वा नाद्य इत्याह,
'अन्वयेति, 'अन्यतरनिश्चयेनेति एकतरनिश्चयेनापीत्यर्थः। ननु तर्हि
विपक्षव्यावृत्तत्वग्रहः कचिदपि नापेक्षितः स्यात् इत्यत आह, 'युग-
पदिति, 'प्रयोजकत्वे' प्रयोजकत्वस्थले, 'व्यतिरेकोपासनेति विपक्ष-
वृत्तित्वशङ्कानिवृत्तिद्वारा विपक्षव्यावृत्तत्वग्रहापेक्षेत्यर्थः। न द्वितीय-
इत्याह, 'व्यतिरेकश्चेति अर्थस्तु पूर्ववदिति व्याचक्रुः।

उपाध्यायानुयायिनस्तु 'एकरूपेति व्यतिरेकव्याप्तिविकलमि-
त्यर्थः। अन्वय-व्यतिरेकिणि उभयव्याप्तिज्ञानस्यैव गमकत्वदर्शनादिति

पदुभयव्याप्त्युपस्थितौ विनिगमकाभावेन उभयोरपि प्रयोजकत्वे व्यतिरेकोपासना व्यतिरेकश्च विपक्षवृत्ति-
त्वशङ्कानिवृत्तिद्वारा व्यतिरेकव्याप्तावुपयुज्यते अत्र तु
विपक्षाभावेन शङ्कैव नादेति ।

इति श्रीमद्भजेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ
अनुमानाख्यद्वितीयखण्डे केवलान्वय्यनुमानसिद्धान्तः,
समाप्तमिदं केवलान्वय्यनुमानं ।

भावः । 'व्यतिरेकविकलवत्' व्यतिरेकव्याप्तिविकलवत्, 'रूपान्तरेति
पञ्चधर्मताविकलमित्यर्थः, 'अन्यतरनिश्चयेनेति एकतरनिश्चयेनापी-
त्यर्थः, तथाचात्रान्वयव्याप्तिज्ञानमेव हेतुरिति भावः । नन्वेवमत्र
यथानुमितेरन्वयव्याप्तिज्ञानमात्रजन्यत्वं तथा यत्र युगपदुभयव्याप्त्युप-
स्थितिः तत्राप्यनुमितेरन्वयव्याप्तिज्ञानमात्रजन्यत्वमस्त्वित्यत आह,
'युगपदिति, 'प्रयोजकत्व इति तृतीयार्थं सप्तमी, 'व्यतिरेकोपास-
नेति अनुमितेर्यतिरेकव्याप्तिज्ञानजन्यत्वमित्यर्थः । ननु तथापि
केवलान्वयिनि विपक्षासत्त्वज्ञानं विना कथं व्याप्तिग्रहस्तस्य तद्वेतुत्वा-
दित्यत आह, 'व्यतिरेकश्चेति अर्थस्तु पूर्ववदित्याहुः ।

इति श्रीमथुरानाथतर्कवागीश-विरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये
अनुमानाख्यद्वितीयखण्डरहस्ये केवलान्वय्यनुमानसिद्धान्तरहस्यं, समा-
प्तमिदं केवलान्वय्यनुमानरहस्यं^(१) ।

(१) इति महामहोपाध्यायश्रीमथुरानाथ-तर्कवागीशभट्टाचार्यविरचितं
केवलान्वयिरहस्यं रमणीयमिति ग० ।

अथ केवलव्यतिरेक्यनुमानं ।

केवलव्यतिरेकी त्वसत्सपक्षो यत्र व्यतिरेकसहचारेण व्याप्तिग्रहः । ननु व्यतिरेकी नानुमानं व्याप्ति-

अथ केवलव्यतिरेक्यनुमानरहस्यं ।

‘असत्सपक्ष इति असन् स्वजन्यानुमित्यव्यवहितपूर्वं स्वाधिकरणे असन्सपक्षः साध्यवत्त्वेन कापि निश्चयोयस्येत्यर्थः, तथाच स्वसमानाधिकरणस्वजन्यानुमित्यव्यवहितपूर्ववर्त्तिनिश्चयाविषयसाध्यकत्वं केवलव्यतिरेक्यनुमानत्वमिति भावः । स्वं लक्ष्यत्वेनाभिमतं, अव्यवहितपूर्वत्वञ्च क्षणत्रयसाधारणं^(१) तेन व्याप्तिनिश्चयाव्यवहितपूर्वं साध्यवत्त्वनिश्चयस्य कापि सत्त्वेऽपि न केवलव्यतिरेकित्वं । न च स्वाव्यवहितपूर्ववर्त्तीत्येवोच्यतां किं जन्यानुमित्यव्यवहितपूर्ववर्त्तित्वपर्यन्तेनेति वाच्यं । वक्त्रिमान्धूमादित्यादावन्वयव्याप्तिग्रहजनकान्वयसहचारज्ञाने साध्यज्ञानत्वेन ज्ञानत्वेन वा अनुमितिकरणे अन्वय-व्यतिरेक्यनुमानान्तर्गतेऽतिव्याप्यापत्तेः तत्पूर्वं साध्यनिश्चयस्य कापि विरहादिति

(१) क्षणत्रयसाधारणाव्यवहितपूर्वत्वञ्च स्वप्रागभावाधिकरणसमयप्रागभावाधिकरणसमयप्रागभावाधिकरणसमयप्रागभावानधिकरणत्वे सति स्वप्रागभावाधिकरणत्वरूपमिति ।

भावः । ननु तस्य लक्ष्यमेव दुर्लभमनुमितिपूर्वं क्षणत्रयाभ्यन्तरे साध्य-
वत्त्वनिश्चयाभावे सहचारज्ञानाभावात् व्याप्तिज्ञानस्यैवासम्भवादित्यतो-
लक्ष्यं दर्शयति, 'यत्रेति, अनुमितिजनन इति शेषः, 'व्यतिरेकसह-
चारेण' व्यतिरेकसहचारज्ञानेन, जन्यत्वं तृतीयार्थः, 'व्याप्तिग्रहः'
व्याप्तिग्रह एव, सहकारोति शेषः, तथाच यज्ज्ञानं व्यतिरेकसहचार-
ज्ञानजन्यव्याप्तिज्ञानमात्रसहकारेणानुमितिं जनयति तदेव लक्ष्यं,
सहकारित्वञ्च न भेदगर्भं^(१) तेन व्याप्तिज्ञानस्यापि संग्रह इति
भावः । अत्र लक्षणे साध्यं व्यतिरेकित्वेन विशेषणीयं, तेन सपचा-
सत्त्वदशायामपि व्यतिरेकसहचारभ्रमजन्यकेवलान्वयिसाध्यकानुमाने
नातिव्याप्तिः, साध्यत्वञ्च व्यापारानुबन्धिविधेयत्वं स्वकरणकानुमिति-
विधेयत्वमिति यावत्, तेन व्याप्तिज्ञानादिरूपेऽनुमाने पृथिवी-
तरभेदादेरविधेयत्वेऽपि न क्षतिः, तथाच स्वसमानाधिकरण-स्वजन्या-
नुमित्यव्यवहितपूर्ववर्त्तिनिश्चयविषयतानवच्छेदको यो व्यतिरेकि-
तावच्छेदकोधर्मास्तदवच्छिन्नविधेयताकानुमितिकरणत्वं केवलव्यति-
रेक्यनुमानत्वं स्वं लक्ष्यत्वेनाभिमतं, स्वसमानाधिकरण-स्वाव्यवहित-
पूर्ववर्त्तिनिश्चयविषयतानवच्छेदकव्यतिरेकितावच्छेदकधर्मावच्छिन्न-
विधेयताकानुमितिकरणत्वं केवलव्यतिरेक्यनुमानत्वमिति तु निष्कर्षः
वारद्वयमनुमितिप्रवेशे प्रयोजनविरहात्, स्वपदमनुमितिपरं । अ-
न्वय-व्यतिरेक्यनुमानलक्षणन्तु स्फुटत्वान्नोक्तं, तच्च स्वसमानाधिकरण-

(१) तथाचात्र तत्सहकारित्वं तज्जन्यफलजनकत्वमात्रं न तु तद्विभक्त-
विशिष्ट-तज्जन्यफलजनकत्वरूपमतः स्वस्यापि स्वसहकारित्वमिति
भावः ।

स्वाव्यवहितपूर्ववर्तिनिश्चयविषयतावच्छेदकव्यतिरेकितावच्छेदकधर्मा-
वच्छिन्नविधेयताकानुमितिकरणत्वं, स्वपदं अनुमितिपरं, तादृ-
गानुमितित्वञ्चान्वय-व्यतिरेक्यनुमितित्वं, केवलव्यतिरेक्यनुमानेऽति-
व्याप्तिवारणाय प्रथममवच्छेदकान्तं तत्र साध्यवत्त्वेन निश्चयस्य
क्वापि विरहात्, अव्यवहितपूर्वत्वञ्च क्षणत्रयमाधारणं तेन व्याप्ति-
निश्चयपूर्वं साध्यनिश्चयसत्त्वेऽपि अन्वय-व्यतिरेकित्वं, केवलान्वयिमाध्य-
कानुमानेऽतिव्याप्तिवारणाय द्वितीयमवच्छेदकान्तं । न च व्यतिरेक-
सहचारेणान्वयव्याप्तिरेव गृह्यते इति वक्ष्यमाणमते यत्र व्यतिरेक-
सहचारज्ञानमात्रजन्यव्यापकसामानाधिकरण्यरूपान्वयव्याप्तिज्ञानाद-
नुमितिस्तत्र केवलव्यतिरेक्यनुमानलक्षणस्याव्याप्तिः अन्वय-व्यतिरे-
क्यनुमानलक्षणस्य चातिव्याप्तिः व्याप्तिग्रहस्यैव साध्यान्वयग्रहरूपत्वा-
दिति वाच्यं । एतदखरसेनैव तन्मतमपहाय 'यदेति कृत्वा व्यति-
रेकसहचारज्ञानजन्यव्यतिरेकव्याप्तिज्ञानस्यैव गमकत्वस्य वक्ष्यमाणत्वात्
नव्यनये लाघवात्, साध्याभाववद्वृत्तिस्वरूपान्वयव्याप्तिज्ञानस्यैवा-
नुमितिहेतुतया व्यतिरेकसहचारज्ञानजन्यतादृगान्वयव्याप्तिज्ञानस्यैव
व्यतिरेक्यनुमितावपि हेतुत्वाच्च । एतच्च 'तच्चानुमानं त्रिविधं'
इत्यस्यानुमानविभागपरत्वपक्षे व्याख्यातं, तस्यानुमितिविभागपरत्वपक्षे
तु 'असत्सपक्ष इत्यस्य असन्स्वाव्यवहितपूर्वकाले स्वाधिकरणे असन्
सपक्षः साध्यवत्त्वेन क्वापि निश्चयोयस्यानुमित्यात्मकग्रहस्य स इत्यर्थः,
अथात्र स्वसमानाधिकरण-स्वाव्यवहितपूर्ववर्तिनिश्चयविषयतान-
वच्छेदकव्यतिरेकितावच्छेदकधर्मावच्छिन्नसाध्यकानुमितित्वं केवल-
व्यतिरेक्यनुमितित्वमिति भावः । स्वपदमनुमितिपरं प्रत्येकदल-

पक्षधर्मताज्ञानस्य तत्कारणत्वात् अत्र व्यतिरेकसह-
चारात् तत्र व्याप्तिरन्वयस्य पक्षधर्मता । न च व्याप्त-

प्रयोजनञ्च उक्तप्रायं । नन्वेतस्य लक्षणमेव दुर्लभं अनुमितिपूर्वं
क्षणत्रयाभ्यन्तरे साध्यवत्त्वनिश्चयाभावे सहचारज्ञानाभावात् व्याप्ति-
ज्ञानस्यैवासम्भवादित्यतो लक्ष्यं दर्शयति, 'यत्रेति अनुमिताविति
शेषः, 'व्यतिरेकसहचारेण' व्यतिरेकसहचारज्ञानेन, जन्यत्वं तृतीयार्थः,
'व्याप्तिग्रहः' व्याप्तिग्रह एव, कारणमिति शेषः, तथाच यत्रानुमितौ
व्यतिरेकसहचारज्ञानजन्यव्याप्तिज्ञानमात्रं कारणं सैव लक्ष्येति
भावः ।

केचित्तु ननु 'असत्सपक्ष इत्यस्य असन्सपक्षः साध्यवत्त्वेन निश्चितो
यस्येत्यर्थः, स च सिद्धसिद्धिपराहत इत्यतोऽसत्सपक्षमेव पारि-
भाषिकं व्याचष्टे, 'यत्रेति, अनुमितिजनन इति शेषः, 'व्यतिरेकसह-
चारेण' व्यतिरेकसहचारज्ञानेन, जन्यत्वं तृतीयार्थः, 'व्याप्तिग्रहः'
व्याप्तिग्रह एव, सहकारौति शेषः, तथाच व्यतिरेकसहचारज्ञानजन्य-
व्याप्तिग्रहमात्रजन्यानुमितिकरणत्वं केवलव्यतिरेक्यनुमानत्वं, अन्वय-
व्यतिरेकोभयसहचारज्ञानजन्यव्याप्तिज्ञानस्यान्वय-व्यतिरेक्यनुमाना-
न्तर्गतस्य वारणाय मात्रपदं । व्यतिरेकसहचारज्ञानजन्यव्याप्तिग्रह-
मात्रजन्यत्वञ्च अन्वय-सहचारज्ञानजन्यव्याप्तिग्रहाजन्यत्वं, अनुमितिश्च
व्यतिरेकितावच्छेदकधर्मावच्छिन्नविधेयताकत्वेन विशेषणीया, तेन
व्यतिरेकसहचारभ्रमजन्यवाच्यत्वादिसाध्यकव्याप्तिज्ञाने पूर्वनिरुक्तके-
वलान्वयिसाध्यकान्तर्गते नातिव्याप्तिः, महानसादौ वज्रादिमत्त्व-

पक्षधर्मत्वं साध्याभावव्यापकाभावप्रतियोगिसत्त्वमु-
भयमप्यनुमितिप्रयोजकमिति वाच्यम् । अननुगमात् ।
न चान्यतरत्वं तथा, एकप्रमाणपरिशेषापत्तेः । न च

निश्चयसत्त्वे यदि व्यतिरेकसहचारज्ञानमात्रात् वज्रदिव्याग्निज्ञानं
तदा तदपि केवलव्यतिरेक्येव, व्याप्तिश्च^(१) यदि सर्वत्रान्वयव्याप्ति-
ज्ञानमेव कारणं केवलव्यतिरेकिण्यपि व्यतिरेकसहचारात् अन्वय-
व्याप्तिरेव गृह्यते इति मतं तदान्वयरूपैव निवेशनीया, यदि च
केवलव्यतिरेक्यतिरिक्तस्थलेऽन्वयतोव्यतिरेकतश्च उभयरूपैव व्याप्ति-
गमिका केवलव्यतिरेकिणि तु व्यतिरेकव्याप्तिरेव गमिकेति मतं
तदा तु व्यतिरेकरूपैव निवेशनीया, वक्त्रिमान् धूमादित्यादाव-
न्वयसहचारज्ञानजन्यव्यतिरेकव्याप्तिग्रहजन्यानुमितिकरणन्तु न केव-
लव्यतिरेकि किन्त्वन्वय-व्यतिरेक्येवेति भावः ।

‘तच्चानुमानमिति मूलस्यानुमितिविभाजकपरत्वपक्षे ‘यच्चेत्य-
स्यानुमिताविति शेषः, ‘व्याप्तिग्रह एवेत्यस्य च कारणमिति शेषः,
तथाच व्यतिरेकसहचारज्ञानजन्यव्याप्तिग्रहमात्रजन्यव्यतिरेकिताव-
च्छेदकधर्मावच्छिन्नसाध्यकानुमितित्वं केवलव्यतिरेक्यनुमितित्वमिति
भावः । अन्वयसहचारज्ञानजन्यव्याप्तिग्रहजन्यव्यतिरेकितावच्छेदक-
धर्मावच्छिन्नसाध्यकानुमितिकरणत्वन्तु अन्वय-व्यतिरेक्यनुमानत्वं
तादृशानुमितित्वञ्चान्वय-व्यतिरेक्यनुमितित्वं । व्याप्तिश्च यदि सर्व-

(१) व्याप्तिश्चेत्यस्य निवेशनीयेत्यनेनाग्रेतनेनान्वय इति ।

तृणारणि-मणिन्यायेनानुमितिविशेषे तद्धेतुत्वमिति वाच्यं । व्यतिरेकिसाध्येऽनुमितित्वासिद्धेः उभयसिद्ध-

त्रान्वयव्याप्तिज्ञानमेव कारणं केवलव्यतिरेकिण्यपि व्यतिरेक-सहचारज्ञानादन्यव्याप्तिरेव गृह्यते इति मतं तदान्वयरूपैव निवेशनीया, यदि च केवलव्यतिरेक्यतिरिक्तस्थलेऽन्वयतो व्यतिरेकतश्च व्याप्तिद्वयमेव गमकं केवलव्यतिरेकिणि तु व्यतिरेकव्याप्तिरेव गमिकेति मतं तदान्वयतो व्यतिरेकतश्च उभयरूपैव यथाकथञ्चिदनुगतीकृत्य^(१) निवेशनीया, तेन^(२) वङ्गिमान् धूमादित्यादावन्वयसहचारज्ञानाधीनव्यतिरेकव्याप्तिग्रहजन्यानुमितौ तत्करणे च नाव्याप्तिरित्याहुः ।

‘नन्विति, ‘व्यतिरेकी’ व्यतिरेकसहचारज्ञानजन्यव्याप्तिग्रहः, ‘नानुमानं’ नानुमितिकरणं, ‘व्याप्तेति हेतुव्यापकसाध्यसामानाधिकरण्यारूपान्वयव्याप्तिप्रकारकपञ्चधर्मताज्ञानस्येत्यर्थः, ‘अत्र’ व्यतिरेकसहचारज्ञानजन्यपरामर्शे, ‘व्यतिरेकसहचारात्’ साध्याभाव-हेत्वभावयोः सहचारज्ञानात्, ‘तत्र’ तयोः साध्याभाव-हेत्वभावयोरिति धावत्, ‘व्याप्तिः’ व्यापकत्वं, ‘अन्वयस्य’ हेतोः, ‘पञ्चधर्मतेति, भासते

(१) व्यभिचारधीविरोधिधीविषयत्वेन व्याप्तिद्वयं अनुगतीकृत्येत्यर्थः, तथाचान्वय-सहचारज्ञानजन्यप्रकृतहेतुधर्मिकप्रकृतसाध्यव्यभिचारधीविरोधिधीविषयतावच्छेदकावच्छिन्नविषयकग्रहजन्यानुमितिकरणत्वं अन्वय-व्यतिरेक्यनुमानत्वं तादृशानुमितित्वञ्चान्वय-व्यतिरेक्यनुमितित्वमिति भावः ।

(२) अनुगतरूपेणोभयविधव्याप्तिनिवेशेनेत्यर्थः ।

कृततत्कारणस्याभावात् । न च साध्याभावव्यापका-
भावप्रतियोगित्वमेवानुमितिप्रयोजकमिति वाच्यं ।
गौरवात् केवलान्वयिन्यभावाच्च । अथ साध्याभाव-

इति शेषः, तथाच व्यतिरेकसहचारज्ञानजन्यव्यतिरेकव्याप्तिपरामर्श-
स्थानुमित्यजनकतया तादृशव्याप्तिज्ञानस्य नानुमितिकरणत्वमिति
भावः । नन्वन्वयव्याप्तिपरामर्श-व्यतिरेकव्याप्तिपरामर्शयोरुभयोरेवानु-
मितिजनकत्वमित्याशङ्कते, 'न चेति, 'व्याप्तपक्षधर्मात्' निरुक्तान्वय-
व्याप्तिविशिष्टहेतुमत्त्वं, 'साध्याभावेति साध्याभावव्यापकाभावप्रति-
योगिहेतुमत्त्वमित्यर्थः, 'अनुमितिप्रयोजकं' अनुमितिकारणीभूत-
ज्ञानविषयः, 'अननुगमादिति उभयसाधारणकारणतावच्छेदकधर्मा-
भावादित्यर्थः, प्रत्येकरूपेण कारणत्वे च^(१) परस्परं व्यभिचार इति
भावः । 'तथा' उभयसाधारणकारणतावच्छेदकधर्मः, 'एकप्रमाणेति
इन्द्रियादीनां चतुर्णामेव प्रमाणानामिन्द्रियादन्यतमत्वरूपैकधर्म-
णानुमित्यादिप्रमितिचतुष्टयादन्यतमत्वावच्छिन्नं प्रति कारणत्वाप-
त्तेरित्यर्थः, व्यापाराणां^(२) विशेषतः कारणत्वेनैवानुमितित्वाद्यवच्छि-

(१) अन्वयव्याप्तिज्ञानत्वेन व्यतिरेकव्याप्तिज्ञानत्वेन चेत्यर्थः, तथाच
अन्वयव्याप्तिज्ञानमात्रजन्यानुमितौ व्यतिरेकव्याप्तिज्ञानाभावात् व्यति-
रेकव्याप्तिज्ञानमात्रजन्यानुमितौ च अन्वयव्याप्तिज्ञानाभावात् पर-
स्परं व्यभिचार इति भावः ।

(२) ननु प्रमाणचतुष्टयस्य अन्यतमत्वेन प्रमितिचतुष्टयान्यतमत्वावच्छिन्नं
प्रति कारणत्वे प्रत्यक्षप्रमाणसत्त्वे कथमनुमितिर्नोत्पद्यत इत्यत आह,

व्यापकाभावप्रतियोगित्वेन साध्यव्याप्यत्वमनुमेयम्, एवं
व्यतिरेकव्याप्त्यान्वयव्याप्तिमनुमाय यत्रानुमितिः स एव
व्यतिरेकीत्युच्यते, तन्न, अन्वयव्याप्तेर्गमकत्वे व्यतिरेक-

नोत्पत्तिनियमसम्भवादिति भावः । 'दणारणीति यथा दणारणि-
मणीनां परस्परं व्यभिचारितया वङ्गित्वव्याप्यधर्मावच्छिन्नं प्रत्येव
हेतुत्वं न तु वङ्गित्वावच्छिन्नं प्रति तथात्राप्यनुमितित्वव्याप्यधर्मा-
वच्छिन्नं प्रत्येव तयोः कारणतमित्यर्थः, 'व्यतिरेकिसाध्य इति
व्यतिरेकव्याप्तिपरामर्शोत्तरं जायमानज्ञानइत्यर्थः, 'अनुमितित्वा-
सिद्धेरिति, अगृहीतासंसर्गकं खण्डशः साध्यपक्षयोः ज्ञानमेव तदिति
भावः । 'उभयसिद्धेति निरुक्तान्वयव्याप्तिप्रकारकपक्षधर्मताज्ञानस्य
उभयसिद्धानुमितिकारणस्याभावादित्यर्थः । 'न च साध्याभावेति न
त्वन्वयव्याप्तिरित्यर्थः, विनिगमकाभावादिति भावः । 'केवलान्वयीति
तव केवलान्वयित्वग्रहदशायामसम्भवाच्चेत्यर्थः, यथाश्रुतन्तु न सङ्गच्छते
साध्य-साधनभेदेन कार्य-कारणभावस्य विभिन्नतया केवलान्वयिन्य-
न्वयव्याप्तिज्ञानमेव हेतुः व्यतिरेकिणि तु व्यतिरेकव्याप्तिज्ञानमेव

व्यापाराणामिति, तथाच प्रमितिचतुष्टयं प्रति प्रमाणचतुष्टयस्यान्य-
तमत्वेनैव कारणत्वं, व्यापारविशेषस्य प्रमितिविशेषं प्रति स्वातन्त्र्येण
कारणत्वेनैवातिप्रसङ्गवारणमिति भावः । न च व्यापारविशेषस्य
प्रमितिविशेषं प्रति कारणत्वेनैवातिप्रसङ्गभङ्गे प्रमाणस्यान्यथासिद्ध-
त्वमिति वाच्यं । व्यापारेण व्यापारिणोऽन्यथासिद्धत्वाभावादिति ।

व्याप्त्युपन्यासस्यार्थान्तरतापत्तेः अन्वयव्याप्त्यनुकूलतया
च तदुपन्यासे अन्वयव्याप्तिमनुपन्यस्य तदुपन्यासस्या-

इत्यस्य सुवचत्वात् खण्डशः प्रसिद्ध्या केवलान्वयिन्यपि भ्रमरूपतज्-
ज्ञानसम्भवात् ।

केचित्तु 'अनुमितित्वासिद्धेरिति, किन्तु अर्थापत्त्याख्यविजा-
तीयज्ञानमेव तदिति भावः । न चैवं 'गौरवादित्यग्रिममूलमसङ्गतं
अर्थापत्तित्वाख्यातिरिक्तवैजात्याभ्युपगमे तदवच्छिन्नं प्रत्येव तज्ज्ञानस्य
हेतुत्वावश्यकत्वात् वैजात्यकल्पनस्य पुनरधिकत्वादिति वाच्यम् ।
एतदस्वरसादेव 'केवलान्वयीत्याद्यभिधानादित्याहुः । तदसत् ।
अर्थापत्त्याख्यविजातीयज्ञानस्यार्थापत्तिग्रन्थ एवाग्रे निरसनीयत्वा-
दिति ध्येयम् ।

'अथेति, 'साध्यव्याप्यत्वं' साध्यान्वयव्याप्यत्वं, तथाच व्यतिरेक-
व्याप्तिज्ञानस्य साध्यान्वयव्याप्त्यनुमितिद्वारा अनुमितिकरणत्वमिति
भावः । अत्र वृत्तिमत्त्वेन विशेषणान्नावृत्तौ व्यभिचारः । न च तथापि
व्यतिरेकिणि हेतुव्यापकसाध्यसमानाधिकरणवृत्तिहेतुतावच्छेदक-
वत्त्वरूपान्वयव्याप्यत्वमप्रसिद्धं कथमनुमेयं प्रकृतहेतावेव प्रसिद्धं चेत्त-
तमनुमानेनेति वाच्यम् । यत् यद्वर्मावच्छिन्नाभावव्यापकाभावप्रति-
योगितावच्छेदकयद्वर्मवद्भवति तत् तद्वर्मावच्छिन्नव्यापकतावच्छेदक-
तद्वर्मावच्छिन्नसमानाधिकरणवृत्तितद्वर्मवद्भवतीति यत्तद्भ्यां सामा-
न्यतो व्याप्त्या तस्याप्रसिद्धत्वेऽप्यनुमितिसम्भवादिति भावः^(१) । यत्तु

(१) तस्याप्रसिद्धस्याप्यनुमितिसम्भवादिति घ० ड० ।

प्राप्तकालत्वमिति । उच्यते । निरुपाधिव्यतिरेकसहचारेणान्वयव्यतिरेव गृह्यते प्रतियोग्यनुयोगिभावस्य

‘साध्यव्याप्यत्वं’ साध्यवदन्यावृत्तित्वं, तच्चान्ततः साध्ये प्रसिद्धं हेतावनुमेयमिति । तदसत् । केवलान्वयित्वग्रहदशायामसम्भवेन व्यतिरेकव्याप्तिज्ञानवत् साध्यवदन्यावृत्तित्वज्ञानस्यापि अनुमितिहेतुत्वासम्भवादिति ध्येयं^(१) । ननु निरुक्तान्वयव्याप्तिज्ञानस्यैवानुमितिहेतुत्वे ‘केवलव्यतिरेकी त्वसत्सपक्षः’ इति प्रागुक्तलक्षणमसम्भवि व्याप्तिग्रहस्यैव साध्यान्वयग्रहरूपत्वादित्यत आह, ‘एवमिति, ‘यत्रानुमितिः’ यस्मिन्ग्रहे सत्यनुमितिः यद्ग्रहकरणिकानुमितिरिति यावत् ।

केचित्तु नन्वेवमन्वयिपरामर्श-व्यतिरेकिपरामर्शयोः को भेद इत्यत आह, ‘एवमिति, ‘यत्रानुमितिः’ यस्मिन् परामर्शं सत्यनुमितिरित्याहुः ।

‘व्यतिरेकव्याप्युपन्यासस्येति उदाहरणवाक्येन व्यतिरेकव्याप्युपन्यासस्येत्यर्थः, ‘अन्वयव्याप्यनुकूलतयेति अन्वयव्याप्तिसाधकहेतुतयेत्यर्थः, ‘अप्राप्तकालत्वमिति, साध्योपन्यासानन्तरमेव हेतूपन्यासस्य कथकसम्प्रदायसिद्धत्वात् । न चान्वयव्याप्तिरेव प्रथममुपन्यसनौचा तत्र कथन्तायां तत्साधनाय व्यतिरेकव्याप्तिरुद्भावेति वाच्यं । कथकसंप्रदायविरोधादिति भावः । ‘निरुपाधीति हेत्वभावे नियतसाध्यव्यतिरेकसहचारज्ञानेनान्वयव्याप्तिघटकतावत्पदार्थविषयकेणेत्यर्थः,

(१) केवलान्वयिन्यसम्भवादयथा व्यतिरेकव्याप्तिज्ञानं न कारणं तथा साध्यवदन्यावृत्तित्वज्ञानमपीतीति क० ।

नियामकत्वात् अन्वय-व्यतिरेकिवत् । नन्वेवं व्याप्ति-
ग्रह एव पृथिवीतरभिन्नेति भासितं नियतसामानाधि-

नियतसाध्यव्यतिरेकसहचारः साध्याभावव्यापकत्वे सति साध्याभाव-
सहचारः, 'अन्वयव्याप्तिरेव गृह्यते' इति, 'अन्वयव्याप्तिः' हेतुव्यापक-
साध्यसमानाधिकरणवृत्तिहेतुतावच्छेदकवत्त्वरूपा व्याप्तिः, 'गृह्यते'
व्यतिरेक्यनुमितिकरणज्ञानेन विशेष्ये विशेषणमिति-रीत्या विषयी-
क्रियते, तथाच व्यतिरेकसहचारज्ञानजन्यतादृशव्याप्तिज्ञानमेवानु-
मितौ करणमित्यर्थः, उदाहरणेन च नियतव्यतिरेकसहचार एव
प्रदर्श्यते इति नार्थान्तरत्वं व्यतिरेकव्याप्तिज्ञानानन्तरञ्चागृहीता-
संसर्गकं खण्ड्यः पक्ष-साध्ययोज्ञानमात्रमिति भावः । अथाभावयोः
सहचारज्ञानात् कथं प्रतियोगिनोर्याप्तिग्रहः एकनिष्ठसहचारज्ञानेना-
न्यनिष्ठव्याप्तिज्ञानजननेऽतिप्रसङ्गादित्यत आह, 'प्रतियोग्येति तत्तद्व-
र्मावच्छिन्नाभावत्वेन तत्तद्वर्मावच्छिन्नाभावयोः सहचारज्ञानस्य तत्त-
द्वर्मरूपेण तत्तद्वर्माश्रययोर्याप्तिग्रहं प्रत्येव जनकत्वान्नातिप्रसङ्ग इत्यर्थः,
'अन्वय-व्यतिरेकिवदिति अन्वययोः प्रतियोगितावच्छेदकरूपेण प्रति-
योगिनोः सहचारज्ञानस्य तद्व्यतिरेकत्वरूपेण तद्व्यतिरेकयोर्याप्ति-
ग्रहं प्रत्येव जनकत्ववदित्यर्थः, एतच्चापाततः नियमांशज्ञानस्य व्याप्ति-
घटकौभूततावत्पदार्थोपस्थितिविधया व्याप्तिग्रहहेतुत्वेऽपि व्यतिरेक-
सहचारज्ञानस्य तद्व्यतिरेकत्वे मानाभावादिति ध्येयं । 'नन्वेवमिति, 'एवं'
अन्वयव्याप्तिज्ञानस्य हेतुत्वे, 'पृथिवीतरभिन्नेतीति पक्षतावच्छेदकी-
भूते पृथिवीत्वे साध्यस्येतरभेदस्य सामानाधिकरण्यं भासितमित्यर्थः,

करणरूपत्वाद्वाप्तेरिति, सत्यं, गन्धवत्त्वावच्छेदेनेतर-
भेदस्य साध्यत्वात् । अतएवाचार्यः पक्षतावच्छेदकस्य न
हेतुत्वमनुमेने पृथिवीत्वमितरभेदव्याप्यमितिप्रतीता-
वपि सर्वा पृथिवीतरभिन्नेति पृथिवीविशेष्यकबुद्धे-
र्व्यतिरेकिसाध्यत्वाच्च । यद्वा व्यतिरेकव्याप्तेरेवान्वयेन
गम्य-गमकभावः, साध्याभावव्यापकसाधनाभावाभा-

पृथिवीत्वस्यैव हेतुत्वात्, तथाच सिद्धसाधनं अनुमित्यापि पक्षताव-
च्छेदक-साध्ययोः सामानाधिकरण्यस्यैव विषयीकरणादित्यभिमानः ।
अभिमानमभ्युपेत्यैव समाधत्ते, 'गन्धवत्त्वेति गन्धवत्त्वं पक्षतावच्छेदकौ-
करणीयमित्यर्थः, हेतुश्च पृथिवीत्वमिति भावः । 'अत एवेति यत-
एव व्यतिरेकिणि अन्वयव्याप्तिज्ञानस्य हेतुतया पक्षतावच्छेदकस्य
हेतुत्वे सिद्धसाधनमत एवेत्यर्थः, 'पक्षतावच्छेदकस्येति, पृथिवीतरभ्यो
भिद्यते इत्यादाविति शेषः, किन्तु गन्धवत्त्वादेरेव हेतुत्वमत्रेति
भावः ।

केचित्तु प्रकारान्तरेण व्याप्तिज्ञाने पक्षतावच्छेदक-साध्ययोः
सामानाधिकरण्यभानं निराकरोति, 'अत एवेति एतदर्थमेवेत्यर्थः,
पृथिव्यामितरभेदे साध्ये इति शेषः, 'पक्षतावच्छेदकस्य' पक्षवाचक-
पृथिवीपदशक्यतावच्छेदकस्य पृथिवीत्वस्येति यावत्, 'न हेतुत्व-
मिति, किन्तु गन्धवत्त्वस्यैव हेतुत्वमिति शेषः, तथाच पृथिवीत्वमेव
पक्षतावच्छेदकौकरणीयं हेतुश्च गन्धवत्त्वमिति भाव इति प्राङ्गः ।

वेन साधनेन साध्याभावाभावस्य साध्यस्य साधनात्
 व्यापकाभावेन व्याप्याभावस्यावश्यमभावात् । नन्वेवं^(१)
 न सानुमितिः क्लृप्तहेतुलिङ्गपरामर्शाभावादन्वयान-
 नुगम इति चेत् । न । अनुमितिमात्रे व्याप्तिज्ञानस्य
 प्रयोजकत्वात् । न चैवमतिप्रसङ्गः, अनुमितिसामान्य-

अभिमानं निराकृत्य समाधत्ते, 'पृथिवीत्वमिति, 'द्वतरभेद-
 व्याप्यं' पृथिवीत्वव्यापकेतरभेदसमानाधिकरणं, 'पृथिवीविशेष्यकेति
 पृथिवीत्वव्यापकत्वविशिष्टविशेषणतासंसर्गक-पृथिवीत्वावच्छिन्नविशे-
 व्यकेतरभेदप्रकारकबुद्धेरित्यर्थः, 'व्यतिरेकसाध्यत्वादिति व्यतिरेक-
 सहचारज्ञानजन्यव्याप्तिज्ञानेन जननसम्भवाच्चेत्यर्थः, समानाकार-
 सिद्धेरेव प्रतिबन्धकत्वात् तथाच पृथिवीत्वस्यैव पक्षतावच्छेदकत्व-
 हेतुत्वोभयवत्त्वेऽपि न क्षतिरिति भावः । ननु निरुक्तान्वयव्याप्ति-
 ज्ञानस्यैव व्यतिरेक्यनुमितिहेतुत्वे 'केवलव्यतिरेकी त्वसत्सपक्षः' इति
 प्रागुक्तलक्षणमसम्भवि व्याप्तिग्रहस्यैव साध्यान्वयग्रहरूपत्वादित्यस्वर-
 सादाह, 'यदेति, 'व्यतिरेकव्याप्तेरेवेति व्यतिरेकसहचारज्ञानजन्य-
 व्यतिरेकव्याप्तिज्ञानस्यैवेत्यर्थः, 'अन्वयेनेति अन्वयेन साध्येन सह
 गम्य-गमकभावः व्यतिरेक्यनुमितिं प्रति जनकत्वमिति यावत्,
 कुत्रचित् 'अन्वये गम्य-गमकभावः' इति पाठः, तत्र 'व्यतिरेक-
 व्याप्तेरेवेति पञ्चमी, व्यतिरेकसहचारज्ञानजन्यव्यतिरेकव्याप्तिज्ञान-

सामग्रां सत्यामप्यनुमितिविशेषसामग्रीविरहादनु-
मित्यनुत्पत्तेः विशेषसामग्रीसापेक्षाया एव सामान्य-
सामग्रा जनकत्वात् अन्वयि-व्यतिरेकिविशेषद्वयसा-
मग्री च नास्त्येव ।

सहचारादित्यर्थः, 'अन्वये' साध्य-हेतू, तत्र गम्य-गमकभाव इत्य-
र्थोऽनुसन्धेयः ।

केचित्तु ननु केवलव्यतिरेकिण्यपि अन्वयव्याप्तिज्ञानस्यैव हेतुत्वे
पृथिवीतरेभ्यो भिद्यते इत्याद्यप्रसिद्धसाध्यककेवलव्यतिरेक्यनुमितिर्न
स्यात् साध्यस्याप्रसिद्धा व्यापकसामानाधिकरणरूपान्वयव्याप्तिज्ञान-
स्यासम्भवात् तत्र । न च पृथिवीतरावृत्तित्वात्मकान्वयव्याप्तिज्ञाना-
देव तत्रानुमितिरिति वाच्यम् । केवलान्वयित्वग्रहदृष्टायामसम्भवेन
तज्ज्ञानस्यानुमित्यहेतुत्वादित्यत आह, 'यदेति, न च साध्याप्रसिद्धा
व्यतिरेकव्याप्तिज्ञानस्याप्यसम्भव इति वाच्यम् । अनुपदं स्वयमेवो-
पपादयिष्यमाणत्वात् इति व्याचक्रुः ।

स्वरूपयोग्यत्वे फलोपधायकत्वं मानमाह, 'साध्याभावेति साध्या-
भावव्यापकसाधनाभावाभावस्य साधनस्य ज्ञानेनेत्यर्थः, 'साधनात्'
अनुमितिजननात् । नन्वनुमित्युपधायकत्वमेव तत्रासिद्धमित्यत-
आह, 'व्यापकाभाव इति साध्याभावव्यापकस्य साधनाभावस्य अभावे
साधने निश्चित इत्यर्थः, 'व्याप्याभावेति व्याप्याभावस्य साध्यस्यानु-
मितेरनुभवसिद्धत्वादित्यर्थः । 'नन्वेवमिति, 'एवं' व्यतिरेकव्याप्तिपरा-
मर्शस्यैव तत्र हेतुत्वे, 'न साद्युमितिरिति, 'स्यादिति' शेषः, 'लिङ्ग-

ननु पृथिवी इतरेभ्यो भिद्यते पृथिवीत्वादिति
व्यतिरेकिणि साध्यमसिद्धं तथाच न व्यतिरेकिनिरू-

परामर्शेति अन्वयव्याप्तिप्रकारकपञ्चधर्मताज्ञानेत्यर्थः । नन्वन्वयव्याप्ति-
परामर्शवद्भ्यतिरेकव्याप्तिपरामर्शानन्तरमप्यनुमितेरनुमिनोमीत्यनु-
व्यवसायसिद्धतया व्यतिरेकव्याप्तिपरामर्शोऽपि तद्धेतुरित्यत आह,
'अन्यथेति उभयपरामर्शस्यैवानुमितित्वावच्छिन्नं प्रति हेतुत्व इत्यर्थः,
'अननुगमः' परस्परं व्यभिचारः । 'अनुमितिमात्र इति अनुमितित्वा-
वच्छिन्ने इत्यर्थः, 'व्याप्तिज्ञानस्य' अन्वय-व्यतिरेकान्यतरव्याप्तिज्ञानस्य,
'प्रयोजकत्वादिति प्रतियोगित्वादिज्ञानत्वेन ज्ञानत्वेन वा प्रयोजक-
त्वादित्यर्थः । 'अतिप्रसङ्ग इति पञ्चधर्मताज्ञानं विनापि प्रतियोगि-
त्वादिज्ञानमात्रात् अनुमितिप्रसङ्ग इत्यर्थः, 'अनुमितिविशेषेति
अन्वय-व्यतिरेकपरामर्शरूपानुमितिविशेषसामग्रीत्यर्थः, तत्कार्यता-
वच्छेदके अन्वयानुमितित्वे व्यतिरेकानुमितित्वे च परस्परव्यावृत्तानु-
मितित्वव्याप्यजाती तादृशपरामर्शव्यवहितोत्तरानुमितित्वे वेति
भावः । ननु तथापि सामान्यसामग्रीमर्थ्यादया सामान्यकार्यापत्ति-
दुर्वारैवेत्यत आह, 'विशेषेति, 'अन्वयीति अन्वयानुमिति-व्यतिरे-
कानुमितिरूपविशेषद्वयेत्यर्थः, 'नास्त्येवेति, अतिप्रसङ्गस्थल इति
शेषः^(१) ।

(१) दीर्घतित्वात् नास्त्येवेत्यन्तं के वलव्यतिरेकिमूलं व्याख्याय अवयवादि-
हेत्वामासान्तं मूलं व्याख्यातवानिति ।

पणं, न वा पक्षत्वं, न वा लिङ्गजन्यसाध्यविशिष्टतज्ज्ञानं
तेषां साध्यज्ञानजन्यत्वात् । अथ साध्यं प्रसिद्धं तदा
यत्र प्रसिद्धं तत्र हेतोरवगमेऽन्वयित्वं अनवगमे असा-
धारण्यम् । किञ्च इतरभेदे न स्वरूपं अधिकरण-प्रति-
योगिनोः पृथिवी-जलाद्योरनुमानात् प्रागेव सिद्धेः ।
नापि वैधर्म्यं जलादिनिष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वं,

‘नन्विति, ‘साध्यं’ साध्यतावच्छेदकविशिष्टसाध्यं, ‘न वा पक्षत्व-
मिति तस्य साध्यसन्देहरूपत्वात् साध्यसिषाधयिषाघटितत्वादेति
भावः । ‘साध्यविशिष्टतज्ज्ञानमिति साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नविशिष्ट-
तज्ज्ञानमित्यर्थः, ‘साध्यज्ञानेति साध्यतावच्छेदकप्रकारकसाध्यज्ञाने-
त्यर्थः । न च प्रतियोगितावच्छेदकप्रकारकप्रतियोगिज्ञानस्याभावधी-
हेतुतया साध्यतावच्छेदकविशिष्टसाध्यप्रसिद्धिं विना व्यतिरेकज्ञाना-
सम्भवेऽपीतरभेदस्य च खण्ड्यः प्रसिद्धिसत्त्वेन विशेष्ये विशेषणमिति
रौत्या साध्यतावच्छेदकप्रकारकसाध्यविशिष्टज्ञानसम्भवइति वाच्यम् ।
साध्यतावच्छेदकरूपेण साध्यज्ञानं विना तेन रूपेण साध्यप्रकारका-
नुमितिर्न जायत इति सर्वानुभवसिद्धत्वात् । अत एव साध्यताव-
च्छेदकरूपेण साध्यप्रकारकानुमितेर्विशिष्टनिरूपितवैशिष्ट्यविषयता-
शालितानियम इति सिद्धान्त इति भावः । ‘अन्वयित्वमिति अन्वय-
सहचारज्ञानादेव व्याप्तिज्ञानमित्यर्थः, किं गुरुतरव्यतिरेकसहचार-
ज्ञानस्य हेतुत्वेनेति भावः । इदमुपलक्षणं प्रागुक्तव्यतिरेकलक्षणस्या-
यसम्भव इत्यपि बोध्यं । ननु अनवगमेऽपि वस्तुगत्या नासाधारण्यं

तद्वि पृथिवीत्वादिकं तच्च सिद्धमेव । न च जलादि-
निष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वेन पृथिवीत्वं न सिद्धमिति
वाच्यं । जलादौ पृथिवीत्वात्यन्ताभावग्रहदशयां पृथि-
वीत्वेऽपि तत्प्रतियोगित्वग्रहात् । अन्योन्याभावस्तु
भेदेऽपि साध्यं सम्भवति वैधर्म्यज्ञानसाध्यत्वाद-
न्योन्याभावग्रहस्य, तथापि जलादिप्रतियोगिकान्यो-
न्याभावस्याप्रसिद्धिः । न च जलादिप्रत्येकान्योन्या-

किन्तु तद्ग्रह एवेत्यस्वरसादाह, 'किञ्चेति, 'स्वरूपं' अधिकरण-
प्रतियोगिनोः स्वरूपं, 'प्रागेव सिद्धेरिति । इदमापाततः स्वरूप-
सिद्धावपि इतरभेदत्वेन पृथिव्यां तदसिद्धेः, वस्तुतोऽनुगतधीबलात्
अन्योन्याभावस्यातिरिक्तस्यावश्यकत्वे तत एव प्रतीति-व्यवहारयो-
रुपपत्तेश्च स्वरूपस्याभेदत्वकल्पने गौरवान्मानाभावाच्चेत्येव तत्त्वं,
'वैधर्म्यमित्यस्यैव विवरणं 'जलादीति, 'तद्धीति तादृशप्रतियोगित्वं'
हीत्यर्थः, प्रतियोगित्वस्य प्रतियोगिरूपत्वादिति भावः । 'जलादा-
विति, व्यतिरेकस्याभिग्रहार्थं तस्यावश्यकत्वादिति भावः । ननु अन्यो-
न्याभावरूपो भेदः साध्य इत्यत आह, 'अन्योन्याभावस्त्विति, 'वैध-
र्म्येति, प्रकृते च पृथिवीत्वमेव वैधर्म्यमिति भावः । 'तथापीति
जलादिप्रतियोगिकपृथिवीतरत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकसामान्यान्यो-
न्याभावस्याप्रसिद्धिरित्यर्थः । 'जलादिप्रत्येकेति जलत्वाद्यवच्छिन्नप्रति-
योगिकेत्यर्थः, 'असाधारणेति जलभेदवत्तया निश्चिते वाक्यादौ

भावः साध्यः, असाधारण्यप्रसङ्गात् । अथ पृथिवी तेजोभिन्ना न वेति संशयेन तेजोभिन्नत्वेऽवगते पृथिवी तेजोभिन्ना सती जलादिद्वादशभिन्ना न वेति संशये तेजोभिन्नत्वे सति जलादिद्वादशभिन्नत्वं प्रसिद्धं तदेव साध्यम् एकविशेषणविशिष्टे विशेषणान्तर-बुद्धेरेव विशिष्टवैशिष्ट्यज्ञानत्वात्, एवञ्च संशयप्रसिद्धं साध्यमादाय व्यतिरेकादिनिरूपणम् । यद्वा पृथिवी

पृथिवीत्वस्यावर्त्तमानत्वादिति भावः । कचिच्च 'अतिप्रसङ्गादिति पाठः तत्र वाच्यादावतिप्रसक्तत्वादित्यर्थः, तथाचासाधारण्यमिति भावः । 'तेजोभिन्ना न वेति तेजोभिन्नत्वञ्च जलादौ प्रसिद्धमिति भावः । 'तेजोभिन्नत्वेऽवगते' तेजोभिन्नत्वप्रकारेण पृथिव्यामवगतायामित्यर्थः, एतेनाग्निमसंग्रयोपयुक्तधर्मितावच्छेदकविशिष्टधर्मिज्ञानं सम्पादितं । 'पृथिवी तेजोभिन्नेति तेजोभिन्ना पृथिवी जलादिद्वादशभेदवती न वेत्यर्थः, अत्र द्वादश भेदाः कोटयः, 'जलादिभिन्नत्वमिति जलादिद्वादशभिन्नत्वमित्यर्थः^(१) । ननु तेजोभिन्नत्वविशिष्टजलादि-द्वादशभिन्नत्वं कथमुक्तसंग्रयेन प्रसिद्धं तेन विशृङ्खलस्य तेजोभिन्न-त्वस्य जलादिद्वादशभिन्नत्वस्य चावगाहनेऽपि विशिष्टस्य पूर्वमप्रसिद्धे-रित्यत आह, 'एकेति, तथाचोक्तसंग्रयस्यापि विशिष्टवैशिष्ट्यज्ञान-

(१) 'जलादिद्वादशभिन्नत्वं' इत्यत्र 'जलादिभिन्नत्वं' इति कस्यचिन्मूल-
पुस्तकस्य पाठमनुसृत्य ईदृशव्याख्यानं कृतं रहस्यकृतेति सम्भाव्यते ।

जलभिन्ना न वेत्यादि प्रत्येकं त्रयोदशसंशयविषयाणां
त्रयोदशान्योन्याभावानां समुदायः पृथिव्यामवगतो
व्यतिरेकादिनिरूपकः । न चैवं पृथिव्यामेव साध्य-
प्रसिद्धेर्व्यतिरेकिवैयर्थ्यं, साध्यनिश्चयार्थं व्यतिरेकि-
प्रवृत्तेः । न चासाधारण्यं, समुदितान्योन्याभावानां

रूपतया विशेष्यतावच्छेदकीभूतं तेजोभिन्नत्वं सामानाधिकरण्यसंसर्गेण
विधेये जलादिद्वादशभिन्नत्वे प्रकारीभूय भासते विशिष्टवैशिष्ट्यबोधे
विशेष्यतावच्छेदकस्य सामानाधिकरण्यसंसर्गेण विधेये प्रकारत्वनिय-
मादिति भावः । 'व्यतिरेकादौति, 'आदिना पक्षे साध्यतावच्छे-
दकावच्छिन्नसाध्यवैशिष्ट्यस्य परिग्रहः, तदिदं तेजोभिन्नत्वविशिष्ट-
जलादिद्वादशभेदाः साध्या इत्यभिप्रेत्योक्तं । तेजोभिन्नत्वविशिष्ट-
जलभेदः तद्विशिष्टो वायुभेद इति क्रमेण परस्परविशिष्टभेदः साध्य-
इत्यभिप्रेत्याह, 'यद्वेति, 'पृथिवी जलभिन्ना न वेत्यादौति^(१) आदौ
पृथिवी जलभिन्ना न वेति संशयः, ततो जलभिन्ना पृथिवी
तेजोभिन्ना न वेति संशयेन जलभिन्नत्वविशिष्टतेजोभिन्नत्वे प्रसिद्धे
जलभिन्नत्वविशिष्टतेजोभेदवती पृथिवी वायुभेदवती न वेति संशय-
इति क्रमेण त्रयोदशसंशयविषयेत्यर्थः, 'समुदाय इति, 'समुदायः'

(१) अस्मत्संहितेषु त्रिषु मूलपुस्तकेषु पुस्तकद्वये 'पृथिवी जलभिन्ना'
इत्यत्र 'पृथिवी इतरभिन्ना' इति पाठोवर्त्तते परन्त्वयं मधुरानाथ-
पुस्तकमूलपाठविरुद्धत्वात् न समीचीनः ।

साध्यत्वे सपक्षाभावादिति चेत् । न । साध्यनिश्चये हि साध्यव्यतिरेकनिश्चयोभवत्येव साध्यसन्देहे तद्व्यतिरेक-
संशयस्य वज्रलेपत्वात् तथाच संशयरूपा-साध्यसिद्धि-
रिति शिष्यबन्धनम् । एतेन पृथिवी जलादिभ्योभि-
न्नेति विप्रतिपत्तिरूपवादिवाक्यादाकाङ्क्षादिमतेऽ-

ऐकाधिकरणं, ऐकाधिकरणविशिष्टत्रयोदशान्योन्याभावा इत्यन्वयः,
'पृथिव्यामवगत इति पृथिव्यां प्रसिद्धाः सन्तो व्यतिरेकादिनिरू-
पका इत्यर्थः । 'साध्यनिश्चयार्थमिति, पृथिव्यां साध्यप्रसिद्धेः संशय-
रूपत्वादिति भावः । 'समुदितेति ऐकाधिकरणावच्छिन्नेत्यर्थः,
'तद्व्यतिरेकसंशयस्येति, तथाच जलादावपि साध्यव्यतिरेकसन्देहात्
कथं तत्र व्यतिरेकव्याप्तिनिश्चयः स्यादिति भावः । इदमापाततः
पृथिव्यां साध्यसन्देहसत्त्वेन तत्र व्यतिरेकनिश्चयसम्भवेऽपि जलादौ
तद्व्यतिरेकनिश्चये बाधकाभावात्, न ह्येकत्र सन्देहे सर्वत्र सन्देहः,
पृथिव्यां रूपादिसन्देहेऽपि वायौ तदभावनिश्चयस्यानुभविकत्वात् जले
जलभेदाभावग्रहसत्त्वेन विशेषदर्शनसत्त्वाच्च एकदेशविरहनिश्चयस्यापि
समुदायसंशयविरोधित्वात् । न च प्रतियोगिमत्तानिश्चयस्याभाव-
निश्चयहेतुत्वात् कथं जले तद्व्यतिरेकनिश्चय इति वाच्यम् । तादृश-
कार्य-कारणभावान्तरे मानाभावात् लाघवेन प्रतियोगितावच्छेदक-
निश्चयमात्रस्याभावप्रत्यक्षहेतुत्वात् । अथ जलादौ साध्याभावनिश्चयः
कथं स्यात् मनोभेदस्यापि प्रविष्टत्वेनायोग्यतया प्रत्यक्षासम्भवात् ।

पूर्वार्थप्रतिपादकात् साध्यप्रसिद्धिरिति परास्तम् ।
वाक्यादेव पृथिव्यां साध्यसिद्धेर्व्यतिरेकिवैयर्थ्यात् । न
च तदुद्धौ वादिवाक्यजन्यत्वेनाप्रामाण्यसंशयात् निश्च-
येऽपि संशय इति तन्निश्चयार्थं व्यतिरेकीति वाच्यं ।

न च जलं तेजोभिन्नत्वविशिष्टजलादिद्वादशभेदाभाववत् जलभेदा-
भाववत्त्वादित्यनुमानात् तत्सिद्धिरिति वाच्यम् । एतस्यापि व्यति-
रेकरूपत्वेन तादृशद्वादशभेदाभावाभावस्य कायनिश्चितत्वेन व्यति-
रेकव्याप्तिनिश्चयासम्भवादिति चेत् । न । साध्याभावोपस्थिति-
जलेन्द्रियसन्निकर्षयोः सत्त्वेनोपनीतनिश्चये बाधकाभावादिति ।
वस्तुतस्तु पृथिवी तेजोभिन्ना न वेति संग्रहानन्तरं तेजोभिन्ना
पृथिवी जलादिद्वादशभिन्ना न वेति संग्रहो हि तेजोभिन्नत्वांगे
संग्रहाकार एव भविष्यति संग्रहसामग्रीसत्त्वात् तथाचापसिद्धान्तः
धर्मितावच्छेदकांगे संग्रहाकारसंग्रहस्यास्माभिरनङ्गीकारात् । अत-
एव धर्मिणि धर्मितावच्छेदकप्रकारकनिश्चयो गुरुरपि प्राचीनैः
संग्रहे हेतुरुच्यते ।

किञ्च विशिष्टवैशिष्ट्यबोधे विशेष्यतावच्छेदकं सामानाधिकरण्य-
प्रसर्गेण विधेये प्रकारौभूय भासते इत्यत्र मानाभावः । किन्तु
विशेष्यतावच्छेदकविशिष्टे विधेयवैशिष्ट्यमात्रं तद्विषयः तथाच कथ-
मुक्तसंग्रहेन साध्यतावच्छेदकप्रकारेण विशिष्टसाध्यप्रसिद्धिरित्येव
दूषणं सारं । 'एतेनेति, 'जलादिभ्योभिन्नेतीति, 'विप्रतिपत्तिरूपेति

तर्हि संशयप्रसिद्धं साध्यं तस्य च न व्यतिरेकनिश्चय-
कत्वमित्युक्तत्वात् स्वार्थानुमाने तदभावाच्च ।

इति श्रीनङ्गेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ
अनुमानाख्यद्वितीयखण्डे केवलव्यतिरेकानुमानपूर्व-
पक्षः ।

प्रतिवाद्यभिमतसाध्यविरोधिकोटिप्रतिपादकेत्यर्थः, 'वादिवाक्यादिति
वाद्युक्तप्रतिज्ञावाक्यादित्यर्थः, 'अपूर्वार्थप्रतिपादकादिति पूर्वाप्रतीत-
स्यापि विशिष्टार्थस्य विशिष्टे विशेषणमिति रीत्या प्रतिपादकादि-
त्यर्थः, 'व्यतिरेकवैयर्थ्यादिति व्यतिरेकिणो व्यतिरेकसहचारज्ञान-
जन्यव्याप्तिज्ञानस्य तत्रानुमितिजनकत्वाभ्युपगमवैयर्थ्यादित्यर्थः, 'संश-
यः' तदुत्तरं संशयः स्यादित्यर्थः, 'तन्निश्चयार्थं' अगृहीताप्रमाण-
कतन्निश्चयार्थं, 'व्यतिरेकी' व्यतिरेकिणो यथोक्तव्याप्तिज्ञानस्य तत्रा-
नुमितिजनकत्वाभ्युपगमः । 'संशयप्रसिद्धमिति अप्रामाण्यसंशयाक्रान्त-
निश्चयविषयीभूतमित्यर्थः, 'तस्य च' तादृशनिश्चयस्य च, 'उक्तत्वात्'
सकलप्रामाणिकैरुक्तत्वात्, 'तदभावाच्चेति वादिवाक्यात् साध्यप्रसि-
द्धेरसम्भवाच्चेत्यर्थः, ।

इति श्रीमथुरानाथतर्कवागीश-विरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये
अनुमानाख्यद्वितीयखण्डरहस्ये केवलव्यतिरेकानुमानपूर्वपक्षरहस्यं ।

अथ केवलव्यतिरेक्यनुमानसिद्धान्तः ।

—००:०:००—

उच्यते घटादावेवेतरसकलभेदस्य प्रत्यक्षतः प्रसिद्धिः
घटो न जलादिरिति प्रतीतेः । नन्वयमन्योन्याभावो न

अथ केवलव्यतिरेक्यनुमानसिद्धान्तरहस्यं ।

‘इतरसकलभेदस्येति पृथिवीतरत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेद-
स्येत्यर्थः, ‘न जलादिरिति न पृथिवीतर इत्यर्थः । यद्यपि पृथिवी-
तरत्वस्य पृथिवीसामान्यभेदरूपस्य भेदविशेषणतया अतीन्द्रियपृथि-
वीघटितत्वात्तदवच्छिन्नान्योन्याभावो घटादौ कथं लौकिकप्रत्यक्षगम्यः
अन्यथा गुरुतरघटान्योन्याभावोऽपि लौकिकप्रत्यक्षगम्यः स्यात्^(१) ।
तथापि स्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वसम्बन्धेन पृथिवीत्ववद्भेद एव
पृथिवीतरत्वं तच्च च पृथिव्या न प्रवेश इति भावः । इदमुपलक्षणं
पृथिवीतरत्वरूपेण पृथिवीतरस्य भेदत्वरूपेण भेदस्य च खण्डनः
प्रसिद्धत्वेन विशेष्ये विशेषणमिति न्यायेन पृथिवीतरभेद इति
निरधिकरणकसिद्धिसम्भव इत्यपि बोध्यं । अयोग्यधर्मानवच्छिन्न-
योग्यमात्रवृत्तिप्रतियोगिताकत्वमभावप्रत्यक्षे तन्त्रमिति प्राचीनमते

(१) तथाच यथा गुरुतरघटान्योन्याभावस्य अतीन्द्रियगुरुत्वघटितत्वेन
न प्रत्यक्षं तथा पृथिवीतरभेदस्यापि अतीन्द्रियपृथिवीघटितत्वेन
न नप्रत्यक्षमित्याशयः ।

प्रत्यक्षः अतीन्द्रियप्रतियोगिकाभावत्वात् परमाणुसंसर्गाभाववत् योग्यानुपलब्धेरभावग्राहकत्वात् नयने-

शङ्कते, 'नन्विति, 'अतीन्द्रियप्रतियोगिकाभावत्वादिति, अतीन्द्रिय-प्रतियोगिकत्वेन पृथिवीतरत्वस्यापि अतीन्द्रियतया अतीन्द्रिय-धर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वाच्चेत्यपि द्रष्टव्यं, 'परमाणुसंसर्गाभाव-वदिति, परमान्वन्योन्याभाववच्चेत्यपि बोध्यं । ननु परमाणुसंसर्गा-भावादेरपि घटादौ न कथं लौकिकाध्यक्षगम्यत्वं तत्र तदधिकरण-विशेष्यक-प्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धसंसर्गक-प्रतियोगितावच्छेदका-वच्छिन्नप्रतियोगिमत्त्वोपलभ्यमानान्याभावस्यैव तत्तदधिकरणेऽभाव-ग्राहकत्वात्तस्य च तत्रापि सम्भवादित्यत आह, 'योग्यानुपलब्धेरिति तत्तदिन्द्रिययोग्यतासहिताया एव निरुक्तानुपलब्धेस्तत्तदिन्द्रियजा-भावलौकिकप्रत्यक्षजनकत्वादित्यर्थः, तत्तदिन्द्रिययोग्यधर्मावच्छिन्न-तत्तदिन्द्रिययोग्यमात्रवृत्तिप्रतियोगिताकाभावत्वमेव चाभावस्य त-त्तदिन्द्रिययोग्यत्वं, तच्च विषयनिष्ठतया अभावत्वावच्छिन्नलौकिक-विषयतासम्बन्धेन चाक्षुषादिरूपतत्तदिन्द्रियजाभावप्रत्यक्षोत्पत्तौ हेतुः परमानुसंसर्गाभावादेः प्रत्यक्षानुत्पत्त्या तथैव कल्पनात् । गुरुत-रत्वविशिष्टघटत्वाद्यवच्छिन्नप्रतियोगिताकगुरुतरघटाभावादेः चाक्षु-षादिलौकिकसाक्षात्कारवारणाय अवच्छिन्नान्तं प्रतियोगिताविशे-षणं, घटत्वत्व-पटत्वत्वादेः प्रतियोगितावच्छेदकधर्मस्यातीन्द्रियतया(१)

(१) घटत्वत्वं घटेतरावृत्तित्वे सति सकलघटवृत्तित्वं तस्य च घटेतरा-न्तर्गतपरमान्वाकाशादिरूपातीन्द्रियघटिततया अतीन्द्रियत्वमिति तात्पर्यं ।

न्मीलनानन्तरं स्तम्भः पिशाचो न भवतीति प्रतीते-
र्बाधकबलेन वायुर्व्यातीति वल्लिङ्गग्रहेऽपक्षीणत्वादिति
चेत् । न । योऽह्यनुपलम्भोऽधिकरणे प्रतियोगिमत्त्व-

गुरुतरघटाभावादिवत्तादृशधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकजात्यभावमा-
त्रस्यैवाप्रत्यक्षत्वं सर्वसिद्धमेव दीधितिक्लृप्तापि पदार्थखण्डने तथा
लिखनात् अन्यथा सिद्धान्तेऽप्यगतेः किन्तु^(१) घटत्व-पटत्वादिजातीनां
तत्तद्भक्तित्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभाव एव लौकिकप्रत्यक्षगम्यः
जात्यभावप्रत्यक्षत्वप्रतिपादकः प्राचां ग्रन्थोऽपि तादृशजात्यभावपरः^(२)
इत्यतो न तद्विरोधोऽपि^(३) । जातिनिष्ठतत्तद्भक्तित्वञ्च^(४) तादात्म्यसम्ब-
न्धेन तत्तज्जातिरेवेति तद्योग्यमेव । तत्तद्गन्ध-तत्तद्रसवत्त्वाद्यव-
च्छिन्नप्रतियोगिताक-तत्तद्द्रव्यव्यक्त्यभावस्य घ्राणज-रासनादिसाक्षात्-
कारवारणाय वायौ रूपसामान्याभावस्य चक्षुषसाक्षात्कारवारणाय^(५)

- (१) नन्वतीन्द्रियधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावस्यातीन्द्रियत्वे घटत्वं
नास्ति इत्यादि प्रत्यक्षप्रतीतेः का गतिरित्यत आह, किन्त्विति ।
(२) तत्तद्भक्तित्वावच्छिन्न-घटत्वादिजात्यभावाभिप्रेत इत्यर्थः ।
(३) न प्राचीनग्रन्थविरोधोऽपीत्यर्थः ।
(४) ननु घटत्वगततद्भक्तित्वं तत्तादात्म्यविशिष्टघटत्वत्वं अतस्तद्दोषतादव-
स्यमित्यत आह, जातिनिष्ठेति ।
(५) अनुद्भूतरूपस्य चक्षुर्योग्यत्वाभावात् रूपसामान्याभावस्य न चक्षु-
र्योग्यमात्रवृत्तिप्रतियोगिताकत्वमिति तात्पर्यम् ।

विरोधी सोऽभावं ग्राहयति न तु योग्यानुपलब्धिमा-
त्रम् अथवा वायौ रूपाभावप्रतीतिवत् जलपरमाणौ

च वृत्त्यन्तं प्रतियोगिताविशेषणं, तत्तद्गन्धवत्त्व-तत्तद्रसवत्त्वाद्यवच्छिन्न-
प्रतियोगिताकतत्तद्द्रव्यव्यक्त्यभावस्य चाक्षुषतावारणाय प्रथमं तत्त-
त्पदं, द्वितीयतत्तत्पदञ्च तादृशस्यैवाभावस्य घ्राणज-रासनादिप्रत्यक्ष-
तापत्तितादवस्थवारणायैति भावः । नन्वेवं नयनोन्मीलनानन्तरं
स्तम्भः पिशाचो न भवतीति प्रत्ययोन स्यादित्यत आह, 'नयनेति,
'लिङ्गग्रहोपक्षीणत्वादिति लिङ्गग्रहजन्यत्वादित्यर्थः, नयनोन्मीलना-
नुविधानन्तु लिङ्गग्रहार्थमिति भावः । निरुक्तयोग्यत्वस्य व्यतिरेक-
व्यभिचारान्न कारणत्वसम्भव इत्याह, 'यो ह्यनुपलम्भ इति, 'हि'
यस्मात्, 'यः' देशः, 'अनुपलम्भः' प्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्ध-
संसर्गक-प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिमत्तानिश्चयाभाववि-
शिष्टः, न विद्यते उपलम्भोयत्र इति व्युत्पत्तेः, 'अधिकरण इति
निर्द्धारणे सप्तमी, तथाचाधिकरणेषु मध्ये निरुक्तनिश्चयाभाव-
विशिष्टो योदेशः 'प्रतियोगिमत्त्वविरोधी' प्रतियोगितावच्छेदक-
सम्बन्धसंसर्गकाधिकरणत्वसम्बन्धेन प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नप्रति-
योगिमत्तया आपादितसाक्षात्कारकः, 'सः' देशः, 'अभावं ग्राह-
यति' अतीन्द्रियप्रतियोगिकस्याप्यभावस्य लौकिकसाक्षात्कारविषयो
भवति, यथा योग्यद्रव्यवृत्तिगुण-कर्म-सामान्यादिकं रूपसामान्या-
भावस्य, घटादिः स्नेहसामान्याभावस्य, तद्भूतरूपवान् परमाणुर्महत्त्व-
सामान्याभावस्य, महान् वायुरुद्भूतरूपसामान्याभावस्य च लौकिक-

पृथिवीत्वाभावग्रहप्रसङ्गात् अधिकरणे प्रतियोगिस-
त्त्वञ्च तर्कितं यदि हि स्तम्भः पिशाचः स्यात् स्तम्भव-

प्रत्यक्षविषयः, अयं गुणादिर्यदि चक्षुःसंयुक्तमहत्त्ववदुद्भूतरूपवत्सम-
वेतत्वे सति रूपवान् स्यात् चाक्षुषवान् स्यात्, घटो यदि महत्त्वोद्भूत-
रूपवत्त्वे चक्षुरादिसंयुक्तत्वे च सति स्नेहवान् स्यात् चाक्षुषवान् स्यात्,
पृथिवीपरमाणुर्यदि उद्भूतरूपवत्त्वे चक्षुरादिसंयुक्तत्वे च सति महत्त्ववान्
स्यात् चाक्षुषवान् स्यात्, महान्वायुर्यदि महत्त्वे सति चक्षुरादिसं-
युक्तत्वे च सत्युद्भूतरूपवान् स्यात् चाक्षुषवान् स्यात्, इत्यापादने मूल-
शैथिल्यविरहादित्यर्थः, 'न त्विति तु शब्दः अतदित्यर्थे, नातो निरु-
क्तयोग्यतासहितैव निरुक्तानुपलब्धिरभावलौकिकप्रत्यक्षे कारणं व्यति-
रेक्यभिचारादित्यर्थः । ननु योग्यद्रव्यवृत्तिगुण-कर्म-सामान्यादिषु
रूपसामान्याभावादीनां लौकिकप्रत्यक्षमेवासिद्धं पराणुसंसर्गाभाव-
लौकिकप्रत्यक्षवारणाय लाघवान्निरुक्तयोग्यताया एवाभावनिष्ठतया
अभावलौकिकप्रत्यक्षकारणत्वकल्पनादन्यथा तत्र तेषां लौकिकप्र-
त्यक्षाभ्युपगमे मनोवाच्यादावपि तेषां लौकिकप्रत्यक्षापत्तिवारणाय
यत्राधिकरणे तादृशापादनं न सम्भवति अनन्ततत्तदधिकरणभेदस्या-
धिकरणनिष्ठतया वक्ष्यमानक्रमेण तत्तदभावलौकिकप्रत्यक्षकारण-
त्वकल्पने महागौरवापत्तिरित्यत आह, 'अन्यथेति निरुक्तयोग्यताया-
एवाभावलौकिकप्रत्यक्षकारणत्वे इत्यर्थः, 'रूपाभावप्रतीतिवदिति,
रूपाभावपदं महत्त्वसमानाधिकरणोद्भूतरूपाभावपरं घटादिवृत्ति-
तत्तद्रूपाभावपरं वा, पूर्वपक्षिनये तस्यातीन्द्रियप्रतियोगिकत्वेनाप्रत्य-

दुपलभ्येत न पिशाचानुपलम्भः स्यात् । न च पृथिवी
जलाद्भिद्यते जलावृत्तिधर्मवत्त्वात् तेजोवत् एवमन्ये-

क्षत्वात् सिद्धान्तिनयेऽपि वायौ तत्प्रत्यक्षानभ्युपगमात्, 'पृथिवीत्वा-
भावप्रत्ययेति^(१) तत्तद्व्यक्तित्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकपृथिवीत्वाभाव-
लौकिकचाक्षुषप्रसङ्गादित्यर्थः, निरुक्तयोग्यतायास्तादृशपृथिवीत्वा-
भावे सत्त्वात् ।

ननु परमाणौ पृथिवीत्वाभावलौकिकचाक्षुषः किं परमाण्वंशे-
ऽलौकिकरूप आपाद्यते स्थूलजले पृथिवीत्वाभावेन समं लौकिक-
सन्निकर्षदशायां परमाण्वंशे उपनीतभानाद्यात्मकस्य पृथिवीत्वाभा-
वलौकिकचाक्षुषस्येष्टत्वात् । न च परमाणुघटितचक्षुःसन्निकर्षेण पृथि-
वीत्वाभावलौकिकचाक्षुष आपाद्यते इति वाच्यं । चक्षुःसंयुक्तमहदुद्भूत-
रूपवद्विशेषणतायाः पृथिवीत्वाद्यभावग्राहकतया तद्वघटितसन्निक-
र्षेण तच्चाक्षुषासम्भवात् परमाणुसन्निकर्षदशायां पृथिवीत्वशून्ययोग्य-
पदार्थान्तरसन्निकर्षस्यावश्यकतया तदानीं पृथिवीत्वाभावसाक्षात्का-
रस्यावश्यकत्वेन तत्र परमाणुघटितसन्निकर्षजन्यत्वाभावस्य शपथनिर्ण-
यत्वाच्चेति चेत् । न । परमाण्वाद्यंशे उपनीतभानात्मकोऽपि पर-
माण्वादिवैशिष्ट्यावगाहिपृथिवीत्वाद्यभावलौकिकचाक्षुषो न भवति
इति सिद्धान्तात्, परमाणौ पृथिवीत्वाभावसाक्षात्कारो न भवति

(१) पृथिवीत्वाभावप्रत्ययप्रसङ्गादित्यपि कस्यचिन्मूलपुस्तकस्य पाठो मधु-
रानाथस्वरसेनानुमीयते ।

भ्योऽपि भेदसिद्धौ द्वादशभिन्नेति विशेषणं दत्त्वा समवा-
यभेदसाधनादन्वयिन एव पृथिव्यां त्रयोदशभेदसिद्धि-

वायौ रूपसामान्याभावसाक्षात्कारो न भवतीत्यादिसकलप्रामाणिक-
सिद्धान्तप्रवादान्यथानुपपत्त्या तथैव सिद्धान्तस्य निर्णीतत्वादेवं सर्वत्र ।
न चैवं सिद्धान्ते स्थूलजले पृथिवीत्वाभावप्रत्यक्षानन्तरं पृथिवीत्वा-
भावसामान्यलक्षणप्रत्यासत्त्या पृथिवीत्वाभावप्रकारेण परमाणोश्चा-
क्षुषो न स्यात् इति वाच्यं । तत्र पृथिवीत्वाभावनिष्ठालौकिकप्रका-
रतानिरूपितविषयताया एव परमाणवभ्युपगमात् तन्निष्ठलौकिक-
प्रकारतानिरूपितविषयतायास्तु सन्निकष्टस्थूलजलमात्रवृत्तित्वादिति
भावः । एतच्चोपलक्षणं निरुक्ततत्तदिन्द्रिययोग्यत्वं तत्तदिन्द्रियजन्य-
लौकिकसाक्षात्कारविषयत्वं तत्तदिन्द्रियजन्यलौकिकसाक्षात्काराप्र-
तिबन्धकत्वं वा, नाद्यः भूतलादौ घटादिसामान्याभावस्याप्यक्षाक्षुष-
तापत्तेः दैवात् त्वगादिमात्रगृहीतघटादिव्यक्तेरपि तत्प्रतियोगिकु-
चिनिचिप्तत्वात् । न द्वितीयः प्रतिबन्धकत्वाननुगमेनाननुगमताद-
वस्थ्यात् तत्तद्गन्धवत्त्व-तत्तद्रसवत्त्वावच्छिन्नतत्तद्द्रव्यव्यक्त्यभावस्यापि
घ्राणज-रासनादिप्रत्यक्षविषयतापत्तेः द्रव्यस्य घ्राणजादिप्रत्यक्षप्रतिब-
न्धकत्वे मानाभावात् गन्ध-तत्समवेतघ्राणजादिकं प्रति घ्राणसंयुक्त-
समवाय-घ्राणसंयुक्तसमवेतसमवायादेर्हेतुतथैव द्रव्यस्य घ्राणजप्रत्यक्षा-
पादनासम्भवात् । ननु समानेन्द्रियजन्य-प्रतियोगितावच्छेदकवि-
शिष्टप्रतियोग्याद्याव्यारोपस्याभावलौकिकप्रत्यक्षहेतुतया तदभावा-

रिति किं व्यतिरेकिणेति वाच्यं । जलादिभिन्ना सती
समवायभिन्नेति बुद्धावपि त्रयोदशभिन्नेति बुद्धेर्व्यतिरे-

देव जलपरमाणौ न पृथिवीत्वाभावलौकिकप्रत्यक्षं परमाणोरयोग्य-
तया तत्र चक्षुषा पृथिवीत्वारोपासम्भवादित्यत आह, 'अधिकरण-
इति जलपरमाणावित्यर्थः, 'प्रतियोगिसत्त्वञ्च' पृथिवीत्वाभावस्य
प्रतियोगिसत्त्वञ्च पृथिवीत्वाभावस्य प्रतियोगिसत्त्वमपि, 'तर्कितं'
विशेष्यतया सम्भवदाह्यारोपकं । नन्वेवं त्वं नयेऽपि योग्या-
धिकरणमादाय लौकिकसन्निकर्षदशायां उपनीतपरमाणुप्रका-
रको न कुतः पृथिवीत्वाभावलौकिकचाक्षुषः, कुतो वा वायौ
रूपं नास्ति वायौ स्नेहो नास्तीत्याद्युपनीतवायुप्रकारकोरूपसामा-
न्याभाव-स्नेहसामान्याभावयोर्न लौकिकचाक्षुषः, कुतो वा परमाणौ
महत्त्वं नास्तीति मनसि महत्त्वं नास्तीत्युपनीतपरमाणु-मनः-
प्रकारको न महत्त्वाभावलौकिकचाक्षुषः, कुतो वा मनसि पवनीय-
परमाणौ वा नोद्भूतरूपाभावस्य लौकिकचाक्षुषः, अभावानां योग्य-
त्वात् अन्यथा अन्यत्रापि तल्लौकिकचाक्षुषानुपपत्तेः विना च कार-
णभावं कार्याभावानभ्युपगमात् । अथ यस्मिन्नधिकरणे पञ्चवृत्ति-
धर्मविशेषितेन प्रतियोगिग्राहकतावच्छेदकावच्छिन्नातिरिक्तविशेषि-
तेन च तत्संसर्गकाधिकरणत्वसम्बन्धेन तद्धर्मावच्छिन्नत्वेन हेतुत्वात्त-
दिन्द्रियजन्यसाक्षात्कारवत्त्वमापादयितुं शक्यते तदधिकरण एव
तत्सम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावनिष्ठलौकिकविषयतासम्बन्धेन
तदिन्द्रियजन्यतादृशाभावप्रत्यक्षमुत्पद्यते न तु अन्यत्राधिकरण इति

किसाध्यत्वात् । न च घटस्यापि पक्षत्वादंशतः सिद्धसा-
धनं, सर्व्वा पृथिवीतरभिन्नेत्युद्देश्यप्रतीतेरभावात्, पक्ष

नियमः, यत्राधिकरणे नादृशापादनादिकं न सम्भवति तत्तदधि-
करणभिन्नत्वस्वरूपस्याधिकरणयोग्यत्वस्याधिकरणनिष्ठतया तादृश-
विषयतासम्बन्धेन तत्तदिन्द्रियजन्य-तत्तत्सम्बन्धावच्छिन्नाभावप्रत्यक्षो-
त्पत्तौ हेतुत्वादित्यञ्च परमाण्वादावेव तादृशपृथिवीत्वादिमत्त्वे च
चाक्षुषवत्त्वापादनासम्भवान्न तत्र चक्षुरादिना तदभावस्य योग्यस्यापि
ग्रहः, किन्तु योग्यजलादावेव तद्ग्रहः, घटादौ समवायसम्बन्धाव-
च्छिन्नप्रतियोगिताकस्नेहादिसामान्याभावस्तु चक्षुरादिना गृह्यत एव
घटो यदि चक्षुरादिसंयुक्त्वे सति महत्त्वोद्भूतरूपवत्त्वे च सति
स्नेहवान् स्यात् चाक्षुषवान् स्यात् इत्यापादनस्य मूलश्रियित्वविर-
हात् व्यर्थविशेषणत्वेष्टापत्त्योः सम्भवेऽपि मूलश्रैथिल्यविरहादेवापाद-
नादियोग्यतानपायात् आपत्त्यादेः सर्वत्रासम्भवात् व्याप्त्यादिभ्रम-
जन्यापाद्यव्यतिरेकादिभ्रमजन्यापत्त्यादेरतिप्रसक्तत्वाच्च योग्यताया एव
यथोक्तनियमघटकत्वात् सा च प्रकृते व्याप्तिमात्रं, नन्विष्टापत्त्यादि-
विरहेऽप्येति चेत्तर्हि चक्षुरादिना वाय्वादौ तद्व्यक्तित्वावच्छिन्नप्रति-
योगिताकस्तम्भत्वात्यन्ताभावप्रत्यक्षमपि न स्यात् वाय्वादौ स्तम्भत्व-
त्त्वेन साक्षात् साक्षात्कारवत्त्वापादानासम्भवात् गृहादिधारकस्यैव
स्तम्भपदवाच्यतया चक्षुःसंयुक्त्वे पिशाचात्मकस्तम्भे मूलश्रैथिल्यादि-
त्यत आह, 'यदि हीति, 'स्तम्भः पिशाचः स्यात्' चक्षुःसंयुक्तः कश्चित्
पिशाचः स्तम्भः स्यात्, 'स्तम्भवदुपलभ्येतेति सोऽपि पिशाचः पिशाच-

तावच्छेदकनानात्वे हि तत्, अतएवानित्ये वाङ्मनसे
इत्यचानित्या वागितिबुद्धेरुद्देश्यायाः सिद्धत्वादंशतः

स्तम्भान्तरवच्चाक्षुषः स्यादित्यर्थः, स्तम्भत्वस्य महत्त्वोद्भूतरूपवत्त्वनियत-
त्वादिति भावः । 'न पिशाचानुपलम्भः स्यात्' न सर्वः पिशाचो-
लौकिकसाक्षात्काराविषयः स्यात्, पिशाचत्वं लौकिकसाक्षात्कारा-
विषयत्वव्याप्यं न स्यादिति यावत्, तथाच पिशाचत्वस्य लौकिक-
साक्षात्काराविषयत्वव्याप्यत्वान्यथानुपपत्त्या स्तम्भत्वं न पिशाचवृत्तीति
यथोक्तनियमे न किमपि बाधकमिति भावः । वस्तुतस्तु पनसाम्रादि-
स्तम्भसाधारणस्य स्तम्भत्वस्य पिशाचवृत्तित्वे पनसत्वात्तत्त्व-पिशाचत्व-
मादाय साङ्कर्यापत्तेः किन्तु स्तम्भत्वं आन्नत्व-पनसत्वादिव्याप्यं नाना,
तच्च न पिशाचवृत्तिः पिशाचोऽपि यदि स्तम्भस्तदा तद्भाष्यस्तम्भत्वं
पिशाचत्ववदतीन्द्रियमेव तदत्यन्ताभावो न कापि लौकिकाध्यक्षगम्य-
इति यथोक्तनियमे न किमपि बाधकं इत्येव तत्त्वं । यथोक्तनियमस्य
प्रवृत्त्यवयवव्यावृत्तिरसत्कृते सिद्धान्तरहस्ये अभावग्राहकयोग्यता-
विचारे अनुसन्धेया । 'द्वादशभिन्नेति विशेषणमिति द्वादशभेदान्पक्षे
विशेषणीकृत्येत्यर्थः, 'समवायभेदसाधनादिति समवायावृत्तिधर्म-
वत्त्वादिरूपसमवायभेदसाधकाद्धेतोरित्यर्थः, 'अन्वयिन एवेति अन्व-
यसहचारज्ञानजन्यव्याप्तिज्ञानादेवेत्यर्थः, 'भेदसिद्धिरिति, अस्त्विति
शेषः, 'किं व्यतिरेकिण्येतीति किं व्यतिरेकसहचारज्ञानजन्यव्याप्तिज्ञा-
नस्यानुमितिकरणत्वेनेत्यर्थः । 'जलादिभिन्ना सतीति, विशिष्टाधि-
करणकवैशिष्ट्यबुद्धौ सामानाधिकरण्यसम्बन्धेन विशेष्यतावच्छेदकस्य

सिद्धसाधनम्, अन्यथानुमानमात्रोच्छेदात् पक्षस्य सिद्ध-
स्यैव साध्यत्वात्। न च घटः कथं पक्षः साध्यनिश्चयेन

विधेये प्रकारत्वादित्यभिमानः, 'वयोदगभिन्नेतीति पृथिवीतर-
त्वावच्छिन्नप्रतियोगिकभेदप्रकारकबुद्धेरित्यर्थः, 'व्यतिरेकिसाध्यत्वात्'
व्यतिरेकिण एव साध्यत्वात्, एवकाराद्ययोक्तहेतुकान्वयिव्यवच्छेदः।
'सर्वा पृथिवीति, पृथिवीत्वस्यावच्छेदकत्वस्फोरणाय सर्वपदं, 'इत्युद्देश्य-
प्रतीतेः' इत्याकारकफलीभूतानुमितिसमानाकारप्रतीतेः, पृथिवी-
त्वावच्छेदेन पृथिवीत्वधर्मितावच्छेदकक-पृथिवीतरभेदप्रकारकप्रती-
तेरिति यावत्, तथाच तद्वर्मावच्छेदेन यद्वर्मधर्मितावच्छेदककानु-
मितिं प्रति तद्वर्मावच्छेदेन तद्वर्मधर्मितावच्छेदककसिद्धेरेव प्रति-
बन्धकतया घटत्वावच्छेदेन घटे सिद्धिसत्त्वेऽपि पृथिवीत्वावच्छेदेन
पृथिवीत्वधर्मितावच्छेदककानुमितौ अविरोध इति भावः। ननु
तद्वर्मावच्छेदेन तद्वर्मावच्छिन्नविशेष्यकानुमितिं प्रति तदन्यधर्मा-
वच्छेदेन तदन्यधर्मावच्छिन्नस्वसमानविशेष्यताकसिद्धिरपि प्रति-
बन्धिका अनित्ये वाङ्मनसे वाङ्मनोऽन्यतरत्वादित्यादौ वाक्यता-
वच्छेदेन वाक्यत्वावच्छिन्नविशेष्यकसिद्धेरपि मनस्त्वावच्छेदेन मनस्त्वा-
वच्छिन्नविशेष्यकसमूहालम्बनानुमितिप्रतिबन्धकत्वात् तथाच घटत्वा-
वच्छेदेन घटत्वावच्छिन्नविशेष्यकसिद्धिसत्त्वे पृथिवीत्वावच्छेदेन पृथि-
वीत्वरूपेण घटे कथमनुमितिरित्यत आह, 'पक्षतावच्छेदकनामाले-
हीति तद्वर्मावच्छेदेन तद्वर्मावच्छिन्नविशेष्यकत्वे सति तदन्यधर्मा-

संशय-सिषाधयिषयोरभावादिति वाच्यं । सर्व्वा पृथिवी
इतरभिन्ना न वेति संशयस्य तत्प्रकारकसिषाधयिषा-
याश्च सामान्यतोऽघटविषयत्वात् घटत्वेन विशेषदर्शनं
सिद्धिर्वा अतस्तेन रूपेण संशय-सिषाधयिषे न स्तः पृथि-
वीत्वेन ते भवतः एव धूमवान् वह्निमानिति धूमवत्त्वेन
वह्निनिश्चयेऽपि पर्व्वते वह्निसंशयवत्, यद्वा सर्व्वत्वेन

वच्छेदेन तदन्यधर्मावच्छिन्नविशेष्यकानुमितौ हीत्यर्थः, 'तत्' तदन्य-
धर्मावच्छेदेन तदन्यधर्मावच्छिन्नस्वसमानविशेष्यकसिद्धेः प्रतिबन्धकत्वं,
'उद्देश्यायाः' उद्देश्यानुमितिविशेष्यतावच्छेदकावच्छिन्नविशेष्यिकायाः,
उद्देश्यानुमितिश्च मनस्त्वावच्छिन्नविशेष्यकसमूहालम्बनानुमितिः,
'सिद्धत्वात्' सत्त्वात्, 'अंगतः सिद्धसाधनं' अंगतः सिद्धेरेवोपधायकं
साधनं, वाक्यत्व-मनस्त्वावच्छिन्नविशेष्यकसमूहालम्बनानुमितेरनुप-
धायकं साधनमिति यावत् । ननु साधवात्तद्वर्त्मकसिद्धित्वेनैव
तद्वर्त्मकानुमितिसामान्यं प्रति प्रतिबन्धकता धर्मविशेषान्तर्भावस्था-
वश्यकत्वादित्यत आह, 'अन्यथेति यदि तद्वर्त्मकसिद्धित्वेनैव तद्वर्त्म-
कानुमितिसामान्यं प्रति विरोधित्वं तदेत्यर्थः, 'अनुमानमात्रेति
हेतु-साध्यसद्व्यपारघटकतया अधिकरणत्वरूपेण निखिलसाध्याधि-
करणे साध्यवत्त्वविषयकव्याप्तिज्ञानजन्यानुमितिमात्रोच्छेदापातादि-
त्यर्थः, 'पक्षस्येति सप्तम्यर्थे षष्ठी, 'सिद्धस्यैव' सद्व्यपारघटकतया
निश्चितस्यैव, 'साध्यत्वात्' तादृशानुमितौ विधेयत्वात् । 'न चेति,

रूपेण न पक्षता सर्वत्राविप्रतिपत्तेः घटाद्येकदेशे
 इतरभेदस्य प्रत्यक्षसिद्धत्वात् तथाचैकदेशे विप्रतिपत्तौ
 सामान्ये इतरभेदसाधने अर्थान्तरं, किन्तु सामान्येन
 पृथिवीत्वेन यावद्देव विप्रतिपत्तिविषयस्तावतामेव
 पक्षता विशेष्याननुगमात् । तर्हि पृथिवी इतरभिन्ना
 पृथिवीत्वाद्घटवदित्यन्वयिनैवेतरभेदस्य सिद्धत्वात् किं

सन्देह-सिषाधयिषयोरन्यतरस्य पक्षतात्ववादिनां प्राचां नय इति
 शेषः, 'पक्षः' अनुमित्युद्देशः । 'सर्वा पृथिवीति सकलपृथिव्या विशेषे-
 व्यत्वस्फोरणाय सर्वपदं, पृथिवीत्वरूपेण सकलपृथिवीविशिष्यकेतर-
 भेदसंशयस्येत्यर्थः, 'तत्प्रकारकेति पृथिवीत्वावच्छिन्नसकलपृथिवीवि-
 शेष्यकसिद्धित्वप्रकारकसिषाधयिषायास्येत्यर्थः, 'सामान्यतः' पृथिवी-
 त्वरूपेण, ननु घटे विशेषदर्शन-सिद्धिसत्त्वेन कथं संशय-सिषाधयिष-
 योस्तद्विषयत्वं ज्ञानार्देः स्वरूपसत एव स्वविषयकेच्छाविरोधित्वादि-
 त्यत आह, 'घटत्वेनेति, 'सिद्धिर्वेति, 'अत इति, 'पर्वते' पर्वतत्व-
 विशिष्टे, इदमुपलक्षणं प्रत्यक्षतः सिद्धिसत्त्वेऽपि अनुमितित्वादिरूपेण
 संशय-सिषाधयिषयोर्वाधकाभावाच्च, समानधर्मिकनिश्चयस्यैव संशय-
 विरोधित्वमते समाधत्ते, 'यदेति, 'सर्वत्वेनेति तस्याः पृथिव्या न
 पक्षतेत्यर्थः, 'अविप्रतिपत्तेः' असंशयात्, 'विप्रतिपत्तौ' संशये, 'सामान्य
 इति, सन्देहाविशिष्येऽपीति शेषः, 'इतरभेदसाधने' इतरभेदानु-
 मित्यभ्युपगमे, 'अर्थान्तरं' सिद्धान्तान्तरं, अपसिद्धान्त इति यावत्,

व्यतिरेकिणा, घटसाधारणपक्षत्वेऽप्यभेदानुमानवत्
पक्षस्यापि दृष्टान्तत्वाविरोधात् पक्षान्यत्वं हि तच्चा-
तन्त्रं, किन्तु साध्यवत्तया निश्चितत्वं प्रयोजकं । न च
पृथिवीत्वाग्रहे पूर्वं गृहीतं यच्च साध्यं पश्चात् स्मर्यते
तच्च हेतु-साध्यसामानाधिकरण्याग्रहाद्व्यतिरेकवतार-
इति वाच्यं । हेतोरेव पक्षतावच्छेदकत्वेन घटे पृथिवी-
त्वग्रहदशायामितरभेदसामानाधिकरण्यग्रहावश्यभा-

तद्वर्त्मकानुमितौ तद्वर्त्मकसंग्रहस्यैव प्राचीनमते पक्षतात्वादिति
भावः । 'अविप्रतिपत्तेरिति यथाश्रुतन्तु न संगच्छते स्वार्थानुमाने
विप्रतिपत्त्यभावेन विप्रतिपत्त्यभावस्य पक्षतात्वाभावाप्रयोजकत्वात् ।
'सामान्येति सकलपृथिवीनिष्ठेनेत्यर्थः, 'विप्रतिपत्तिविषयः' संग्रह-
विषयः, 'पक्षता' पृथिवीत्वावच्छेदेन पृथिवीत्वेनानुमित्युद्देश्यता,
'अननुगमादिति सर्वत्रेतरभेदस्यानिश्चयादित्यर्थः । शङ्कते 'तर्ही-
त्यादिना 'चेदित्यन्तेन, 'किं व्यतिरेकिणेति किं व्यतिरेकव्याप्युप-
न्यासेनेत्यर्थः, अत एवाग्रे व्याप्युपन्यासस्येति संगच्छते, पूर्वमतेऽप्यनु-
मितित्वमुपपादयति, 'अभेदानुमानवदिति अयं घटः पूर्वानुभूत-
घटाभिन्नः तद्घटवृत्तिविलक्षणसंस्थानवत्त्वादित्यादिस्यैर्यसाधका-
भेदानुमानवदित्यर्थः । 'पृथिवीत्वाग्रहइति यच्च स्थले पूर्वं गृहीतं
साध्यं उद्बोधकमहिम्ना पृथिवीत्वाग्रहे पश्चात् स्मर्यते इत्यर्थः,
साध्यस्य प्रत्यक्षतादशायां पृथिवीत्वस्यापि प्रत्यक्षमावश्यकमतः स्मरण-
पर्यन्तानुधावनं, 'व्यतिरेकवतारः' व्यतिरेकव्याप्युपन्यासः । 'घट-

वादिति चेत्, सत्यं, अन्वयितुल्यतया व्यतिरेकिणोऽपि सामर्थ्यादन्वयाप्रतिसन्धानदशायां व्यतिरेक्युपन्यास-
स्यापर्यनुयोज्यत्वात् तदुक्तं, आस्तां तावदयं सुहृदु-
पदेशः, केवलव्यतिरेकिलक्षणं तावन्निर्व्यूढम् । अथ वा
जलादीनां चयोदशान्योन्याभावाः चयोदशसु प्रसिद्धाः
पृथिव्यां साध्यन्ते, अत एवाकाशे व्यतिरेकिणा जलादि-
मिलितप्रतियोगिकान्योन्याभावाप्रतीतावपि चयोद-
शान्योन्याभावाः साध्या इति नान्वयित्वासाधारण्ये ।

इति, इदञ्च घटसाधारणपक्षतादशायामित्युक्तं, अन्यथा तु अन्यस्मिन्
पक्षे बोध्यं । 'पृथिवीलग्नहेति, पक्षतावच्छेदकप्रकारेण पक्षज्ञान-
स्यावश्यकत्वात् इति भावः । 'इतरभेदेति, तथाच पक्षस्यैव अन्व-
यिदृष्टान्तत्वं सम्भवतीति भावः । न च प्रत्यक्षतः पृथिवीलग्नहृदशा-
यामितरभेदग्रहो नावश्यकः प्रतियोगिज्ञानस्य तदा अभावादिति
वाच्यं । व्यतिरेकव्याप्तिघटकत्वेन तज्ज्ञानस्य तदानीमावश्यकत्वा-
दिति भावः । 'अन्वयितुल्यतयेति यथा अन्वयव्याप्तिज्ञानस्य व्यति-
रेकव्याप्तिज्ञानविरहस्थलेऽनुमितिजनकत्वमनुभवसिद्धं तथा अन्वय-
व्याप्तिज्ञानविरहस्थले व्यतिरेकव्याप्तिज्ञानस्यानुमितिजनकतया अनु-
भवसिद्धतयेत्यर्थः, 'अन्वयाप्रतिसन्धानेति अन्वयानुपन्यासदशायामि-
त्यर्थः, तदुपन्यासदशायान्तु अधिकेन निग्रहात् पर्यनुयोगो भवत्येव
इति भावः । 'अयमिति अन्वयिनैव इतरभेदसिद्धौ किं व्यतिरेक-

यदा जलं तेजःप्रभृतिद्वादशभिन्नप्रतियोगिकान्योन्या-
भाववत् द्रव्यत्वात्तेजोवदित्यनुमानाच्चयोद्वादशभिन्नस्य
सामान्यतः सिद्धौ पृथिव्यां त्रयोद्वादशभिन्नत्वं साध्यं । न
चान्वयित्वमसाधारण्यं वा, पश्चादन्यत्र साध्याप्रसिद्धेः ।
वस्तुगत्या पृथिव्यामेव साध्यसिद्धेः किं व्यतिरेकिणेति
चेत् । न । पृथिवी त्रयोद्वादशाभिन्नेति व्यतिरेकिणं विना
अप्रतीतेः । नन्वेवं पृथिवी जलादित्रयोद्वादशभिन्नप्रति-
योगिकान्योन्याभाववती द्रव्यत्वादिति पृथिवीभिन्न-
तद्भिन्नादिसिद्धिः स्यादिति चेत् । न । अप्रयोजकत्वात्
प्रकृते चानुभूयमानजलादिवैधर्म्यस्य पृथिवीत्वशब्दा-

व्याप्त्युपन्यासेनेति सुहृदुपदेश इत्यर्थः, एतदाशङ्काया असद्युक्तिकत्वा-
दिति भावः । 'केवलव्यतिरेकिलक्षणमिति केवलव्यतिरेकिस्वरूप-
मित्यर्थः, 'निर्व्यूढमिति, अन्वयाप्रतिसन्धानदशायामपि व्यतिरेक-
व्याप्तिज्ञानादनुमितेरनुभवसिद्धत्वेन तस्यापि हेतुत्वादिति भावः ।
'प्रसिद्धाः' प्रत्येकवैधर्म्यलिङ्गकानुमित्यादिना प्रसिद्धाः, 'पृथिव्यां
साध्यन्त' इति पृथिव्यां त्रयोद्वादशत्वरूपेण साध्यन्ते इत्यर्थः, प्रत्येक-
रूपेण साध्यत्वे अग्रे 'नान्वयित्वासाधारण्ये' इत्यसङ्गतेः । न च
त्रयोद्वादशान्योन्याभावानां प्रातिखिकरूपेण त्रयोद्वादशप्रसिद्धत्वेऽपि
साध्यतावच्छेदकत्रयोद्वादशत्वप्रकारेण सिद्धाभावात् कथमनुमितिरिति
वाच्यं । भिन्न-भिन्नाधिकरणस्थानामथभावानां त्रयोद्वादशादिना

अयत्वादेः^(१) अतिरिक्तं विनानुपपत्तेः । नन्वितरभेदे
 यद्यन्योन्याभावस्तदा भावाद्भेदे न सिद्ध्येत अभावस्या-
 भावान्तराभावात्, यदि च तेन समं स्वरूपभेद एव
 साध्यः तदानुगमादनुमानाप्रवृत्तिः, भावोऽभावो न
 भवतीत्यवाधितप्रतीतिवत्त्वादभावस्यापि अन्योन्याभा-
 वोऽस्तीति केचित्, तन्न, अपसिद्धान्तात् । अनतिप्रस-
 क्ताधिकरणस्वरूपमात्रेणैवाभावप्रतीत्युपपत्तौ चाधि-
 काभावे मानाभावाच्च इति चेत् । न । इतरभावान्यो-

ज्ञानसम्भवात् भिन्नाधिकरणस्य घटयोर्दो घटादिरिति प्रतीतिवत्,
 'जलादिमिलितेति आकाशेतरत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकान्योन्या-
 भावानुमित्यसम्भवेऽपीत्यर्थः, आकाशस्यैकव्यक्तित्वेन तत्रैकदेशे साध्य-
 प्रसिद्धसम्भवादिति भावः । त्रयोदशभेदानां त्रयोदशप्रत्येकं प्रसि-
 द्धिमुक्त्वा एकत्रैव तेषां प्रसिद्धिमाह, 'जलमिति तेजःप्रभृतिद्वा-
 दशभिन्ननिष्ठभेदप्रतियोगीत्यर्थः, यथाश्रुते पृथिव्यां साधनीयस्य
 त्रयोदशभेदस्यास्मादसिद्धेः जलभेदस्यैवासिद्धत्वात्, इदञ्च प्रमाणा-
 न्तरेण पृथिव्यां द्वादशभिन्नत्वस्य प्रसिद्धिदशायां बोध्यं, 'त्रयोदश-
 भिन्नत्वमिति त्रयोदशलक्षरूपेणेत्यर्थः । शङ्कते 'वस्तुगत्येति, 'पृथिवी
 त्रयोदशभिन्नेतीति पृथिवी जलादित्रयोदशभिन्नेत्यर्थः । 'प्रकृते
 चेति 'यद्वा जलं' इत्यत्रेत्यर्थः, 'अनुभूयमानेति तेजःप्रभृतिद्वा-

(१) पृथिवीत्वाश्रय-शब्दाश्रयत्वादेरिति क०, ख०, ग० ।

न्याभावस्य साध्यत्वात् । न चैवमभावादविवेकताद-
वस्थं, तेन समं स्वरूपभेदस्यान्वयिना व्यतिरेकिणा वा
साध्यत्वात् ।

अन्ये तु पृथिवीत्वभिन्नधर्मात्यन्ताभाव एव साध्यः
जलत्वादिप्रतियोगिकास्तावन्तोऽत्यन्ताभावा वा तत्त-
दसाधारणतत्तद्धर्मात्यन्ताभावयोगेवा एते चाभावा-
जलत्वं न घटादौ घटादिजलात्यन्ताभाववदिति प्रत्य-
क्षादेः^(१) क्वचित्तत्तद्वैधर्म्यादेव प्रसिद्धा इति ना-

दशभिन्नपृथिव्यादौ अनुभूयमानस्येत्यर्थः, 'पृथिवीत्वेति तेजःप्रभृ-
तिद्वादशभिन्नपृथिवीनिष्ठान्योभावानुमानमधिकृत्य, 'शब्दाश्रयत्वेति
आकाशेतरभेदानुमानस्थले तेजःप्रभृतिद्वादशभिन्नाकाशनिष्ठान्यो-
न्याभावानुमानमधिकृत्येति, 'अतिरिक्तमिति पृथिव्यादेर्जलाद्य-
तिरिक्तत्वं विनेत्यर्थः । त्रयोदशत्वरूपेण त्रयोदशभेदाः साध्या-
दिति द्वितीयकल्पे शङ्कते, 'नन्विति, इतरत्वावच्छिन्नप्रतियोगि-
ताकसामान्याभावस्य साध्यत्वे एतदाशङ्काया असङ्गतेः तस्याभावा-
भावप्रतियोगिकस्यैकत्वादिति मन्तव्यं, 'अभावान्तरेति अधिकर-
णतिरिक्तभेदेत्यर्थः, 'स्वरूपभेद इति अधिकरणस्वरूपभेद इत्यर्थः,
'अननुगमादिति अधिकरणानामनन्तत्वेन चतुर्दशत्वरूपेण साध्यत्वा-
सम्भवादित्यर्थः । अत्र कस्यचित् समाधानमाशङ्कते, 'अवाधितेति

प्रसिद्धिः । तावतामभावानां वैशिष्ट्यं न प्रसिद्धमिति चेत्, किमेतावता, न हि तावद्वैशिष्ट्यमत्र साध्यते, किन्तु जलत्वादीनां यावन्तोऽभावा इह साध्यास्ते च तत्र तत्र प्रसिद्धा एव तावद्वैशिष्ट्यधीस्तु फलम् अन्यथा सिद्धसाधनात्, मिलितानामपि साध्यत्वे नाप्रसिद्धिः किञ्चिदेकधर्मावच्छेदोहि बलादिवन्मेलकार्थः, स च नासिद्धः । न च हेतोरसाधारण्यं, तावदभावयोगी ह्यत्र सपक्षो भवति न तु तदेकदेशकतिपयाभाववान्

अभावत्वांगे अबाधितप्रत्ययेत्यर्थः, 'अस्ति' अतिरिक्तोऽस्ति, अयमेकदेशिनं प्रति नापसिद्धान्त इत्यत आह, 'अनतिप्रसक्तेति, 'मानाभावादिति । न चाभावत्वांगे अबाधितोक्तप्रत्यय एव मानमिति वाच्यं । इदमिदं भवतीति प्रतीतिसाच्चिकस्याभावत्वस्य भावे स्वीकारात् अतिरिक्तधर्मिकल्पनामपेक्ष्य लाघवादिति भावः । 'स्वरूपभेदस्येति अभावत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदत्वरूपेणेत्यर्थः, 'अन्वयिनेति भावत्वहेतुकान्वयिनेत्यर्थः, 'व्यतिरेकिणेति पृथिवीत्वादिहेतुकव्यतिरेकिणेत्यर्थः, न चासाधारण्यं, अन्यत्र साध्यानिर्णयदशाया-अनुमानप्रवृत्तेः, इदमुपलक्षणं अभावत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदत्वत्वे सति जलादित्रयोदशान्योन्याभावस्य साध्यत्वे प्रथमानुमानेनाप्यभावभेदः सिध्यतीति मन्तव्यं ।

'पृथिवीत्वभिन्नेति पृथित्वासमानाधिकरणेत्यर्थः । नन्वाप्यसिद्धि-

साध्यतायास्तावत्यपर्याप्तिः^(१) । यद्वा जलत्वात्यन्ताभाव-
स्तेजस्वात्यन्ताभावाधिकरणवृत्तिः अत्यन्ताभावत्वात्
घटत्वात्यन्ताभाववत्^(२), एवमत्यन्ताभावान्तरसामाना-
धिकरण्यमपि तत्र साध्यमिति काप्रसिद्धिः ।

रित्यस्वरसेनाह, 'जलत्वादीति, 'तावन्तः' त्रयोदशेत्यर्थः, 'तत्तदसाधा-
रणेति जलाद्यसाधारणेत्यर्थः, 'योग इति, पक्षधर्मतावललभ्यसाध्य-
सम्बन्धाभिधानं न तु सम्बन्धपर्यन्तं साधनं, तथा सति 'न हि
तावद्वैशिष्ट्यं' इत्यग्निमग्न्यविरोधात् । न चैवं पूर्वाभेदः, अत्र जल-
त्वादिनियतस्नेहाद्यभावोऽपि साध्य इति पूर्वतो भेदात्, 'कचित्' मन-
स्वात्यन्ताभावादौ । शङ्कते, 'तावतामिति, 'अन्यथेति पक्षधर्मतावल-
लभ्यस्य पक्षे साध्यवैशिष्ट्यस्य प्रसिद्धिरपि यद्यङ्गं तदेत्यर्थः, ननु जल-
त्वादिप्रतियोगिकतावदत्यन्ताभावाः प्रत्येकमेव साध्याः अनुमितिः
परामर्शश्च समूहालम्बनरूप इत्युक्तौ असाधारणं मिलितत्वरूपेण
साध्यतायान्तु अप्रसिद्धिः तेन रूपेण कुत्राप्यसिद्धेरित्यत आह,

(१) तावति न पर्याप्तेरिति घ० ।

(२) 'घटात्यन्ताभाववदिति क-ख-गचिजितपुस्तकपाठः परन्त्वयं न समी-
चोनः 'पदार्थविभाजकधर्मात्यन्ताभावत्वादित्यर्थः' इति कस्यचिद्वा-
ख्यानस्यासङ्गत्यापत्तेः दृष्टान्तस्य घटात्यन्ताभावस्य पदार्थविभाजक-
धर्मात्यन्ताभावत्वविरहेण हेतुवैकल्यप्रसङ्गात् । घटत्वात्यन्ताभाव-
रूपदृष्टान्तस्य घटत्वस्य साक्षात्पदार्थविभाजकत्वाभावेऽपि परम्प-
रया पदार्थविभाजकत्वात् न हेतुवैकल्यमिति ध्येयम् ।

किञ्चेतरे तावत् प्रसिद्धा एव ते च भेदप्रतियोगिना
मेयत्वाद्वितीतरभेदोऽपि सुग्रह एव । ननु पृथिवी
नेतरभेदवती गुरुत्वादिभ्यो जलवदिति प्रतिरोध इति
चेत् । न । इतरभेदनिषेधोहीतराभेदः न तु तेजःप्रभृ-
त्यभेदः^(१) जल इति दृष्टान्तस्य साध्यवैकल्यात् चतुर्द-
शाभेदानां चैकत्र विरोधेनासम्भवात् चतुर्दशभेदानां

‘मिलितानामपीति त्रयोदशत्वाद्यवच्छिन्नानामपीत्यर्थः, ‘यत्किञ्चिदे-
केति^(२)यत्किञ्चिदेकधर्मावच्छिन्नत्वमित्यर्थः, स च प्रकृते त्रयोदशत्वादि-
संख्यासमानकालीनमपेक्षावुद्धिविशेषविषयत्वमेवेति भावः । ‘स चेति,
भिन्न-भिन्नाधिकरणस्थानामप्यभावानां मानसोपस्थित्या अपेक्षावुद्धि-
विषयत्वप्रकारेण ज्ञानसम्भवात् भिन्नाधिकरणस्थघटयोर्दो घटाविति
प्रतीतिवदिति भावः । ‘तावदभावयोगीति तावदभाववत्तया निश्चित-
इत्यर्थः, ‘कतिपयाभाववान्’ कतिपयाभाववत्तया निश्चितः, ‘साध्य-
ताया इति साध्यतावच्छेदकस्येत्यर्थः, साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नवत्तया
निश्चितश्च सपक्ष इति भावः, ‘अत्यन्ताभावत्वादिति तेजस्त्वानियता-
त्यन्ताभावत्वादित्यर्थः, तेन तेजोऽन्यत्वप्रकारकप्रमाविशेष्यत्वाभावादौ
वस्तुतस्तेजोऽविषया च या चतुर्दशविषया धीव्यक्तिस्तद्विषयत्वात्यन्ता-

(१) न च तेजःप्रभृत्यभेद इति ख०, ग० । स च न तेजःप्रभृत्यभेद-
इति घ० ।

(२) ‘किञ्चिदेकधर्मावच्छेदोऽहि’ इत्यत्र ‘यत्किञ्चिदेकधर्मावच्छेदोऽहि’
इति कस्यचिन्मूलपुस्तकस्य पाठ एतेनानुमीयते ।

चैकत्र वृत्तौ न विरोधः । यत्तु साध्यप्रसिद्धौ पृथिवीतर-
भिन्ना तत्साध्याधिकरण-पृथिव्यन्यतरत्वात्तदधिकरण-
वत् पृथिव्यां तत् साध्यमन्वयिन एव सेत्स्यतीति, तन्न,
अन्यतरत्वस्यालिङ्गत्वादित्युक्तत्वात्, लिङ्गत्वे वा जला-
दावपि तत्सिद्धिप्रसङ्गात् । एवं तर्हि पृथिवी जलं
पृथिवीत्वात् यन्न जलं तन्न पृथिवी यथा तेज इति-
सत्प्रतिपक्षोऽस्त्विति चेत् । न । अजलस्य घटादेः प्रत्य-
क्षत एव पृथिवीत्वनिश्चये व्यतिरेकव्यभिचारादस्य

भावादौ च न व्यभिचारः, पदार्थविभाजकधर्मात्यन्ताभावत्वादित्यर्थः
इति कश्चित् । 'तत्रेति जलत्वात्यन्ताभाव इत्यर्थः, 'काप्रसिद्धिरिति,
तेजस्त्वात्यन्ताभाव-वायुत्वात्यन्ताभावादिसमानाधिकरणजलत्वात्य-
न्ताभावस्यैव साध्यत्वादिति भावः ।

अन्येतुमतं समाप्य प्रकारान्तरेण साध्यप्रसिद्धिं दर्शयति, 'किञ्चेति,
'ते चेति, पृथिवीतरत्वं भेदप्रतियोगितावच्छेदकं व्यतिरेकिधर्मत्वात्
इत्यत्र तात्पर्यं, अन्यथा इतरप्रतियोगिकभेदप्रसिद्धावपि तेजस्त्वा-
वच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदाप्रसिद्धेरिति ध्येयं । 'न तु तेजःप्रभृतीति,
प्रातिस्विकरूपेण चतुर्दशभेदानामभावः साध्य इत्यभिप्रायेणेदं दूषणं,
अन्यथा पृथिवीतरभेदाभावस्य पृथिवीतरत्वस्य जले सत्त्वादसङ्गतेः ।
बाधमप्याह, 'चतुर्दशेति, अत्रावभादात् चतुर्दशत्वं बोध्यं, स्थापनानु-
माने बाधमुद्धरति, 'चतुर्दशेति । 'जलादावपीति, तत्रापि तत्साध्या-

न्यूनत्वात् तदनवधारणे तु सत्प्रतिपक्षत्वमिष्टमेव ।
 ननु जीवच्छरीरं सात्मकं प्राणादिमत्त्वात् इच्छादि-
 कार्यवत्त्वादेति व्यतिरेकिणि साध्याप्रसिद्धौ कथं व्यति-
 रेकादिनिरूपणं, नैरात्म्यञ्च घटस्य न प्रत्यक्षवेद्यं तस्य
 तत्रासामर्थ्यात्, नानुमानगम्यं नैरात्म्याप्रतीतावन्ययि-
 नेऽभावात् सात्मकत्वप्रतीतिं विना व्यतिरेकिणोऽनुप-
 पत्तिः । अथेच्छा समवायिकारणजन्या कार्यत्वात् तच्च
 समवायिकारणं पृथिव्याद्यष्टद्रव्यभिन्नं पृथिव्यादित्वे
 बाधकसत्त्वादिति पृथिव्यादिभिन्नात्मसिद्धौ तद्वत्त्वं जीव-

धिकरण-जलाद्यन्यतरत्वस्य लिङ्गत्वसम्भवादिति भावः । इदमापाततः
 जले पृथिवीतरभेदस्य बाधेनासिद्धेः जलेतरभेदसिद्धौ च द्रष्टापत्तेः ।
 वस्तुतस्तु पृथिवीतरभेदस्य विशिष्य कुत्राप्यधिकरणेऽसिद्धेः सिद्धौ
 चान्वयाप्रतिसन्धानदशायां व्यतिरेक्याप्तिज्ञानहेतुत्वावश्यकत्वाच्चेत्येव
 द्रष्टव्यं । 'एवं' व्यतिरेक्याप्तिज्ञानस्य हेतुत्वे, 'व्यतिरेक्यभिचारा-
 दिति साध्याभावस्य हेत्वभावव्यभिचारित्वादित्यर्थः, इदमुपलक्षणं
 असाधारण्यादित्यपि द्रष्टव्यं, 'तदनवधारणे' इति पृथिवीत्वस्थानव-
 धारणे इत्यर्थः । 'इच्छादीति, अवच्छेदकतासम्बन्धेन हेतुरिति भावः ।
 'साध्याप्रसिद्धाविति, सात्मकत्वस्य जीवच्छरीरमात्रवृत्तित्वात्तस्य पक्ष-
 त्वादिति भावः । 'व्यतिरेकादीति, 'आदिना साध्यवैशिष्ट्यस्य परिग्रहः,
 'तस्येति, तदभावस्यातीन्द्रियत्वादिति भावः । अप्रसिद्धाभावसाध्यके
 व्यतिरेक्यस्त्वित्यत आह, 'सात्मकत्वेति, 'कार्यत्वादिति भावकार्यत्वा-

शरीरे साध्यत इति चेत्, यदि सात्मकत्वमात्मसंयोग-
वत्त्वन्तदा घटादौ तदस्तीति ततोहेतुव्यावृत्तावसाधा-
रण्यं, ज्ञानसमानाधिकरणज्ञानकारणीभूतसंयोगा-
श्रयकार्यत्वं सात्मकत्वं शरीरात्मसंयोगस्य ज्ञानकारण-
त्वात् आत्म-मनसोस्तथात्वेऽप्यकार्यत्वादिति चेत् । न ।
शरीरादन्यत्रासिद्धेः, तत्र प्रसिद्धौ सिद्धसाधनात् ।
इच्छाया असमवायिकारणसंयोगावच्छेदकत्वस्याभावे

दित्यर्थः । शङ्कते, 'ज्ञानेति, चक्षुःसंयोगाश्रयत्वेन घटादेः सात्मकत्व-
वारणाय 'ज्ञानसमानाधिकरणेति, आत्म-घटादिसंयोगादिमादाय
तद्दोषतादवस्थ्यमतः 'ज्ञानकारणेति, तादृशसत्त्वादेर्घटादौ सत्त्वात्
तद्दोषतादवस्थ्यमतः 'संयोगेति, आत्म-मनसोर्वारणाय 'कार्यत्व-
मिति । न च प्राणेऽतिप्रसङ्गः, आत्म-प्राणसंयोगस्याहेतुत्वादिति
वक्ष्यमाणत्वादिति भावः । 'शरीरादन्यत्रेति, न च राहोः शिरसि
तत्प्रसिद्धिरिति वाच्यं । पक्षादन्यत्राप्रसिद्धेरित्यर्थात् चेष्टावत्त्वेन
तस्यापि पक्षत्वात् । शङ्कते, 'इच्छाया इति, 'दृष्टः' जातः, 'तद्भूतिरेक-
इति स एव च सात्मकत्वमिति भावः । 'अप्रसिद्धसाध्यसंसर्गमिवेति,
यद्यपि व्याप्तिज्ञाने साध्यसंसर्गस्यावश्यंभानात् कथं साध्यसंसर्गोऽप्रसिद्धः ।
न च निरधिकरणकसाध्यप्रसिद्ध्या साध्याभाव-हेत्वभावयोर्व्यापकत्व-
पक्षसम्भवाच्च संसर्गप्रसिद्धिरावश्यकतीति वाच्यं । साध्यतावच्छेदका-
वच्छिन्नसाध्याभावस्य व्याप्तिघटकत्वेन तद्भानावश्यंभावात् । न च
तथापि अप्रसिद्धाभावसाध्यकमतिरेकिणि अप्रसिद्ध एव साध्यसंसर्गो

घटादौ दृष्टः तद्व्यतिरेकः शरीरे साध्यत इति चेत् ।
न । इच्छाया असमवायिकारणसंयोगावच्छेदकत्वस्य
शरीर एव प्रसिद्धेः सिद्धसाधनात्, अन्यथा असिद्धि-
व्यतिरेकाद्यनिरूपणात् । अप्रसिद्धसाध्यसंसर्गमिव
साध्यमप्रसिद्धं साधयति व्यतिरेकीति चेत् । न । व्यति-

भासत इति वाच्यं । पूर्वपक्षिणा तदनङ्गीकारात् तस्य च मतान्तरत्वात् ।
तथापि साध्यसंसर्गप्रसिद्धसहकारेण साध्यसंसर्गमिव साध्यप्रसिद्धिं
विनैव साध्यमपि साधयति व्यतिरेकीत्यर्थः, साध्यसंसर्गस्य प्रसिद्धि-
सत्त्वेऽपि तत्त्वेनासहकारादिति भावः । 'असाधरणेति, 'इच्छा-
ऽसमवायीति, भावकार्यत्वादिति शेषः, एतत्सिद्धिश्च वक्ष्यमाणानु-
माने सासमवायिकारणवृत्तित्वस्य सन्दिग्धोपाधित्वनिरासार्थं साधन-
व्यापकत्वज्ञानायोपयुज्यते । केचित्तु 'इच्छासमवायिकारणेति अकार-
रहितः पाठः, तत्सिद्धिश्च समवायिकारणवृत्तित्वस्य सन्दिग्धो-
पाधित्वनिरासार्थं साधनव्यापकत्वज्ञानायोपयुज्यते । 'इच्छात्वमिति,
व्यक्तिपक्षके विभागजे च शब्दे व्यभिचारः स्यादिति जातेः
पक्षत्वमुक्तं^(१), 'नित्येन्द्रियेति, संख्यात्व-पृथक्त्वादौ व्यभिचार-

(१) तथाच इच्छा संयोगासमवायिकारणिका नित्येन्द्रियग्राह्यविशेष-
गुणवृत्तिगुणत्वसाक्षाद्याप्यजातिमत्त्वात् शब्दवत् इत्यनुमाने विभा-
गासमवायिकारणके शब्दे संयोगासमवायिकारणकत्वरूपसाध्या-
भाववत् हेतोर्वत्तमानत्वेन व्यभिचारप्रसङ्ग इति जातेः पक्षत्वानु-
सरणमिति भावः ।

रेकाद्यनिरूपणात् असाधारणधर्मेणाप्रतीतपदार्थानु-
माने घटत्वादिनापि स्वेच्छाकल्पितडित्याद्यनुमान-
प्रसङ्ग इति । उच्यते । इच्छाऽसमवायिकारणसिद्धावि-
च्छात्वं संयोगासमवायिकारणकवृत्ति नित्येन्द्रियग्राह्य-
विशेषगुणवृत्तिगुणत्वसाक्षाद्वाप्यजातित्वात् शब्दत्व-
वत् स चासमवायिकारणं संयोगः किञ्चिदवच्छिन्नः
संयोगत्वात् आत्मसंयोगमात्रस्वेच्छाजनकत्वेऽतिप्रस-
ङ्गादितीच्छाऽसमवायिकारणसंयोगावच्छेदकत्वं सात्म-
कत्वं शरीरे साध्यते । यद्वा आत्मानोच्छाधारता महत्-

वारणाय वृत्त्यन्तं, स्नेहत्वे व्यभिचारवारणाय 'नित्येन्द्रियग्राह्येति
विशेषगुणविशेषणं, नित्येन्द्रियग्राह्यत्वञ्च तन्मात्रग्राह्यत्वमतो न मनसो-
ग्राह्यत्वेन तस्य तद्दोषतादवस्थं, आत्मैकत्वप्रत्यक्षत्वपक्षे संख्यात्वे व्यभि-
चारादाह 'विशेषेति, शब्दजशब्दादिमात्रवृत्तिजातिविशेषे व्यभि-
चारादाह, 'गुणत्वसाक्षाद्वाप्येति, तत्त्वञ्च गुणत्वसाक्षाद्वाप्यजात्यव्याप्यत्वं,
अन्यथा गुणत्वव्याप्यान्यतरत्वादिव्याप्यत्वादसिद्धापत्तिः, जातिपदञ्च
शब्दजशब्द-संख्यान्यतरत्वादौ व्यभिचारवारणाय, समवायसम्बन्धेन
विशेषगुणवृत्तित्वलाभाय वा, अन्यथा जन्यमात्रस्य कालोपाधितया
संख्यात्वे व्यभिचारतादवस्थ्यादिति संक्षेपः । 'अतिप्रसङ्गादिति
अन्यावच्छेदेनापीच्छोत्पत्त्यापत्तेरित्यर्थः, असमवायिकारणसंयोगा-
वच्छेदकत्वस्यैव इच्छाद्यवच्छेदकत्वनियामकत्वादित्यभिमानः, 'इच्छा-
ऽसमवायिकारणेति । न च तादृशसंयोगाद्यवच्छेदकत्वेन प्रकारेण

संयोगावच्छेद्या जन्यविभुविशेषगुणाधारतात्वात् वा-
 द्यादिसंयोगाद्यवच्छेद्यशब्दाधारत्ववदिति सामान्यतः
 सिद्धमिच्छाधारताघटकेच्छासमवायिकारणद्रव्यसंयो-
 गवत्त्वं सात्मकत्वम्, अत एव ज्ञानसमानाधिकरणज्ञान-
 कारणीभूतसंयोगाश्रयकार्यत्वं वा सात्मकत्वं स्वशरीरे
 प्राणादिमत्त्वस्य इच्छादिमत्त्वस्य च चेष्टावयवोपचया-

साध्यं नोक्तानुमानात् प्रसिद्धमिति वाच्यं । तदनन्तरं मनसा तथा
 प्रसिद्धेः । 'यदेति, इच्छाधारतायाः शरीरे व्याप्यवृत्तेर्न महत्सं-
 योगोऽवच्छेदक इत्यतः 'आत्मनीति, 'महत्संयोगेति, 'महत्पदं
 मनोयोगावच्छेद्यत्वेनार्थान्तरवारणाय, ईश्वरज्ञानादेर्वाप्यवृत्तेरा-
 धारताया वारणाय 'जन्येति, रूपाद्याधारतावारणाय 'विभिति,
 आत्मवृत्तिद्वित्वाद्याधारतावारणाय 'विशेषेति, आधारता च सम-
 वायावच्छिन्ना विवक्षिता नातः शरीरवृत्तीच्छाद्याधारतायां व्यभि-
 चार इति मन्तव्यं, 'सामान्यत इति सिद्धसाधनशङ्कावारणाय, 'इच्छा-
 धारतेति 'इच्छाधारताघटकः' इच्छाधारतावच्छेदकः य इच्छा-
 समवायिद्रव्यनिरूपितसंयोगस्तद्वत्त्वमित्यर्थः, आत्मन्यतिप्रसक्तेः वार-
 णाय निरूपितेत्यन्तं, स्वन्निरूपितसंयोगवत्त्वञ्च स्वस्मिन्मास्तीति भावः ।
 अत्रापि साध्यतावच्छेदकप्रकारेण प्रसिद्धिर्मनसा द्रष्टव्या । 'अत एवेति
 ज्ञानाधारता महत्संयोगावच्छेद्या शरीरवत्त्वात् स च महत्सं-
 योगो ज्ञानसमानाधिकरणः तत्तद्रूप्यवच्छेदकत्वात् ज्ञानकारणञ्च
 अनन्यथासिद्धाश्रय-व्यतिरेकात् तदाश्रयोमहान्कार्यः आत्मसंयो-

दिव्याप्यत्वग्रहात् घटादौ चेष्टादिविरहेण प्राणादिम-
त्वेच्छादिमत्त्वविरहानुमानमिच्छादिविरहात् इच्छा-
दिप्रयोजकेच्छाद्याधारताघटकेच्छाद्यसमवायिकारणसं-
योगविरहानुमानं कार्याभाववति कारणाभावनिय-
मात् । न च सात्मकत्वं शरीरवृत्ति शरीरे बाधकाभा-
वात् शरीरत्ववदित्यन्वयिनैव साध्यसिद्धेः^(१) किं व्यतिरे-
किणेति वाच्यं । शरीरं सात्मकमिति शरीरविशेष्यक-

गिमहत्त्वादित्यनुमानेन प्रसिद्धिसम्भवादेवेत्यर्थः । ननु सात्मकत्वस्य
साध्यस्य प्रसिद्धावपि नैरात्मत्वस्य साध्याभावस्य घटादावसिद्धत्वात् कथं
व्यतिरेकव्याप्तिग्रह इत्यत आह, 'स्वशरीर इति, 'चेष्टेति चेष्टावयवोप-
चयाद्यन्यतमव्याप्यत्वग्रहादित्यर्थः, तेन निश्चियविनष्टशरीरे न व्यभि-
चारः, 'चेष्टादिविरहेण' चेष्टाद्यन्यतमसामान्याभावेन शरीरबाधका-
भावेन, 'शरीरे बाधकेति शरीरवृत्तित्वाभाववत्तया अप्रमितत्वा-
दित्यर्थः । 'संस्काराजन्येति वेगजकर्मणि व्यभिचारवारणाय,
गुरुत्व-द्रवत्वाजन्येत्यपि बोध्यं, तेन पतन-स्यन्दनयोर्न व्यभिचारः,
'एवञ्चेति, सत्यन्तमात्रस्यात्मन्यपि सत्त्वान्तद्वावृत्तये 'शरीरत्वमिति,
तेन शरीरावयवे न व्यभिचारः । 'आत्मभिन्नेति, आत्मनः सात्म
कत्ववारणाय सत्यन्तं, मृतशरीरस्यापि कदाचिद्भोगाधारतया
तद्वावृत्तये 'आत्मविशेषगुणकारणेति, कारणत्वं फलोपधायकत्वं
तेन शरीरात्मसंयोगत्वेन तस्य स्वरूपयोग्यत्वेऽपि न क्षतिः, मृत-

बुद्धेर्यतिरेकिणं विनानुपपत्तेः उपायान्तरस्योपायान्तरादूषकत्वाच्च । यद्वा चेष्टा संयोगासमवायिकारणिका संस्काराजन्यक्रियात्वादिति चेष्टाया असमवायिकारणसंयोगसिद्धौ प्रयत्नवदात्मसंयोग एव पर्यवस्यति प्रयत्नान्वय-व्यतिरेकानुविधायित्वात्, एवं चेष्टाया असमवायिकारणसंयोगाश्रयत्वे सति शरीरत्वं सात्मकत्वं जीवच्छरीरे साध्यं चेष्टावत्त्वादिति हेतुः चेष्टाविरहश्च घटादौ प्रत्यक्षसिद्धः^(१) चेष्टाविरहात्तदसमवायिकारण-

शरीरात्मसंयोगजनकं तदवयवात्मसंयोगमादाय मृतशरीरावयवस्य मृतशरीरावयवात्मविभागकारणमृतशरीरात्मसंयोगमादाय मृतशरीरस्य च सात्मकत्ववारणाय 'विशेषेति, भेरीदण्डसंयोगवच्छब्दजनकं मृतशरीरे शरीरान्तरसंयोगमादाय मृतशरीरे सात्मकत्ववारणाय 'आत्मेति । यद्यपि तस्यापि स्वगोचरप्रत्यक्षजनकत्वेन जीवच्छरीरे मृतशरीरसंयोगस्य दुःखजनकत्वेन च तद्दोषतादवस्थं तथापि आत्मविशेषगुणपदं प्रयत्नपरमित्यदोषः । आत्मवृत्तित्वेन संयोगे विशेष्य इत्यपि केचित् । मनसः सात्मकत्ववारणाय 'भोगानधिकरणावृत्तीति, नञ्द्वयस्याप्येतदेव फलमिति संक्षेपः । 'प्राणान्यत्वे सतीति, प्राणे व्यभिचारवारणाय सत्यन्तं, नाद्यादौ व्यभिचारवारणाय 'ज्ञानकारणीभूतेति, चक्षुःसंयोगादिमादाय तद्दोष-

संयोगविरहेऽपि सुग्रहः । यदा जीवच्छरीरं तदवयवा
वा आत्मभिन्नत्वे सत्यात्मविशेषगुणकारणभोगानधिक-
रणावृत्तिसंयोगवत् प्राणान्यत्वे सति ज्ञानकारणीभूत-
प्राणसंयोगवत्त्वात् यन्नैवं तन्नैवं यथा घटः, आत्म-प्राण-
संयोगः प्राण-मनःसंयोगो वा शरीर-प्राणसंयोगेनैवा-
न्यथासिद्धो न कारणं, भोगाधारत्वं भोगसमवायि-
कारणातिरिक्तवृत्ति सकलभोगाधिकरणवृत्तित्वात् प्रमे-
यत्वादिवदिति तार्किकी रीतिः^(१) । अथेच्छाष्टद्रव्याति-
रिक्तद्रव्याश्रिता अष्टद्रव्यानाश्रितत्वे सति गुणत्वात् य-
न्नैवं तन्नैवं यथानाश्रितमष्टद्रव्याश्रितं वेति कथं व्यति-
रेकी अष्टद्रव्यातिरिक्तद्रव्यस्य तद्वृत्तित्वस्य चाप्रतीतेर्य-

तादवस्थं अतः 'प्राणेति, नचात्म-मनसोरपि हेतुत्वेन व्यभिचार-
इत्यत आह, 'आत्म-प्राणेति । न च शरीर-प्राणसंयोगस्य न शरीर-
प्राणसंयोगत्वेन हेतुत्वं गौरवात् किन्तु प्राणसंयोगत्वेनैव यत्रावच्छे-
दकतासम्बन्धेन ज्ञानं तत्र समवायेन प्राणसंयोग इति सामानाधि-
करणं प्रत्यासत्तिः, तथाचात्म-प्राणसंयोगादिरपि ज्ञानस्वरूपयोग्य-
एवेति व्यभिचारस्तदवस्थ इति वाच्यं । फलोपधानस्य विवक्षितत्वात् ।
तच्च कार्य-कारणभावघटकसम्बन्धेन ज्ञानसमानाधिकरणत्वे सति
ज्ञानजनकत्वमिति न कोऽपि दोष इति भावः । ननु भोगानधि-

(१) तार्किकनीतिरिति क०, ख०, ग० ।

तिरेकाद्यनिरूपणात् । स्यादेतत् इच्छायाद्रव्याश्रितत्वे-
ऽनुमिते पृथिव्यादौ बाधानवतारदशायां विप्रतिपत्ति-
वाक्यादाश्रितत्वादिसाधारणधर्मदर्शनाद्वा तद्व्यमष्टद्र-
व्यातिरिक्तं न वेति सन्देहेनाष्टद्रव्यातिरिक्तद्रव्योप-
स्थितिः । यद्वा इच्छाष्टद्रव्यातिरिक्ताश्रिता न वेति
संशयात्^(१) इच्छाया अष्टद्रव्यातिरिक्ताश्रयोपस्थितौ
पश्चादिच्छाश्रयोऽष्टद्रव्यातिरिक्तद्रव्यं न वेति संशयादष्ट-
द्रव्यातिरिक्तद्रव्योपस्थितिः । अथ वा द्रव्याश्रिता इच्छा
अष्टद्रव्यातिरिक्तद्रव्यवृत्तिर्न वेति पूर्ववत् संशयादष्टद्र-

करणावृत्तिः संयोगोऽसिद्धः भोगसमवायिकारणस्यैव भोगाधारत्वात्
संयोगस्य तन्मात्रावृत्तित्वादित्याशङ्क्य उक्तसाध्योपपत्तये शरीरस्यापि
भोगाधारत्वं साधयति, 'भोगाधारत्वमिति भोगासाधारणाधारत्व-
मित्यर्थः, तेन कालादिवृत्तितया न सिद्धसाधनं, 'सकलेति, न च
भोगाधिकरणेत्यस्य स्वरूपासिद्धिवारकतया वैयर्थ्यमिति वाच्यम् ।
समुदायस्य भोगाधिकरणत्वव्यापकत्वादित्यर्थत्वात् । नन्विदं सन्दि-
ग्धानैकान्तिकं साध्याभाववत्तया निश्चिते संसार्यात्मत्वे एतदनुमा-
नात्पूर्वहेतोः सन्देहादित्यत आह, 'तार्किकीति अनुभवमूलिका
रीतिरित्यर्थः, शरीरे सुखमित्यनुभवात् शरीरेऽपि भोगाधार-

(१) 'इच्छाष्टद्रव्यातिरिक्ताश्रिता न वेति संशयात्' इत्ययं पाठः क-ख-
चिन्नितपुस्तके नास्ति ।

व्यातिरिक्तद्रव्यवृत्तित्वं प्रसिद्धमिच्छायाः साध्यते संशय-
प्रसिद्धमपि साध्यं व्यतिरेकादिनिरूपकं साध्यज्ञान-
मात्रस्य कारणत्वात् । न चैवं संशयादेव पक्षे साध्य-
सिद्धेर्यतिरेकिवैयर्थ्यं, निश्चयार्थं तद्वृत्तेरिति । मैवं ।
संशयेन साध्यप्रसिद्धावपि तद्व्यतिरेकनिश्चयासम्भवात्
साध्यव्यतिरेक-तद्व्याप्तिनिश्चयस्य साध्यनिश्चयसाध्यत्वात्
साध्यसन्देहे तद्व्यतिरेकादिसंशयावश्यम्भवात् । किञ्च
संशयोपस्थितसाध्यस्य व्यतिरेकिनिरूपणं न योग्यानु-
पलम्भात् साध्यनिश्चयं विना योग्यानुपलम्भासम्भवात् ।
नापि व्यापकाभावात्, साध्यनिश्चयं विना तद्व्यापकत्व-
निश्चयाभावात् । न च यदीच्छा अष्टद्रव्यातिरिक्तद्रव्या-

त्वसिद्धौ संसार्थात्मत्वे हेतोर्व्यतिरेकनिर्णयेन व्यभिचारसन्देहा-
भावादिति भावः । 'अनुमित इति गुणत्वेनेति शेषः, 'आश्रितत्वा-
दौति आश्रयत्वादीत्यर्थः, 'द्रव्योपस्थितिरिति, तद्वृत्तित्वञ्च द्रव्यायां
द्रव्यत्वे च प्रतीतमेवेति भावः । नन्वष्टद्रव्यातिरिक्तद्रव्याश्रितत्वेन
साध्यतावच्छेदकप्रकारेण यथोक्तसंग्रहान्न प्रसिद्धिः प्रसिद्धौ वा
साध्यतावच्छेदकांशे निश्चयात्मकसाध्यज्ञानं विना कथं व्यतिरेक-
व्याप्तिग्रहः तस्य साध्यतावच्छेदकांशे विशिष्टवैशिष्ट्यबोधरूपत्वा-
दित्यस्वरसादाह, 'अथ वेति, ननु कोटितावच्छेदकप्रकारेण कोटि-
प्रसिद्धाभावात् कथमयं संग्रहः तत्प्रसिद्धौ च तत एवानुमानसम्भवे

भावसाधकत्वं विपक्षे बाधकाभावात् साध्यसाधकत्वे
तत्सत्त्वात्, अत एव यावदेकचानुकूलतर्को नावतरति
तावदेव दशाविशेषेऽसाधारण्यं दोष इत्युक्तं सुवर्णतैज-
सत्वसाधकव्यतिरेकिणि शब्दोऽनित्यः शब्दत्वादित्या-
दावपि तथा । अथाष्टद्रव्यबाधानन्तरं^(१) इच्छादौ गुण-
त्वाद्वाष्टद्रव्यातिरिक्तद्रव्यवृत्तित्वं सिद्ध्यति पक्षधर्मताव-
त्तात् प्रसिद्धविशेषबाधे सामान्यज्ञानस्य तदितरविशेष-
विषयत्वनियमात्, अत एवासर्वविषयानित्यज्ञानवा-
धानन्तरं क्षित्यादौ कार्यत्वेन ज्ञानजन्यत्वं सिद्ध्यन्नित्य-
सर्वविषयत्वं ज्ञानस्यादायैव सिद्ध्यतीति चेत् । न ।
बाधानन्तरं अष्टद्रव्यातिरिक्तद्रव्यविषयाप्यनुमितिर्द्र-

द्विरिति उक्तानुमानानन्तरं मनसा तादृशद्रव्यवृत्तित्वत्वेन साध्यताव-
च्छेदकप्रकारेण साध्यप्रसिद्धिर्द्रव्यत्व इत्यर्थः, इदमुपलक्षणं अष्टानां,
द्रव्यस्य, अतिरिक्तस्य, वृत्तित्वस्य च खण्डशः प्रसिद्ध्या मनसा विशेष्ये
विशेषणमिति न्यायेन अष्टद्रव्यातिरिक्तद्रव्यवृत्तित्वमिति विशि-
ष्टप्रमितिसम्भव इत्यपि बोध्यं । नन्वेवमिच्छायामपि द्रव्यवृत्तित्वात्
साध्यप्रसिद्धिर्जातेति किं व्यतिरेकिणा इत्यत आह, 'इच्छेति,
'द्रव्यत्ववदिति' 'अन्वयी हेतुः स्यादित्यनेनान्वयः, अत्र हेतुः
'साध्यप्रसिद्धौवेति, 'दृष्टान्तप्रसिद्धेः' दृष्टान्ते द्रव्यत्वे साध्यप्रसिद्धेः ।

व्याश्रितत्वप्रकारिका स्यात् अनुमितेर्व्यापकतावच्छेद-
कमात्रप्रकारकत्वनियमात्, न त्वष्टद्रव्यातिरिक्तद्रव्य-
वृत्तित्वप्रकारिका तस्य पूर्वमप्रतीतत्वेन प्रकारत्वासम्भ-
वादिति तत्प्रकारिकानुमितिव्यतिरेकिणैव । अनाद्यन-
न्तद्व्यणुकादियावत्पक्षीकरणेऽनाद्यनन्ततावदुपादानगो-
चरापरोक्षज्ञानत्वमेव नित्यसर्वविषयकत्वमेतदन्यनित्य-
सर्वविषयत्वं व्यतिरेकिण एव सिध्यति, पक्षधर्मताव-
लेनापि व्यापकतावच्छेदकप्रकारेण साध्यसिद्धिर्भवति
न तु साध्यगतविशेषप्रकारिका अतिप्रसङ्गात् । नन्वष्ट-
द्रव्यानाश्रितेच्छा द्रव्याश्रितेति यदि साध्यते तदाष्टद्र-
व्यातिरिक्तद्रव्याश्रितत्वमन्तरेण प्रतिज्ञार्थ एव नोपप-
द्यते, सत्यम्, एवमप्यष्टद्रव्यानाश्रितेच्छायां द्रव्याश्रितत्वं

‘व्यावृत्ताविति अत्र द्रव्यानाश्रितत्वे सति गुणत्वस्य हेतोर्व्यावृत्ता-
वित्यर्थः, ‘साध्य-तदभावोभयसाधकत्वेनेति प्रकृतहेतौ साध्य-तद-
भावोभयव्याप्तिनिश्चायकत्वेनेत्यर्थः, ‘साध्याभावसाधकत्वं’ साध्याभाव-
व्याप्तिनिश्चयः, ‘साध्यसाधकत्वे’ साध्यव्याप्यत्वे, ‘तत्सत्त्वादिति अनु-
कूलतर्कसत्त्वादित्यर्थः, अष्टद्रव्यानाश्रितस्य तदतिरिक्तद्रव्यवृत्तित्वं
विना द्रव्याश्रितत्वस्यैवानुपपत्तेरिति भावः । ‘एकत्रेति एकमात्रे
इत्यर्थः, ‘सुवर्णतेजसत्वेति सुवर्णं तेजः अत्यन्ताग्निसंयोगेनानुच्छिद्य-
मानद्रवत्वाधिकरणत्वादित्यत्रेत्यर्थः । ‘अष्टद्रव्यबाधेति पृथिव्याद्यष्ट-

श्रिता न स्यादष्टानाश्रिता सती द्रव्याश्रिता न स्यात्
 रूपवदिति साध्यविपर्ययकोटौ प्रतिकूलतर्कसहकृतः
 साध्यसंशय एव निश्चयकार्यं करोति, अत एवैतादृश-
 संशयोपस्थितकल्पितडित्यादिसाधनमप्यपास्तं, तद्वि-
 पर्यये प्रतिकूलतर्काभावादिति वाच्यं । साध्यनिश्चयं
 विना साध्यव्यतिरेकनिश्चय-तन्मूलतर्कानवतारात्,
 अन्यथा अष्टद्रव्यातिरिक्तद्रव्यवृत्तित्वनिरूपणे तर्कोद-
 यस्तर्कोदये च तत्सहकृतसाध्यसंशयस्य साध्यव्यतिरेक-
 निश्चायकत्वमिति । उच्यते । इच्छाश्रयद्रव्यसिद्धौ पृथि-
 व्यादाविच्छाधारताऽभावे तद्द्रव्यं पृथिव्याद्यष्टद्रव्यभि-
 न्नम् अष्टद्रव्यावृत्तिधर्मवत्त्वात् पृथिव्यादित्वे बाधक-

किमन्तर्गतेनात्र तत्संशयेनेति चेत् । न । इच्छायामष्टद्रव्यातिरिक्त-
 वृत्तित्व-तदभावकोटिकेन संशयेन उपनयबलादष्टद्रव्यातिरिक्ते द्रव्य-
 त्वस्य विषयीकरणात् अष्टद्रव्यातिरिक्तद्रव्यवृत्तित्वप्रसिद्धिरित्यभिप्रा-
 यात् । नन्विदमयुक्तं इच्छायां साध्यसन्देहेऽपि रूपादौ तद्व्यतिरेकनि-
 श्चये बाधकाभावात्, न ह्येकत्र सन्देहे सर्वत्र सन्देहः, पार्थिवरूपादि-
 संशयसत्त्वेऽपि वायौ तदभावनिश्चयस्थानुभविकत्वादित्यत आह, 'किञ्चे-
 ति, 'साध्यनिश्चयं विनेति, प्रतियोगि-तद्वाप्येतरसकलतन्निश्चायकसम-
 वधाने प्रतियोग्यनुपलम्भरूपस्य योग्यानुपलम्भस्य तन्निश्चयाप्रसिद्धाव-
 सम्भवादिति भावः । इदमापाततः इदानीं निश्चयत्वस्य योग्यानुपल-

सत्त्वादेत्यष्टद्रव्यातिरिक्तद्रव्यसिद्धाविच्छायामष्टद्रव्याति-
रिक्तद्रव्यवत्त्वमष्टद्रव्यातिरिक्तद्रव्यवृत्तित्वं वा साध्यते
साध्यप्रसिद्धिर्द्रव्यत्वे इच्छाविशेष्यकाष्टद्रव्यातिरिक्तद्रव्य-
वृत्तित्वप्रतीतेर्व्यतिरेकिसाध्यत्वात्, तथापीच्छाष्टद्रव्या-
तिरिक्तद्रव्याश्रिता अष्टद्रव्यानाश्रितत्वे सति द्रव्याश्रि-
तत्वात् अष्टद्रव्यातिरिक्तद्रव्यत्ववदिति साध्यप्रसिद्धौव
दृष्टान्तसिद्धेरन्वयी हेतुः स्यादिति चेत् । न । अन्वय-
व्याप्त्यप्रतिसन्धाने व्यतिरेकव्याप्तिप्रतिसन्धानदर्शायां
व्यतिरेकिसम्भवात् । न च द्रव्यत्वादेः सपक्षात् व्यवृत्ता-
वसाधारण्यं, तद्धि साध्य-तदभावोभयसाधकत्वेन सत्प्र-
तिपक्षोत्थापकतया दोषावहं प्रकृते च न हेतोः साध्या-

भावतन्त्रत्वात् कादाचित्कस्य तस्यात्रापि भावात्, 'व्यापकाभावादिति
साध्यव्यापकाभावादित्यर्थः, साध्यस्य व्यतिरेकनिरूपणमिति शेषः ।
भ्रान्तः शङ्कते, 'न चेति, 'रूपवदित्येति, 'प्रतिकूलतर्कान्तेनान्नयः,
'एतादृशसंशयेति प्रागुक्तक्रमेण इच्छा नवद्रव्यातिरिक्तद्रव्याश्रिता न
वेति संशयेनोपस्थितेत्यर्थः । 'साध्यव्यतिरेकनिश्चयेति, आपादकनिश्च-
यस्य तर्कं प्रति हेतुत्वात् इति भावः । 'इच्छाश्रयेति गुणत्वहेतुकद्रव्या-
श्रितत्वानुमानेनेति शेषः, 'इच्छाधारताभाव इति, इदञ्चाग्रिमहेतु-
सिद्ध्यर्थं, 'पृथिव्यादीति पृथिवीलाभावादिव्याप्यधर्मवत्त्वादित्यर्थः, स च
गन्धाभावादिरिति शेषः, 'द्रव्यवत्त्वमिति वृत्तितासम्भवेनेत्यर्थः, 'प्रसि-

भावसाधकत्वं विपक्षे बाधकाभावात् साध्यसाधकत्वे
 तत्सत्त्वात्, अत एव यावदेकत्रानुकूलतर्को नावतरति
 तावदेव दशाविशेषेऽसाधारण्यं दोष इत्युक्तं सुवर्णतैज-
 सत्वसाधकव्यतिरेकिणि शब्दोऽनित्यः शब्दत्वादित्या-
 दावपि तथा । अथाष्टद्रव्यबाधानन्तरं^(१) इच्छादौ गुण-
 त्वाद्देवाष्टद्रव्यातिरिक्तद्रव्यवृत्तित्वं सिद्ध्यति पक्षधर्मताव-
 लात् प्रसिद्धविशेषबाधे सामान्यज्ञानस्य तदितरविशेष-
 विषयत्वनियमात्, अत एवासर्वविषयानित्यज्ञानवा-
 धानन्तरं क्षित्यादौ कार्यत्वेन ज्ञानजन्यत्वं सिद्ध्यनित्य-
 सर्वविषयत्वं ज्ञानस्यादायैव सिद्ध्यतीति चेत् । न ।
 बाधानन्तरं अष्टद्रव्यातिरिक्तद्रव्यविषयाप्यनुमितिर्द्र-

द्धिरिति उक्तानुमानानन्तरं मनसा तादृशद्रव्यवृत्तित्वत्वेन साध्यताव-
 च्छेदकप्रकारेण साध्यप्रसिद्धिर्द्रव्यत्व इत्यर्थः, इदमुपलक्षणं अष्टानां,
 द्रव्यस्य, अतिरिक्तस्य, वृत्तित्वस्य च खण्डशः प्रसिद्ध्या मनसा विशेष्ये
 विशेषणमिति न्यायेन अष्टद्रव्यातिरिक्तद्रव्यवृत्तित्वमिति विशि-
 ष्टप्रमितिसम्भव इत्यपि बोध्यं । नन्वेवमिच्छायामपि द्रव्यवृत्तित्वात्
 साध्यसिद्धिर्जातेति किं व्यतिरेकिणा इत्यत आह, 'इच्छेति,
 'द्रव्यत्ववदिति' 'अन्वयी हेतुः स्यादित्यनेनान्वयः, अत्र हेतुः
 'साध्यप्रसिद्धौवेति, 'दृष्टान्तसिद्धेः' दृष्टान्ते द्रव्यत्वे साध्यसिद्धेः ।

व्याश्रितत्वप्रकारिका स्यात् अनुमितेर्व्यापकतावच्छेद-
कमात्रप्रकारकत्वनियमात्, न त्वष्टद्रव्यातिरिक्तद्रव्य-
वृत्तित्वप्रकारिका तस्य पूर्वमप्रतीतत्वेन प्रकारत्वासम्भ-
वादिति तत्प्रकारिकानुमितिर्यतिरेकिणैव । अनाद्यन-
न्तद्व्याणाकादियावत्पक्षीकरणेऽनाद्यनन्ततावदुपादानगो-
चरापरोक्षज्ञानत्वमेव नित्यसर्वविषयत्वमेतदन्यनित्य-
सर्वविषयत्वं व्यतिरेकिण एव सिध्यति, पक्षधर्मताव-
लेनापि व्यापकतावच्छेदकप्रकारेण साध्यसिद्धिर्भवति
न तु साध्यगतविशेषप्रकारिका अतिप्रसङ्गात् । नन्वष्ट-
द्रव्यानाश्रितेच्छा द्रव्याश्रितेति यदि साध्यते तदाष्टद्र-
व्यातिरिक्तद्रव्याश्रितत्वमन्तरेण प्रतिज्ञार्थ एव नोपप-
द्यते, सत्यम्, एवमष्टद्रव्यानाश्रितेच्छायां द्रव्याश्रितत्वं

‘व्यावृत्ताविति अत्र द्रव्यानाश्रितत्वे सति गुणत्वस्य हेतोर्व्यावृत्ता-
वित्यर्थः, ‘साध्य-तदभावोभयसाधकत्वेनेति प्रकृतहेतौ साध्य-तद-
भावोभयव्याप्तिनिश्चायकत्वेनेत्यर्थः, ‘साध्याभावसाधकत्वं’ साध्याभाव-
व्याप्तिनिश्चयः, ‘साध्यसाधकत्वे’ साध्यव्याप्यत्वे, ‘तत्सत्त्वादिति अनु-
कूलतर्कसत्त्वादित्यर्थः, अष्टद्रव्यानाश्रितस्य तदतिरिक्तद्रव्यवृत्तित्वं
विना द्रव्याश्रितत्वस्यैवानुपपत्तेरिति भावः । ‘एकचेति एकमात्रे
इत्यर्थः, ‘सुवर्णतेजसत्वेति सुवर्णं तेजः अत्यन्ताग्निसंयोगेनामुच्छिद्य-
मानद्रवत्वाधिकरणत्वादित्येतेत्यर्थः । ‘अष्टद्रव्यवाधेति पृथिव्याद्यष्ट-

सिद्ध्यतु तस्याष्टद्रव्यातिरेक्यं कुतः सिद्ध्येत् । अथ सामान्याव्यभिचारमादाय मानान्तरोपनीतं तत्तदन्यत्वमुपजीव्याष्टद्रव्यान्यद्रव्यवृत्तितैवेच्छादेः परिच्छिद्यते ज्ञानान्तरोपस्थापितविशेषणविशिष्टज्ञानस्य मुरभिचन्दनमित्यादौ दर्शनादिति चेत् । न । मानान्तरान्नियमेनानुपस्थितेः ।

ये चेच्छाश्रये पृथिव्यादिभिन्नत्वं न जानन्ति इच्छायाश्च पृथिव्याद्यनाश्रितत्वं न जानन्ति तेषामप्यनुमानादित्यप्याहुः ।

द्रव्येषु इच्छाधारतावाधानन्तरमित्यर्थः, 'गुणत्वादेवेति इच्छा द्रव्याश्रिता गुणत्वादित्यनुमानेनेत्यर्थः, 'पञ्चधर्मतावलादिति अष्टद्रव्यवृत्तित्वबाधसहकारादित्यर्थः, तथाच किं व्यतिरेकिणेति भावः । 'बाधानन्तरं हीति बाधानन्तरमनुमितिरष्टद्रव्यातिरिक्तद्रव्यविषयापि द्रव्याश्रितत्वप्रकारिका स्यादित्यर्थः, 'व्यापकतावच्छेदकेति येन रूपेण व्यापकत्वग्रहस्तेनैव रूपेणानुमितौ भाननियमादित्यर्थः, यथाश्रुते कूटलिङ्गस्य स्थले व्यभिचारात्, 'पूर्वमप्रतीतत्वेनेति पूर्वं व्यापकतावच्छेदकतया अप्रतीतत्वेनेत्यर्थः । नन्वेवमीश्वरानुमाने नित्यत्वं सर्वविषयकत्वञ्च ज्ञाने कथं सिद्ध्यतीत्यत आह, 'अनाद्यनन्तेति । 'सामान्याव्यभिचारमादायेति गुणत्वनिष्ठद्रव्याश्रितत्वसामान्यव्याप्तिज्ञानमादायेत्यर्थः, 'परिच्छिद्यत इति इच्छा द्रव्याश्रिता गुणत्वादिति प्राथमिक-

अथ व्यतिरेकी नानुमानं सर्व्वत्र प्रमेयत्वादिना सत्प्रतिपक्षग्रस्तत्वादिति चेत् । न । विपक्षबाधकेन व्यतिरेकिणो बलवत्त्वात् ।

अन्ये तु व्यतिरेकिण्यभाव एव साध्यः स चाप्रसिद्ध-
एव सिद्ध्यति यस्याभावस्य व्यापको हेत्वभावो गृही-
तस्तस्याभावः पक्षे व्यापकाभावाभावरूपेण हेतुना
सिद्ध्यति व्यापकाभाववत्तया ज्ञाते व्याप्याभावज्ञाना-
वश्यम्भावात्, तथाहि पृथिवी इतरेभ्यो भिद्यते पृथि-
वीत्वादित्यत्र इतरस्य जलादेर्व्यापकः पृथिवीत्वाभावे
गृहीत इति पृथिवीत्वाभावाभावरूपेण पृथिवीत्वेन

सामान्यतोद्दृष्टानुमाननेनेत्यर्थः, 'मानान्तरादिति प्राथमिकगुणत्व-
हेतुकद्रव्याश्रितत्वानुमितिप्राक्काले द्रव्यगतमष्टद्रव्यान्यत्वं माना-
न्तरान्नियमतो नोपतिष्ठते येनोपनीतं भासेतेत्यर्थः, इदमुपलक्षणं
मानान्तरादुपस्थितत्वेऽपि भानं न सम्भवति अनुमितेर्व्यापकतावच्छे-
दकमात्रप्रकारेणैव साध्यविषयकत्वनियमात् अनुमितावुपनीतभाने
मानाभावाच्चेत्यपि द्रष्टव्यम् ।

केषाञ्चित्समाधानमाह, 'ये चेति, 'जानन्तीति, न वा सामा-
न्यतोद्दृष्टानुमानेन इच्छायाश्रयि द्रव्याश्रितत्वं जानन्तीति शेषः,
'पृथिव्याद्यनाश्रितत्वमिति, इदञ्च व्यतिरेकिणि सत्यन्तविशेषण-
सिद्ध्यर्थं, 'अनुमानादिति इच्छायामष्टद्रव्यातिरिक्तद्रव्याश्रितत्वानु-
मितेरित्यर्थः, सा च व्यतिरेकिणं विना न भवति पूर्वं सामा-

पृथिव्यामितरान्योन्याभावोऽप्रसिद्ध एव सिद्धति प्रति-
 योगिज्ञानस्य वृत्तत्वात् प्रत्यक्षेण भूतले घटाभाववत् ।
 एवमन्यत्राप्यव्याप्यवृत्तीच्छायाः स्वाश्रयत्वे सिद्धे स्वाश्रये
 योऽत्यन्ताभावस्तदवच्छेदकं घटादि सर्व्वं तदवच्छेदेने-
 च्छानुपलम्भात् जीवच्छरीरन्तु न तथा तदवच्छेदेन
 तदाश्रये इच्छोपलम्भात् तथाचेच्छात्यन्ताभावाश्रयता-
 वच्छेदकत्वरूपस्य नैरात्म्यस्य घटादौ प्राणादिमत्त्वा-
 भावो व्यापको गृहीत इति जीवच्छरीरे प्राणादिमत्त्वेन
 इच्छात्यन्ताभावाश्रयत्वावच्छेदकत्वस्याभावः सात्मकत्वं
 साध्यते, एवं प्रामाण्यसाधकव्यतिरेकिण्यपि व्यधिकरण-

न्यतोदृष्टानुमानाभावेन तेन तत्सिद्धसम्भवादिति भावः । 'इत्यप्याहु-
 रित्यस्त्रसोद्भावनं, तद्वीजन्तु यदीच्छाया द्रव्याश्रितत्वेन तदाश्रयस्य
 चाष्टद्रव्यभिन्नत्वेन न ज्ञानं तदा साध्याप्रसिद्ध्या व्यतिरेकिणोऽप्य-
 नवकाश इति तत्समर्थनमप्यशक्यं स्यादिति ध्येयम् ।

'बलवत्त्वादिति, सत्प्रतिपत्तानवतारदशायां व्यतिरेकिसाम्राज्या-
 च्चेत्यपि बोध्यम् ।

'अभाव एवेति अभावत्वरूपेणाभाव एव साध्य इत्यर्थः, अतएव
 व्यतिरेकव्याप्तिज्ञानादङ्गभावाभावत्वेनैव वङ्गानुमितिरिति भावः ।

'अप्रसिद्ध एवेति अप्रसिद्धोऽपीत्यर्थः, ननु तस्याप्रसिद्धत्वे हेत्वभावे
 तदभावव्यापकत्वग्रहासम्भवात् कथमनुमितिरत आह, 'यस्याभाव-
 स्तेति यस्य प्रतियोगिनो व्यापकतया हेत्वभावे गृहीत इत्यर्थः,

प्रकारावच्छिन्नत्वस्य व्यापकः समर्थप्रवृत्तिजनकत्वाभा-
वोऽप्रमायां गृहीतोऽतो विवादाध्यासितानुभवे समर्थ-
प्रवृत्तिजनकत्वेन व्यधिकरणप्रकारावच्छिन्नत्वस्याभावः
सिद्ध्यति व्यधिकरणप्रकारानवच्छिन्नत्वमेव प्रमात्वम् ।
ननु साध्याप्रसिद्धौ कथं साध्यविशिष्टज्ञानं विशेषण-
ज्ञानजन्यत्वाद्विशिष्टज्ञानस्येति चेत् । न । पक्षे साध्यानु-
मितिसामग्रीसत्त्वात्पक्षविशेषणकः साध्यविशेष्यकएव
प्रत्ययो जायते भूतले घटो नास्तीत्यभावविशेष्यकप्रत्य-
यवत्^(१) तथापि साध्याभावव्यापकाभावाभावरूपहेतु-
मत्तया पक्षज्ञानं व्यतिरेकिणि गमकतौपयिकं । न च
साध्यप्रसिद्धिं विनापि तादृशप्रतिसन्धानं सम्भवति, न

तथाच तत्र हेत्वभावे प्रतियोगिव्यापकताज्ञानमेव हेतुरिति भावः ।
'व्यापकाभाववत्तयेति व्यापकाभावत्वरूपेण व्यापकाभाववत्तया ज्ञाने
इत्यर्थः, 'तथाहीति तथाचेत्यर्थः, 'इतरस्य जलादेरिति तादात्म्य-
सम्बन्धेनेत्यादिः । 'पक्षविशेषणक इति पृथिव्यां पृथिवीतरभेद
इत्याकारकः प्रत्ययो जायत इत्यर्थः । नन्विदमपि ज्ञानं न
सम्भवति पृथिवीतरत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदत्वस्य विशेष्योभूते
भेदे विशेषणतया तज्ज्ञानाभावात् । न चेतस्य भेदत्वस्य च खण्डशः
प्रसिद्धिसत्त्वेन विशेष्ये विशेषणमिति न्यायेन तादृशधीसम्भव इति
वाच्यं । तथा सति पक्षविशेषणकपर्यन्तानुधावनवैयर्थ्यात् इतरत्वा-

च वस्तुगत्या यः साध्याभावस्तद्वापकाभावप्रतियोगि-
मत्तया ज्ञानं मृग्यत इति वाच्यं । व्यतिरेक्याभासानु-
पपत्तेरिति चेत् । न । योऽभावो यस्य भावस्य व्यापक-
त्वेन गृहीतः तदभावाभावेन तस्य व्याप्यस्याभावः पक्षे
साध्यत इत्यनुगतानतिप्रसक्तस्य गमकतौपयिकत्वात्,
अयच्च व्यतिरेकिप्रकारः स्वार्थ एव, परं प्रति साध्याप्र-
सिद्धा प्रतिज्ञाद्यसम्भवादिति सर्व्वं समञ्जसम्^(१) ।

इति श्रीमद्भङ्गेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ
अनुमानाख्यद्वितीयखण्डे केवलव्यतिरेक्यनुमानसि-
द्धान्तः, सम्पूर्णमिदं केवलव्यतिरेक्यनुमानं ।

वच्छिन्नस्य भेदस्य च खण्डशः प्रसिद्धिसत्त्वेन विश्लेष्ये विशेषणमिति
न्यायेन पक्षविषेय्यक-साध्यविशेषणकज्ञानस्यापि सम्भवादिति चेत् ।
न । भेदत्वरूपेण पृथिवीतरत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदव्यक्तेर्ज्ञाना-
भावदशायामस्याभिधानात् तज्ज्ञानदशायान्तु पक्षविश्लेष्यकमपि
सम्भवतीति ध्येयं । 'व्यतिरेक्याभासेति वस्तुगत्याधेयत्वादेरभावस्या-
प्रसिद्ध्या व्यतिरेक्याभिज्ञानान्मेयत्वाननुमानापत्तेरित्यर्थः ।

इति श्रीमथुरानाथ-तर्कवागीशविरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये
अनुमानाख्यद्वितीयखण्डरहस्ये केवलव्यतिरेक्यनुमानसिद्धान्तरहस्यं,
सम्पूर्णमिदं केवलव्यतिरेक्यनुमानरहस्यं ।

अथ अर्थापत्तिः ।

—००:००:००—

व्यतिरेक्यनुमानसिद्धावर्थापत्तिर्न मानान्तरं तेनैव तदर्थसिद्धेः स्यादेतत् ज्योतिःशास्त्रात्तत्कथितलिङ्गाद्वा देवदत्तस्य शतवर्षजीवित्वमवगतं चरमं शतवर्षजीवी गृह एवेति नियमे प्रत्यक्षेणावगते पञ्चाद्योग्यानुपलब्ध्या निश्चितोगृहाभावो जीवननियमग्राहकप्रमा-

अथ अर्थापत्तिरहस्यं ।

व्यतिरेकव्याप्तिज्ञानस्यानुमितिजनकत्वं व्यवस्थाप्य प्रसङ्गसङ्गत्या अर्थापत्तेरतिरिक्तप्रमाणत्वं मीमांसकाभिमतं निराचष्टे, 'व्यतिरेक्यनुमानसिद्धाविति व्यतिरेकव्याप्तिज्ञानस्यानुमितिजनकत्वसिद्धावित्यर्थः, 'अर्थापत्तिः' अर्थापत्तिशब्दवाच्यं ज्ञानं, तच्चास्मन्मते व्यतिरेकव्याप्तिज्ञानजन्यानुमितिरेव तन्मते चातिरिक्तमिति ध्येयं । 'न मानान्तरमिति नानुमितिभिन्नमित्यर्थः, 'तेनैवेति अनुमानेनैव, 'तदस्य' अर्थापत्तिशब्दवाच्यज्ञानस्य, 'सिद्धेः' उत्पत्तेरित्यर्थः, तथाचानुमितिसामग्रीभिन्नसामग्र्यजन्यत्वे सति जन्यत्वादिति हेतुरिति भावः^(१) । न

(१) प्रयोगस्तु अर्थापत्तिशब्दवाच्यं ज्ञानं नानुमितिभिन्नं अनुमितिसामग्र्यजन्यत्वे सति जन्यत्वादित्याकारक इति ।

शयोर्बलावलानिरूपणादहिःसत्त्वकल्पनं विना निय-
मद्वयविषयकसंशयं जनयित्वा जीवति न वेति संशय-
मापाद्य जीवनसंशयापनुत्तये जीवनेोपपादकं वहिः-
सत्त्वं कल्पयतीति यथोक्तसामग्र्यनन्तरं वहिरस्तीति
प्रतीतेः तत्रान्वय-व्यतिरेकाभ्यां संशयद्वारा गृहाभावः
तदुत्पादितनियमद्वयविषयकसंशयो वा करणं जीव-

चानुमितिसामग्रीजन्यत्वादित्येव सम्यक्, यथासन्निवेशे वैयर्थ्याभा-
वात्^(१) । अर्थापत्तिशब्दवाच्यं ज्ञानं अनुमितिभिन्नं न वेति विप्रति-
पत्तिः, यद्वा व्यतिरेकव्याप्तिज्ञानं व्यतिरेकव्याप्यविषयकानुमिति-
भिन्नप्रमितिकरणं न वेति विप्रतिपत्तिः, व्याप्तिविशिष्टबुद्धेः व्याप्ति-
ज्ञानानुव्यवसायस्य च वारणाय व्यतिरेकव्याप्यविषयकेति ।

अत्राभिनवमीमांसकाः शृणोमीत्यनुभवसिद्धशब्दत्वादिजातिवत्
अर्थादापाद्यामीत्यनुभवसिद्धमर्थापत्तित्वमपि जातिविशेषः सिध्यति ।
न च व्यतिरेकव्याप्तिज्ञानजन्यानुमितित्वमेव तद्विषय इति वाच्यं ।
अननुगतत्वाद्विलम्बोपस्थितिकत्वेन तदुपस्थितिं विनापि तादृशा-
नुगतमतेर्जायमानत्वात् । अथास्तु अर्थापत्तित्वनामा जातिविशेषः,
स चानुमितित्वव्याप्य एव । न च तस्य तद्व्याप्यत्वे मानाभावः,

(१) अनुमितिसामग्रीभिन्नसामग्र्यजन्यत्वे सति जन्यत्वादिति हेतोरनु-
मितिसामग्रीजन्यत्वघटितत्वाभावात् न व्यर्थविशेषणघटितत्वमिति
भावः ।

नसंशयएव वा, करणे सव्यापारकत्वानियमात् । प्रमा-
णयोर्विरोधज्ञानं तदाहितसंशयद्वारा करणमिति
कश्चित् । तदा जीवित्वस्य लिङ्गविशेषणस्य सन्दिग्धत्वे-
नानुमानासम्भवादर्थापत्तिर्मानान्तरम् । ननु संशयस्य
कल्पकत्वे स्थाणु-पुरुषसंशयादपि तदेककोटिनिर्व्वाह-
कल्पनापत्तिः, न च प्रमितसंशयः कल्पनाङ्गं, जीवनस्य

व्यतिरेकव्याप्तिज्ञानजन्यज्ञाने अनुमिनोमीत्यनुव्यवसायस्यानुमिति-
सामग्रीजन्यत्वस्य च मानत्वादिति चेत् । न । तत्र तादृशानुव्यव-
सायस्यैवासिद्धेः प्रत्युत इदन्वसाचात्कृतं न वा अनुमितं परन्तु
अर्थापत्त्या अवगतमिति वैपरीत्येनैवानुभवात् । अत एवानुमिति-
सामग्रीजन्यत्वमप्रसिद्धं तत्र तादृशव्यवसायाभावे लाघवात् साध्य-
वदन्यावृत्तित्वज्ञानस्यैवानुमितिहेतुत्वात् अर्थापत्तिं प्रति गुरुणोऽपि
व्यतिरेकव्याप्तिज्ञानस्थानागत्या हेतुत्वकल्पनात् लघुनोऽप्यसम्भवात् ।
न चार्थापत्तिं प्रति लाघवात् साध्यवदन्यावृत्तित्वज्ञानं हेतुः अनु-
मितौ च व्यतिरेकव्याप्तिज्ञानमित्येव किञ्च स्यादिति वाच्यं । अन्व-
यव्याप्तिज्ञानजन्यज्ञाने अर्थादापादयामौत्यनुव्यवसायाभावात् अनु-
मिनोमीत्यनुव्यवसायात् व्यतिरेकव्याप्तिज्ञानजन्ये च तादृशानुव्यव-
सायादिति प्राज्ञः ।

हेतोः स्वरूपासिद्धिमाशङ्कते, 'स्यादेतदिति, देवदत्तः शतवर्ष-
जीवीति न ज्योतिःशास्त्रोक्तं किन्तु यत् केन्द्रस्थवृहस्पतिकं भवति

तत् शतवर्षजीवीति व्याप्तिमात्रग्राहकमत आह, 'तत्कथितेति'
 'शतवर्षजीवी गृह एवेतीति देवदत्तः शतवर्षजीवी सन् गृहान्या-
 वृत्तिरिति नियमे इत्यर्थः, 'निश्चितोगृहाभाव इति शतवर्षमध्ये
 एव गृहे देवदत्ताभावस्य निश्चय इत्यर्थः, 'जीवननियमग्राहकेति
 जीवित्वनिश्चय-गृहान्यावृत्तित्वनिश्चययोः प्रामाण्याप्रामाण्यन्यतरा-
 निश्चयादित्यर्थः, 'वहिःसत्त्वकल्पनमिति वहिःसत्त्वनिश्चयाभावेन
 चेत्यर्थः, 'नियमद्वयविषयकमिति नियमद्वयविषयकनिश्चयद्वयविष-
 यकं प्रामाण्यसंशयं जनयित्वेत्यर्थः, 'आपाद्य' उत्पाद्य, 'अपनुत्तये'
 निवृत्तये, 'जीवनोपपादकमिति शतवर्षमध्ये गृहसतः शतवर्षजीवि-
 त्वस्य व्यापकमित्यर्थः, 'कल्पयति' ज्ञापयति, अत्र मानमाह, 'यथो-
 क्तेति, 'संशयद्वारा' प्रामाण्यसंशयद्वारा, 'गृहाभावः' गृहे देवदत्तस्या-
 भावनिश्चयः, गृहाभावनिश्चयस्य प्रामाण्यसंशयं प्रत्यहेतुत्वेन तस्य
 तद्द्वारत्वासम्भवादाह, 'तदुत्पादितेति तत्प्रयोज्यनिश्चयद्वयविषयक-
 प्रामाण्यसंशय इत्यर्थः, सोपि न जीवनकारणं जीवनसंशयेनान्यथासिद्ध-
 त्वात् तस्य तद्व्यापारत्वे मानाभावादत आह, 'जीवनसंशय एव वेति
 'करणमित्यनुषज्यते । ननु जीवनसंशयस्य व्यापाराभावात् कथं कर-
 णत्वमित्यत आह, 'करण इति फलायोगव्यवच्छिन्नत्वस्य करणलक्षण-
 त्वात् इति भावः^(१) । 'प्रमाणयोः' देवदत्ते शतवर्षजीवित्व-गृहान्या-
 वृत्तित्वनिश्चययोः, 'विरोधज्ञानं' विरुद्धार्थविषयकत्वज्ञानं, शतवर्षमध्ये
 गृहनिष्ठाभावप्रतियोगिनि शतवर्षजीवित्वं गृहान्यावृत्तित्वञ्च धर्म-
 द्वयं विरुद्धं उभाभ्यां तन्निश्चयार्थं तदुभयविषयीकृतं ज्ञानमिति

(१) न तु फलायोगव्यवच्छिन्नव्यापारवत् कारणं करणमिति तात्पर्यम् ।

तदानीं प्रमितत्वे संशयाभावप्रसङ्गात् जीवित्वनिश्चये-
ऽनुमानादेव वहिःसत्त्वनिश्चयाच्च, कदाचित् प्रमितत्वे
च प्राक्प्रमितपुरुषत्वस्यान्तरा तत्संशये कल्पना स्यात् ।
किञ्च जीवनसंशयस्य मृतेऽपि दृष्टत्वान्न व्यभिचारेण
वहिःसत्त्वगमकमिति चेत् । न । यथोक्तसामग्रीप्रभव-
संशयस्य कल्पनाङ्गत्वात्, अतएव मृत-जनिष्यमाणयो-
र्गृहाभावनिश्चयो न यथोक्तसंशयमापादयतीति न
वहिःसत्त्वकल्पकः । गृहाभावश्च योग्यानुपलब्धिनि-

यावत्, 'तदाहितेति तादृशविरोधज्ञानाहितप्रामाण्यसंशयद्वारेत्यर्थः,
तादृशविरोधज्ञानं विना प्रामाण्यसंशयासम्भवेन उपजीव्यत्वादिति
भावः । 'कश्चिदित्यस्वरमोक्षावनं तद्वीजन्तु आन्तरालिकस्य प्रामाण्य-
संशयस्य तद्वापारत्वे मानाभाव इति । 'लिङ्गविशेषणस्येति, जीवित्वे
सति गृहासत्त्वस्यैव हेतुकरणीयत्वादिति भावः । 'अनुमानासम्भवात्'
अनुमितिसामर्थ्यसम्भवात्, 'कदाचित् प्रमितत्वं इति यदा कदाचि-
न्निश्चितविषयकसन्देहस्यैव कल्पनाङ्गत्वं इत्यर्थः, 'कल्पना स्यात्' जीवन-
तदुपपादककल्पना स्यात्, 'जीवनसंशयस्येति जीवनसंशयो यस्मादिति
व्युत्पत्त्या गृहासत्त्वनिश्चयस्येत्यर्थः, यथाश्रुते समाधाने 'गृहाभाव-
निश्चय इत्यसङ्गतेः तच्चानुपदं स्फुटीभवित्यति, 'मृतेऽपि' मृतत्वेन
निश्चितेऽपि, 'व्यभिचारेण' अन्वयव्यभिचारेण, 'यथोक्तेति, 'संशयस्य'
जीवनसंशयस्येत्यर्थः, कार्य-कारणभावस्तु फलबलान्तद्व्यक्तित्वेन विल-

श्चितो न संशय इति । अथ जीवननियमग्राहकप्रमा-
णयोर्यदि च तुल्यबलत्वमवगतं क तर्हि वहिःसत्त्वक-
ल्पना विशेषदर्शनविरहात्, कल्पने वा प्रमितजीवन-
निर्व्वाहकवहिःसत्त्ववद्गृहनियमनिर्व्वाहकमरणस्या-
प्युचितत्वेन तत्कल्पनापि स्यात् जीवन-मरणयोः संश-
याविशेषात् । अथ तयोरेकं बलीयोऽपरमबलं तदैके-
नापरस्य बाध एवेति न संशयः तस्माद्यत्र शतवर्ष-

क्षणशक्तिमत्त्वेनैव वेति । ‘किञ्चेत्युक्तदोषमुद्धरति, ‘अत एवेति
यथोक्तसामग्रीप्रभवसंग्रहस्य कल्पनाङ्गत्वादेवेत्यर्थः, ‘मृत-जनिष्यमान-
योरिति मृतत्व-जनिष्यमानत्वेन निश्चितयोरित्यर्थः, ‘गृहाभाव-
निश्चयः’ गृहासत्त्वनिश्चयः, ‘यथोक्तेति यथोक्तरूपेण जीवित्वसंग्रहं
जनयतीत्यर्थः ।

केचित्तु ‘जीवनसंग्रहस्येति यथा कथञ्चित् जीवनसंग्रहस्येत्यर्थः,
‘मृतेऽपीति, वहिःसत्त्वनिश्चयाभावोऽसिद्ध एवेति भावः । एतेन
दूषणद्वयमेव निराकृतं । ननु तथापि मृतत्वादिना निश्चिते गृहा-
सत्त्वनिश्चयः वहिःसत्त्वं न कल्पयतीति अत आह, ‘अत एवेति,
अर्थस्तुपूर्ववदित्याहुः ।

ननु जीवित्वनिश्चये प्रामाण्यसंग्रहात् जीवित्वसंग्रह इव योग्या-
नुपलब्धिजनितगृहाभावनिश्चयेऽपि प्रामाण्यसंग्रहात् कथं न गृहा-
भावसंग्रह इत्यत आह, ‘गृहाभावश्चेति, तथाच तत्र योग्यानुपल-

जीवित्वमवधारितं गृहाभावश्च निश्चितः तत्र वहिः-
सत्त्वकल्पनं न तु जीवनसंशये, एवञ्च देवदत्तो वहिः
सन् जीवित्वे सति गृहनिष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वा-
दिति व्यतिरेकिणा वहिःसत्त्वज्ञानेनार्थापत्त्या लिङ्ग-
विशेषणजीवित्वसंशये वहिःसत्त्वकल्पना च नास्त्येव ।
किञ्च गृहाभावनिश्चयः प्रमाणद्वयविषयसंशयं जन-
यित्वा जीवनसंशयमापाद्य वहिःसत्त्वं कल्पयतीति न
युक्तं, न हि यत एव यत्संशयः स एव तन्निश्चयाय

अभिजनितज्ञानमेव विशेषदर्शनतया प्रामाण्यसंशयविरोधीति भावः ।
'जीवननियमेति देवदत्ते शतवर्षजीवित्वगृहान्यावृत्तित्वनिश्चययो-
रित्यर्थः, 'तुल्यबलत्वमिति उभयत्रैव सन्दिग्धाप्रामाण्यकत्वमित्यर्थः,
'अवगतं' प्रमाणसिद्धं, 'वहिःसत्त्वकल्पना' वहिःसत्त्वनिश्चयः, 'विशेष-
दर्शनेति वहिःसत्त्वव्याप्यस्य शतवर्षमध्ये गृहासत्त्वे सति शतवर्षजीवि-
त्वस्य निश्चयविरहादित्यर्थः, व्याप्यनिश्चय एव तदनुपपत्त्या व्यापक-
कल्पनादिति भावः । ननु संशयकरणकार्यापत्तिस्थले व्याप्यनिश्चयो
न हेतुः किन्तु व्याप्यसंशय एव तथा फलबलात् तथैव कल्पनादि-
त्यस्वरसादाह, 'कल्पने वेति, 'जीवनेति शतवर्षमध्ये गृहासत्त्वे सति
शतवर्षजीवित्वस्य व्यापकेत्यर्थः, 'गृहनियमेति गृहासतो गृहान्या-
वृत्तित्वस्य व्यापकेत्यर्थः, 'उचितत्वेन' त्वदभिमतनिश्चायकसामग्री-
विशिष्टत्वेन, व्याप्यसंशयमात्रं न व्यापकार्यापत्तिहेतुः किन्तु विलक्षण-

प्रभवति, अतिप्रसङ्गात् । मैवम् । यथोक्तसामग्रीजनित-
संशयवानेवं तर्कयति याग्यानुपलब्धिगृहीतो गृहाभा-
वइति तन्निश्चयः सुदृढइति जीवननियमग्राहकयोरेकं
बाध्यं विरुद्धयोरप्रमाणत्वात् तदिह मरणं कल्पयित्वा
जीवनग्राहकं बाध्यतां नोवा वह्निःसत्त्वं कल्पयित्वा
गृहनियमग्राहकं तत्र वह्निःसत्त्वकल्पने गृहनियमग्रा-
हकमात्रबाधा, मरणकल्पने तु शतवर्षजीवी देवदत्तः

स्तत्संशय एवेत्यत आह, 'जीवनेति, जीवन-मरणयोः' जीवित्व-तद्-
भावयोः, 'संशयेति, गृहान्यावृत्तित्वसंशयतोऽवैलक्षण्यादित्यर्थः । 'एकं'
गृहान्यावृत्तित्वज्ञानं, 'वलीयः' निश्चितप्रामाण्यकं, 'अपरं' शतवर्ष-
जीवित्वज्ञानं, 'अवलं' गृहीताप्रामाण्यकं, 'एकेनेति शतवर्षमध्ये गृह-
निष्ठाभावप्रतियोगित्वेन निश्चितस्य देवदत्तस्य गृहान्यावृत्तित्वनिश्चये-
नेत्यर्थः, 'अपरस्य' अपरविषयीभूतस्य शतवर्षजीवित्वस्य, 'बाधः'
अभावनिश्चयः, शतवर्षमध्ये गृहासत्त्वे सति गृहान्यावृत्तेः शतवर्ष-
जीवित्वाभावनिश्चयादिति भावः । 'न संशय इति न शतवर्षजीवित्व-
संशय इत्यर्थः, 'अवधारितमिति निश्चितमित्यर्थः, गृहान्यावृत्तित्वञ्च
सन्दिग्धमित्यपि बोध्यं, 'गृहाभावः' गृहेऽभावः । नन्वेवमेव वक्तव्य-
मित्यत आह, 'एवञ्चेति, 'जीवित्वे सतीति एतच्छतवर्षमध्ये
गृहनिष्ठाभावप्रतियोगित्वादित्यर्थः, 'व्यतिरेकिणेति, इदमुपलक्षणं
देवदत्तभिन्ने मैत्रादौ साध्य-हेतुनिश्चयदशायामन्वयिनापि सम्भव-

भविष्यतीत्येतावत्तर्कसहकृतो यथोक्तसामग्रीप्रभवः
संशयो वह्निःसत्त्वं कल्पयति । न च वाच्यं तर्काणां
विपर्ययापर्यवसायित्वे आभासत्वं, तत्पर्यवसाने च

गृहान्यावृत्तित्वधीरिति यावत् । न च एकस्य देवदत्तस्य तावत्कालो-
पाधिनिश्चयापेक्षया देवदत्त-तदवयवादिपरस्परार्थ-गृहान्यावृत्ति-
त्वनिश्चयानां कथमल्पत्वमिति वाच्यं । तावत्कालोपाधिजीवित्व-
निश्चयस्यापि देवदत्त-तदवयवादिपरस्परार्थयावत्सत्त्वे जीवनग्राहकस्य
वज्रत्वात् । न च तथापि वह्निःसत्त्वकल्पने देवदत्त-तदवयवादि-
परस्परार्थग्रहनियमवत्तेषु तदवयवादिपरस्परनियमनिश्चयानामप्य-
प्रमात्वं स्यादिति कथमल्पत्वमिति वाच्यं । मरणकल्पने गृह-तदवय-
वादिपरस्पराणां देवदत्त-तदवयवादिपरस्पराणामपि कालोपाधि-
तया तत्तज्जीवित्वनिश्चयानां कालोपाध्यन्तरजीवित्वनिश्चयानामप्य-
प्रमात्वं स्यादिति भावः । 'अभावस्वरूपेति तत्पुरुषीयशरीरसंयोगा-
धिकरणक्षणावृत्ति तत्पुरुषीयशरीरप्राणसंयोगध्वंसरूपेत्यर्थः, 'गृहा-
न्योन्याभावाश्रयेति, गृह-तदभावान्योन्याभावकूटघटितत्वेन च वह्निः-
सत्त्वं गुर्विति भावः । अदृष्टविशेषध्वंसो मरणमित्यभिप्रायेणैतदभि-
प्राय इत्यपि कश्चित् । 'तदेवेति वह्निःसत्त्वमेवेत्यर्थः, वह्निःसत्त्वकल्पने
लघुतरं जीवनमायास्यति मरणकल्पने च वह्निःसत्त्वापेक्षया गुह्यतरं
गृहान्यावृत्तित्वमायास्यतीति गौरवादिति भावः । तथा सति
जीवनमात्रमेव कल्प्यतां किं वह्निःसत्त्वकल्पनेनेत्याशङ्कयामाह, 'तत-

सत्त्वस्य भावस्य लघुत्वं, यदि च गृहान्योन्याभावाश्रय-
वहिःपदार्थवृत्तिसंयोगाश्रयत्वं वहिःसत्त्वमिति तद-
पेक्षया मरणमेव लघु, तथापि मरणापेक्षया जीवन-
मात्रं लघ्विति तदेव कल्पयितुमर्हं । ततोऽर्थापत्ति-
कल्पितं जीवित्वमुपजीव्यानुमानादपि वहिःसत्त्वज्ञानं

मप्रमेत्यर्थः, 'वहिःसत्त्वं कल्पयित्वेति वहिःसत्त्वसत्त्वेनेत्यर्थः, 'वहिःसत्त्व-
कल्पन इति वहिःसत्त्वसत्त्वे इत्यर्थः, 'गृहनियमेति गृहान्यावृत्तित्व-
निश्चयेत्यर्थः, 'बाधा' अप्रमात्वं, 'शतवर्षजीवी गृह एवेति शतवर्ष-
जीवित्वे सति गृहान्यावृत्तिरित्यर्थः, 'नियमद्वयस्यापि बाधा स्यादिति
निश्चयद्वयस्य विभिन्नरूपाप्रमात्वं स्यात्, 'शतवर्षजीवी देवदत्तः'
इत्यस्य शतवर्षजीवित्वाभाववति शतवर्षजीवित्वप्रकारकत्वरूपशतवर्ष-
जीवित्वाप्रमात्वं स्यात् शतवर्षजीवित्वे सति गृहान्यावृत्तिरित्यस्य
शतवर्षजीवित्वस्य विशेषणस्याभावेन विशिष्टस्याप्यभावाच्छतवर्षजीवि-
त्वविशिष्टगृहान्यावृत्तित्वप्रकारकत्वरूपविशिष्टाप्रमात्वं स्यादिति यथा-
श्रुतेऽर्थे 'न तत्र विशिष्टबाधो विशेष्यबाधात्' इत्यग्निमग्न्यासङ्गतेः
तस्य तत्रैव व्यक्तिर्भविष्यति । 'तन्नियमबाधस्येति देवदत्तः शतवर्ष-
जीवित्वे सति गृहान्यावृत्तिरिति निर्णयप्रमात्वाभावस्येत्यर्थः, 'तद्बाध-
इति तेषामप्रामाण्य इत्यर्थः, 'वज्रतरव्याप्तीति ज्योतिःशास्त्रजनित-
तद्वलीकृतवज्रतरव्याप्तिज्ञानानामप्रामाण्यमित्यर्थः, 'देवदत्त-तदव-
यवेति, 'गृहसत्त्वव्याप्तिः' तादात्म्यसम्बन्धेन गृहसत्त्वस्य व्याप्तिधीः

भविष्यतीत्येतावत्तर्कसहकृतो यथोक्तसामग्रीप्रभवः
संशयो वह्निःसत्त्वं कल्पयति । न च वाच्यं तर्काणां
विपर्ययापर्यवसायित्वे आभासत्वं, तत्पर्यवसाने च

गृहान्यावृत्तित्वधीरिति यावत् । न च एकस्य देवदत्तस्य तावत्कालो-
पाधिनिश्चयापेक्षया देवदत्त-तदवयवादिपरस्परार्थ-गृहान्यावृत्ति-
त्वनिश्चयानां कथमल्पत्वमिति वाच्यं । तावत्कालोपाधिजीवित्व-
निश्चयस्यापि देवदत्त-तदवयवादिपरस्परार्थयावत्सत्त्वे जीवनग्राहकस्य
वज्रत्वात् । न च तथापि वह्निःसत्त्वकल्पने देवदत्त-तदवयवादि-
परस्परार्थग्रहनियमवत्तेषु तदवयवादिपरस्परनियमनिश्चयानामप्य-
प्रमात्वं स्यादिति कथमल्पत्वमिति वाच्यं । मरणकल्पने गृह-तदवय-
वादिपरस्पराणां देवदत्त-तदवयवादिपरस्पराणामपि कालोपाधि-
तया तत्तज्जीवित्वनिश्चयानां कालोपाध्यन्तरजीवित्वनिश्चयानामप्य-
प्रमात्वं स्यादिति भावः । 'अभावस्वरूपेति तत्पुरुषीयशरीरसंयोगा-
धिकरणचणावृत्ति तत्पुरुषीयशरीरप्राणसंयोगध्वंसरूपेत्यर्थः, 'गृहा-
न्योन्याभावाश्रयेति, गृह-तदभावान्योन्याभावकूटघटितत्वेन च वह्निः-
सत्त्वं गुर्विति भावः । अदृष्टविशेषध्वंसो मरणमित्यभिप्रायेणैतदभि-
प्राय इत्यपि कश्चित् । 'तदेवेति वह्निःसत्त्वमेवेत्यर्थः, वह्निःसत्त्वकल्पने
लघुतरं जीवनमायास्यति मरणकल्पने च वह्निःसत्त्वापेक्षया गुरुतरं
गृहान्यावृत्तित्वमायास्यतीति गौरवादिति भावः । तथा सति
जीवनमात्रमेव कल्प्यतां किं वह्निःसत्त्वकल्पनेनेत्याशङ्क्यामाह, 'तत-

तद्देवानुमानमेतत्तर्कसहायं वहिःसत्त्वमनुमाययिष्य-
तीति यतोलाघव-गौरवतर्काणां विपर्ययापर्यवसायि-
नामेव प्रमाणसहकारित्वमत एव प्रत्यक्ष-शब्दादावपि

इति, 'उपजीव्य' हेतूक्त्य, 'अनुमानादपीति तथाचैतन्मान्यत्वात्
तर्कत्वमपि कल्प्यत इति भावः । 'एतावर्त्तकेति एतावन्नाघवज्ञाने-
नेत्यर्थः, 'वहिःसत्त्वं कल्पयति' वहिःसत्त्वं निश्चाययतीत्यर्थः, मरणे च
लाघवज्ञानाभावान्न तन्निश्चयं जनयतीति भावः । एतेन 'किञ्चेत्युक्त-
मपि प्रत्युक्तं, तत्संग्रायकमात्रस्य तन्निश्चायकत्वे एवातिप्रसङ्गात् सह-
कारिविशेषमासाद्य तस्य तथात्वे चातिप्रसङ्गाभावादिति हृदयं । न
च संग्रयसामान्यमेव कल्पकमस्तु कृतं यथोक्तसामग्रीप्रभवत्वविशेषणे-
नेति वाच्यं । अयं पुरुषो न वेति संग्रयस्यापि पुरुषत्वं भावरूपं
तदभावापेक्षया लघ्विति तर्कसहकृतस्य पुरुषत्वकल्पकत्वापत्तेः अत्रे-
ष्टापत्तौ न देयमेवोक्तविशेषणमिति ध्येयं । 'विपर्ययेति, 'विपर्ययः'
गुर्वर्थविपरीतः लाघवार्थ इति यावत्, 'तदपर्यवसायित्वे' तद-
नुमितिजनकसामग्र्यसहकृतत्वे, 'आभासत्वं' लघ्वर्थनिश्चयाजनकत्वं,
ईश्वरानुमानादौ लाघवज्ञानस्य लघ्वर्थानुमितिजनकसहकारेण
लघ्वर्थनिश्चयजनकत्वदर्शनादिति भावः । 'तत्पर्ययस्य चेति देवदत्त-
एतत्कालीनवहिःसत्त्व-मरणान्यतरप्रतियोगी एतत्कालीनप्रागभावा-
प्रतियोगित्वे सति गृहासत्त्वादित्यनुमितिजनकसामग्र्याः सहकारित्वे
चेत्यर्थः, 'विपर्ययेति लघ्वर्थानुमितिजनकसामग्र्यसहकृतानामपीत्यर्थः ।

सहकारी सः । न च तस्यां दशायामेव प्रमाणान्तरमस्ति, ततोऽर्थापत्तिसहकारित्वं तर्कस्य । ननु स्वकारणाधीनस्वभावविशेषात्तर्कानुगृहीतयथोक्तसंशयस्य यदि वहिःसत्त्वप्रमापकत्वं तदा मृते गृहस्थिते वा तादृशसंशयाद्यत्र वहिःसत्त्वकल्पना सापि प्रमा स्यादिति चेत् । न । यथाहि प्रमापकस्येन्द्रियस्य दोषेण प्रमाशक्तितिरोधानादैन्द्रियकभ्रमः तथा यथोक्तसंशयस्यापि दोषेण प्रमाशक्तितिरोधानादग्रहरूपभ्रमसम्भवात् परोक्षज्ञानानां जनकज्ञानाविभ्रमत्वे यथार्थत्वनियमइति चेत्, सत्यं प्रकृतेऽपि जीवन-गृहाभावनियमग्राहकप्रमाणयोरन्यतराभासत्वं नाभासत्वं-

ननु लाघवज्ञानस्य प्रमाणान्तरसहकारित्वे प्रमाणान्तरादेव वहिःसत्त्वज्ञानं भविष्यति किमर्थापत्त्येत्यत आह, 'न चेति, 'तस्यामिति लाघवज्ञानदशायामित्यर्थः, 'स्वभावविशेषात्' विशेषशक्तिविशेषात् । 'प्रमाशक्तीति प्रमाजनकशक्तेरुद्भावनाग्रादित्यर्थः, उद्भवश्च शक्तिनिष्ठपदार्थान्तरं, 'अग्रहरूपेति धर्म-धर्मिणोर्भेदाग्रहरूपेत्यर्थः, गुरुभिरन्यथाख्यात्यनभ्युपगमादिदमुक्तं । 'जीवन-गृहाभावग्राहकप्रमाणयोरिति शतवर्षजीवित्वनिश्चय-योग्यानुपलब्धिजनितगृहाभावनिश्चययोरित्यर्थः, मृतस्थले जीवित्वनिश्चयस्याभावसत्त्वादिति भावः । कुत्रचित् 'जीवननियमग्राहकयोरिति पाठः अत्रापि 'नियमग्राहक-

सम्भवात् । यद्वा दोषाभावसहकृतस्य यथोक्तसंशयस्य
वहिःसत्त्वप्रमापकत्वमिति ।

इति श्रीमद्भङ्गेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ
अनुमानाख्यद्वितीयखण्डे संशयकारणकार्यापत्तिपूर्व-
पक्षः ॥ * ॥

पदेन योग्यानुपलब्धिगमितः देवदत्तो गृहे नास्त्येवेति निश्चयो विव-
क्षितः न तु जीवी गृहे एवेति निश्चयः, तथा सति वहिःसत्त्वं कुत्रापि
न स्यात्, गृहे एवेति निश्चयस्य कुत्राप्याभासत्वादिति ध्येयं । दोषेण
प्रमाशक्तेरुद्भावनाशमुक्त्वा दोषाभावस्य प्रमाहेतुत्वमाह, 'यदेति ।

इति श्रीमथुरानाथ-तर्कवागीशविरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये
अनुमानाख्यद्वितीयखण्डरहस्ये संशयकारणकार्यापत्तिपूर्वपक्षरहस्यं ।

अथ संशयकारणकार्यापत्तिसिद्धान्तः ।



उच्यते । अनयोरेकं बाध्यं विरुद्धार्थग्राहकत्वादिति सामान्यतोदृष्टादेव तर्कसहकृताद्गृहनियमग्राहकबाधे लिङ्गविशेषणजीवित्वनिश्चयेऽनुमानाद्वहिःसत्त्वसिद्धिः, तथाहि जीवनप्रमाणबाधे गृहनियमप्रमाणोत्थापित-लिङ्गेन मरणानुमानात् प्रमाणत्वाभिमतयोर्द्वयोरपि बाधा स्यात् गृहनियमग्राहकमानबाधे च निष्परिपन्थि-जीवनप्रमाणास्त्रिङ्गविशेषणजीवित्वनिश्चये वहिःस-

अथ संशयकारणकार्यापत्तिसिद्धान्तरहस्यं ।

‘अनयोरिति देवदत्तः शतवर्षजीवी देवदत्तोऽगृहान्यावृत्तिरिति निश्चयद्वयान्यतरत्वं शतवर्षजीवित्वभ्रम-गृहान्यावृत्तिवभ्रमद्वयान्यतर-वृत्ति शतवर्षजीवित्व-गृहान्यावृत्तिलोभयविरोधनिरूपकाधिकरण-विशेष्यक-शतवर्षजीवित्वप्रकारकज्ञानवृत्तिले सति तद्विशेष्यकगृहा-न्यावृत्तिवप्रकारकज्ञानवृत्तित्वादित्यर्थः, तदुभयविरोधनिरूपकत्वमु तदुभयत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभाववत्त्वं, यत् तदुभयोर्विरोधनि-रूपकाधिकरणविशेष्यक-तत्प्रकारकज्ञानवृत्तिले सति तादृशाधिकर-णविशेष्यक-तत्प्रकारकज्ञानवृत्ति तत्तद्भ्रम-तद्भ्रमद्वयान्यतरवृत्ति यथा सप्तावाम् गुणः द्रव्यत्ववान् गुण इति निश्चयद्वयान्यतरत्वमिति सामा-

त्त्वानुमानादेकप्रमाणवाधेवेत्यादितर्कसहकृतात्, सामान्यतोदृष्टाद्देवानयोरेकं बाध्यमिति जायमानानुमितिः परस्परामरणज्ञापकं विपर्ययीकरोति, न तु वहिःसत्त्व-परस्परसाधकं जीवनप्रमाणं, तथाच सामान्यतोदृष्टाद्देव गृह्ननियमग्राहकवाधे जीवनप्रमाणास्तिज्ञविशेष-णजीवित्वनिश्चयेऽनुमानाद्देव वहिःसत्त्वज्ञानमिति किमर्थापत्त्या । ननु वहिःसत्त्वज्ञानं विना जीवौ गृह्णन्वेत्यस्य ब्रह्मणापि बाधितुमशक्यत्वात् प्रथमं वहिःसत्त्वज्ञानं न तु गृह्ननियमग्राहकवाधानन्तरं तत् येन निष्परिपन्थिजीवनग्राहकाज्जीवित्वनिश्चयेऽनुमानं स्यात्, न

न्यमुखी च व्याप्तिरिति भावः । यथाश्रुते शतवर्षजीवी देवदत्त इत्यत्र व्यभिचारात् तस्य प्रमात्वात् बाधत्वस्य सामान्यतोदुर्वचत्वाच्च । 'तर्कसहकृतादिति लाघवज्ञानसहकृतादित्यर्थः', 'गृह्ननियमग्राहकवाधइति गृह्णान्यावृत्तित्वनिश्चयस्याप्रमात्वनिश्चये इत्यर्थः', 'जीवनप्रमाणवाधइति शतवर्षजीवित्वनिश्चयस्याप्रमात्वे इत्यर्थः', 'गृह्ननियमप्रमाणाति गृह्णान्यावृत्तित्वनिश्चयान्वितेन एतत्कालीनप्रागभावाप्रतियोगिप्राणित्वे सति गृह्णान्यावृत्तित्वविशिष्टगृह्णसत्त्वेन लिङ्गेनेत्यर्थः', 'अरणानुमानात्' मरणस्थानुमानप्रमाणसिद्धत्वात्. 'प्रमाणत्वाभिमतयोरिति शतवर्षजीवी देवदत्तः शतवर्षजीवी देवदत्तो गृह एवेति-निश्चयद्वयोरित्यर्थः', 'बाधा स्यात्' अप्रमात्वं स्यात्, शतवर्षजीवी

प्राथमिकवह्निःसत्त्वज्ञानमर्थापत्तिं विना । न च गृह-
नियमग्राहिणि तुल्यबले जागरूके कथमर्थापत्त्यापि
वह्निःसत्त्वज्ञानमिति वाच्यं । तर्कसहकारेणार्थापत्तेर्बल-
वत्त्वाद्वह्निःसत्त्वज्ञानमुत्पाद्य गृहनियमग्राहकमानवा-
धादिति चेत् । न । तर्कसहकारेण सामान्यतोद्दृष्टस्य
बलवत्त्वेन गृहनियमग्राहकबाधसम्भवात्, तस्माद्यथो-
क्तसंशयदृशायां जीवनबाधे तन्नियमबाधस्यावश्यकत्वा-
दिति तर्कानन्तरमेव वह्निःसत्त्वज्ञानमित्यविवादं, तच्च
कल्पनीयप्रमाणाभावे यथोक्तसंशये तर्कस्य न सह
कारित्वं गौरवात् किन्तु नियमग्राहकबाधद्वारा वह्निः-

देवदत्तोऽगृह एवेति निश्चयेऽपि शतवर्षजीवितस्य देवदत्ते प्रकारकत्वा-
दिति भावः । 'निष्परिपन्थीति' प्रतिबन्धकासमवहितेत्यर्थः, 'जीवन-
प्रमाणात्' केन्द्रस्थगृहस्यतिकत्वादिनिष्ठप्रमात्मकजीवितव्याप्तिनिश्च-
यात्, 'जीवितनिश्चये' जीवितसिद्धौ, 'वह्निःसत्त्वानुमानात्' वह्निः-
सत्त्वस्यानुमानप्रमाणसिद्धत्वात्, 'एकप्रमाणबाधैवेति' गृहान्यावृत्तित्व-
निश्चयस्यैवाप्रमात्वं स्यादित्यर्थः, 'परम्परेति' गृहान्यावृत्तित्वनिश्चय-
मित्यर्थः, 'जीवनप्रमाणं' शतवर्षजीवितं, 'बाधे' अप्रमात्वनिश्चये,
'जीवनप्रमाणादिति । 'वह्निःसत्त्वज्ञानं विनेति' देवदत्ते वह्निनिश्चयं
विनेत्यर्थः, 'बाधितुमिति' अप्रमात्वेन निश्चितुमित्यर्थः, गृहनियम-
निश्चयस्याप्रमात्वं हि वह्निःसत्त्ववति देवदत्ते गृहान्यावृत्तित्वप्रकारकत्वं

सत्त्वपरम्यरासाधके सामान्यतोदृष्टे लाघवात् । न च सामान्यतोदृष्टावतार एवात्र नास्तीति वाच्यम् । अनिर्द्धारितैकवाधप्राप्तौ द्वेकवाधानुकूलकल्पनायां विनिगमकस्तर्को भवति, न चैकवाधप्राप्तिः सामान्यतोदृष्टं विना । किञ्च विरोधज्ञानानन्तरमेकमप्रमाणमिति यदि धीर्नास्ति तदा प्रामाण्यसंशयो न स्यात् न स्याच्च जीवनसंशयः द्वयोरपि जीवनमरणनिश्चायकत्वात् । अथैकमनयोरप्रमाणमिति ज्ञानं जनयित्वा सामान्यतोदृष्टस्य

वह्निःसत्त्वस्यैव गृहान्यावृत्तित्वाभावत्वादिति देवदत्ते तन्निश्चयस्यावश्यकत्वादिति भावः । 'वाधानन्तरं' अप्रमात्वनिश्चयानन्तरं, 'तत्' देवदत्ते वह्निःसत्त्वज्ञानं । 'गृहनियमेति गृहान्यावृत्तित्वसंग्रहे इत्यर्थः, जीवित्वसंग्रहकालोत्पन्नप्रामाण्यसंग्रहादितगृहान्यावृत्तित्वसंग्रहात्मककोटिद्वयोपस्थितिसत्त्वादिति भावः । 'अर्थापत्तेर्वसवत्त्वादिति अर्थापत्तिजनकीभूतस्य जीवित्वसंग्रहस्य गृहान्यावृत्तित्वसंग्रहे प्रतिबन्धकत्वादित्यर्थः, अलौकिकप्रत्यक्षसामग्र्या मानससामग्र्याः सर्वतो वसवत्त्वात् गृहान्यावृत्तित्वनिश्चयस्याप्रमात्वग्रहसम्भवादिति भावः । 'जीवनवाध इति जीवित्वनिश्चयस्याप्रमाण्ये इत्यर्थः, 'तन्निश्चयमेति शतवर्षजीवी देवदत्तो गृह एवेति निर्णयाप्रमात्वस्यावश्यकत्वादित्यर्थः, 'कल्पनीयप्रमाणभाव इति कल्पनीयप्रमितिजनकताकेत्यर्थः, 'गृहनियमग्राहकद्वारेति गृहान्यावृत्तित्वनिश्चयस्य प्रामाण्यद्वारेत्यर्थः,

पर्यवसितत्वात्तज्जनितनियमद्वयसंशयादितजीवनसं-
शयानन्तरं तर्कावतारे वहिरस्तीतिज्ञानं जायमानं
संशयस्य कारणत्वं व्यवस्थापयतीति चेत् । न । यदेव
हि विरुद्धार्थग्राहकत्वं तर्कविनाशकतमनिर्द्धारितैका-
प्रामाण्यानुमितिमजीजनत्तदेव तर्कसहकृतं पुन-
रनुसन्धीयमानं गृहनियमग्राहकप्रमाणमित्यनुमितिं
वहिःसत्त्वज्ञानानुकूलां जनयति सहकारिवैचित्र्यैक-
स्यापि विचित्रफलजनकत्वात् । न च जीवनसंशयान-

‘अनिर्द्धारितैकेति सामान्यतोऽन्यतरनिश्चयस्याप्रामाण्यनिश्चयेत्यर्थः,
‘एकवाधानुकूलेति गृहान्यावृत्तित्वनिश्चयस्याप्रामाण्यानुकूलवहिः-
सत्त्वकल्पनायामित्यर्थः, ‘एकवाधप्राप्तिः सामान्यतोऽन्यतरनिश्चय-
स्याप्रामाण्यनिश्चयः । ननु सामान्यतोऽन्यतराप्रामाण्यनिश्चयं विमैव
इदमप्रमाणमितिसंग्रहो यथोक्तलाघवतर्कसहकाराद्वहिःसत्त्वनिश्चयं
जनयिष्यति किं सामान्यतोदृष्टेनेत्यत-आह, ‘किञ्चेति, ‘विरोध-
ज्ञानानन्तरं’ विरुद्धार्थविषयकज्ञानानन्तरं, ‘एकमप्रमाणमिति अन-
योऽन्यतरदप्रमाणमिति धीर्यदि नास्तीत्यर्थः, ‘तदा प्रामाण्येति,
गृहाभावनिश्चयात् प्राक्द्वयोर्विरुद्धार्थविषयकत्वानुपस्थित्याप्रामाण्य-
निश्चितप्रामाण्यकत्वान्यतरस्याप्रामाण्यज्ञाने च तत्र च प्रामाण्य-
निश्चयेऽप्रामाण्यसंग्रहादिति भावः । ननु मा भूत् प्रामाण्यसंग्रहो-
जीवनसंग्रहादेव वहिःसत्त्वकल्पना भविष्यतीत्यत आह, ‘न स्या-

न्तरं तदनुसन्धानमसिद्धं गृहानियमग्राहकस्य जीवन-
ग्राहकविरुद्धार्थग्राहकत्वं विना^(१) वहिःसत्त्वकल्पनेऽप्य-
बाधप्रसङ्गात् । अथ यदि पर्यवसन्नमपि प्रमाणं पुन-
रनुसन्धीयमानं सहकारिविशेषात् फलान्तरजनकं
तद्देच्छा द्रव्याश्रिता कार्यत्वादिति सामान्यतो दृष्टद्र-
व्याश्रितत्वानुमितौ पश्चादृष्टद्रव्यवृत्तित्वबाधे व्यतिरेकि-
णात्प्रसिद्धिरिति भज्येत अष्टद्रव्यवृत्तित्वबाधसहकृतात्
सामान्यतोदृष्टादेव पुनरनुसन्धीयमानात् तत्प्रसिद्धेरिति

चेति, 'द्वयोरिति जीवनग्राहकप्रमाण-गृहान्यावृत्तित्वग्राहकप्रमाण-
योरित्यर्थः, 'जीवन-मरणेति, 'मरणपदं मरणनिर्वाह्यगृहान्यावृ-
त्तित्वपरं, जीवित्व-गृहान्यावृत्तित्वनिश्चयोपस्थितत्वादित्यर्थः, तथा
चागृहीताप्रामाण्यकजीवित्वनिश्चयसत्त्वात् कथं तत्संशय इति भावः ।
इदमापाततः यत्र द्वयोः प्रामाण्यं पूर्वं न निश्चितं तत्र सा-
मान्यतोदृष्टं प्रति प्रामाण्यसंशयादिसम्भवादिति ध्येयं । नन्वेता-
वता भवत्वप्रामाण्यसंशयात् पूर्वं सामान्यतोदृष्टाभावः तथापि
तस्यानयोरेकमप्रमाणमिति ज्ञानं जनयित्वा विनाशात् तज्ज-
नितप्रामाण्यसंशयाहितजीवित्वसंशयानन्तरं तर्कावतारे वहिरस्तीति
ज्ञानं स्यात् तत्र जीवित्वसंशयस्य कारणत्वादित्याशङ्कते, 'अथेति,
'पर्यवसितत्वात्' विनाशात्, 'नियमद्वयेति निश्चयद्वयप्रामाण्य-

चेत् । न । अनुमितेर्व्यापकतावच्छेदकप्रकारकत्वनिय-
मेन तत्प्रकारकबुद्धेर्यतिरेकिसाध्यत्वात् व्यतिरेकिणो-
ऽप्यन्यत्र सामर्थ्यावधारणेनोपायान्तरस्याद्दोषाच्च । अपि
च देवदत्तो जीवन-मरणान्यतरप्रतियोगी प्राणित्वान्म-
द्वदिति सामान्यतोदृष्टं लाघवसहकारेण जीवनप्रति-
योगित्वं विषयीकरोति तथाच लिङ्गविशेषणनिश्चया-

संशयाहितेत्यर्थः, 'अनिर्द्धारितेति सामान्यतोऽन्यतरनिश्चयस्याप्रा-
प्त्यानुमितिमित्यर्थः, 'पुनरिति जीवनसंशयानन्तरं पुनरनु-
सन्धीयमानमित्यर्थः, 'विरुद्धार्थग्राहकत्वं विना' तज्ज्ञानं विना,
'वहिःसत्त्वकल्पनेऽपीति, षष्ठ्यर्थे सप्तमी, 'अबाधप्रसङ्गादिति 'बाधः'
असत्त्वं, तदभावप्रसङ्गात् सत्त्वप्रसङ्गादिति यावत्, 'तदनुसन्धानं विना',
तस्यासत्त्वन्तु अनुभवसाक्षिकमिति भावः । 'पर्यवसन्नमपीति विशि-
ष्टमपीत्यर्थः. 'अष्टद्रव्यवृत्तित्वबाध इति अष्टद्रव्यवृत्तित्वाभावनिश्चय-
इत्यर्थः, 'व्यतिरेकिणेति इच्छा अष्टद्रव्यातिरिक्तद्रव्याश्रिता अष्ट-
द्रव्यानाश्रितत्वे सति गुणत्वादिति व्यतिरेकिणेत्यर्थः, 'तत्सिद्धेरिति
अष्टद्रव्यातिरिक्तद्रव्यसिद्धेः सम्भवादित्यर्थः, 'तत्प्रकारकेति अष्ट-
द्रव्यातिरिक्तद्रव्यत्वप्रकारकेत्यर्थः । ननु लाघव-बाधसहकारेण व्या-
पकतानवच्छेदकमपि प्रकारौभूय भासते ईश्वरानुमानादौ तथा
दर्शनादित्यत आह, 'व्यतिरेकिणोऽपीति व्यतिरेकव्याप्तिज्ञानस्या-
पीत्यर्थः । ननु विरुद्धार्थग्राहकत्वप्रतिसन्धानं विना वहिःसत्त्व-

दमुमानादेव वह्निःसत्त्वसिद्धिः । अथ लाघवसाचि-
 व्यात् सामान्यतोदृष्टस्यापि विशेषविषयत्वात् नियम-
 ग्राहकप्रमाणोत्थापितलिङ्गकमरणानुमानेन जीवन-
 ग्राहकस्यैव सत्प्रतिपक्षत्वम् एकेनापि भूयसामपि प्रति-
 बन्धसम्भवात्^(१) । न च तर्कात्सामान्यतोदृष्टस्य बलवत्त्वं,
 व्याप्ति-पक्षधर्मते हि बलं तच्च तुल्यमेव ज्ञातं लाघवाख्य-
 तर्कस्य विशेषमात्रपर्यवसायकत्वेन व्याप्तिग्राहकत्वस्य

निश्चयस्यासत्त्वमेवासिद्धं तस्य पुनरनुसन्धानं विनापि यथोक्त-
 सामग्रीप्रभवसंशयानन्तरं लाघवावताराद्वह्निःसत्त्वनिश्चयस्यानुभवसि-
 द्धत्वादित्यस्वरसादाह, 'अपि चेति, 'सामान्यतोदृष्टमिति जीवित्व-
 संशयानन्तरोत्पन्नमित्यर्थः । न च प्रामाणिकप्रतिसन्धानाभावेऽपि
 यथोक्तसामग्रीप्रभवसंशयानन्तरं वह्निःसत्त्वासिद्धेरर्थापत्तिरतिरिच्यते
 इति वाच्यं । केन्द्रस्थितवृहस्यतिकत्वस्य घटादिसाधारणतया
 प्रामाणिकत्वोपस्थितिं विनापि यथोक्तसामग्रीघटकस्य शब्दत्वनिश्चय-
 स्यैवासम्भवादिति भावः । 'विशेषविषयत्वादिति जीवनत्वप्रकारेण
 जीवनविषयकत्वादित्यर्थः, अन्यथा अन्यतरत्वरूपेण जीवनविषयकत्वे
 मरणानुमानेन न सत्प्रतिपक्षः सम्भवति भिन्नप्रकारकत्वेन विशेषक-
 त्वाभावादिति भावः । 'नियमग्राहकप्रमाणेति गृहान्यावृत्तित्वनि-
 श्चयनिश्चितलिङ्गपरामर्शेनेत्यर्थः, तच्च देवदत्तोन्मृतः गृहान्यावृत्तित्वे

तुल्यत्वादिति चेत्, तर्हि पक्षधर्मताबलाद्विशेषसिद्धिः
क्वापि न स्यात् सर्वत्र सामान्यमुखप्रवृत्तप्रमाणस्य विशेष-
पर्यवसानेऽन्यसाधर्म्येण सत्प्रतिपक्षसम्भवात्, अप्र-
योजकत्वान्न विपरीतसाधनमिति तुल्यं नियमग्राहक-
स्याप्रयोजकत्वात् जीवनग्राहकस्य तु सामान्यतोदृष्टस्य
ज्योतिःशास्त्राद्यथार्थत्वमेव विपक्षबाधकं व्याप्तिग्राहक-

सति गृहावस्थानस्याप्रामाणिकत्वादित्याकारकमिति भावः । 'जीवन-
ग्राहकस्यैवेति देवदत्तः शतवर्षजीवी केन्द्रस्थवृहस्पतिप्रामाणिकत्वा-
दित्यादेरेवेत्यर्थः, 'सत्प्रतिपक्षितत्वमिति^(१) । ननु जीवनग्राहकस्य
केन्द्रस्थवृहस्पतिकप्रामाणिकत्व-केवलप्राणित्वादिरूपतया भूयस्त्वेन
बलवत्त्वमित्यत आह, 'एकेनेति, विशेषमात्रे जीवित्वप्रकारेण जीवि-
त्वानुमितौ हेतुत्वेनेत्यर्थः, 'भूयसामपीति । 'तर्हीति, 'विशेषपर्यवसान-
इति लाघवादिसहकारेण विशेषप्रकारेणानुमितिजनन इत्यर्थः,
'अन्यसाधर्म्येणेति पर्वतो न पर्वतीयवक्त्रिमान् पर्वतीयवक्त्रिमदन्यत्वात्
इति सत्प्रतिपक्षसम्भवादित्यर्थः, अभिसन्धिमुद्घाटयति, 'अप्रयोजक-
त्वादिति, 'अप्रयोजकत्वात्' अनुमितिप्रयोजकरूपशून्यत्वात् हेतौ
पक्षधर्मतानिश्चयविरहात् इति यावत्, 'न विपरीतसाधनमिति न
पक्षधर्मताबललभ्यविशेषविरहव्याप्यवत्तानिश्चय इत्यर्थः, 'तुल्यमिति,

(१) एतेन 'सत्प्रतिपक्षित्वं' इत्यत्र 'सत्प्रतिप्रतिपक्षितत्वमिति कस्यचि-
न्मूलपुस्तकस्य पाठोऽमुमीयत इति ।

अस्ति तस्मात् सामान्यमुखप्रवृत्तस्य सहकारिविशेषात्^(१)
 विशेषपरस्यानुमानस्य तद्विशेषविलक्षणग्राहकप्रमा-
 णेन^(२) सत्प्रतिपक्षत्वम् । न च प्रमाणविरोधेनास्य
 तर्को न सहकारीति वाच्यं । तर्कानवतारे विशेषप-
 रत्वाभावेनाविरोधात् तदवतारे तदधिकबलत्वादेव
 अन्यथा तर्कानवतारे सत्प्रतिपक्षस्य तदवतारेऽपि

गृहान्यावृत्तित्वस्य देवदत्ते सन्निग्धत्वादिति भावः । 'नियमग्राह-
 कस्येति पूर्वोत्पन्नस्य गृहान्यावृत्तित्वनिश्चयस्येत्यर्थः, 'अप्रयोजकत्वात्'
 अनुमित्यजनकत्वात्, तत्र प्रामाण्यसन्देहादिति भावः । नन्वेवं जीवित्वे
 सति गृहासत्त्वेन वह्निःसत्त्वानुमितिरेव कथं स्यात् गृहान्यावृत्तित्व-
 निश्चयवत् लाघवसहकारेण उत्पन्नजीवित्वविषयकानुमितेरपि प्रामा-
 ण्यसंशयेन लिङ्गविशेषणजीवित्वसन्देहात् व्याप्ति-पक्षधर्म्मतानिश्चयविर-
 हादित्यत आह, 'जीवनग्राहकस्येति, 'ज्योतिःशास्त्राद्यथार्थत्वमेव,'
 'जीवनग्राहकस्य सामान्यतोदृष्टस्य' लाघवतर्कसकारेण जीवनविष-
 यकस्य सामान्यतोदृष्टस्य, 'विपक्षबाधकं' अप्रामाण्यग्रहे बाधकं,
 'व्याप्तिग्राहकमस्तीति जीवित्वलिङ्गकवह्निःसत्त्वानुमाने व्याप्तिवि-
 शिष्टपक्षधर्म्मतानिश्चायकमस्तीत्यन्वयः, 'विशेषग्राहकप्रमाणेनेति अ-
 तुल्यबलेनेति शेषः । गृहान्यावृत्तित्वस्य निश्चयासत्त्वेऽपि मरण-

(१) सहकारिनियमादिति घ० ।

(२) तद्विशेषविलक्षणविशेषग्राहकमानेनेति घ० ।

तत्त्वं न निवर्त्तते । किञ्चैवमर्थापत्तावपि तद्विरोधेन न सहकारी स्यात् । यदुक्तं मरणकल्पने शतवर्षावच्छिन्नजीवी गृह एवेत्यस्यापि बाधइति तत्र विशिष्टबाधो न विशेष्यबाधात् मरणेऽपि जीवी गृह एवेत्यस्य विशेष्यस्याबाधात् किन्तु विशेषणबाधात् स च शतवर्षजीवित्वबाध एव । विशेषणाभावायत्तो विशिष्टाभावोऽप्यस्तीति चेत् । न । विशेष्यवति विशिष्टाभावस्य केवलविशेषणाभावात्मकत्वात् विशिष्टस्यातिरिक्तस्यानभ्युपगमात् ।

व्याप्यत्वेन धर्मान्तरनिश्चय एव प्रतिबन्धकः स्यादित्याशङ्कते, 'न चेति, 'प्रमाणविरोधेन' प्रमाणान्तरविरोधेन मरणव्याप्यत्वेन मेयत्वादिलक्षणयत्किञ्चिद्धर्मान्तरस्य निश्चयेन प्रतिबन्धनेनेति यावत्, यद्यपि मरणव्याप्यत्वेन यत्किञ्चिद्धर्मान्तरस्य निश्चयो न सर्वत्र, तथापि यत्र तदवतारस्तत्रार्थापत्तिरायास्यतीति भावः । 'विशेषपरत्वाभावेनेति विशेषप्रकारकानुमितिजनकत्वाभावेनेत्यर्थः, 'अविरोधात्' मरणव्याप्यवृत्तानिश्चयस्याप्रतिबन्धकत्वात्, 'तदधिकबलत्वादेवेति तदपेक्षया सामान्यतोद्दृष्ट्याधिकबलत्वादेवेत्यर्थः, तर्केण तत्र प्रामाण्यसंशयादिति भावः । 'अन्येति तर्कस्याधिकबलत्वसम्पादकत्वे इत्यर्थः, 'तद्विरोधेनेति वहिःसत्त्वाभावव्याप्यत्वेन यत्किञ्चिद्धर्मानिश्चयस्य प्रतिबन्धकत्वेनेत्यर्थः, 'किञ्चेत्यापाततः, वहिः-

अन्ये तु शतवर्षजीवी देवदत्तो जीवी गृह एव,
 गृहे नास्तीतिप्रमाणेषु द्वयोरविरोधेऽपि तृतीयमादाय
 विरोधज्ञानमस्ति तत्र जीवी गृह एवेत्यप्रमाणघटित-
 प्रमाणद्वयविरोधज्ञानजनिताप्रामाण्यसंशयाहितजीव-
 नसंशयात् प्रमाणयोरविरोधोपपादकमप्रमाणविरोधि
 वहिःसत्त्वं कल्प्यते यथोक्तसंशयस्थायमेव स्वभावा
 यदस्तुगत्या अप्रमाणं तद्विरोधि कल्पयति विरोधघट-

सत्त्वाभावव्याप्यत्वेन यत्किञ्चिद्धर्मनिश्चयसत्त्वे वहिःसत्त्वनिश्चयाभावे
 द्रष्टापत्तेः मयापि तदानौ तदनभ्युपगमादिति ध्येयं । 'बाधः'
 अप्रामाण्यं, 'तत्र विशिष्टबाधः' तत्प्रतिपाद्यं विशिष्टविषयक-
 ज्ञानस्याप्रामाण्यं, 'न विशेष्यबाधात्' न विशेष्याभाववति विशेष्य-
 प्रकारकत्वात् न गृहान्यावृत्तित्वाभाववति गृहान्यावृत्तित्वप्रकार-
 कत्वादिति यावत्, 'अबाधादिति गृहान्यावृत्तित्वांगे बाधासम्भ-
 वादित्यर्थः, 'किन्तु विशेषणबाधादिति किन्तु शतवर्षजीवित्वा-
 भाववति शतवर्षजीवित्वप्रकारकत्वादित्यर्थः, धर्मिणि विशिष्टस्य
 प्रकारत्वे विशेषणस्यापि प्रकारत्वनियमात्, अत एव गुणान्यत्ववि-
 शिष्टसत्तावान् गुण इत्यस्याप्यप्रमात्वं गुणे विशिष्टसत्तायाः प्रकारत्वे
 गुणान्यत्वस्यापि प्रकारत्वादिति भावः । 'शतवर्षजीवित्वबाध एवेति
 शतवर्षजीवित्वाप्रमात्वमेवेत्यर्थः, तथाच निश्चयद्वयस्याप्रमात्वद्वयक-
 र्पना नास्तीति भावः । 'विशेषणभावायत्त इति, तथाच विशिष्टा-

कस्य वस्तुगत्या अप्रमाणत्वमेव विनिगमकत्वमिति,^(१)
तत्तुच्छम्, अप्रमाणस्यापि प्रमाणत्वेन ज्ञानात्, तर्कादि-
भिर्विशेषदर्शनं विना यथोक्तसंशयानन्तरं वह्निरस्तीति
ज्ञानमसिद्धमतोऽन फलबलेन तथार्थापत्तिकल्पनं ।
किञ्च मृते गृहस्थिते वह्निःस्थिते तादृशसंशयादेव

भाववति विशिष्टप्रकारकत्वरूपाप्रमात्वद्वयकल्पनापत्तिरिति भावः ।
'विशिष्टाभावस्येति विशिष्टाभावव्यवहारविषयस्येत्यर्थः, इदमापाततः
विशिष्टाभावस्यातिरिक्तस्याभावेऽपि विशिष्टं नास्तीतिप्रतीत्या वि-
शिष्टस्य प्रतियोगित्वावगाहनाद्विशेषणाभावस्यैव विशिष्टप्रतियोगि-
कत्वाभ्युपगन्तव्यत्वात् विशिष्टप्रकारकत्वरूपाप्रमात्वमादायाप्रमात्वद्वय-
कल्पना भवत्येवेति ध्येयं ।

यदि गृहान्यावृत्तित्व-शतवर्षजीवित्वयोः संग्रयाविशेषेऽपि जी-
वित्वोपपादकं वह्निःसत्त्वमेव कल्प्यं न तु गृहान्यावृत्तित्वोपपादकं
मरणमित्यत्र तर्काविनिमक उच्यते तदा तत्कृतादेव देवदत्तो
जीवन-मरणाद्यन्यतरप्रतियोगीति सामान्यतोदृष्टात् जीवित्वं लिङ्ग-
विशेषणं निश्चित्यानुमानादेव वह्निःसत्त्वज्ञानं स्यादिति त्वया वाच्यं,
न चैवं, किन्तु यथोक्तसंग्रयस्यायमेव स्वभावोनिश्चयं विनापि धर्मिणि
वस्तुगत्या अवाधितत्वं यत्तदेव कल्पयति न तत्र वाधितत्वमिति
कल्पनेति केचिन्मीमांसका वदन्ति, तन्मतमुपन्यस्यति, 'अन्ये त्विति,
'जीवी गृह एवेति शतवर्षजीवित्वे सति गृहान्यावृत्तिरित्यर्थः,

वहिःसत्त्वं गृहसत्त्वं मरणञ्च कल्प्येत कस्यचित् कचि-
दस्तुगत्या अप्रमाणत्वात् अर्थापत्त्याभासश्चैवं न स्यात् ।

इति श्रीमद्भजेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ
अनुमानाख्यद्वितीयखण्डे संशयकरणकार्थापत्तिसि-
द्धान्तः ।

‘गृहे नास्तीति शतवर्षमध्ये गृहे नास्तीत्यर्थः, ‘प्रमाणेषु’ निश्चयत्र-
येषु, ‘द्वयोः’ शतवर्षजीवित्वनिश्चय-शतवर्षमध्ये गृहामत्त्वनिश्चययोः,
‘अविरोधेऽपि’ परस्परविरुद्धार्थविषयकत्वाभावेऽपि, ‘विरोधज्ञान-
मस्तीति तृतीये विरुद्धार्थविषयकत्वज्ञानमस्तीत्यर्थः, ‘तत्र’ तस्मिन्
ज्ञाने सति, ‘अप्रमाणघटितेति अप्रमात्मकनिश्चयघटितेत्यर्थः,
‘प्रमाणद्वयेति विरुद्धद्वयेत्यर्थः, ‘विरोधज्ञानेति विरुद्धार्थविषय-
ज्ञानेत्यर्थः, ‘अप्रामाण्यसंग्रहेति देवदत्तः शतवर्षजीवी शतवर्षजीवी
देवदत्तोऽगृह एवेति निश्चयद्वयनिष्ठाप्रामाण्यसंग्रहेत्यर्थः, ‘प्रमाणयोः’
प्रमात्मकनिश्चयद्वयोः, ‘अविरोधोपपादकं’ भ्रमत्वाभावोपपादकं,
‘अप्रमाणविरोधि’ अप्रमात्मकनिश्चयविषयविरोधि, ‘तद्विरोधि
कल्पयतीति- तद्विषयीभूतस्य विरोध्येव कल्पयतीत्यर्थः, ‘विरोध-
घटकस्य’ विरुद्धार्थविषयकत्वज्ञानघटकस्य, ‘प्रमाणत्वेन ज्ञानादिति
प्रमाणत्वेन निश्चयसम्भवादित्यर्थः, ‘फलवलेनेति तर्कं विनापि वहिः-
सत्त्वज्ञानोत्पत्तिवलेनेत्यर्थः ।

इति श्रीमथुरानाथतर्कवागीश-विरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये
अनुमानाख्यद्वितीयखण्डरहस्ये संशयकरणकार्थापत्तिषिद्धान्तरहस्यं ।

अथानुपपत्तिकरणकार्थापत्तिः ।

स्यादेतत् मा भूत् संशयः करणमर्थापत्तावनुप-
पत्तिस्तु स्यात् तथाहि जीवी देवदत्तो गृहे नास्तीति
ज्ञाने सति वह्निःसत्त्वं विना जीवतो गृहासत्त्वमनुपपन्न-
मिति ज्ञानानन्तरं वह्निरस्तीति धीरस्ति तत्रान्वय-
व्यतिरेकाभ्यामनुपपत्तिज्ञानं करणम् । न च देवदत्तो
वह्निरस्ति विद्यमानत्वे सति गृहासत्त्वात् घटवदित्यनु-

अथानुपपत्तिकरणकार्थापत्तिः ।

संशयकरणकार्थापत्तिं निराकृत्यानुपपत्तिकरणकार्थापत्तिमा-
शङ्कते, 'स्यादेतदिति, 'अनुपपत्तिरिति गृहे नास्तीति ज्ञान-
मित्यर्थः, 'जीवतो गृहासत्त्वमिति जीवित्वविशिष्टं गृहासत्त्वमित्यर्थः,
'व्याप्तिप्रभवेति, 'व्याप्तिप्रभवात्' सामान्यतो व्याप्तिप्रभवात्, 'अनु-
मानादिति देवदत्तो वह्निरस्ति विद्यमानत्वे सति गृहासत्त्वा-
दित्यनुमानादित्यर्थः, पूर्वं विद्यमानत्वे सति तद्गृहासत्त्वात् तद-
ह्निःसन्नितिविशेषतो व्याप्तिरिदानीन्तु सामान्यतो व्याप्तिरिति भेदा-
द्विकल्पः । विशेषव्याप्तिमूलकमनुमानं दूषयति, 'हेतु-साध्ययोरिति
यथोक्तहेतु-साध्ययोरित्यर्थः, सामान्यतो व्याप्तिमूलकमनुमानं दूष-
यति, 'सामान्यत इति, 'अनुमाने' अनुमितिकरणे, 'उपसंहर्नु'

मानाद्विद्यमानत्वे सति यत्र यन्नास्ति तदन्यदेशे तदस्ति
 यथा गृह एव कोणेऽसन्नहं मध्ये तिष्ठामीतिव्याप्ति-
 प्रभवानुमानाद्वा वहिःसत्त्वसिद्धेः किमर्थोपपत्त्येति
 वाच्यं । हेतु-साध्ययोः सहचाराज्ञानदशायामनुप-
 पत्तिज्ञानेऽपि वहिःसत्त्वज्ञानात् सामान्यतो व्याप्ति-
 श्वानुमाने उपसंहर्तुमशक्येति तदन्यदेशसिद्धिरर्था-
 पत्त्यैव । ननु जीविना गृहासत्त्वमनुपपन्नं किं देवदत्त-
 वहिःसत्त्वं विना, उत वहिःसत्त्वमात्रं विना, नाद्यः

प्रवेशयितुं, 'अशक्या' सामान्यमुखी व्याप्तिर्नानुमितिकरणमित्यर्थः,
 यत्त्व-तत्त्वयोरनुगतयोरभावात् सामान्यतो व्याप्तेरभावादिति भावः ।
 'तदन्यदेशेति गृहान्यदेशसत्त्वसिद्धिरित्यर्थः ।

'ज्ञानाभावादिति प्रतियोगिज्ञानं विना व्यतिरेकज्ञानासम्भवादिति
 भावः । नन्वर्थापत्तित एव तत्प्रतीतिरतोऽर्थापत्तिरावश्यकीत्यत-
 आह, 'अर्थापत्तित इति, 'अन्योन्याश्रय इति अर्थापत्तितस्तत्प्रतीतौ
 तेन विना नानुपपत्तिज्ञानमनुपपत्तिज्ञानेऽर्थापत्तिरित्यन्योन्याश्रय-
 इत्यर्थः, स्वीकृतदूषणे खण्डनसम्पत्तिमाह, 'तदुक्तमिति, 'यतोऽन्यत्व-
 मिति, 'यतोऽन्यत्वं' यस्य व्यतिरेकः, 'तत्सिद्धेः' तस्य सिद्धेः, 'अग्रे
 तदसिद्धेः' एतद्व्यतिरेकेणैदमनुपपन्नमिति ज्ञानासिद्धेरित्यर्थः । वहिः-
 सत्त्वमात्रपदेन यावदहिःसत्त्वं, वहिःसत्त्वत्वावच्छिन्नं वा, नाद्य इत्य-
 त्याह, 'अन्यदीयेति, नान्य इत्याह, 'वहिःसत्त्वमात्रेति वहिःसत्त्वत्वा-

प्रथमं देवदत्तवहिःसत्त्वाप्रतीतौ^(१) तेन विनेदमनुप-
पन्नमिति ज्ञानाभावात् प्रतीतौ वा किमर्थापत्त्या
अर्थापत्तितएव तत्प्रतीतावन्योन्याश्रयः, तदुक्तं यतो-
ऽन्यत्वं तत्सिद्धेरग्रे तदसिद्धेरिति । नान्त्यः अन्यदीय-
वहिःसत्त्वज्ञानं विनानुपपत्त्यभावात् वहिःसत्त्वमात्र-
सिद्धावपि देवदत्तवहिःसत्त्वासिद्धेश्चेति चेत् । न ।
सामान्येन हि विनानुपपत्तिज्ञानं कारणं सामान्या-
कारेण विशेषज्ञानं फलं, तथाहि जीविजो वहिःसत्त्वं

वच्छिन्नेत्यर्थः, 'पर्यवस्यतीति, पक्षधर्मतावत्तादिति भावः । 'तेन
रूपेण' देवदत्तवहिःसत्त्ववरूपेण, 'कल्पना' ज्ञानं, 'तेन विना'
तद्रूपावच्छिन्नेन विना, 'उपपादकाभाववतीति उपपादकाभावव्या-
पकौभूताभावप्रतियोगित्वमापाद्यसेत्यर्थः, 'अभावमात्रमिति उप-
पाद्याभावमात्रमित्यर्थः, 'अतिप्रसङ्गादिति केवलधूमाभावज्ञानादपि
धूमार्थापत्त्यापत्तिरित्यर्थः, 'अर्थापत्त्याभासेति व्यभिचारिणार्थापत्ति-
रेव न स्यादित्यर्थः । 'अत्र हीति, 'व्यतिरेके' हेत्वभावे, 'व्याप्तिः'
व्यापकताज्ञानं, 'अन्वयस्य' हेतोः, 'पक्षधर्मत्वं' पक्षधर्मताज्ञानमित्यर्थः,
'व्याप्तिधीजन्यमिति व्यतिरेकव्याप्तिधीजन्यमित्यर्थः, 'व्याप्तेति अन्वय-
व्याप्तिप्रकारक-पक्षधर्मताज्ञानेत्यर्थः, 'केवलान्वयिनीति, तव मत-
इति शेषः, 'साध्यव्याप्यत्वेति साध्यस्यान्वयव्याप्तिज्ञानसेत्यर्थः । यद्यप्ये-

विना गृहासत्त्वमनुपपन्नमिति ज्ञानं यस्य गृहासत्त्व-
मनुपपन्नं तत्र वह्निःसत्त्वं कल्पयति नान्यत्र देवदत्तश्च
सथेति सिद्धे देवदत्ते वह्निःसत्त्वं कल्प्यत इति देवदत्त-
वह्निःसत्त्वं पर्यवस्यति, न तु तेन रूपेण कल्पना न वा
तेन विनानुपपत्तिज्ञानं कारणं, यथा वह्निमात्रव्याप्ता-
धूमात् पर्व्वते वह्निसिद्धिरेव पर्व्वतीयवह्निसिद्धिर्न तु
पर्व्वतीयत्वेनैव धूमात्तत्सिद्धिः तेन रूपेण व्यापकत्वा-
ग्रहात्^(१) । अथोपपादकाभाववत्युपपाद्याभावनियमो-

वमपि यत्र नान्यव्याप्तिग्रहः व्यतिरेकमात्रप्रतिसन्धानं तत्रापत्यव-
काशः । न च तत्रार्थनिश्चय एव जनयिष्यत इति वाच्यं । अनुभव-
विरोधात् । तथापि तुष्यतु दुर्जन इति न्यायेनाह, 'अस्त्विति, 'गृहे
वर्त्तमान इति गृहवृत्तित्वविशिष्ट इत्यर्थः, 'देवदत्तावृत्तित्वादिति
पक्षीभूतस्य देवदत्तस्य तदनधिकरणत्वादित्यर्थः, 'वह्निःसत्त्व-गृह-
निष्ठाभावयोः' वह्निःसत्त्व-गृहवृत्तित्वविशिष्टाभावयोः, 'व्यधिकरणत्वे-
नेति, गृहाधिकरणदेशभेदस्यापि वह्निःपदार्थघटकत्वादिति भावः ।
'नियतेति, अत एव गृहवृत्तिदेवदत्ताभावोऽपि^(२) न लिङ्गं गृह-
मात्रवृत्तिपदार्थं तस्य सत्त्वेनाव्याप्यत्वादिति भावः । ननूपरि सविता
भूमेरालोकवत्त्वादित्यत्र भूमिनिष्ठालोकसंयोगस्य कथमुपरिदेशे
संयोगसम्बन्धेन सवित्रनुमापकत्वं पचावृत्तित्वादव्याप्यत्वाच्चेत्यत आह,

(१) धूमव्याप्यत्वाग्रहादिति घ० ।

(२) गृहवृत्तित्वोपलक्षितदेवदत्ताभाव इत्यर्थः ।

ऽनुपपत्तिर्न त्वभावमात्रमतिप्रसङ्गात् एवञ्च व्यतिरेक-
व्याप्तिमत उपपाद्याद्भ्यतिरेक्यनुमानमुद्रयैव साध्यसिद्धेः
किमर्थापत्त्या, तथाहि देवदत्तो वह्निः सन् जीवित्वे
सति गृहासत्त्वात् यन्नैवं तन्नैवं यथा मृतो गृहस्थितो
वा । न चान्यव्याप्त्यान्वस्य गमकत्वेऽतिप्रसङ्गः साध्या-
भावव्यापकाभावप्रतियोगित्वस्य नियामकत्वात् । न
चार्थापत्तौ सरूपसती व्याप्तिर्लिङ्गं नानुमान इति
वाच्यम् । अनुपपत्तेर्ज्ञानं विना कल्पनानुदयात् अर्था-

‘उपरीति, ‘उपरिसन्निहितेति सविदसंयुक्तोपरिदेशकत्वेनेत्यर्थः,
तथाच तच्च भूमिः यच्चः सविदसंयुक्तोपरिदेशकत्वं साध्यं उपर्यव-
च्छेदेनालोकसंयोगो हेतुरिति भावः । ननु जीवित्वे सति गृह-
निष्ठाभावप्रतियोगित्वमेव लिङ्गं भवतापि तन्निष्ठव्यतिरेकव्याप्तिज्ञान-
स्यैवार्थापत्तिजनकत्वस्वीकारादित्याशङ्कते, ‘नापीति, ‘लिङ्गमित्यनु-
सञ्जनीयं, ‘ज्ञातुमशक्यत्वादिति, तथाच लिङ्गज्ञानाभावात् न
व्याप्तिग्रह इति भावः । ननु सन्निष्ठस्थले जीवित्वे सति गृहनिष्ठा-
भावप्रतियोगित्वस्य वह्निःसत्त्वव्याप्यत्वं गृहीतं तदेवेदानीं स्मर्यते-
ऽन्यथा भवन्मतेऽपि व्यतिरेकव्याप्तिज्ञानाभावात् कथमर्थापत्तिः, अपि
च गृहनिष्ठाभावप्रतियोगित्वं न हेतुः किन्तु प्रतियोगितासम्बन्धेन
गृहनिष्ठाभाव एव हेतुर्वाच्यः स च देवदत्तस्यासन्निष्ठस्थलेऽपि गृहस्य
सन्निष्ठतया ग्रहीतुं शक्य इत्यतो व्याप्तिग्रहाभावेऽपि देवदत्तस्या-
सन्निष्ठतया न पञ्चविशेष्यकपरामर्शसम्भाव इत्याह, ‘अत एवेति,

यत्त्याभासानवकाशाच्च । मैवम् । अत्र हि व्यतिरेक-
व्याप्तिरन्वयस्य पक्षधर्मत्वमिति व्याप्तिधीजन्यमपि
बहिःसत्त्वज्ञानं नानुमितिः तस्या व्याप्तपक्षधर्मता-
ज्ञानजन्यतानियमात् । न च साध्याभावव्यापकाभाव-
प्रतियोगित्वेन पक्षधर्मस्य ज्ञानमनुमितिप्रयोजकं तच्चे-
द्वाप्यस्तीति वाच्यं । केवलान्वयिनि तदसम्भवात् तद-

अस्मान्मते च व्यतिरेकव्याप्तिस्मरणं गृहे जीविनो देवदत्तस्याभाव-
निश्चयस्य अर्थापत्तिहेतुक इति भावः, शब्दानुमानादिकञ्च न सार्व-
त्रिकमिति च्छेदयं । 'गृहनिष्ठाभावयोर्ज्ञानमिति, देवदत्तस्मरणश्चेत्यपि
बोध्यं, अभावप्रत्ययानुरोधेन तस्यावश्यकत्वात् परामर्शः । 'व्याप्ति-
ज्ञानानन्तरमिति वज्रिव्याप्तिरिति स्मरणानन्तरमित्यर्थः, 'सार्थ्यभा-
षेति पक्षवृत्तिधूमस्मरणादित्यर्थः, 'असन्निकृष्टपक्षस्थल इति शेषः,
'उक्तन्यायेति विशेष्यस्यासन्निकृष्टत्वेनेत्यर्थः । 'धूमोवज्रिं विनेति,
वज्रभावव्यापकीभूताभावप्रतियोगी धूम इति व्यतिरेकव्याप्तिज्ञाना-
दित्यर्थः, 'दृश्यमानो धूम इति वज्रभावव्यापकीभूताभावप्रतियोगी
धूम इति यदा ज्ञायत इत्यर्थः, 'अनुपपत्तिज्ञानं विना' व्यतिरेक-
व्याप्तिज्ञानं विना, 'व्याप्यत्वेन' अन्वयव्याप्यत्वेन, 'तदानुमानमिति,
यदा तु व्यतिरेकान्वयव्याप्युभयप्रतिसन्धानं तत्रैवमेव विज्ञानमुभ-
यात्मकं अनुमितित्वादेरस्मान्मते जातित्वाभावात् फलवत्त्वादेव सामर्थ्या
वा अन्यत्र प्रतिबन्धकत्वं कल्प्यत इति भावः । 'त्वयापीति, 'तच्च'
वज्रिमान्धूमादित्यत्र, 'त्रिविधेति व्याप्तिज्ञानभेदेन त्रिविधानुमिति-

पेक्षया साध्यव्याप्यत्वज्ञानस्य लघुत्वाच्च । अथ व्यतिरेक-
सहचाराद्धेतोरेव व्याप्तिर्गृह्यते^(१) एवञ्चान्वयस्य व्यति-
रेकस्य उभयस्य वा सहचाराद्व्याप्तिग्रहचैविध्येऽनुमान-
चैविध्यम्, अत एव धूमो दशाविशेषेऽन्वयी व्यतिरेकी
अन्वय-व्यतिरेकी चेति चेत्, अस्तु तावदेवं तथापि
जीविदेवदत्ताभावो गृहे वर्तमानो न वह्निःसत्त्व
लिङ्गं^(२) देवदत्तावृत्तित्वात् वह्निःसत्त्व-गृहनिष्ठाभाव-
योर्व्यधिकरणत्वेन नियतसामानाधिकरण्यरूपव्याप्य-
भावाच्च, उपरि सविता भूमेरालोकवत्त्वादित्यत्र भूमेरु-
परिसन्निहितसवितृकत्वेनानुमानात् । नापि गृह-
निष्ठाभावप्रतियोगित्वं, तत्प्रतियोगित्वस्य देवदत्त-
धर्मतया तदसन्निकर्षे प्रत्यक्षेण ज्ञातुमशक्यत्वात्, अत-

स्त्रीकारात् इत्यर्थः, परन्तु भवता यद्व्यतिरेक्यनुमितितया अभिमतं
तदेवमस्माकमर्थापत्तिरिति शेष इति भावः । 'व्यतिरेकव्याप्तिमिति
व्यतिरेकव्याप्तिज्ञानं सहकार्यासाद्येत्यर्थः, 'देवदत्ताभावः' देवदत्ता-
भावनिश्चयः, 'वह्निःसत्त्वं कल्पयतीति वह्निःसत्त्वं निश्चाययतीत्यर्थः,
न तु व्यतिरेकपरामर्शः विशेष्यीभूतदेवदत्तासन्निकर्षेण परामर्श-
सम्भवादिति भावः । 'गृहे देवदत्तस्याभाव इति देवदत्तप्रतियोगि-

(१) दृश्यत इति क०, ख० ।

(२) वह्निःसत्त्वे अङ्गमिति क०, ख० ।

एव विशेष्यासन्निकर्षात्तृतीयलिङ्गपरामर्शोऽपि न प्रत्य-
 क्षेण । न च व्यतिरेकव्याप्ति-गृहनिष्ठाभावयोर्ज्ञानं सह-
 कार्यासाद्य मनसैव जन्यत इति वाच्यं । सहकारिण-
 एव मानान्तरत्वप्रसङ्गात् । अथ व्याप्तिज्ञानानन्तरं
 स्मर्यमाणधूमात् कथमनुमितिः उक्तन्यायेन तत्रापि
 लिङ्गपरामर्शभावादिति चेत्, न कथञ्चित्, कथं तर्हि
 वह्निज्ञानं पक्षधर्मधूमस्मृतिसहितात् धूमो वह्निं विना
 नास्तीत्यनुपपत्तिज्ञानादिति गृहाण, अत एव दृश्य-
 मानोधूमो वह्निं विनानुपपन्न इति यदा ज्ञायते
 तदार्थापत्तिरेव यदा त्वनुपपत्तिज्ञानं विना व्याप्यत्वेन
 प्रतिसन्धीयते तदानुमानं त्वयापि तत्र त्रिविधानुमान-
 स्वीकारात् तस्माद्व्यतिरेकव्याप्तिमुपजीव्य जीविदेव-
 दत्ताभावो वह्निःसत्त्वं कल्पयति । उच्यते । देवदत्ता-
 सन्निकर्षोऽपि तस्य गृहनिष्ठाभावप्रतियोगित्वं प्रत्यक्षेण

कोऽभाव इति प्रत्यक्षमित्यर्थः, अन्यथा षष्ठ्यर्थप्रतियोगित्वस्य संसर्ग-
 विधया भानात् लिङ्गतावच्छेदकीभूतप्रतियोगित्वानुपस्थितौ कथ-
 मनुमानं न स्यात् । न चैवं यत्र नेह देवदत्त इति संसर्गविधयेव
 प्रतियोगित्वभानं तत्रानुमानासम्भवादार्थापत्तिरिष्यत इति वाच्यं ।
 अर्थापत्तावपि वह्निःसत्त्वं विना गृहनिष्ठाभावप्रतियोगित्वस्यानुप-
 सन्धिर्गमिकेति प्रतियोगित्वत्वावच्छिन्नप्रतियोगित्वोपस्थितिं विना

गृह्यते तथाहि गृहे देवदत्तस्याभाव इति प्रत्यक्षं देव-
दत्तं षष्ठ्यर्थञ्चाभावसम्बन्धं प्रतियोगित्वलक्षणं गोचर-
यति सम्बन्धज्ञानस्य सम्बन्धिद्वयविषयत्वात्, प्रतियो-
गिना सममभावस्य सम्बन्धान्तराभावात् गृहनिष्ठाभा-
वप्रतियोगित्वे च प्रत्यक्षोपस्थिते स्मृतव्याप्तिवैशिष्ट्यमपि
प्रत्यक्षेण सुग्रहम् । न च देवदत्तविशेष्यकं वह्निःसत्त्व-
व्याप्यगृहनिष्ठाभावप्रतियोगित्वज्ञानं नास्तीति वाच्यं ।
पक्षवृत्तिलिङ्गपरामर्शमात्रस्यानुमितिजनकत्वात् अ-
धिकस्य गौरवपराहतत्वात् । अथवा अनतिप्रसक्तसह-

तेनाप्यर्थापत्त्यनभ्युपगमादिति । ननु देवदत्तप्रतियोगिकोऽभाव-
इति प्रत्यक्षस्य देवदत्तविषयकत्वे मानाभावः देवदत्तं साक्षात्करो-
मीत्यनुव्यवसायाभावात् अभावं साक्षात्करोमीत्यनुव्यवसायात् किन्तु
तदव्यवहितपूर्ववर्त्तिस्मरणस्यैव देवदत्तोविषय इत्यत आह, 'सम्बन्ध-
ज्ञानस्येति सम्बन्धिद्वयोपस्थितौ सत्यां सम्बन्धप्रत्यक्षस्येत्यर्थः, अन्यथा
संयोगो नास्तीत्यादिशाब्दादिज्ञाने तदुपनयवशात् संयोगवदिति
प्रत्यक्षे गुण इति प्रत्यक्षे च व्यभिचारापत्तेरिति धेयं । न चैवं देव-
दत्तं न पश्यामि किन्तु तदभावं गेहे इत्यनुव्यवसायः कथं सङ्गच्छते
इति वाच्यं । तस्य लौकिकविषयत्वाभावविषयकत्वादिति भावः । ननु
सम्बन्धप्रत्यक्ष एव सम्बन्धिद्वयं विषयः प्रतियोगित्वन्तु न प्रतियोग्य-
भावयोः सम्बन्ध इत्यत आह, 'प्रतियोगिनेति, 'सम्बन्धान्तराभावा-

कारिवशान्मनसैव स्मृतदेवदत्तविशेष्यकस्तृतीयलिङ्ग-
परामर्शः यथाच न सहकारि मानान्तरं तथोपपादित-
मधस्तात् । ननु मयूरः पर्वतेतरे न नृत्यति नृत्यति
चेतिज्ञानानन्तरं पर्वते नृत्यतीति ज्ञानमस्ति, न च
व्यतिरेकिणस्तत्सम्भवति, पर्वतनृत्यस्य साध्यस्याप्रतीतौ
व्यतिरेकव्याप्त्यनिरूपणात् । न च पर्वतनृत्याप्रसिद्धौ
तेन विनानुपपत्तिप्रतिसन्धानमपि नेति कथमर्थापत्ति-
रपीति वाच्यम् । अधिकरणं विनानुपपद्यमानं नृत्यं
प्रसिद्धाधिकरणबाधसहकृतं प्रसिद्धेतरमधिकरणं कल्प-

दिति इदमिह नास्तीति प्रतीतेर्नियामकसम्बन्धान्तराभावादित्यर्थः,
तथाच सम्बन्धान्तरेण इदमिह नास्तीति प्रतीत्यसम्भवात् प्रतियो-
गित्वस्य सम्बन्धत्वमावश्यकमिति भावः । यथाश्रुते एककालीनत्वादेरपि
सम्बन्धान्तरत्वेन सम्बन्धान्तराभावादित्यसङ्गतेः । 'पचवृत्तीति, तथाच
लिङ्गविशेष्यकपरामर्श एवात्र हेतुरिति भावः । 'अधिकस्य' पचविशे-
ष्यकत्वस्य । ननु गृहनिष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वस्यापि देवदत्तधर्म-
तया अमन्निष्ठत्वात् तद्विशेष्यकोऽपि चाक्षुषः परामर्शोऽसम्भवीत्य-
स्वरमादाह, 'अथवेति, पूर्वोक्तदोषविरहायाह, 'यथाचेति, 'पर्वते-
तर इति पर्वत इतरोयस्मादिति ब्रह्मग्रीहिः, तेन न सर्व्वनामकार्थ्यं,
मयूरनृत्यस्य नित्यत्वं साधिकरणत्वं विना अनुपपन्नमिति ज्ञानं
प्रसिद्धाधिकरणबाधसहकारेण मयूरः पर्वते नृत्यतीति ज्ञानं जन-

यतीति चेत् । न । मयूरनृत्यं साधिकरणं नृत्यत्वादिति सामान्यतोदृष्टं प्रसिद्धाधिकरणबाधसहकृतं प्रसिद्धेतरं पर्वतमधिकरणमादाय नृत्यज्ञानं जनयति । यद्वा पर्वतेतरे न नृत्यतीतिशब्देन नृत्याभावबोधानन्तरं मयूरोनृत्यतीतिशब्दाज्जायमानं ज्ञानं पर्वतनृत्यं गोचरयति प्रसिद्धविशेषबाधसहकृतसामान्यज्ञानजनकप्रमाणस्य प्रसिद्धेतरं पर्वतमधिकरणविशेषमादाय ज्ञानजनकत्वनियमात् । अत एवानित्यज्ञानबाधानन्तरं क्षित्यादौ ज्ञानजन्यत्वं सिद्धनित्यत्वमादाय

यतीति समाधत्ते, 'अधिकरणं विनेति, 'अनुपपद्यमानं' अनुपपन्नेन जायमानं, 'नृत्यं' नृत्यनित्यत्वमित्यर्थः । 'नृत्याभावबोधानन्तरमिति पर्वतेतरनृत्याभावबोधानन्तरमित्यर्थः । ननु सामान्यतोदृष्टेन साधिकरणकत्वानुमितावपि पर्वते नृत्यतीत्येवमाकारकबुद्धिर्न सिद्धैव अनुमितेर्व्यापकतावच्छेदकप्रकारकत्वनियमात् एवं मयूरो नृत्यतीति शब्दात् पर्वतेतराधिकरणकनृत्यबाधसहकारेण नृत्यविशेषसिद्धावपि नृत्यस्य पर्वतवृत्तित्वं न सिद्धं तदुपस्थापकपदाभावादिति, मैवं, गुरुमते इतरबाधसहकारेण पदानुपस्थितमपि शाब्दबोधे/प्रकारीभूय भासते इति तन्मतेनैव तन्मतनिराकरणात्, सूक्ष्मते त्वाह, 'यदेति, 'अन्वय-व्यतिरेकी पर्वतनृत्यं गोचरयतीत्यनुषज्यते । न चैवं मयूरः पर्वतं नृत्यतीति मयूरविशेषकप्रतीतिर्न स्यात्

सिद्धतीत्याचार्याः । यद्वा मयूरनृत्यं पर्वताधिकर-
णकं पर्वतेतरानधिकरणत्वे सति साधिकरणत्वात्
पर्वतत्ववदित्यन्वय-व्यतिरेकी, अथवा यः सम्भावित-
तत्त्वदितरावृत्तिः सन् तदतिरिक्तवृत्तिर्न भवति सः
तद्वृत्तिर्भवतीति सामान्येन यत्तदर्थान्तर्भावेन व्यत्या-
नृत्यस्य पर्वतवृत्तित्वं सिद्धति । एवं पीनो देवदत्तो
दिवा न भुङ्क्ते इत्यत्रापि अप्रसिद्धरात्रिभोजनसाध्य-
पीनत्वज्ञानं रात्रिभोजनमादाय सिद्धति । अथ यथा
अभोजी पीन इत्यत्रायोग्यताज्ञानं तथा पीनो दिवा

इति वाच्यं । उक्तानुमान एव मनसा तदुपपत्तेरिति भावः । 'सम्भावि-
तेति, 'सम्भावना' योग्यता, तस्मिन् तदितरस्मिंश्च वर्तमानयोग्यः,
योग्यतावच्छेदकञ्च वृत्तिमत्त्वमेव, तथाच वृत्तिमत्त्वे सतीति फलि-
तार्थः । ननु पीनो देवदत्तो दिवा न भुङ्क्ते इति ज्ञानानन्तरं पीनत्वं
भोजनवत्त्वं विना अनुपपन्नमिति ज्ञानात् दिवाभोजनबाधसहकृतात्
देवदत्तोरात्रौ भुङ्क्ते इति ज्ञानं जायते तत्रानुमानाद्यसम्भवादर्थ-
पत्तिरिष्यत इत्यत आह, 'एवमिति, 'देवदत्त इति अप्रसिद्धरात्रि-
भोजनदेवदत्त इत्यर्थः, 'भोजनसाध्यपीनत्वज्ञानमिति, दिवाभोज-
नबाधसहकृतमिति शेषः, 'रात्रिभोजनमिति रात्रिभोजनानुमितिं
जनयतीत्यर्थः । यथाश्रुतशब्देन शब्दकल्पनरूपां श्रुतार्थापत्तिं भट्टाभि-
मतामाशङ्कते, 'अथेति, 'न योग्यताज्ञानमिति, तन्मतेऽन्वयप्रयोजक-

न भुङ्क्त इत्यत्रापि दिवाभोजनस्य बाधाद्योग्यताघट-
करात्रिभोजनस्याप्रतीतेः अतो यौग्यताघटकोपस्थितिं
विना अन्वयमलभमानमिदं वाक्यं यौग्यताघटक-
रात्रिभोजनोपपादकं रात्रौ भुङ्क्त इति वाक्यं कल्प-
यित्वा तेन सहान्वयबोधं जनयति । न चैवं लाघवा-
द्रात्रिभोजनमेव कल्पयितुं युक्तं, शाब्दी ह्याकाङ्क्षा
शब्देनैव प्रपूर्यतइतिन्यायेन शब्दोपस्थापितमादाय
शब्दस्यान्वयबोधजनकत्वात्, एवञ्च श्रूयमाणशब्दस्या-

रूपवत्त्वस्य योग्यतात्वेन पौनत्वान्वये भोजित्वस्य योग्यतात्वेन पौनत्वा-
न्वयेऽभोजित्वस्यायोग्यतात्वादिति भावः । 'दिवाभोजनस्य बाधादिति
'योग्यताघटकेत्यत्र हेतुः, 'योग्यताघटकेति योग्यतात्मकरात्रिभोजि-
त्वोपस्थितिं विनेत्यर्थः, 'अन्वयमलभमानमिति अन्वयबोधं अजनय-
दित्यर्थः, 'इदं वाक्यमिति पौनो देवदत्तो दिवा न भुङ्क्ते इति वाक्य-
मित्यर्थः, 'रात्रिभोजनोपपादकमिति रात्रिभोजनोपस्थापकमित्यर्थः,
'तेन सहेति तदुपस्थापितरात्रिभोजित्वेन सहेत्यर्थः, 'अन्वयबोधमिति
पौनो देवदत्तो दिवा न भुङ्क्ते किन्तु रात्रौ भुङ्क्ते इत्यन्वयबोध-
मित्यर्थः, तन्मते योग्यत्वस्य शाब्दबोधे भाननियमादिति भावः ।
'लाघवादिति, शब्दं कल्पयित्वापि अर्थोपस्थितेरावश्यकत्वादिति
भावः । 'शाब्दी ह्याकाङ्क्षेति शाब्दबोधोपयोगिनी पदार्थोपस्थितिः
शब्देनैव जन्यत इति नियमेनेत्यर्थः, तथाच केवलार्थकल्पनेन योग्यता-

न्वयबोधकत्वं योग्यताघटकोपस्थापकेन शब्देन विना-
 नुपपद्यमानं तं कल्पयित्वा यत्रान्वयबोधं जनयति तत्र
 श्रुतार्थापत्तिः । द्वारमित्यादौ पिधेहीतिशब्दकल्पनं
 श्रुतार्थापत्तिरेव शब्दश्च यद्यपि श्रूयमाणोबाधित-
 स्तथाप्यभिप्रायस्थः कल्प्यते यथा गुरुमते स्वर्गकामो
 यजेतेत्यत्र साक्षात्साधनताबाधे परम्पराघटकस्यानुप-
 स्थित्या परम्परासाधनताज्ञानविरहोयोग्यताज्ञाना-
 भावात् प्रसिद्धपदसामानाधिकरण्यानुपपत्तिरिति यो-

ज्ञाननिर्वाहेऽपि शब्दजन्योपस्थितिं विना रात्रिभोजित्वरूपस्य योग्य-
 त्वस्य शाब्दबोधे आनासम्भवाच्छब्दः कल्प्यते तन्मते शब्दयोग्यता-
 विषयकस्यैव शाब्दबोधस्य जनननियमादिति भावः । 'शब्देन विनेति
 शब्दव्यवहारं' विनेत्यर्थः, 'अनुपपद्यमानमिति अनुपपन्नत्वेन ज्ञाय-
 मानमित्यर्थः, 'द्वारमित्यादाविति, एवमित्यादि, 'पिधेहीतिशब्द-
 कल्पनमिति द्वारमितिवाक्यस्यापि पिधानविशेष्यकद्वारकर्मकत्वान्वय-
 बोधजनकत्वं पिधेहीतिशब्दसमभिव्याहारं विनाऽनुपपन्नमिति ज्ञा-
 नात् पिधेहिशब्दकल्पनमित्यर्थः । ननु द्वारमिति वाक्यं पिधेहीति-
 शब्दवदिति ज्ञानमर्थपत्त्या जननीयं तच्च न सम्भवति पिधेहीति-
 शब्दस्य बाधितत्वादित्यत आह, 'शब्दश्चेति, 'श्रूयमाणः' समभिव्या-
 हारेण श्रूयमानश्च, 'बाधित इति नास्तीत्यर्थः, 'अभिप्रायस्थ इति
 द्वारमिति वाक्यं पिधेहीति शब्देन सहान्वयबोधं जनयत्वित्येता-

योग्यताज्ञानाय परम्परासाधनताघटकमपूर्व्वं लिङ्गा-
दिवाच्यं कल्पयति ततः स्वर्गसाधनं याग इति ज्ञानं
जायते अन्यथा अपूर्व्वमपि वाच्यं न स्यादिति ।
उच्यते । बाधकप्रमाणाभावोऽन्वयविरोधिरूपविरहे
वा योग्यता अतो दिवा अभोजने रात्रिभोजना-
प्रतीतावपि भोजनसाध्यपीनत्वादिवान भुङ्क्त इति
शब्दाद्वीरुत्पद्यते न प्रतीत्यनुपपत्तिः किन्तु प्रतीता-

दृशाभिप्रायविषयः कल्प्यते इत्यर्थः, तथाच तादृशैकाभिप्रायविषय-
त्वसम्बन्धेनैव तद्वत्ताज्ञानं अर्थापत्त्या जननीयमिति भावः । योग्यता-
प्रकारकोपस्थितिं विना शब्दान्वयधीरित्यत्र प्राभाकरसम्प्रतिमाह,
'यथेति, 'साक्षात्साधनताबाध इति स्वर्गं प्रति यागस्य साक्षात्साधन-
त्वाभाव इत्यर्थः, यागस्य आशुतरविनाशित्वादिति भावः । 'परम्परा-
घटकस्येति परम्पराघटकस्यापूर्व्वस्येत्यर्थः, 'योग्यताज्ञानाभावादिति
यागे विध्यर्थस्य द्रष्टृसाधनत्वस्यान्वये योग्यताज्ञानविरहादित्यर्थः,
साक्षादसाधने साधनत्वान्वये परम्परासाधनत्वस्य योग्यतात्वादिति
भावः । 'प्रसिद्धपदेति प्रसिद्धपदस्य विधेरर्थेन द्रष्टृसाधनत्वेनान्वय-
बोधानुपपत्तिरित्यर्थः, 'योग्यताज्ञानायेति परम्परासाधनताज्ञानाये-
त्यर्थः, 'लिङ्गादिवाच्यमिति कार्य्यत्वरूपेण लिङ्गादिवाच्यमित्यर्थः,
एवञ्च स्वर्गकामोऽग्निष्टोमादिविषयकसाधनकार्य्यवानिति प्रथमतो-
ऽन्वयबोधः, विषयकत्वं जन्यत्वं, एतच्च याग-कामयोः संसर्गविधया
भासत इति भावः । 'अन्यथेति योग्यताप्रकारकोपस्थितेरपि हेतुत्वे

नुपपत्त्या रात्रिभोजनं कल्प्यते अतएवापूर्वमपि न
वाच्यमिति वक्ष्यते, तस्मान्नार्थापत्तिरनुमानादतिरि-
च्यत इति ।

इति श्रीमद्भङ्गेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ
अनुमानाख्यद्वितीयखण्डे अर्थापत्तिः ।

इत्यर्थः, 'बाधकप्रमाणाभाव इति ग्राह्याभावनिश्चयाभाव इत्यर्थः,
'अन्वयविरोधीति ग्राह्याभावव्याप्यधर्मैत्यर्थः, 'प्रतीतानुपपत्त्येति प्रती-
तस्य दिवाऽभोजित्वे सति पीनत्वस्य रात्रिभोजित्वं विनाऽनुपपत्त्या
रात्रिभोजित्वमनुमीयते इत्यर्थः, 'अत एवेति अन्वयप्रयोजकरूपवत्त्व-
ज्ञानस्याहेतुत्वादेवेत्यर्थः, 'अर्थापत्तिः' अर्थापत्तिशब्दवाच्यं ज्ञानं ।

इति श्रीमथुरानाथतर्कवागीश-विरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये
अनुमानाख्यद्वितीयखण्डरहस्ये अर्थापत्तिरहस्यं ।

अथावयवनिरूपणं ।

तच्चानुमानं परार्थं न्यायसाध्यमिति न्यायस्तद-
वयवाश्च प्रतिज्ञा-हेतूदाहरणोपनय-निगमनानि निरू-

अथावयवरहस्यं ।

परार्थानुमानप्रयोजकत्वेन स्मृतस्य न्यायादेरुपेक्षानर्हतया प्रस-
ङ्गसङ्गत्या तन्निरूपयितुमाह, 'तच्चेति, 'परार्थं' परप्रतिपिपादयि-
षाप्रयोज्यं, परोऽत्र विप्रतिपन्नः न तु भौमांसकमात्रं, तेनाग्नेन पर-
प्रतिपिपादयिषया उदीरितेऽपि न्यायत्वमित्यवधेयं । 'न्यायसाध्य-
मिति न्यायजन्यज्ञानप्रयोज्यमित्यर्थः । अवयवान्विभजते, 'प्रति-
ज्ञेति, यद्यपि अवयवसामान्यं निरूप्यैव तद्विभागोयुक्तस्तथापि पञ्चा-
वयवोपेतस्यैवात्र लक्ष्यत्वं न तु भौमांसकाभिमतोदाहरणादिअवयवस्य
बौद्धाभिमतोदाहरणोपनयात्मकद्वयवयवस्य वा इति सूचनाय प्रथमत-
एव तद्विभागः, अन्यथा वक्ष्यमाणन्यायलक्षणस्याव्याप्यतिव्याप्यापत्तेः ।
'तत्र' न्यायावयवनिरूपणे, सप्तस्यर्थोविषयत्वं, 'समस्तरूपेति पक्षसत्त्व-
सपक्षसत्त्व-विपक्षासत्त्वावाधितत्त्वासत्प्रतिपक्षितत्वरूपपञ्चरूपविशिष्ट-
लिङ्गप्रतिपादकमित्यर्थः, 'अत्रैवेति पञ्चरूपविशिष्टलिङ्गमिति वाक्य-
द्वयार्थः, तस्यापि उक्तपञ्चरूपविशिष्टलिङ्गप्रतिपादकत्वादिति भावः^(१) ।

(१) प्रसङ्गादाह, 'तच्चेति' तत्त्वविधमध्वनुमानं, 'परार्थं' परस्य वादिनो-
ऽर्थः साध्यनिश्चयः तच्छब्दानिष्ठतिर्वा यस्मात् तादृशं, 'न्यायसाध्यं' न्यायप्रयो-

व्यमित्यर्थः, अतिप्राचैरुपनयमात्रस्य सौगतैरुदाहरणादिद्वयस्य मीमांसकैः
 प्रतिज्ञादित्रयस्य जरन्नैयायिकैर्विप्रतिपत्ति-समवबन्ध-जिज्ञासावाका-कण्ट-
 कोद्धारदृष्टान्तक्रमेण वाक्यदशकस्य न्यायलोपगमात् तेषां मतमपाकर्तुं
 विशिष्टावयवान् दर्शयति, 'प्रतिज्ञा-हेतूदाहरणोपनय-निगमनानीति, 'तत्र'
 न्यायावयवयोर्मध्ये, 'समस्तेति पक्षसत्त्वादिपञ्चरूपैर्विशिष्टस्य लिङ्गस्य प्रति-
 पादकं वाक्यं इत्यर्थः, 'अत्रैव' समस्तरूपोपेतं लिङ्गमिति वाक्य एव, 'अति-
 व्याप्तेरित्युपलक्ष्यं केवलान्वयिस्थले विपक्षाप्रसिद्धा तत्साध्यकन्यायेऽव्याप्ति-
 रपि द्रष्टव्या । 'किन्त्वित्यादि, अत्रानुमितिपदं यादृश-यादृशानुपूर्व्यवच्छि-
 न्नवाक्ये नैयायिकानां प्रकृतपक्ष-हेतु-साध्यकन्यायव्यवहारः तादृश-तादृ-
 शानुपूर्व्यवच्छिन्नाभावकूटसाध्यकानुमितिपरं, तथाच तादृशानुमितेः चर-
 मकारणीभूतो यो लिङ्गपरामर्शः तादृश-तादृशानुपूर्व्यवच्छिन्नाभावकूटव्या-
 प्यघटपदत्ववान् इत्याकारकः परामर्शः, तस्य प्रयोजकं तज्जनकव्याप्ति-
 ज्ञानस्य जनकं यत् शाब्दज्ञानं शब्दप्रकारकं ज्ञानं तज्जनकं तस्य प्रकारतया
 जनकतावच्छेदकं वाक्यमित्यर्थः, घट इत्यानुपूर्व्यवच्छिन्नाभावस्य ज्ञानं प्रति
 प्रकारतया जनकतावच्छेदकं घट इत्यानुपूर्व्यवच्छिन्नवाक्यमपीति तत्रातिव्या-
 प्तेर्वारणाय प्रयोजकान्तं शाब्दज्ञानस्य विशेषणं । न च यादृश-यादृशानुपूर्व्य-
 वच्छिन्ने न्यायव्यवहारस्तादृश-तादृशानुपूर्व्यवच्छिन्नाभावकूटवत्तानुद्धिजनक-
 तावच्छेदकीभूतानुपूर्व्वोविशिष्टवाक्यत्वमेव न्यायत्वं कुतो जघत्तरं न तन्निरुक्तं
 इति वाच्यम् । स्वतन्त्रेच्छस्य नियन्तुमशक्यत्वात् इति जागदीशी व्याख्या ।

केचित्तु अनुमितिकारणपरामर्शनिष्ठकार्यतानिरूपितशाब्दत्वव्याप्यधर्मा-
 वच्छिन्नकारणतावच्छेदकीभूता या विषयता तदवच्छिन्नकार्यतानिरूपिता
 या यत्किञ्चिज्ज्ञानवृत्तिजनकता तदवच्छेदकीभूतविषयितानिरूपकवर्णस-
 मुदायत्वं न्यायत्वं अतो न कुत्राप्यतिव्याप्तिः परामर्शं प्रति न्यायजन्यशाब्द-
 बोधस्य तादृशशाब्दत्वेन हेतुलोपगमात् व्यभिचारश्चाव्यवहितोत्तरत्वादि-
 निवेष्टेन वारणीयः, केवलोपनयजन्यपरामर्शस्थले च उपनयजन्यशाब्दबो-

प्यन्ते । तत्र न समस्तरूपोपपन्नलिङ्गप्रतिपादकवाक्यं
न्यायः, अत्रैव वाक्येऽतिव्याप्तेः, किन्त्वनुमितिचरमका-

‘अनुमितीति अनुमितिचरमकारणं यल्लिङ्गपरामर्शस्तस्य प्रयोजकं
तज्जनकजनकं यच्छाब्दज्ञानं तज्जनकज्ञाननिष्ठकारणताया विषयि-
तासम्बन्धेनावच्छेदकवाक्यमित्यर्थः, घटमानयेति वाक्येऽतिव्याप्तिवार-
णाय प्रयोजकान्तं, उपनयस्यापि अनुमितिकारणपरामर्शप्रयोजक-
शाब्दज्ञानजनकतया तत्रातिव्याप्तिवारणाय ‘चरमेत्युक्तं, चरमत्वञ्चा-

घस्य न परामर्शं प्रति तादृशशाब्दबोधत्वेन हेतुता अपि तु तद्विषयक-
ज्ञानत्वेन । न च तादृशकार्य-कारणभावे मानाभाव इति वाच्यं । उपनाय-
कज्ञानादिसत्त्वे वल्लिङ्गव्याप्यो धूमः पर्वते इत्यादिज्ञानकाले वल्लिङ्गव्याप्यधूम-
वान् पर्वत इत्यादिवारणाय तत्तदननुगतक्षणादीनां हेतुत्वं कल्यं इत्यञ्च
न्यायजन्यपरामर्शस्थलीयानन्तक्षणाणां हेतुत्वकल्पनमपेक्ष्य लाघवात् न्याय-
जन्यबोधस्य तादृशबोधत्वेन हेतुता कल्प्यते तादृशकारणवाधादेवान्यत्र धूम-
विश्लेषकपरामर्शकाले न धूमप्रकारकपरामर्श-इति, चरमकारणपदन्तु
तादृशकारणतालाभायैव उपात्तं । न च तादृशयुक्त्या न्यायजन्यशाब्दबोधस्य
तादृशशाब्दबोधत्वेन हेतुत्वकल्पने तादृशयुक्त्यैव केवलोपनयजन्यशाब्दस्यापि
तादृशशाब्दत्वेन हेतुत्वं कल्प्यमिति वाच्यम् । तत्र परामर्शस्थानैयत्वेनानुगत-
कारणताकल्पनासम्भवादित्याहुः, तच्चिन्त्यं ।

नवीनास्तु न्यायजन्यशाब्दबोधप्रयोज्यानुमितिव्यक्तिमेव तद्व्यक्तित्वेनादाय
तदनुमितिफलोपधायकीभूतपरामर्शव्यक्तिफलोपधायकीभूतशाब्दबोधनिष्ठ-
कार्यतानिरूपित-यत्किञ्चिज्ज्ञाननिष्ठस्वरूपयोग्यतावच्छेदकीभूतविषयि-
तानिरूपकवर्णसमुदायत्वमतो न कश्चिद्दोषः, असम्भववारणाय यत्कि-
ञ्चिज्ज्ञाननिवेशनमिति प्राहुः, इति व्याख्यानतरं ।

रणास्त्रिङ्गपरामर्शप्रयोजकशाब्दज्ञानजनकवाक्यं न्यायः ।
प्रतिज्ञादिपञ्चवाक्यैरेकवाक्यतया स्वार्थविशिष्टज्ञानं ज-

नुमितौ कर्त्तव्यायां स्त्रोत्तरोत्पन्नज्ञानानपेक्षत्वं, तथाच उपनयप्रयो-
ज्यानुमितिकारणपरामर्शस्य स्त्रोत्तरोत्पन्ननिगमनमाध्यावाधितत्व-
ज्ञानसापेक्षत्वात् नोपनयेऽतिव्याप्तिरिति भावः । अनुमितिचरम-
कारणात्मकशाब्दज्ञाने कृतेऽसम्भवः न्यायजन्यज्ञानस्य पक्षतावच्छेद-
कविशिष्टे साध्यव्याप्यवदभेदस्यैव विषयीकरणात् नामार्थयोर्भेदान्व-
यस्यायुत्पन्नतया पक्षतावच्छेदकविशिष्टे साध्यव्याप्यवैशिष्ट्यानवगाहि-
त्वात् तादृशज्ञानस्यानुमितिजनकत्वाभावात् । न च तादृशपरामर्श-
जनकत्वमेवोच्यतां किं तज्जनकजनकत्वप्रवेशेनेति वाच्यं । तथाप्य-
सम्भवापत्तेः न्यायजन्यज्ञानस्य वादिवाक्यज्ञानजन्यत्वेनाप्रामाण्यज्ञाना-
स्कन्धितत्वेन तेन विशिष्टवैशिष्ट्यबोधात्मकतादृशज्ञानजननासम्भवात्
अप्रामाण्यज्ञानानास्कन्धित-विशेषणतावच्छेदकप्रकारकनिश्चयात्मकं
न्यायजन्यशाब्दज्ञानजन्यज्ञानान्तरमपेक्षणीयमिति ।

उपाध्यायास्तु तादृशपरामर्शप्रयोजकत्वं तादृशपरामर्शजनकत्वमेव
तथाच न्यायजन्यज्ञानानन्तरोत्पन्नज्ञानादेवानुमितिरित्याहुः ।

यत्र समयवशेनायन्नाभास इत्यादिरूपकण्ठकोद्धारसहित एव
न्यायप्रयोगः कृतः तत्र कण्ठकोद्धारवाक्येऽतिव्याप्तिवारणाय 'शाब्देति,
तथाच तत्पदमहिम्ना तादृशपरामर्शं प्रति तज्जन्यज्ञानस्य शाब्दत्वेन
प्रयोजकत्वमित्यर्थः पर्यवस्यति, कण्ठकोद्धारवाक्यस्य च योग्यता-
ज्ञानमात्रसम्पादकत्वात् योग्यताज्ञानस्य च शाब्दाशाब्दसाधारणेनैव

न्यते तेन च विशिष्टवैशिष्ट्यावगाहि मानान्तरमुत्था-

हेतुत्वमिति नातिप्रसङ्गः, न्यायजन्यज्ञानस्य च प्रतिवादिपरामर्शं प्रति तादृशशाब्दत्वेन हेतुत्वं अन्वय-व्यतिरेकाभ्यां तथैव कार्य-कारण-भावावधारणादिति हृदयं । वाक्यपदं तादृशशाब्दज्ञाननिष्ठकार्यता-निरूपितकारणताया विषयविधयावच्छेदकत्वपर्याप्त्यधिकरणत्वज्ञा-भाय अन्यथा न्यायैकदेशेऽतिव्याप्तेः^(१) ।

(१) लक्ष्ये लक्ष्यं योजयति, 'प्रतिज्ञादीति प्रतिज्ञादिपञ्चवाक्यैरेकवाक्य-तया एकानुपूर्वोक्तत्वेन रूपेण यः स्वस्वार्थो निवृत्तिरभाव इति यावत्, तज्ज्ञानं जन्यते, 'तेन च' क्रमिकप्रतिज्ञादिपञ्चगतैकानुपूर्ववच्छिन्नाभाव-कूटज्ञानेन च, विशिष्टस्य तादृश-तादृशानुपूर्वोक्तत्वावच्छिन्नाभावीयत्व-विशिष्टव्याप्यत्वस्य घटपदत्वादिहेतौ वैशिष्ट्यावगाहि यन्मानं घटपदत्वं तादृश-तादृशानुपूर्ववच्छिन्नाभावकूटव्याप्यमित्याकारकं ज्ञानं तदुत्थाप्यते जन्यते, 'तेन च' व्याप्यत्वबोधेन च, 'परमपरामर्शः' तादृश-तादृशानुपूर्वो-क्तत्वावच्छिन्नाभावकूटव्याप्यघटपदत्ववान् इत्याकारको जन्यत इत्यर्थः ।

साम्प्रदायिकास्तु लक्ष्यस्थस्यानुमितिपदस्य प्रकृतपक्षक-प्रकृतसाध्यक-प्रकृतहेतुकानुमितिपरत्वं वर्णयन्तो यन्मन्यथा व्याचक्षते, यथा प्रति-ज्ञादिपञ्चवाक्यैरेकवाक्यतया स्व-स्वघटकपदानामेकवाक्यत्ववशेन स्व-स्वार्थ-विशिष्टज्ञानं समूहान्म्वनरूपमेव जन्यते न तु मिथो विशिष्टवैशिष्ट्या-वगाहिरूपं, उदाहरणस्यान्यत्रानन्वयित्वेन पञ्चभिः परस्परमेकवाक्यता-पन्नैरन्वयबोधस्य जननासम्भवात्, तेन च प्रतिज्ञादिपञ्चकजन्यबोधेन च विशिष्टस्य प्रकृतसाधीयत्वविशिष्टस्य व्याप्यत्वस्य हेतौ वैशिष्ट्यावगाहि यन्मानं मानसात्मकं ज्ञानं तदुत्थाप्यते जन्यते । न च न्यायजन्यबोधस्य

प्यते तेन च चरमपरामर्श उत्पाद्यत इति न्याय-
जन्यशाब्दज्ञानस्य परामर्शप्रयोजकता ।

लक्ष्ये लक्षणं सङ्गमयति, 'प्रतिज्ञादीति, 'एकवाक्यतया' मिलित्वा,
'स्वार्थविशिष्टज्ञानं' परस्परार्थान्वितस्वार्थविषयकज्ञानं, 'तेन' विशि-
ष्टवैशिष्ट्यज्ञानेन, 'मानान्तरं' मित्यन्तरं, 'उत्पाद्यते' जन्यते, उपा-
ध्यायमते 'मानं' मनः, 'उत्पाद्यते' स्वात्मकसहकारिसम्पन्नीक्रियते

विशेषणज्ञानविधया परामर्शजनकत्वसम्भवात् मानान्तरोत्थापनमफल-
मिति वाच्यम् । हेत्वंगे व्याप्तेर्यात्यंगे च साध्यस्य संसर्गविधया वैशि-
ष्ट्यावगाहिन एव बोधस्य चरमपरामर्शहेतुतया न्यायजन्यबोधस्य तथा-
त्वासम्भवात् तस्य हेत्वाद्यंगे तादात्म्येन व्याप्याद्यवगाहित्वात्, एतेन
न्यायजन्यशाब्दबोधेन विशिष्टवैशिष्ट्यावगाहि व्याप्तिविशिष्टस्य हेतोः पक्ष-
वैशिष्ट्याग्राहकं यन्मानं मनः तदुत्पाद्यते सहकारिसम्पन्नीक्रियते इत्युपा-
ध्यायव्याख्यानमनादेयं । यत्तु न्यायजन्यबोधस्य वादिवाक्यजन्यत्वेनाप्रामाण्य-
ज्ञानास्फुटितत्वात् ततो न चरमपरामर्शात्मादः सम्भवत्यतः साध्यौयत्व-
विशिष्टव्याप्यत्वस्य साधने वैशिष्ट्यावगाहि यन्मानान्तरं मानसज्ञानं, तस्या-
नुसरणमिति मिश्रैरुक्तं, तदप्ययुक्तं, न्यायजन्यशाब्दज्ञानस्याप्रामाण्यज्ञाना-
स्फुटितत्वे ततः परामर्शस्येव साधनधर्मिकव्याप्यत्वोपनीतमानस्याप्युत्पत्ते-
रसम्भवात् सर्वस्यां न्यायजन्यबुद्धौ वादिवाक्यजन्यत्वेनाप्रामाण्यग्रहानावश्य-
कत्वाच्चेत्याहुः, तन्मन्दं, वज्रिव्याप्यवानयमित्यादिवाक्यजशाब्दस्यापि वज्रा-
द्यनुमितिचरमकारणीभूतपरामर्शं प्रति कथञ्चित् प्रयोजकत्वेन तज्जनक-
तादृशवाक्येऽतिव्याप्तेर्दुर्वारत्वापत्तेः इत्यास्तां विस्तरः इति जागदीशौ
व्याख्या ।

इत्यर्थः, मनसोविशिष्टवैशिष्ट्यावगाहिता तु व्यापारानुबन्धिनी ।
न च प्रतिज्ञादिपञ्चवाक्यैर्मिलित्वा विशिष्टवैशिष्ट्यावगाहि ज्ञान-
मसम्भवि उदाहरणे यद्यदित्यनेन पर्वतादीनां उपस्थापनादिति
वाच्यम् । वीष्मासमभिव्याहारेण तत्र व्यापकत्वबोधनात् तथाच
धूमवदभिन्न-धूमव्यापकवक्तिसम्बन्धभिन्न-धूमज्ञानज्ञाप्यवक्तिसम्बन्ध-
भिन्नः पर्वतो वक्तव्याप्याभिन्नधूमसम्बन्धभिन्न-वक्तव्याप्यधूमज्ञान-
ज्ञाप्यवक्तिसम्बन्धभिन्नपर्वताभिन्न इति न्यायजन्यमहावाक्यार्थबोधः ।
न च धूमज्ञानज्ञाप्यवक्तिसम्बन्धभिन्नपर्वते कथं वक्तव्याप्यधूमज्ञान-
ज्ञाप्यवक्तिसम्बन्धिनस्तादात्म्येन भानं उद्देश्यतावच्छेदकस्य विधेयताव-
च्छेदककोटिप्रविष्टत्वादिति वाच्यम् । उद्देश्यतावच्छेदके विधेयता-
वच्छेदकतायाः पर्याप्तिरेव निराकाङ्क्षत्वात्, अत एव दण्डी रक्तद-
ण्डीति प्रयोगोऽपि सङ्गच्छते । यदि च उद्देश्यतावच्छेदकस्य विधेय-
तावच्छेदककोटिप्रवेश एव निराकाङ्क्षत्वं अत एव पक्ता पचतीत्यादौ
लङ्घ्यवर्त्तमानत्वादेरधिकस्य प्रवेशेऽपि नान्वयबोध इत्यभ्युपेयते तदा
‘एकवाक्यतया’ एकैकवाक्यतया प्रत्येकेनेति यावत्, ‘स्वार्थविशिष्टज्ञानं’
स्वार्थमात्रविषयकं अवान्तरवाक्यार्थज्ञानं, ‘जन्यते’, ‘तेन च’ अवा-
न्तरकाक्यार्थज्ञानेन च, ‘विशिष्टवैशिष्ट्यावगाहि’ प्रतिज्ञार्थं हेत्वर्थवै-
शिष्ट्यावगाहि उपनयार्थं निगमनार्थवैशिष्ट्यावगाहि, ‘मानान्तरं’
महावाक्यार्थज्ञानं, ‘उत्पाद्यते’ जन्यते इत्यर्थः, यदा ‘एकवाक्यतया’
एकान्वयबुद्धिजननयोग्यतया, ‘स्वार्थविशिष्टज्ञानं’ स्वार्थविषयकं समू-
हालम्बनरूपं महावाक्यार्थज्ञानं जन्यते इत्यर्थः, इति नानुपपत्तिगन्धो-
ऽपीति । ननु न्यायजन्यज्ञानस्य तादृशपरामर्शं प्रति प्रयोजकत्वं यदि

व्याप्ति-पक्षधर्मतोपस्थापकतया^(१) उदाहरणोपनययोरेवानुमिति-
 चरमकारणलिङ्गपरामर्शप्रयोजकशब्दज्ञानजनकत्वं पर्यवस्यति, तदा
 अवयवान्तरेऽव्याप्तिः, यदि च परामर्शविषयीभूतयत्किञ्चित्पदार्थ-
 मात्रविषयकतामात्रेण तदा वक्षिष्याम्यधूमवान् पर्वत इत्युदासीनवा-
 क्यादावतिव्याप्तिः । न च न्यायजन्यज्ञानस्य तादृशशब्दत्वेन तादृश-
 परामर्शं प्रति स्वातन्त्र्येण हेतुत्वमिति वाच्यम् । मानाभावादिति
 चेत् । न । शब्दज्ञानान्तेन बलव्रीहिणा विरुद्धानुपूर्वीकभिन्नस्य तत्-
 पक्षक-तत्साध्यक-तद्धेतुकप्रतिज्ञादिपञ्चकसमुदायत्वमुक्तं एवभूतं जन-
 कीभूतं वाक्यं तत् इत्यत्र तात्पर्यात् । न चैवमपि हेत्वाभासता-
 लिङ्गकासाधकतासाधकन्यायेऽव्याप्तिः तत्र व्याप्तेरुभयवादिसिद्धत-
 या उदाहरणभावेन तादृशपञ्चकत्वाभावादिति वाच्यम् । स्वक-
 त्तैव्यतानिर्वाहार्थं तत्राप्युदाहरणप्रयोगादित्यलमधिकेनेति^(२) ।

(१) व्याप्ति-पक्षधर्मताविषयकतयेत्यर्थः ।

(२) 'अनुमितीति अत्राप्यनुमितिपदं यादृश-यादृशानुपूर्व्यवच्छिन्ने प्रकृत-
 तपक्ष-प्रकृतसाध्यादिन्यायव्यवहारः प्रामाणिकः तादृश-तादृशानुपूर्व्यव-
 च्छिन्नाभावकूटसाध्यकानुमितिपरं, तथाच तादृशानुमितेश्चरमकारणीभूतो
 यः तादृशानुपूर्व्यवच्छिन्नाभावकूटव्याप्यवानयमित्याकारकः परामर्शः तस्य
 प्रयोजकं तज्जनकव्याप्तिज्ञानस्य जनकं यच्छब्दं शब्दप्रकारकं ज्ञानं तादृश-
 तादृशानुपूर्वीमत्त्वावच्छिन्नाभाव इत्याकारकं ज्ञानं तज्जनकं विषयविधया
 जनकतावच्छेदककोटिप्रविष्टं अथ च शब्दबोधस्य जनकं यद्वाक्यं तत्त्व-
 मित्यर्थः, न्यायाप्रविष्टस्य प्रतिज्ञादिसमानार्थकवाक्यस्य वारणाय प्रविष्टान्तं,
 न्यायनिविष्टस्य प्रतिज्ञाद्यन्तर्गतपर्वतइत्यादिनिरर्थकभागस्य वारणाय शा-

व्बोधजनकेति । न च न्यायनिविष्टस्य वङ्गिमानित्यादिभागस्य शाब्दबोध-
जनकत्वात्तत्रातिव्याप्तिरिति वाच्यम् । शाब्दबोधजनकेत्यनेन पक्षे साध्यस्य,
हेतुतायां साधनस्य, साधने साध्यव्याप्यत्वस्य, पक्षे याध्यव्याप्यहेतुमत्त्वस्य,
हेतुज्ञाप्यसाध्यत्ववस्य च येऽन्वयबोधास्तेषामन्यतमबोधं प्रत्येव जनकत्वस्य
विवक्षितत्वात् । न चैवमपि रमेश्वरः पूज्यो देवत्वादित्यादिन्यायान्तर्गतस्य
मेश्वरः पूज्य इति भागस्यापि उक्तरूपवत्त्वात् तत्रातिव्याप्तिरिति वाच्यं ।
स्वघटितवाक्याप्रतिपाद्यस्वार्थकवाक्यत्वरूपमहावाक्यत्वपरेण वाक्यपदेनैव
तद्वारणादिति भावः । ननु प्रकृतपक्ष-हेतु-साध्यकपरामर्शजनकवाक्यत्वं न्या-
यत्वं, तादृशबोधानुकूलबोधजनकत्वञ्चावयवत्वं इति प्राचीनैरुक्तं कुतस्त्यक्त-
मतञ्चाह, 'अतएवेति उक्तनिरुक्तेस्यागादेवेत्यर्थः', 'तदवयवे' तादृशवाक्यैक-
देशे वङ्गित्याप्येत्यादिभाग इति यावत् । ननु नामार्थ-धात्वर्थयोर्नामार्थयोश्च
भेदेनान्वयबोधस्याव्युत्पन्नतया उक्तवाक्यस्य पक्ष-व्याप्त्यादौ हेतु-साध्यादिप्रका-
रकबोधाजनकत्वेन परामर्शजनकत्वमेव नास्ति कुतस्तत्रातिव्याप्तिरित्यत-
श्चाह, 'तेनेति', 'जननात्' जननसम्भवात्, प्राचैर्मनुवादिसमभिव्याहारव-
शान्नानामार्थयोर्भेदेनान्वयस्याभ्युपगमादिति भावः ।

न्यायावयवपदयोः पर्थ्यायत्ववादिनां मतमुपन्यस्यति, 'यत्त्विति 'सङ्क्षेपतः'
लाघवात्, 'विशेषाभावादित्यस्य प्रतिज्ञादिपञ्चकसमुदायापेक्षयेत्यादि,
'सोऽपीति वङ्गित्याप्यधूमवानयं इत्यादिशाब्दबोधप्रयोजकोऽपीत्यर्थः,
न्यायस्य प्रथमतो वादिवाक्यत्वनियमात् उक्तवाक्यस्य च न्यायत्वेऽनाकाङ्क्षि-
तस्य तस्य प्रागभिधानेऽर्थान्तरात्मकस्य निग्रहस्थानस्य प्रसङ्गादित्या-
शयेन निरस्यति, 'कथायामिति जल्प-वादकथायामित्यर्थः, लाघवाद्यदि
परामर्शप्रयोजकवाक्यत्वस्यैव न्यायपदप्रतिपाद्यतावच्छेदकता तदाऽतिलाघ-
वात् परामर्शप्रयोक्तृत्वमात्रस्य तथात्वं स्यात् तथाच चक्षुरादिरपि न्यायः
स्यादित्याह, 'अन्यथेति न्यायत्वापत्तिर्न्यायपदवाच्यत्वापत्तिः । ननु चक्षु-
रादेर्न्यायत्वे प्रथमतस्तदभिधानेऽर्थान्तरं स्यादित्यत आह, 'आकाङ्क्षेति,
'तस्य इत्यस्य उपनयनवाक्येऽपीत्यादिः ।

अनुमितिचरमकारणलिङ्गपरामर्शप्रयोजकशब्द-
ज्ञानजनकशब्दज्ञानजनकवाक्यत्वमवयवत्वम्, अतएव
वह्निव्याप्यधूमवानयमितिवाक्ये तदवयवे च न न्याय-
तदवयवलक्षणातिव्याप्तिः तेन परामर्शस्य तदवयवेन
परामर्शजनकस्य जननात् ।

यत्तु संक्षेपतः परामर्शप्रयोजकवाक्यत्वेन विशेषा-

‘अनुमितिचरमकारणेति, न्यायेऽतिव्याप्तिवारणाय तादृश-
शब्दज्ञानजनकेत्युक्तं, वह्निव्याप्यधूमवानयमितिवाक्यैकदेशेऽतिव्याप्ति-
वारणाय चरमत्वं परामर्शविशेषणं, अर्थस्तु पूर्ववत्, पूर्वाक्तकण्टको-

‘तद्धीति तादृशशब्दधीत्यर्थः, विजातीयं विलक्षणैकजातिविशिष्टं,
‘तल्लक्षणं’ अवयवलक्षणं, क्वचित्तु मूले ‘तत्तद्धीजनकत्वमेव तल्लक्षणमिति
पाठः, स च विजातीयज्ञानजनकत्वं प्रतिज्ञात्वं, तद्विलक्षणज्ञानजनकत्वं
हेतुत्वमित्येवं क्रमेण व्याख्येयत्वे प्रतिज्ञादिग्रन्थे तादृशतल्लक्षणस्याग्रे शङ्खि-
तत्वेन पुनरुक्तिभिर्या प्रामादिक इति ध्येयं । ‘दुर्निरूपमिति कार्यमात्रवृ-
त्तिजातेरनुगतानतिप्रसक्तधर्मावच्छिन्नकारणप्रयोज्यत्वनियमादिति भावः ।
‘तस्यैवेत्येवकारोभिन्नक्रमे तेन ‘तत्स्वीकारे एव’ प्रतिज्ञादावनुगतधर्म-
स्वीकार एव, ‘तस्य’ विजातीयधीजनकवाक्यत्वस्य लक्षणत्वसम्भवादित्यर्थः,
तथाच वैजात्यासत्त्वान्तर्भल्लक्षणस्यासम्भवादिति भावः । ननु विनाप्यनु-
गतानतिप्रसक्तधर्मावच्छिन्नकारणं कार्यगतवैजात्यसत्त्वे कोदोष इत्यत-
प्याह, ‘अन्यथेति अनुगतकारणं विनापि कार्यगतवैजात्योपगमे घट-पटा-
दित्रिघतुरेख्येकवैजात्यसिद्ध्या तेन समं घटत्व-पटत्वादेः सङ्करप्रसङ्ग इत्यर्थः,
तथाविधवैजात्ये प्रमाणाविरहस्तु प्रकृतेऽपि समान इति भावः इति जाग-
दीशी व्याख्या ।

भावात् सोऽपि न्याय एवेति, तन्न, कथायामाकाङ्क्षा-
क्रमेणाभिधानमिति प्रथमं विशिष्टवैशिष्ट्य आकाङ्क्षा
नास्तीति तदभिधाने निग्रहादिति वक्ष्यते, अन्यथा

द्वारावयवेऽतिव्याप्तिवारणाय शाब्दपदं, उदासीने च यथा नाति-
व्याप्तिस्तथोक्तमधस्तात् । न च यत्र द्वाभ्यामवयवाभ्यां न्यायजन्यज्ञान-
जनकं एकं ज्ञानं जनितं तत्र तादृशावयवद्वयेऽतिव्याप्तिः एवं पूर्वोक्त-
रीत्या वङ्गिव्याप्यधूमवानयमिति वाक्यैकदेशेऽतिव्याप्तिरिति वाच्यम् ।
स्वाविषयकप्रतीत्यविषयन्यायकत्वे सति प्रतिज्ञाद्यन्यतमत्वं अवयवत्वं
इत्यर्थं तात्पर्यात्, बद्धव्रीहिसमासे जनकान्तात् तथा लाभात्, उदा-
सीनवाक्येऽतिव्याप्तिवारणाय सत्यन्तं, अवयवैकदेशेऽतिव्याप्तिवारणाय
विशेष्यदलं, तत्र चान्यतमत्वघटकाः प्रतिज्ञादिभेदाः तत्तद्भक्तित्वा-
वच्छिन्नप्रतियोगिताका ग्राह्याः, न तु तत्तदानुपूर्व्यवच्छिन्नप्रति-
योगिताकाः, धूमादालोकवान् पर्वतोवङ्गिमान् धूमादित्यत्र हेत्व-
वयवसमानानुपूर्व्यैकप्रतिज्ञैकदेशे धूमादितिभागेऽतिव्याप्तेः । न च
शाब्दभेदेन न्यायानन्त्यं स्यादिति वाच्यं । द्रष्टृत्वात् । न्यायलक्षणे तदवय-
वलक्षणे च चरमपदव्यावृत्तिमाह, 'अत एवेति परामर्शं चरमत्वो-
पादानादेवेत्यर्थः, 'तदवयवे चेति वङ्गिव्याप्यधूमवानिति न्यायावय-
वैकदेशे चेत्यर्थः, 'न्याय-तदवयवेति यथाक्रममन्वयः । ननु चरमत्वो-
पादानादेव कुतो नातिव्याप्तिः तत्र हेतुमाह, 'तेनेति वङ्गिव्याप्य-
धूमवानयमिति वाक्येनेत्यर्थः, 'परामर्शस्येति सावधारणं, 'परामर्शपदं
परामर्शप्रयोजकशाब्दज्ञानपरं, अस्य 'जननादित्यनेनान्वयः, तथाच

चक्षुरादेरपि परामर्शजनकतया न्यायत्वापत्तिः आका-
ङ्क्षाविरहस्तुल्यएव ।

परामर्शप्रयोजकशाब्दज्ञानस्यैव जननादित्यर्थः, अनुमितिचरमका-
रणपरामर्शप्रयोजकशाब्दज्ञानाजननात् इति पर्यवसितार्थः, तथाच
तादृशवाक्यजन्यशाब्दज्ञानप्रयोज्यज्ञानस्य स्तोत्रोत्पन्नाबाधितत्व-
ज्ञानसापेक्षतया चरमत्वाभावान्नातिव्याप्तिरिति भावः । 'तदवयवे-
नेति वल्लिथ्यायधूमवानयमित्यस्य एकदेशेनेत्यर्थः, 'परामर्शजनक-
स्येति इदमपि सावधारणं, अत्रापि पूर्वोक्तरीत्या अर्थोऽवसेयः ।

'सङ्क्षेपतः' लाघवतः, नन्वेवं वाक्यत्वमेव तदुच्यतामिति लाघवा-
दित्यत आह, 'अविशेषादिति^(१) अत्र चकारः पूरणीयः, अत्र हेतु-
माह, 'परामर्शप्रयोजकेति परामर्शप्रयोजकशाब्दज्ञानजनकवाक्यत्वे-
नेत्यर्थः, 'सोऽपीति तावन्मात्रमपि यदि कथायां प्रयुज्यते तदा
तस्यापि न्यायत्वमिष्यत एवेत्यर्थः, 'प्रथममिति हेत्वाद्यभिधानात्
प्रागित्यर्थः, 'विशिष्टवैशिष्ट्य इति सप्तम्यर्थोविषयत्वं, तथाच व्याप्ति-
विशिष्टवैशिष्ट्यावगाहिजिज्ञासा नास्तीत्यर्थः, 'तदभिधाने' अनाका-
ङ्क्षिताभिधाने, तथा चात्रेष्टापत्तिरनुचितेति भावः । ननु हेत्वाद्य-
भिधानात् प्रागपि कदाचित् वल्लिथ्याप्तिविशिष्टवैशिष्ट्यज्ञानगोचरे-
ष्टसाधनतास्मरणादिना विशिष्टवैशिष्ट्यगोचराकाङ्क्षा सम्भवत्येवेति
तत्र न्यायत्वस्वीकारे नोक्तदोषः इत्यत आह, 'अन्यथेति लाघ-
वेन सम्प्रदायसिद्धन्यायव्यवहाराविषयस्यापि न्यायत्वस्वीकारे इत्यर्थः,

(१) 'विशेषाभावात्' इत्यत्र 'अविशेषात्' इति कस्यचिन्मूलपुस्तकस्य
पाठोऽनेन रहस्यकृत्पाठधारणेनानुमीयते ।

अन्ये तु पञ्चावयववाक्यादिजातीयमेव शाब्दज्ञान-
मुत्पद्यत इति तद्वीजनकवाक्यत्वं न्यायत्वम्, एवं प्रति-

‘चक्षुरादेरपीति अतिलाघवात् वाक्यत्वमपि परित्यज्य चक्षुरादि-
साधारणस्यैव वक्तुमुचितत्वादिति भावः । ‘आकाङ्क्षाविरह इति आका-
ङ्क्षापदं सम्प्रदायसिद्धन्यायव्यवहारपरं, तथाच सम्प्रदायसिद्धन्यायल-
व्यवहारविरहश्चक्षुरादाविव वक्त्रिव्याप्यधूमवानयमित्येतावन्मात्रवाक्ये-
ऽपि तिष्ठतीत्यर्थः, तथाचात्र न्यायत्वास्वीकारे तत्रापि तथात्वौचित्या-
दिति भावः । ‘तद्वीजनकेति विजातीयशाब्दज्ञाननिष्ठकार्यतानिरू-
पितकारणतायाः विषयितासम्बन्धेनावच्छेदकं यद्वाक्यं तत्त्वमित्यर्थः
वक्त्रिव्याप्यधूमवानयमित्येतावन्मात्रजन्यज्ञाने च न वैजात्यमिति ना-
तिप्रसङ्गः, वाक्यपदं अवच्छेदकतापर्याप्तिलाभाय, इतरथा न्यायैक-
देशेऽतिव्याप्तिः, ‘एवमिति तुल्यप्राप्तमित्यर्थः, ‘तल्लक्षणमिति प्रतिज्ञा-
दिलक्षणमित्यर्थः, ‘अनतिप्रसक्तमिति उदासीनवाक्यव्यावृत्तमित्यर्थः
एतेन तादृशवाक्यत्वव्यवच्छेदः, ‘अनुगतमिति सकलन्यायसाधारण-
मित्यर्थः, एतेन तत्तद्व्यक्तित्वव्यवच्छेदः, ‘दुर्निरूपमिति दुःसम्भवमि-
त्यर्थः, जनकतायाः जनकतावच्छेदकघटितत्वादिति भावः । ननु
तादृशं रूपं स्वीकृत्यैव लक्षणं करणीयमित्यत आह, ‘तत्स्वीकार-
इति न्यायादावनुगतानतिप्रसक्तधर्मस्वीकार इत्यर्थः, ‘लक्षणत्वात्’
लक्षणत्वापातात् । ननु तस्यैव इत्ययुक्तं लक्षणान्तरसत्त्वेन लक्षणान्तर-
करणे दोषाभावादित्यत आह, ‘अन्यथेति न्यायादिजन्यताव-
च्छेदकवैजात्यानां स्वीकारे इत्यर्थः, ‘जातिसङ्करप्रसङ्ग इति प्रतिज्ञा-

ज्ञाद्यवयवादपि प्रत्येकं विजातीयं शाब्दज्ञानमिति
तत्तद्बीजनकशब्दत्वमेव तत्तत्लक्षणमिति, तन्न, ज्ञानवि-
शेषजनकत्वं तत्तज्ज्ञानजनकत्वं वा न्याये प्रतिज्ञादौ
चानतिप्रसक्तमनुगतरूपमन्तरेण दुर्निरूपमिति तत्स्वी-
कारे तस्यैव लक्षणत्वात् अन्यथा जातिसङ्करप्रसङ्गः ।

जन्यतावच्छेदकजात्यभाववति हेतुमात्रजन्यज्ञाने हेतुजन्यतावच्छे-
दिका जातिः हेतुजन्यतावच्छेदकजात्यभाववति प्रतिज्ञामात्रजन्य-
ज्ञाने प्रतिज्ञाजन्यतावच्छेदिका जातिः उभयज्ञानजन्ये च उभयोः
समावेश इति सङ्कर इत्यर्थः, एवमुदाहरणादिजन्यतावच्छेदकजाति-
मादाद्यापि सङ्करो बोध्यः । न चोभयजन्यतावच्छेदकं भिन्नमेव वैजात्यं
स्वीकार्यं प्रत्येकजन्यतावच्छेदकवैजात्यावच्छिन्नं प्रति उभयजन्यताव-
च्छेदकवैजात्यावच्छिन्नसामग्रीणां प्रतिबन्धकतया नोभयादिजन्यज्ञाने
च प्रत्येकजन्यतावच्छेदकवैजात्यमिति न सङ्कर इति वाच्यम् । एता-
दृशप्रतिबन्ध-प्रतिबन्धकभावे विभिन्नवैजात्यकल्पने मानाभावात्
क्लृप्तसामग्रीतएव तादृशशाब्दोदयात् ।

‘तत्र’ निरूपणे, सप्तम्यर्थो विषयत्वं, ‘साध्यनिर्देश इति साध्यं
निर्दिश्यतेऽनेनेति व्युत्पत्त्या साध्यप्रतिपादकशब्द इत्यर्थः, ‘साध्यपद-
इति साध्यपदस्यापि साध्यप्रतिपादकत्वादिति भावः । ‘उद्देश्येति,
उभयत्र उद्देश्यत्वं प्रकृतत्वं, यथाश्रुते यत्र न्याये अनुमिति-
र्नैच्छाविषयस्तत्रत्यप्रतिज्ञायामव्याप्तेः, तथाच तद्गर्भावच्छिन्नपक्षक-

तत्र प्रतिज्ञा न साध्यनिर्देशः साध्यपदेऽतिव्याप्तेः^(१)
किन्तूद्देश्यानुमितिहेतुलिङ्गपरामर्शप्रयोजकवाक्यार्थ-

तद्धर्मावच्छिन्नसाध्यकन्यायावयवत्वे सति तद्धर्मावच्छिन्नपक्षक-तद्धर्मावच्छिन्नसाध्यकान्यूनानतिरिक्तविषयकशब्दज्ञानजनकवाक्यत्वं तद्धर्मावच्छिन्नपक्षक-तद्धर्मावच्छिन्नसाध्यकप्रतिज्ञात्वमित्यर्थः, पर्वतो वन्निमानित्युदासीनवाक्येऽतिव्याप्तिवारणाय सत्यन्तं, तद्वत् तद्धर्मावच्छिन्नपक्षकेत्यनुक्तौ यत्राभिधेयसामान्यं पक्षीकृत्य वन्निज्ञानजन्यज्ञानं निरूपितत्वसम्बन्धेन साध्यते वन्निश्च हेतुस्तत्र वन्नेरिति हेतौ विषयत्वत्वावच्छिन्नपक्षक-वन्निज्ञानजन्यज्ञानत्वावच्छिन्नसाध्यकप्रतिज्ञा-लक्षणातिव्याप्तिः तादृशहेत्ववयवस्य वन्निज्ञानजन्यज्ञानत्वावच्छिन्नसाध्यकन्यायावयवत्वात् विषयत्वत्वावच्छिन्नपक्षक-वन्निज्ञानजन्यज्ञानत्वावच्छिन्नसाध्यकानुमित्यन्यूनानतिरिक्तविषयकशब्दज्ञानजनकत्वाच्च, तद्दाने च विषयत्वत्वावच्छिन्नपक्षकन्यायावयवत्वाभावात् नातिव्याप्तिः, तत्पक्षकेत्युक्तावपि तद्दोषतादवस्थमत आह, तद्धर्मावच्छिन्नपक्ष-

(१) 'तत्रेति, 'तत्र' निरूपणीयप्रतिज्ञादिषु मध्ये, 'साध्येति, 'साध्यस्य' विधेयधर्मविशिष्टधर्मिणः, 'निर्देशः' तद्वोधाकशब्द इत्यर्थः, तथाच साध्यविशिष्टपक्षवोधाकन्यायावयववाक्यत्वमर्थः प्रत्यवस्यति, 'साध्येति, निरुक्तसाध्यस्य 'पदे' बोधाकशब्दे इति यावत्, 'अतिव्याप्तेरिति उपनयनिगमनाभ्यां एकवाक्यतया जायमाने बोधे निगमनस्य हेतुत्वेनातिव्याप्तेरित्यर्थः, एतेन निगमने अयम्यदा नुषङ्गपक्षे नातिव्याप्तिरिति परास्तं । तादृशबोधमात्रपदप्रक्षेपे तु नोक्तदोष इति ध्येयमिति जागदीशी व्याख्या ।

केति । न चैवमपि यत्र विषयत्वेन विषयत्वं पक्षीकृत्य निरूपितत्व-
 सम्बन्धेन वक्षिज्ञानजन्यज्ञानं साध्यं वक्षिष्य हेतुस्तत्र वक्षेरिति हेत्ववय-
 वेऽतिव्याप्तिदुर्ब्यारैवेति वाच्यम् । सम्प्रदायविरुद्धतया तादृगन्यायप्र-
 योगाभावात् तावन्मात्रे कृते पर्वतत्वावच्छिन्नपक्षक-द्रव्यत्वावच्छिन्न-
 साध्यकोपनये पर्वतत्वावच्छिन्नपक्षक-द्रव्यव्याप्यधूमत्वावच्छिन्नसाध्यक-
 प्रतिज्ञालक्षणातिव्याप्तिः तादृगोपनयस्य पर्वतत्वावच्छिन्नपक्षकन्या-
 यावयवत्वात् पर्वतत्वावच्छिन्नपक्षक-द्रव्यव्याप्यधूमत्वावच्छिन्नसाध्यका-
 नुमित्यनूनानतिरिक्तविषयकशाब्दज्ञानजनकवाक्यत्वाच्च, तद्दाने च
 तस्य द्रव्यव्याप्यधूमत्वावच्छिन्नसाध्यकन्यायावयवत्वाभावात् नातिप्र-
 सङ्गः, तत्साध्यकत्वमात्रेक्तौ पर्वतोद्रव्यवान् धूमादित्यादिन्यायान्तर्गते
 द्रव्यव्याप्यधूमवानयमित्युपनये द्रव्यव्याप्यधूमसाध्यकप्रतिज्ञालक्षणाति-
 व्याप्तिः तस्यापि द्रव्यत्वेन रूपेण द्रव्यव्याप्यधूमसाध्यकन्यायावयवत्वात्
 पर्वतत्वावच्छिन्नपक्षक-द्रव्यव्याप्यधूमत्वावच्छिन्नसाध्यकानुमित्यनूनान-
 तिरिक्तविषयकशाब्दज्ञानजनकवाक्यत्वाच्च, तथोक्तौ च तस्य द्रव्य-
 व्याप्यधूमत्वावच्छिन्नसाध्यकन्यायावयवत्वाभावान्नातिव्याप्तिः, हेत्वाद्यव-
 यवेऽतिव्याप्तिवारणाय विशेष्यदलं, तत्र तद्धर्मावच्छिन्नपक्षकेत्यनुक्तौ
 यत्राभिधेयसामान्यं पक्षीकृत्य निरूपितत्वसम्बन्धेन वक्षिज्ञानजन्यज्ञानं
 साध्यं वक्षिष्य हेतुः तत्र हेत्ववयवेऽतिव्याप्तिः तस्याभिधेयत्वावच्छि-
 न्नपक्षक-वक्षिज्ञानजन्यज्ञानत्वावच्छिन्नसाध्यकन्यायावयवत्वात् विषय-
 त्वावच्छिन्नपक्षक-वक्षिज्ञानजन्यज्ञानत्वावच्छिन्नसाध्यकानुमित्यनू-
 नानतिरिक्तविषयकशाब्दज्ञानजनकत्वाच्च ज्ञानजन्यज्ञानविषयत्वस्य प-
 क्षमर्थत्वात्, तद्दाने च अत्राभिधेयत्वावच्छिन्नपक्षक-तत्साध्यकानुमित्यनू-

ज्ञानजनकत्वे सत्युद्देश्यानुमित्यन्यूनानतिरिक्तविषयक-
शाब्दज्ञानजनकं वाक्यम्^(१) ।

नानतिरिक्तविषयकशाब्दज्ञानजनकत्वाभावान्नातिव्याप्तिः, तत्पक्षके-
त्युक्तावपि तद्दोषतादवस्थं अत आह तद्वर्मावच्छिन्नेति, तद्वर्माव-
च्छिन्नसाध्यकेत्यनुक्तौ वल्लिव्याप्यधूमवानयमित्युपनये पर्वतत्वावच्छिन्न-
पक्षक-वल्लित्वावच्छिन्नसाध्यकप्रतिज्ञालक्षणातिव्याप्तिः तस्यापि पर्वत-
त्वावच्छिन्नपक्षक-वल्लित्वावच्छिन्नसाध्यकन्यायावयवत्वात् पर्वतत्वाव-
च्छिन्नपक्षक-वल्लिव्याप्यधूमसाध्यकानुमित्यन्यूनानतिरिक्तविषयकशा-
ब्दज्ञानजनकत्वाच्च, तद्दाने च वल्लिसाध्यकानुमित्यन्यूनानतिरिक्त-
विषयकशाब्दज्ञानजनकत्वाभावान्नातिप्रसङ्गः, तत्साध्यकेत्युक्तौ च पर्व-
तोद्रव्यवान् धूमादित्यादिस्थलीयोपनयेऽतिव्याप्तिः तस्य पर्वतत्वावच्छि-

(१) 'किन्चित्वादि, प्रतिज्ञासमानार्थकस्य न्यायानन्तर्गतवाक्यस्य वार-
णाय सत्यन्तं, तत्राप्युद्देश्यानुमितिपदं यादृश-यादृशानुपूर्ववच्छिन्ने प्रकृत-
पक्षक-प्रकृतसाध्यकन्यायत्वं तादृश तादृशानुपूर्ववच्छिन्नाभावसाध्यकानु-
मितिपरं, तथाच तादृशानुमितेर्हेतुभूतोलिङ्गधर्मिकः परामर्शः घटत्वं
तादृश-तादृशानुपूर्ववच्छिन्नाभावकूटव्याप्यमित्याकारकव्याप्तिनिश्चयः तस्य
अयोजकं विषयविधया जनकतावच्छेदकानुपूर्वोघटकं अथच यादृश-यादृश-
वाक्ये प्रकृतपक्ष-साध्य-हेतुकावयवव्यवहारस्तादृश-तादृशवाक्यकूटस्यार्थो-
निरुत्तिरभाव इति यावत् तद्गोचरज्ञानस्य जनकं प्रतियोगिविधया जनक-
तावच्छेदकं तत्त्वे सतीत्यर्थः, हेत्याद्यवयवस्य वारणार्थं विशेष्यदर्शनं, 'उद्देश्या'
प्रकृतपक्ष-साधिका, यानुमितिः तदन्यूनानतिरिक्तविषयकशाब्दधीजनकवा-
क्यत्वमिति तदर्थः, प्रकृतानुमित्यनतिरिक्तविषयकत्वमात्रं धूमाद्रव्यत्ववान्

अपक्षक-द्रव्यत्वावच्छिन्नसाध्यकन्यायावयवत्वात् पर्वतत्वावच्छिन्नपक्ष-
कद्रव्यव्याप्यधूमात्मकद्रव्यसाध्यकानुमित्यन्यूनानतिरिक्तविषयकशब्द-
ज्ञानजनकत्वाच्च, तद्दाने च द्रव्यत्वावच्छिन्नसाध्यकानुमित्यन्यूनानति-
रिक्तविषयकशब्दज्ञानजनकत्वाभावाच्चातित्यागिः, धूमादज्ञवयवस-
म्भवेतद्रव्यवान् पर्वतो वज्रिमान् धूमादित्यत्र हेत्ववयवे तादृशपर्वतत्वा-

पर्वतो वज्रिमान् धूमादित्यादिन्यायस्थले धूमादित्यादिहेत्ववयवेऽतित्याग-
मतः प्रकृतानुमित्यन्यूनविषयकत्वमुक्तं, तच्च प्रकृतपक्षे प्रकृतसाध्यवैशिष्ट्याव-
गाहित्वरूपं ग्राह्यं, धूमात् प्रमेयत्ववद्धेतुत्वं धूमीयं धूमादित्यादौ हेतुतामात्र-
एव प्रकृतसाध्यवैशिष्ट्यबोधकोहेतुर्न तु विशिष्टहेतुत्वात्मके प्रकृतपक्षे,
हेतुत्वं वाच्यत्वात् प्रमेयवृत्तिधर्मवत् वाच्यत्वादित्यादौ च प्रकृतपक्षे प्रकृत्य-
र्थस्य वाच्यत्वस्यैव वैशिष्ट्यबोधकोहेतुर्न तु वाच्यत्वज्ञाप्यप्रमेयवृत्तिधर्मात्मकस्य
प्रकृतसाध्यस्य इति तयोर्व्युदासः। न च पर्वतो वज्रिमानित्यादौ वज्रिसाध्य-
कप्रतिज्ञायामव्याप्तिः नामार्थयोर्भेदेनान्वयबोधस्याव्युत्पन्नत्वेन तस्याः पक्षे
साध्यप्रकारकबोधजनकत्वासम्भवादिति वाच्यं। समानविभक्तिकमतुवादि-
समभिव्याहारवशेन नामार्थयोरपि भेदेनान्वयस्य प्राचीनैः स्वीकृतत्वादेव
तत्सम्भवादिति प्रतिज्ञासहकारेण हेत्ववयवस्य उपनयस्याधमादिपदसह-
कारेण निगमनस्य च निरुक्तानुमित्यन्यूनविषयकत्वात् तत्रातित्यागिवा-
ख्यार्थमनतिरिक्तविषयकत्वमुक्तं। न च सर्वं प्रमेयं वाच्यत्वादित्यादौ प्रकृता-
नुमिति विषयातिरिक्ताप्रसिद्धिः, प्रकृतपक्षधर्म्मिक-प्रकृतसाध्यावगाहिता-
नन्तर्गतविषयताशून्यत्वस्य विवक्षितत्वात्। न चैवमपि रसाधवः पूज्योदेवत्वा-
दित्यादौ साधवः पूज्य इत्याकारकप्रतिज्ञैकदेशेऽतित्यागिः तस्यापि निरुक्त-
सत्यन्तार्थवत्त्वात्प्रकृतानुमित्यन्यूनानतिरिक्तविषयकशब्दधीजनकत्वाच्चेति
वाच्यम्। स्वघटितवाक्याप्रतिपाद्यस्वार्थकत्वरूपमहावाक्यत्वपरेण चरमवा-
क्यपदेनैव तस्य दारित्त्यादिति भावः इति जागदीशी व्याख्या।

वच्छिन्नपक्षक-वह्नित्वावच्छिन्नसाध्यकन्यायावयवत्वात् तादृशपर्वतत्वा-
वच्छिन्नपक्षक-वह्नित्वावच्छिन्नसाध्यकानुमित्यनतिरिक्तविषयकशाब्द-
ज्ञानजनकत्वाच्च तत्र तादृशपर्वतत्वावच्छिन्नपक्षक-वह्नित्वावच्छिन्नसा-
ध्यकप्रतिज्ञालक्षणातिव्याप्तिवारणायान्यूनेति, तद्दाने च तस्य वज्रव-
यवसमवेतद्रव्याविषयकत्वेन तादृशानुमित्यनूयविषयकत्वाभावान्नाति-
प्रसङ्गः । तस्माद्वह्निमानित्यादिनिगमनस्यापि पर्वतत्वावच्छिन्नपक्षक-
वह्नित्वावच्छिन्नसाध्यकन्यायावयवत्वात् पर्वतत्वावच्छिन्नपक्षक-वह्नित्वा-
वच्छिन्नसाध्यकानुमित्यनूयविषयकशाब्दज्ञानजनकत्वाच्च तत्रातिव्या-
प्तिवारणायानतिरिक्तेति, तथाच तस्य तादृशानुमितिविषयातिरि-
क्तव्याप्त्यादिविषयकत्वात् नोक्तातिव्याप्तिः, तत्र शाब्दज्ञानजनकत्वं ता-
दृशज्ञानजनकतावच्छेदकानुपूर्वीमत्त्वं, अतः सभाक्षोभादिनाऽजनित-
बोधकप्रतिज्ञायां नाव्याप्तिः, एतन्नाभायैव शाब्द-वाक्यपदयोरुपादानं ।

ननु सर्वं प्रमेयमित्यादिप्रतिज्ञायामव्याप्तिः तादृशानुमितिवि-
षयातिरिक्ताप्रसिद्धेः । न च तादृशानुमित्यनतिरिक्तविषयकत्वं तादृ-
शानुमितिविषयिताव्यावृत्तवैलक्षण्याश्रयविषयितागृह्यत्वं वाच्यमिति
वाच्यम् । अनुमितिविषयिताव्यावृत्ततत्तद्व्यक्तित्वरूपवैलक्षण्यस्य शाब्द-
बोधविषयितायां सत्त्वात् इत्यतोलक्षणासम्भवात् लक्षणान्तरमाह,
'अनूनेति,^(१) अन्यनानतिरिक्तपदं अनुमित्यनूयानतिरिक्तविषयकपरं,

(१) लाघवादाह, 'अनूनेति अन्यनानतिरिक्तविषयकान्तभागं विहाय
इत्यर्थः, अनुमितिविषयकत्वस्य प्रायशः प्रतिज्ञायामसत्त्वात् अनुमितिस-
मानविषयकत्वस्य सतोऽपि व्यर्थत्वादिति ध्येयं । 'लङ्गाविषयकत्वमिति
लिङ्गं भावभिन्नत्वस्य यस्मिन्मभावत्वं तदविषयत्वमित्यर्थः, तेन ऋदोनिर्धूमो-

अन्यूनानतिरिक्तपदं विहाय लिङ्गाविषयकत्वं वा
ज्ञानविशेषणं तेनोदाहरणादिव्युदासः, निगमनञ्च

‘लिङ्गाविषयकत्वमिति लिङ्गपदं व्याप्यपरं, भावार्थश्च विवक्षितः,
व्याप्यत्वञ्च प्रकृतहेतुक-प्रकृतसाध्यकानुमितिगमकतौपयिकव्याप्यत्वं,
यथाश्रुते पृथिवीतरेभ्योभिद्यते पृथिवीत्वादित्यत्र प्रतिज्ञायामव्याप्तेः,
तथाच नञ्व्यत्यासेन प्रकृतहेतुक-प्रकृतसाध्यकानुमित्यौपयिकव्या-
प्यत्वविषयकशब्दबोधजनकाकाङ्क्षाशून्यत्वमित्यर्थः, उदाहरणादौनां

निर्वर्जित्वादित्यादौ यो यो धूमवान् स वज्रिमानित्यादित्यतिरेक्युदाह-
रणस्य निर्वर्जित्वादिरूपहेत्वविषयकत्वेऽपि नातिव्याप्तिः । न च घटाभावः
घटशून्योऽभावत्वादित्यादिस्थलीयप्रतिज्ञाया अभावत्वविषयकत्वनियमात्
तत्रातिव्याप्तिः प्रकृतपक्षधर्मिकप्रकृतसाध्यप्रकारितावहिर्भावेन यदभावत्व-
विषयकत्वं तच्छून्यत्वस्य विवक्षितत्वात् । न च प्रकृतपक्षधर्मिकप्रकृतसाध्य-
प्रकारितावहिर्भूतविषयिताशून्यत्वमात्रस्य सम्यक्त्वेऽभावत्वप्रवेशोऽप्यर्थ इति
वाच्यम् । अखण्डाभावघटकतया तस्यावर्धत्वादिति भावः । ननु तस्माद्वज्रि-
मान् इति निगमनस्याप्यभावत्वाविषयकत्वात्तत्रातिव्याप्तिरित्यत आह, ‘नि-
गमनञ्चेति, ‘न परामर्शहेतुः’ नाभावत्वाविषयकज्ञानहेतुः, ‘अबाधितत्वेति,
प्रतिज्ञातः पक्षस्य साध्यवत्त्वसिद्धेः पुनस्तदभिधानस्याबाधितत्वादिवोधकत्व-
स्यावश्यकत्वात् सिद्धे सत्यारम्भोनियमायेत्यादित्युत्पत्तेरिति भावः । वस्तुतो-
ऽबाधितत्वादेर्निगमनाप्रतिपाद्यत्वेऽपि ज्ञापकत्वरूपहेतुत्वस्याभावत्वगर्भज-
नकताघटितत्वेन हेतुतावाधिपक्षमीगर्भनिगमनस्याभावत्वाविषयकज्ञानज-
नकत्वमेव दुर्लभं, अत एव पर्वतो वज्रिमान् धमादित्यादौ हेत्ववयवेऽपि
नातिव्याप्तिः, तस्यापि पक्षमर्थहेतुताघटकतयैवाभावत्वविषयकज्ञानजनक-
त्वनियमादिति ध्येयं ।

न परामर्शहेतुः अबाधितासत्प्रतिपक्षितत्वज्ञानजन-
कत्वात् ।

हेत्वभिधानप्रयोजकजिज्ञासाजनकवाक्यत्वं वा ।

तादृशाकाङ्क्षासत्त्वान्नातिप्रसङ्गः, अत्राप्युदासीनवाक्येऽतिव्याप्तिवार-
णाय न्यायावयवत्वे सतीत्यनुसञ्जनीयं, अत्र च हेत्ववयवेऽतिव्याप्ति-
वारणाय हेत्वन्यत्वविशेषणं देयं, प्रकृतपदद्वयदानात् तेजोव्याप्यधूम-
वानयं वन्निमान् धूमादित्यादौ वन्निव्याप्यनीलवानयं वन्निमान्
धूमादित्यत्र नात्याप्तिः । न च प्रकृतहेतुनिष्ठप्रकृतसाध्यनिरूपितव्याप्य-
त्वाद्येव उच्यतामिति वाच्यम् । व्यतिरेकव्याप्तिज्ञानजनकोदाहरणा-
दावतिव्याप्तेः, अत्र चान्वयव्याप्तिविषयता-व्यतिरेकव्याप्तिविषयतोभ-
योः प्रत्येकरूपेणैवाभावौ निवेश्यौ व्याप्तिद्वयसाधारणानुगतरूपस्य
एकस्याभावेन एकरूपेण तदुभयाभावनिवेशासम्भवात् । अन्यूनपदस्य

‘हेत्विति, ‘हेतुः’ स्वार्थज्ञाप्यत्वविशिष्टसाध्यवत्तया पक्षबोधानुकूलपञ्च-
म्यन्तशब्दः, तस्य यदभिधानं तस्य प्रयोजिका तज्जन्यबोधनिवर्त्या पक्षः
कुतः साध्यवानित्याकारिका या जिज्ञासा तदनुकूलावयवत्वमित्यर्थः,
‘लिङ्गेति उपनयनादिवाच्यार्थमविषयकान्तं प्रकृतसाध्य-पक्षविषयतावहि-
र्भावेन प्रकृतलिङ्गाविषयकत्वार्थकं, नातः प्रागुक्तदोषः, ऋदोनिर्धूमोऋदा-
वृत्तिधर्मशून्यत्वादित्यादौ यो यो धूमवान् स ऋदावृत्तिधर्मवान् इत्या-
दिव्यतिरेक्युदाहरणस्य वारणाय ‘लिङ्गिविषयकेति लिङ्गं प्रकृतसाध्यव्याप्यं
तद्विषयकेत्यर्थः । न च साध्यवद्विशेष्यकत्वमेव सम्यक् व्याप्यपदं व्यर्थमिति
वाच्यम् । यथासन्निवेशे वैयर्थ्याभावात् इति जागदीशी व्याख्या ।

लिङ्गाविषयक-लिङ्गिविषयकज्ञानजनकन्यायावय-

व्यावृत्तिमाह, 'तेनेति अन्यूनपददानेनेत्यर्थः, 'उदाहरणादिपदं उदाहरणस्यादिरिति समासेन धूमाद्वज्रवयवसमवेतद्रव्यवान् पर्वतो वन्निमान् धूमादित्यादिस्थलीयहेत्ववयवपरं ।

केचित्तु लिङ्गाविषयकपदव्यावृत्तिपरोऽयं ग्रन्थ इत्यप्याहुः ।

अनतिरिक्तपदस्य क्लृप्तोव्यावृत्तिमाह, 'निगमनञ्चेति, अन्यूना-
नतिरिक्तविषयकशब्दज्ञानजनकं सदिति शेषः, 'न परामर्शहेतुः' न
न्यायावयव इत्यर्थः । ननु तस्य कुतो न तथाज्ञानजनकत्वं अत आह,
'अबाधितेति अबाधितत्वासत्प्रतिपक्षत्वज्ञानजनकत्वादित्यर्थः । ननु नि-
गमनं नाबाधितत्वादिज्ञानजनकं तस्यापदार्थत्वात् । न च लक्षण्या
तस्योपस्थितिरिति वाच्यम् । वादिवाक्ये खारसिकतया तस्या अभा-
वादिति चेत् । न । अबाधितत्वासत्प्रतिपक्षितत्वज्ञानजनकत्वादित्य-
स्य अबाधितत्वासत्प्रतिपक्षत्वादिमानसज्ञानप्रयोजकस्य साध्यव्याप्तिवि-
शिष्टपक्षधर्मताविशिष्टहेतुज्ञानज्ञाप्यत्वस्य ज्ञानजनकत्वादित्यर्थत्वात्,
तादृशहेतुज्ञानज्ञाप्यत्वज्ञानस्य अबाधितत्वादिज्ञानप्रयोजकत्वं तादृ-
शहेतुज्ञानज्ञाप्यत्वस्य अबाधितत्वादिव्याप्यतया ।

नव्यास्तु नास्ति बाधितत्वं पक्षनिष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वं
यस्मादिति विग्रहेणाबाधितत्वादिपदस्य व्याप्तिपक्षधर्मताविशिष्टोयो
हेतुस्तज्ज्ञानज्ञाप्यत्वमर्थः, 'असत्प्रतिपक्षितत्वं' असत्प्रतिपक्षवृत्ति-
धर्माव्याप्तिरूपः, तथाच तज्ज्ञानज्ञाप्यत्व-व्याप्युभयबोधजनकत्वादि-
त्यर्थ इत्याहुः ।

ववाक्यत्व वा इतरावयवानां लिङ्गविषयकज्ञानजन-
कत्वात् ।

केचित्तु 'लिङ्गाविषयकेति लिङ्गस्वरूपव्याप्ति-पञ्चधर्मताकाङ्क्षा-
त्रयनिवर्त्तकभिन्नत्वे सति अबाधितत्वादिशूण्यलिङ्गपरामर्शप्रयोजक-
न्यायावयवत्वमर्थः, सत्यन्तव्यावृत्तिमाह, 'तेनेति, 'उदाहरणादिव्यु-
दासः', हेत्ववयवस्य च लिङ्गस्वरूपाकाङ्क्षानिवर्त्तकत्वात्, उदाहरणस्य
व्याप्याकाङ्क्षानिवर्त्तकत्वात्, उपनयस्य पञ्चधर्मताकाङ्क्षानिवर्त्तकत्वात्,
प्रतिज्ञायाश्च तादृशाकाङ्क्षात्रयनिवर्त्तकभिन्नत्वादिति भावः । अबा-
धितत्वादिशूण्यलिङ्गपरामर्शप्रयोजकपदव्यावृत्तिमाह, 'निगमनञ्चेति,
'न परामर्शहेतुः' नाबाधितत्वादिशूण्यलिङ्गपरामर्शप्रयोजक इत्यर्थः,
उदासीनवाक्येऽतिव्याप्तिवारणाय विशेष्यदलमिति व्याचक्रुः ।

परे तु 'निगमनञ्चेति निगमनैकदेश इत्यर्थः, 'न परामर्शहेतुः'
न न्यायावयव इत्यर्थः, तथाच न्यायावयवार्थकसत्यन्तस्येयं व्यावृत्ति-
रित्याहुः । तदसत् । अवयवैकदेशवारणस्यापि सत्यन्तदलसाध्यतया
निगमनैकदेशमात्रानुसरणविरोधात् ।

'हेत्वभिधानेति हेत्वभिधानस्य प्रयोजिका या जिज्ञासा तच्चनक-
वाक्यार्थज्ञानजनकत्वे सति न्यायावयवत्वमित्यर्थः । भवति हि पर्वतो
वह्निमानित्यादिवाक्यजन्यज्ञानानन्तरं कुतोऽस्य वह्निमत्त्वमिति
जिज्ञासा, हेत्वादावतिव्याप्तिवारणाय सत्यन्तं, उदासीनवाक्येऽतिव्या-
प्तिवारणाय विशेष्यदलं । न च तस्य हेत्वभिधानप्रयोजकजिज्ञासा-
जनकत्वमेव नास्तीति कथं तर्हि अतिव्याप्तिरिति वाच्यम् । यत्र

प्रतिज्ञात्वं जातिः अनुगतानतिप्रसक्ततान्त्रिक-
व्यवहारादिति केचित्, तन्न, देवदत्तप्रभवत्वादिना

समाक्षोभादिना जिज्ञासादिकमेव न जातं तत्राव्याप्तिवारणाय तादृ-
शजिज्ञासाजनकवाक्यार्थज्ञानजनकतावच्छेदकानुपूर्वीमत्वस्य सत्य-
न्तार्थतात्पर्यात् ।

‘लिङ्गाविषयकेति, ‘लिङ्गी’ पक्षः, तज्ज्ञानं तन्मुख्यविशेष्यकज्ञानं,
तथाच लिङ्गाविषयक-पक्षमुख्यविशेष्यकज्ञानजनकन्यायावयवत्वमि-
त्यर्थः, हेत्वादावतिव्याप्तिवारणाय ‘लिङ्गाविषयकेति । न च धूमादा-
लोकवान् पर्वतो वज्रिमान् धूमादित्यादिस्थलीयप्रतिज्ञायामव्याप्तिः
अस्या लिङ्गाविषयकज्ञानजनकत्वादिति वाच्यम् । पक्षतावच्छेदका-
वच्छिन्नपक्षविषयतानिरूपिता या साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नसाध्य-
विषयता तदनिरूपिता या लिङ्गाविषयता तच्छून्यत्वस्य तदर्थत्वात् ।
हृदोनिर्धूमत्ववान् निर्व्वज्रिलादित्यादिस्थलीययोयोधूमवान् स
वज्रिमान् इति व्यतिरेक्युदाहरणेऽतिव्याप्तिवारणाय पक्षमुख्यविशेष्य-
केति, पक्षविशेष्यकेत्येतावन्मात्रे कृते हृदोनिर्धूमत्ववान् हृदावृत्तिध-
र्मशून्यत्वादित्यादिस्थलीययोयोधूमवान् स हृदावृत्तिधर्मवान् इत्यु-
दाहरणेऽतिव्याप्तेः, तथाच तज्जन्यज्ञाने हृदस्य विशेष्यत्वेऽपि मुख्यवि-
शेष्यत्वाभावाच्चातिव्याप्तिः, क्लृप्तोलिङ्गाविषयकेत्यस्य व्यावृत्तिमाह,
‘इतरेति व्यतिरेक्युदाहरणभिन्नप्रतिज्ञेतरावयवानामित्यर्थः, ‘लिङ्गा-
विषयकज्ञानजनकत्वात्’ लिङ्गाविषयकज्ञानस्यैव जनकत्वात् उक्त-
लिङ्गाविषयताशून्यज्ञानजनकत्वादिति यावत्, ।

जातिसङ्करप्रसङ्गात्, प्रतिज्ञाजन्यं विजातीयं ज्ञानं
व्यवहारादिति तज्जनकं वाक्यं प्रतिज्ञेत्यपि न, तज्जन-
कत्वं जनकत्वज्ञानं वा नानुगतरूपमन्तरेण सम्भ-

‘प्रतिज्ञात्वमिति,^(१) अत्र च प्रतिज्ञापदप्रवृत्तिनिमित्तत्वेन पक्षत्वं,
प्रतिज्ञापदप्रवृत्तिनिमित्तत्वञ्च उभयवासिद्धिमेव, तत्र जातिरूपा-
धिर्वा इत्यत्र विवादात् अतो नाश्रयासिद्धिः, ‘अनुगतेति प्रतिज्ञे-
त्याकारकहेत्वादिव्यावृत्ततान्त्रिकानुगतबुद्धिजनकत्वादित्यर्थः, अत्र
चानुगतबुद्धिजनकत्वमेव हेतुः, ‘अनतिप्रसङ्गाद्यभिधानञ्च आश्रया-
सिद्धिग्रङ्गानिरासकतर्कप्रदर्शनपरमेवेति ध्येयं । ‘देवदत्तप्रभवत्वादि-
नेति पुरुषविशेषजन्यतावच्छेदकजात्यादिनेत्यर्थः, ‘आदिपदात्कत्वा-

(१) ‘प्रतिज्ञात्वमिति, न च जातेर्यासज्यवृत्तित्वविरहात् एकैकपदेऽपि
प्रतिज्ञात्वजातेर्यद्वापत्तिरिति वाच्यम् । प्रतिज्ञापदकतत्तदानुपूर्वव्यङ्ग-
त्वस्य तादृशजातावङ्गीकारादिति भावः । ‘प्रभवत्वादीत्यादिना कत्व-
खत्वपरिग्रहः, ‘उक्तस्य’ न्यायावयवक्षणात्कदोषस्य उद्देश्यानुमित्याद्यक्त-
लक्षणस्येति वार्थः । ‘एतेन’ प्रतिज्ञाजन्यज्ञानमात्रवृत्तिवैजात्यविरहेण,
‘निरस्तमित्यग्रेऽन्वयः । उदाहरणादिप्रयोज्यजातेर्वारणाय ‘वृत्त्यन्तं शब्दो-
ऽनित्य इत्याकारकं यल्लिङ्गिणीपरमवयवात्मकं वाक्यं तज्जन्यज्ञानवृत्तीत्यर्थः,
न्यायाप्रयोज्यचैत्रादिशरीरविशेषस्य प्रयोज्यायाः शब्दोऽनित्य इत्युदासीन-
वाक्यधीनिष्ठायाः शब्दत्वावान्तरजातेः प्राचीनसम्मतत्वेन तद्वारणार्थमव-
यवेति, सत्ता-गुणत्वादेरवयवसामान्यप्रयोज्यजातेर्वारणार्थं ‘सतकत्वादि-
त्याद्यवृत्त्यन्तं, ‘जातियोगीति जातिसमवायीत्यर्थः, इति जागदीशी व्याख्या ।

वतीत्युक्तस्यानुसरणीयत्वात् । एतेन शब्दोऽनित्य इति
 लिङ्गिधौपरवाक्यजन्यज्ञानवृत्तिकृतकत्वादित्यादिवाक्य-
 जन्यज्ञानावृत्तिजातियोगिज्ञानजनकवाक्यं प्रतिज्ञेति
 निरस्तम् ।

दिपरिग्रहः, इदमुपलक्षणं तस्य प्रत्येकपरिसमाप्तौ एकदेशे तादृश-
 बुद्ध्यापत्तेः, समुदितपर्याप्तत्वे व्यामज्यवृत्तित्वेन जातित्वासम्भवादे-
 त्यपि बोध्यं । 'अनुगतरूपमन्तरेणेति, 'सम्भवतीति, अस्यार्थस्तु प्रागेव
 व्याख्यातः, 'उक्तस्येति असदुक्तलक्षणस्यैवेत्यर्थः । 'एतेनति अनुगतज-
 नकतावच्छेदकरूपं विना तज्जनकत्व-तद्ग्रहयोरसम्भवेनेत्यर्थः, 'शब्दो-
 ऽनित्य इति, अत्र 'लिङ्गिधौपरेति स्वरूपकथनं, काक्यत्वं न्यायान्त-
 र्गतत्वं, 'कृतकत्वादित्यादीति, आदिपदात् योयः कृतकइत्युदाहरणादेः
 परिग्रहः, तथाच शब्दोऽनित्य एतादृशवाक्यजन्यज्ञानवृत्तिः सती कृत-
 कत्वादित्यादिवाक्यजन्यज्ञानावृत्तिर्या जातिस्तदाश्रयज्ञानजनकन्या-
 यान्तर्गतत्वमित्यर्थः । यत्र स्थलविशेषे कण्ठकोद्धारसहित एव न्यायप्र-
 योगः कृतस्तत्र कण्ठकोद्धारवाक्ये कृतकत्वादित्यादिवाक्यजन्यज्ञाना-
 वृत्तिजातिविशेषशालिज्ञानजनकेऽतिव्याप्तिवारणाय 'वृत्त्यन्तं, शब्दो-
 ऽनित्यइतिवाक्यधीजन्यज्ञानवृत्तिसत्तावज्ज्ञानजनकवाक्ये चातिव्या-
 प्तिवारणाय 'अवृत्त्यन्तं, समवायेन तदाश्रयतालाभाय जातिपदं,
 कालोपाधिव्यावृत्तजनकतालाभाय ज्ञानपदं, उदासीनवाक्येऽतिव्या-
 प्तिवारणाय विशेष्यदत्तं, ।

ननु प्रतिज्ञा न साधनाङ्गं विप्रतिपत्तेः पक्षपरिग्रहे
तत्र प्रमाणाकाङ्क्षायां हेत्वभिधानस्य प्राथम्यादिति

‘प्रतिज्ञा न साधनाङ्गमिति^(१) प्रतिज्ञा न परार्थानुमाने प्रयोजक-
ज्ञानजनकमित्यर्थः, तथाच न्यायप्रयोगे प्रतिज्ञाकरणं व्यर्थमिति
भावः । ‘पक्षपरिग्रहे’ शब्दानित्यत्वादिकोटिपरिग्रहे सतीत्यर्थः,

(१) ‘साधनाङ्गमिति साधनस्य न्यायस्याङ्गं घटकमित्यर्थः, साधनस्य
परार्थानुमानस्याङ्गमुपयुक्तमिति वा । ननु पक्षस्य साध्यवत्त्वाग्रहे तत्र
हेत्वाकाङ्क्षाविरहात् तदभिधानेऽर्थान्तरं स्यादित्यवश्यं प्रतिज्ञा कर्तव्येत्यत-
व्याह, ‘विप्रतिपत्तेरिति विप्रतिपत्तिवाक्यादेव, ‘पक्षपरिग्रहे’ साध्यवत्तया
पक्षग्रह इत्यर्थः, ‘तत्र’ पक्षस्य साध्यवत्तायां ।

केचित्तु ‘प्रतिज्ञा न साधनाङ्गं’ साधनं हेतुवाक्यं तेन सहैव वाक्यत्वापन्ना
प्रतिज्ञा नेत्यर्थः, पर्वतो वल्लिमानिति प्रतिज्ञा ततः कुत इत्याकाङ्क्षायां
धूमादिति प्रयोगः, प्रतिज्ञा-हेतुभ्यां विशिष्टार्थबोधोपन्यत इति नेति
पर्यवसितं, तथाच प्रतिज्ञा-हेत्वोरेकवाक्यताविरहेण प्रतिज्ञादिपक्ष इत्या-
दिन्याये यदुक्तं तस्यासम्भवेन न्यायनक्षणासम्भव इति भावः । अत्र प्रति-
ज्ञादिप्रयोगे प्रमाणाभावेन नैकवाक्यता इति अभिसन्धिः, अभिसन्धिं
प्रकाशयति, ‘विप्रतिपत्तेरिति, पक्षम्याः प्रयोज्यत्वमर्थः, स च परिग्रहे-
ऽन्वेति, विप्रतिपत्तिः शब्दोऽनित्यो न वेत्याकारिका, ‘पक्षपरिग्रहः’
मया शब्दानित्यत्वं साधनीयमित्यादिवाक्यरूपः, ‘तत्र’ शब्दानित्यत्वे, ‘प्रमा-
णाकाङ्क्षायां’ शब्दविशेष्यकानित्यत्वप्रकारकप्रमाकरणं वद इत्याकाङ्क्षाया-
मिति यावत्, तादृशाकाङ्क्षानिरासकप्रश्ने कृते ‘हेत्वभिधानस्य’ कृतकत्वा-
दिप्रयोगस्य, ‘प्राथम्यात्’ प्रथमोपन्यासार्हत्वात् इति साम्प्रदायमतानु-
सारेण व्याचक्रुः इति आगदीशी व्याख्या ।

चेत्, न, विप्रतिपत्त्यग्रे हि समयबन्धानन्तरं शब्दानित्यत्वं साधयेति मध्यस्थस्य वादिनेवाकाङ्क्षायां शब्दा-

‘तत्र’ शब्दानित्यत्वे, ‘प्रमाणाकाङ्क्षायां’ कुत इति प्रयोगे, ‘प्रायस्यादिति प्रथममेव वक्तुमुचितत्वादित्यर्थः, ‘समयबन्धेति कण्टकोद्धारसहित एव न्यायप्रयोगः कार्यः उदाहरणे समयबन्धः कर्तव्यः तथा न कार्यं वा इत्यादिरूपेत्यर्थः, ‘साध्यनिर्द्देशं विनेति पदजन्यसाध्योपस्थितिं विनेत्यर्थः, ‘हेतुवाक्यमिति साध्यान्वितपञ्चमर्थान्वयबोधजनकमिति शेषः, ‘निष्प्रतियोगिकमिति पञ्चमर्थज्ञानज्ञाप्यत्वांगे निर्धर्मितावच्छेदकबोधजननसमर्थं भवतीत्यर्थः। ननु हेतुवाक्येन साध्यानन्वितकृतकत्वविषयकज्ञानजन्यज्ञानविषयत्वमित्याकारकशब्दबोधजनने न किमपि बाधकमिति कथं तत्रासामर्थ्यमिति चेत्। न। साध्यानन्विततादृशान्वयबोधजनने कुतोऽस्यानित्यत्वमित्याकाङ्क्षायाः अनिवृत्तेः। ननु पदानुपस्थितमपि शाब्दबोधविषयो भविष्यतीत्यत आह, ‘न चेति, ‘वादिवाक्ये’ वादिवाक्यजन्यशाब्दबोधे, ‘अनुपस्थितमपि’ पदानुपस्थितमपीत्यर्थः, साध्यमिति शेषः, ‘योग्यतया’ अबाधिततया, ‘अन्वेति’ शाब्दबोधविषयो भवति, ‘अतिप्रसङ्गात्’ साध्यभिन्नाबाधितान्तरस्यापि शाब्दबोधविषयत्वप्रसङ्गात्, ‘तस्याः’ साध्योपस्थितेः, ‘प्रतिवादिविप्रतिपत्त्या’ प्रतिवादिविप्रतिपत्तिजन्योपस्थित्या, ‘प्रामाणादिव्यवस्थेति समयबन्धजन्यज्ञानेनेत्यर्थः, ‘अन्तरितत्वात्’ नष्टत्वात्। ननु परविप्रतिपत्त्यादिरेव तत्र नास्ति मानाभावादित्यत आह, ‘परेति, ‘विप्रतिपत्तिवाक्यस्येति निराकाङ्क्ष-

नित्यत्वं साध्यं, न च साध्यनिर्देशं विना हेतुवाक्यं
निष्प्रतियोगिकमन्वयं बोधयितुमीष्टे । न च वादि-

त्वादित्यनेनान्वयः, अत्र हेतुमाह, 'पक्षपरिग्रहेति शब्दानित्यत्वादि-
शाब्दबोधरूपतात्यर्थ्यविषयीभूतान्वयबुद्ध्युपधायकतयेत्यर्थः, 'निरा-
काङ्क्षत्वादिति तत्पदविषयकतज्ज्ञानजन्यशाब्दबोधं प्रति तत्पद-
विषयकतज्ज्ञानजन्यतात्यर्थ्यविषयीभूतशाब्दबोधाभावरूपाकाङ्क्षाविर-
हादित्यर्थः, ननु विप्रतिपत्तिवाक्यस्थशब्दोऽनित्य इति भागस्यावृत्त्या
अन्वयबोध इति नोक्तदोषइत्यत आह, 'आवृत्ताविति तत्पदस्य
पुनरनुसन्धान इत्यर्थः, 'सैवेति तादृशानुसन्धानविषय एवेत्यर्थः ।
ननु मा भूदनुपस्थितस्य शाब्दबोधविषयता अस्य तु उदाहरणा-
देवोपस्थितिरस्ति, अथ वा अनुमानतएव उपस्थितिर्भविव्यति,
तथाहि अयमवयवः साध्यान्वितस्वार्थबोधकावयवजन्यजिज्ञासाप्रयोज्यः
व्याप्तिबोधकावयवत्वादित्यादीत्याशङ्कते, 'न चेति, 'अवयवान्तरात्'
प्रतिज्ञेतरात्,^(१) 'हेत्वन्वययोग्येति हेत्वर्थान्वयबोधजनिकेत्यर्थः, 'अवय-

(१) 'विप्रतिपत्त्यग्रे' मध्यस्थोक्तविप्रतिपत्तेः पश्चात्, 'समयेति मया न्याय-
मतेनैव अन्ययिहेतुना स्वसाध्यं साधनीयमित्यादिको वादिनोर्निर्घमाभिन्नापः
समयवद्भक्तदुत्तरमित्यर्थः, मध्यस्थस्यासार्वत्रिकत्वात् तस्यैव वादिनोऽप्युक्ता-
काङ्क्षायां क्षत्यभावाच्चाह, 'वादिनोवेति "साध्यं" साधनीयं, 'न चेति, बोध-
यितुमीष्ट इत्यग्रेतनेनान्वयः, 'साध्यनिर्देशं विनेति साध्यस्य प्रतिक्षां विने-
त्यर्थः, 'निष्प्रतियोगिकं' निर्विशेष्यकं, 'अन्वयं' स्वार्थवत्त्वान्वयं । अथा-
वयवानुपस्थितमपि प्रकृतसाध्यं योग्यज्ञाबलादेव हेत्वर्थस्य धूमन्नाज्ञाप्य-

त्वादेर्विशेष्यतयाऽन्वयि भविष्यति इत्याह, 'स चेति, 'अतिप्रसङ्गादिनि
 पदानुगस्याप्यस्यान्वयबोधविशेष्यत्वे अतिप्रसङ्गादित्यर्थः । शङ्कते, 'न चेति,
 निरस्यति, 'प्रतीति उक्तविप्रतिपत्तेर्भावकोटावभावकोटावैव वा प्रमाणं
 नास्तीत्येवं प्रतिवादिनो विरुद्धविप्रतिपत्तिजनकोत्तयेत्यर्थः, निरुक्तविरुद्धोक्ते-
 रनावश्यकत्वेऽप्याह, 'प्रमाणादित्यवस्थया चेति प्रागुक्तसमयान्धेन चेत्यर्थः,
 अन्तरितत्वादित्यत्र विप्रतिपत्तेरित्यनुषज्यते, 'स्थापना' प्रायश्चित्तन्याय-
 प्रयोगः । ननु प्रतिवादिनोविरुद्धोक्तेः समयबन्धस्य च स्थापनायामुपयोगित्वं
 निष्प्रमाणकमत आह, 'विप्रतिपत्तिवाक्यस्येति, पक्षस्य यः परिस्रष्टः
 साध्यवत्तया बोधनं, तेनैव 'पर्यवसितत्वेन' जनितान्वयबोधत्वेनेत्यर्थः, प्रत्य-
 क्षस्येव शाब्दबोधस्यापि संशयत्वमभ्युपेत्येदं । ननु पक्षः साध्यवान्नवेत्यादि-
 विप्रतिपत्त्येकदेशस्य पक्षः साध्यवानिति भागस्यैव पुनरावर्तनं कार्य-
 मिति तदर्थं एव हेत्वर्थस्यान्वयो भवितेति विफलाः प्रतिज्ञोपगमइत्यत-
 आह, 'आवृत्ताविति विप्रतिपत्त्येकदेशस्य पुनरावर्तने त्वित्यर्थः, 'सैव'
 आवृत्तिरेव । यत्तु जनितान्वयबोधस्यापि पक्षः साध्यवानित्येवं विप्रति-
 पत्त्येकदेशस्य पुनः प्रतिसन्धानरूपायामावृत्तौ सत्यां हेत्वर्थस्यान्वयो भविता
 इत्याशङ्कयामाह, 'आवृत्ताविति, 'सैवेति तादृशावृत्तिविषयीभूतपक्षः
 साध्यवानिति वाक्यमेव प्रतिज्ञापदेनोच्यते इत्यर्थः, तदयुक्तं, पक्षः साध्य-
 वानित्येवंभागस्य प्रतिसन्धानेऽपि हेत्ववयवस्य तदानन्तर्यविरहेण तमन्त-
 र्भाव्य प्रतिज्ञादिपक्षकस्य क्रमिकोचितानुपूर्वीकत्वाभावेन तस्य प्रतिज्ञा-
 त्वासम्भवात् । वस्तुतो हेत्ववयवस्य प्रतिज्ञानन्तर्यं न प्रतिज्ञोत्तरोच्चरित-
 त्वगर्भं किन्तु प्रतिज्ञोत्तरज्ञातत्वगर्भं अतः प्रतिसन्धानरूपायामेवावृत्तौ न
 चतिरिति ध्येयं ।

शङ्कते, 'न चेति, 'अवयवान्तरात्' उदाहरणात् । ननु यो यो धूमनान्
 स वह्निमानित्येवंक्रमेण हेत्वन्वययोग्यस्य वह्निादिसाध्यस्योदाहरणादुप-
 स्थितावपि पक्षः कुतः साध्यवानित्याकाङ्क्षायान्नथाविधहेत्वन्वयान्न निवृ-

वाक्येऽनुपस्थितमपि योग्यतया अन्वेति, अतिप्रसङ्गात् ।
न च विप्रतिपत्तितः साध्योपस्थितिः, तस्याः प्रतिवादि-

वान्तारणेति व्याप्तिबोधकावयवत्वादिज्ञानेनेत्यर्थः, तृतीयार्थोजन्यत्वं
आक्षेपान्वितं, 'आक्षेपादिति, 'आक्षेपः' अनुमितिः, पञ्चम्यर्थोऽभेदः
अस्य च प्रागुक्तसाध्योपस्थितिरित्यनेनान्वयः, तथाच व्याप्तिबोधका-
वयवत्वादिज्ञानजन्यानुमित्यभिन्ना साध्योपस्थितिरित्यन्वयबोधः,

तिरपपद्यते वस्तुतोऽप्रसिद्धसाध्यव्यतिरेक्युदाहरणस्य साध्याबोधकतया
उदाहरणोपस्थाप्यसाध्ये हेत्वन्वयः सर्वत्र न सम्भवतीति अतः प्रकारा-
न्तरमाह, 'नापीति, 'अवयवान्तरेण' उपनयेन, स्वार्थान्वयानुपपत्त्या
साध्यवत्तया पक्षस्य 'आक्षेपात्' अनुमानात्, हेत्वन्वययोग्यसाध्योपस्थिति-
रिति पूर्वणान्वयः, प्रथमे दूषणमाह, 'साध्यान्वय इति हेतोः साध्ये
अन्वये सति कथमस्य गमकत्वमित्याकाङ्क्षायां उदाहरणस्याभिधानं तद-
भिधाने च हेत्वन्वययोग्यसाध्योपस्थितिरित्यन्योन्याश्रयादित्यर्थः, द्वितीये
दोषमाह, 'तस्मादिति, तस्मादुपनयात्मकावयवान्तरात् पक्षस्य साध्य-
व्याप्यवत्त्वप्रतीतिः, यच्च साध्यव्याप्यवत्त्वं प्रतीतं तदन्यथानुपपत्त्या पक्षस्य
साध्यवत्त्वाक्षेपः, 'इह' हेतुप्रयोगप्राक्काले नास्त्येवेत्यर्थः, पक्षस्य साध्यवत्त्वं
विनापि तद्व्याप्यवत्त्वप्रतीतेः सम्भवात् तदन्यथानुपपत्त्या पक्षस्य साध्य-
वत्त्वाक्षेपः सम्भवदुक्तिक एव नेत्यतः प्रतीतस्य साध्यव्याप्यवत्त्वस्यानुसरणं ।
वस्तुतः पक्षे साध्यवत्त्वाक्षेपसम्भवेऽपि न तत्र हेत्वर्थान्वयः सम्भवत्यप-
दार्थत्वादिति ध्येयं ।

अप्रसिद्धसाध्यव्यतिरेक्युदाहरणादेः साध्याबोधकतया उदाहरणोप-
स्थाप्यसाध्ये हेत्वन्वयः सर्वत्र न सम्भवतीत्यतोऽपि प्रतिज्ञा साधनाङ्गमिति
कश्चित् । इति जागदीश्वरी व्याख्या ।

विप्रतिपत्त्या प्रमाणादिव्यवस्थया चान्तरितत्वात् पर-
विप्रतिपत्तिं समयबन्धश्च विना स्थापनाया अभावात्
विप्रतिपत्तिवाक्यस्य पक्षपरिग्रहेण पर्यवसितत्वेन नि-
राकाङ्क्षत्वाच्च, आदृतौ तु सैव प्रतिज्ञा । न चावयवान्त-
राद्वैतन्वययोग्या साध्योपस्थितिः, नाप्यवयवान्तरेणा-

इदन्तु नैयायिकमते, मीमांसकमते तु आक्षेपोऽर्थापत्तिः, 'अवय-
वान्तरेणेत्यस्य च साध्यन्वितस्वार्थबोधकावयवजन्यजिज्ञासां विना
अयमनुपपन्न इत्यनुपपत्तिज्ञानेनेत्यर्थः, एवञ्चावतारणिकापि तथैव
करणीया इत्यपि बोध्यं, आशङ्कां खण्डयति, 'साध्यान्वय इति
उदाहरणादितः साध्योपस्थितावित्यर्थः, 'तदभिधानमिति हेतुवा-
क्यात् अन्वयबोधानन्तरं तदाकाङ्क्षायामित्यादिः, 'तदभिधानं'
उदाहरणाभिधानं, 'तदभिधाने चेति उदाहरणाभिधाने चेत्यर्थः,
द्वितीयशङ्कामुपसंहारव्याजेन खण्डयति, 'तस्मादिति, 'प्रतीत्यनुप-
पत्त्येति, इदन्तु मीमांसकमते, 'प्रतीतानुपपत्त्येति इदन्तु नैयायि-
कमते, मीमांसकमते हि स्वर्गकामो यजेत इत्यादौ यागे स्वर्ग-
कामकृतिसाध्यतान्वयबोधो हि इष्टसाधनत्वरूपयोग्यताज्ञानादेव
भवति, तच्चाशुविनाशिनि यागे व्यापारं विना न सम्भवतीति
स्वर्गकामकृतिसाध्यतान्वयानुपपत्त्या अपूर्वं आक्षिप्यते, नैयायिकमते तु
वेदात् प्रतीते इष्टसाधनत्वान्वयानुपपत्त्या अपूर्वं आक्षिप्यते, अत्र
चानुपपत्तिद्वयमेव नास्ति साध्यान्वितस्वार्थबोधकहेतुजन्यजिज्ञासां
विना उदाहरणाद्युपन्याससम्भवात् इत्याखण्डनार्थः ।

क्षेपात्, साध्यान्वये तदभिधानं तदभिधाने च साध्या-
न्वय इत्यन्योन्याश्रयात् । तस्मात् प्रतीत्यनुपपत्त्या प्रती-
तानुपपत्त्या वा नेहाक्षेपः ।

अन्ये तु^(१) शब्दानित्यत्वे प्रमाणं वदेति यदि मध्य-
स्थस्यानुयोगः तथापि प्रमाणमात्रे नाकाङ्क्षा किन्तु
विशिष्टे, विशिष्टन्तु विशेषणं साध्यमनभिधाय न
शक्याभिधानं । न च वस्तुतोयत्साध्यं तच्च प्रमाणं वदेति
मध्यस्थनियोगः, वादिद्वयमध्ये तदसम्भवात् तस्मात्सा-

न च शब्दानित्यत्वे प्रमाणं वदेति प्रश्नवाक्यादेव साध्योपस्थिति-
र्भविष्यतीति वाच्यम् । तदा धूमादिति पञ्चमी न स्यात् किन्तु धूम-
इत्येव स्यादिति, 'किन्तु विशिष्ट इति शब्दानित्यत्वप्रमाणे इत्यर्थः,
'तदसम्भवात्' वस्तुगतित्वासम्भवात्, द्वयोरेकस्यावश्यं बाधितत्वादिति
भावः । 'अन्ये' इत्यस्वरसोद्भावनं, तद्वोजन्तु वस्तुतो यत्सिषाधयिषितं
साध्यं तच्च प्रमाणं वदेति प्रश्ने नोक्तदोष इति ध्येयं । उपसंहरति,
'तस्मादिति, 'न वान्वयबोधकत्वमिति हेतुवाक्यस्येति शेषः, तथाच न
वा तादृशाकाङ्क्षानिवर्त्तकान्वयबोधजनकत्वं हेतुवाक्यस्येत्यर्थः, तथाच
एतदुभयानुकूलसाध्योपस्थित्यर्थं साध्यनिर्द्देश इति भावः^(२) ।

(१) प्रतिज्ञायाः साधनाङ्गत्वे निबन्धस्तद्व्युक्तिमुपन्यस्यति, 'अन्ये त्विति,
मध्यस्थस्येत्युपलक्षणं वादिनोवेत्यपि द्रष्टव्यं, 'अनुयोगः' प्रश्नः, शब्दानित्यत्वं
साधयेत्येवं मध्यस्थस्य नियोगः साम्प्रदायिक इत्यतो यदीत्युक्तं, 'विशिष्ट-
इति शब्दानित्यत्वसाधकत्वविशिष्ट इत्यर्थः, 'यत्साध्यं' पक्ष इति शेषः,
'तदभावात्' वास्तविकत्वाभावात् । इति जागदीशी व्याख्या ।

(२) ननु प्रतिज्ञोत्तरं हेतुरेवोद्भाव्यते न उदाहरणादिकमित्यत्र किं निया-

मकमित्यत आह, 'साध्यनिर्देशेति, 'साधनताभिव्यञ्जकेति ज्ञापकतायोध-
 केत्यर्थः, 'लिङ्गं' नाम, 'अन्यथा' साध्यनिर्देशोत्तरमुदाहरणाद्यभिलाषे ।
 ननु साध्यस्य प्रतिज्ञोत्तरं उदाहरणादेरिव हेतोरपि अनाकाङ्क्षितत्वमवि-
 शिष्टमत आह, 'लोक इति, 'तथैव' साधनताभिव्यञ्जकविभक्तिमत्तिङ्गवच-
 नेनैव, कुत इत्याकाङ्क्षानिवृत्तिरेवं व्युत्पत्तिकल्पनादित्यर्थः । 'अनुमितीत्यादि
 हेतुसमानानुपूर्वीकोदासीनकाव्यस्य प्रतिज्ञाद्येकदेशस्य च वारणाय जन-
 कान्तं, यादृश-यादृशानुपूर्व्यवच्छिन्ने प्रकृतं न्यायत्वं तादृश-तादृशानुपूर्व्यव-
 च्छिन्नाभावकूटसाध्यकानुमितिकारणीभूतलिङ्गपरामर्शस्य यत्प्रयोजकं प्र-
 कारतया जनकतावच्छेदकानुपूर्वीघटकं अथ च प्रामाणिकस्य यादृश-
 यादृशशब्दे न्यायावयवव्यवहारस्तादृश-तादृशशब्दकूटाभावस्य धियोजनकं
 प्रतियोगितासम्बन्धावच्छिन्नजनकतावच्छेदकमिति तदर्थः । निगमनस्य वार-
 णाय साध्याविषयकेत्यादि, हेतुताधर्मिकप्रकृतहेतुप्रकारतावहिर्भावेन सा-
 ध्यविषयताशून्यधीजनकेतितदर्थः । तेन पर्वतो वज्रिमान् वज्रिसामग्रीमत्त्वा-
 दित्यादिहेतौ नाव्याप्तिः अयं धूमादालोकाभाववान् ऋदत्वादित्यादौ यो यो
 धूमादालोकवान् स ऋदत्वाभाववान् इत्यादिव्यतिरेक्युदाहरणेऽतिव्याप्ति-
 वारणाय हेतुविभक्तिमदिति प्रकृतसाध्यधर्मिकस्वार्थान्वयबोधजनकपञ्चमी-
 विभक्तिमदिति तदर्थः । अतएव गोत्वाभावो गोत्वशून्यः सास्त्रावत्त्वा-
 भावात् यो यो गोत्ववान् स सास्त्रावान् गोत्वव्यापकसास्त्राभावदांश्चायं
 तस्माद्गोत्वशून्यइत्यादौ व्यतिरेक्युपनयस्य गोत्वाभावरूपसाध्यधर्मिक-
 स्वार्थैकत्वान्वयबोधकप्रथमाविभक्तिमत्त्वेऽपि न तत्रातिप्रसङ्गः । न चैवं
 रमाधवः पूज्यो माधवत्वादित्यादौ हेत्वेकदेशे माधवत्वादित्यत्रातिप्रसङ्गः
 तस्यापि प्रकृतन्यायान्तर्गतत्वे सति प्रकृतावयवसमानार्थकानुपूर्वीकत्वा-
 दिति वाच्यम् । स्वघटिताप्रतिपाद्यस्वार्थकत्वरूपमहावाक्यत्वपरेण चरम-
 शब्दपदेनैव तद्वारणादिति भावः । इति जागदोशी व्याख्या ।

ध्याभिधानं विना न हेतोराकाङ्क्षा, न वान्वयबोधक-
त्वमिति प्रतिज्ञा साधनाङ्गमिति ।

लक्ष्यतावच्छेदकाक्रान्तधूमोऽयं इत्यादिवाक्ये वक्ष्यमाणहेतुलक्ष-
णाव्याप्याशङ्कायां तस्यालक्ष्यत्वेन परिहर्तुं हलतोलक्ष्यतावच्छेदकं
दर्शयति, 'साध्येत्यादिना 'साध्यनिर्द्देशानन्तरं' प्रतिज्ञावाक्यात्पक्ष-
तावच्छेदकविशिष्टे साध्यान्वयबोधानन्तरं, 'कुत इत्याकाङ्क्षायां'
हेत्वाकाङ्क्षया प्रयुक्ते कुतः प्रश्ने सतीत्यर्थः, 'साधनताव्यञ्जकेति सा-
धनताव्यञ्जकपञ्चमीविभक्तिमसिद्धप्रतिपादकवाक्यमित्यर्थः, तेन धूमे-
नेति प्रयोगनिरासः, आकाङ्क्षाया आवश्यकत्वे युक्तिमाह, 'अन्यथेति
अस्यैवार्थविवरणं 'अनाकाङ्क्षिताभिधान इति, साधनताव्यञ्जक-
विभक्तिप्रयोगे युक्तिमाह, 'लोक इति, 'तथैवेति इच्छाविषय-
तावच्छेदकप्रकारेण सिद्धिरित्यर्थः, 'इति व्युत्पत्तेरिति इत्यस्यानु-
भवसिद्धत्वादित्यर्थः, तथाच तादृशाकाङ्क्षानिवर्तकपञ्चमीविभक्तिम-
त्र्यायावयवत्वमेव लक्ष्यतावच्छेदकमिति नोक्तस्य लक्ष्यतावच्छेदका-
क्रान्तत्वमिति नाव्याप्तिरिति । हेत्ववयवनिरूपणभूमिकामाह, 'अनु-
मितीति कारणीभूतोयोलिङ्गपरामर्शस्तत्रयोजकशाब्दज्ञानजनकत्वे
सति साध्याविषयकशाब्दज्ञानकारणं यो हेतुविभक्तिमान्शब्दस्तत्त्व-
मित्यर्थः, धूमादित्युदासीनवाक्येऽतिव्याप्तिवारणाय सत्यन्तं न्याया-
वयवार्थकं, निगमनैकदेशे तस्मादितिभागेऽतिव्याप्तिवारणाय न्या-
यान्तर्गतत्वं विहाय न्यायावयवत्वपर्यन्तमुक्तं, निगमनेऽतिव्याप्तिवार-

साध्यनिर्देशानन्तरं कुत इत्याकाङ्क्षायां साधनता-
व्यञ्जकविभक्तिमस्त्रिङ्गवचनमेवोचितं अन्यथानाका-

णाय 'साध्याविषयकेति विषयितासम्बन्धेन साध्यवद्भिन्नेत्यर्थः, तथाच निगमनजन्यबोधस्य विषयितासम्बन्धेन साध्यवत्त्वान्नातिव्याप्तिरिति भावः । न च वक्लिमान् वक्लिमामग्रीमत्त्वादित्यादौ हेत्ववयवेऽव्याप्तिः तज्जन्यबोधस्य साध्यविषयकत्वादिति वाच्यम् । साध्याविषयकपदे-
न प्रकृतहेतुतावच्छेदकावच्छिन्नहेतुविशिष्टहेतुत्वविषयितावहिर्भावेन यद्विषयित्वं तेन सम्बन्धेन साध्यवद्भिन्नस्य विवक्षितत्वात्, तथाच वक्लिमान् वक्लिमामग्रीमत्त्वादित्यादौ तादृशविषयितान्तर्भावेनैव साध्यविषयकत्वान्नाव्याप्तिरिति भावः । न चेदमेकं धूमादित्यादौ निरुक्तविषयितावहिर्भावेन एकत्वरूपसाध्यविषयकज्ञानजनकत्वाद-
व्याप्तिरिति वाच्यम् । तेन कदाचित् केवलधूमज्ञानज्ञाप्यत्वबोध-
स्यापि जननात् तमादाय लक्षणगमनात् हृदोनिर्धूमोनिर्वक्लिवादि-
त्यादौ योयोधूमग्रन् स वक्लिमानित्युदाहरणस्य साध्याविषयक-
ज्ञानजनकत्वात् तत्रातिव्याप्तिवारणाय 'हेतुविभक्तिमदिति ज्ञान-
ज्ञाप्यत्वप्रतिपादकविभक्तिमदित्यर्थकं, तथाच व्यतिरेक्युदाहरणस्य
तादृशविभक्तिमत्त्वाभावान्नातिव्याप्तिरिति भावः । न च धूमादालो-
काभाववान् आलोकसामग्रीगुण्यत्वादित्यादौ योयोधूमादालोकवाम्
स आलोकसामग्रीमान् इत्यादिव्यतिरेक्युदाहरणेऽतिव्याप्तिः तस्यापि
साध्याविषयकज्ञानजनकत्वात् हेतुविभक्तिमत्त्वाच्चेति वाच्यं । हेतु-
विभक्तिमत्पदस्य प्रकृतसाध्यतात्पर्यकपदमाकाङ्क्षहेतुत्वबोधकविभ-

क्षिताभिधाने निग्रहापत्तेः लोके तथैवाकाङ्क्षानि-
वृत्तिरिति व्युत्पत्तेरिति प्रतिज्ञानन्तरं हेतूपन्यासः,
हेतुत्वञ्चानुमितिकारणीभूतलिङ्गपरामर्शप्रयोजकशा-

क्तिमर्द्यकत्वात्, तथाच तस्यालोकतात्पर्यकपदसाकाङ्क्षहेतुत्वबोध-
कविभक्तिमत्त्वेन प्रकृतसाध्यतात्पर्यकपदसाकाङ्क्षहेतुत्वबोधकविभक्ति-
मत्त्वाभावान्नातिव्याप्तिरिति भावः । न च प्रकृतसाध्यतात्पर्यकपद-
साकाङ्क्षहेतुत्वबोधकत्वमेवास्तु किं विभक्तिमत्त्वेनेति वाच्यं । हेतुत्वं
घटभिन्नं द्रव्यत्वाभावादित्यादौ योयोघटः स द्रव्यत्ववानित्यादौ
घटत्वव्यापकीभूताभावप्रतियोगिद्रव्यत्वाभाववदिदं इत्युपनयेऽतिव्या-
प्तिः तस्यापि साध्याविषयकज्ञानजनकत्वात् निगमनस्य प्रकृतसा-
ध्यघटभिन्नत्वतात्पर्यकं यद्वटभिन्नपदं तस्माकाङ्क्षहेतुत्वबोधकेदम्पद-
वत्त्वाच्च विभक्तिपददाने च न दोषः तस्य विभक्तित्वाभावात् ।

ननु एतल्लक्षणे हेतुत्वबोधकेति व्यर्थं अतो लाघवाच्चाह,
'हेतुत्वप्रतिपादकेति^(१) विभक्त्यर्थहेतुत्वमुख्यविशेष्यकशाब्दबोधजनकत्वे
सति न्यायावयवत्वमर्थः, उदाहरणादावतिव्याप्तिवारणाय सत्यन्तं,

(१) लक्षणांतरमाह, 'हेतुत्वप्रतिपादकेति स्वार्थहेतुत्वमुख्यविशेष्यका-
न्वयबोधजनकविभक्तिमन्नायावयवत्वमर्थः । हेतुत्वं प्रमेयं वाच्यत्वादित्यादौ
प्रतिज्ञोपनययोर्वारणाय विभक्तिपदं । न च वङ्निर्धूमात् धूमव्यापकत्वादित्यादौ
धूमहेतुताकत्वस्य साध्यतास्थले तस्माद्धूमादित्येवं निगमनस्यापि विभ-
क्त्यर्थहेतुत्वमुख्यविशेष्यकधीजनकत्वात्तत्रातिव्याप्तिरिति वाच्यम् । उपनय-

ब्रह्मज्ञानजनकसाध्याविषयकशाब्दधीजनकहेतुविभक्ति-
मच्छब्दत्वं ।

हेतुत्वं प्रमेयमित्यादिप्रतिज्ञायामतिव्याप्तिवारणाय विभक्त्यर्थत्वं
हेतुत्वविशेषणं, हेतुत्वानुपादाने पृथिवीतरेभ्योभिद्यते पृथिवीत्वा-
दित्यादौ तस्माद्भिद्यते इत्यादिनिगमनेऽतिव्याप्तिः तस्याप्याख्या-
तार्थविशेष्यकान्वयबोधजनकत्वात् । न च निगमस्यायं पदार्थमुख्यवि-
शेष्यकान्वयबोधस्य जनकत्वात् कथं तत्रातिव्याप्तिरिति वाच्यं ।
अथभदाननुसङ्गपक्षे एव एतल्लक्षणकरणात्, उक्तनिगमनस्यापि
तस्मादिति विभक्त्यर्थहेतुत्वविशेष्यकबोधजनकत्वात् तद्दोषतादवस्थ-
वारणाय मुख्यविशेष्यकेति, उदासीनवाक्येऽतिव्याप्तिवारणाय विशे-
ष्यदत्तं । न च वज्रिधूमात् वज्रित्वेन प्रमीयमाणत्वादित्यादौ

स्यायम्यदस्य निगमनघटकतया तदर्थस्यैव मुख्यविशेष्यत्वात् । वस्तुतस्तु एक-
सुवर्धस्य सुवर्धान्तरमुख्यविशेष्यत्वेनान्वयस्य निराकाङ्क्षितत्वेन तस्माद्भूमा-
दित्यस्य धूमनिष्ठज्ञापकतायां हेतुनिष्ठज्ञापकताकत्वबोधनासमर्थत्वेन तद्ग-
र्भेन्द्राय एव नास्तीति न तत्रातिव्याप्तिशङ्कापीति । न च घटे जातावित्यादौ
घटवृत्तित्वं जातिवृत्ति इत्याकारकान्वयबोधानुत्पत्त्या सुवर्धयोर्मिथोऽन्व-
यबोध एवाऽव्युत्पन्न इति तत्र मुख्यविशेष्यतानुसरणमफलमिति वाच्यम् ।
क्रमाच्चैत्रस्येदमित्यादाविदमंशे विशेषणतापन्नस्य षष्ठ्यर्थस्त्वस्य पञ्चम्यर्थज-
न्यतायां विशेष्यत्वेन सामान्यतन्तदन्वयस्यानिराकाङ्क्षितत्वादिति ध्येयं ।
एकजातीयसुपोर्मिथो निराकाङ्क्षत्वात् क्रमाच्चैत्रस्येदमित्यादौ पञ्चमौ-षधो-
र्मिथः साकाङ्क्षत्वेऽपि न क्षतिरिति वदन्ति । इति जागदीशी व्याख्या ।

हेतुत्वप्रतिपादकविभक्तिमस्यायावयवत्वं वा ।

तस्मात् धूमादितिनिगमनेऽतिव्याप्तिः तस्यापि विभक्त्यर्थज्ञानज्ञाप्य-
त्वरूपहेतुत्वमुख्यविशेष्यकान्वयबोधजनकत्वादिति वाच्यम् । कथक-
सम्प्रदायविरोधेन वन्निर्धूमादित्यस्य प्रतिज्ञात्वाभावात् तादृशपञ्च-
कस्य न्यायत्वाभावेन विशेष्यदलेनैव तद्वारणात् ।

ननु हेतुत्वं प्रमेयमित्यादिप्रतिज्ञायामतिव्याप्तिर्दुर्वारा हेतुत्व-
पदोपस्थाप्यज्ञानज्ञाप्यत्वस्य विभक्त्यर्थज्ञानज्ञाप्यत्वाभिन्नत्वात् । न च
विभक्तिजन्योपस्थितिसहकारेणैव हेतुत्वविशेष्यकशब्दबोधजनकत्वं
वाच्यमिति न दोषः तस्य हेतुत्वपदजन्योपस्थितिसहकारेणैव
तादृशबोधजनकत्वादिति वाच्यं । तथापि तस्माद्धेतुत्वमिति निग-
मनेऽतिव्याप्तिः पञ्चमीजन्योपस्थितिसहकारेणैव हेतुत्वविशेष्यकशब्द-
बोधजनकत्वात् । न च हेतुत्वमुख्यविशेष्यकत्वांशे विभक्तिजन्योपस्थितेः
सहकारित्वं वाच्यम् इति न दोषः तत्र हेतुत्वमुख्यविशेष्यकत्वांशे
हेतुत्वपदजन्योपस्थितेरेव सहकारित्वादिति वाच्यं । मुख्यविशेष्यक-
त्वस्य कार्यतानवच्छेदकतया तदंशे सहकारित्वस्य दुर्वचत्वात्
इत्यतोलक्षणान्तरमाह, 'उदाहरणेति^(१) उदाहरणस्य प्रयोजिका या

(१) 'उदाहरणेति उदाहरणस्य प्रकृतहेतुक-प्रकृतसाध्यसिद्धौपयिकव्या-
प्तिधीजनकवाक्यस्य प्रयोजिका तज्जन्यबोधनिवृत्तये कथमस्य गमकत्वमित्या-
काङ्क्षा तज्जनकं तज्जनकावयवत्वमित्यर्थः, अत्र जनकत्वं स्वरूपयोग्यत्वं तेना-
साध्यकतानुमानस्थलीयन्याये उदाहरणासत्त्वेऽपि न क्षतिरिति स्वरूपयोग्य-
तावच्छेदकरूपस्य हेतुत्वस्य तत्रापि सत्त्वादिति, अनुक्तोपनयादिकस्य उदा-
हरणस्य प्रयोजकहेतुवाक्येऽतिव्याप्तिवारणार्थमवयवेति । इति जागदीश्वरी
व्याख्या ।

उदाहरणप्रयोजकाकाङ्क्षाजनकशाब्दज्ञानजनकन्या-
यावयवत्वं वा ।

साध्याविषयकज्ञानजनकहेतुपञ्चम्यन्तानुमितिपर-
शब्दत्वं वा ।

आकाङ्क्षा कुतोऽस्य गमकत्वमित्याकारिका जिज्ञासा तज्जनकं
यच्छाब्दज्ञानं तज्जनकत्वे सति न्यायावयवत्वमित्यर्थः । इतरावयवानां
तादृशाकाङ्क्षाप्रयोजकत्वाभावान्नातिव्याप्तिः, अत्र जनकत्वं स्वरूपयो-
ग्यत्वं अतो यत्र तादृशजिज्ञासा न जाता तत्र नाव्याप्तिः इत्यञ्च
उदासीनकाक्येऽतिव्याप्तिरित्यतोविशेष्यदलं । न च न्यायान्तर्गतत्वे
सतीति सम्यगिति वाच्यं । हेत्वैकदेशेऽतिव्याप्तिरिति तदुपादानं ।
ननु यत्पक्षक-यत्साध्यक-यद्धेतुकन्यायस्थले कदापि तादृशा-
काङ्क्षा न जाता तत्र तत्स्वरूपयोग्यत्वे मानाभाव इत्यतो लक्षणा-
न्तरमाह, 'साध्याविषयकेति^(१) साध्याविषयकज्ञानजनकत्वे सति हेतु-

(१) 'साध्येत्यादि घटो न धूमादेतत्त्वादित्यादौ धूमहेतुताकत्वाद्यभाव-
साध्यके प्रतिज्ञा-निगमनयोर्वारणाय 'जनकान्तं हेतुत्वधर्मिकप्रकृतहेतुवि-
षयतावहिर्भावेन यत्साध्यविषयकं तदन्यज्ञानजनकार्थकं, तेनायं वक्षिमान्
वक्षिसामग्रीमत्त्वादित्यादिस्थलीयहेतौ नाव्याप्तिः, वस्तुतः प्रकृतलिङ्गकहे-
त्ववयवानां वस्तुगत्या यादृश-यादृशविषयताकबोधजनकत्वं तादृश-तादृश-
विषयतावहिर्भावेनैव साध्यविषयकत्वं वाच्यं । तेनायं एकोधूमादित्यादौ
साध्योभूतैकत्वविशिष्टधूमस्य ज्ञापकत्वबोधकहेत्ववयवे नाव्याप्तिः, ऋदोनि-
धूमोनिर्वक्षित्वादित्यादौ धूमव्यापकवक्ष्यभाववाञ्छायमित्यादिव्यतिरेक्यपन्-
यस्य वारणाय 'हेतुपञ्चम्यन्तेति 'हेत्विति, सम्पातायातं, हेतुसमानानुपूर्वी-
कस्य उदासीनवाक्यस्य वारणाय 'अनुमितिपरेत्यादि न्यायावयवत्वार्थञ्च ।

पञ्चम्यन्तत्वे सति न्यायावयवत्वमित्यर्थः । अयं न दण्डादण्डसंयोगा-
जन्यद्रव्यत्वादित्यादौ प्रतिज्ञा-निगमनयोर्हेतुपञ्चम्यन्तत्वात् अनुमिति-
परवाक्यत्वाच्च तत्रातिव्याप्तिवारणाय 'साध्याविषयकेति । न चैवं
वह्निमान् वह्निसामग्रीत इत्यादौ अव्याप्तिः तत्र साध्यविषयक-
ज्ञानस्यैव जननादिति वाच्यम् । 'साध्याविषयकपदेन हेतुतावच्छे-
दकावच्छिन्नहेतुविशिष्टहेतुत्वविषयतावहिर्भावेन या विषयता तेन
सम्बन्धेन साध्यवद्भिन्नत्वस्य विवक्षितत्वात्, हृदो निर्धूमोनिर्वह्निता-
दित्यत्र साध्याविषयकज्ञानजनकत्वेन धूमव्यापकीभूताभावप्रतियोगि-
वज्रभाववानयमित्युपनयेऽतिव्याप्तिवारणाय 'हेतुपञ्चम्यन्तेति हेतुत्व-
बोधकपञ्चम्यन्तेत्यर्थः, तथाच तस्यायम्पदान्तत्वेन हेतुपञ्चम्यन्तत्वाभा-
वान्नातिव्याप्तिः । न चोक्तोपनयेऽतिव्याप्तिवारणाय हेतुत्वबोधका-
न्तत्वं पञ्चम्यन्तत्वं वा उपादीयतां कृतं विशिष्टोपादानेनेति वा-
च्यम् । साध्याविषयकज्ञानजनकहेतुत्वबोधकान्तानुमितिपरवाक्यत्वं
साध्याविषयकज्ञानजनकपञ्चम्यन्तानुमितिपरवाक्यत्वं वा हेतुत्वमिति
लक्षणद्वये तात्पर्यात् ।

ननु पर्वतस्तेजस्त्वाभाववान् पृथिवीत्वादित्यादौ योयस्तेजस्त्ववान्
स पृथिवीत्वाभाववान् यथा वह्निर्धूमादिति धूमज्ञानज्ञाप्यवह्निरूप-
दृष्टान्तशालिव्यतिरेक्युदाहरणेऽतिव्याप्तिः तस्य साध्याविषयकज्ञान-

न चायं न गुरुत्वहेतुताकोऽरसवत्त्वादित्यादौ यो यो गुरुत्वात् रसवत्त्वा-
दित्यादिव्यतिरेक्युदाहरणेऽतिव्याप्तिस्तस्यापि साध्याविषयकत्वे सति पञ्चम्य-
न्तावयवत्वादिति वाच्यम् । उदाहरणान्यत्वेनापि विशेषणीयत्वादिति भावः ।
इति जागदीशी व्याख्या ।

जनकत्वात् पञ्चम्यन्तानुमितिपरवाक्यत्वाच्च इत्यतो लक्षणांतरमाह^(१)

(१) 'प्रतिज्ञावाक्यधीजन्येत्यादि पक्षधर्मिक-साध्यवत्ताबोधकवाक्यजन्या स्वार्थधीद्वारा प्रयोज्यः या कारणस्य ज्ञापकस्याकाङ्क्षा पक्षः कुतः साध्यवान् इत्याकारिका जिज्ञासा तन्निवर्तकज्ञानस्य जनकत्वे सति हेतुविभक्तिमदवयवत्वमित्यर्थः, प्रतिज्ञादिवारणाय सत्यन्तं, अयं तस्मात् वज्जिमान् इत्यादि-निगमनस्यापि पक्षः कुतः साध्यवानित्याकारकजिज्ञासानिवर्तकज्ञान-जनकत्वसम्भवात्तत्रातिव्याप्तेर्वाारणाय 'हेतुविभक्तिमदिति, 'हेतोः' अवाधितत्वादिधीहेतोः, या 'विभक्तिः' विभागः पार्थक्यं तद्वन्निगमनान्यत्ववदिति तु फलितार्थः, न्यायवह्निर्भूतस्य हेतुसमानार्थकस्य धूमादित्यादेर्वाारणाय 'अवयवेति, 'पञ्चम्यन्तेत्यादि पञ्चमी अन्ते यस्य तादृशं यल्लाक्ष्णिकं पदं तद्वगर्भावयवत्वमित्यर्थः, धूमेनालोकवानयं वज्जिमान् धूमादित्यादौ प्रतिज्ञा-वारणाय 'पञ्चम्यन्तेति, अयं दण्डाज्जातो घटत्वादित्यादौ प्रतिज्ञावारणाय 'लाक्ष्णिकेति । यद्यप्येवमपि धूमादालोकवानयं वज्जिमानित्यादिप्रतिज्ञाया-मतिव्याप्तिः प्रकृतसाध्यधर्मिकस्वार्थबोधकत्वेन पञ्चम्या विशेषणीयत्वेऽपि धूमाद्वज्जिमतः सधर्मायं वज्जिमानित्यादिप्रतिज्ञायां तथा, तथापि प्रकृत-पक्षधर्मिकस्वार्थविशिष्टप्रकृतसाध्यवत्त्वान्वयबोधजनकत्वेन पञ्चमी विव-क्षितेति नायं दोषः । यद्यपि चैवमप्ययं तस्माद्वज्जिमानित्यादिनिगमनेऽति-व्याप्तिः ज्ञानत्वादिप्रकारेण ज्ञानशक्तस्यापि सर्व्वनाम्नस्तच्छब्दस्य व्याख्यादि-विशिष्टधूमत्वप्रकारेण बोधने लाक्ष्णिकत्वात् जघु-गुरुरूपाभ्यामन्वयबोध-कस्य पदमात्रस्यैव गुरुरूपेण लक्षणायाः सर्वसम्मतत्वात् । तथापि लाक्ष्-णिकेत्यस्य प्रकृतहेतुविषयकज्ञानत्वावच्छिन्नलाक्ष्णिकपरत्वान्नोक्तदोषः तत्र व्याख्यादिविशिष्टप्रकृतहेतुगोचरज्ञानत्वेनैव तच्छब्दस्य लक्षकत्वादिति । न चायं गुरुः पतनादित्यादौ हेतावव्याप्तिस्तत्र पञ्चम्यन्तस्य पतनादिशब्दस्य शक्तिविरहेण पतनज्ञानत्वावच्छिन्नलक्षकत्वासम्भवादिति वाच्यम् । पञ्चम्यन्ते-

त्यस्य पञ्चमीसाकाङ्क्षपरत्वेन तत्रापि पञ्चमीसाकाङ्क्षस्य ल्युङन्तपतघातोः
पतनज्ञानलक्षकत्वसम्भवादिति ध्येयं ।

ननु धूमादित्यादिहेत्ववयवस्य धूमनिष्ठं ज्ञापकत्वमित्यन्वयबोधकतायां
पञ्चम्यन्तधूमादित्यादिपदस्य लक्षणात्वाभावात् अथाग्निरत आह, 'हेतु-
पदेनेति हेतुभूतधूमादिवाचकपदेन धूमज्ञानादिलक्षणादित्यर्थः । अत्र हेतु-
माह, 'अन्यथेति लक्षणां विनेत्यर्थः, 'अहेतुत्वेन' साध्याज्ञापकत्वेन । ननु
प्रकृत्यर्थे स्वार्यसङ्ख्याबोधकतयैव हेतुविभक्त्यर्थान्वयो भविता इत्यत आह,
'तथैवेति पञ्चम्या ज्ञापकत्वबोधकतायामेव कुतो वङ्गिमानित्याकाङ्क्षा-
निवृत्तेरित्यर्थः ।

प्राञ्चस्तु लिङ्गस्यानुमापकत्वमतेऽप्याह 'तथैवेति धूमादिपदस्य धूमादि-
ज्ञाने लक्षणायामेवेत्यर्थः, अन्यथा पक्षः किङ्गोचरज्ञाननिष्ठज्ञापकताक-
वङ्गिमानितिप्रत्यक्षस्य धूमनिष्ठज्ञापकताकवङ्गिवोधानिवर्त्यत्वेन धूमादित्यस्य
तत्रोत्तरत्वानुपपत्तेरिति प्राञ्जः ।

ननु तत्र पञ्चम्या ज्ञाप्यत्वमर्थो बोध्यः अत आह, 'तथैवेति निरुक्तहेत्वन्व-
यबोधेनैवेत्यर्थः, 'आकाङ्क्षानिवृत्तेः' कुत इति जिज्ञासाया अनुत्पत्तेः, तथाच
निरुक्तहेतुत्वमेव पञ्चम्यर्थ इति भाव इत्यन्ये ।

अत्रेदं बोध्यं धूमपदं धूमज्ञानपरं, वङ्गिपदे ज्ञानविषयवङ्गौ लक्षणा,
वङ्गिज्ञाने वा सा, पञ्चम्या हेतुत्वमर्थः, धूमज्ञानहेतुकज्ञानविषयवङ्गिमान्
पर्वतः धूमज्ञानहेतुकवङ्गिज्ञानविषयाभिन्नः पर्वत इति वा बोध इति कश्चित्,
तन्न 'आवृत्तौ सैवेति मूलविरोधात् ।

अन्ये तु धूमपदं धूमज्ञानलक्षणात्, पञ्चम्या ज्ञानजनकत्वं अन्यज्ञान-
विषयत्वं वार्थः धूमज्ञाननिष्ठज्ञानजनकत्वनिरूपकवङ्गिमदभिन्नः पर्वतः धूम-
ज्ञानजन्यज्ञानविषयवङ्गिमदभिन्नः पर्वत इति वा बोधः ।

परे तु पञ्चम्या ज्ञानजन्यज्ञानविषयत्वमर्थः, धूमपदं यथाश्रुतमेव, बोधस्तु
पूर्ववदित्याहः इति जागदीशी व्याख्या ।

प्रतिज्ञावाक्यधीजन्यकारणाकाङ्क्षानिवर्त्तकज्ञानजनकहेतुविभक्तिमदाक्यत्वं वा ।

पञ्चम्यन्तलाक्षणिकपदवदनुमितिपरवाक्यत्वं वा ।

‘प्रतिज्ञावाक्येति प्रतिज्ञावाक्यार्थज्ञानजन्या या कारणाकाङ्क्षा कुत इति प्रश्नोन्नेयकारणजिज्ञासा तन्निवर्त्तकज्ञानजनकत्वे सति हेतुविभक्तिमन्त्यायावयवत्वमित्यर्थः, अयं न दण्डादित्यादिप्रतिज्ञावारणाय सत्यन्तं, तस्माद्वह्निमानितिनिगमनेऽतिव्याप्तिवारणाय ‘हेतुविभक्तिमदिति हेतुत्वप्रतिपादकविभक्त्यन्तार्थकं, हेतुत्वं प्रमेयमित्यादौ तस्मात्प्रमेयमिदमिति निगमने हेतुत्वप्रतिपादकेदम्पदान्तकेऽतिव्याप्तिवारणाय ‘विभक्तौति ।

लक्षणान्तरमाह, ^(१) ‘पञ्चम्यन्तेति पञ्चम्यन्तं यस्माच्चणिकपदं तद्वत्त्वं सति न्यायावयवत्वमर्थः, लाघवेन पञ्चम्या विभागत्वस्यैव शक्यतावच्छेदकतया यत्र पञ्चम्या ज्ञानज्ञाप्यत्वादिवोधः तत्र लक्षणैवेति तस्माद्वह्निमानित्यादिनिगमने लाचणिकपञ्चमीपदवति न्यायावयवेऽतिव्याप्तिवारणाय ‘पञ्चम्यन्तेति, तथाच पञ्चम्यन्ततत्पदस्य लाचणिकत्वाभावान्नातिव्याप्तिरिति भावः । तस्माद्वह्निमानितिनिगमनस्यापि पञ्चम्यन्ततत्पदवत्त्वात् तद्दोषतादवस्थ्यवारणाय ‘लाचणिकेति, उदासीनवाक्येऽतिव्याप्तिवारणाय विशेष्यदलं, लक्ष्ये लक्षणं सङ्गमयति,

(१) ननु तथापि अयं न दण्डादित्यादौ तस्मान्न दण्डादिति निगमने अतिव्याप्तिस्तस्य तादृशजिज्ञासानिवर्त्तकज्ञानजनकत्वात् हेतुत्वप्रतिपादकविभक्त्यन्तत्वाच्चातोलक्षणान्तरमाहैत्यधिकः पाठः घ-चिह्नितपुस्तके वर्त्तत इति ।

हेतुपदेन ज्ञाने लक्षणा अन्यथा लिङ्गस्याहेतुत्वेन
हेतुविभक्त्यर्थानन्वयात्^(१) तथैवाकाङ्क्षानिवृत्तेः ।

‘हेतुपदेनेति हेतुपस्थापकधूमादितिपदेनेत्यर्थः, ‘ज्ञाने लक्षणा’
हेतुज्ञाने लक्षणा, पञ्चम्या ज्ञानविषयत्वरूपं ज्ञाप्यत्वमर्थः, तदेकदेश-
ज्ञाने हेतुज्ञानस्य जन्यतामसम्बन्धेनान्वयः, तथाच धूमादिति हेतु-
वाक्यात् धूमज्ञानजन्यज्ञानविषयत्वमित्याकारकः शाब्दबोधः । ननु
धूमपदे कथं धूमज्ञाने लक्षणा धूमस्यैव जन्यतामसम्बन्धेन ज्ञानेऽन्वयः
स्यादित्यत आह, ‘अन्यथेति हेतुपदे हेतुज्ञाने लक्षणानङ्गीकारे,
‘विभक्त्यर्थानन्वयादिति पञ्चमीविभक्त्यर्थे हेतोरनन्वयापत्तेरित्यर्थः,
अनन्वये हेतुमाह, ‘लिङ्गस्याहेतुत्वेनेति साध्यज्ञाने लिङ्गस्याहेतुत्वेने-
त्यर्थः, लिङ्गज्ञानस्यैवानुमितिहेतुत्वादिति भावः । ननु लिङ्गोपहित-
लैङ्गिकभानादिमते लिङ्गस्याप्यनुमितिविषयतया विषयतामसम्बन्धेन
हेतोरन्वयोऽस्तु पञ्चम्यर्थैकदेशे ज्ञाने इति किं लक्षणयेत्यत आह,
‘तथैवेति जन्यतामसम्बन्धेन धूमज्ञानस्य ज्ञानेऽन्वयेनेवेत्यर्थः, ‘आकाङ्क्षा-
निवृत्तेरिति कारणाकाङ्क्षानिवृत्तेरित्यर्थः, वज्जिज्ञाने धूमज्ञानजन्य-
त्वमिद्धौ जायमानायां धूमज्ञानेऽपि तुल्यवित्तिवेद्यतया वज्जिज्ञान-
जनकत्वमिद्धेरिति भावः । ननु एतल्लक्षणं धूमादान्लोकवान् पर्वतो-
वज्जिमानित्यादिप्रतिज्ञायामतिव्याप्तं तस्यापि पञ्चम्यन्तलाक्षणिक-
धूमपदवत्त्वादिति चेत् । न । प्रकृतपक्षविशयक-प्रकृतमाध्यप्रकारका-
न्वयबोधजनकाकाङ्क्षा-तात्पर्यादिमत् यत् प्रकृतमाध्यतात्पर्यकं पदं

अनुमितिहेतुज्ञानकारणधूमवत्त्वादिति शब्दजन्य-
ज्ञानवृत्तिप्रतिज्ञादिजन्यज्ञानावृत्तिजातियोगिज्ञानज-
नकवाक्यत्वं हेतुत्वमित्यन्ये, जातिं विना केन रूपेण

तदाकाङ्क्षादि-तात्पर्यादिमती या पञ्चमी तदन्तलाक्षणिकपदवत्त्वस्य
विवक्षितत्वात् तथाच धूमादालोकवान् पर्वतोवह्निमानित्यादि-
प्रतिज्ञायां नातिव्याप्तिः तत्रत्यपञ्चम्याः प्रकृतमाध्यतात्पर्यकं यदह्नि-
पदं तदाकाङ्क्षाद्यभावात् एवं धूमादह्निमतः सधर्मा पर्वतो वह्नि-
मान् धूमादित्यादौ नातिव्याप्तिः तत्र तादृगविशिष्टपक्षविशेष्यक-
साध्यप्रकारकान्वयबोधजनकाकाङ्क्षादिमत् यत्प्रकृतमाध्यतात्पर्यकं पदं
चरमवह्निपदं तदाकाङ्क्षादिमत्त्वस्य पञ्चम्या अभावादिति भावः ।

‘अनुमितीत्यादि, उदाहरणादिप्रयोज्यजातेर्वारणाय वृत्त्यन्तं
जातिविशेषणं, परार्थानुमितिहेतुभूतं यच्छाब्दज्ञानं तत्कारणीभूतस्य
धूमवत्त्वादिति शब्दस्य जन्यज्ञाने वर्तमानेति तदर्थः, न्यायजन्यज्ञान-
विधुरस्य चैत्रादिशरीरविशेषस्य प्रयोज्याया धूमवत्त्वादित्यादि-
शब्दधीवृत्तिजातेर्वारणाय ‘कारणान्तं, अवयवजन्यस्यैव शब्दस्य
परार्थस्थलीयानुमितिहेतुत्वान्नातिव्याप्तिरित्यभिमानः । सत्ता-शब्द-
त्वादेर्वारणाय ‘प्रतिज्ञादिजन्यज्ञानावृत्तीति प्रतिज्ञोदाहरणादेरेकै-
कमात्रं निवेश्यं न तु समुदायोवैयर्थ्यात् । वस्तुतस्तु एतदह्निसमवेत-
तद्वाक्यसमवेतधर्मवत्त्वमर्थः, तद्वाक्येरेतद्वाक्ये लाभाय वृत्त्यवृत्त्यन्तद्वय-
मिति, एतेन प्रतिज्ञात्वादिप्रवेशे प्रतिज्ञात्वस्याप्येतन्मते हेतुत्वघटित-
त्वापत्त्या आत्माश्रयापत्तिरिति दूषणं निरस्तं, मतं दूषयति, ‘जातिं

ज्ञानस्यानुमितिजनकत्वं वाक्यविशेषजन्यत्वस्यापि जन्यतावच्छेदकरूपापरिचये दुर्ग्रहादित्यपरे :

अन्वयव्याप्त्यभिधायकावयवाभिधानप्रयोजकज्ञानजनकहेतुत्वप्रतिपादकविभक्तिमन्यायावयवत्वमन्वयिहेतुत्वं, एतदेव व्यतिरेकव्याप्त्यभिधायकपदप्रक्षेपाद्व्यतिरेकि हेतुत्वम् । अन्वयव्यतिरेकोदाहरणाकाङ्क्षाप्रयोजकतथाभूतावयवत्वमन्वयव्यतिरेकि हेतुत्वं ।

विनेति हेतुजन्यबुद्धौ वैजात्यं विना केन रूपेण परार्थानुमितिजनकत्वमित्यर्थः, तथाच कारणान्तदलमव्यावर्तकमेवेति भावः । ननु कारणानां प्रकृतन्यायावयवार्थकं धूमवत्त्वादित्यादिशब्दान्वयितथाच धूमवत्त्वादित्यानुपूर्वीकावयवजन्यज्ञानवृत्तीत्येव जातेर्विशेषणं वाच्यम् न तु कारणान्तगर्भं अत आह, 'वाक्यविशेषजन्यत्वस्यापीति धूमवत्त्वादित्यानुपूर्वीकावयवजन्यत्वस्यापीत्यर्थः, तथाच कत्वादिना साङ्ख्येण तादृशवाक्यवृत्तिजात्यभावेन तदवच्छिन्नजनकतानिरूपितजन्यतावच्छेदकजातावपि मानाभावेन लक्षणस्यासम्भवेति भावः ।

हेतुत्वस्यान्वयि-व्यतिरेकान्वयव्यतिरेकिभेदेन त्रैविध्यात् तदनुक्तौ न्यूनत्वमत आह, 'अन्वयेत्यादि, व्यतिरेकिहेतोर्वारणाय 'जनकान्तं प्रकृतहेतुधर्मिकसाध्यान्वयव्याप्त्यभिधायकवाक्यप्रयोजकशब्दधीप्रयोजकार्थकं, उपनयप्रयोजकज्ञानजनके उदाहरणे प्रतिज्ञायाच्चातिव्याप्तिवारणाय उदाहरणान्तमात्रस्याभिधानस्यले हेतोरलक्ष्यत्वात्त-

यद्वा पक्ष-सपक्षसतो विपक्षासतो हेतुवचनमन्वय-
व्यतिरेकि, अत्यन्ताभावाप्रतियोगिसाध्यसमानाधि-
करणपक्ष-सपक्षसहेतुवचनं केवलान्वयि ।

द्वारणाय च 'हेतुत्वप्रतिपादकेत्यादि स्वार्थहेतुत्वमुख्यविशेषकान्व-
यबोधजनकविभक्तिमन्नायावयवत्वमित्यर्थः, 'अन्वयिहेतुत्वमिति अन्व-
यिहेत्ववयवत्वमित्यर्थः । 'एतदेव' स्वार्थेत्याद्यवयवत्वमेव, 'तथाभू-
तावयवत्वं' निरुक्तहेत्ववयवत्वं, तावन्मात्रञ्च केवलान्वयिनः केवलव्य-
तिरेकिणश्च हेतोर्गतमतः 'प्रयोजकान्तं प्रकृतहेतुकप्रकृतसाध्यसि-
द्ध्यौपयिकान्वय-व्यतिरेकोभयव्याप्यभिधाननिवर्त्याकाङ्क्षाकारणीभू-
तज्ञानजनकार्यकं, तथेत्यादिपदव्यावृत्तिः पूर्ववत् ।

ननु कथमस्य गमकत्वमित्याकाङ्क्षायां एकव्याप्यभिधानेनैव
निरस्तत्वात् व्याप्यन्तराभिधानस्यार्थान्तरयस्तत्वमतो नोक्तक्रमेणान्वय-
व्यतिरेकिहेतोर्लक्षणं युक्तमत आह, 'यदेति । सद्देतोरेव लक्ष्यत्वमि-
त्यभिप्रायेणाह, 'यदेतीत्यन्ये । 'हेतुवचनं' प्रकृतहेतुत्वप्रतिपादकोऽव-
यवः, तथाच पक्षे सपक्षे च सतो विपक्षेऽसतोऽर्थस्य हेतुत्वप्रतिपादको-
ऽवयवः अन्वयव्यतिरेकीत्यर्थः, अत्र च सपक्षसत्त्वं निश्चितसाध्यवद्-
वृत्तित्वं, तेन पृथिवीतरेभ्योभिद्यते पृथिवीत्वादित्यादौ केवल-
व्यतिरेकिहेतौ नातिव्याप्तिः, पक्षसत्त्वन्तु पर्वतो वज्रिमान् महान-
सत्त्वादित्यादौ स्वरूपामिद्वयस्य हेतोर्व्युदासार्थं, सद्देतोरेव लक्ष्य-
त्वादिति ध्येयं । नन्वेवं वज्रिमाध्यकधूमादिहेतोरन्वयव्यतिरेकित्वे
तत्र प्रागुक्तकेवलान्वयिहेतुलक्षणस्यातिव्याप्तिरतस्तस्य लक्षणान्तरमाह,

यद्वा अनुमितिकारणीभूतपरामर्शप्रयोजकशाब्द-
ज्ञानकारणसाध्याविषयकशाब्दधीजनकप्रतीतान्वयसा-
ध्य-साधनवाचकहेतुविभक्तिमच्छब्दत्वमन्वयिहेतुत्वम् ।
एतदेवाप्रतीतान्वयसाध्यसाधनेतिविशेषणाद्यतिरेकि-

‘अत्यन्तेति वृत्तिमदत्यन्ताभावाप्रतियोगिनः साध्यस्य समानाधिक-
रणोयः पक्ष-सपक्षयोः सन् हेतुस्तस्य ‘वचनं’ हेतुत्वप्रतिपादकोऽव-
यवः केवलान्वयीत्यर्थः, अत्र पक्षसत्त्वस्य व्यावृत्तिः प्रागिव स्वरू-
पासिद्धहेतोर्वारणं, सपक्षसत्त्वन्तु सर्वमभिधेयं प्रमेयत्वादित्यादौ
सर्वस्य पक्षतादृशायां प्राचीनसम्मतस्यानुपसंहारिहेतोर्वारणायेति
ध्येयं । इदमुपलक्षणं पक्षसतः सपक्षासतः पक्षमात्रसतो वा विपक्षामतश्च
हेतोर्वचनं केवलव्यतिरेकीति द्रष्टव्यं ।

दशाविशेषे वज्रादिसाध्यके धूमादिहेतावप्यन्वयित्वं स्वीकुर्वतामा-
चार्याणां मतेनाह, ‘यदेति, ‘अनुमितीत्यादि, अत्रोदासीनस्य धूमा-
दित्यादिवाक्यस्य वारणार्थमाद्यं कारणान्तं, प्रागुक्तरीत्या प्रकृतपक्षक-
प्रकृतहेतुकप्रकृतसाध्यकन्यायावयवार्थकं, धूमादक्लिमतः सधर्मायं व-
क्लिमान् धूमादित्यादौ प्रतिज्ञादेर्निगमनस्य च वारणाय द्वितीयं का-
रणान्तं, प्रकृतहेतुविशिष्टहेतुत्वविषयतावहिर्भावेन यत् साध्यविषयकं
तदन्यशाब्दधीकारणमिति तदर्थः, तेनायं वक्लिमान् वक्लिसामग्री-
मत्त्वादयं हेतुतावान् तत्त्वेन प्रमीयमानत्वादित्याद्यन्वयिहेतौ नाव्याप्तिः,
अयं न धूमादक्लिशून्योधूमात् यो यो धूमादक्लिशून्यः स धूमशून्य-
इत्यादावप्रतीतसाध्यान्वय-व्यतिरेकिहेतोर्वारणाय ‘प्रतीतसाध्यान्वये-

हेतुलक्षणं, कथायां धूमादित्येव प्रयोक्तव्यं न तु धूम-
वत्त्वादिति मतुपोव्यर्थत्वात् ।

सामान्यवत्त्वे सति बाह्यकरणप्रत्यक्षत्वादित्य-
पार्थक्यं विभक्त्युपस्थापितहेतुत्वेन सामान्यवत्त्वस्य

त्यादि प्रतीतः साध्यान्वयोऽन्वयसहचारमात्रं यत्र तादृशं यत्साधनं
तद्वावचकशब्दाद्या हेतुविभक्तिः पक्षधर्मिकस्वार्थविग्रियसाध्यवत्त्वबो-
धस्य हेतुभूता या विभक्तिस्तद्वत्त्वमित्यर्थः, 'प्रतीतान्वयसाध्य-साधनेति
पाठेऽपि साध्यपदस्य व्यत्यासेन उक्त एतार्थः ।

केचित्तु वक्तिसामग्रीमत्त्वादित्यादिहेतुसंग्रहाय 'साध्याविषय-
केति साध्यविषयकत्वनियतावयवतावच्छेदकरूपशून्यार्थकं, तथाच
उदाहरणत्वावच्छिन्नस्यापि तथात्वादन्वय्युदाहरणवारणाय 'हेतु-
विभक्तीति प्रागुक्तहेतुत्वार्थकमित्याहुः ।

'अप्रतीतेत्यादि, इदमुपलक्षणं एतदेव प्रतीतसाध्य-तदभाव-
सहचारकेति^(१) विशेषणादन्वय-व्यतिरेकिहेतुलक्षणमित्यपि बोध्यं ।
ननु प्रतिज्ञादित्रयवयववादिनां भौमांसकानां मते धूमहेतुस्थले तस्य
पक्षधर्मताप्रतिपत्त्यर्थं धूमवत्त्वादिति कथञ्चिन्मतुपोऽस्तु प्रयोजनं
पञ्चावयववादिनान्तु तार्किकाणां उपनयादेव हेतोः पक्षधर्मताप्रति-
पत्तिसम्भवान्मतुपोव्यर्थत्वमित्यत्र दृष्टापत्तिमाह, 'कथायामिति, एतेन
धूमसम्बन्धपर्यवसन्नत्वेन तस्य धूमवत्त्वस्य हेतुतायां न वैयर्थ्यं धूमत्वस्य

विभक्त्यन्तरावरुडस्यानन्वयादिति केचित् । तन्न ।
सतिसप्तमीबलात् सामान्यवत्त्वस्य बाह्यकरणप्रत्यक्ष-
त्वस्य च सामानाधिकरण्योपस्थितौ विशिष्टे हेतुत्वा-
न्वयात् तथैव व्युत्पत्तेः, न ह्ययमर्थोऽस्मान्नावगम्यते
इति ।

धूमसम्बन्धावृत्तित्वेन तन्निष्ठव्याप्यवच्छेदकत्वासम्भवात् अन्यथा धूमप्रा-
गभावस्यापि हेतुता न स्यादिति दूषणं प्रत्युक्तं ।

नन्वेकविभक्त्यर्थान्वितसामान्यवत्त्वे^(१) विभक्त्यन्तरार्थहेतुत्वान्वये
आकाङ्क्षाविरहात् कथं विशिष्टहेतौ हेतुत्वान्वय इत्याशङ्कते,
'केचित्चित्यादि, 'सामान्यवत्त्व इत्यस्य शब्दानित्यत्वे साध्ये इत्यादिः,
'अपार्थक्यं' अनन्वितं^(२), तथाच निश्चितानन्वयरूपापार्थक्यत्वमेव तस्य न
त्वन्वयाबोधकत्वमित्यर्थः, विरुद्धविभक्त्यर्थावरुद्धे विभक्त्यन्तरार्थान्वय-
बोधास्वीकारात् प्रकृते सप्तम्यर्थसामानाधिकरण्यविशिष्टहेतौ हेतुत्वा-
न्वये बाधकाभाव इत्याशयेन समाधत्ते, 'सतीति सतिपदसमभिव्या-
हृतसप्तमीबलादित्यर्थः, 'विशिष्ट इति सामान्यवत्त्वविशिष्टबाह्यकर-
णप्रत्यक्षत्व इत्यर्थः, लिङ्गस्य हेतुतामतेनेदं, अन्यथा तु लक्षणयो-
पस्थिते तादृशप्रत्यक्षत्वस्य ज्ञाने हेतुत्वान्वयो द्रष्टव्यः । ननु सति-
सप्तम्याः सामानाधिकरण्यवाचित्वे घटे जातिमत्त्वमित्यतोऽपि घट-
विशिष्टजातिमत्त्वं प्रतीयेत इत्यत आह, 'तथैव व्युत्पत्तेरिति सति-

(१) नन्वेवं विभक्त्यर्थावरुद्धे सामान्यवत्त्व इति घ० ।

(२) अनुचितमिति घ० ।

हेतावुक्ते कथमस्य गमकत्वमित्याकाङ्क्षायां व्याप्ति-
पक्षधर्मतयोरुपदर्शनप्राप्तौ व्याप्तेः प्राथम्यात् तत्प्रद-
र्शनायोदाहरणं तच्चानुमितिहेतुलिङ्गपरामर्शपरवा-
क्यजन्यज्ञानजनकव्याप्यत्वाभिमतवन्निष्ठनियतव्यापक-
त्वाभिमतसम्बन्धबोधजनकशब्दत्वमुदाहरणत्वं । सा-

पदसमभिव्याहारेणैव सप्तम्याः सामानाधिकरण्ये व्युत्पन्नत्वादित्यर्थः,
'अथ' सामानाधिकरण्यरूपः, 'अस्मात्' सप्तम्याः सतिपदसमभिव्या-
हारात् ।

ननु व्याप्तेरिव पक्षधर्मताया अपि गमकतौपयिकत्वात् तत्प्रदर्शनाय
हेतुत्तरमुपनय एव कथं नोपन्यस्यते इत्यत आह, 'कथमस्येति, 'अस्य'
धूमादेः, 'गमकत्वं' गमकतावच्छेदकत्वं, लिङ्गस्य हेतुतामते तु यथाश्रु-
तमेव ज्यायः । 'अस्य' लिङ्गज्ञानस्येत्यर्थः, इति कश्चित् । 'प्राथम्यादिति
परामर्शाथं प्रथमोपस्थाप्यत्वादित्यर्थः, परामर्शं व्याप्तेर्विशेषणतावच्छेद-
कतया पूर्वोपस्थितिनियमः पक्षधर्मतायास्तु वैशिष्ट्यरूपतया न विशे-
षणतावच्छेदकत्वमिति न तदुपस्थितिः प्रागपेक्षणीयेत्यभिप्रायः ।

यत्तु 'प्राथम्यादिति प्रथमाकाङ्क्षाविषयत्वादित्यर्थः, प्रतीतव्या-
प्तिकोहेतुः पक्षे वर्तते न वेत्याकाङ्क्षादर्शनादिति व्याख्यानं, तन्न
सम्यक्, युक्त्यनभिधाने व्याप्याकाङ्क्षायाः प्राथम्ये मानाभावात् । वस्तुतः
'कथमस्य गमकत्वमित्याकाङ्क्षायाः किंप्रकारावच्छिन्नस्य गमकत्व-
मित्यर्थः, इति तादृशकाङ्क्षायां प्रथमतः पक्षधर्मताप्रदर्शनस्य
प्रसङ्गिरेव नास्तीति ध्येयम् । 'तत्प्रदर्शनाचेति व्याप्तिप्रदर्शनायेत्यर्थः,

मान्यलक्षणे साध्य-साधनसम्बन्धबोधकत्वं साध्य-साध-
नाभावसम्बन्धबोधकत्वञ्च विशेषलक्षणद्वयम् ।

न्यायावयवदृष्टान्तवचनमुदाहरणमिति तु न, दृ-
ष्टान्तप्रयोगस्य सामयिकत्वेनासार्वत्रिकत्वात् यो यो
धूमवान् सोऽग्निमानित्येव व्याप्तिप्रतीतेः ।

यद्यपि उदाहरणस्य न व्याप्तिः पदार्थो न वा वाक्यार्थः, तथापि
उदाहरणाद्व्याप्तिग्राहकसहचारज्ञाने जाते व्याप्तिग्रहो मानसो भव-
तीति व्याप्तितात्पर्यकत्वरूपव्याप्तिप्रदर्शकत्वं ।

यद्वा वीष्माया व्याप्तिबोधकत्वादेव व्याप्तिप्रदर्शकत्वमित्यवगन्तव्यं,
वीष्माया व्यापकत्वं बोध्यते, तथाच स्वव्यापकीभूतसाध्यावच्छिन्नस्यैव
हेतोः पक्षधर्मताज्ञानं अनुमितिहेतुरित्याशयेनेदं, व्याप्तिपदस्य
व्यापकत्वपरत्वादित्यपि वदन्ति^(१) ।

‘अनुमितीत्यादि, उदाहरणसदृशोदासीनवाक्यवारणाय ‘जनकान्तं
प्रागुक्तरीत्या प्रकृतन्यायावयवार्थकं, हेत्वादिवारणाय ‘व्याप्यत्वाभि-
मतेत्यादि, व्याप्यत्वाभिमतवद्बुद्धिर्मिको यः ‘नियतः’ प्रतिनियतः प्रकृत-
पक्षे प्रकृतसाध्यवत्त्वाविषयको व्यापकत्वाभिमतस्य सम्बन्धबोधस्तज्जनकत्वं,
अभिसतान्तद्वयञ्चात्र धर्मद्वयोपलक्षकं, तथाच प्रकृतपक्षे प्रकृतसाध्य-
वत्त्वाविषयको य एकपदार्थवद्बुद्धिर्मिकस्तद्व्यापकत्वविशिष्टापरपदार्थव-
त्त्वबोधस्तज्जनकत्वमिति तु फलितार्थः । एतेन यथाश्रुतलक्षणमिदं
उपनयेऽतिव्याप्तमिति निरस्तं । न च प्रकृतपक्षे प्रकृतसाध्याविषयक-

(१) द्रष्टव्यमिति ड० ।

नापि प्रकृतानुमितिहेतुलिङ्गपरामर्शपरवाक्यज्ञ-
न्यज्ञानविषयव्याप्त्युपनायकं वचनं तत्, उपनयाति-
त्वदलवैयर्थ्यं, धूमवान् धूमव्यापकवन्निमान् पर्वतत्वादित्यादिस्थलौय-
प्रतिज्ञावाक्येऽतिव्याप्तिवारकत्वात्, यत्पदवीष्मासहकारेण व्यापकत्वा-
वगाहिवोधजनकावयवत्वं समुदितार्थः इत्यपि कश्चित्, 'सामान्य-
लक्षणे' अन्वय-व्यतिरेकिसाधारणलक्षणे, 'साध्येत्यादि साध्ये साधनस्य
सम्बन्धो व्यापकत्वं, एवमग्रेऽपि, तथाच वीष्मालभ्यसाधनव्यापकत्व-
बोधकावयवत्वं अन्वय्युदाहरणत्वं, वीष्मालभ्यसाध्याभावव्यापकत्वबो-
धकावयवत्वं व्यतिरेक्युदाहरणत्वं, उपनयादेर्युदासाय वीष्मालभ्येति
विशेषणमिति भावः ।

केचित्तु 'साध्येत्यादि, 'सम्बन्धपदं सामानाधिककण्ठार्थकं,
तथाचान्वयव्याप्तितात्पर्यकसाध्य-साधनसामानाधिकरण्यबोधकावय-
वत्वं अन्वय्युदाहरणत्वं, व्यतिरेकव्याप्तितात्पर्यकसाध्याभावसाधना-
भावसामानाधिकरण्यबोधकावयवत्वं व्यतिरेक्युदाहरणत्वं, पञ्चधर्म-
तातात्पर्यकोपनयादेः सामानाधिकरण्यबोधकत्वेऽपि व्याप्तितात्प-
र्यकत्वाभावादेव वारणमित्याहुः । तन्न साधीयः, अन्वयव्याप्तिता-
त्पर्यकावयवत्वस्यैव सम्यक्त्वेनेतरांशवैयर्थ्यात् ।

प्राचीनमतं निरस्यति, 'न्यायेत्यादि न्यायावयवत्वे सति
'दृष्टान्तवचनं' यथापदार्थान्वयिस्वार्थबोधकनामोत्तरप्रथमान्तत्वं,
तेनान्वयिनोव्यतिरेकिणश्च द्वयोर्दृष्टान्तयोः^(१) संग्रहः, 'दृष्टान्तेति
दृष्टान्तशून्योदाहरणेऽव्याप्तिः, 'इत्येव' इत्यत एव, 'व्याप्ति-

व्याप्तेः, अत उपनयाभिधानप्रयोजकजिज्ञासाजन-
कवाक्यमुदाहरणम् । एतदेवान्वयव्यतिरेकव्याप्तिविष-
यत्वविशेषितं विशेषलक्षणद्वयमित्यन्ये । अत्र च व्यभि-
चारवारणाय वीक्षामाहुः । यत्र च सामानाधिकर-

प्रतीतेरिति, वीक्षया तत्समभिव्याहृताग्न्यादिपदेनैव वा अग्न्या-
देरुद्देश्यतावच्छेदकीभूतधूमादिव्यापकत्वांगबोधनादिति भावः ।
'नापीत्यादि, अत्रोक्तरीत्या 'वाक्यान्तं प्रकृतन्यायार्थकं, तथाच
प्रकृतन्यायजन्यज्ञानविषयीभूता या अन्वयतो व्यतिरेकतो वा
व्याप्तिस्तस्याः 'उपनायकं' बोधकं, यत् 'वचनं' अवयवः, 'तत्'
उदाहरणमित्यर्थः, 'उपनयाभिधानेति 'उपनयस्य' प्रकृतहेतुकप्रकृ-
तसाध्यसिद्धौपयिकव्याप्त्यवच्छिन्नप्रकृतलिङ्गवत्त्वेन पक्षबोधकवाक्यस्य,
प्रयोजिका या पक्षः साध्यव्याप्यप्रकृतहेतुमान्न वेत्याकारिका जिज्ञासा
तस्याः 'जनकं' अनुकूलं यत् 'वाक्यं' अवयवः, 'तत्' उदाहरणमित्यर्थः,
एतेन उपनयत्वस्य एकस्याभावे सामान्यलक्षणस्यानुपपत्तिरिति दूषणं
प्रत्युक्तं । 'एतदेवेति साध्यान्वयव्याप्तिविशिष्टप्रकृतहेतुमत्पक्षबोधक-
वाक्याभिधानप्रयोजकजिज्ञासानुकूलावयवत्वं साधीयव्यतिरेकव्या-
प्तिविशिष्टप्रकृतहेतुमत्पक्षबोधकवाक्याभिधानप्रयोजकजिज्ञासानुकू-
लावयवत्वञ्चान्वयिनोव्यतिरेकिणश्च क्रमेणोदाहरणद्वयस्य लक्षण-
मित्यर्थः, उदाहरणस्य न व्याप्यत्वमर्थः, किन्तु सहचारमात्रं, अन्यथा
अन्वयव्याप्तेरेव गमकतया व्यतिरेकव्याप्त्युपन्यासेऽर्थान्तरप्रसङ्गात्,
वीक्षितयत्पदद्वयेन महानसत्व-तदन्यत्वादिविरुद्धरूपाभ्यामधिक-

स्यादेव व्याप्तिस्तत्र न वीष्णा केवलान्वयिन्यभेदानुमाने
 च वीष्णायामपि व्यभिचारतादवस्थामिति तु वयं,
 वीष्णा च यत्पदे न तु तत्पदेऽपि विरूपोपस्थितयो-
 रपि तत्पदेन परामर्शादुद्दिश्यवाचकत्वादिति न व्युत्प-
 त्तिविरोधः, यथा “यद्यत् पापं प्रतिजहि जगन्नाथ

रणद्वयोपस्थितौ अन्वयतोव्यतिरेकतश्च सहचारद्वयोरेव तादृगा-
 धिकरणत्वान्तर्भावेन व्यभिचारशङ्कानिवृत्तिद्वारा गमकतौपयिक-
 त्वेन तदुपन्यासेऽर्थान्तरस्यायोगात् । यो यो धूमवान् स वन्ति-
 मानित्यादौ महानसं तद्विन्नञ्च धूमवत् महानसं तद्विन्नञ्च वन्ति-
 मदित्यादिक्रमेणैवान्वयबोधादित्याचार्याणां मतमुपन्यस्यति, ‘अत्र
 चेति, ‘व्यभिचारवारणाय’ तज्ज्ञानवारणाय इत्यर्थः, तथाच
 उदाहरणवशात् महानसे तदन्यस्मिंश्च सामानाधिकरण्यभावेन
 व्यभिचारज्ञानाभावात् मानसोव्याप्तिग्रह इत्यर्थः, समानविषयत्वेन
 विरोधित्वमित्याशयः । ‘आह्वयित्यनेन सूचितमस्वरसवीजं स्वय-
 मेव प्रकाशयति, ‘यत्र चेति, ‘चः’ लर्थः, ‘व्याप्तिः’ व्यभिचारवि-
 रहः, ‘न वीष्णेति स्यादिति शेषः, कुत्र न वीष्णा अर्हणीया
 इत्यतः ‘केवलेति तथाचेदं प्रमेयं द्रव्याभिन्नं वा गगनत्वादित्यादौ
 हेतुमति साध्यव्यभिचारासम्भवात् तत्रत्योदाहरणे वीष्णाप्रवेशोव्यर्थः
 स्यादस्माकन्तु गमकतोपयुक्तस्य व्यापकत्वस्य बोधकत्वेनैव न त्सार्थक्यं,
 “उदाहरणेन धूमव्यापकता वन्तेरेवोपदर्श्यते” इति परामर्शग्रन्थे

नमस्य तन्म इत्यत्र^(१) । इदञ्च साध्य-साधनोभयाश्र-
यविकलानुपदर्शितान्वय-विपरीतोपदर्शितान्वयानुप-
दर्शितव्यतिरेक-विपरीतोपदर्शितव्यतिरेकभेदादाभा-
सरूपमिति ।

एव स्फुटतरमभिधानादिति भावः । यत्र साधनस्थानेकमधिकरणं
तत्रापि यो यो धूमवान् सोऽग्निमानित्यादौ वीष्मया व्यभिचारश-
ङ्कानिरसनं दुर्घटं, वीप्सितयत्पदाभ्यां महानसं तद्भिन्नञ्च धूमवत्
वक्त्रिमच्चेति बोधनेऽपि धूमवान् कश्चित् वज्रभाववानित्येवं
व्यभिचारग्रहे बाधकाभावादित्याह, 'वीष्मयामपीति, समान-
प्रकारकत्वेनैव विरोधित्वादिति भावः । ननु यदि वीप्सितयच्छब्देन
विधेयधर्मस्य उद्देश्यतावच्छेदकधर्मव्यापकत्वमात्रं प्रत्याख्यते न तु
विरुद्धरूपाभ्यां अधिकरणद्वयं तदा पूर्ववाक्यगतयच्छब्दस्य तच्छब्द-
साकाङ्क्षत्वानुरोधादेकमेव तत्पदं उदाहरणस्य घटकमस्तु तत्र
वीष्मा विफला, अस्माकन्तु उपक्रान्ताभ्यां महानसत्व-तदन्यत्वादिवि-
रुद्धरूपाभ्यामेकेन तच्छब्देन बोधयितुमशक्यत्वादेव तत्र वीष्मा-
स्वीकारः, सकृदुच्चरितेत्यादिव्युत्पत्तेः^(२) बलवत्त्वादित्यतस्तत्रेष्टापत्ति-
माह, 'वीष्मा चेति, प्राचां मतेऽपि वीप्सितयत्पदोपक्रान्ताभ्यां विरुद्ध-
रूपाभ्यामेकेनैव तत्पदेन परामर्शसम्भवात् तत्र वीष्मा विफलैव तैरपि
बुद्धिस्थवाचकतदादिपदातिरिक्तस्थल एव सकृदुच्चरितेत्यादिव्युत्पत्तेः

(१) यद्वयत् प्रापं प्रतिजहीत्यत्रेति क० ।

(२) सकृदुच्चरितः शब्दः सकृदर्थं गमयतीति व्युत्पत्तेरित्यर्थः ।

स्वीकर्तव्यत्वादित्याशयेनाह, 'विरुद्धरूपेति, 'तत्पदेन' एकेन, 'परामर्शात्' परामर्शसम्भवात् । नन्वेकेन तत्पदेन वीप्सितयत्पदोपक्रान्ताभ्यां विरुद्धरूपाभ्यां युगपद्वोधनं न दृष्टचरमतोभवभूतेः काव्यं^(१) अत्र प्रमाणयति, 'यथेति हे जगन्नाथ मे मम यद्यत्पापं तत्प्रतिजहि नमस्य नतस्य नाशय इति वाक्यार्थः । अत्रेदं बोध्यं विरुद्धरूपाभ्यां प्रत्येकपदेन प्रत्येकबोधने यत्र तात्पर्यं तत्र तत्पदेऽपि वीप्सा बोध्या यथा "स स भूमिपाल इत्यादि^(२) यादृशोदाहरणप्रयोगे निग्रहस्तादृशोदाहरणान्याह, 'इदञ्चेति साध्यविकलं, साधनविकलं, उभयविकलं, आश्रयविकलञ्चेति बोध्यं, 'विकलशब्देन सह सर्वत्रान्वयः । साध्यविकलं यथा शब्दोऽनित्योऽमूर्त्तत्वात् यद्यदमूर्त्तं तदनित्यं यथाकाशं,

(१) कल्याणानां त्वमसि महसां भाजनं विश्वमूर्त्ते
धूर्यां लक्ष्मीमथ मयि भृशं धेहि देव प्रसीद ।
यद्यत् पापं प्रतिजहि जगन्नाथ नमस्य तन्मे
भद्रं भद्रं वितर भगवन् भूयसे मङ्गलाय ॥

इति मालतीमाधवे भवभूतिः ।

(२) सञ्चारिणी दीपशिखेव रात्रौ
यं यं व्यतीयाय पतिम्बरा सा ।
नरेन्द्रमार्गादृ इव प्रपेदे
विवर्णभावं स स भूमिपालः ॥

इति रघुवंशे कालिदासः ।

यां यां प्रियां प्रेक्षत कातराक्षीं
सा सा क्रिया नमस्तुखी वभूव ॥

इति माघश्च

साधनविकलं यथा शब्दोऽनित्योगुणत्वात् यो यो गुणत्ववान् सो-
ऽनित्यः यथा घट इत्यत्र, उभयविकलं यथा शब्दोऽनित्योगुणत्वात्
यथाकाशं, आश्रयविकलं यथा स्थिरोभावोऽनित्यः क्रम-यौगपद्याभ्यां
रहितत्वात् यथा शशविषाणं कूर्मरोम वाजिविषाणञ्चेति, 'अनुप-
दर्शितान्वयं' यथा शब्दोऽनित्यः कृतकत्वात् यथा घट इत्यत्र उदा-
हरणानुल्लेखेन केवलदृष्टान्तमात्रकथनं, 'विपरीतोपदर्शितान्वयं' यथा
यदनित्यं तत् कृतकं यथा घट इत्यत्र प्राक्साध्यवाचकपदोल्लेखेन
विपरीतक्रमेण सहचारप्रतिपादनस्थले बोध्यं, 'अनुपदर्शितव्यतिरेकं'
यथा जीवच्छरीरं सात्मकं प्राणादिमत्त्वादिति व्यतिरेकिप्रयोगे
साध्याभाव-साधनाभाववाचकपदानुल्लेखेन बोध्यं, 'विपरीतोपदर्शित-
व्यतिरेकं' यथा यत्राणादिमत्त्वरहितं तन्निरात्मकं यथा घट इत्यत्र
साधनाभाववाचकपदस्य प्राङ्निर्देशेन बोध्यं । ननु विपरीतान्वयव्याप्यु-
पदर्शनेऽपि प्रकृतविवक्षितव्याप्यनुपदर्शनादनुपदर्शितान्वयमेव कथं
स्वातन्त्र्येण तस्योपन्यासः एवं विपरीतोपदर्शितव्यतिरेकस्यापीति
चेत् । न । व्याप्यन्तरोपदर्शनेन विपरीतोपदर्शितव्याप्तिकं, यत्र कापि
व्याप्तिर्न प्रदर्श्यते तदनुपदर्शितव्याप्तिकं, एवमनुपदर्शितव्यतिरेकमिति
भावः । उदाहरणमासस्तु व्याप्तिग्रहाननुकूलतया अर्थान्तरविधया
दोषः विभाजकसूत्रस्थचशब्देन समुच्चितो वा, स्वतन्त्रनिग्रहस्थानान्ये-
तान्यपि यथायथं बोद्धानि ।

केचित्तु 'इदञ्चेत्यादि, अयं धूमवान् वक्तेरित्यादौ साध्य-साधन-
योरन्वयव्याप्तिविकलत्वात् यो यो वक्त्रिमान् स धूमवान् इत्युदाह-
रणमाभासः, अयं वाच्यः प्रमेयत्वादित्यादौ यो यो न प्रमेयः स

उदाहरणानन्तरम्भवतु व्याप्तिस्तथापि व्याप्तं किं
पक्षे वर्तते न वेत्याकाङ्क्षायां व्याप्तस्य पक्षधर्मत्वप्रद-

न ज्ञेयः इत्युदाहरणं अनुपदर्शितसाध्य-साधनान्वयव्याप्तिकत्वादाभासं,
पर्वतो वज्जिमान् धूमादित्यादौ यो यो वज्जिमान् स धूमवानित्यु-
दाहरणं वैपरीत्यक्रमेणोपदर्शितान्वयव्याप्तिकत्वादाभासं, अयमेतद्-
घटाभिन्नः एतद्घटत्वादित्यादौ यो य एतद्घटत्ववान् स एतद्घटा-
भिन्न इत्युदाहरणं अनुपदर्शितव्यतिरेकव्याप्तिकत्वादाभासं, एवं तत्रैव
यो य एतद्घटत्वाभाववान् स एतद्घटाभिन्नत्वाभाववानित्युदाहरणं
विपरीतक्रमेणोपदर्शितव्यतिरेकव्याप्तिकत्वादाभासमित्यर्थः, इत्यञ्च
दृष्टान्तस्य उदाहरणाघटकत्वेऽपि न चतिरिति मन्तव्यम् ।

अतएव प्रकृतहेतुक-प्रकृतसाध्यसिद्ध्यौपयिकव्याप्तिप्रमाया अजन-
कत्वमेव उदाहरणस्याभासताप्रयोजकं पञ्चविधभेदोक्तिस्तु^(१) प्रपञ्चार्य-
मित्यवधेयमिति व्याचक्रुः ।

‘उदाहरणेति तथाच व्याप्तोद्देशः पक्षे वर्तते न वेत्याकाङ्क्षायां
व्याप्त्याश्रयस्य पक्षधर्मत्वं विधीयत इत्यर्थः । वस्तुतोव्याप्तं किमित्यादेः
पक्षः साध्यव्याप्यप्रकृतहेतुमान्न वेत्याकाङ्क्षायां तात्पर्यं तस्या एव
पक्षधर्मिकान्वयबोधजनकोपनयनिवर्त्यत्वादिति ध्येयम् । ‘अनुमिती-
त्यादि प्रकृतहेतुकप्रकृतसाध्यकानुमित्यौपयिकव्याप्तिविशिष्टहेतुम-
त्तया प्रकृतपक्षबोधकावयवत्वमुपनयत्वमित्यर्थः, यथाश्रुते तु शाब्द-
परामर्शस्य व्याप्यवद्भेदविषयकस्य संयोगेन पक्षे व्याप्याप्रकार-

(१) एवम्विधभेदोक्तिस्त्विति घ० ।

र्शनायोपनयः, तच्चानुमितिकारणतृतीयलिङ्गपरामर्श-
जनकावयवत्वमुपनयत्वमिति सामान्यलक्षणं, साध्य-
व्याप्यविशिष्टपक्षबोधकावयवत्वं साध्याभावव्यापका-
भावप्रतियोगिमत्पक्षबोधकावयवत्वञ्च विशेषलक्षण-
द्वयम्, उदाहरणान्त एव प्रयोग इति न वाच्यं तृती-

कस्यानुमितिहेतुत्वाभावादसङ्गतेः, अनुमितिकारणव्यापारसमाना-
कारज्ञानजनकावयवत्वमुपनयत्वमित्यपि कश्चित् । 'सामान्यलक्षणं'
अन्ययुपनय-व्यतिरेक्युपनयसाधारणसामान्यलक्षणमित्यर्थः, 'साध्य-
व्याप्येति साध्यान्वयव्याप्तिविशिष्टेत्यर्थः, 'साध्याभावेति साधीयव्यति-
रेकव्याप्तिविशिष्टप्रकृतहेतुमत्तया पक्षबोधकावयवत्वमित्यर्थः । 'जर-
न्मीमांसकमतं निरस्यति, 'उदाहरणान्त एवेति उदाहरणादित्रि-
कस्यैव प्राभाकरादिनव्यमीमांसकानां सम्मतत्वादिति ध्येयं । 'तृती-
यलिङ्गपरामर्शस्येत्यस्य विवरणं 'व्याप्ति-पक्षधर्मतावगाहिन इति,
'अवयवान्तरात्' उपनयभिन्नावयवान्तरात् । ननु मीमांसकमते
व्याप्तिविशिष्टपक्षधर्मताया ज्ञानं नानुमितिहेतुरतस्तदलाभो न
क्षतिकर इत्यत आह, 'तदनभ्युपगमेऽपीति, 'अलाभादिति व्याप्यता-
वच्छेदकरूपेण पक्षधर्मत्वग्रहस्यानुमितिहेतुतायाः परैरपि स्वीका-
रादिति भावः । 'हेतुवचनात्' हेत्ववयवात्, 'को हेतुरित्यस्य कुतः
इत्याकाङ्क्षायां तात्पर्यं, अन्यथा धूमादित्युत्तरस्य धूमधर्मिकहेतु-
त्वबोधाजनकत्वेन तस्य को हेतुरित्याकाङ्क्षानिवर्त्तकत्वानुपपत्तेः
सङ्ख्यातिरिक्तसुवर्धस्य प्रकृत्यर्थविशेष्यत्वनियमादिति ध्येयं । 'हेतुस्व-

यलिङ्गपरामर्शस्य व्याप्ति-पक्षधर्मतावगाहिनेऽवयवा-
न्तरादलाभात् तदनभ्युपगमेऽपि पक्षधर्मताया अला-
भात् । न च हेतुवचनादेव तदवगमः, तस्य को हेतु-
रित्याकाङ्क्षायां प्रवृत्तत्वेन हेतुस्वरूपोपस्थापकस्यात-

रूपेति लिङ्गनिष्ठहेतुतामात्रबोधकस्येत्यर्थः, 'अतत्परत्वात्' पक्षध-
र्मत्वाबोधकत्वात् । न चैवं पर्वतोद्भूतं महानसत्वादित्याद्यपि प्रयोगः
स्यादिति वाच्यं । तदुत्तरपञ्चम्यर्थज्ञाप्यत्वान्वितसाध्यस्य हेत्वधि-
करणवृत्तिसाध्यताघटकसम्बन्धेनैव पक्षधर्मिकान्वयबोधं प्रति साका-
ङ्क्षत्वादिति भावः । शङ्कते, 'वादिवाक्यादिति हेत्वन्तवाक्यात्पक्षे
लिङ्गज्ञाप्यसाध्यवत्त्वप्रतीतौ यो यज्ज्ञाप्यसाध्यवान् स तद्वान्
इत्यनुमानादेव पक्षस्य हेतुमत्त्वावगम इत्यर्थः, 'तदर्थस्य' हेत्व-
न्तवादिवाक्यार्थस्य, 'असिद्धत्वेन' प्रमितत्वेनानिश्चिततयेत्यर्थः, परेषां
मते अनुमितौ प्रमितसाध्याभाववत्त्वादिनिश्चयस्य विरोधित्ववत्प्रमि-
तहेतुमत्तानिश्चयस्यैव कारणत्वादिति भावः । 'अन्यथेति प्रति-
ज्ञावाक्यात् पक्षस्य साध्यवत्त्वावगतौ तेनैव हेतुना तज्ज्ञापकहेतुम-
त्तादेरप्याक्षेपसम्भवेन हेत्ववयवादेरपि वैयर्थ्यापातादित्यर्थः ।

केचित्तु 'वादिवाक्यादिति, इदं पदं विशिष्टपरामर्शतात्पर्यकं
तत्तात्पर्यकतया वादिप्रयोज्यत्वात् इत्यनुमानादेव विशिष्टपरामर्श-
लाभात् किमुपनयेनेत्यर्थः, 'तदर्थस्येति, तथाच वादिवाक्यार्थस्या-
प्रामाण्यज्ञानास्कन्धितत्वेन उभयवाद्यसिद्धतया अनाक्षेपकत्वं तस्येति
भावः, इति व्याचक्रुः ।

त्परत्वात्, वादिवाक्यादेवाक्षेप इति चेत् । न । तदर्थ-
स्यासिद्धत्वेनानाक्षेपकत्वात् अन्यथा प्रतिज्ञावाक्यादेव
सर्वाक्षेपेऽवयवान्तरविलयात् । प्रतिपाद्यानां स्वत एव
तदवगम इति चेत्, न, तेषां व्युत्पन्नाव्युत्पन्नतया सर्वत्र

शङ्कते, 'प्रतिपाद्यानामिति प्रतिवादिनामिति शेषः, 'स्वत एव'
शब्दं विनैव, 'तदवगमः' पक्षस्य हेतुमत्त्वावगमः, पक्ष-हेत्वोरुपस्थितौ
प्रतिज्ञास्यल इव तयोर्विशिष्टोपनीतभानसम्भवादिति भावः । यत्र
पूर्वं यदवगतं तत्रैव तस्योपनीतभानं त्वया वाच्यं अन्यथा अन्य-
थाख्यात्यापत्तेः, तथाच यस्य प्रतिवादिनः साधनवत्तया पूर्वं पक्षो-
नोपस्थितस्तस्य उक्तक्रमेण स्वतः पूज्य हेतुमत्त्वग्रहो न सम्भवती-
त्याशयेन समाधत्ते, 'तेषामिति, व्युत्पत्तिः' पक्षधर्मिकहेतुम-
त्त्वज्ञानाधीनहेतुस्यतिः, परन्तु तस्या एव पक्षधर्मिकहेतुमत्त्वोपनीत-
भानहेतुत्वादिति भावः । साधनाद्युपनीतभानं प्रति साधनाद्युपस्थि-
तिमात्रस्य हेतुत्वमिति मतेऽप्याह, 'प्रतिपादकेनेति वादिनेति शेषः,
'स्वव्यापारस्य' व्याप्तोहेतुः पक्षे वर्तते न वेत्याकाङ्क्षानिवर्त्तकवाक्यस्य,
'निर्वाहयितुं' सम्पादयितुमौचित्यादित्यर्थः, 'प्रतिपादयितुमिति
कचित् पाठः तत्र प्रापयितुमौचित्यादित्यर्थः, 'अन्यथा' प्रतिपा-
द्याकाङ्क्षानिवर्त्तकवाक्यस्य वादिनानभिधाने, 'अवयवान्तरे' हेत्वादौ,
'एवं प्रसङ्गः' अनभिधानप्रसङ्गः,^(१) प्रतिज्ञोत्तरं कुतः इत्याकाङ्क्षानि-
वर्त्तकस्यापि वाक्यस्थानावश्यकत्वादिति भावः ।

(१) अयं प्रसङ्गः अनभिधानप्रसङ्गः इति घ०, ड० ।

तदसम्भवात् प्रतिपादकेन स्वव्यापारस्य निर्वाहयितु-
मुचितत्वाच्च अन्यथावयवान्तरेऽप्येवं प्रसङ्गादिति ।

उपनयानन्तरं निगमनं तच्चानुमितिहेतुलिङ्ग-
परामर्शप्रयोजकशब्दज्ञानकारणव्याप्ति-पक्षताधीप्रयु-
क्तसाध्यधीजनकं वाक्यम् । न च व्याप्ति-पक्षधर्म-

परे तु 'प्रतिपाद्यानां' ओद्दृष्टां, 'स्वत एव तदवगमः' पर-
प्रयुक्ततत्तदर्थशक्तपदं विनापि स्वकल्पितशब्दादनुमानाद्वा व्याप्ति-
पक्षधर्मत्वावगम इत्यर्थः, 'तेषामिति प्रतिपाद्यानामित्यर्थः, 'व्युत्प-
न्नेति, तथाच ये व्युत्पन्ना भवन्ति तान् प्रति आपातत उपनय-
प्रयोगो न क्रियतां ये तु तादृशा न भवन्ति तान् प्रति अवश्यं
उपनयादिप्रयोगः करणीय इत्यर्थः । व्युत्पन्नं प्रत्येव उपनयः
कर्तव्य इत्याह, 'प्रतिपादकेनेति, यदि च व्युत्पन्नतया तस्य स्वत-
एव तदर्थ्यावगम इति नोपनयापेक्षा इति ब्रूयात्तदाप्याह,
'अन्यथेति, इति प्राहुः ।

'उपनयेति उपनयनिरूपणानन्तरं निगमनं निरूप्यत इत्यर्थः,
एतेनावसरसङ्गतिः सूचितेति ध्येयं । 'अनुमितीत्यादि, निग-
मनसदृशस्य उदासीनवाक्यस्य वारणाय 'कारणान्तं प्रागुक्तरीत्या
प्रकृतन्यायावयवार्थकं, प्रतिज्ञादिवारणाय 'व्याप्तीत्यादि, 'प्रयुक्तत्वं'
ज्ञाप्यत्वं, तथाच व्याप्ति-पक्षधर्मताविशिष्टप्रकृतहेतुधीज्ञाप्यत्वप्रकार-
कप्रकृतसाध्यधीजनकत्वमर्थः, धूमादक्लिमत्सधर्मायं वक्लिमान् धूमा-
दित्यादौ प्रतिज्ञादिव्युदासाय विशिष्टान्तं, अत्र तादृशहेतुज्ञान-

तयोश्चतुर्भिरेवावयवैः पर्याप्तेः किं तेनेति वाच्यम् ।
अबाधितासत्प्रतिपक्षितत्वयोरलाभे चतुर्णामप्यपर्यव-
सानात् । अथाभिधानाभिधेययोर्व्याप्ति-पक्षधर्मताव-
ल्लिङ्गप्रतिपादनादेव पर्यवसानेनावयवान्तराणां नि-
राकाङ्क्षत्वं विपरीतशङ्कानिवृत्तेरपि तत एव लाभात्

निरूपिताखण्डजन्यत्वनिवेशान्न व्याप्तिपदवैयर्थ्यं, वक्त्रिव्याप्ति पक्षध-
र्मताविशिष्टधूमाद्वक्त्रिमानयं वक्त्रिमानित्यादिका तु प्रतिज्ञा प्रकृत-
हेतौ पक्षधर्मतां बोधयन्त्यपि न प्रकृतव्याप्तिविशिष्टपक्षधर्मतां बोध-
यतीति न तच्चाति प्रसङ्गः । वस्तुतोव्याप्ति-पक्षधर्मतापदयोर्वैकल्पि-
कोपादानात् लक्षणद्वये तात्पर्यं, वक्त्रिव्याप्तिविशिष्टेत्यादिका तु न
प्रतिज्ञा सम्प्रदायविरोधादिति तत्त्वं । 'चतुर्भिः' प्रतिज्ञाद्यैः, 'पर्याप्तेः'
प्राप्तेः, 'अपर्यवसानादिति अनुमितिसामग्र्यसम्भवादित्यर्थः । 'पर्याप्तेः'
ज्ञानजनकत्वात्, 'अपर्यवसानात्' अनुमित्युपधायकज्ञानाजनकत्वा-
दित्यर्थः, इति कश्चित् । ननु प्रतीत्यनुपपत्ति-प्रतीतानुपपत्त्योर-
भावेनावयवान्तरेण सह निगमनस्य आकाङ्क्षाविरहः^(१) इत्या-
शङ्कते, 'अथेति, 'अभिधानं' प्रतीतिः व्याप्ति-पक्षधर्मताविशि-
ष्टल्लिङ्गानुभव इति यावत्, 'अभिधेयं' तथाभूतल्लिङ्गं, 'निराका-
ङ्क्षत्वमिति तथाच चतुर्णामवयवानां व्याप्ति-पक्षधर्मताप्रतिपादनेन

(१) अवयवान्तरार्थविशेष्यक-निगमनार्थप्रकारकबोधजनकतावच्छेदकी-
भूतानुपूर्वोक्तत्वं नास्तीत्यर्थः ।

अन्यथा निगमनेनापि तद्वारणात्, न हि तत् विशेष-
दर्शनमनादृत्यैव तन्निवर्त्तकम् । सिद्धनिर्देशतया वारय-
तीति चेत् । न । स्वरूपमात्राभिधानात् साध्यत्वानुस्थितौ
तस्मादिति हेतुविभक्त्यनन्वयप्रसङ्गाच्चेति चेत् । न । व्या-

पर्थ्यवसानात् निगमनाकाङ्क्षा तेषां नास्तीत्यर्थः । ननु साध्याभाववत्प-
चज्ञानसत्त्वे तादृशज्ञानसत्त्वेऽप्यनुमितिसामग्र्यसम्पादनात् तत्सम्पत्त्यर्थं
निगमनाकाङ्क्षास्ति तेषामित्यत आह, 'विपरीतेति पक्षादेः
साध्याभावादिमत्त्वशङ्कानिवृत्तेरपीत्यर्थः, 'तत एव' व्याप्ति-पक्षधर्म-
ताविशिष्टलिङ्गप्रतिपादनादेवेत्यर्थः, 'तत एव' प्रतिज्ञाजन्यज्ञानादेव
इत्यर्थ इति कश्चित् । 'निगमनेनापीति, अबाधितत्वादेरपदार्थतया
निगमनेन तस्य बोधयितुमशक्यत्वादिति भावः । 'तत्' निगमनं,
'तन्निवर्त्तकं' विपरीतशङ्कानिवर्त्तकं, शङ्कते, 'सिद्धनिर्देशतयेति
सिद्धत्वविशिष्टस्य बोधकतया निगमनं विपरीतशङ्कां वारयतीत्यर्थः ।
सिद्धत्वमत्र प्रमाणसिद्धत्वं वा, हेतुविभक्तिसाकाङ्क्षत्वरूपस्य साध्य-
स्याभाववत्त्वं वा, हेतुजिज्ञासाविरोधिवोधविषयत्वं वा प्रथमे
'स्वरूपमात्रेति अयं तस्माद्वक्त्रिमानित्यादौ वज्रादिपदेन वज्रा-
दिस्वरूपमात्रस्याभिधानादित्यर्थः । द्वितीये 'साध्यत्वेति वज्रादौ
हेतुविभक्तिसाकाङ्क्षत्वस्यानुपस्थितौ तस्मादित्यादिहेतुविभक्त्यर्थस्य
वज्रादावनन्वयप्रसङ्गादित्यर्थः । शाब्दबोधमात्रं प्रत्येवाकाङ्क्षाधियः
कारणत्वादिति भावः । 'तदभावेति तयोर्बाधितत्व-सम्प्रतिपक्षि-
तत्वयोः अभावबोधन इत्यर्थः, 'समीहितानिर्व्वाहात्' अनुमिति-

सिपक्षधर्मज्ञानेऽपि बाध-सत्प्रतिपक्षबुद्धेः साध्यज्ञा-
नानुत्पत्तिदर्शनात् तदभावाबोधने समीहितानिर्व्वा-
हात् । अथ बाधादिविरहस्य प्रयोजकत्वं न तु तद्वो-
धस्य मानाभावादसिद्धेश्च इति किमर्थं बाधादिविरहा-

रूपफलानिर्व्वाहात्, अत्र पक्षादेः साध्यादिमत्वस्य उपनयान्तैः चतु-
र्भिरेव सिद्धत्वात् पुनर्निगमनेन तदभिधानस्य “सिद्धे सत्यारम्भो-
नियमाय” इतिव्युत्पत्तिबलेनावधितत्वासत्प्रतिपक्षितत्वबोधकत्वं, स
च बोधो यदि शाब्दस्तदा निगमनस्यतच्छब्दस्य व्याप्ति-पक्षधर्म-
ताविशिष्ट इवावाधितत्वासत्प्रतिपक्षितत्वविशिष्टेऽपि हेतौ शक्त्या
निरुद्धलक्षणया वा सम्पादनीयः इतरथा तादृशतच्छब्दोपस्था-
पितेन व्याप्तिविशिष्टपक्षधर्मत्वेन हेतुनैवावाधितत्वासत्प्रतिपक्षितत्व-
योरानुमानिकोबोधः प्रकृतहेतौ द्रष्टव्यः, ‘बाधादिविरहस्येति बाधा-
दिनिश्चयाभावस्येत्यर्थः, ‘तद्वोधस्य’ बाधाद्यभाववत्त्वबोधस्य । अथान्व-
याद्यनुविधानमेव मानमत आह, ‘असिद्धेश्चेति अन्वयाद्यनुविधा-
नासिद्धेश्चेत्यर्थः, ‘यद्वगमे’ यन्निश्चये, तथाचानुमितिर्वाधाभाव-
ज्ञानजन्या बाधनिश्चयप्रतिबध्यत्वादित्यनुमानमेव अवाधितत्वादि-
ज्ञानस्य हेतुतायां मानमिति भावः । ननु बाधः पर्व्वते वज्रभाव-
रूपः तदभावोवक्लिः पर्व्वते तज्ज्ञानस्य पर्व्वतोवक्लिमान् इति
सिद्धात्मकस्य सत्त्वे कथं ततोऽनुमितिः । न च बाधाभावस्य
वक्लिरूपस्य वज्रभावाभावत्वेन ज्ञानं कारणं तच्च न सिद्धात्मकं एवं
वज्रभाववत्त्वप्रकारकप्रमाविशेष्यत्वज्ञानं प्रतिबन्धकं तादृशविशेष्यत्वा-

बोधनीय इति चेत् । न । यद्वगमे सति यन्न भवति
तत्तदभावज्ञानसाध्यमिति व्याप्तेः । न चानन्वयः, तस्मा-
दित्यन्वयवत्त्वादेव हेत्वनाकाङ्क्षितत्वलक्षणसिद्धत्वज्ञानात्
न त्वन्वयात् प्राक् । इह केचित् यथा तस्मादिति सर्व-

भावज्ञानं हेतुः तच्च निगमनसाध्यं सिद्धानात्मकमिति वाच्यं । तस्य
कारणत्वे मानाभावात् स्वीयस्थले व्यभिचाराच्च इति चेत् । न ।
यद्वगमे यन्न भवति तत्तदभावज्ञाने सत्येव सम्भवतीति प्रयोक्तृ-
तात्पर्यात्, तथाच यज्ज्ञानं यत्प्रतिबन्धकं तदभावज्ञाने तज्ज्ञान-
प्रतिरोधेन तदवश्यं भवतीति तस्य कारणत्वे मानाभावात्, निग-
मनादेव बाधविरहो यदा बोध्यते तदा प्रतिबन्धकबाधज्ञानाभावे
अनुमितिरविकलैव स्यात् इति, इत्यच्च बाधज्ञानप्रतिबन्धकद्वारा
बाधाभावज्ञानस्य प्रयोजकत्वं न तस्य कारणत्वं अग्रे च साध्यमित्यस्य
प्रयोज्यत्वमर्थो बोध्य इति रमणीयं^(१) उक्ताबाधितत्वज्ञानमन्वय-
व्यतिरेकाभ्यां स्वार्थातिरिक्तस्थले हेतुस्तच्च निगमनाद्भवतीति यथा-
श्रुतग्रन्थ एव साधुरित्यपि कश्चित् । तृतीयमाशङ्कते, 'न चेति
हेतुजिज्ञासाविरोधिवोधविषयत्वरूपस्य सिद्धत्वस्थापदार्थत्वेन साध्यांश्च
तदन्वयायोग इत्यर्थः, उक्तरूपं सिद्धत्वं न निगमनेन बोध्यते किन्तु
ततः साध्यव्याप्त्यादिविशिष्टलिङ्गज्ञाप्यत्वप्रतीतौ तेनैव हेतुना प्रकृत-
साध्यस्य निरुक्तसिद्धत्वमनुमीयते इत्याशयेन परिहरति, 'तस्मादि-

नाम्ना हेतोः परामर्शः पूर्वोक्ताशेषरूपलाभाय तथा
साध्यांशस्यापि तथेति सर्वनाम्ना सिद्धस्यल इव विरो-
धादिवारणाय युक्त इत्याहुः । तन्न । तथेति स्वरूपे
प्रकारे सादृश्ये वा, आद्ये तथाचायमिति प्रक्रममात्

त्यन्वयवत्तादिति, 'हेत्वनाकाङ्क्षितत्वं' हेत्वाकाङ्क्षाविरोधिविषयत्वं,
'प्राक्' अनुत्तरं, इदञ्च निगमनात् सिद्धत्वज्ञानं भवतीत्यभि-
प्रायेण । हेत्वन्वयबोधानन्तरं मानससिद्धत्वज्ञानं भवति न तु
तस्मात्पदार्थमाने तस्मात्काले वा इत्याशयेन परिहरति, 'तस्मा-
दिति कश्चित् ।

तस्मात्तथेतिनिगमनाकारं ये वदन्ति तन्मतं दूषयितुमुप-
न्यस्यति, 'इह केचिदिति पूर्वोक्तं व्याप्ति-पक्षधर्मतात्मकं यद्वेतोर-
शेषरूपं तस्माभायेत्यर्थः, 'सिद्धस्यल इवेति चैत्रः पक्षत्ययमपि तथे-
त्यादिलोकप्रसिद्धस्यल इवेत्यर्थः । 'सिद्धं' पक्षादि, तथाच वज्जि-
व्याप्यधूमवानयमित्यत्र यथा इदमादिप्रसिद्धपक्षस्थोपस्थापनं तद्वदि-
हापीत्यन्ये । 'विरोधादीति अयं तस्माद्वज्जिमानित्युक्तौ हि पक्षे
साधनीयस्य^(१) साध्यवत्त्वस्यालाभेन उपसंहारविरोधः साध्यवदभेद-
प्राप्त्या अर्थान्तरञ्च स्यात् अतस्तद्वारणाय 'साध्यांशस्यापि तथेति
सर्वनाम्ना युक्तः परामर्श इत्यन्वयः, 'स्वरूप इति सादृश्यपदान्तर-
प्रयुक्तप्रक्रान्तस्वरूप इत्यर्थः, 'प्रकार इति अव्यवहितपूर्वबुद्धेर्विशेष्यत्वं
सति प्रकार इत्यर्थः, तथासत्येवायिमग्रन्यसङ्गतेरिति ध्येयं ।

(१) बोधनीयस्येति क० ।

तथेति हेतुमानित्यर्थः स्यात् तथाचानन्वयः, न हि हेतुमत्त्वादेव हेतुमत्त्वमित्यन्वितं, न द्वितीयः, सामान्ये न पक्षस्यापि अन्वयव्याप्तौ प्रवेशात् तत्प्रकारान्वयस्तत्रैवेत्यनन्वयात्, अतएव न तृतीयोऽपि, अभेदानु-

‘सादृश्यद्विति अव्यवहितपूर्ववृद्धिविशेष्यस्य सादृश्य इत्यर्थः, ‘न हीति, अभेदेनोद्देश्यविधेयभावस्येव ज्ञाप्य-ज्ञापकभावस्याप्यव्युत्पन्नत्वात् धूमो धूम इतिवत् धूमाद्धूमवान् इति शाब्दधियोऽपि असत्त्वादित्यभिमानः । वस्तुतः ‘अनन्वय इत्यस्य उपनयार्थे निगमनार्थस्याप्यनन्वयप्रसङ्गइत्यर्थः, ‘हेतुमत्त्वादित्यस्य ल्यब्लोपे पञ्चम्या हेतुमत्त्वं धर्मितावच्छेदकौकृत्येत्यर्थकत्वात् दण्डवान् रक्तदण्डवान् इत्यत्रेव साध्यव्याप्यहेतुमान् पक्षः हेतुज्ञाप्यहेतुमान् इत्यन्वयेऽपि उद्देश्यतावच्छेदक-विधेययोरैक्येन निराकाङ्क्षत्वस्वीकारादिति ध्येयं । ‘सामान्येन’ साधनाधिकरणत्वादिना, ‘तत्प्रकारेति निगमनप्रकारौभूतस्य तस्मादित्यस्य, ‘अन्वयः’, ‘तत्रैव’ पक्ष एव, ‘इत्यनन्वयात्’ अयोग्यत्वादित्यर्थः, पक्षस्य लिङ्गाव्यापकत्वेन तज्ज्ञाप्यत्वबाधादिति भावः । ‘अभेदानुमाने चेति, ‘चः’ केवलान्वयिनौत्यनन्तरं योज्यः, तथाच पर्वतः पर्वताभिन्नः पर्वतत्वादित्यादौ पर्वतसादृश्यस्य पर्वतत्वाव्यापकत्वेन पर्वतत्वाज्ञाप्यतया केवलान्वयिपक्षके च प्रमेयं वङ्गिमत् धूमादित्यादौ पक्षौभूतस्य प्रमेयस्य सादृश्यस्याप्रसिद्ध्या तदुभयस्थले तस्मात् तथेति निगमनेन लिङ्गज्ञाप्यत्वविशिष्टस्य पक्षसादृश्यस्य बोधयितुमशक्यत्वादित्यर्थः, पक्षसादृश्यस्य तद्भेदगर्भत्वादिति भावः ।

माने चान्वयिनि तस्मात्तयेति सादृश्याभावात् बहू-
नाञ्च प्रक्रमे विशेष्यानन्वयात्, वादिवाक्ये च योग्यता-
न्वयेऽतिप्रसङ्गात् तस्मादित्यत्र तु विभक्त्यर्थानन्वयादेव

अन्ये तु 'सामान्येन' व्याप्यन्तर्निविष्टसामानाधिकरणघटक-
त्वेनेत्यर्थः, 'अत एव' व्याप्यन्तर्निविष्टसामानाधिकरणघटकतया
पक्षस्योपस्थापनादेवेत्यर्थः, 'अभेदानुमाने चान्वयिनीति, विशेषण-
विशेष्यभावेनान्वयात् घटोद्भव्याभिन्नः द्रव्यत्वादित्यादिस्थलोपसंग्रहः
अन्वयिनीत्युपादानाच्च पक्षाघटितव्यतिरेकव्याप्तिवारणं व्यतिरे-
कव्याप्तिबोधकोपनयस्यपदार्थपरामर्शकतत्पदेन पक्षपरामर्शासम्भवा-
दिति व्याचक्रुः ।

ननु तथापदं बुद्धिस्थत्वेनैव वक्तिं बोधयिष्यतीति तत्रैव तस्मा-
दित्यस्यान्वयोभविष्यतीत्यत आह, 'बहूनाञ्चेति, 'प्रक्रमे' बुद्धिस्थत्वे,
'विशेष्येति साध्यतावच्छेदकधर्मावच्छिन्ने तस्मादित्यस्य अन्वयायो-
गादित्यर्थः । ननु साध्यवद्भिन्ने बुद्धिस्थे लिङ्गज्ञाप्यत्वस्य बाधादेव
प्रकृतसाध्ये तस्मादित्यस्यान्वयोभवितेत्यत आह, 'वादिवाक्ये चेति,
'अतिप्रसङ्गादिति इदं स्नेहवत् गुणादित्यपि प्रयोगापातादित्यर्थः,
स्नेहस्य जलान्यवृत्तिगुणज्ञाप्यत्वबाधकवशादेव जलान्यावृत्तिगुणज्ञा-
प्यत्वमादाय तादृशवाक्यस्य प्रामाण्यसम्भवादिति भावः । यदा ननु
तथाशब्दस्य पूर्वप्रक्रान्तपरत्वेन साध्य एव तादृशि तस्मादित्यस्या-
न्वयोभवितेत्यत आह, 'बहूनाञ्चेति, 'विशेष्येति साध्यस्येव व्याप्या-

नियमः तस्मादनित्य इत्यभिधाने विशिष्य सिद्धताव-
गम्यते पूर्वं साध्यतयोक्तस्य समर्थहेतुसम्बन्धेन पुन-
रुत्कीर्तनात् अन्यथा तद्वैयर्थ्यात् । संशय-प्रयोजनादय-
स्त्ववयवलक्षणाभावादेव नावयवाः किन्तु न्यायाङ्ग-

देरपि प्रकान्तत्वेन तत्रापि तस्मादित्यस्यान्वयप्रसङ्गादित्यर्थः । ननु
व्याप्तादौ लिङ्गज्ञाप्यत्वस्य बाधादेव तत्र तस्मादित्यस्यान्वयो न
भविष्यतीत्यत आह, 'वादिवाक्ये चेति, 'चः' अण्यर्थे, तथाच
वादिवाक्ये योग्यतयान्वयेऽप्यतिप्रसङ्गात् पूर्वप्रकान्ते व्याप्तिघटक-
प्रतियोगित्वादौ तस्मादित्यस्यान्वयप्रसङ्गादित्यर्थः, प्रतियोगित्वा-
देरपि लिङ्गज्ञाप्यत्वसम्भवादिति भावः । यद्यपि पूर्वापस्थितं साध्य-
मेव विशेषतस्तथाशब्देन परामृष्टमित्युक्तौ न कश्चिदोषः, तथापि
सादृश्यादिशक्तस्य तस्य वक्तृत्वादिप्रकारेण बोधकतायामाधुनिक-
लक्षणापत्तेर्नैष प्रकारोयुक्त इति ध्येयं । ननु तथाशब्दस्येव तच्छ-
ब्दस्यापि पूर्वापस्थितयावदस्तुपरामर्शकत्वसम्भवेन तस्मादित्यतोऽपि
कुतः साधनज्ञाप्यत्वस्यैवावगतिरित्यत आह, 'तस्मादित्यत्रेति,
त्वन्मतेऽपि उपस्थितपक्षादिज्ञाप्यत्वस्य प्रकृतसाधे बाधादेव तत्रो-
पस्थितलिङ्गमात्रपरामर्शकत्वं तत्पदस्येति भावः । ननु तथाशब्दात्
बुद्धिस्थत्वेन साध्यस्योपस्थितौ तत्र विशिष्टहेतुज्ञाप्यत्वस्यान्वये
कोदोष इत्यत आह, 'तस्मादनित्य इत्यभिधाने चेति, 'चः' हेतौ,
'विशिष्य' साध्यतावच्छेदकरूपेण, 'सिद्धता' हेत्वनाकाङ्क्षितत्वं, अव-
गतेः प्रकारमाह, 'पूर्वमिति, 'समर्थः' व्याप्ति-पक्षधर्मताविशिष्टो

तयोपयुज्यन्तइति नाधिक्यं, कण्टकोद्धारस्य च न सार्व-
त्रिकत्वं समयविशेषोपयोगित्वादिति ।

इति श्रीमद्भक्तेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ
अनुमानाख्य-द्वितीयखण्डे अवयवनिरूपणं ।

हेतुः तज्ज्ञाप्यत्वेनेत्यर्थः, तथाच वक्त्रिर्हेतुनाकाङ्क्षितः स्वव्याप्या-
दिविशिष्टधूमज्ञाप्यत्वात्तादृशज्ञाप्यतयोपस्थितत्वादेत्यादिक्रमेण वक्त्रि-
त्वाद्यवच्छिन्नस्य सिद्धभाव इत्यर्थमेव बुद्धिस्थत्वेन साध्यस्य पराम-
र्शकत्वं तथाशब्दस्य नोचितमिति भावः । अथ मासु सिद्धत्वस्य
विशिष्टानवगमः ततः किमत आह, 'अन्यथेति तस्य निगमनस्य
वैग्रथादित्यर्थः । ननु साध्यसंग्रहप्रयोजनहेतुकाकाङ्क्षादीनामपि
अवयवत्वात् तेषामपि विभागोयुक्त इत्यवयवानां पञ्चताभिधा-
नमसङ्गतमत आह, 'संग्रहेति, 'प्रयोजनं' तत्त्वनिर्णयः, 'लक्षणेति,
वाक्यत्वगर्भस्यावयवत्वस्य तत्रासत्त्वादिति भावः । 'उपयुज्यन्त इति
प्रयोजनस्यापि स्वगोचरेच्छाद्वारैव न्यायोपयोगित्वं, तत्त्वबुभुक्षैवात्र
प्रयोजनपदार्थः, 'कण्टकोद्धारस्येति को वक्त्रिमान् कुतो धूमात्
कथमस्य गमकत्वमित्यादिप्रश्नव्यञ्जककिम्पदस्तोमस्येत्यर्थः ।

इति श्रीमथुरानाथतर्कवागीशविरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये
अनुमानाख्य-द्वितीयखण्डरहस्ये अवयवरहस्यं ।

अथ हेत्वाभासनिरूपणं ।

अथ हेत्वाभासास्तत्त्वनिर्णय-विजयप्रयोजकत्वान्नि-
रूप्यन्ते ।

अथ हेत्वाभासरहस्यं ।

न्याय-तदवयवान् निरूप्य प्रसङ्गसङ्गत्या हेत्वाभासं^(१) निरूपयितुं
श्रियावधानाय प्रतिजानीते,^(२) ‘अथेति न्याय-तदवयवयोर्निरूप-

(१) व्याप्ति-पक्षधर्मेताविरहविशिष्टहेतुमित्यर्थः ।

(२) अत्र वर्तमानकालाव्यवहितोत्तरकालकर्तव्यत्वप्रकारकबोधानुकूल-
व्यापारः प्रतिज्ञापदार्थः, “अथ हेत्वाभासास्तत्त्वनिर्णय-विजयप्रयोगकत्वा-
न्निरूप्यन्ते” इति मूलमेव प्रतिज्ञा तत्र निरूप्यन्त इत्यत्र वर्तमानसामी-
प्यार्थकलट्प्रत्ययस्य वर्तमानकालाव्यवहितोत्तरकालीनत्वमर्थः, तस्य च
निरूपणपदार्थेऽन्वयः, तथाच वर्तमानकालाव्यवहितोत्तरकालीनं तत्त्व-
निर्णय-विजयप्रयोजकत्वज्ञानजन्यजिज्ञासाधीनं यन्निरूपणं तद्विषयतावन्तः
हेत्वाभासाः इति समुदितवाक्यजन्यशाब्दबोधः, तत्त्वनिर्णय-विजयप्रयोज-
कत्वादित्यत्र तज्ज्ञानजन्यजिज्ञासाधीनत्वं षष्ठ्यर्थः, निरूप्यन्त इत्यत्र
कर्मवाच्यकलट्प्रत्ययस्य विषयत्वरूपं कर्मत्वमर्थः, श्रियसमवेतज्ञानानु-
कूलव्यापारोधात्वर्थः, श्रियसमवेतज्ञानविषयतापन्नेषु हेत्वाभासेषु याचि-
तमण्डनन्यायेऽतादृशज्ञानानुकूलव्यापारविषयतान्वयः । केषाञ्चित् अन्ते-
वासिनां के हेत्वाभासा इति जिज्ञासया केषाञ्चित् के तत्त्वनिर्णय-विजय-
प्रयोजका इति जिज्ञासया हेत्वाभासनिरूपणात् हेत्वाभासत्वरूप-
प्रसङ्गस्य तत्त्वनिर्णय-विजयरूपैककार्यकारित्वरूपैककार्यानुकूलत्वस्य च
अनन्तराभिधानप्रयोजकजिज्ञासाजनकज्ञानविषयत्वात् अत्र सङ्गतित्व-
मिति विभावनीयं ।

तच्चानुमितिकारणीभूताभावप्रतियोगियथार्थज्ञान-
विषयत्वं, यद्विषयत्वेन लिङ्गज्ञानस्यानुमितिप्रतिबन्ध-

णानन्तरमित्यर्थः, 'हेत्वाभासाः' आभासीभूता हेतवो दुष्टहेतव-
इति यावत्, हेतुवदाभासन्त इति व्युत्पत्तेः, न तु हेतोराभासा-
दोषविशेषाः 'ते चेत्यादिना हेतुविभागानुपपत्तेः । निरूपणप्रयो-
जनं दर्शयति, 'तत्त्वनिर्णयेति, अवास्तवकोटिनिश्चायकहेतौ दुष्ट-
त्वज्ञाने वास्तवकोटिनिश्चयो भवतीति तत्त्वनिर्णयप्रयोजकत्वमिति
भावः । स्वार्थ-वादयोरुक्त्वा जल्प-वितण्डयोराह, ^(१) 'विजयेति,
तदिदं' ^(२) उद्भावनद्वारा, परोक्तहेतौ दुष्टत्वोद्भावेन तस्य निग्र-
हादिति भावः । एवञ्च तत्त्वनिर्णयादिलक्षणेकार्यानुकूलत्व-
मपि प्रकृते सङ्गतिः सम्भवति, यथा हि स्वीयसन्न्यायप्रयोगे
तत्त्वनिर्णयोविजयश्च तथा परकीयहेतौ दुष्टत्वोद्भावेऽपि तत्त्व-
निर्णयोविजयश्चेति बोध्यं । हेत्वाभासरूपदोषवत्त्वं दुष्टत्वमिति
दुष्टहेतुलक्षणं स्फुटमेवेति तदुपैक्ष्य तद्घटकमेव दोषं लक्षयति,
'तत्रेति, 'तत्र' निरूपणे, इदं हेत्वाभासत्वं हेतुदोषत्वमित्यन्वयि,

(१) स्वमतव्यवस्थापनं स्वार्थः, तत्त्वबुभुक्षोः कथा वादः, वास्तवकोटि-
कनिश्चयपूर्वकपरमतनिराकरणं जल्पः, परमतनिराकरणमत्र वितण्डः
अतएवोक्तं ।

“स्वपक्षस्थापनाहीना विजिगीषोः कथा तु या ।

सा वितण्डेति विज्ञेया वादिनिग्रहकारिणी” इति ॥

(२) तस्य विजयप्रयोजकत्वमर्थः ।

कत्वं, ज्ञायमानं सद्नुमितिप्रतिबन्धकं यत् तत्त्वं वा हेत्वाभासत्वं । दशाविशेषे हेत्वोरेवासाधारण-सत्प्र-

विषयत्वं सप्तम्यर्थः, 'अनुमितीति अनुमितिप्रतिबन्धकयथार्थज्ञानविषयत्वमित्यर्थः, भवति च साध्याभाववान् पक्षः साध्याभावव्याप्यवान् पक्ष इति ज्ञाने चानुमितिप्रतिबन्ध इति साध्याभाववत्पक्षरूपस्य बाधस्य साध्याभावव्याप्यवत्पक्षरूपस्य सत्प्रतिपक्षस्य हेत्वाभासत्वं, पर्वतो वज्रभाववान् पर्वतो वज्रभावव्याप्यवान् इति भ्रमाद्यनुमितिप्रतिबन्धात्तद्विषयत्वमादाय सङ्घेतावतिव्याप्तिवारणाय 'यथार्थेति, यथार्थत्वञ्च सर्वांशे भ्रमभिन्नत्वं^(१) तेनांशिकयथार्थत्वमादाय न तद्दोषतादवस्थं^(२) । न च साध्याभाववद्वृत्ति-साधनादिरूपे व्यभिचारादावव्याप्तिः तस्य व्याप्त्यादिज्ञानाभावेनान्यथासिद्धतया अनुमित्यप्रतिबन्धकत्वादिति वाच्यं । अनुमितिपदस्य साध्यव्याप्यहेतुमान् पक्षः साध्यवांश्चेति समूहालम्बनानुमितिपरत्वादिति भावः ।

केचित्तु दुष्टहेतोरेव दूदं लक्षणं । न चैवं बाधितादावव्याप्तिः^(३)

(१) भ्रमसामान्यभिन्नत्वमिति ग० ।

(२) खानधिकरणवृत्तित्व-खनिष्ठविषयतानिरूपितत्वोभयसम्बन्धेन स्वविशिष्टविशेष्यत्वानिरूपकत्वं, ईश्वरज्ञानावृत्तिविषयतावदन्यत्वं वा भ्रमसामान्यभिन्नत्वं, स्वपदश्चात्र साध्याभावादियरं ।

(३) ऋदो वज्रिमान् धूमादित्यादिस्थले बाधितधूमहेतौ स्वरूपासिद्धिमादाय लक्षणगमनसम्भवेन उत्पत्तिकालौनो घटोगन्धवान् पृथिवीत्वादित्याद्यसङ्कीर्णबाधस्थले हेतावव्याप्तिर्द्रष्टव्या ।

तिपक्षयोरभासत्वात्तदुद्धेरेष्यनुमितिप्रतिबन्धकत्वम् ।
यद्यपि बाध-सत्प्रतिपक्षयोः प्रत्यक्ष-शाब्दज्ञानप्रतिबन्ध-
कत्वान्न लिङ्गभासत्वं तथापि ज्ञायमानस्याभासस्यात्र
लक्षणं ।

तत्र हेत्वन्तर्भावेनाप्रतिबन्धकत्वादिति वाच्यं । यथाकथञ्चित्
समूहालम्बनज्ञानविषयत्वमादायैव^(१) तत्र लक्षणसमन्वयात् । न
चैवमनुमितिप्रतिबन्धकसमूहालम्बनवाधादिभ्रमविषयत्वमादाय सङ्के-
तावप्यतिप्रसङ्ग इति वाच्यं । भ्रमभिन्नत्वरूपयथार्थत्वस्य विशेषण-
त्वेनैव तद्वाराणात् । अ च तथापि ह्रदो वन्निमान् इत्यनुमिति-
प्रतिबन्धक-भ्रमभिन्न-ह्रदोवज्जभाववान् धूमाभाववांश्चेतिसमूहाल-
म्बनज्ञानविषयत्वमादाय पर्वतो वन्निमान् धूमादित्यादौ धूमा-
दावतिव्याप्तिरिति वाच्यं । अनुमितिपदस्य विशिष्टप्रकृतसाध्य-
व्याप्यप्रकृतहेतुमान् प्रकृतसाध्यवांश्च प्रकृतपक्ष इत्यनुमितिव्यक्तिपर-
त्वावश्यकत्वात्, तथाच तत्साध्यव्याप्यतद्धेतुमान् तत्साध्यवांश्च तत्पक्ष-
इत्यनुमितिव्यक्तिप्रतिबन्धकभ्रमभिन्नज्ञानविषयस्तद्धेतुः तस्मिन् पक्षे
तस्मिन् साध्ये दुष्ट इति विशिष्य लक्षणस्य पर्यवसन्नतया न कोऽपि
दोषः, धूमव्याप्यवन्निमान् धूमवांश्च पर्वत इत्यनुमितिप्रतिबन्धक-
व्यभिचारादिज्ञानविषयस्य धूमस्य पर्वते पक्षे धूमे साध्ये दुष्टत्वाभा-
वात् द्वितीयतद्धेतुपदं, प्रतिबन्धकता च ग्राह्याभाव-तद्व्याप्यादि-

(१) वज्जभावमान् ह्रदो धूमश्च इति समूहालम्बनज्ञानविषयत्वमादा-
यैवेत्यर्थः ।

मुद्रया ग्राह्या^(१) तेन तादृशानुमितिप्रतिबन्धकममूहालम्बनसिद्धि-
विषये सद्धेतौ नातिप्रसङ्ग इति प्राहुः । तदसत् । अस्य दुष्टहेतो-
र्लक्षणत्वे दोषाग्रयस्य दुष्टपदार्थत्वाभावात् दुष्टपदस्य पारिभाषि-
कत्वापत्तेः । न च पारिभाषिकत्वमिष्टमेवेति वाच्यं । तथासति
तत्तद्धेतुत्वं तत्तत्पक्षे तत्तत्साध्ये दुष्टत्वमित्यस्यैव सम्यक्त्वेन विषया-
न्तर्विशेषणवैयर्थ्यापत्तेरिति दिक् ।

नन्विदं व्यभिचारादिघटकसाध्यादावतिव्याप्तं तस्यापि तादृश-
प्रतिबन्धकव्यभिचारादिज्ञानविषयत्वात् सिद्धेरनुमितिप्रतिबन्धक-
तया साध्यवत्पक्षे चातिव्याप्तिः । न च यादृशविशिष्टविषयकत्वं
तादृशानुमितिप्रतिबन्धकतानतिरिक्तवृत्ति तादृशविशिष्टत्वं हेत्वा-
भासत्वं^(२) भवति च साध्याभावविशिष्टपक्ष-साध्याभाववद्वृत्तित्ववि-
शिष्टसाधनादिविषयकत्वं तथेति वाच्यं । 'यथार्थेत्यस्य वैयर्थ्यप्रस-
ङ्गात् । भ्रमविषयविष्टस्याप्रसिद्धत्वादित्यरुचेर्यथार्थत्वविशेषणं परि-
त्यज्य लक्षणान्तरमाह, 'यद्विषयत्वेनेति, 'लिङ्गज्ञानस्येत्यत्र लिङ्ग-

(१) तथाच ऋदपक्षक-वह्निसाध्यक-धूमहेतुकस्थले वह्नित्याप्यधूमत्वा-
वच्छिन्नप्रकारतानिरूपितऋदत्वावच्छिन्नविशेष्यताकत्वे सति वह्नित्वावच्छि-
न्नविधेयतानिरूपितऋदत्वावच्छिन्नविशेष्यताकानुमितिनिष्ठप्रतिबन्धकतानिरू-
पितसाध्यवत्त्वनिश्चयत्वानवच्छिन्नप्रतिबन्धकताश्रयज्ञानविषय तद्धेतुस्तस्मिन्
पक्षे तस्मिन् साध्ये तस्मिन् हेतौ दुष्ट इति रीत्या सर्वत्र विशिष्य लक्षणं
वक्तव्यम् ।

(२) अनुमितिप्रतिबन्धकत्वाभाववदिच्छाकालीनसिद्धौ तादृशविषयता-
सत्त्वान् साध्यवत्पक्षे नातिव्याप्तिरिति भावः ।

सविवक्षितं बाधादिज्ञानस्य लिङ्गाविषयकत्वात् व्यर्थत्वाच्च^(१) ।
 'अनुमितिपदञ्च साध्यव्याप्यहेतुमान् पक्षः साध्यवान् इत्यनुमितिपरं,
 अन्यथोक्तरूपेण व्यभिचारादावव्याप्तिः । तथाच यद्विषयकत्वेन
 ज्ञानस्य धूमव्याप्यवक्त्रिमान् पर्वतो धूमवान् इत्यनुमितिप्रति-
 बन्धकत्वं स पर्वतत्वरूपेण पक्षतायां धूमत्वरूपेण साध्यतायां
 वक्त्रित्वरूपेण हेतुतायां दोष इति प्रातिस्निकरूपेणैव लक्षणं
 अन्यथा साध्यादेरनुगमेन एकतरोपादानेऽन्यत्राव्याप्यापत्तेः पर्व-
 तोवक्त्रिमान् धूमादित्यादावपि पर्वतादौ काञ्चनमयत्वाभावादे-
 र्दोषत्वापत्तेश्च^(२) तज्ज्ञानस्यापि काञ्चनमयः पर्वतो वक्त्रिमान् धूमा-
 दित्यनुमितिप्रतिबन्धकत्वात् । नन्विदमपि पक्ष-साध्यादावतिव्याप्तं
 तस्याप्यवच्छेदककोटिप्रविष्टत्वात् । न च यत् विषयतासम्बन्धेनानु-
 मितिप्रतिबन्धकतावच्छेदकतायाः पर्याप्त्यधिकरणं तत्त्वमर्थ इति

(१) ननु ज्ञानांशे अनाहार्यत्व-निश्चयत्वनिवेशापेक्षया लिङ्गत्वनिवेशे
 लाघवं लिङ्गाज्ज्ञानं लिङ्गज्ञानमिति व्युत्पत्त्या लिङ्गज्ञानपदस्य अनुमिति-
 परत्वात् । न च नैयायिकमते लिङ्गजन्यत्वाप्रसिद्धिः लिङ्गज्ञानस्यैवानु-
 मितिजनकत्वादिति वाच्यं । लिङ्गादित्यत्र पञ्चम्यर्थः प्रयोज्यत्वं तेन
 लिङ्गप्रयोज्यज्ञानलाभः तच्चानुमित्यात्मकमेव, प्रयोज्यत्वञ्च स्वज्ञानजन्यत्वं
 इति चेत्, न, लिङ्गज्ञानपदेन लिङ्गज्ञानजन्यज्ञानं नोच्यते इत्यनुभवात्
 लिङ्गत्वमविवक्षितमित्युक्तं । यद्वा लिङ्गज्ञानपदस्यानुमितिपरत्वे यद्दोष-
 विशेषस्थानुमितिः कदाचिदपि न जाता तत्राव्याप्तिः अतः लिङ्गत्वनिवेशे
 लाघवमकिञ्चित्करमिति ध्येयम् ।

(२) यत्त्व-तत्त्वयोरिव यत्किञ्चित्त्वस्याप्यनुगतत्वमित्यभिप्रायेण यत्किञ्चित्-
 त्वत्त्वक-यत्किञ्चित्साध्यकानुमित्यभिधाने दोषमाह, पर्वतेत्यादि ।

वाच्यं । तथा सति साध्याभाववत्पक्षादेरप्यदोषत्वापत्तेः, न हि साध्याभाववत्पक्षादिविषयकनिश्चयत्वेनानुमितिप्रतिबन्धकत्वं, विशिष्टस्यानतिरिक्ततया केवलपक्षादिविषयकज्ञानादेरपि प्रतिबन्धकत्वापत्तेः ।

अथ यद्विश्लेष्यक-यत्प्रकारकनिश्चयत्वेनानुमितिप्रतिबन्धकता तद्विश्लेष्यकत्वं दोषत्वं भवति च पक्षविश्लेष्यक-साध्याभावप्रकारकनिश्चयत्वेन साधनविश्लेष्यक-साध्याभाववद्वृत्तित्वप्रकारकनिश्चयत्वादिना च प्रतिबन्धकतेति साध्याभाववत्पक्षः साध्याभाववद्वृत्तिसाधनादिर्दोषइति चेत् । न । प्रतिबन्धकता हि न पक्षविश्लेष्यक-साध्याभावप्रकारकनिश्चयत्वेन प्रमेयवान् पक्ष इति ज्ञानेऽपि प्रतिबन्धापत्तेः, न वा साध्याभावत्वरूपेण साध्याभावप्रकारकनिश्चयत्वेन पक्षे साध्यप्रतियोगिकत्वेन घटाभावाद्यवगाहिभ्रमस्य साध्याभावत्वरूपेण घटाद्यवगाहिभ्रमस्य चाप्रतिबन्धकत्वापत्तेः, किन्तु अभावत्वरूपेण यत्किञ्चिदसुनि साध्यप्रकारकः पक्षे चाभावत्वरूपेण यत्किञ्चिदसुप्रकारकोयोनिश्चयः तत्त्वेन तथात्वं । न चैवमपि साध्याभाववान् अभाववांश्च पक्ष इति समूहालम्बनज्ञानादपि प्रतिबन्धापत्तिरिति वाच्यं । विलक्षणविषयताकतादृशनिश्चयत्वेन^(१) प्रतिबन्धकत्वादिति । अत्राहुः यद्विषयत्वेनेत्यत्रानतिरिक्तवृत्तित्वाख्यमवच्छेदकत्वं तृतीयार्थो न तु स्वरूपसम्बन्धविशेषः, पक्षसाध्यादिविषयत्वञ्च न तथेति नातिप्रसङ्गः, साध्याभावविशिष्टपक्षा-

(१) परस्परनिरूप्य-निरूपकभावापन्नविषयताशालिनिश्चयत्वेनेत्यर्थः ।

दिविषयकत्वन्तु तथेति तेषां दोषत्वं । अथ तथापि हृदविशेष-
यकत्वावच्छिन्नवज्रभावत्वविशिष्टवज्रभावनिरूपितप्रकारिताव्यक्तेः व-
ज्रभावप्रकारकत्वावच्छिन्नहृदत्वविशिष्टहृदनिरूपितविशेष्यताव्यक्तेश्च
हृदोवक्लिमान् इत्यनुमितिप्रतिबन्धकतानतिरिक्तवृत्तितया केवल-
वज्रभावत्वविशिष्टवज्रप्रभावे केवलहृदत्वविशिष्टहृदे चातिव्याप्ति-
दुर्वारा । न च केवलवज्रभावादित्थं एव, तन्मात्रे हेत्वाभासव्य-
वहाराभावेन साध्याभाववत्पक्षादेरेव तथात्वात् तन्मात्रस्य दोषत्वे
पर्वतो वक्लिमान् धूमादित्यादेरपि दुष्टत्वापत्तेः येन केनचित्
सम्बन्धेन दोषवत् एव दुष्टत्वादिति चेत् । न । यद्विषयितासामान्यं
तादृशानुमितिप्रतिबन्धकतानतिरिक्तवृत्ति तत्त्वस्य विवक्षितत्वात्
केवलवज्रभावत्वविशिष्टवज्रभावादिविषयितासामान्यन्तु न तथा
तद्विषयत्वस्य वक्लिर्नास्तीत्युच्छृङ्खलज्ञानेऽपि सत्त्वात् । न चैवं
विशिष्टस्थानतिरिक्ततया केवलहृदादिविषयकज्ञाने प्रमेयवान्
प्रमेयकृत्यादिज्ञाने च वज्रभावादिविशिष्टहृदादिविषयकत्वस-
त्त्वादसम्भव इति वाच्यं । यद्विषयित्वपदस्य यादृशविशिष्टविषयित्व-
परत्वात्, विशिष्टविषयित्वञ्च विशिष्टनिरूपितं विषयित्वं तस्य च
विलक्षणस्य वज्रभाववान् हृद इत्यादिप्रमात्मकज्ञान एव सत्त्वेन
केवलहृदादिविषयकज्ञाने अभावात्^(१) अतएव सिद्धिविषयीभूत-

(१) एकत्र हृदमिति रीत्या हृदत्वं वज्रभावश्चावगाहमानं वज्रभाववद्-
हृदविषयकं यत् ज्ञानं तन्न विलक्षणविषयताकं अभावत्वावच्छिन्नानुयो-
गिताकत्वविशिष्टप्रतियोगित्वसंसर्गावच्छिन्न-वज्रत्वावच्छिन्नवक्लिनिष्ठावच्छेद-
कतानिरूपितं यत् हृदत्वावच्छिन्नानुयोगिताकत्वविशिष्टस्वरूपसम्बन्धाव-

साध्यवत्पक्षेऽपि नातिव्याप्तिः यद्विषयकत्वस्य सिषाधयिषाकालीन-
 साध्यनिश्चयेऽपि सत्त्वेन प्रतिबन्धकतातिरिक्तवृत्तित्वात्, तद्व्यावृत्त-
 प्रतिबन्धकताया विवचनादा^(१) यादृशविशिष्टविषयित्वस्याव्याप्यवृत्ति-
 त्वज्ञानानास्कन्दितागृहीताप्रामाण्यकनिश्चयनिष्ठत्वेन विगेषणीयं तेन
 तस्येच्छादौ संग्रहेऽव्याप्यवृत्तित्वज्ञानास्कन्दितनिश्चये गृहीताप्रामा-
 ण्यकनिश्चये च सत्त्वेऽपि नासम्भवः । न चैवं वृत्तः संयोगी
 द्रव्यत्वादित्याद्यव्याप्यवृत्तिसाध्यके संयोगाभाववद्वृत्त्यादावतिव्याप्तिः
 अव्याप्यवृत्तित्वग्रहानास्कन्दितागृहीताप्रामाण्यकनिश्चयनिष्ठतादृशवि-
 शिष्टविषयित्वस्याप्यनुमितिप्रतिबन्धकतानतिरिक्तवृत्तित्वादिति वा-
 च्यम् । तस्य बाधस्वरूपत्वेन लक्ष्यत्वात् “बाधेऽपक्षधर्माहेतुरनै-
 कान्तिको वा” इति प्रवादस्य व्याप्यवृत्तिसाध्यकबाधपरत्वात् ।
 न च तस्य बाधत्वे सङ्केतोऽपि तस्य बाधितत्वापत्तिरिति
 वाच्यं । हेत्वाभासविभाजकतावच्छेदकस्य बाधितत्वस्य तत्रेष्टत्वात्
 बाधितत्वव्यवहारनियामके तु निरवच्छिन्नाऽधिकरणतासम्बन्धेन

च्छिन्नाभावत्वावच्छिन्नाभावनिष्ठावच्छेदकत्वं तादृशावच्छेदकतानिरूपकताकां
 सत् ऋदत्वनिष्ठावच्छेदकताकां यद्विषयित्वं तदेव विलक्षणं तस्य च अनुमिति-
 प्रतिबन्धकतानतिरिक्तवृत्तित्वात् न कुत्रापि दोषः ।

(१) यादृशपक्षे यादृशसाध्यस्य सिद्धिकाले सिषाधयिषा कस्यापि न
 जाता तादृशपक्षे तादृशसाध्ये सिद्धिविषयेऽतिव्याप्तिवारणाय तद्व्यावृत्त-
 प्रतिबन्धकताविवक्षणं, प्रतिबन्धकतायां तद्व्यावृत्तस्य साध्यतावच्छेदकाव-
 च्छिन्नप्रकारतानिरूपित-पक्षतावच्छेदकावच्छिन्नविशेष्यताकनिश्चयत्वानच्छि-
 न्नत्वमिति ।

साध्याभाववत्त्वस्य घटकत्वात् । न चैवं वृत्तः संयोगी द्रव्यत्वा-
दित्यादावेव बाधस्य स्वरूपासिद्धि-व्यभिचारासङ्कीर्णदाहरणतया
किं तस्य उदाहरणान्तरगवेषणयेति^(१) वाच्यं । अशोकवनि-
कान्यायात्^(२) अतिस्फुटतया ग्रन्थकर्तृरूपेक्षणात् । अथैवं प्रमेय-
त्वादिविशिष्टवक्त्रभाववद्ब्रह्माद्यात्मकस्य विशिष्टस्यापि दोषत्वा-
पत्तिः तद्विषयित्वस्यापि प्रतिबन्धकतानतिरिक्तवृत्तित्वात् । न
च तादृशविशिष्टान्तराघटितत्वेन यादृशविशिष्टं विशेषणीयं उक्त-
विशिष्टन्तु न तथा तस्य तादृशविशिष्टान्तरेण वक्त्रभाववद्ब्रह्मादिना
घटितत्वादिति वाच्यं । प्रमेयत्वं अवृत्ति प्रमेयत्वादित्यादाववृत्ति-
त्वाभाववद्वृत्तिप्रमेयत्वादिरूपे व्यभिचारेऽव्याप्तिः तस्य वृत्तिप्रमेयत्व-
रूपबाधघटितत्वादिति चेत् । न । स्वानिरूपितविशिष्टविशेष्यक-
त्वानवच्छेद्यत्वेन प्रतिबन्धकताविशेषणात् स्वपदं लक्ष्यत्वाभिमत-
विशिष्टपरं प्रमेयत्वादिविशिष्टवक्त्रभाववद्ब्रह्माद्यात्मकविशिष्टन्तु न
तथा तद्विषयकत्वावच्छिन्नप्रतिबन्धकतायाः स्वानिरूपितेन केवल-
वक्त्रभाववद्ब्रह्मविशेष्यकत्वेनाप्यवच्छिन्नत्वात्, स्वानिरूपितविशिष्ट-
विशेष्यकत्वानवच्छिन्नत्वञ्च स्वानिरूपितविशिष्टविशेष्यकत्वानतिरिक्त-
वृत्तिकप्रतिबन्धकताभिन्नत्वं^(३) । न चैवं प्रतियोगिव्यधिकरणत्ववि-

(१) बाधग्रन्थे गन्धप्रागभावकालीनघटोगन्धवान् पृथिवीत्वादित्युदाहर-
णान्वेषणेनेति भावः ।

(२) यथा वनान्तरं परित्यज्य अशोकवने सीतायाः स्थापने क्षत्यभावः
सथेहापीति भावः ।

(३) ननु स्वानिरूपितविशिष्टविषयकत्वसामान्यं यत्प्रतिबन्धकतावच्छे-

दकं तदन्यत्वमेव वक्तव्यं किमनतिरिक्तवृत्तित्वनिवेशेन तावतैव बाधादौ
लक्षणसम्भवात् मेयत्वविशिष्टबाधादिवारणसम्भवाच्चेति चेत् । न । ऋदो-
वर्जिमान् जलादित्यादावसाधारण्येऽप्यग्नेः वर्जित्यापकीभूताभावप्रतियो-
गिजलरूपासाधारण्यानिरूपित-जलवद्ऋदरूपविशिष्टविषयित्वसामान्यस्य
असाधारण्यविषयकत्वावच्छिन्नप्रतिबन्धकतावच्छेदकत्वात् तत्प्रतिबन्धकता-
भिन्नत्वस्य असाधारण्यविषयकज्ञानप्रतिबन्धकतायामसत्त्वात् । यथानति-
रिक्तवृत्तित्वनिवेशेऽपि तद्दोषवादवस्थं असाधारण्यज्ञानप्रतिबन्धकतायां
स्वानिरूपितं यत् तादृशजलकालीनजलवद्ऋदविषयकत्वं तदनतिरिक्त-
वृत्तित्वादिति चेत् । न । स्वानिरूपितविशिष्टविषयकत्वे असाधारण्यवि-
षयितान्यत्व-ज्ञानवैशिष्ट्यावच्छिन्नप्रतिबन्धकतावच्छेदकत्वोभयाभावस्य वि-
वक्षितत्वात् तादृशजलकालीनजलवद्ऋदविषयकत्वस्य तादृशोभयवत्त्वात्
नासाधारण्यात्याप्तिरिति भावः । न चैवमनतिरिक्तवृत्तित्वनिवेशनसफलं
मेयत्वविशिष्टबाधादावतित्याप्तिश्च तत्र स्वानिरूपितवद्भाववद्ऋदादि-
विषयकत्वस्य तादृशोभयवत्त्वात् अभाववान् वद्भाववान् अभाववान् ऋद-
इत्याकारकज्ञानीय-ज्ञानवैशिष्ट्यावच्छिन्नप्रतिबन्धकतायाः अभाववद्ऋद-
त्वावच्छिन्नविषयतात्वेनावच्छेदकत्वात् असाधारण्यविषयित्वस्य तादृशोभया-
भाववत्त्वेन तत्प्रतिबन्धकतान्यत्वस्य तत्प्रतिबन्धकतायां सत्त्वादिति वाच्यम् ।
स्वानिरूपितविशिष्टविषयकत्वे असाधारण्यविषयितान्यत्व-असाधारण्य-
विषयकनिश्चयत्वव्यापकप्रतिबन्धकतानतिरिक्तवृत्तित्वोभयाभावस्य विवक्षि-
तत्वात् तथाच मेयत्वविशिष्टदोषे नातित्याप्तिः, एवमसाधारण्यज्ञान-
प्रतिबन्धकतावच्छेदकीभूततादृशोभयाभाववज्जलवद्ऋदविषयकत्वमादाया-
साधारण्येऽप्यग्निवारणाय विशिष्टान्तराघटित्वशरीरेऽनतिरिक्तवृत्तित्व-
विशेषणं सार्यकमिति भावः । न च वद्भाव्यापकाभावकालीनऋदो वर्जि-
मान् जलादित्यादौ मेयत्वविशिष्टवर्जित्यापकाभावेऽतित्याप्तिः तत्प्रतिबन्धक-
त्वस्य निवृत्तासाधारण्यज्ञाने सत्त्वादिति वाच्यम् । असाधारण्यविषयक-
निश्चयत्वव्यापकप्रतिबन्धकतायां ज्ञानवैशिष्ट्यावच्छिन्नत्वस्य निवेशनीयत्वात् ।

शिष्टसाध्याभाववत्पक्षरूपे बाधे^(१) अव्याप्तिः तद्विषयकत्वावच्छिन्नप्रति-
बन्धकतायाः स्वानिरूपितेन केवलसाध्याभाववत्पक्षविशेष्यकत्वेनाप्य-
वच्छिन्नत्वादिति वाच्यं । केवलसाध्याभाववत्पक्षस्यैव बाधतया तस्या-
बाधत्वात् अयं वृत्तः कपिसंयोगी तत्त्वादित्यादावपि बाधस्येष्ट-
त्वात् । न च तथाप्यनुमितिपदस्य यथोक्तसमूहालम्बनानुमितिपर-
तया निर्वर्त्तिः पर्वतो वर्त्तिमान् वर्त्तियभिचारिधर्मादित्यादौ न
कोऽप्याभासः स्यात्तत्र यथोक्तसमूहालम्बनानुमितेरप्रसिद्धेरिति वाच्यं ।
निर्वर्त्तिर्वर्त्तिमान् इत्यादिवन्निर्वर्त्तिः पर्वतो वर्त्तिमान् वर्त्तियभि-
चारिधर्मादित्यादेरप्यपार्थक्यतया^(२) तत्र हेत्वाभासविरहेऽपि क्षति-
विरहात् । यद्वा प्रकृतपक्षतावच्छेदकरूपेण प्रकृतपक्षे प्रकृतसाध्यता-
वच्छेदकरूपेण प्रकृतसाध्यवैशिष्ट्यावगाहिनी सती प्रकृतसाध्यताव-

न च घटवद्भूदो वर्त्तिमान् जलादित्यादौ घटाभाववद्बन्धव्यापकाभाव-
प्रतियोगिजलवद्भूदकालीनत्ववद्भूदेऽतित्याप्तिस्तत्प्रतिबन्धकत्वस्य ज्ञानवै-
शिष्ट्यावच्छिन्नत्वात् नियतासाधारण्यज्ञाने सत्त्वाच्च इति वाच्यम् । असा-
धारण्यविषयितान्यत्वपदेनासाधारण्यघटितनिरूपितान्यत्वस्य विवक्षित-
त्वात् । न च प्रतिहेतुव्यापकसाध्याभावसमानाधिकरणप्रतिहेतुमत्-
पक्षात्मकसत्प्रतिपक्षेऽव्याप्तिः तद्विषयकत्वावच्छिन्नप्रतिबन्धकतायां स्वानि-
रूपितप्रतिहेतुव्यापकसाध्याभावकालीनप्रतिहेतुमत्पक्षविषयित्वावच्छिन्नत्वा-
दिति वाच्यं । साध्यवदवृत्तिमत्पक्षस्यैव सत्प्रतिपक्षत्वेन तस्यालक्ष्यत्वादिति
परैरपरिशीलितः पन्थाः ।

(१) गुणः संयोगवान् गुणत्वादित्यादिसंयोगबाधे इत्यर्थः ।

(२) शाब्दबोधजनकीभूताकाङ्क्षा योग्यताविरहविशिष्टवाक्यमपार्थक्य-
मिति ।

च्छेदकरूपेण प्रकृतसाध्यनिरूपितव्याप्तिप्रकारेण प्रकृतहेतुतावच्छेद-
 करूपेण प्रकृतहेतुवैशिष्ट्यावगाहिनी या बुद्धिः सा यत्र यदवगा-
 हते तत्र तद्वैशिष्ट्यावगाहि यज्ज्ञानं तत्प्रतिबन्धकतानतिरिक्तवृत्ति
 यादृशविशिष्टनिरूपितविषयितासामान्यं तादृशविशिष्टत्वं हेतु-
 दोषत्वमिति विवक्षणीयं । इत्यञ्च वक्त्रभाववत्पर्वतादेरेव तत्र
 दोषत्वं तद्विषयकनिश्चयमात्रस्यैव निर्वर्त्तिः पर्वतो वक्त्रिमानित्या-
 दिज्ञानं यत्र यदवगाहते तत्र तदवगाहिनः केवलपर्वतो वक्त्रिमा-
 नित्यनाहार्यज्ञानस्य प्रतिबन्धकत्वात् । न च तादृशबुद्धेरेव उक्त-
 स्थलेऽप्रसिद्धिरिति वाच्यं । आहार्यरूपस्य तस्य सम्भवात् । न चैवं
 पर्वतो वक्त्रिमान् इत्यादौ काञ्चनमयत्वाभाववत्पर्वतादेरपि दोष-
 त्वं स्यात् तद्विषयकनिश्चयस्य पर्वतो वक्त्रिमानित्यादिज्ञानं यत्र
 यदवगाहते तत्र तदवगाहिनः काञ्चनमयः पर्वतो वक्त्रिमानित्या-
 दिज्ञानस्य प्रतिबन्धकत्वादिति वाच्यं । तत्र तदवगाहित्वांशे प्रति-
 बन्धकताया विवक्षितत्वादिति^(१) संक्षेपः । इदन्तु चिन्त्यं यत्र चेत्र-
 विशेषादौ यदङ्कुरविशेषस्य ज्ञानं कस्यापि न जातं तत्र चेत्रवि-
 शेषादौ प्रमेयत्वादिना तदङ्कुरविशेषादौ साध्ये न कोऽप्याभासः
 स्यात् तत्र तादृशबुद्धेरप्रसिद्धेः । न च तत्राभासोनेष्ट एव, व्यव-
 हारादेरविशेषेणानिच्छायाः स्वातन्त्र्यमात्रत्वात् । किञ्च यदङ्कुरविशे-
 षस्य वक्त्रभाववत्पर्वतादिविषयक एव निश्चयोजातः न तु कदा-

(१) तद्वर्त्मानवच्छिन्नविशेष्यतानिरूपित-तद्वर्त्मानवच्छिन्नप्रकारत्वावच्छि-
 न्नप्रतिबन्धतानिरूपितप्रतिबन्धकताया विवक्षितत्वादित्यर्थः ।

चिदपि तदविषयस्तन्निश्चयः तदङ्कुरविशेषस्य पर्वतो वक्लिमानित्यादौ
दोषत्वापत्तेरिति दिक् ।

इदमत्रावधेयं बाधादिविषयितानियतविषयिताके तदङ्कुरा-
दिव्यक्तिविशेषे यथाविवक्षितलक्षणस्य नातिप्रसङ्गशङ्कापि तादृश-
ज्ञाननिष्ठतथाविधानुमितिप्रतिबन्धकतायां बाधादिविषयकत्वरूपेण
विशिष्टविषयकत्वान्तरेणावच्छिन्नत्वात् मेयत्वविशिष्टबाधादावति-
प्रसङ्गवारणाय ग्रन्थकृतैव पूर्वं विशिष्टविषयकत्वान्तरानवच्छेद्यत्वेन
प्रतिबन्धकताया विशेषितत्वात् । न च तादृशज्ञाननिष्ठबाधादि-
विषयिता तदङ्कुरादिविषयिता चैकैवेति वक्तुं शक्यते, निरूपक-
भेदेन विषयिताभेदस्य सिद्धान्तसिद्धत्वात् । न च पर्वतो वक्लिमान्
धूमादित्यादिसङ्केतावेव बाधादिभ्रममात्रविषयौभूताङ्कुरादिविशेषे
विवक्षितलक्षणस्याप्यतिव्याप्तिरिति शङ्कनीयं, तदङ्कुरादिविशेषस्या-
न्ततो भगवज्ज्ञानादिविषयता तथाविधभ्रमविषयमात्रविषयत्वास-
म्भवात् । न च तथापि बाधादिभ्रम-नित्यज्ञानोभयमात्रविषये
व्यक्तिविशेषेऽतिव्याप्तिरिति वाच्यं । तादृशव्यक्तिविषयिताया नित्य-
ज्ञानेऽपि सत्त्वेन तत्र तदनुमितिप्रतिबन्धकताविरहात् । न च
सिद्धिविधया तत्रापि तदनुमितिप्रतिबन्धकत्वं, नित्यज्ञाने सिधा-
धयिषाविरहवैशिष्ट्याविरहेण सिद्धिप्रतिबन्धकत्वस्यापि तत्रासम्भ-
वात् । न च यत्र तदङ्कुरो वक्लिमभाववानित्येव बाधज्ञानं तत्र
तादृशबाधज्ञानमात्रविषये तदङ्कुरत्वविशिष्टेऽतिव्याप्तिरिति वाच्यं ।
तत्र प्रकृतपक्षे साध्यवैशिष्ट्यावगाहिज्ञानाप्रसिद्धातिव्याप्त्यनवकाशात् ।
न च यत्र तदङ्कुरो वक्लिमानित्यनुमितिरपि प्रसिद्धा तत्रैवा-

तिव्याप्तिरिति वाच्यं । तत्र तद्विषयकत्वस्य तादृशानुमितावपि सत्त्वेन तत्र तादृशानुमितिप्रतिबन्धकत्वविरहात् सिद्धिविधया प्रतिबन्धकत्वस्यापि प्रागुत्तरवर्त्तिसिषाधविषाकज्ञानेऽभावात् । यदि च नैतादृशं विषाधविषासमवहितं तज्ज्ञानं कदापि जातमित्युच्यते, तदा तु सिद्धिविशेषविषयेऽतिप्रसङ्गवारणाय सिद्धिविधया प्रतिबन्धकतातिरिक्तप्रतिबन्धकतैव लक्षणे निवेगनीया तथाच कुतोऽयमतिप्रसङ्ग इति दिक् ।

यत्तु यत्र बाधादिविषयतानियतविषयिताकोऽङ्कुरादिव्यक्तिविशेषस्तत्र बाधादावव्याप्तिस्तत्र तदनुमितिप्रतिबन्धकताया अङ्कुरादिव्यक्तिविशेषविवक्ष्यत्वरूपेण विशिष्टविषयकत्वान्तरेणावच्छेद्यत्वात् इति, तन्न, विशिष्टविषयकत्वान्तरानवच्छेद्यत्वात् स्वरूपसम्बन्धरूपावच्छेद्यत्वस्यैव विशेषणीयत्वात् । वस्तुतो वङ्गप्रभाववद्ब्रह्मत्वप्रमेयत्वविषयित्वावच्छेद्यतया असम्भववारणाय स्वघटितानिरूपितविशिष्टविशेष्यकत्वानवच्छेद्यत्वं विवक्षणीयं, स्वघटितत्वञ्च स्वाविषयकप्रतीत्यविषयत्वं, तथाच तदङ्कुरादेर्बाधादिघटिततया बाधादेः स्वघटितानिरूपितविशिष्टविशेष्यकत्वानवच्छेद्यप्रतिबन्धकतानतिरिक्तवृत्तित्वादन्यूनवृत्तित्वरूपावच्छेद्यत्वनिवेशेऽपि न क्षतिरिति मन्तव्यं^(१) ।

यन्मते ज्ञायमानलिङ्गस्य करणत्ववत् ज्ञायमानव्यभिचारादेरपि प्रतिबन्धकत्वं तन्मते लक्षणमाह, 'ज्ञायमानमिति, अत्रापि 'अनुमितिपदं प्रकृतपक्षतावच्छेदकरूपेण प्रकृतपक्षे प्रकृतसाध्यतावच्छे-

(१) इदमत्राद्येयमित्यादिः इति मन्तव्यमित्यन्तः क-चिज्जितपु तत्कौय-क्रोडपत्रस्थितः पाठः ग-घ-ङ-चिज्जितादर्शपुस्तकेषु नास्ति ।

यदा प्रत्यक्षादौ बाधेन न ज्ञानं प्रतिबध्यते कि-
न्तूत्पन्नज्ञानेऽप्रामाण्यं ज्ञाप्यते अनुमितौ तूत्पत्तिरेव

दकरूपेण प्रकृतसाध्यावगाहिनी सती प्रकृतसाध्यतावच्छेदकरूपेण
प्रकृतसाध्यनिरूपितव्याप्तिप्रकारेण प्रकृतहेतुतावच्छेदकरूपेण प्रक-
तहेतुवैशिष्ट्यावगाहिनी या बुद्धिस्तत्परं, तेन व्यभिचारादेरनु-
मित्यप्रतिबन्धकत्वेऽपि^(१) नाव्याप्तिः, प्रतिबन्धकत्वञ्च तादृशी
बुद्धिर्यत्र यदवगाहते तत्र तदवगाहिज्ञानप्रतिबन्धकत्वं वक्तव्यं
तेन निर्वर्त्तिः पर्वतो वक्त्रिमानित्यादौ नोक्तरीत्या आभासा-
सम्भवः, एवमन्यदप्युक्तदिशावसेयं । अथैतेषु लक्षणेष्ु अज्ञान-
पक्षतावच्छेदकरूपासिद्ध्यादावव्याप्तिः^(२) तत्र तत्र प्रतिबन्धकत्वे
ज्ञानानुपयोगात् । न च तदलक्ष्यमेव, एकविंशतिनिग्रहस्थान-
वहिर्भूतस्य तस्य हेत्वाभासमध्येऽप्यनन्तर्भावे निग्रहस्थानत्वानुपपत्तेः,
न चानुक्तसमुच्चयपरेण चरमसूत्रस्थचकारेण^(३) तस्यापि समु-
च्चयान्निग्रहस्थानत्वव्यवस्थितिरिति वाच्यं । तथासति निग्रह-
स्थानस्य द्वाविंशतिप्रभेदत्वानुपपत्तेरिति चेत् । न । निग्रहस्था-
नत्वौपयिकस्य हेत्वाभासत्वस्य पृथगेव निर्वक्ष्यमाणत्वादिह तु हेतु-
दोषा निरूप्यन्त इति न कायानुपपत्तिः, येन केनचित् सम्बन्धेन

(१) साक्षादनुमित्यप्रतिबन्धकत्वेऽपीत्यर्थः ।

(२) पक्षतावच्छेदकज्ञानाभावरूपासिद्ध्यादावित्यर्थः ।

(३) “हेत्वाभासाश्च यथोक्ताः” इति सूत्रस्थितचकारेणेत्यर्थः ।

प्रतिबध्यते । ते च सव्यभिचार-विरुद्ध-सत्प्रतिपक्षासिद्ध-
बाधिताः पञ्च ।

इति श्रीमद्भङ्गेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ
अनुमानाख्य-द्वितीयखण्डे हेत्वाभासे हेत्वाभाससा-
मान्यनिरुक्तिः ।

तद्वत्त्वं तु दुष्टत्वं । न चैवं सद्धेतावतिव्याप्तिः वक्त्र्यभाववदृत्तिजल-
त्वादेर्येन केनापि सम्बन्धेन धूमादिनिष्ठत्वादिति वाच्यं । तत्प-
क्षक-तत्साध्यक-तद्धेतुकोयो दोषः येन केनापि सम्बन्धेन तद्वान् स
हेतुः तस्मिन् साध्ये तस्मिन् पक्षे दुष्ट इति विवक्षितत्वादित्यास्तां
विस्तरः ।

ननु साध्यव्यापकौभूताभावप्रतियोगिहेतुमत्पक्षरूपस्यासाधार-
णत्वस्य साध्याभावव्याप्यवत्पक्षरूपस्य सत्प्रतिपक्षस्य च धियोऽनु-
मितिप्रतिबन्धकत्वे मानाभावः ग्राह्याभावाद्यनवगाहित्वात्^(१) इत्यत
आह, 'दशाविशेषे हेत्वोरेवेति 'एवकारोभिन्नक्रमे असाधारण-
सत्प्रतिपक्षयोर्हेत्वोर्दशाविशेष एव सत्प्रतिपक्षासाधारणत्वेन भान-
दशायामेव, 'आभासत्वात्' अनुमित्यजनकत्वादित्यर्थः, एवकारेण
तदज्ञानदशायान्तु जननादिति सूचितं, तथाचान्वय-व्यतिरेकात्
तज्ज्ञानस्य प्रतिबन्धकत्वमिति भावः । नचेतानि लक्षणानि बाध-

(१) पक्षतावच्छेदकावच्छिन्ने साध्याभावाद्यनवगाहित्वादित्यर्थः तथाच
तयोर्दोषत्वानुपपत्तिरिति भावः ।

सप्रतिपक्षयोरतिव्याप्तानि अनुमित्यसाधारणदोषस्यैवात्र लक्ष्यत्वात्
तयोश्च प्रत्यक्ष-शब्दज्ञानयोरपि प्रतिबन्धकतया साधारणत्वादिति
केषाञ्चिद् दूषणमपाकरोति, 'यद्यपीत्यादिना, 'न लिङ्गाभासत्वं'
न लिङ्गासाधारणदोषत्वं नानुमित्यसाधारणदोषत्वमिति यावत्,
'ज्ञायमानस्याभासस्येति विशिष्टबुद्धिसामान्यप्रतिबन्धकज्ञानविषयस्य
दोषमात्रस्येत्यर्थः, तथाच तयोरपि लक्ष्यत्वान्नातिव्याप्तिरिति भावः ।

अत्र केचित् शब्दे बाधज्ञानमात्रं न प्रतिबन्धकं नरशिरः-
कपालं शुचि प्राण्यङ्गत्वात् शङ्खवदित्यनुमानेन "मल-मूत्र-पुरी-
षास्थि निर्गतं ह्यशुचि स्मृतं । नारं स्पृष्ट्वा तु सस्नेहं सचेलोजलमा-
विशेत्" इतिवेदवाधापत्तेः, किन्तु अनुमित्यन्यबाधज्ञानत्वेन । न
चैवं परमाणुरनित्य इति शब्दस्यापि ज्ञानजनकत्वापत्तिः परमाणु-
नित्यः जन्यमहत्त्वानधिकरणत्वे सति^(१) द्रव्यत्वादित्यनुमितेर-

(१) गगने दृष्टान्ततालाभायं सत्यन्तदले महत्त्वांशे जन्यत्वविशेषणं,
घटाद्यन्तर्भावेन व्यभिचारवारणाय सत्यन्तं, जन्यगुणादौ व्यभिचारवारणाय
विशेष्यदलं, परमाणौ जन्यक्रियासत्त्वात् जन्यानधिकरणत्वे सतीत्युक्तौ
स्वरूपासिद्धिः स्यादतो जन्यमहत्त्वानधिकरणत्वे सतीत्युक्तौ । न च व्यभिचारा-
वारकविशेषणस्य सार्थकत्वाभावात् कथं दृष्टान्ततालाभायं व्यभिचाराद्य-
वारकस्य महत्त्वांशे जन्यत्वविशेषणस्य सार्थकत्वमिति वाच्यं । अखण्डाभा-
वघटकतया सार्थकत्वसम्भवात् । न च तथापि साध्याभाववति द्युक्ते
तादृशहेतोः कथं नानैकान्तिकत्वमिति वाच्यं । महत्त्वपदस्य परिमाण-
सामान्यपरत्वात् । अतएव व्यभिचारादिवारकतयैव महत्त्वांशे जन्यत्व-
विशेषणस्य सार्थकत्वं अन्यथा परमाणौ नित्यपरिमाणस्य सत्त्वेन स्वरूपा-
सिद्धापत्तेः इति ।

प्रतिबन्धकत्वाद्वाधज्ञानान्तरस्य चाभावादिति वाच्यं । अष्ट-
 हीतविशेषेत्यनेनानुमितिविशेषणात् तत्र च प्रामाण्यग्रह एवानु-
 मितौ विशेष इत्याहुः । तन्न, शाब्दबुद्धित्वावच्छिन्नं प्रति तेन
 रूपेण पृथक्प्रतिबन्धकत्वान्तरकल्पने गौरवान्मानाभावाच्च । न च
 यथोक्तानुमानादशौचबोधकवेदवाधापत्तिरेव मानं, तत्रानुकूल-
 तर्काभावेनागमविरोधेन च व्याप्तिनिश्चयस्यानुमितेश्चानुत्पत्तेरनु-
 मित्युत्पत्तौ च प्रतिबन्धकत्वस्येष्टत्वादिति ।

नन्वनुमाननिरूपणप्रस्तावे प्रमाणसामान्यदोषाभिधानमनुचित-
 मित्यनुशयेनाह, 'यदेति, 'वाधेनेति परोक्षवाधनिश्चयेनेत्यर्थः,
 परोक्षसत्प्रतिपक्षेण चेत्यपि बोध्यं, आनुमानिकवाध-तद्वाप्यवत्ता-
 दिज्ञानसत्त्वेऽपि लौकिकविशिष्टसाक्षात्कारोदयात् । न चैतावतापि
 शाब्दबोधे तत्प्रतिबन्धकत्वमस्येवेति वाच्यं । योग्यताज्ञानेनान्यथा-
 सिद्धतया^(१) शाब्दबोधं प्रति वाध-तद्वाप्यवत्तादिज्ञानमात्रस्यैवा-
 प्रतिबन्धकत्वादिति भावः । 'अनुमिताविति, तथाच वाधनिश्चय-
 त्वादिसामान्यरूपेण प्रतिबन्धकत्वस्यानुमितिं प्रत्येव सत्त्वात्तेन
 रूपेणासाधारणदोषत्वमस्येवेति भावः । इदञ्चापाततः लौकिक-
 प्रत्यक्षनिश्चये आनुमानिकवाधादिनिश्चयसामान्यस्याप्रतिबन्धकत्वेऽपि
 संशयोपनीतभानं प्रति तस्य प्रतिबन्धकतया वाधनिश्चयत्वादिरू-
 पेणाप्यसाधारणत्वविरहात् । न चोपनीतभानं प्रत्यपि वाधनिश्च-
 यत्वादिना न प्रतिबन्धकत्वमपि तु इच्छाविशेषादिविरहविशि-
 ष्टवाधनिश्चयत्वादिनैव वाधनिश्चयसत्त्वेऽप्याहार्योपनीतभानोदया-

(१) वाधविरहोयोग्यता इत्यभिमानेनेदमुक्तं ।

दिति वाच्यं । तथापि सृष्ट्युपमिती प्रति बाधनिश्चयत्वादिना बाधनिश्चयसामान्यस्यैव प्रतिबन्धकतया असाधारण्यविरहादिति ध्येयं ।

असिद्ध-विरुद्ध-सव्यभिचारानध्यवसिताश्वत्वारो हेत्वाभासाः अनध्यवसितोऽसाधारणः न तु बाध-प्रतिरोधौ हेत्वाभासाविति वैशेषिकसिद्धान्तस्तन्निराकरणाय स्वमतसिद्धान् हेत्वाभासान् विभजते, 'ते चेति, आभासीभूता हेतव इति शेषः । 'सव्यभिचारेति व्यभिचारात्मकेन दोषेण सह वर्त्तत इति व्युत्पत्त्या व्यभिचारौत्यर्थः, व्यभिचारित्वरूपञ्चानुपदमेव विवेचयिष्यते । 'विरुद्धेति साध्यासमानाधिकरणोहेतुर्विरोधः तादात्म्येन तद्वान् हेतुर्विरुद्धः, एतज्ज्ञानञ्च साध्यसामानाधिकरण्यघटितव्याप्तिप्रकारकज्ञाने सामानाधिकरण्यांशे प्रतिबन्धकं उदाहरणन्तु समवायेन साध्य-हेतुको गोत्ववानश्वत्वादित्यादिरिति मणिकृतः ।

प्राञ्चस्तु साध्यासामानाधिकरण्यं विरोधः तद्वान् हेतुर्विरुद्ध-इत्याहुः । तदसत् । केवलसाध्यासामानाधिकरण्यरूपविशिष्टनिरूपितविषयित्वस्य केवलसाध्यासामानाधिकरण्यविषयकज्ञाने हेत्वन्तरविशेष्यकतत्प्रकारकज्ञाने च सत्त्वेन प्रकृतहेतुकानुमिति-तत्कारणज्ञानप्रतिबन्धकतातिरिक्तवृत्तितया केवलस्य तस्य हेतुदोषत्वासम्भवात्, अतएवाग्रेऽपि सर्वत्र विशेष्यान्तर्भाव इति मन्तव्यं । 'सत्प्रतिपक्षेति सत्प्रतिपक्षपदस्य नीलादिपदवद्गुण-धर्म्युभयवाचकत्वात् सत्प्रतिपक्षित इत्यर्थः, साध्याभावव्याप्यवान् पक्षः सत्प्रतिपक्षः वृत्तिमत्त्वादियथा-कथञ्चित्सम्बन्धेन तद्वान् हेतुः सत्प्रतिपक्षितः, एतज्ज्ञानजञ्च साक्षादेवानुमितिर्विरोधि तदभावनिश्चयवत्तदभावव्याप्यनिश्चयस्यापि

तद्विशिष्टबुद्धिप्रतिबन्धकत्वात् उदाहरणन्तु हृदोवन्निमान् धूमादित्यादिबाधितमात्रमेव, सङ्केतस्य कदाचिदपि न सत्प्रतिपक्षितः । बाधितस्य कदापि नासत्प्रतिपक्षितः इति तु नव्याः ।

प्राञ्चस्य समानबलप्रकृतपक्षविशेष्यक-साध्याभावव्याप्यवत्त्वपरामर्श-कालीनप्रकृतपक्षविशेष्यक-साध्यव्याप्यवत्त्वपरामर्शः सत्प्रतिपक्षः विषयतासम्बन्धेन तद्वान् हेतुः सत्प्रतिपक्षितः, अयञ्च स्वरूपसन्धेव साक्षादनुमितिविरोधी, अत एव सङ्केतुरपि साध्याभावव्याप्यवत्ता-परामर्शकाले सत्प्रतिपक्षितः बाधितोऽपि तदभावदशायां कदाचिदसत्प्रतिपक्षित इत्याहुः । एतन्मते यथोक्तं न दोषलक्षणं किन्तु दुष्टलक्षणमेवेति न तत्राव्याप्तिः ।

‘असिद्धेति, असिद्धः त्रिविधः स्वरूपासिद्धः आश्रयासिद्धो-व्याप्यत्वासिद्धश्च तत्र हेतुभाववान् पक्षः स्वरूपासिद्धिः कल्पादि-यत्किञ्चित्सम्बन्धेन तद्वान् हेतुः स्वरूपासिद्धः एतज्ज्ञानञ्च पक्षधर्म-तांशे परामर्शविरोधि उदाहरणन्तु हृदोवन्निमान् धूमादित्यादि । पक्षविशेषणासिद्धिराश्रयासिद्धिः सा च पक्षतावच्छेदकाभाववान् पक्षः वृत्तिमत्त्वादियत्किञ्चित्सम्बन्धेन हेतोस्तद्वत्त्वं एतज्ज्ञानञ्च पक्षता-वच्छेदकवैशिष्ट्यांशे अनुमिति-परामर्शयोरुभयोरेव विरोधि, उदा-हरणन्तु काञ्चनमयः पर्वतोवन्निमान् इत्यादि । व्याप्यत्वासिद्धिः त्रिविधा साध्यविशेषणासिद्धिः हेतुविशेषणासिद्धिः व्याप्यभावरूपा-सिद्धिश्च, तत्र साध्यतावच्छेदकाभाववत्साध्यं साध्यविशेषणासिद्धिः सामानाधिकरण्यादियत्किञ्चित्सम्बन्धेन हेतोस्तद्वत्त्वं एतज्ज्ञानञ्च साध्यतावच्छेदकवैशिष्ट्यांशेऽनुमिति-परामर्शयोर्विरोधि, उदाहर-

एतन्तु पर्वतः काञ्चनमयवक्त्रिमानित्यादि । हेतुतावच्छेदकाभाववान्
हेतुः हेतुविशेषणासिद्धिः तादात्म्यसम्बन्धेन हेतोस्तद्वत्त्वं, एतज्ज्ञानं
हेतौ हेतुतावच्छेदकवैशिष्ट्यांशे परामर्शविरोधि, उदाहरणन्तु
पर्वतो वक्त्रिमान् काञ्चनमयधूमादित्यादि । व्याप्यभाववान् हेतु-
व्याप्यत्वासिद्धिः तादात्म्येन तद्वान् हेतुव्याप्यत्वासिद्धः, एतज्ज्ञानञ्च
हेतौ व्याप्तिज्ञानविरोधि, उदाहरणन्तु व्यभिचारिमात्रमेव ।
‘वाधितेति साध्याभाववान् पक्षोबाधः, वृत्तिमत्तादियत्किञ्चित्सम्बन्धेन
तद्वान् हेतुः वाधितः, एतज्ज्ञानञ्च साक्षादेवानुमितिविरोधि,
उदाहरणन्तु हृदोवक्त्रिमान् धूमादित्यादीति संचेपतः सामान्यतो
दूषकतावीजनिर्णयः, विशेषतस्तु तत्तद्ग्रन्थ एव विवेचयिष्याम-
इति दिक् ।

इति श्रीमथुरानाथतर्कवागीश-विरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये
अनुमानाख्यद्वितीयखण्डरहस्ये हेत्वाभासे हेत्वाभाससामान्यनिरुक्ति-
रहस्यं ।

अथ सव्यभिचारः ।

— ६९० —

सव्यभिचारोऽपि त्रिविधः^(१) साधारणासाधारणानुपसंहारिभेदात् तत्र सव्यभिचारः साध्य-तदभाव-प्रसज्जक इति न त्रितयसाधारणं लक्षणम् एकस्यो-

अथ सव्यभिचाररहस्यं ।

नन्वयं विभागोऽनुपपन्नः असाधारणानुपसंहारिणोरधिकयोरपि सत्त्वादित्यत आह, 'सव्यभिचारोऽपीति, तथाच तावथत्रैवान्तर्भूताविति भावः । एतेन सामान्यधर्मप्रकारेण ज्ञातानामेव विशेषतो जिज्ञासोदयात् सामान्यलक्षणानन्तरमेव विशेषविभागोयुक्त इति निर्युक्तिकप्रवादोऽपि निरस्तः विभागे तात्पर्याभावादिति भावः ।

(१) सव्यभिचारोऽपि त्रिविधः साधारणासाधारणानुपसंहारिभेदात् इत्यत्र उद्देश्यतावच्छेदकसमनियतवस्तुमदन्यसंख्यावत्त्वं विधप्रत्ययार्थः, तादृशसंख्यावत्त्वञ्चात्र साधारणत्वासाधारणत्वानुपसंहारित्वगतत्रित्वं, एतादृशत्रित्वस्य स्वाश्रयाश्रयत्वसम्बन्धेनात्र साध्यत्वं सव्यभिचारस्य पक्षत्वं साधारणभेदासाधारणभेदानुपसंहारिभेदान्यतमस्य प्रतियोगित्वसम्बन्धेन हेतुत्वं उद्देश्यतावच्छेदकसमनियतत्वं उद्देश्यतावच्छेदकव्याप्यत्वे सति उद्देश्यतावच्छेदकव्यापकत्वं व्याप्यत्वं व्यापकत्वञ्च स्वाश्रयाश्रयत्वसम्बन्धेन, वस्तुमदन्यत्वघटकवस्तुमत्त्वञ्च स्ववृत्तित्व-स्वसमानाधिकरणस्वमित्रवृत्तित्वोभयसम्बन्धेन, वस्तुमदन्यत्वनिवेशात् सामान्यतः साधारणत्वासाधारणत्वानुपसंहारित्वं विशेषतः तत्साधारणत्वादिकञ्चादाय सव्यभिचारोऽपि चतुर्विधः पञ्चविधो वा इत्यादिको न प्रयोगः ।

‘साधारणेति साध्य-तदभाववद्वृत्तित्वं साधारणत्वं तद्वान् हेतुः साधारणः, एतज्ज्ञानञ्च व्याप्तिज्ञानविरोधि, उदाहरणन्तु द्रव्यं सत्त्वादित्यादि, विरुद्धवारणाय च साध्यवद्वृत्तित्वदलमिति प्राञ्चः । नव्यास्तु साध्याभाववद्वृत्तिहेतुः साधारणत्वं तादात्म्येन तद्वान् हेतुः साधारणः, साध्यवद्वृत्तित्वभागो नोपादेयः दूषकतायामनुपयोगात्, विरुद्धोऽपि लक्ष्य एव एकस्याज्ञानदशायामन्यस्य ज्ञानेन व्याप्तिज्ञानप्रतिवन्धात् द्वयोरेव तुल्यदोषत्वमिति^(१) प्राञ्चः । ‘असाधारणेति सर्वसाध्यवद्वावृत्तहेतुमान् पक्षोऽसाधारणत्वं साध्यव्यापकौभूताभावप्रतियोगिहेतुमान् पक्ष इति यावत्, वृत्तिमत्त्वादियत्किञ्चित्सम्बन्धेन तद्वान् हेतुरसाधारणः, एतज्ज्ञानञ्च साध्याभावव्याप्यवत्ताज्ञानविधया साक्षादेवानुमिति विरोधि, साध्याभावाभावस्य साध्यरूपतया साध्यव्यापकौभूताभावप्रतियोगित्वस्य साध्याभावव्यतिरेकव्याप्तितात् सत्प्रतिपक्षेऽन्वय-व्यतिरेकोभयव्याप्तेः प्रवेशो न हेतोरत्र तु हेतुप्रवेशो न त्वन्वयव्याप्तेरिति ततो भेदः । उदाहरणन्तु शब्दो-नित्यः शब्दत्वादित्यादि पक्षधर्मविरुद्धमात्रमेव, सद्धेतुश्च कदाचि-दपि नासाधारण इति मणिकृतः ।

प्राञ्चस्तु हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेन सर्वसपक्ष-विपक्षव्यावृत्तत्वमसाधारणत्वं तद्वान् हेतुरसाधारणः साध्यवत्तया निश्चितः सपक्षः तदभाववत्तया निश्चितो विपक्षः, एवञ्च सद्धेतुरपि कदाचिदसाधारणः

(१) विभाज्ययोः साधारण-विरुद्धयोरभेदेऽपि विभाजकयोः साधारणत्व-विरुद्धत्वयोर्भेदात् न विभागव्याघातः, अत एकोक्तं “उपधेयसङ्करेऽपि उपाधेरसङ्करात्” इतीति तात्पर्यम् ।

यदा हेतुनधिकरण एव साध्य-तदभावनिश्चयो न हेतुधिकरणे,
 एतज्ज्ञानञ्च प्रकृतहेतौ पक्षधर्मताज्ञानदशायां तत्र साध्य-तद-
 भावोभयव्यतिरेकव्याप्तिग्रहजननद्वारा अनुमितिविरोधि पक्षे साध्य-
 तदभावोभयव्याप्यवत्ताज्ञाने परस्परविरोधेन द्वयोरेवानुमित्वनुत्पत्तेः.
 उभयव्याप्तिग्राहकत्वन्तु साध्याभावाभावस्य साध्यरूपतया सर्वसपक्ष-
 व्यावृत्तत्वांशज्ञानस्य साध्याभाव-हेतोर्यतिरेकसहचारज्ञानरूपत्वेन
 साध्याभावव्यतिरेकव्याप्तिग्राहकत्वात्, सर्वविपक्षव्यावृत्तत्वांशज्ञानस्य च
 साध्य-हेतोर्यतिरेकसहचारज्ञानरूपत्वेन साध्यव्यतिरेकव्याप्तिग्राहक-
 त्वादोध्यं ।

यदा तादृशोभयव्यावृत्तत्वग्रहस्य साध्य-तदभावोभयव्याप्तिग्रह-
 प्रतिबन्धद्वारा दूषकत्वं विरोध्यनुमितिसामग्र्या इव विरोधिव्याप्ति-
 ग्राहकसहचारज्ञानयोरपि परस्परं प्रतिबन्धकत्वात्, न तु उभय-
 व्याप्तिग्रहजननद्वारा दूषकत्वं एकस्मिन् धर्मिणि विरोधुभयव्याप्य-
 त्वस्य ग्रहीतुमशक्यत्वादित्याहुः ।

साम्प्रदायिकास्तु हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेन सर्वसपक्ष-विपक्षव्या-
 वृत्तत्वमेवासाधारणत्वं तद्वान् हेतुरसाधारणः, परन्तु सपक्षः साध्य-
 वान् विपक्षस्तदभाववान् निश्चितत्वज्ञानस्य यथोक्तरूपेण दूषकता-
 यामनुपयोगात्, उदाहरणन्तु हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेनावृत्तिहेतुको
 वन्निमानाक्राशादित्यादिरेव, हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेन साध्यवद्दृष्टिः
 साध्याभाववद्दृष्टिर्वा कदाचिदपि नासाधारण इत्याहुः ।

‘अनुपसंहारौति साध्यसन्देहाक्रान्तविश्वकल्मसुपसंहारित्वं केव-
 लान्वयिधर्मव्यापकधर्मिताकसाध्यसन्देहविषयवृत्तिलमिति यावत्.

तद्वान् हेतुरनुपसंहारी, उदाहरणन्तु सर्वमनित्यं प्रमेयत्वात् सर्व-
मभिधेयं प्रमेयत्वादित्यादि सर्वपक्षकानुमानमात्रमेव, एतज्ज्ञा-
नञ्चान्वय-व्यतिरेकोभयव्याप्तिग्रहप्रतिबन्धकमेवेति प्राञ्चः ।

मिश्रास्तु स्वरूपसत्तयाविधिसंग्रयविषयो यस्तद्दृष्टित्वज्ञानं सह-
चारसंग्रयसामग्रीतया सहचारांगे व्याप्तिनिश्चयप्रतिबन्धकं तदुत्तरं
सामानाधिकरण्यसंग्रहोत्पत्तेः तस्य तत्सामग्रीत्वात् इत्याहुः ।

नव्यास्तु हेतौ साध्याभावव्यापकाभावप्रतियोगित्वरूपव्यतिरेक-
व्याप्तिज्ञानविरोधिहेत्वाभासोऽनुपसंहारी स च साध्याभावव्यापकी-
भूताभावाप्रतियोगी हेतुः साध्याभावाव्यापको हेत्वभावः अभावा-
प्रतियोगि साध्यं अभावाप्रतियोगी हेतुश्चेत्यादि, उदाहरणञ्च केव-
लान्वयिसाध्यकमात्रं केवलान्वयिहेतुकमात्रं व्यभिचारिमात्रञ्चेति^(१)
प्राञ्जरिति संक्षेपः ।

नन्वसाधारणानुपसंहारिणोः सव्यभिचारान्तर्भावस्तदा स्याद्यदि
तत्त्रितयसाधारणमेकं लक्षणमभिधातुं शक्यते, न चैवं, इत्यभि-
प्रायेण शङ्कते, 'तत्रेति, साध्य-तदभावेति अस्ति च साधारणस्य
साध्यसमानाधिकरणत्वेन साध्यप्रसञ्जकत्वं साध्याभावसमानाधि-
करणत्वेन च साध्याभावप्रसञ्जकत्वं, असाधारणस्य साध्याभावव्यति-
रेकासहचारित्वेन साध्याभावप्रसञ्जकत्वं साध्यव्यतिरेकासहचारित्वेन

(१) केवलान्वयिसाध्यकस्थले अभावाप्रतियोगिसाध्यस्य अनुपसंहारित्वं
केवलान्वयिहेतुकस्थले अभावाप्रतियोगिहेतोः अनुपसंहारित्वं, व्यभि-
चारिमात्रस्थले साध्याभावव्यापकीभूताभावाप्रतियोगिहेतोः साध्याभावा-
व्यापकहेत्वभावस्य अनुपसंहारित्वमिति भावः ।

भयं प्रत्यसाधकत्वात् अनापादकत्वाच्च । नाप्युभय-

साध्यप्रसञ्जकत्वं,^(१) अनुपसंहारिणः साध्यवत्तया ज्ञातवृत्तित्वेन साध्य-
प्रसञ्जकत्वं, साध्याभाववत्तया ज्ञातवृत्तित्वेन साध्याभावप्रसञ्जकत्व-
मित्यभिमानः । अत्र प्रसक्तिरनुमितिरापत्तिर्वा तज्जनकत्वञ्च न
फलोपधायकत्वं फलानुपधायके अव्याप्यापत्तेः उभयव्याप्तिभ्रमेण
तदुपधायके सद्धेतावतिव्याप्यापत्तेः किन्तु तत्स्वरूपयोग्यता वाच्या
स्वरूपयोग्यत्वञ्च तदुभयव्याप्यादिमत्त्वं तच्च न सम्भवति विरुद्धो-
भयव्याप्यत्वस्य एकत्रासम्भवादित्याह, 'एकस्येति, 'उभयं प्रति' विरु-
द्धोभयं प्रति, तेनैकस्य द्रव्यत्वादेः संयोग-तदभावोभयसाधकत्वऽपि
न चतिः, 'असाधकत्वात्' अनुमितिस्वरूपायोग्यत्वात्, 'अनापाद-
कत्वात्' आपत्तिस्वरूपायोग्यत्वात् । 'उभयपक्षेति, 'पक्षपदं धर्म्मि-
परं, साध्यवद्वृत्तित्वे सति साध्याभाववद्वृत्तित्वमित्यर्थः, 'उभयव्या-
वृत्तत्वमिति सपक्ष-विपक्षव्यावृत्तत्वमित्यर्थः, 'वाकारश्चार्थे, यावत्त्वेन
सपक्ष-विपक्षौ विशेषणीयौ, तेन न धूमादावतिव्याप्तिः^(२), इदमुप-

(१) साध्यवद्यावृत्तत्वे सति साध्याभाववद्यावृत्तरूपस्यासाधारणस्य सा-
ध्यवद्यावृत्तत्वमेव साध्याभावव्यतिरेकासहचारित्वं, साध्याभाववद्यावृत्तत्व-
मेव साध्यव्यतिरेकासहचारित्वं, तच्च साध्य-तदभावोभयव्याप्यत्वरूपं
तादृशव्याप्तिविशिष्टस्य हेतोः साध्य-तदभावप्रसञ्जकत्वमिति भावः । अत्र
पञ्चसु चादर्शपुस्तकेषु सर्वत्र साध्याभावव्यतिरेकासहचारित्वेन इति पाठो
वर्तते स न समीचीन इति ध्येयम् ।

(२) तथाच वज्रिमान् धूमादित्यादौ धूमस्य यत्किञ्चित्सपक्षे अयो-
गोलके विपक्षे च व्यावृत्तत्वेऽपि नासाधारणत्वमिति भावः ।

पक्षवृत्तित्वं उभयव्यावृत्तत्वं वा तत्त्वम् अननुगमात् ।
अथ साध्यसंशयजनककोटिद्वयोपस्थापकपक्षधर्मता-

लक्षणं साध्यसन्देहाक्रान्तविश्वकत्वमित्यपि बोध्यं अन्यथा अनुपसं-
हार्यलाभात्, 'अननुगमादिति प्रथमस्य साधारणमात्रे, द्वितीय-
स्यासाधारणमात्रे, तृतीयस्यानुपसंहारिमात्रे सत्त्वादिति भावः ।
साधारणधर्मवद्बुद्धिर्मिज्ञानजन्या असाधारणधर्मवद्बुद्धिर्मिज्ञानजन्या विप्र-
तिपत्तिवाक्यजन्या वा या कोट्युपस्थितिः सैव संशयजनिका न तु
कोट्युपस्थितिमात्रं हृदे वल्लिर्नास्तीति ज्ञानस्य प्रतियोगिविधया
वल्लिविषयकत्वेन वल्लि-तदभावोभयकोट्युपस्थितिरूपस्य सत्त्वेऽपि
सन्निकृष्टपर्वतादौ संशयाभावेन तथैवान्वय-व्यतिरेकात्, साधा-
रणधर्मश्च कोटिद्वयसहचरितो धर्मः, असाधारणधर्मश्च कोटिद्वय-
वत्तया निश्चितसकलव्यावृत्तो धर्मः सकलकोटिद्वयवद्वावृत्तधर्मो
वा यथा गगनादिः समवायादिसम्बन्धेन स्थाणुत्व-तदभाववद्वा-
वृत्तप्रमेयत्वादिर्वा, साधारणधर्मवत्तादिकन्तु येन सम्बन्धेन साधा-
रणत्वादि तेन सम्बन्धेन बोध्यं, तेन विषयत्वसम्बन्धेनात्मत्व-तदभाव-
सहचरितस्य संयोगादिसम्बन्धेनात्मत्व-तदभाववद्वावृत्तस्य वा सम-
वायसम्बन्धेनात्मनि ज्ञानादात्मत्व-तदभावोपस्थितावपि न संशयः ।
न च परस्परं व्यभिचारान्न तादृशोपस्थितित्वादीनां कारणताव-
च्छेदकत्वमिति वाच्यं । अनुमितौ व्याप्तिज्ञानादिवदव्यवहितोत्तर-
त्वसम्बन्धेन तत्तत्कोटिद्वयोपस्थितिविशिष्टत्वस्यैव कार्यतावच्छेदक-
त्वात् । न चैवं संशयत्वावच्छेदेन कारणलाभ इति वाच्यं । तत्र

ज्ञानविषयत्वे सति हेत्वभिमतः सः, विप्रतिपत्तिस्तु

धर्मितावच्छेदकविशिष्टधर्मिज्ञानस्यैव कारणत्वात् । न च एतादृश-
 कोट्युपस्थितीनामेव सन्देहजनकत्वमिति नियमे भ्रमत्वव्यवकृत्या
 कोटिद्वयोपस्थितिरूपस्य भ्रमत्वसंशयस्य कथमर्थसंशयजनकत्वं तस्य
 भ्रमत्व-तदभावसाधारणज्ञानत्वलक्षणधर्मवद्भूमिज्ञानजन्यत्वेऽपि अर्थ-
 तदभावसाधारणधर्मवद्भूमिज्ञानाजन्यत्वादिति वाच्यं । तत्रापि भ्रम-
 त्वसंशयरूपकोट्युपस्थितेरर्थसन्देहाजनकत्वात् किन्तु भ्रमत्वसंशयान-
 न्तरं ज्ञानविषयतात्मकसाधारणधर्मदर्शनादर्थ-तदभावोपस्थितेरेव
 सन्देहजनकत्वात् भ्रमत्वसंशयानुविधानन्तु प्रतिबन्धकापसरणार्थ-
 मिति प्राचीनमतानुसारेण लक्षणमाह, 'अथ साधेति, अत्र 'जन-
 कान्तमुपस्थापकपदप्रकृत्यर्थस्य उपास्यतेर्विशेषणं तथाच साध्यसन्देह-
 जनिका या कोटिद्वयोपस्थितिस्तज्जनकस्य पक्षधर्मताज्ञानस्य विषयो
 यत्र इति वज्रव्रीहिणा साध्यसन्देहजनककोटिद्वयोपस्थितिजनक-
 पक्षधर्मताज्ञानविषयवत्त्वे सति हेत्वभिमत इत्यर्थः, 'पक्षधर्मताज्ञानं'
 पक्षविशेष्यकज्ञानं, भवति च साध्य-तदभाववद्वृत्तिहेतुमान् पक्ष-
 इति पक्षविशेष्यकज्ञानं सपक्ष-विपक्षव्यावृत्तहेतुमान्पक्ष इति
 पक्षविशेष्यकज्ञानञ्च साध्यसन्देहजनककोट्युपस्थितिजनकं तद्विषयः
 साध्य-तदभाववद्वृत्तित्वरूपं साधारणत्वं सपक्ष-विपक्षव्यावृत्तत्वरूप-
 मसाधारणत्वञ्च साधारणासाधारणहेत्वोरिति लक्षणसमन्वयः, 'पक्ष-
 धर्मताज्ञानविषयत्वे सति' इति यथाश्रुतं न सङ्गच्छते वक्त्रि-तद-
 भाववद्वृत्तिधूमवान् पर्वत इति पक्षविशेष्यकभ्रमस्य तथाविध-

कोटिद्वयोपस्थितिजनकतया तद्विषये धूमेऽतिव्याप्त्यापत्तेः । नन्वेव-
 मपि वक्त्रिमान् धूमादित्यादौ वक्त्रि-तदभाववद्बृत्तिप्रमेयत्ववान्
 पर्वत इति ज्ञानस्य तथाविधकोटिद्वयोपस्थितिजनकतया तद्वि-
 षयप्रमेयत्ववति धूमेऽतिप्रसङ्गः । अथ विषयपदं विशेषणतावच्छे-
 दकपरं, तथाच पक्षे यद्रूपावच्छिन्नवत्त्वज्ञानं साध्यसन्देहजनक-
 कोटिद्वयोपस्थितिजनकं तद्रूपावच्छिन्नवत्त्वं पर्यवसितोऽर्थः तच्च रूपं
 साध्य-तदभाववद्बृत्तित्वादिरूपं साधारणत्वादिकमेवेति नाति-
 प्रसङ्ग इति चेत् । न । तथापि वक्त्रि-तदभाववद्बृत्तिधूमवान् पर्वत-
 इति भ्रमविशेषणतावच्छेदकधूमत्वमादाय वक्त्रि-तदभाववद्बृत्ति-
 धूमवान् पर्वतः प्रमेयवांश्चेति समूहालम्बनज्ञानविशेषणतावच्छेदक-
 प्रमेयत्वमादाय च धूमेऽतिव्याप्तेर्दुर्वारत्वात् साध्य-तदभाववद्बृत्ति-
 त्वादिरूपसाधारणादिविशिष्टहेतुमत्ताभ्रमस्य तथाविधकोटिद्वयो-
 पस्थितिजनकतया साध्यवद्बृत्तित्वांशस्यापि तादृशरूपत्वेन तमा-
 दाय सन्देहावतिव्याप्तेर्दुर्वारत्वाच्च, किञ्च धूमौयवृत्तित्वे वक्त्रि-तद-
 भाववदीयत्वं गृह्यतो वक्त्रि-तदभाववद्बृत्तिधूमवान् पर्वत इति
 भ्रमस्यापि तथाविधतया तादृशवृत्तित्ववत्त्वात् धूमेऽतिव्याप्तिः । न
 च भ्रमभिन्नत्वेन ज्ञानं विशेषणीयं अतो नैषां दूषणानामवकाश इति
 वाच्यं । तथापि साध्य-तदभाववद्बृत्तित्वरूपसाधारणविशिष्टप्रमेय-
 त्वादिमत्ताज्ञानस्य भ्रमभिन्नस्यैव तथाविधकोटिद्वयोपस्थितिजनक-
 तया साध्यवद्बृत्तित्वांशस्यापि तादृशरूपत्वेन तमादाय सन्देहावति-
 व्याप्तेर्दुर्वारत्वात् वक्त्रि-तदभाववद्बृत्तिघटवान् धूमवांश्च पर्वतः वक्त्रि-
 तदभाववद्बृत्तिघटवान् प्रमेयत्वविशिष्टधूमवांश्च पर्वत इत्यादि-

भ्रमभिन्नज्ञानविशेषणतावच्छेदकधूमत्व-प्रमेयत्वादिमादाय धूमेऽति-
 व्याप्तेर्दुर्व्वारत्वाच्च । न च वस्तुगत्या साधारण्याय यो यो धर्म-
 स्तद्धर्मिज्ञानजन्य कोटिद्वयोपस्थितिर्न संशयजनिका स्थाणुत्वादि-
 व्याप्यधर्मैऽपि स्थाणुत्वादिसाधारणभ्रमात् संग्रयोदयात् स्थाणु-
 त्वादिसाधारण्याच्च ज्ञाने च वस्तुतः स्थाणुत्वादिसाधारणस्योच्चत्वस्य
 ज्ञानेऽपि संशयानुदयाच्च अतः साधारण्यादिप्रकारकधर्मवद् धर्मि-
 ज्ञानजन्यकोट्युपस्थितिरेव संशयजनिका तथाच पक्षे यद्रूपविशिष्ट-
 वत्ताज्ञानजन्यकोटिद्वयोपस्थितित्वं साध्यसन्देहजनकतावच्छेदकता-
 पर्याप्त्यधिकरणं तद्रूपवत्त्वं विवक्षितमिति वाच्यं । साध्य-तदभाववद्-
 वृत्तित्वविशिष्टवत्ताज्ञानजन्यकोटिद्वयोपस्थितित्वस्यापि अतथात्वेना-
 सम्भवापत्तेः, न हि तादृशकोट्युपस्थितित्वेन जनकत्वं, साध्यप्रति-
 योगिकत्वेनाभावान्तरावगाहिनो भ्रमादर्थसंग्रयोत्पत्तेरिति । मैवं ।
 पक्षविशेष्यक-यद्रूपविशिष्टप्रकारकज्ञानजन्यकोट्युपस्थितित्वं साध्यस-
 न्देहजनकतानतिरिक्तवृत्ति तद्रूपावच्छिन्नत्वस्य विवक्षितत्वात् । अथैव-
 मपि वक्लिमद् वृत्तित्वांशमादाय धूमेऽतिव्याप्तिः वज्रभाववद् वृत्ति-
 त्वांशमादाय विरुद्धे जलत्वादावतिव्याप्तिश्च वक्लिसंग्रयत्वावच्छिन्नं प्रति
 वक्लिसहचरितधर्मवद्धर्मिज्ञानजन्यवज्र्युपस्थितित्वेन वज्रभावसहचरित-
 धर्मवद्धर्मिज्ञानजन्यवज्रभावोपस्थितित्वेन च दण्ड-चक्रवद्धेतुतया
 केवलवक्लिसहचरितत्वाद्यवच्छिन्नप्रकारकज्ञानजन्यकोट्युपस्थितित्वांश-
 स्यापि तादृशजनकतानतिरिक्तवृत्तित्वात् । न हि वक्लिसंग्रयत्वेन
 कार्यत्वं वक्लि-तदभावोभयसहचरितधर्मवद्धर्मिज्ञानजन्यवक्लि-तद-
 भावोपस्थितित्वेन जनकत्वमिति हेतु-हेतुमद्भावः, प्रत्येकसहच-

रितधर्मद्वयज्ञानजन्यकोटिद्वयोपस्थितितोऽपि संशयोत्पत्तेः, अतएव
 दौधितौ धर्मस्यैकत्वं ज्ञानस्य च निश्चयत्वं न विवक्षितमित्युक्त-
 सुपाधिवादे, एकस्मिन्नेव धर्मे साध्य-तदभाववद्दृष्टित्वयोः प्रत्येक-
 मात्रविषयकक्रमिकज्ञानद्वयेन जनितादपि कोटिद्वयज्ञानात् संश-
 योत्पत्तेश्चेति चेत् । न । धर्म-ज्ञानयोरुभयोरेव एकत्वमपेक्षितमिति-
 प्राचीनमतानुसारेण एतल्लक्षणप्रणयनात्, रूपवान् स्पर्शादित्यादि-
 कञ्च विरुद्धमेव न तु व्यभिचारि कस्यापि स्पर्शस्य रूप-तदभाव-
 वद्दृष्टित्वाभावात् । न च सर्वदा तादृशरूपविशिष्टत्वं सव्यभिचारित्वं
 यदाकदाचित्तादृशरूपविशिष्टत्वं वा आद्ये वक्त्रिमान् रासभादि-
 त्यादौ रासभस्य महानसादिमात्रवृत्तित्वदशायां वङ्गभाववत्संयु-
 क्तरूपविशिष्टत्वाभावेन सव्यभिचारित्वानुपपत्तेः, द्वितीये शब्दो-
 ऽनित्यः शब्दत्वादित्यत्र पक्षे नित्यत्वाभावस्य साध्यस्य निश्चयदशाया-
 मपि सव्यभिचारित्वापत्तिः पक्षातिरिक्तमात्रे साध्य-तदभावनिश्चय-
 दशायां शब्दत्वे सर्वसपक्ष-विपक्षव्यावृत्तत्वरूपासाधारणत्वसत्वादिति
 वाच्यं । असाधारणत्वलक्षणे सपक्ष-विपक्षत्वं न निश्चयगर्भमपि तु
 वास्तविकसाध्य-तदभावत्वमेव तदुभयव्यावृत्तत्वञ्च कदाचिदपि
 तत्र नास्ति । न चैवं पक्षातिरिक्ते साध्य-तदभावनिश्चयदशायामपि
 तस्यासाधारणत्वं न स्यादिति वाच्यं । द्रष्टृत्वात्, साध्यवद्दृष्टिः
 साध्याभाववद्दृष्टिर्वा कदाचिदपि नासाधारणः किन्तु हेतुताव-
 च्छेदकसम्बन्धेनावृत्तिरेवासाधारण इति साम्प्रदायिकमतानुसारेण
 एतल्लक्षणकरणादिति न कायानुपपत्तिः । अत्र धर्मितावच्छेदक-
 विशिष्टधर्मिणि साधारणादिधर्मप्रकारकज्ञानजन्यकोटिद्वयोपस्थिते-

रेव साध्यसन्देहजनकतया साध्य-तदभावसहचरितधर्मवानित्यादि-
निर्धर्मितावच्छेदकज्ञानेन सम्बन्धिज्ञानविधया जनितायाः कोऽप्युप-
स्थितेः साध्यसन्देहाजनकतया अनतिरिक्तवृत्तित्वघटितलक्षणस्या-
सम्भवापत्तिरिति पक्षविशेष्यकेति यत्किञ्चिद्धर्मितावच्छेदकवि-
शिष्टविशेष्यकार्यकं । न च पक्षविशेष्यक-यद्रूपावच्छिन्नप्रकारकज्ञानं
कोटिद्वयोपस्थितिजनकं तद्रूपावच्छिन्नत्वमित्येवागु किं साध्यसन्देह-
जनकतानतिरिक्तवृत्तित्वप्रवेगेनेति वाच्यं । वन्निमान् धूमादित्यादौ
वन्निमदनुवृत्तत्व-वज्रभाववद्भाववृत्तत्वविषयकस्य वन्निमदनुवृत्त-वज्र-
भाववद्भाववृत्तधूमवान् पर्वत इति ज्ञानस्य सम्बन्धिज्ञानविधया वन्नि-
तदभावोभयोपस्थापकतया वन्निमदनुवृत्तत्वे सति वज्रभाववद्भा-
ववृत्तत्वमादाय धूमादावतिव्याप्यापत्तेः वन्नि-तदभाववद्भाववृत्तिधूमवान्
पर्वतः प्रमेयवांश्चेति समूहालम्बनभ्रमस्य साधारणधर्मज्ञानविधया
कोटिद्वयोपस्थितिजनकत्वेन प्रमेयत्वादिमादाय धूमादावतिव्याप्या-
पत्तेश्च, विवक्षिते तु साधारणादिधर्मवद्भिर्मिज्ञानजन्यकोऽप्युपस्थितेरेव
सन्देहजनकतया तादृशकोऽप्युपस्थितेः साध्यसन्देहजनकत्वाभावा-
न्नातिव्याप्तिः । न च पक्षविशेष्यक-यद्रूपावच्छिन्नप्रकारकज्ञानत्वं
कोटिद्वयोपस्थितिजनकतावच्छेदकं तद्रूपावच्छिन्नत्वं विवक्षणीयं स-
म्बन्धिज्ञानञ्च पक्षविशेष्यक-सम्बन्धिप्रकारकज्ञानत्वेन न हेतुः किन्तु
सम्बन्धिज्ञानत्वेनेति नोक्तातिप्रसङ्ग इति वाच्यं । साधारणादिधर्मव-
द्भिर्मिज्ञानस्योद्बोधकविधया तत्तद्व्यक्तित्वेनैव कोऽप्युपस्थितिं प्रति जन-
कत्वादसम्भवापत्तेः । अत एव पक्षविशेष्यक-यद्रूपावच्छिन्नप्रकारक-
ज्ञानत्वं कोटिद्वयोपस्थितिजनकतानतिरिक्तवृत्ति तद्रूपावच्छिन्नत्व-

विवक्षणेन न कोऽपि दोष इत्यपि परास्तं । पक्षविशेषक-साधार-
णादिधर्मप्रकारकज्ञानत्वस्य कोटिद्वयोपस्थित्यनुपधायके साधार-
णादिधर्मवद्बुद्धिर्ज्ञानेऽपि सत्त्वेनातिरिक्तवृत्तित्वादसम्भवापत्तेः तत्त-
द्व्यक्तित्वस्यैव कोटिद्वयोपस्थितिजनकतावच्छेदकतया जनकतापदेन
स्वरूपयोग्यताविवक्षणेऽपि अनिस्तारात् । न च तथापि यत्किञ्चि-
द्वर्णितावच्छेदकविशिष्टविशेषक-यद्रूपविशिष्टप्रकारकज्ञानत्वं साध्य-
सन्देहजनकतानतिरिक्तवृत्ति तद्रूपविशिष्टत्वमित्येवासु किं कोटि-
द्वयोपस्थितिप्रवेगेनेति वाच्यं । सामान्यतः साध्यसन्देहस्य सामान्य-
तस्तज्जनकत्वस्य च लक्षणघटकतया पर्वतो वज्जिमान् धूमादि-
त्यादौ प्रमेयत्वादिमादाय धूमादावतिव्याप्यापत्तेः पर्वतत्वधर्मि-
तावच्छेदकप्रमेयत्वादिविशिष्टप्रकारकज्ञानत्वस्य धर्मितावच्छेदक-
प्रकारकधर्मिज्ञानविधया पर्वतो वज्जिसान्न वा प्रमेयं वज्जिमन्न
वेत्यादिसाध्यसन्देहजनकताया अनतिरिक्तवृत्तित्वात् । न च यत्-
किञ्चिद्वर्णितावच्छेदकविशिष्टविशेषक-यद्रूपविशिष्टप्रकारकज्ञानत्वं
तद्वर्णविशिष्टांशे या तद्वर्णितावच्छेदकसाध्यसन्देहजनकता तद-
नतिरिक्तवृत्ति तद्रूपविशिष्टत्वं विवक्षणीयं किं कोट्युपस्थितित्व-
प्रवेगेनेति वाच्यं । तस्यापि लक्षणान्तरत्वात् सामान्यतः साध्य-
सन्देहजनकत्वघटितलक्षणे वैयर्थ्याभावात् द्रव्यं गुण-कर्मान्यत्ववि-
शिष्टसत्त्वादित्यादौ गुण-कर्मान्यत्वमादाय विशिष्टसत्त्वादौ सद्भेद-
रूपेऽतिव्याप्यापत्तेश्च गुण-कर्मान्यत्वविशिष्टसत्तावान् गुण-कर्मान्यत्व-
विशिष्टसत्तावानित्याकारकगुण-कर्मान्यत्वविशिष्टसत्ताधर्मितावच्छे-
दककगुण-कर्मान्यत्वविशिष्टसत्ताप्रकारकज्ञानत्वस्य शाब्दातिरिक्त-

ज्ञाने^(१) प्रसिद्धस्य धर्मितावच्छेदकप्रकारकज्ञानविधया गुण-कर्मान्यत्वविशिष्टसत्तांशे गुण-कर्मान्यत्वविशिष्टसत्ताधर्मितावच्छेदकगुण-कर्मान्यत्वविशिष्टसत्तावद्द्रव्यं न वेति साध्यसन्देहजनकताया अनतिरिक्तवृत्तित्वात् । न च विवक्षितेऽपि व्यापवत्तासंशयजन्यकोट्युपस्थितेरपि व्यापकवत्तासंशयहेतुतामते धर्मिणि साध्यव्याप्यत्वविशिष्टप्रकारकसंशयजन्यकोट्युपस्थितेः साध्यसन्देहजनकत्वात् साध्यव्याप्यत्वमादाय सद्धेतावतिव्याप्तिरिति वाच्यं । साध्यव्याप्यत्वविशिष्टप्रकारकज्ञानजन्यकोट्युपस्थितित्वस्य साध्यसन्देहाजनकसाध्यव्याप्यत्वविशिष्टप्रकारकनिश्चयजन्यकोट्युपस्थितावपि सत्त्वेनातिरिक्तवृत्तित्वात् । 'हेत्वभिमत इति विशेषणन्तु यद्रूपविशिष्टप्रकारकज्ञानजन्यकोट्युपस्थितित्वमित्यत्र हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेन यद्रूपविशिष्टप्रकारकत्वलाभाय, अन्यथा अयमात्मा ज्ञानादित्यादौ ज्ञानस्य समवायेन व्यभिचारित्वापत्तेः विषयतासम्बन्धेन आत्मत्व-तदभावसहचरितस्य ज्ञानस्य विषयतासम्बन्धेनात्मनि ज्ञानस्य साध्यसन्देहजनककोट्युपस्थितिजनकत्वात् विवक्षिते तु समवायेन तादृशज्ञानवत्ताज्ञानजन्यकोट्युपस्थितेः साध्यसन्देहाजनकत्वान्नातिप्रसङ्गः, येन सम्बन्धेन तदुभयकोटिसहचरितत्वं तेन सम्बन्धेन तद्वत्त्वज्ञानस्य साध्यसन्देहजनकत्वादिति सङ्क्षेपः ।

ननु शब्दोऽनित्यो न वेति विप्रतिपत्तिवाक्येऽतिव्याप्तिः तस्यापि साध्यसन्देहजनककोटिद्वयोपस्थापकज्ञानविषयत्वादित्यत आह,

(१) उद्देश्यतावच्छेक-विधेययोरैक्यात् शाब्दबोधासम्भवः इत्यत उक्तं शाब्दातिरिक्तज्ञान इति ।

प्रत्येकं न तथा न वा पक्षवृत्तिः साधारणमन्वयेन
असाधारणं व्यतिरेकेण अनुपसंहारी पक्ष एवोभय-
साहचर्येण कोटिद्वयोपस्थापकः । केवलान्वयिसाध्य-

‘विप्रतिपत्तिस्त्विति, ‘न तथेति नोभयकोट्युपस्थापकज्ञानविषय-
इत्यर्थः, प्रतियोगिवाचकपदज्ञानेन भावकोट्युपस्थापनात् नञा चा-
भावकोट्युपस्थापनादिति भावः । तथाच लक्षणस्यद्वयपदेन तद्वा-
रणमिति हृदयं^(१) । प्रकारान्तरेण विप्रतिपत्तावतिव्याप्तिमुद्धरति,
‘न वा पक्षवृत्तिरिति न वा कोटिद्वयोपस्थापकपक्षधर्मताज्ञानविषय-
इत्यर्थः ।

साधारणादिषु लक्ष्येषु लक्षणं सङ्गमयति, ‘साधारणमिति,
‘अन्वयेन’ साध्य-तदभावोभयवृत्तित्वप्रकारेण, धर्मिणि ज्ञातं सदिति
शेषः, ‘उभयकोट्युपस्थापक इत्यग्रेतनेन लिङ्गविपरिणामेनान्वयः,
‘असाधारणमिति, ‘व्यतिरेकेण’ सर्वसपक्ष-विपक्षव्यावृत्तित्वप्रकारेण,
धर्मिणि ज्ञातं सदिति शेषः, ‘कोटिद्वयोपस्थापक इत्यग्रेणान्वयः,
‘अनुपसंहारीति सर्वमनित्यं प्रमेयत्वादित्यनुपसंहारीत्यर्थः, ‘उभय-
साहचर्येणेति साध्य-तदभावोभयकोटिसहचरित्वप्रकारेणेत्यर्थः,
ज्ञातः सन्निति शेषः । यद्यपि साध्य-तदभावसहचरित्वं नानुप-
संहारित्वं किन्तु साध्यसन्देहाक्रान्तविश्वकल्मेव तत्प्रकारकज्ञानञ्च
न तादृशकोट्युपस्थापकं साधारणादिवहिर्भूतत्वात् । न चानुप-

(१) तथाच न कोटिद्वयोपस्थापकत्वं प्रत्येकस्येति भावः । .

कानुपसंहारी अयं घट एतत्त्वादित्यसाधारणश्च स-
हेतुरेव तदज्ञानं दोषः पुरुषस्य, अत एवासाधारण-
प्रकरणसमयोरनित्यदोषत्वम् अन्यथा सहेतौ बाधा-

संहारित्वज्ञाने नियमतः साध्य-तदभाववदृत्तित्वरूपसाधारणत्वस्यापि
विषयत्वात् साधारणधर्मज्ञानविधयैव तज्ज्ञानस्यापि तादृशकोशुप-
स्थापकत्वमिति वाच्यं । तज्ज्ञाने साध्य-तदभाववदृत्तित्वभावेऽपि
साध्य-तदभावांगे तस्याप्यनिश्चयत्वात् साध्य-तदभाववदृत्तित्वनिश्चयस्यैव
च साध्यसन्देहजनककोशुपस्थितिजनकत्वेन प्राचीनैरभ्युपगमात् ।
न च निश्चयत्वनिवेशे गौरवं, प्राचीनैस्तथैवानुभवस्य निर्णीतत्वेन
गौरवस्याकिञ्चित्करत्वात्, अन्यथा साधारणधर्मवदूर्ध्वज्ञानजन्यको-
शुपस्थितेरेव संग्रयजनकत्वमिति नियमे मानाभावात् साध्य-तद-
भाववदृत्तित्वादिविशिष्टवैशिष्ट्यावगाहिज्ञानजन्योपस्थितित्वेन हेतु-
तया निश्चयत्वस्यावच्छेदककोटावप्रवेशाच्च तादृशविषयताविशेषस्य
साध्याद्यंगे निश्चय एव सत्त्वात्, तथापि नेदं व्यभिचारात्मकस्य
दोषस्य लक्षणं येनानुपसंहारित्वज्ञानस्य तादृशकोशुपस्थित्यजनक-
तया अनुपसंहारित्वेऽव्याप्तिः स्यादपि तु व्यभिचारिहेतोर्लक्षणं
तस्य चानुपसंहारित्वमादायानुपसंहारिण्यगमनेऽपि न क्षतिः साध्य-
तदभावसहचरित्वरूपसाधारणत्वमादायैव तत्रापि लक्षणसम्भवात् ।
न चानुपसंहारितादृशायां हेतौ साध्य-तदभाववदृत्तित्वनिश्चय एव
नास्तीति वाच्यं । हेतौ तन्निश्चयाभावेऽपि यदा कदाचिद्यत्र
कुत्रचित्तन्निश्चयस्य तादृशकोशुपस्थितिजनकतयैव तदादाय धर्मिणि

दिज्ञाने हेत्वाभासाधिकापत्तिः । न च प्रमेयत्वेना-
भेदानुमाने शब्दोऽनित्यः शब्दाकाशान्यतरत्वादित्यत्र

यद्रूपावच्छिन्नवत्ताज्ञानं साध्यसन्देहजनककोटिद्वयोपस्थितिजनकं
तद्रूपवत्त्वरूपस्य लक्षणस्य सम्भवादित्यभिप्रायः ।

ननु सर्वं प्रमेयं वाच्यत्वादित्यादिकेवलान्वयिसाध्यकानुपसंहा-
रिण्यव्याप्तिः तत्र साध्याभावस्याप्रसिद्ध्या तत्संग्रयाप्रसिद्धेः साध्य-तद्-
भावसहचरितत्वरूपसाधारण्यमादाय लक्षणासंभवाच्च एवं अयं घटः
एतत्त्वादित्यत्र यदा पूर्वं पक्षे घटत्वं निश्चितं तदुत्तरञ्च तत्रैव घटे
स घटोनायमिति भ्रमोजातस्तदा घटत्ववत्तया निश्चितव्यावृत्तत्वेन
गृह्यमाणतया असाधारणे एतत्त्वे अव्याप्तिः वास्तवतद्वावृत्तत्वाभा-
वादित्यत आह, 'केवलान्वयीति, 'अनुपसंहारी' साध्यसन्देहाक्रान्त-
विश्वकः, 'असाधारणः' पक्षमात्रवृत्तिः, 'सङ्घेतुरेवेति, तथाचालक्ष्य-
त्वान्नाव्याप्तिरिति भावः । इदमुपलक्षणं सर्वं वक्तिमद्रूमादित्यादा-
वन्वय-व्यतिरेकिसाध्यकानुपसंहार्यपि न लक्ष्यः तत्र साधारणत्वमा-
दायापि लक्षणासम्भवादित्यपि बोध्यं ।

ननु सङ्घेतुत्वाज्ञानदशायां सोपि दुष्ट एवेत्यत आह, 'तदज्ञान-
मिति सङ्घेतुत्वाज्ञानमित्यर्थः, 'पुरुषस्येति, न तु हेतोरपि दोष-
इत्यर्थः^(१) । नन्वेवं सङ्घेतुस्यले असाधारण-प्रकरणसमयोरनित्यदोषत्वं
कथं व्यवह्रियते यदाकदाचिदपि तस्य दुष्टत्वाभावादित्यत आह,
'अतएवेति नित्यदोषत्वाभावादेवेत्यर्थः, 'अनित्यदोषत्वमिति, व्यव-

(१) न तु हेतुरपि दुष्ट इति भाव इति ख० ।

च साधारणेऽव्याप्तिः तयोः साध्यवदवृत्तित्वेन विरुद्ध-
त्वादिति चेत् । न । एतदज्ञानेऽपि साधारण्यादिप्रत्ये-

ह्यित इति शेषः, दोषशून्यत्वान्नानित्यदोषव्यवहारो न तु
दोषवत्त्वादिति भावः । यदा 'अतएव' पुरुषस्य दोषादेव, तथाच
भ्रान्ता एवं व्यवहरन्ति न वयमित्यर्थः । 'अन्यथेति पुरुषस्य सङ्गे-
तुत्वाज्ञानदशायां हेतोर्दुष्टत्वे इत्यर्थः, 'बाधादिज्ञान इति, तदानी-
मपि सङ्गेतुत्वाज्ञानस्याविशिष्टत्वादिति भावः । 'प्रमेयत्वेनेति अय-
मेतदभिन्नः प्रमेयत्वादित्यत्रेत्यर्थः, 'अव्याप्तिरिति, तत्र पक्षस्यैव
साध्यवत्तया साध्य-तदभाववदवृत्तित्वनिश्चयाभावेनोभयकोट्युपस्थापक-
त्वाभावादिति भावः । 'साध्यवदवृत्तित्वेनेति निश्चितसाध्यवदवृत्तित्वे-
नेत्यर्थः, अनवगतसाध्यसहचरित्वे सति अवगतसाध्याभावसह-
चरित्वस्य विरुद्धत्वादिति भावः । तथाचालक्ष्यमेव तदिति हृदयं ।
इदञ्चाभ्युपेत्योक्तं वस्तुतो यथोपवर्णितलक्षणस्य न तत्राव्याप्तिः,
अन्यथा एवं रूपेणानुपसंहारिण्यव्याप्तिः तत्रापि पक्षे साध्यानिश्चया-
दिति हृदयं । यद्रूपज्ञानमनुमितिप्रतिबन्धकं तदेव विभाजको-
पाधिरित्यभिप्रायेण दूषयति, 'एतदज्ञानेऽपीति तादृशपक्षधर्मता-
ज्ञानविषयत्वस्याज्ञानेऽपीत्यर्थः, 'साधारणत्वदौति, 'प्रत्येकस्य ज्ञानात्'
प्रत्येकप्रकारकज्ञानात्, इदञ्च खानुमितिप्रतिबन्धे हेतुः, 'उद्भावा-
नादिति, साधारणत्वादिप्रत्येकस्योद्भावनादित्यर्थः, इदञ्च परानु-
मितिप्रतिबन्धे हेतुः, 'उद्भावितैतन्निर्वाहार्थमिति, 'उद्भावितस्यैतस्य'
साध्यसन्देहजनककोटिद्वयोपस्थापकपक्षधर्मताज्ञानविषयत्वस्य, 'नि-

कस्य ज्ञानादुद्भावेनाच्च स्व-परानुमितिप्रतिबन्धात् उ-
द्भावेतैतन्निर्वाहार्थं साधारणादेरवश्योद्भाव्यत्वेन तस्यैव
दोषत्वाच्च । एतेन पक्षवृत्तित्वे सत्यनुमितिविरोधि-

र्वाहार्थं' निश्चयार्थमित्यर्थः, साधारण्योद्भावनं विना कथमेतस्य
हेतोः तादृशपक्षधर्मताज्ञानविषयत्वमिति सन्देहादिति भावः ।
इदमुपलक्षणं यथोक्तरूपावच्छिन्नस्य सव्यभिचाररूपत्वे यथोक्तरूप-
वत्त्वमेव व्यभिचारित्वं स्यात् अन्यथा व्यभिचारविशिष्टस्य सव्यभि-
चारपदार्थत्वाभावात् सव्यभिचारपदस्य पारिभाषिकत्वापत्तेः तच्च
व्यभिचारत्वं न सम्भवति उक्तरीत्या अनुपसंहारित्वे अव्याप्तेरित्यपि
योध्यं । 'एतेनेति 'परास्तमित्यग्रेतनेनान्वयः, 'अनुमितिविरोधीति
अनुमितिविरोधी यो धर्मः 'तत्सम्बन्धाव्यावृत्तिः' यदा कदाचित् तत्-
सम्बन्धवान् सव्यभिचार इत्यर्थः, वज्रिमान् रासभादित्यादौ रासभस्य
महानसृत्तितादृशायां अनुमितिविरोधिनी व्यभिचारस्य सम्बन्धा-
भावात् अव्याप्तिवारणाय यदा कदाचिदिति, असाधारणत्वन्तु साध्य-
व्यावृत्तत्वे सति साध्याभाववद्वावृत्तत्वं न तु साध्यवत्तया निश्चित-
व्यावृत्तत्वे सति साध्याभाववत्तया निश्चितव्यावृत्तत्वं तेन शब्दोऽनित्यः
शब्दत्वादित्यत्र पक्षे साध्य-तदभावान्यतरनिश्चयदृशाचामपि सव्यभि-
चारत्वापत्तिः, पक्षातिरिक्तमात्रे साध्य-तदभावनिश्चयदृशायां तत्र
सपक्ष-विपक्षव्यावृत्तत्वरूपासाधारणत्वसत्त्वादिति परास्तं, साध्य-तद-
भाववद्वावृत्तत्वे कदाचिदपि तत्रासत्त्वात्, हृदो वज्रिमान् धूमा-
दित्यादौ स्वरूपासिद्धत्वरूपविरोधिधर्मसादाय अतिव्याप्तिवारणाय

सम्बन्धाव्यावृत्तिरनैकान्तिकः सपक्ष-विपक्षवृत्तित्वमु-
भयव्यावृत्तत्वमनुपसंहारित्वञ्चानुमितिविरोधि तत्स-

‘पक्षवृत्तित्वे सतीति यथाश्रुतग्रन्थानुयायिनः । तद्सत् । व्यभिचा-
रादिज्ञानस्यैवानुमितिविरोधित्वेन व्यभिचारादेरनुमित्यविरोधित्वा-
दसम्भवापत्तेः । न च विरोधित्वं विरोधिज्ञानविषयत्वं तथासति
वर्जितान् वर्ज्यः वर्जितान् धूसादित्यादौ व्यभिचारादिभ्रमविषय-
वर्जित-धूमत्वादिमादाय वर्ज्य-धूमादावतिव्याप्त्यापत्तेः, समूहा-
लम्बनव्यभिचारादिभ्रमविषयप्रमेयत्वादिमादाय सङ्केतमात्रेऽतिव्या-
प्त्यापत्तेः । अथ विरोधिज्ञानविषयत्वमित्यत्र ज्ञानं भ्रमभिन्नत्वेन
विशेषणीयं । न च तथापि वज्रभाववद्बुद्धिप्रमेयत्वमितिभ्रमभिन्न-
वज्रानुमितिप्रतिबन्धकज्ञानविषयवर्जित-प्रमेयत्वादिमादायातिव्या-
प्तितादवस्थं इति वाच्यं । अनुमितिपदं हि प्रकृतपक्षमात्रोद्देशक-
प्रकृतसाध्यमात्रविधेयक-प्रकृतहेतुमात्रलिङ्गकानुमितिपरं । तथाच
तन्मात्रपक्षक-तन्मात्रसाध्यक-तन्मात्रहेतुकानुमितिप्रतिबन्धकभ्रमभि-
न्नज्ञानविषयो यो धर्मी यदाकदाचित् तत्सम्बन्धवान् स हेतुः
तस्मिन् पक्षे तस्मिन् साध्ये सव्यभिचार इति लक्षणपर्यवसन्नतया न
कस्यापि दोषस्यावकाश इति चेत् । न । तादृशज्ञानविषयधर्मसम्ब-
न्धवत्त्वस्य सव्यभिचारत्वरूपत्वे तादृशज्ञानविषयधर्मस्यैव व्यभिचारत्वं
स्यात् अन्यथा व्यभिचारविशिष्टस्य सव्यभिचारपदार्थत्वाभावेन
सव्यभिचारपदस्य पारिभाषिकत्वापत्तेः, तस्य व्यभिचारत्वं न सम्भवति

सम्बन्धः प्रत्येकमस्ति विरुद्धोऽप्यनेन रूपेण सव्यभिचार-
एव उपाधेश्च न सङ्कर इति वक्ष्यत इति निरस्तम् ।

एतदज्ञाने ज्ञाने वावश्यकप्रत्येकज्ञानस्य दोषत्वात्

धूमवान् वज्जेरित्यादौ धूमत्व-वज्जित्वादेरिव व्यभिचारघटकप्रत्येक-
पदार्थस्यापि व्यभिचारत्वापत्तेः सव्यभिचारपदस्य पारिभाषिकत्वे
इष्टापत्तौ तादृशज्ञानविषयः सहेतुस्तस्मिन् पक्षे तस्मिन् साध्ये
सव्यभिचार इत्यस्यैव सम्यक्त्वेन तादृशज्ञानविषयधर्मसम्बन्धवत्त्वपर्यन्तस्य
व्यर्थत्वापत्तेरिति ।

नव्यास्तु अनुमितिविरोधी सम्बन्धो यस्येति वज्जिब्रीहिणा
यादृशविशिष्टस्य सम्बन्धो यादृशविशिष्टनिरूपितनिश्चयनिष्ठविषयित्वं
अनुमितिविरोधी अनुमितिविरोधितावच्छेदकं तादृशविशिष्ट-
स्याव्यावृत्तिरभेदो यस्य इति व्युत्पत्त्या अभेदसम्बन्धेन तादृश-
विशिष्टवान् सव्यभिचार इत्यर्थः, तादृशविशिष्टत्वमेव सव्यभिचार-
त्वमिति भावः । अनुमितिपदञ्च प्रकृतपक्षमात्रोद्देशक-प्रकृतसाध्य-
मात्रविधेयक-प्रकृतहेतुमात्रलिङ्गकानुमितिपरं तेन वज्ज्यभाववद्दृ-
ष्टिप्रमेयत्वादिकमादाय वज्जिमान् धूमादित्यादिसङ्घेतौ नाति-
प्रसङ्गः, तथाच तन्मात्रपक्षक-तन्मात्रसाध्यक-तन्मात्रहेतुकानुमिति-
विरोधितावच्छेदकं निश्चयनिष्ठं यादृशविशिष्टनिरूपितविषयित्वं
तादृशविशिष्टं तस्मिन् पक्षे तस्मिन् साध्ये तस्मिन् हेतौ व्यभिचारः,
अभेदसम्बन्धेन तादृशविशिष्टसम्बन्धी स हेतुः तस्मिन् पक्षे तस्मिन्
साध्ये सव्यभिचारः इति व्यभिचार-सव्यभिचारयोर्लक्षणं फलितं ।

असाधकतानुमितौ व्यर्थविशेषणत्वाच्च । अत एव

वत्पक्षक-यत्साध्यक-यद्वेतुकानुमितिरप्रसिद्धा तदलङ्घनेव निर्वर्त्ति-
वर्त्तिमानित्यादिवत्तस्यापार्थकत्वात् । हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेन तादृ-
शविशिष्टसम्बन्धित्वाभिधाने विशिष्य समवायादिसम्बन्धेन तादृश-
विशिष्टसम्बन्धित्वाभिधाने वा द्रव्यं सत्त्वादित्यादावव्याप्तिः^(१) समाना-
न्यतस्तादृशविशिष्टसम्बन्धित्वाभिधाने चाजन्तसम्बन्धिताप्रवेगाद्गौरव-
मतो विशिष्याभेदसम्बन्धेनेत्युक्तं, अभेदत्वञ्च तादात्म्यत्वं । न च
समानकालीनत्वादिसम्बन्धेन तादृशविशिष्टसम्बन्धित्वमेव कुतो नोक्त-
मिति वाच्यं । अभेदसम्बन्धमपेक्ष्य समानकालीनत्वादेर्गुत्त्वादशोक-
वनिकान्यायाच्च । अवच्छेदकत्वञ्च अनतिरिक्तवृत्तित्वं तेन साध्य-
प्रतियोगिकत्वेनाभावान्तरावगाहिनो व्यभिचारादिभ्रमस्यापि प्रति-
बन्धकतया साध्याभाववृत्तिहेत्वादिरूपविशिष्टविषयकत्वस्य स्वरूप-
सम्बन्धरूपप्रतिबन्धकतावच्छेदकत्वविरहेऽपि न क्षतिः^(२) ।

(१) सत्त्वरूपहेतौ समवायसम्बन्धेन न कस्यापि वृत्तित्वमिति भावः ।

(२) तादृशविशिष्टविषयकत्वं प्रकृतानुमितिप्रतिबन्धकतानिरूपितस्व-
रूपसम्बन्धरूपावच्छेदकतावदित्युक्तौ एकदेशविषयकत्वस्यापि स्वरूपसम्ब-
न्धरूपावच्छेदकत्वात् एकदेशेऽतिव्याप्तिरतोऽनाहार्थ्याप्रामाण्यज्ञानानास्त-
न्दितनिश्चयवृत्तित्वविशिष्टतादृशविशिष्टविषयकत्वं प्रकृतानुमितिप्रतिब-
न्धकतानिरूपितस्वरूपसम्बन्धरूपावच्छेदकतापर्याप्त्यधिकरणं तादृशविशि-
ष्टत्वं व्यभिचारत्वं इत्येव वक्तव्यं तथाच प्रतिबन्धकताया अमसाधारणा-
नुरोधेन परस्परनिरूप्य-निरूपकभावापन्नविषयताशालिनिश्चयत्वेन प्रति-
बन्धकतया विशिष्टविषयकत्वस्य प्रतिबन्धकतावच्छेदकतापर्याप्त्यधिकरण-

साध्याव्याप्यत्वे सति साध्याभावाव्याप्यहेत्वाभासत्वं

नन्वेवमपि गन्धप्रागभावकालीनो घटो गन्धवान् पृथिवीत्वा-
दित्यादौ बाधिते सत्प्रतिपक्षिते च बाध-सत्प्रतिपक्षमादायाति-
व्याप्तिः काञ्चनमयः पर्वतो वज्जिमान् पर्वतादित्यादौ पक्षविशे-
षणासिद्धे पर्वतः काञ्चनमयवज्जिमान् वज्जेरित्यादौ साध्यविशेषणा-
सिद्धे पर्वतो वज्जिमान् काञ्चनमयधूमादित्यादौ हेतुविशेषणासिद्धे
चातिव्याप्तिः हृदो धूमवान् वज्जेरित्यादौ स्वरूपासिद्धिषडङ्गीर्ण-
साधारणादौ चाव्याप्तिः तत्र पक्षवृत्तित्वाभावेन सत्यन्तदलाभा-
वादिति चेत् । न । 'पक्षवृत्तित्वे सतीत्यस्य पक्षवृत्तित्वग्रहाविरोधित्वे
सतीत्यर्थः, पक्षवृत्तित्वग्रहाविरोधित्वञ्च पक्षतावच्छेदकरूपेण पक्षे
साध्यतावच्छेदकरूपेण साध्यस्य हेतुतावच्छेदकरूपेण हेतोर्वा यज्-
ज्ञानं तत्प्रतिबन्धकतानवच्छेदकत्वं, तच्चानुमितिविरोधितावच्छेद-

भिन्नतया सर्वत्रासम्भवापत्तिः । न च यादृशविशिष्टविषयत्वसामान्यं
प्रकृतानुमितिप्रतिबन्धकतानिरूपितस्वरूपसम्बन्धरूपावच्छेदकतावदित्युक्तौ
न दोष इति वाच्यं । तेजस्त्ववान् धूमाभाववद्वृत्तित्ववान् इति ज्ञानसम-
कालीनस्य तेजस्त्ववान् वज्जिरिति ज्ञानस्य व्यावर्तकधर्मदर्शनविधया
प्रतिबन्धकतया तेजस्त्ववद्वज्जिविषयत्वसामान्यस्य तादृशप्रतिबन्धकतावच्छे-
दकतया तेजस्त्ववद्वज्जौ धूमवान् वज्जेरित्यादौ क्षतिव्याप्त्यापत्तिः, धन-
तिरिक्तवृत्तित्वरूपावच्छेदकत्वोक्तौ च तेजस्त्ववान् धूमाभाववद्वृत्तित्ववान्
इति ज्ञानासमकालीनस्य तेजस्त्ववान् वज्जिरिति ज्ञानस्य प्रकृतानुमित्य-
प्रतिबन्धकतया तेजस्त्ववद्वज्जिविषयकनिश्चयत्वस्य प्रकृतानुमितिप्रतिबन्धक-
तातिरिक्तवृत्तित्वया तेजस्त्ववद्वज्जौ नातिव्याप्तिरिति विभावेनीयं ।

साध्यवन्मात्रवृत्त्यन्यत्वे सति साध्याभाववन्मात्रवृत्त्य-

कस्य विशेषणं, साधारण्यज्ञानञ्च न साक्षादनुमितिप्रतिबन्धकं अपि तु अव्यभिचारांशे^(१) व्याप्तिग्रहप्रतिबन्धकमेवेति मतेनेदं लक्षण-मतो न तत्राव्याप्तिः, व्याप्यत्वासिद्धिश्च साधारणान्तर्गतैव वक्ष्यमाणासिद्धिसामान्यलक्षणाक्रान्ततया असिद्धाविव व्यभिचारसामान्यलक्षणाक्रान्ततया व्यभिचारान्तर्गतत्वेऽपि बाधकाभावात् । न चैवमपि व्यभिचारादिविशिष्टस्य सव्यभिचारपदार्थत्वं न वृत्तं निरुक्तविशिष्टधर्मस्य व्यभिचारत्वे विरोधेऽतिव्याप्तिः तस्यापि व्यभिचारान्तर्गतत्वे विरुद्धत्वेन पृथग्विभागानुपपत्तेः, व्याप्यत्वासिद्धिश्च व्याप्यत्वासिद्धित्वेन न विभक्तः अपि तु आश्रयासिद्धिसाधारणासिद्धित्वेनैवेति वाच्यं । विरोधान्यत्वेन निरुक्तविशिष्टधर्मस्य विशेषणीयत्वात्, विरोधान्यत्वञ्च हेतु-साध्यसामानाधिकरण्यग्रहविरोधितानवच्छेदकत्वं, असाधारणत्वञ्च साध्य-तदभावव्यापकीभूताभावप्रतियोगी हेतुर्नास्तत्राव्याप्तिः, साध्यवद्वृत्तित्वे सति साध्याभाववद्वृत्तित्वं असाधारणत्वमिति साम्प्रदायिकमते च साध्याभावसमानाधिकरणो-हेतुरिति ज्ञानप्रतिबन्धकतानवच्छेदकं सद्यत् हेतु-साध्यसामानाधिकरण्यग्रहविरोधितावच्छेदकं तदन्यत्वं विरोधान्यत्वं निर्वाच्यमिति न कायानुपपत्तिः, व्यभिचारादिज्ञानमयानुमितिप्रतिबन्धकमिति मतेनेदं लक्षणं नातोऽसम्भवः । अनुमितिपदं वा यथोक्तानुमितिकारणीभूतज्ञानपरं, विरोधितापदेन च यदंशे तादृशानु-

(१) अव्यभिचारित्वविशिष्टसाध्यसामानाधिकरण्यं व्याप्तिरिति भावः ।

न्यत्वं वेति परास्तं, व्यर्थविशेषणत्वात् प्रथमं हेत्वा-
भासत्वाज्ञानाच्च, गगनमनित्यं शब्दाश्रयत्वादित्या-

मितिकारणता तदंगे विरोधिता ग्राह्या तेन वक्तव्याप्यधूमवान्
पर्वतः प्रमेयत्वं वज्रभाववदवृत्तीति समूहालम्बनज्ञानप्रतिबन्धकता-
वच्छेदकवज्रभाववदवृत्तिप्रमेयत्वादिमादाय धूमादौ नातिव्याप्ति-
रिति सङ्क्षेपः ।

साधारणादिषु लक्षणं सङ्गमयति, 'सपचेति, 'सपचात्' साध्या-
धिकरणात्, यः 'विपचः' भिन्नः, 'तद्वृत्तित्वं' तद्वृत्तित्वविशिष्ट-
हेतुविषयकत्वं, साध्यवद्वृत्तित्वे सति साध्याभाववद्वृत्तित्वविशिष्ट-
हेतुविषयकत्वमिति यथाश्रुतार्थस्तु न सङ्गच्छते 'विरुद्धोऽप्यनेन
रूपेण सव्यभिचार एव' इत्यग्रिमग्रन्यासङ्गतेः । 'उभयव्यावृत्तत्वं'
यावत्सपच-विपचव्यावृत्तहेतुविषयकत्वं, साध्य-तदभावोभयव्यापकी-
भूताभावप्रतियोगिहेतुविषयकत्वमिति यावत्, 'अनुपसंहारित्वमिति
अनुपसंहारित्वविशिष्टहेतुविषयकत्वञ्चेत्यर्थः, 'अनुमितिविरोधि' अ-
नुमितिविरोधितावच्छेदकं, 'तत्सम्बन्ध इति तेषां साध्यवद्भिन्न-
वृत्तित्वविशिष्टहेत्वादीनामभेदलक्षणसम्बन्ध इत्यर्थः, 'प्रत्येकमस्तीति
प्रत्येकं साधारणासाधारणानुपसंहारिष्वस्तीत्यर्थः । नन्वेवं साध्यव-
द्भिन्नवृत्तित्वविशिष्टहेतोरभेदलक्षणसम्बन्धस्य विरुद्धेऽपि सत्त्वादति-
व्याप्तिरित्यत आह, 'विरुद्धोपीति, 'अनेन रूपेण' साध्यवद्भिन्न-
वृत्तित्वविशिष्टहेतुत्वरूपेण । नन्वेवं विरुद्धस्य पृथग्भिधानं पुन-
रुक्तं । न चावृत्तिहेतुरूपस्य विरुद्धस्य रुद्धहाय पृथक्कदभिधान-

द्विबाध-विरुद्धसंकीर्णासाधारणाव्याप्तिरिति कथ्यत् ।
नापि सपक्ष-विपक्षगत-सर्वसपक्ष-विपक्षव्यावृत्तान्यत-

मिति वाच्यं । तत्रापि यथोक्तासाधारणत्वस्य सत्त्वेन सव्यभिचारान्तर्गतत्वादित्यत आह, 'उपाधेरिति विभाजकोपाधेरित्यर्थः, 'न सङ्करः' नाभेदः, तथाच स्वतन्त्रेच्छस्येतिन्यायात्^(१) एकस्यैव विरुद्धस्य विभिन्नधर्मरूपेण विभजनान्न पौनरुक्त्यमिति भावः । 'एतदज्ञान-इति, एतच्च दृष्टान्तायं, 'वाग्वद्ः अर्थः, तथाचैतस्याज्ञानदशाया-मिव ज्ञानदशाया अपि आवश्यकसाधारणत्वादिप्रत्येकधर्मप्रकारक-ज्ञानस्यैव प्रतिबन्धकत्वादित्यर्थः, 'व्यर्थविशेषणत्वादिति सत्यन्त-विशेषणस्य व्यर्थत्वादित्यर्थः, विरुद्धसाधारणलक्षणं दूषयित्वा विरुद्धव्यावृत्तं लक्षणद्वयं दूषयति, 'अतएवेति, अत्र लक्षणद्वये हृदो वल्लिमान् धूमादित्यादौ साध्यव्याप्यस्य धूमादेर्वारणाय सत्यन्तं, विरुद्धवारणाय प्रथमे 'साध्याभावाव्याप्येति, द्वितीये 'साध्याभाव-वन्नात्रवृत्त्यन्यत्वमिति, विरोधसंकीर्णासाधारणानुपसंहारिणौ^(२) न लक्ष्यौ किन्तु शब्दाकाशावनित्यौ शब्दाकाशान्यतरत्वात् सर्वमनित्यं प्रमेयत्वादित्यादिसाधारणसंकीर्णवितौ लक्ष्यौ, वल्लिमान् आका-शादित्यादाववृत्त्याकाशादेर्वारणाय हेत्वाभासत्वमिति, अवृत्तिश्च न हेतुर्न वा हेत्वाभासः हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेन वृत्तिमतएव तथा-

(१) स्वतन्त्रेच्छस्य पर्यनुयोगानर्हत्वादिति न्यायादित्यर्थः ।

(२) व्याप्याभिन्न-विरुद्धाभिन्नासाधारणानुपसंहारिणावित्यर्थः ।

रत्वं, व्यर्थविशेषणत्वात् अनुपसंहार्यव्याप्तेश्च । किञ्च

त्वादित्यभिमानः । एतच्च द्वितीयलक्षणेऽप्यनुषङ्गनीयं, प्रथमलक्षणे साध्यव्याप्यत्वं साध्याभाववद्वृत्तित्वे सति साध्यवद्वृत्तित्वं, साध्यवद्वृत्तित्वे सति साध्याभाववद्वृत्तित्वञ्च साध्याभावव्याप्यत्वं, द्वितीये साध्यवद्विन्नावृत्तित्वे सति साध्यवद्वृत्तित्वं साध्यवन्मात्रवृत्तित्वं, साध्याभाववद्विन्नावृत्तित्वे सति साध्याभाववद्वृत्तित्वञ्च साध्याभाववन्मात्रवृत्तित्वं, अतो नाभेद इति भावः । 'व्यर्थविशेषणत्वादिति हेत्वाभासत्वदलस्य व्यर्थत्वादित्यर्थः, तदुपादानेऽप्यवृत्तिहेतोर्दुर्वारत्वात्^(१) स्वरूपासिद्धिमादाय तस्यापि हेत्वाभासत्वात्, न हि द्रष्टव्यहेतोः सामान्यलक्षणे स्वरूपासिद्धिलक्षणे वा वृत्तिमत्त्वमपि विशेषणं, गौरवाद्ध्यर्थत्वाच्चेति भावः । इदमुपलक्षणं विरुद्धवारणाच्च प्रथमलक्षणे साध्याभावाव्याप्यत्वदलं द्वितीये साध्याभाववन्मात्रवृत्त्यन्यत्वदलञ्च व्यर्थं विरुद्धस्य सव्यभिचारभिन्नत्वे मानाभावादित्यपि बोध्यं । 'प्रथममिति साधारण्यादेः प्रत्येकस्य ज्ञानं विनेत्यर्थः, 'हेत्वाभासत्वाज्ञानात्' निरुक्तसाध्याव्याप्येत्यादिलक्षणज्ञानासम्भवात्, तज्ज्ञाने च तस्यैव प्रतिबन्धकतया यथोक्तधर्मप्रकारकज्ञानस्यानुमितेस्तत्कारणज्ञानस्य वा प्रतिबन्धकत्वे मानाभावात् । न च साध्याव्याप्यत्वादिघटिततया यथोक्तधर्मप्रकारकज्ञानमपि व्याप्तिज्ञानप्रतिबन्धकमिति वाच्यं । साध्याव्याप्यत्वादेर्हेतुतावच्छेदकविशिष्टहेताव-

(१) पर्वतो वक्रिमान् गगनादित्यादौ गगनहेतुधर्मिकपर्वतवृत्तित्वाभावमादाय दुर्वारत्वादिति भावः ।

पक्षातिरिक्तसाध्यवतः सपक्षत्वे प्रमेयत्वेनाभेदसाधने-
ऽनुपसंहाय्य चाव्याप्तिः पाक्षातिरिक्तसाध्यवतोऽप्रसिद्धेः

प्रकारत्वादिति भावः । इदमुपलक्षणं साध्यव्याप्यत्व-साध्यवन्मात्र-
वृत्तित्वादेर्हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेनैवावश्यं वक्तव्यतया अयं घटोजाना-
दित्यादौ यत्र हेतुतावच्छेदकविषयतादिसम्बन्धेन साध्यव्याप्यत्वादित्य-
कमप्रसिद्धं तत्राव्याप्यापत्तिश्चेति बोध्यं । कस्यचिद्दूषणमाह,
'गगनमिति, 'बाध-विरुद्धसङ्कीर्णैति बाधविरुद्धाभिनेत्यर्थः, अनव-
गतसाध्यसहचारकत्वे सति अवगतसाध्याभावसहचारित्वस्य विरोध-
त्वनये अयमेतदभिन्नः प्रमेयत्वात् शब्दोनित्यः शब्दाकाशान्यतरत्वात्
इत्यादेरपि विरुद्धतया तद्वारणाय 'बाध-विरुद्धेत्युक्तं, 'बाध-विरु-
द्धत्वञ्च साध्याभावव्याप्यत्वरूपविरोधाश्रयत्वं, 'कश्चिदित्यस्वरसोद्भावनं
तद्वीजन्तु व्याप्यसङ्कीर्णसाधारणवद्विरुद्धसङ्कीर्णसाधारणस्याप्यलक्ष्य-
त्वात् तत्राव्याप्तिर्न दोषायेत्यवसेयं । अनयोर्लक्षणयोः परिस्कारश्च
दोषितावनुसन्धेयः । 'सपक्ष-विपक्षगतेति साध्यवद्वृत्तित्वे सति
साध्याभाववद्वृत्तित्वेत्यर्थः, 'सर्वसपक्षेति साध्यवत्तानिश्चयविषय-
वृत्तिसामान्यभिन्नत्वे सति साध्याभाववत्तानिश्चयविषयवृत्तिसामान्य-
भिन्नत्वेत्यर्थः, सर्वपक्षं सामान्याभावलाभाय, यथाश्रुते एकमात्र-
सपक्ष-विपक्षकेऽसाधारणेऽव्याप्तेः, 'व्यर्थेति विरुद्धवारकयोः सपक्ष-
गतत्वदल-विपक्षव्यावृत्तत्वदलयोर्व्यर्थत्वादित्यर्थः, तदुभयदलस्य दूषक-
तायामनुपयोगित्वेन साधारणत्वासाधारणत्वाघटकतया विरुद्धस्यापि
साधारणासाधारणान्तर्गतत्वेन सव्यभिचारत्वादिति भावः ।

साध्यवतः सपक्षत्वे विवक्षितेऽप्रसिद्धिः वृत्तिमतौ धर्मस्य
साध्यवद्विपक्षान्यतरवृत्तित्वनियमात् ।

केचित्तु सपक्षगतत्वदल-विपक्षव्यावृत्तत्वदलयोरसाधकतानुमाने
व्यर्थत्वादित्यर्थः, इत्याहुः । तदसत् । अखण्डाभावस्य हेतुत्वात् । ‘अनु-
पसंहार्येति पर्वतो धूमवान् वक्तेरित्यादौ साधारणेऽनुपसंहारिता-
दशायां कापि साध्य-तदभावनिश्चयासत्त्वदशायामव्याप्तेरित्यर्थः,
तदानीं साध्य-तदभाववत्तया निश्चितस्याप्रसिद्ध्या तद्व्यावृत्तस्या-
प्रसिद्धेरिति भावः ।

ननु सपक्ष-विपक्षव्यावृत्तेत्यत्र सपक्ष-विपक्षत्वं न साध्य-तदभाव-
वत्तया निश्चितत्वं किन्तु पक्षातिरिक्तसाध्य-तदभाववत्त्वं, पक्षत्वञ्च
सन्दिग्धसाध्यकत्वं, तथाच पर्वतो धूमवान् वक्तेरित्यादौ कापि
साध्य-तदभावनिश्चयासत्त्वदशायामपि नाप्रसिद्धिः ।

यद्वा साध्यवत्त्वमेव सपक्षत्वं, साध्याभाववत्त्वमेव विपक्षत्वमित्यत-
आह, ‘पक्षातिरिक्तेति, अस्य पूर्वं ‘किञ्चेति कचित् पाठः स च न
सन्दर्भशुद्धः, ‘प्रमेयत्वेनेति, अभेदे तृतीया, ‘साधने’ साध्यके, अयमे-
तदभिन्नः प्रमेयत्वादित्यभेदसाध्यकप्रमेयत्वरूपे साधारणे इत्यर्थः,
‘अनुपसंहार्ये’ चेति सर्व्वमनित्यं प्रमेयत्वादित्यादिसर्व्वपक्षके चेत्यर्थः,
अनुपसंहार्येऽव्याप्तिमेव विवृणोति, ‘पक्षातिरिक्तेति, जगत एव साध्य-
सन्देहाक्रान्तत्वेन तदतिरिक्ताप्रसिद्धेरिति भावः । द्वितीयं दूषयति,
‘साध्यवतः सपक्षत्व इति, तदभाववतश्च विपक्षत्व इति शेषः,
‘अप्रसिद्धिरिति शब्दोऽनित्यः शब्दत्वादित्यादावसाधारण्यदशाया-

नापि पक्षातिरिक्तसाध्यवन्मात्रवृत्त्यन्यत्वे सति
पक्षातिरिक्तसाध्याभाववन्मात्रवृत्तिभिन्नत्वम् अनुपसं-

मव्याप्तिरित्यर्थः, 'धर्मस्य' वस्तुनः, 'साध्यवद्विपक्षान्यतरेति साध्य-
वत्तदभाववदन्यतरेत्यर्थः ।

'पक्षातिरिक्तेत्यादि, जलहृदो वक्लिमान् धूमादित्यादौ साध्य-
व्याप्यस्य धूमादेर्व्वारणाय सत्यन्तं, घटोद्रव्यं सत्त्वादित्यादौ सा-
धारणस्य सत्त्वादेः संग्रहाय मात्रपदं, पर्व्वतो वक्लिमान् धूमादित्यादौ
धूमादेरपि स्वानधिकरणमात्रे साध्य-तदभावनिश्चयदशायामेवासा-
धारणतया तत्राव्याप्तिवारणाय 'पक्षातिरिक्तत्वं साध्यवतोविशेषणं,
तदर्थंश्च 'पक्षः' साध्यनिश्चयाविशेष्यः, तदतिरिक्तत्वं साध्यनिश्चय-
विशेष्यत्वमिति यावत्, न तु 'पक्षः' सन्दिग्धसाध्यकः, तदतिरिक्तत्वं,
हृदो वक्लिमान् धूमादित्यादौ यदा केवलं हृद एव साध्यसन्देहः
हृदातिरिक्तधूमानधिकरण एव च साध्य-तदभावनिश्चयस्तदापि
धूमस्यासाधारणतया तत्राव्याप्यापत्तेः, यदा सर्व्वत्रैव साधनाधि-
करणे साध्यवत्तानिश्चयस्तदासाधारणेऽव्याप्तिवारणाय साध्यवत्त्वप्रवेशः,
सुरभिर्गौरश्वत्वादित्यादौ विरुद्धस्याश्वत्वादेर्व्वारणाय विशेष्यदलं,
घटोद्रव्यं सत्त्वादित्यादौ साधारणस्य सत्त्वादेः संग्रहाय मात्रपदं,
पक्षातिरिक्तत्वञ्च अत्रापि साध्याभाववत्यन्वेति अन्यथा अश्वोगौर-
श्वत्वादित्यादावश्वत्वादेरपि स्वानधिकरणमात्रे साध्य-तदभावनिश्चय-
दशायामसाधारणतया तत्राव्याप्यापत्तेः, क्वचित्तु मूले तथैव पाठः,

हार्यव्याप्तेः धूमादावतिव्याप्तेश्च तस्य पक्ष एव साध्य-
वति वृत्तेः ।

नापि पक्षवृत्तित्वे विरुद्धान्यत्वे च सत्यनुमित्यौप-
यिकसम्बन्धशून्यत्वं व्यर्थविशेषणत्वात् । एतेनानुगतं

पक्षातिरिक्तत्वञ्च 'पक्षः' साध्याभावनिश्चयाविशेष्यः, तदतिरिक्तत्वं
साध्याभावनिश्चयविशेष्यत्वमिति यावत्, न तु 'पक्षः' सन्दिग्धसाध्यकः,
तदतिरिक्तत्वं, सुरभिर्गौरश्वत्वादित्यादौ यदा केवलं सुरभावेव गोत्व-
सन्देहस्तदतिरिक्तेऽश्वत्वानधिकरण एव गोत्व-तदभावनिश्चयस्तदाप्य-
श्वत्वस्यासाधारणतया तत्राव्याप्यापत्तेः, यदा सर्वत्रैव साधनाधिकरणे
साध्याभाववत्तानिश्चयस्तदासाधारणेऽव्याप्तिवारणाय साध्याभाववत्त्वप्र-
वेश इति ध्येयं । 'अनुपसंहार्येति तत्र जगत एव साध्यसन्देहाक्रान्ततया
पक्षातिरिक्ताप्रसिद्धेरिति भावः । इदमुपलक्षणं द्रव्यं सत्त्वादित्यादौ
साधारणेऽपि साध्य-तदभाववति साध्य-तदभावानिश्चयदशायाम-
व्याप्तिः^(१) इत्यपि बोध्यं, 'धूमादाविति पर्वतो वक्त्रिमान् धूमादि-
त्यादावसाधारण्योत्तीर्णतादशायां साध्यव्याप्यधूमादावतिव्याप्तेरित्यर्थः ।
पक्ष एवेति 'एवकारोऽप्यर्थे, पक्षत्वं साध्यसन्देहविशेष्यत्वं, 'साध्यवतीति
पर्वत इति शेषः, इदमुपलक्षणं अयमश्वोगौरश्वत्वादित्यादावसाधा-
रण्योत्तीर्णतादशायां विरुद्धत्वेश्वत्वादावप्यतिव्याप्तिः तस्य साध्याभाव-
वत्तासन्देहवत्यपि साध्याभाववति अश्व्यादौ वृत्तेरिति बोध्यं ।

(१) साध्य-तदभावनिश्चयासत्त्वदशायामिति घ० ।

सर्वमेव लक्षणं प्रत्युक्तं प्रत्येकमेव दूषणत्वात् उद्भावेन
वादिनिवृत्तेश्च ।

‘पक्षवृत्तित्व इति, ‘अनुमित्यौपयिकः’ अनुमितिजनकज्ञान-
विषयः, यः समन्वयस्तच्छून्यत्वमित्यर्थः, स च समन्वयः पक्षसत्त्वं
सपक्षसत्त्वं विपक्षासत्त्वञ्च, तत्र सपक्षसत्त्वाभावमादायासाधारणे
लक्षणसमन्वयः, सपक्षत्वं निश्चितसाध्यवत्त्वं न तु साध्यवत्त्वमात्रं
तथा सति शब्दोऽनित्यः शब्दत्वादित्यादिसद्भेतरूपे^(१) असाधारणे-
ऽव्याप्यापत्तेः । न च एतल्लक्षणकर्तृमते तदसाधारणमेव न किन्तु
साध्यवद्वृत्तित्वस्यासाधारण्यतया नित्यः शब्दः शब्दत्वादित्यादि-
विरुद्धमेवासाधारणं तत्र च विपक्षासत्त्वाभावमादायैव लक्षण-
समन्वयः तेन निरुक्तसपक्षसत्त्वाभावस्य विरोधान्यत्वाभावेऽपि न
चतिरिति वाच्यं । तथा सति विरोधान्यत्वदलवैयर्थ्यापत्तेः
साध्यवद्वृत्तित्वदलस्यासाधारणत्वनये आकाशाद्यवृत्तिहेतोरसाधार-
णत्वेन लक्ष्यतया तत्राव्याप्यापत्तेश्च, केवलं निश्चितसाध्यवद्वावृत्तत्व-
रूपं सपक्षव्यावृत्तत्वरूपमेव असाधारणत्वं न तु विपक्षव्यावृत्तत्वम-
प्यत्र घटकमित्येतन्मतेनैवेदं लक्षणं तेन वक्त्रिमान् धूमादि-
त्यादौ धूमादेर्विपक्षव्यावृत्तत्वाभावदशायां सपक्षव्यावृत्तत्वेऽपि अल-
क्ष्यत्वात्तदानीं केवलसपक्षसत्त्वाभावमादायातिव्याप्तिरिति निरस्त,

(१) तथासत्यनित्यः शब्दः शब्दत्वादित्यादौ सद्भेतरूप इति घ० ।

इति श्रीमद्भग्वेत्तेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ
अनुमानाख्यद्वितीयखण्डे सव्यभिचारपूर्वपक्षः ॥०॥

‘व्यर्थेति’ असाधकत्वानुमाने पक्षवृत्तित्वादिविशेषणस्य व्यर्थत्वादि-
त्यर्थः, ‘एतेनेत्यादि, अनुगतं रूपञ्चान्यतमत्वादि ॥

इति श्रीमथुरानाथतर्कवागीश-विरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये
अनुमानाख्यद्वितीयखण्डरहस्ये सव्यभिचारपूर्वपक्षरहस्यं ॥

अथ सव्यभिचारसिद्धान्तः ।

उच्यते । उभयकोट्युपस्थापकतावच्छेदकरूपवत्त्वं तत्त्वं विरुद्धान्यपक्षवृत्तित्वे सत्यनुमितिविरोधिसम्बन्धाव्यावृत्तिर्वा^(१) तच्च साधारणत्वादि तेनैव रूपेण ज्ञातस्य प्रतिबन्धकत्वात् परस्य तथैवोद्भावनाच्च लक्षणानुरोधेन प्रत्येकमेव हेत्वाभासत्वम् । यद्वा साध्यवन्मात्र-

अथ सव्यभिचारसिद्धान्तरहस्यं ।

दूषणौपयिक एव विभाजक इति नियमानभ्युपगमेनाह, 'उभयेति प्रकृतसाध्यसन्देहजनिका या कोट्युपस्थितिः तज्जनकतावच्छेदकरूपवत्त्वमित्यर्थः, प्रकृते तादृशजनकतावच्छेदकं साधारणत्वादि तदादाय लक्षणसमन्वयः, कोट्युपस्थापकतावच्छेदकानुवृत्तत्वादिरूपमादाय धूमेऽतिव्याप्तिवारणाय साध्यसन्देहजनकान्तं । 'विरुद्धान्येति, विरुद्ध-स्वरूपासिद्धयोर्वारणाय 'विरुद्धान्यपक्षवृत्तित्वे सतीत्युक्तं, तदर्थस्तु पक्षवृत्तित्व-साध्यसामानाधिकरण्यग्रहाविरोधित्वं तेन स्वरूपासिद्धि-विरोधसङ्कीर्णं नाव्याप्तिः । अन्यत्सर्वं पूर्ववत् । 'तच्च' उभयकोट्युपस्थापकतावच्छेदकरूपञ्च, 'तेन रूपेण' साधारणत्वादिरूपेण, 'तथैव' साधारणत्वादिरूपेणैव, 'लक्षणेति हेत्वाभासस्य विरोधिविषयत्वघटितलक्षणानुरोधेनेत्यर्थः । ज्ञायमानं सद्यदनुमितिप्रतिबन्धकं तद्धेतवाभासत्वमित्याद्यनुरोधेनेत्यर्थः, इत्यन्ये । 'यदेति, अत्रापि पूर्ववत्-

(१) अनुमितिविरोधिसम्बन्धाव्यावृत्तिर्वा अन्यैकान्तिकत्वमिति ग० ।

वृत्त्यन्यत्वे सति साध्याभाववन्मात्रवृत्त्यन्यत्वं तेनासाधारणस्य साध्य-तदभावोपस्थापकतया दूषकत्वपक्षे नाव्याप्तिः ।

न चैवमाधिक्ये विभागव्याघातः, स्वरूपसतानुगतरूपेण त्रयाणामेकीकृत्य महर्षिणा विभागकरणात् । न चैवं साध्याभावज्ञापकत्वेन बाध-प्रकरणसमयोस्त-

साध्यव्याप्यत्व-साध्याभावव्याप्यत्वोभयग्रहविरोधितावच्छेदकरूपवत्त्वमित्यर्थः, तेन सङ्केतसङ्कीर्णसाधारणे नाव्याप्तिः, 'तेन' अनुमिति-विरोधितलघटितलक्षणकरणेन, असाधारणस्य सत्प्रतिपक्षोत्थापकतया दूषकत्वपक्षे अनुमिति-विरोधितलघटितलक्षणानुसारेण संग्रयोत्थापकतया दूषकत्वपक्षे पुनरव्याप्तिः स्यात् असाधारणस्य ग्रहे संग्रयोत्पादासम्भवात्तेन प्रतिवन्धादित्यर्थः, इदं 'यद्वेत्यस्य पूर्वं 'तेनेतिपाठानुसारेण व्याख्यातं, कचित् पुस्तके 'यद्वेत्यनन्तरं 'तेनेतिपाठः स त्वेवं क्रमेण व्याख्येयः, 'तेन' विरुद्धसङ्कीर्णसाधारणादिसङ्ग्रहाय तदुभयव्याप्तिग्रहविरोधितलघटितलक्षणार्थकरणेन, असाधारणस्य सत्प्रतिपक्षोत्थापकतया दूषकत्वपक्षे उभयव्याप्तिग्रहविरोधित्वाभ्युपगमात् तदनभ्युपगमे तु विरोधितलघटितलक्षणानुसारेणेदमपि व्याख्येयं । 'आधिक्ये' त्रयाणां दूषकता-वीजाधिक्ये, 'विभागव्याघातः' पञ्चैव हेत्वाभासा इति विभागव्याघातः, साधारणासाधारणादीनां दूषकतावीजभेदेन भेदादि-

दज्ञापकतयान्येषामुपसंग्रहः कुतो न कृत इति वार्त्तम् ।
स्वतन्त्रेच्छस्य नियोग-पर्यनुयोगानर्हत्वात्^(१) ।

इति श्रीमद्भजेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ
अनुमानाख्याद्वितीयखण्डे सव्यभिचारसिद्धान्तः ॥०॥

व्याश्रयः, 'स्वरूपेति तथाच दूषकताबीजभेदेऽपि स्वरूपसदनुगत-
रूपेण विभजनान्नाधिक्यमित्याश्रयः,^(२) 'एवं' स्वरूपसदनुगमकत्वे,
'साध्याभावज्ञापकत्वेन' साध्यवत्ताग्रहप्रतिबन्धकत्वेन, यथाश्रुते च
बाधासङ्ग्रहप्रसङ्गात्^(३) 'अन्येषां' व्यभिचारादीनाम् ॥

इति श्रीमथुरानाथतर्कवागीश-विरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये
अनुमानाख्य-द्वितीयखण्डरहस्ये सव्यभिचारसिद्धान्तरहस्यं सम्पूर्णम् ।

(१) 'नियोगः' एवं कुरु इत्यादिरूपः, 'पर्यनुयोगः' कथमेवं कृत-
मित्यादिरूपः ।

(२) नाधिक्यमित्यर्थः इति घ० ।

(३) तथाच साध्याभाववत्पक्षरूपबाधस्य साध्याभावाज्ञापकत्वेऽपि
साध्यवत्ताग्रहप्रतिबन्धकत्वेन सङ्ग्रह इति भावः ।

अथ साधारणपूर्वपक्षः ।

तत्र साधारणत्वं न साध्याभाववद्भामित्वं सर्व्वमनित्यं मेयत्वादित्यनुपसंहार्य्ये भूर्नित्या गन्धवत्त्वादित्यसाधारणे संयोगादिसाध्यकद्रव्यत्वे चातिव्याप्तेः । अत एव न साध्यवत्तदन्यवृत्तित्वं, नापि निश्चितसाध्यवत्तदन्यवृत्तित्वं, साध्यवदन्यवृत्तित्वस्य दूषकत्वेन शेषवैयर्थ्यात् ।

अथ साधारणपूर्वपक्षरहस्यं ।

नन्वनुपसंहार्य्यसाधारणयोर्व्यभिचारित्वमेव^(१) उपधेयसङ्करेऽप्युपाधेरसङ्करादित्युक्तत्वादित्यत आह,^(२) 'संयोगादीति । 'अत एव' अनुपसंहार्य्यसाधारणयोरतिव्याप्तेरेव, 'साध्येति साध्यवृत्तित्वे सति साध्यवदन्यवृत्तित्वमित्यर्थः, अन्योन्याभावघटितलक्षणकरणात् संयोगसाध्यके नातिव्याप्तिः,^(३) 'अत एव' उक्तस्यलत्रयेऽतिव्याप्तेरेवेत्यर्थः ।

(१) व्यभिचारित्वमेव साधारणत्वमेवेत्यर्थः ।

(२) ननु अनुपसंहार्य्यसाधारणयोः साधारणत्वे मिथो भेदाभावात् विभागव्याघात इत्यत आह, उपधेयेति, तथाच उपधेयानां विभाज्यानां साधारणासाधारणानुपसंहारिणां सङ्करेऽपि मिथो भेदाभावेऽपि उपाधेः विभाजकस्य साधारणत्वस्य असाधारणत्वस्यानुपसंहारित्वस्य च असङ्करात् मिथो भेदात् न विभागव्याघात इति भावः ।

(३) भेदमात्रस्य व्याप्यवृत्तितया संयोगवद्भेदस्य द्रव्येऽसत्त्वान्नातिव्याप्तिरिति भावः ।

अत एवामुकेनायमनैकान्तिक इत्येवोद्भाव्यते तत एव
वादिनिवृत्तेश्च न तु सपक्षगतत्वमपि । अनुपसंहार्यो-
व्यावर्त्योऽन्यथा तस्यैतद्विशेषत्वापत्तिरिति चेत्, त्यज
तर्हि तमधिकं क्लृप्तेऽन्तर्भावात् । नापि सपक्ष-विपक्ष-
गतत्वं, व्यर्थविशेषणत्वात् । विरुद्धोव्यावर्त्य इति चेत्,
न, विपक्षगामित्वस्यैव दूषकत्वे तस्याप्येतदन्तर्भावात् ।

अथ पक्षान्यसाध्यवत्तदन्यवृत्तित्वं साधारणत्वं तेन

‘निश्चितेति निश्चितसाध्यवृत्तित्वे सति साध्यवदन्यवृत्तित्वमित्यर्थः,
द्वितीयदले निश्चयांशनिवेशे सद्धेतावतिव्याप्तिः स्यात् भ्रमात्मक-
साध्याभावनिश्चयविषयपर्वतवृत्तित्वात्, ‘साध्येति साध्यवदन्यवृत्ति-
त्वमात्रस्य दूषकतायामुपयोगित्वेन तदनुपयोगिसाध्यवृत्तित्वांश-
निश्चयांशयोर्वैयर्थ्यादित्यर्थः, ‘अत एव’ वैयर्थ्यादेव, ‘अमुकेन’ साध्य-
वदन्यवृत्तित्वेन, ‘तत एव’ तादृशोद्भावनादेव, एवकारव्यवच्छेदार्थं
दर्शयति, ‘न त्विति । नन्वनुपसंहारिवारणार्थं निश्चितसाध्यवृत्तित्वं
सार्थकमित्याशयेनाह, ‘अनुपेति, असाधारणेत्यपि बोध्यं, ‘अन्यथा’
तदव्यावर्त्तने, ‘तस्य’ अनुपसंहारिणः, ‘एतद्विशेषत्वापत्तिः’ साधारण-
विशेषत्वापत्तिः, ‘तं’ अनुपसंहारिणं । ‘नापीति, अत्र ‘सपक्षपदं
साध्यवत्परं, न तु निश्चयगर्भं, अतो न पौनरुक्त्यं, ‘व्यर्थेति सपक्ष-
विशेषणवैयर्थ्यादित्यर्थः, विरुद्धवारणाय तत्सार्थकमित्याह, ‘विरु-
द्धेति, ‘एतदन्तर्भावात्’ साधारणान्तर्भावात् ।

‘अथेति अनुपसंहारिवारणाय ‘पक्षान्येति, ‘तदन्येति साध्यव-

सर्वमनित्यं मेयत्वादित्यनुपसंहार्यं नातिप्रसङ्गः । न
च व्यर्थविशेषणता, घटोऽनित्यो घटाकाशोभयवृत्ति-
द्वित्वाश्रयत्वादित्यनुपसंहार्यस्य विरुद्धस्यानैकान्तिक-
भिन्नस्य व्यवच्छेद्यत्वादिति चेत् । न । दूषकताप्रयो-
जकरूपभेदमन्तरेण भेदस्यैवानुपपत्तेः । साध्यवद्-
वृत्तित्वे सति सर्वसाध्यवदन्यवृत्तित्वमित्यपि न व्यर्थ-
विशेषणत्वात् एकव्यक्तिकसाध्ये तदभावाच्च । एतेन

त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकान्येत्यर्थः, अन्यथा सद्धेतावतिव्याप्यापत्तिः,
'व्यर्थविशेषणता' साध्यवद्वृत्तित्वांशस्य व्यर्थतेत्यर्थः, अनवगतसाध्य-
सहचारी विरुद्ध इति लक्षणाभिप्रायेणाह, 'घटोऽनित्य इति,
इत्यस्य विरुद्धस्य सर्वपक्षकानुपसंहार्यस्य विरुद्धान्तरस्य अयं गौर-
वत्वादित्यस्य साधारणभिन्नस्य व्यवच्छेद्यत्वात्, यथाश्रुते घटपक्षस्या-
नुपसंहारित्वानभ्युपगमात् केवलान्वयिधर्मव्यापकसंग्रयविषयवृत्तेरे-
वानुपसंहारित्वादसङ्गतेः, 'दूषकतेति तथाच भिन्न-भिन्नदूषकता-
प्रयोजकरूपाभावे विरुद्धानुपसंहारिणोर्व्यभिचारिविशेषत्वात् व्यर्थं
तद्वारकविशेषणमित्यर्थः, 'सर्वेति सर्वपदं धूमादेरपि साध्यवद्वृत्ति-
विशेषभेदवद्वृत्तित्वादतिव्याप्तिवारणाय, साध्यवत्पक्षव्यक्तेः प्राति-
स्विकरूपेण तत्तत्साध्यावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावकूटनिवेशो न
साध्यसामान्याभावः इत्यतः प्रागुक्तेन 'अत एवेत्यादिना न पौनरुक्त्यं
तत्र साध्यवत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकसामान्याभावनिवेशात्, 'व्यर्थेति

हेत्वाभासान्तरव्यवच्छेदकं लक्षणान्तरेऽपि विशेषणं
व्यर्थमिति ।

इति श्रीमद्भग्वेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ
अनुमानाख्यद्वितीयखण्डे साधारणपूर्वपक्षः ॥*॥

सत्यन्तभागस्य विरुद्धवारकस्य व्यर्थत्वादित्यर्थः, विरुद्धोऽप्येतद्विशेष-
एवेति पूर्वमभिधानादित्याशयः, यथाश्रुताभिप्रायेणाह, 'एकेति ।
'एतेनेति विरुद्धादिचतुष्टयान्यत्वे सति हेत्वाभासतावच्छेदकरूपवत्त्व-
मितिलक्षणे सत्यन्तभागस्य वैयर्थ्यमित्यर्थः ।

इति श्रीमथुरानाथतर्कवागीश-विरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये
अनुमानाख्य-द्वितीयखण्डरहस्ये साधारणपूर्वपक्षरहस्यं ।

अथ साधारणसिद्धान्तः ।

उच्यते । विपक्षगामित्वं साधारणत्वं तन्मात्रस्य दूषकत्वात् विरुद्धस्यापि तत्त्वज्ञाने विपक्षवृत्तितान्त्रा-
नदशायां साधारणत्वम् अन्यथा तस्य हेत्वाभासान्त-
रतापत्तेः उपाधेश्च न सङ्कर एव । सर्वमनित्यं मेयत्वा-
दित्यनुपसंहारी शब्दोऽनित्यः शब्दत्वात् भूर्नित्या गन्ध-

अथ साधारणसिद्धान्तरहस्यम् ।

‘विपक्षेति, ननु विपक्षगामित्वं यदि साध्यात्यन्ताभाववद्गामित्वं
तदा साध्यवदन्यवृत्तित्वे हेत्वधिकरणदेः साध्याभाववत्त्वादौ चाध्या-
प्तिरिति^(१) चेत् । न । प्रकृतहेतुधर्मिकप्रकृतसाध्याभाववद्वृत्तित्वग्रह-
त्वावच्छिन्नं प्रति ज्ञानविषयतया प्रतिबन्धकतावच्छेदकरूपस्य विव-
क्षितत्वात्, काञ्चनमयधूमवान् वज्जेरित्यादौ तु साध्यादेः साध्यता-
वच्छेदकाद्यभाववत्त्वं न तादृशग्रहत्वावच्छिन्नं प्रति विरोधितावच्छेदकं
अतस्तद्बुदासः । न चैवं धूमसामान्याभाववद्गामित्वादावव्याप्तिः तस्य का-
ञ्चनमयधूमाभाववद्वृत्तित्वग्रहत्वावच्छिन्नं प्रत्यविरोधित्वादिति वाच्यं ।
तस्य व्याप्यत्वासिद्धावेवान्तर्भावणीयत्वेनालक्ष्यत्वात् साध्यादिनिष्ठस्य
साधनाव्यापकत्वादेरनुपसंहारितात्वे तदन्यत्वेन प्रतिबन्धकतावच्छेदकं
तदवगाहित्वानवच्छिन्नं वा प्रतिबन्धकत्वं वाच्यं इत्यास्तां विस्तरः ।
‘विपक्षगामित्वं’ साध्यवदन्यवृत्तित्वं, ‘साधारणत्वं’ साधारणविधया
दोषत्वं, ‘तस्येति विपक्षवृत्तितामात्रेण गृहीतविरुद्धस्येत्यर्थः । ननु

(१) साध्याभाववद्वृत्तित्वस्येव साध्यवदन्यवृत्तित्वस्य साध्याभाववद्वेत्व-
धिकरणादेस्त्वस्यभिचारत्वेन तत्र तत्राव्याप्तिरिति तात्पर्यम् ।

वत्त्वादित्यसाधारणश्च वस्तुगत्या साध्याभाववद्वृत्ति-
त्वेन साधारणोऽपि पञ्चतादशायाम् उद्भावयितुं न
शक्यत इत्युभयोर्भेदेनोपन्यासः ।

इति श्रीमद्भग्वेत्तेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ
अनुमानाख्यद्वितीयखण्डे साधारणसिद्धान्तः ॥०॥

विपक्षगामित्वं यदि साधारण्यं तदा साध्याभावव्याप्यत्वरूपस्य
विरुद्धत्वस्य तन्नियतत्वात् न दुष्टहेतुविभाजकत्वं स्यात् मिथो-
विरुद्धधर्माणामेव तथात्वादत आह, 'उपाधेऽयेति साधारण्य-विरु-
द्धत्वाद्युपाधेः, 'न सङ्करः' नाभेदः, तथाच मिथो भिन्नानां दोषाणामेव
लक्ष्यतया दुष्टानामभेदो न क्षतिकरः, पक्षवृत्तित्वे सति साध्यव्या-
पकीभूताभावप्रतियोगित्वं साध्यासमानाधिकरणत्वमात्रं वा विरुद्धत्वं
तच्च न विपक्षवृत्तित्वमतस्तन्मात्रेण न तस्यान्यथासिद्धिरिति भावः ।

ननु साधारण्यं यदि विपक्षवृत्तित्वं तदानुपसंहारितादशायां
पक्षमात्रवृत्तित्वग्रहदशायां वा कथायां कथमसौ नोपन्यस्यते तदा-
नीमपि हेतौ तत्सत्त्वादत आह, 'सर्वमिति, 'पञ्चतादशायामिति
प्रतिज्ञाधर्म्मिणः सन्दिह्यमानसाध्यकत्वदशायामित्यर्थः, 'न शक्यते',
साध्य-तदभाववत्तया कस्याप्यनिश्चये निश्चये वा तद्वृत्तित्वस्य हेताव-
ग्रहादिति भावः । 'तयोः' अनुपसंहारित्वासाधारण्ययोः, (१) 'भेदेन'
कालभेदेन, कथायामुपन्यासः ।

इति श्रीमथुरानाथतर्कवागीश-विरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये
अनुमानाख्य-द्वितीयखण्डरहस्ये साधारणसिद्धान्तरहस्यं सम्पूर्णम् ।

(१) 'इत्युभयोः' इत्यत्र 'इति तयोः' इति कस्यचिन्मूलपुस्तकस्य पाठ-
मनुसृत्य तयोरिति पाठो धृतो रहस्यकृता ।

अथासाधारणपूर्वपक्षः ।

सर्वसपक्ष-विपक्षव्यावृत्तोऽसाधारणः । ननु सपक्षत्वं न साध्यवन्मात्रत्वं विपक्षावृत्तेर्दृष्टिमतः साध्यवद्दृष्टित्व-नियमात् । नापि पक्षातिरिक्तसाध्यवत्त्वं, शब्दोऽनित्यः शब्दत्वादित्यादेर्याप्तिधीदशायामप्यसाधारणतापत्तेः । न चेष्टापत्तिः, बाध-प्रतिरोधौ विना व्याप्ति-पक्षधर्म-तया ज्ञातादनुमितिनियमादिति चेत्, न, सर्वनिश्चित-साध्यवद्विपक्षव्यावृत्तत्वस्य तच्चात् शब्दत्वानित्यत्वव्या-

अथासाधारणपूर्वपक्षरहस्यं ।

प्राचां मतेनासाधारणत्वं निर्वक्ति, 'सर्वसपक्षेत्यादि, कुतश्चित् सपक्षात् कुतश्चित् विपक्षाच्च व्यावृत्तत्वं व्याप्य-विरुद्धयोरपीति तयो-वारणाय 'सर्वपदं, 'साध्यवत्त्वं' साध्यवन्मात्रत्वं, क्वचित् तथैव पाठः, 'दृष्टिमतइति अवृत्तिगगनादौ व्यभिचारस्य वारणाय, 'नियमादिति, तथाच शब्दोऽनित्यः शब्दत्वादित्यादौ निश्चितसाध्यवद्व्यावृत्तत्वेनासा-धारणेऽव्याप्तिरिति भावः । 'व्याप्तीति साध्यसामानाधिकरणस्य धीद-शायामित्यर्थः, 'अनुमितिनियमादित्यस्य सति पक्षतादावित्यादिः, तथाच पक्षातिरिक्तसाध्यवद्व्यावृत्तस्यानुमित्यविरोधिनः परिभाषामात्रं असाधारणं स्यादिति भावः । प्राचां मतेन समाधत्ते, 'न सर्व्वेति, निश्चितत्वं साध्यवत्तायामिव साध्याभाववत्तायामप्यन्वितं,^(१) तथाच

(१) विपक्षतायामप्यन्वितमिति ग०, घ० ।

मिग्रहे सति शब्दे साध्यनिश्चयान्नातिव्याप्तिः । न च घटोऽयमेतत्त्वादिति सङ्केतावतिव्याप्तिः, साध्यसन्देह-दशायां तस्य हेत्वाभासत्वात् । यद्यपि भूनिर्त्या गन्ध-वत्त्वादित्यादिर्वस्तुतः साधारणः शब्दो नित्यः शब्द-त्वादिति विरुद्धः शब्दोऽनित्यः शब्दत्वादित्यादिः सङ्के-तुरेव व्याप्त्यज्ञानस्य पुरुषदोषत्वादित्युदाहरणाभावा-दसाधारणो न पृथक्, तथापि पक्षतादशायां साध्य-तदभावानिश्चयेन तस्य दोषत्वम् अन्यथा पक्षत्व-भङ्गप्रसङ्गात् ।

तत्तत्पुरुषेण तदानीं साध्यवत्तया निश्चीयमानेभ्यः सर्वेभ्यो व्यावृत्तत्वे सति साध्याभाववत्तया निश्चीयमानेभ्यो व्यावृत्तत्वं तत्तत्पुरुषं प्रति तदानीमसाधारण्यमित्यर्थः, तेन शब्दोऽनित्यः शब्दत्वादित्यादेर्ना-संग्रहः । न च नित्यव्यावृत्तधर्मवत्सर्वमनित्यं श्रवणमात्रग्राह्य-जातिमत्सर्वमनित्यमित्यादिधौदशायां शब्दोऽनित्यः शब्दत्वादित्य-साधारण्यव्याप्तिः तादृशधर्मवत्त्वेन शब्देऽपि साध्यवत्तानिश्चयादिति वाच्यं । तत्तज्ज्ञानान्यत्वेनापि साध्यनिश्चयस्य विशेषणीयत्वादिति भावः । 'न चेति न वेत्यर्थः, 'सङ्केतौ' सङ्केतुत्वेन निश्चिते, 'साध्येति, पक्षे साध्यस्य संग्रयदशायामनिश्चयदशायां वा तस्य पक्षमात्रवृत्ति-हेतोरुक्तहेत्वाभासत्वादिति भावः । 'पक्षतादशायां' पक्षे साध्यसंग्रय-सत्त्वदशायां, 'तस्य' साधारण्यादेः, 'अन्यथा' साध्य-तदभावयोरन्यतरस्य पक्षधर्मिकनिर्णयसत्त्वे ।

अथ सर्वसपक्षव्यावृत्तिरेव दोषेन विपक्षव्यावृत्तिरपि तस्या अनुगुणत्वात् प्रत्युत विपक्षव्यावृत्तत्वेन व्यतिरेकितया परसाध्यसाधकमेवोपन्यस्तं स्यात् । न च संशयकतया दोषत्वं तच्चोभयव्यावृत्तत्वज्ञानादिति वाच्यं । व्याप्तिग्राहकं सहचारज्ञानं तदभावद्वारा सपक्षव्यावृत्तत्वमात्रस्य दोषत्वात् । किञ्च शब्दोऽनित्यः शब्दत्वादित्युक्ता निवृत्ते तावन्नेदमुद्भाष्यं न्यूनत्वेनैव वादिनिग्रहात् तदुद्भावने वादिनिवृत्तेश्च । न च न्यूनत्वे तदुपजीव्यं, असाधारणव्यतिरेकेणापि तदुपन्यासात् ।

स्वमतेन सिद्धान्तयितुं प्राचांमतं निरस्यति, 'अथेति, 'दोष-इति उद्भाव्य इति शेषः, 'अनुगुणत्वादिति अधिकरणविशेषान्तर्भावेण व्यभिचारग्रहं प्रति विरोधितया साध्योपव्याप्तिग्रहं प्रति उपयुक्तत्वादित्यर्थः, 'व्यतिरेकितया' व्यतिरेकव्याप्त्युपयोगितया, विपक्षतया निश्चितेषु हेतोरसत्त्वग्रहे हेत्वभावस्य विपक्षत्वव्यापकताधीसम्भवादिति भावः । 'न चेति, 'संशयकतया' साध्यसंशयकतया, 'दोषत्वं' असाधारणस्येति शेषः, 'उभयव्यावृत्तत्वेति सपक्ष-विपक्षोभयव्यावृत्तत्वज्ञानादेवेत्यर्थः, 'व्याप्तीति व्याप्तिग्राहकं व्यापक-सामानाधिकरण्यरूपव्याप्तिविषयकं यत्साध्य-साधनयोः सहचारज्ञानं, 'तदभावद्वारा' तद्वतिबन्धकद्वारा, 'सपक्षव्यावृत्तत्वमात्रस्य दोष-त्वात्', तथाचोभयव्यावृत्तत्वज्ञानत्वेनानुमितौ परामर्शे वा प्रतिबन्ध-कत्वाभावान्नासौ दोषः । ननु प्रमाणादूषणमपि सपक्ष-विपक्षो-

न च व्यतिरेकिप्रयोगे तदुपन्यासः, व्याप्ति-पक्षधर्म-
तयोरप्रतिक्षेपेऽकिञ्चित्करत्वात्, स्वार्थानुमाने च सर्व-
सपक्षव्यावृत्तिरेव दोष इत्युक्तमिति ।

इति श्रीमद्भग्वेत्तेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ
अनुमानाख्यद्वितीयखण्डे असाधारणपूर्वपक्षः ॥३॥

भयव्यावृत्तत्वं दृष्टान्तस्य साधनवैकल्यवदुपाधिवच्च निग्रहस्थानत्वादे-
वोद्भाव्यमतमाह, 'किञ्चेति, 'इत्युक्तेति इत्यादिकतिपयावयवमु-
क्तेत्यर्थः, 'निवृत्ते' वादिनीति शेषः, (१) पञ्चावयवोक्त्युत्तरं तदुपन्यासे
तु पर्यनुयोज्योपेक्षणस्य निग्रहस्थानस्य प्रसङ्ग इति भावः । 'इदं'
सपक्षादिव्यावृत्तत्वं, 'न्यूनत्वेनेति उदाहरणाद्यनुक्त्या न्यूनत्वेनेत्यर्थः ।
ननूद्भावितेऽपि न्यूनत्वे वादिनः प्रत्यवस्थानात् न तस्य निग्रहस्थानत्वं
अत-आह, 'तदुद्भावन इति न्यूनत्वस्योद्भावन इत्यर्थः, 'तत्' असा-
धारणं, 'उपजीव्यं', अतस्तद्धेतोरितिन्यायेन तस्योद्भाव्यत्वमित्यर्थः,
समाक्षोभादिना उदाहरणाद्यनुक्तौ व्यभिचारान्न तस्योपजीव्यत्वमि-
त्याह, 'असाधारण्येति, 'व्यतिरेकिप्रयोगे' व्यतिरेकव्याप्यन्तर्भावेण
न्यायप्रयोगे, तदीयोदाहरणस्य हेतौ साध्यसामानाधिकरण्याबो-
धकतया गृह्यमाणस्य हेतोः साध्याभावोपपत्ति-पक्षधर्मताखण्डन-
प्रयुक्तपर्यनुयोज्योपेक्षणस्योद्भावनासम्भवादिति भावः । ननूद्भावनका-
लासम्भवेन आ भूत् परार्थानुमाने सपक्ष-विपक्षोभयव्यावृत्तत्वं दोषः
स्वार्थानुमाने तु स्यात् तत्रोद्भावनस्थानपेक्षणात् अत आह 'स्वार्थेति ।

इति श्रीमथुरानाथतर्कवागीश-विरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये
अनुमानाख्य-द्वितीयखण्डरहस्ये असाधारणपूर्वपक्षरहस्यं ।

(१) गचिह्नितमूलपुस्तके 'वादिनि निवृत्ते' इत्येव पाठो वर्तते ।

अथासाधारणसिद्धान्तः ।

उच्यते । शब्दत्वं साध्यवतस्तदभाववतश्च निवृत्तत्वेन ज्ञातमर्थाद्यतिरेकितया वा पक्षे साध्यं तदभावञ्च साधयेत् अविशेषात् अन्यथा पक्षवृत्तित्वानुपपत्तिरिति साध्य-तदभावात्थापकतया स्वार्थानुमानेऽसाधारणो-
दोषः, सत्प्रतिपक्षे द्वौ हेतू तथा, अत्र त्वेकएवेति तयोर्भेदः । असाधारणेन व्यतिरेकिप्रयोगे परस्य सर्व-

अथासाधारणसिद्धान्तरहस्यं ।

‘अर्थात्’, पक्षवृत्तित्वरूपमादाय साध्यवतस्तदभाववतश्च व्यावृत्त-
त्वेन ‘ज्ञातं शब्दत्वं’, ‘व्यतिरेकितया’ व्यतिरेक्यनुमानविधया, ‘पक्षे
साध्यं तदभावञ्च’, ‘साधयेत्’ उभयसिद्ध्यनुकूलं भवेत्, ‘अविशेषात्’
साध्याभाववद्वावृत्तशब्दत्ववत्ताग्रहस्य साध्यवत्तायामिव साध्यवद्वावृत्त-
त्वेन तद्वत्ताग्रहस्यापि साध्याभाववत्तायां साधकत्वाविशेषात्, ‘अन्यथा’
साध्यवद्वावृत्तशब्दत्ववत्ताग्रहस्य साध्याभावासाधकत्वे, ‘पक्षवृत्तित्वा-
नुपपत्तिः’ विपक्षव्यावृत्तत्वविशिष्टस्यापि पक्षधर्मत्वस्य साध्यसाधकत्वा-
नुपपत्तिः, अतः ‘साध्य-तदभावोत्थापकतया’ साध्य-तदभावसिद्ध्य-
नुकूलपरामर्शविषयतया, ‘स्वार्थानुमाने’, ‘असाधारणः’ सपक्ष-
विपक्षव्यावृत्तत्वेन गृहीतो हेतुः, ‘दोषः’ । नन्वेवं साध्यौयव्याप्ति-
पक्षधर्मतया गृह्यमाणस्य हेतोः साध्याभावौयव्याप्ति-पक्षधर्मताव-
त्त्वमसाधारणमित्यर्थः तच्च सत्प्रतिपक्षेण चरितार्थं अत आह,

सपक्षव्यावृत्तत्वमात्रमुद्भाष्यं साध्याभावेत्यापकत्वात्
 न तु विपक्षव्यावृत्तत्वमपि प्रतिकूलत्वात् व्यर्थत्वाच्च ।
 यद्वा विपक्षव्यावृत्ततया साध्यमिव सपक्षव्यावृत्ततया
 साध्याभावमपि साधयेदिति दृष्टान्ततया प्रतिबन्धि-
 तया वा तदुद्भावनमपि, लक्षणन्तु सर्वसपक्षव्यावृत्तत्वं
 न तु विपक्षव्यावृत्तत्वमपि व्यर्थविशेषणत्वात्, विरुद्ध-

‘सत्प्रतिपक्ष इति साध्यव्याप्ति-पक्षधर्मतया अगृह्यमाणनिष्ठं साध्या-
 भावीयव्याप्ति-पक्षधर्मतावत्त्वं प्रतिपक्षः तथात्वेन गृह्यमाणनिष्ठन्तु
 तदसाधारण्यमतस्तयोर्भेद इत्यर्थः । न चैवंक्रमेण भेदे द्रव्य-
 गुणादिप्रत्येकनिष्ठत्वेनापि साध्याभावीयव्याप्ति-पक्षधर्मत्वादेरधिक-
 हेत्वाभासत्वापत्तिः, स्वतन्त्रेच्छाया इत्यादिना ग्रन्थकृतैव समाहित-
 त्वादिति भावः । अथास्तु स्वार्थानुमाने साध्य-तदभाववद्वावृत्तत्वं
 प्रतिपक्षोत्थापकतया दूषणं तथापि परार्थानुमाने तदुद्भावनं न
 स्यात् साध्याभाववद्वावृत्तत्वांशस्य साध्यानुमित्यविरोधित्वादतस्तत्रे-
 ष्टापत्तिमाह, ‘असाधारणेनेति साध्यवद्वावृत्तपक्षधर्मेणेत्यर्थः, अन्व-
 यिहेतुना न्यायप्रयोगस्थले वाद्युक्तोदाहरणोत्तरमेव निरुक्तासाधा-
 रणस्य प्रतिवादिना वक्तुमौचित्यात् तदुपेक्षाप्रयुक्तस्य पर्यनुयो-
 ज्योपेक्षणात्मकनिग्रहस्थानस्य प्रसक्तिः स्यादतः ‘व्यतिरेकिप्रयोग-
 इत्युक्तं, ‘साध्याभावेति साध्याभाववत्ताग्रहसम्पादकत्वादित्यर्थः, ‘प्रति-
 कूलत्वात्’ अनिष्टायाः^(२) साध्यानुमितेरुपयुक्तत्वात्, ‘व्यर्थत्वादित्यस्य

मप्यनेनोपाधिना असाधारणमेव अन्यथैतदवगमे
विरुद्धत्वाज्ञाने हेत्वाभासान्तरतापत्तेः ।

इति श्रीमद्भङ्गेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ
अनुमानाख्यद्वितीयखण्डे असाधारणसिद्धान्तः ॥*॥

दूषकतायामित्यादिः । 'सर्व्वेति सर्व्वत्र पक्षे वर्त्तमानो यः सपक्ष-
व्यावृत्तः साध्यवद्भावावृत्तः तत्त्वमित्यर्थः, तेन साध्यवद्भावावृत्तत्वमात्रस्य
प्रतिपक्षविधया दूषकत्वविरहेऽपि न क्षतिः, 'विपक्षव्यावृत्तत्वमपी-
त्यपिना साधीयव्याप्ति-पक्षधर्मतया गृह्यमाणनिष्ठत्वस्य समुच्चयः,
ननूक्तलक्षणन्तु तुरगो गौरश्वत्वादित्यादिविरुद्धेऽतिव्याप्तं अत आह,
'विरुद्धमिति, 'अन्यथा' विरुद्धस्यालक्ष्यत्वे, विरुद्धत्वं साध्याभाव-
व्याप्यत्वं, स्वव्यापकसाध्याभावकत्वं साध्यव्यापकीभूताभावप्रतियोगित्वं
वा तस्याज्ञान इत्यर्थः, तज्ज्ञानन्तु मणि-मन्त्रादिन्यायेन हेतु-
साध्ययोः सामानाधिकरणग्रहविरोधीति हृदयं ।

परे तु 'सर्व्वसपक्षव्यावृत्तत्वं' पक्षवृत्तित्वे सति साध्यव्यापकी-
भूताभावप्रतियोगित्वं, तस्यैव सत्यप्रतिपक्षविधया दूषकत्वेनासाधार-
ण्यात्, विरोधस्तु हेतु-साध्ययोरसामानाधिकरण्यादिरूपेण व्याप्ति-
ग्रहविरोधितया दोष इति तदज्ञानदशायां निरुक्तस्यासाधारण-
त्वस्य ज्ञानं नानुपपन्नमित्याहुः ।

इति श्रीमथुरानाथतर्कवागीश-विरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये
अनुमानाख्य-द्वितीयखण्डरहस्ये असाधारणसिद्धान्तरहस्यं सम्पूर्णम् ।

अथानुपसंहारिपूर्वपक्षः ।

अनुपसंहार्यो नासत्सपक्ष-विपक्षः सिद्धसिद्धिवि-
रोधात् । नापि केवलान्वयिधर्मावच्छिन्नपक्षकः, केव-
लान्वयिसाध्यकस्य सहेतुत्वात् व्यतिरेकिसाध्यकस्य तु
साध्य-तदभाववद्गामित्वेन साधारणत्वात् अन्यथा
संशयाहेतुत्वेनानैकान्तिकता न स्यात्, सर्वं द्वाणिकं
सत्त्वादिति साध्याप्रसिद्धा व्याप्यत्वासिद्धमपार्थक्यं वा,

अथानुपसंहारिपूर्वपक्षरहस्यं ।

‘असदिति प्रमित्यविषयसपक्षत्वे सति प्रमित्यविषयविपक्षक-
इत्यर्थः, ‘सिद्धीति, सपक्ष-विपक्षयोः सिद्धाववश्यं प्रमितिविषयत्वं
असिद्धौ च कथन्तद्गर्भानुपसंहारित्वमित्युभयथापि व्याघातः ।
‘केवलान्वयिधर्मावच्छिन्नपक्षकः’ केवलान्वयिधर्मव्यापकपक्षताकः, प-
क्षत्वन्तु साध्यवत्तया सन्दिह्यमानत्वं, असङ्कीर्णलक्ष्यासत्त्वान्नेदं युक्त-
मित्याशयेनाह, ‘केवलेति सर्वमभिधेयं प्रमेयत्वादित्यादेरित्यर्थः,
‘व्यतिरेकिसाध्यकस्येति स्वाश्रयनिष्ठव्यतिरेकप्रतियोगिसाध्यकस्येत्यर्थः,
‘साधारणत्वादिति, तथाच सर्वमनित्यं प्रमेयत्वादित्यादिकमपि
साधारणत्वेन न लक्ष्यमिति भावः । ननु साध्य-तदभाववद्गामित्वं
न साधारणं किन्वन्यदेव तद्वाच्यम् अत आह, ‘अन्यथेति, नि-
वन्धकृन्मतेनेदं दूषणमिति । न च सर्वमनित्यं विभुत्वादित्यादि-

साध्यप्रसिद्धौ तु साधारणमेव । न च पक्षान्यसाध्य-
वत्तदन्यवृत्तित्वं पक्षातिरिक्तसाध्याभाववद्वृत्तित्वं वा
साधारणत्वं, व्यर्थविशेषणत्वात् । न च विरुद्धं विशे-
षणस्य व्यावर्त्यमित्युक्तं । नाप्यत्यन्ताभावप्रतियोगि-

कमेव लक्ष्यं तस्यापि भागासिद्धत्वेन^(१) विरुद्धत्वेन वा अलक्ष्यत्वा-
दिति भावः । क्षणिकत्वं यदि क्षणद्वयावृत्तित्वे सति विनाशित्वं^(२)
तदा साध्यविशेषणासिद्ध्या^(३) व्याप्यत्वासिद्धिः^(४) । यदि च सर्वान्यत्वं
तदा प्रतिज्ञावाक्यस्यापार्थक्यत्वं^(५) सर्वः सर्वान्यद्वत्यन्वयबुद्धेरलीक-
त्वात् । यदि च क्षणद्वयावृत्तित्वमात्रं क्षणिकत्वं तच्च विभुष्येव
प्रसिद्धं पक्षे प्रतिज्ञया बोधनार्हञ्च तदाह, 'साध्यप्रसिद्धौ त्विति ।
उक्तहेतोः साधारणमसहमानः शङ्कते, 'न चेति पक्षान्यस्मिन् वर्तते

(१) सर्वत्वरूपपक्षतावच्छेदकसामानाधिकरण्येन परममहत्परिमाण-
वत्त्वरूपविभुत्वहेतोरभावात् भागासिद्धिरिति भावः ।

(२) क्षणद्वयावृत्तित्वस्य अवृत्तिगगनादौ सत्त्वात् गगनादेः क्षणिकत्व-
वारणाय विनाशित्वरूपविशेष्यदलम् ।

(३) साध्यविशेषणासिद्ध्या क्षणद्वयावृत्तित्ववैशिष्ट्यरूपस्य साध्यविशे-
षणस्यासिद्धेत्यर्थः ।

(४) प्राचीनमते साध्यविशेषणासिद्धेः व्याप्यत्वासिद्धिमध्ये परिगणित-
त्वात् साध्यविशेषणासिद्धिरित्यनुक्ता व्याप्यत्वासिद्धिरित्युक्तम् ।

(५) यादृशबोधत्वावच्छेदेन नियताहार्यत्वं तादृशबोधार्थप्रयुक्तवाक्यत्वं
अपार्थक्यमिति ।

साध्यकत्वे सति केवलान्वयिधर्मावच्छिन्नपक्षकत्वं, सर्व-
मभिधेयं मेयत्वादित्यत्र विप्रतिपत्त्या पक्षतादशायां
पक्षे साध्यानिश्चयेनानुपसंहारिण्यव्यापकत्वात् ।

यः साध्यवत्तदन्यवृत्तिस्तत्त्वमित्यर्थः, तेन पर्वतो वक्लिमान् धूमा-
दित्यादौ पचान्यो यः साध्यवान् तदन्यस्मिन् वर्त्तमाने धूमादि-
हेतौ नातिव्याप्तिः, सर्वं चणिकमित्यादौ च पचान्याप्रसिद्धौव
नातिव्याप्तिरित्याशयः । विरुद्धस्य साधारण्यमनङ्गीकुर्वतां मते-
नेदं तदङ्गीकुर्वतां मते त्वाह, 'पचातिरिक्तेति पचातिरिक्ते
वर्त्तते यः साध्याभाववद्वृत्तिस्तत्त्वमित्यर्थः, तेन पर्वतः पर्वतान्यो
द्रव्यत्वादित्यादौ पचान्यस्य साध्याभाववत्ताप्रसिद्धावपि नाव्याप्तिः,
'व्यर्थेति साध्यवदन्यवृत्तित्वस्यैव सम्यक्त्वात् प्रथमे साध्यवद्वृत्तित्वेन
सहितस्य पचातिरिक्तवृत्तित्वस्य द्वितीये च तन्मात्रविशेषणस्य व्यर्थ-
त्वादित्यर्थः । ननु तुरगो गौरश्चत्वादिति विरुद्धस्य वारणार्थमेव पचा-
न्यवृत्तित्वादिविशेषणं निवेश्यमत आह, 'न चेति, 'उक्तं', 'विरुद्ध-
स्यापि तत्त्वाज्ञाने साधारण्यमेवेतिग्रन्थेन । 'नापीति, 'केवलान्वयि-
धर्मावच्छिन्नपक्षकत्वं' साध्यवत्तया निश्चीयमानताशून्यपक्षकत्वं, तच्च
घटः प्रमेयो वाच्यत्वादित्यादौ व्यतिरेकव्याप्तिमत्तया भ्राम्यमाणे
सङ्केतावतिव्याप्तमतः सत्यन्तं, तावन्मात्रञ्च पर्वतो वक्लिमान् धूमा-
दित्यादावन्वयव्याप्तिमत्तया गृह्यमाणे गतमतो विशेष्यदत्तं, सर्वं
वक्लिमत् धूमात् द्रव्यत्वात् जलत्वाद्वा इत्यादयस्तु सङ्केतु-साधारण-

अथ पक्षातिरिक्ते व्याप्तिग्रहानुकूलप्रतीतसहचारोऽनुपसंहार्यः यदि च पक्षे व्याप्तिग्रहः कथञ्चित्तदा शब्दोपदर्शितव्याप्तिकानुमानवदभेदानुमानवच्च सङ्केतुरेवेति चेत् । न । तत्रैव सङ्केतावतिव्याप्तेः सर्वस्य

विरुद्धाः पक्षतादृशायां लक्ष्याएवेति भावः । 'अव्यापकत्वादिति अत्यन्ताभावप्रतियोगिसाध्यकत्वाभावेन सत्यन्तार्थस्य तत्रासत्त्वादिति भावः ।

'अथेति, पक्षे तदतिरिक्ते चाप्रतीतोऽनिश्चितो व्याप्तिग्रहानुकूलः सहचारो यस्य सोऽनुपसंहार्य इत्यर्थः, तादृशः सहचारः साध्यसाधनयोरन्वये व्यतिरेके चाविशिष्ट इति तदेकतरग्रहेऽपि नानुपसंहारिता । ननु पक्षभिन्नाप्रतीतव्याप्तिग्रहानुकूलसहचारकत्वमित्येवास्तु कृतं पक्षाप्रतीततादृशसहचारकत्वदलेन इत्यत आह, 'यदि चेति, 'कथञ्चित्' तदुपनयादिवशेन, 'सङ्केतुरेवेति, तथाच तद्वारणार्थमेव पक्षाप्रतीतसहचारकत्वदलमिति लक्षणकृतामाश्रय । 'पक्षातिरिक्त इत्यस्य पक्षादन्यस्मिन् इत्यर्थं सङ्कलन्य दूषयति, 'तत्रैवेति पक्षे गृहीतव्याप्तिके इत्यर्थः । पक्षे तदतिरिक्ते चेत्यर्थकरणे दोषमाह, 'सर्वस्येति, येन रूपेण पक्षता तदवच्छिन्नान्यत्वं न पक्षातिरिक्तत्वं प्रमेयत्ववत्सर्वमनित्यं वाच्यत्वादित्यादावव्याप्यापत्तेः, परन्तु येन रूपेण पक्षत्वं तदाश्रयस्य प्रत्येकभेदकूटवत्त्वं तच्च सर्वत्वावच्छिन्नभेदस्य सत्त्वेऽपि अप्रमिद्धमेवेति भावः । अथानिश्चित-

पक्षत्वे पक्षातिरिक्ताप्रसिद्धेः, असाधारण-विरुद्धयोरति-
व्याप्तेश्च दूषकतायां व्यर्थविशेषणत्वाच्च । न च दूषकता
अनैकान्तिकत्वेन न प्रत्येकमिति वाच्यम् । अर्थगत्या
व्यर्थविशेषणत्वात् । नापि विप्रतिपत्तिविषयमात्रवृत्तित्वं

व्याप्तिग्रहाकूलसहचारसामान्यकत्वमात्रं वाच्यं अत आह, 'असाधा-
रणेति, असाधारणः निश्चितसाध्यवद्भावावृत्तः शब्दः प्रमेयः शब्द-
त्वादित्यादौ व्यतिरेकसहचाराग्रहदशायां अतिव्याप्तिरेवं विरुद्धे
तुरगो गौरश्वत्वादित्यादावपि । ननु तदुभयं लक्ष्यमेव साध्यवत्तया
सन्दिह्यमानविश्वकत्वादेर्दूषकतायामनुपयोगेनाकिञ्चित्करत्वादाह, —
'दूषकतायामिति, 'दूषकतायां' हेत्वाभासतायां, 'व्यर्थविशेषणत्वात्'
अनुपयोगित्वात् अगृहीतसहचारकत्वादिज्ञानस्यानुमितिं प्रत्यविरो-
धितया तस्य हेत्वाभासलायोगादिति फलितार्थः । अथागृहीतस-
हचारकत्वस्य तादृशेण बुद्धेरनुमित्यविरोधित्वेऽप्यनैकान्तिकत्वत्वप्रका-
रेण बुद्धेस्तथात्वादेव तस्य हेत्वाभासत्वं पर्यवस्यतीत्याशङ्क्य^(१) निरा-
चष्टे, 'न चेति, 'अर्थगत्येति व्याप्तिग्रहविरोधितावच्छेदकरूपवत्त्व-
लक्षणस्यानैकान्तिकत्वपदार्थस्यार्थगत्या तादृशरूपस्यापि दूषकताया-
मनुपयुक्तत्वादित्यर्थः । विप्रतिपत्तिविषयत्वं साध्यवत्तया सन्दिह्य-
मानत्वं तन्मात्रवृत्तित्वं यदि सकलतद्वृत्तित्वं तदाह, 'केवलेति,

(१) सेत्स्यतीत्याशङ्क्येति घ० ।

केवलान्वयिसाध्यके अव्याप्तेः सर्वस्य पक्षत्वे मात्रार्था-
भावादिति ।

इति श्रीमद्भजेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ
अनुमानाख्यद्वितीयखण्डे अनुपसंहारिपूर्वपक्षः ॥०॥

केवले हेतुना विनाकृते अन्वयि सन्दिह्यमानत्वेनान्वितं साध्यं यस्य
तादृशं सर्वमनित्यं द्रव्यत्वादित्यादिहेताव्याप्तिरित्यर्थः, 'अति-
व्याप्तिरिति पाठे शब्दः प्रमेयत्ववाननित्यो वा शब्दत्वादित्यादौ
केवलान्वय्यादिसाध्यके अतिव्याप्तिर्वोधा, 'यदि तु साध्यवत्तया
असन्दिह्यमानव्यावृत्तत्वमेव तन्मात्रवृत्तित्वं तदाह, 'सर्वस्येति,
'पक्षत्वे' सन्दिह्यमानत्वे ।

इति श्रीमथुरानाथतर्कवागीश-विरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये
अनुमानाख्य-द्वितीयखण्डरहस्ये अनुपसंहारिपूर्वपक्षरहस्यं ।



अथानुपसंहारिसिद्धान्तः ।

उच्यते । व्याप्तिग्रहानुकूलैकधर्म्युपसंहाराभावो यत्र स हेत्वभिमतोऽनुपसंहारी, स चान्वयेन व्यतिरेकेण वा सर्वस्य पक्षत्वे दृष्टान्ताभावात् घटोऽनित्यो घटाकाशोभयवृत्तिद्वित्वाश्रयत्वादित्यादौ साध्य-साधन-

अथानुपसंहारिसिद्धान्तरहस्यम् ।

‘व्याप्तिग्रहेत्यादि, ‘यत्रेति व्याप्तिग्रहान्वयि, तथाच यद्वर्त्मिक-व्याप्तिग्रहे ‘अनुकूलानां’ विशिष्टानां, एकस्यान्यत्र धर्मिणि ‘उप-संहारस्य’ वैशिष्ट्यस्य, अभावः सहेतुरनुपसंहारी, यादृशहेतुधर्मिक-प्रकृतसाध्यीयव्याप्यवगाहिता यदंशे यन्निरूपिता तस्य तदभाववत्त्वं, तद्वर्त्मिक-तद्व्याप्तिग्रहविरोधिरूपवत्त्वं वा तादृशहेतौ अनुपसंहारि-त्वमिति फलितार्थः, कालवान् गगनात् इत्यादौ चाधिकरणादेः साध्यीयत्वाद्यभावः, कालशून्यं गगनाभाववत्त्वादित्यादौ चाधिकर-णादेः साध्याभावीयत्वादिविरहः सुलभो लक्ष्यः । न च साध्य-साधन-योर्विशेषणासिद्धावतिव्याप्तिः, प्रकृतसाध्य-साधनग्रहाविरोधित्वेनापि तादृशरूपस्य कचिद्विशेषणीयत्वात् । अथात्र यद्यन्वयव्याप्तिग्रहो निवेशितः तदा व्यतिरेकप्रयोगे वाच्यं ज्ञेयत्वादित्यादौ व्यतिरेक-व्याप्तिघटकयोरेकदलेऽपरदलाभावस्य हेत्वाभासान्तरतापत्तेः अत-आह, ‘स चेति, वागब्दः समुच्चये, स व्याप्तिग्रहोऽन्वयेन व्यतिरेकेण च निविष्ट इति शेषः । ननु सर्वमभिधेयं प्रमेयत्वादित्यादौ कुतो-

साहचर्याज्ञानात्तस्य विरुद्धत्वाज्ञानदशायामनुपसंहारित्वेनेष्टत्वात् केवलान्वयिधर्मावच्छिन्नपक्षको वा सर्वमभिधेयं प्रमेयत्वादिति सङ्गतौ न केवलान्वयी पक्षतावच्छेदको निश्चितसाध्यवद्वृत्तित्वात् विप्रतिपत्त्या

नान्वयव्याप्तिधीः निरुक्तस्यानुपसंहारित्वस्य हेत्वाभासान्तरस्य च तत्रासत्त्वेन प्रतिबन्धासम्भवादत आह, 'सर्वस्येति, 'पक्षत्वे' सन्दिग्धसाध्यकत्वे, 'दृष्टान्ताभावादित्यस्य न व्याप्तिग्रह इत्यादिः, तथाच साध्य-साधनयोः सहचारनिश्चयाभावप्रयुक्त एव तत्रान्वयव्याप्त्यग्रहो न तु हेत्वाभासप्रयुक्त इति भावः । सहचारानिश्चयद्वाराऽनुपसंहारित्वस्य दूषकत्ववादिनां प्राचामपि सर्वपक्षकत्वं न तस्य दूषकतायां तन्त्रमित्याह, 'घटोऽनित्य इत्यादिना, 'इष्टत्वात्' इत्यस्य प्राचैरित्यादिः, अस्माकन्तु साध्याभाववद्गामित्वेन तस्य साधारणत्वमेवेति भावः । दूषणौपयिकमनुपसंहारित्वं निरुच्य व्यवहारौपयिकं तदाह, 'केवलेति, केवलान्वयिधर्मेण 'अवच्छिन्नं' व्यापकं, 'पक्षत्वं' साध्यवत्तया सन्दिह्यमानत्वं यत्र तत्त्वमर्थः, 'अवच्छिन्नान्तस्य व्यावृत्तिमाह, 'सर्वमित्यादिना, 'सङ्गतौ' सङ्गेतुत्वेन निर्णीयमाने, 'न पक्षतावच्छेदकः' न साध्यवत्तया सन्दिह्यमानत्वस्य अनतिरिक्तवृत्तिः, 'निश्चितेति साध्यवत्तया निश्चितवृत्तित्वादित्यर्थः, 'विप्रतिपत्त्या' सर्वमभिधेयं न वेत्याकारिकया, 'पक्षत्वे' सर्वस्य साध्यवत्तया सन्दिह्यमानत्वे, 'अनुपसंहार्येवेति अनुपसंहारित्वेन व्यवहार्यमेवेत्यर्थः । ननु गगनवान् द्रव्यत्वादित्यादौ वृत्तिमत्त्वशून्यसाध्यके

साध्यानिश्चयदशायां पक्षत्वे तदनुपसंहार्यैव व्यतिरेकिसाध्यके साध्याभाववद्वृत्तित्वान्नानदशायामिदं दूषणं तदवगमेऽपि साधारणसङ्कर एव, एवं व्याप्यत्वासिद्धेर्ज्ञाने तदुद्भावेने चायं व्यभिचारवदुपजीव्यत्वाद-
दोषः, घटाकाशोभयवृत्तिद्वित्वाश्रयत्वञ्च विरुद्धमेव ।

साध्याभाववद्गामित्वरूपं साधारण्यमावश्यकमिति तेन सङ्करान्नाधिकरणस्य साध्यत्वभाववरूपमनुपसंहारित्वं पृथग्दोष इत्यत आह, 'व्यतिरेकीति वृत्तिमत्त्वव्यतिरेकवत्साध्यक इत्यर्थः, 'इदं' व्याप्तिग्रहानुकूलेत्यादिना उक्तमनुसंहारित्वं । ननु वज्जिमान् गगनादित्याद्यवृत्तिहेतौ साध्यव्यभिचरितत्वविशिष्ट-साध्यसामानाधिकरण्यरूपस्य साध्यसम्बन्धितावच्छेदकधर्मवत्त्वरूपस्य वा विरहरूपव्याप्यत्वासिद्धिरावश्यकीति तथा सङ्करान्नाधिकरणस्य हेतुत्वभाववरूपमनुपसंहारित्वं पृथक् दूषणमत आह, 'एवमिति, 'अयं' अधिकरणादौ हेतुत्वत्वाद्यभावः, 'व्यभिचारवदिति वृत्तिमद्वेतौ साध्याभाववद्गामित्ववदित्यर्थः, 'उपजीव्यत्वादिति, अयं हेतुर्व्याप्तिशून्यः स्वाभाववदधिकरणसामान्यकत्वादित्यादिक्रमेणानुपसंहारित्वस्य व्याप्यत्वासिद्धिग्रहं प्रत्युपजीव्यत्वादित्यर्थः । ननु घटोऽनित्यो घटाकाशोभयवृत्तिद्वित्वाश्रयत्वादित्यत्र स्वाव्यापकसाध्यकत्वेनानुपसंहारिण्यवधारौपयिकस्यानुपसंहारित्वस्याव्याप्तिः तत्रत्यपक्षतायाः केवलान्वयिधर्मावच्छेद्यत्वाभावात् अत आह, 'घटाकाशेति, 'विरुद्धमेवेति

एतेनानुपसंहारित्वप्रतिसन्धाने यदि व्याप्तिग्रहस्तदानुमितिरेव तदभावे व्याप्यत्वासिद्धिरेवेति निरस्तमुपजीव्यत्वादिति ।

इति श्रीमद्भङ्गेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ अनुमानाख्य-द्वितीयखण्डे अनुपसंहारिसिद्धान्तः ॥*॥

अनुपसंहारित्वव्यवहारविरुद्धमेवेत्यर्थः, तथाच व्यवहारौपथिक-निरुक्तावलक्ष्यमेव तदिति भावः । 'एतेनेति' निरस्तमित्यनेनान्वयः, अनुपसंहारित्वस्य दोषरूपस्य 'प्रतिसन्धाने' निश्चये, यद्यनुपसंहारित्वांगे भ्रमत्वज्ञानादिवशात् हेतौ व्याप्तिनिश्चय इत्यर्थः, 'तदानुमितिरेवेति, तथाचानुमित्यविरोधित्वादनुपसंहारित्वस्य हेत्वाभासत्वायोग इति भावः । 'तदभावे' व्याप्तिग्रहस्याभावे, 'व्याप्यत्वासिद्धिरेव', अनुमित्यनुत्पत्तिप्रयोजिका न त्वनुपसंहारित्वमिति भावः । 'उपजीव्यत्वादिति व्याप्तिज्ञानस्यानुमित्युपजीव्यत्वादित्यर्थः, तथाचानुमितिविरोधित्वं न हेत्वाभासत्वं साधारणाद्यव्याप्तेः किन्तु अनुमितेस्तदुपजीव्यज्ञानस्य चान्यतरविरोधित्वं तच्चानुपसंहारित्वेऽप्युच्यते इति भावः ॥

इति श्रीमथुरानाथतर्कवागीश-विरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये अनुमानाख्य-द्वितीयखण्डरहस्ये अनुपसंहारिसिद्धान्तरहस्यं सम्पूर्णं ।

अथ विरुद्धपूर्वपक्षः ।

विरुद्धो न साध्याभावव्याप्यः संयोगादिसाध्यके
सङ्घेतावतिव्याप्तेः । नापि साध्यवन्निष्ठात्यन्ताभावप्रति-
योगिव्याप्यत्वं तत्त्वम्, इदं द्रव्यं गुणवत्त्वादित्यादौ
संयोगादिव्याप्येऽतिव्याप्तेः, किन्तु साध्यासमानाधि-

अथ विरुद्धपूर्वपक्षरहस्यम् ।

‘साध्याभावव्याप्य इति, स्वसमानाधिकरणान्योन्याभावप्रतियोगि-
तानवच्छेदकसाध्याभावकत्वमत्र साध्याभावव्याप्यत्वं न तु स्वसमाना-
धिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगितानवच्छेदकसाध्याभावकत्वं ‘संयोगा-
दिसाध्यक इत्यादिवक्ष्यमाणदूषणसङ्गतेः । ‘साध्यवन्निष्ठेति साध्य-
वन्निष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगी यो धर्मस्तद्व्याप्यत्वं तदवच्छिन्नान्योभाव-
वदवृत्तित्वमर्थः, अस्ति च गोत्वान् अश्वत्वादित्यादौ गोत्ववन्निष्ठा-
भावप्रतियोगिनोऽश्वत्वादेर्निरुक्तव्याप्यत्वमश्वत्वादाविति लक्षणसमन्वय-
इति भावः । पूर्वोक्तदूषणसत्त्वेऽप्यधिकं दोषमाह, ^(१) ‘इदमिति, ‘संयो-
गादिव्याप्य इति द्रव्यत्ववन्निष्ठाभावप्रतियोगिनः संयोगादेर्व्याप्ये गुण-
वत्त्वादावित्यर्थः, साध्यवन्निष्ठत्वं यदि साध्यवति निरवच्छिन्नवृत्तिमत्त्वं
विवक्ष्यते तदा तु नायं दोष इत्यवधेयं । ‘साध्यासमानाधिकरणेति,

(१) तथाच एतल्लक्षणेऽपि संयोगी द्रव्यत्वादित्यादौ संयोगवन्निष्ठाभाव-
प्रतियोगिनः संयोगादेः निरुक्तव्याप्यत्वस्य द्रव्यत्वहेतौ सत्त्वात्
अतिव्याप्तिरिति भावः ।

करणसाध्याभावव्याप्यः साध्यवदन्योन्याभावव्याप्यो
वा, साध्याभावत्वं साध्यविरोधित्वमात्रं भावाभाव-

साध्यासमानाधिकरणत्वं अत्र साध्यानधिकरणवृत्तित्वं अधिकरण-
भेदेन संयोगाद्यभावस्य भिन्नतया च संयोगादिसाध्यकमद्वेतौ
नातिव्याप्तिः, न तु साध्याधिकरणवृत्तित्वं तत् अधिकरणभेदेन
संयोगाद्यभावस्य भिन्नत्वाभ्युपगमादेव संयोगी गुणत्वादित्यादावव्या-
प्तिविरहेऽपि^(१) साध्याभावपदवैयर्थ्यापत्तेः साध्याधिकरणवृत्तित्वस्यैव
सम्यक्त्वात् । न चैवमपि साध्यपदवैयर्थ्यं साध्यानधिकरणवृत्त्यभाव-
व्याप्यत्वस्यैव सम्यक्त्वात् भावभिन्नाभावस्य घटकतया साध्यानधि-
करणवृत्तिद्रव्यत्वादिव्याप्यत्वमादाय मद्वेतौ नातिप्रसङ्ग इति वाच्यं ।
साध्यानधिकरणवृत्त्याकाशाभावव्याप्यत्वमादाय मद्वेतावतिप्रसङ्गात्
प्रतियोगिसमानाधिकरणत्व-तद्व्याधिकरणत्वन्नक्षणविरुद्धधर्माध्यासा-
भावेनाकाशाद्यभावस्याधिकरणभेदेन भेदाभावादिति भावः ।
अधिकरणभेदेनाभावभेदे मानाभावादाह, 'साध्यवदिति, अन्यो-
न्याभावस्य चाव्याप्यवृत्तित्वाभावात् न संयोगादिसाध्यकमद्वेतावति-
व्याप्तिरिति भावः । ननु अधिकरणभेदेनाभावभेदाभ्युपगमेऽपि
प्रथमलक्षणमसङ्गतं द्रव्यत्वाभाववान् पृथिवीत्वादित्याद्यभावसाध्यक-

(१) अधिकरणभेदेनाभावस्य भिन्नत्वानभ्युपगमे संयोगाभावस्य संयोगा-
धिकरणवृत्तित्वाभावेन संयोगी गुणत्वादित्यादावव्याप्तिः तदभ्युपगमे
च गुणवृत्तिसंयोगाभावस्य संयोगाधिकरणवृत्तितया तमादाय
लक्षणसमन्वय इति समुदिततात्पर्यम्

साधारणं तेनाभावे साध्येऽभावाभावस्य भावत्वेऽपि
नाव्याप्तिः अभावाभावोऽभावप्रतियोगिनिरूप्यत्वेन
भावभिन्न एव वा । न च भावत्वेनोपपत्तौ किमधिके-

विरुद्धेऽव्याप्तेः तत्र साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावस्या-
प्रसिद्धेः तादृशस्य द्रव्यत्वादेर्भावत्वादित्यत आह, 'साध्याभावत्वमिति
'साध्यविरोधित्वमात्रमिति साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताक-
त्वमात्रमित्यर्थः, यथाश्रुते साध्यासमानाधिकरणपदवैयर्थ्यापत्तेः साध्य-
विरोधिव्याप्यत्वस्यैव सम्यक्त्वात्^(१) मात्रपदादभावत्वव्यवच्छेदः । न च
साध्यप्रतियोगिकत्वमेव साध्याभावत्वमुच्यतां किं साध्यतावच्छेदकाव-
च्छिन्नप्रतियोगिताकत्वपर्यन्तेनेति वाच्यं । साध्याकाशोभयाद्यभाव-
मादाय सङ्केतावतिप्रसङ्गापत्तेरिति ध्येयम् । 'अभावाभावस्येति
साध्योभूताभावप्रतियोगिकस्येत्यर्थः, 'अभावप्रतियोगिनिरूप्यत्वेनेति
अभावात्मकप्रतियोगिनिरूप्यत्वविशिष्ट इत्यर्थः, वैशिष्ट्यस्य तृतीयार्थ-
त्वात् एतच्च स्वरूपकथनम् । 'बाधकं विनेति बाधकाभावेनेत्यर्थः,
'अभावप्रतीतेः' द्रव्यत्वाद्यभावाभावेऽभावत्वप्रकारकप्रतीतेः प्रमात्वा-
दिति भावः । भावस्वरूपत्वे सा प्रतीतिः प्रमा न स्यात् अभावत्वस्य
भावव्यावृत्तधर्मविशेषत्वादित्यभिमानः । ननु गौरवमेव बाधकं
किञ्चाभावत्वं न भावव्यावृत्तोधर्मः किन्तु भावाभावसाधारणोऽखण्डो-
धर्मविशेष इत्यत आह, 'अन्यथेति गौरवभीत्या द्रव्यत्वाद्यभावाभावे-

(१) साध्यविरोधिपदेनैव साध्यासमानाधिकरणत्वाभात् स्वातन्त्र्येण
साध्यासमानाधिकरणस्य वैयर्थ्यमिति भावः ।

नेति वाच्यं । बाधकं विना अभावप्रतीतेः प्रमात्वात्
अन्यथा अत्यन्ताभावान्योन्यभावयोरप्रसिद्धिः ।

अथ साध्य-हेत्वोर्विरोधे पक्षे साध्यसत्त्वे हेत्वसिद्धिः

ऽभावत्वप्रतीतेर्भ्रमत्वाभ्युपगमे ऽभावत्वस्य भावाभावसाधारणधर्मविशेष-
त्वाभ्युपगमे वा इत्यर्थः, 'अत्यन्तेति तत्तदधिकरणविशेषत्वेनैव
तदुभयप्रतीतेः सम्भवादिति भावः^(१) । ध्वंस-प्रागभावयोरधिकरण-
स्वरूपत्वे इहेदानीमुत्पन्नो घटध्वंसः इहेदानीं विनष्टो घटप्रागभाव-
इत्यादिप्रतीतेरसम्भवात् तदुभयपरित्यागः^(२) ।

केचित्तु ध्वंस-प्रागभावयोरधिकरणस्वरूपत्वे घटसत्त्वदशायामपि
तदुभयप्रतीत्यापत्तिः तदानीमप्यधिकरणसत्त्वात् अतस्तदुभयपरि-
त्यागः । न चैवं घटात्यन्ताभावादेरपि अधिकरणस्वरूपत्वे घटाप-
सारणदशायामिव घटसत्त्वदशायामपि तत्प्रतीत्यापत्तिरिति वाच्यं ।
अत्यन्तान्योन्याभावपदस्य द्रव्यत्वादिप्रतियोगिकात्यन्ताभाव-तदव-
च्छिन्नप्रतियोगिताकान्योन्याभावपरत्वादित्याहुः ।

'अथेति, 'विरोधे' निरुक्तविरोधज्ञानदशायां, 'साध्यसत्त्वे'
साध्यज्ञानसत्त्वे, 'हेत्वसिद्धिः' हेतुमत्त्वज्ञानाभावः, तद्वत्ताज्ञानसत्त्वे

(१) अभावत्वस्य भावसाधारणत्वाभ्युपगमे अतिरिक्ताभावकल्पनापेक्षया
लाघवेन तत्तदधिकरणेष्वेवाभावत्वकल्पनाया औचित्यमिति तात्पर्यम् ।

(२) तथाच ध्वंस-प्रागभावयोरधिकरणस्वरूपत्वे घटध्वंसस्य स्वाधिकरणा-
त्मककपालस्वरूपतया इहेदानीमुत्पन्नो घटध्वंस इति प्रतीतेरस-
म्भवः कपालस्य प्रागुत्पन्नत्वेन इदानीमुत्पन्नत्वाभावादिति भावः ।

हेतुसत्त्वे साध्याभावसिद्धौ बाधः । न च प्रमाणान्तरेण साध्याभावसिद्धौ बाधो न हेतुत्वेनैवेति वाच्यं । विशेषणवैधर्ष्यादिति चेत् । न । हेतोः पक्षे साध्याभावोपस्थापनेऽपि प्रथमोपस्थितविरोधस्यैव उपजीव्यत्वेन दोषत्वात् । ननु साध्याभावसम्बन्धो व्यभिचार एव दोषो न तु तन्नियतत्वमपि गौरवात् असाधकत्वे

तद्विरुद्धधर्मवत्त्वज्ञानासम्भवादित्यभिमानः । 'हेतुसत्त्वे' हेतुमत्ताज्ञानसत्त्वे, 'साध्याभावसिद्धौ' साध्याभावसिद्धौ सत्यां, 'बाधः' अनुमितिबाधः, तथाच किं निरुक्तविरोधज्ञानस्य पृथग्दोषत्वेनेति भावः । ननु तद्धेतुकविशिष्टबुद्धौ तद्धेतुजन्यबाधज्ञानमेव प्रतिबन्धकं न तु तद्धेतुजन्यबाधज्ञानमित्यभिमानेनाशङ्कते, 'न चेति, 'प्रमाणान्तरेण' प्रमाणान्तरेणैव, 'बाधः' तद्धेतुकानुमितिबाधः, 'विशेषणेति बाधज्ञानस्य प्रतिबन्ध-प्रतिबन्धकभावे हेतुविशेषजन्यत्वाजन्यत्वविशेषणस्य गौरवापत्तिभ्यां अप्रयोजकत्वादित्यर्थः । 'हेतोरिति पञ्चमी हेतुतद्वत्यर्थः, 'साध्याभावोपस्थापने'^(१) इति पाठः, 'विरोधस्यैव' इत्येवकारो भिन्नक्रमे, 'उपजीव्यत्वेन' इत्यनन्तरं योज्यः तथाच पक्षे निरुक्तविरोधविशिष्टहेतुमत्ताज्ञानं बाधनिश्चयसामग्रीविधया अनुमितिप्रतिबन्धकं । न च विशिष्टबुद्धौ बाधनिश्चयस्य प्रतिबन्धकतावश्यकत्वे तत्सामग्र्या अपि तत्प्रतिबन्धकत्वे मानाभाव-

(१) साध्याभावबाधानुपस्थापनेऽपीति कचिकृतमूलमुक्तपाठः ।

व्यर्थत्वाच्च । न च साध्यासहचरितस्य साध्याभावसह-
चरितस्य वा गमकत्वभ्रमरूपायामशक्तौ विशेषोऽस्ति
येनाशक्तिविशेषोन्नायकतया न व्यर्थविशेषणता । न

इति वाच्यं । बाधनिश्चयोत्पत्तिकाले विशिष्टबुद्धिवारणाय तत्सा-
म्या अपि प्रतिबन्धकत्वावश्यकत्वात् ज्ञानरूपप्रतिबन्धकाभावस्य^(१)
केवलं पूर्ववर्तितयैव हेतुत्वात् अन्यथा विना सिद्धाधिसिद्धामनु-
मितिः कापि न स्यादिति भावः । क्वचित्तु 'साध्याभावानुपस्था-
पनेऽपीति पाठः, तत्र यदा पक्षे साध्यव्याप्यहेतुमत्तापरामर्शरूपः
सत्प्रतिपक्षोवर्तते साध्याभावव्याप्यत्वरूपविरोधविशिष्टहेतुमत्ताज्ञा-
नञ्च पक्षे वर्तते तदा प्रकृतहेतुना पक्षे साध्याभावज्ञानविरहेऽपी-
त्यर्थः, 'उपजीव्यत्वेनेत्यस्य च साध्यानुमित्युत्पादं प्रत्युपजीव्यत्वेने-
त्यर्थः, इति ध्येयम् । तदेतत् साम्प्रदायिकमतं दूषयति, 'नन्विति,
'साध्याभावसम्बन्धः' साध्याभावसमानाधिकरणोहेतुः, साध्याभावस्य
सम्बन्धो यत्रेति व्युत्पत्तेः, 'दोषः' दोषपदवाच्यः, 'तन्नियतत्वम-
पीति साध्यासमानाधिकरणत्वे सति साध्याभावसमानाधिकरण-

- (१) ननु बाधनिश्चयाभावस्य कार्यसहवर्तितया कारणत्वकल्पनेनैव बाध-
निश्चयोत्पत्तिकाले विशिष्टबुद्धिवारणसम्भवे स्वातन्त्र्येण बाधनिश्चय-
सामग्र्याः प्रतिबन्धकत्वकल्पनं किमर्थमित्यत आह, ज्ञानरूपप्रति-
बन्धकाभावस्येति, तथाच ज्ञानरूपप्रतिबन्धकाभावस्य कार्यसह-
वर्तितया कारणत्वाङ्गीकारे अनुमितिं प्रति सिद्धभावस्यापि तथैव
कारणत्वप्रसक्त्या विनानमित्यां कृत्राप्यनुमितिर्न स्यादिति भावः ।

चानैकान्तिकसामान्यलक्षणे विपक्षवृत्तित्वं न विशेष-
णम् असाधारणाद्यव्याप्तेः साधारणन्तु सपक्षवृत्तित्व-
सहितमिति वाच्यं । विपक्षगामित्वस्यैव साधारणत्वात्

रूपतन्त्रियतत्वाश्रयोऽपीत्यर्थः, तस्य नियतत्वं यत्रेति व्युत्पत्तेः, 'गौर-
वादिति गौरवेण तत्र व्याप्तिज्ञानस्यानुमितेर्वा प्रतिबन्धकतावच्छेद-
कत्वविरहादित्यर्थः । ननु स्वरूपसम्बन्धरूपावच्छेदकतापर्याप्त्यधि-
करणत्वं न दोषत्वघटकं अपि तु अनतिरिक्तवृत्तित्वरूपं तच्च
गौरवेऽपि सम्भवतीत्यत-आह, 'असाधकत्व इति साध्य इति शेषः,
'वैयर्थ्यादिति^(१) साध्यासहचरित्वदलवैयर्थ्यादित्यर्थः, तथाचासाध-
कतासाधकत्वस्य दोषत्वव्यापकतया तदभावान्न तस्य दोषत्वसम्भवः,
अतएव पूर्वोक्तसामान्यलक्षणमपि केवलं न दोषपदप्रवृत्तिनिमित्तं
अपि तु असाधकतासाधकत्वविशेषितमिति भावः । ननु केवल-
मसाधकतासाधकत्वं न दोषत्वव्यापकं अपि तु असाधकतासाधक-
त्वाशक्तिविशेषोन्नायकत्वान्यतरत्वं, तच्च तत्र वर्तत एव इत्यत-
आह, 'न चेति, 'साध्यासहचरितस्य' साध्याभावसहचरितत्वे सति
साध्यासहचरितस्य, 'गमकत्वभ्रमरूपायामिति गमकतायाः प्रयोज-
कतारूपाया व्यतिर्भ्रमरूपायामित्यर्थः, 'न व्यर्थविशेषणता' नासाध-
कतासाधने व्यर्थविशेषणता दोषत्वविघटिकेति शेषः । एतच्चापाततः

(१) मूले 'व्यर्थत्वात्' इत्यत्र 'वैयर्थ्यात्' इति कस्यचिन्मूलपुस्तकस्य
पाठोऽनेन पाठभ्रारेणानुमीयते ।

अधिकस्य व्यर्थत्वात् । न च विरुद्धं व्यावर्त्य, विपक्ष-
गामित्वेनात्रैव तदन्तर्भावात् । अथानैकान्तिके विपक्ष-
सम्बन्धो न दूषकताबीजम् असाधारणाद्यव्याप्तेः ।
न च तत्रान्यदेव बीजं, हेत्वाभासाधिकापत्तेरिति

व्यभिचारिणि अव्यभिचारांशे भ्रमः निरुक्तविरुद्धे तु सामानाधि-
करणांशे भ्रम इत्येवाशक्तौ विशेषसम्भवात् । वस्तुतस्तु बाधविशिष्ट-
व्यभिचारादिवत् विशिष्टान्तरघटितत्वान्न दोषत्वसम्भव इत्येव तत्त्वं ।
'विपक्षवृत्तित्वं^(१) न विशेषणमिति तादात्म्यसम्बन्धेन विपक्षवृत्तिहेतु-
मान् यः सोऽनैकान्तिक इति नानैकान्तिकसामान्यलक्षणमित्यर्थः,
'असाधारणेति व्याप्यसङ्कीर्णासाधारणाद्यव्याप्तेरित्यर्थः, 'सपक्षवृत्तित्व-
सहितमिति विपक्षवृत्तित्वे सति सपक्षवृत्तित्वविशिष्टं साधनमि-
त्यर्थः, तथाचानैकान्तिकसामान्यलक्षणस्य साधारणलक्षणस्य चाव्या-
प्यतया साध्याभावसमानाधिकरणोहेतुरेव विरोधोवाच्यः न तु
साध्यवदवृत्तित्वांशोऽपि निवेशनीय इति भावः । 'अधिकस्य' सपक्ष-
वृत्तित्वांशस्य, 'व्यर्थत्वादिति दूषकतायामनुपयोगित्वादित्यर्थः ।

ननु नेदं दूषकताप्रयोजकं रूपमपि तु साधारणव्यवहारविषय-
तावच्छेदकं तथाच विरुद्धवारणाय तदुपादानमित्यभिप्रायेणाह, 'न
चेति, 'तदन्तर्भावात्' विरुद्धस्यान्तर्भावात्, तथाच विपक्षगामित्व-
मादाय साधारणव्यवहारस्य विरुद्धेऽपि सत्त्वात् नेदं साधारणव्यव-
हारविषयतावच्छेदकमपीति भावः । ननु विरुद्धे साधारणव्यवहारो

(१) विपक्षगामित्वमिति कचिद्विज्ञितमूलपुस्तकपाठः ।

चेदस्तु तावदेवं तथापि साधारणे विरुद्धप्रवेशो वज्र-
लेप एव ।

अन्ये तु विरुद्धलक्षणे न व्यर्थत्वं साधारणस्य व्यव-
च्छेद्यत्वात् । नाप्यसाधकतानुमितौ, एतस्यापि व्याप्य-

भाक्ताः अन्यथा तत्साधारणं सव्यभिचारविभाजकतावच्छेदकमेव
दुर्वचमित्यभिप्रायेणाग्रङ्गते, 'अथेति, 'न दूषकतावीजं' न विरुद्ध-
साधारणं दुष्टतावीजं न विरुद्धसाधारणं दुष्टविभाजकतावच्छे-
दकमिति यावत्, 'असाधारणेति व्याप्यसङ्कीर्णसाधारणव्याप्ते-
रित्यर्थः । 'तत्र' व्याप्यसङ्कीर्णसाधारणादौ, 'वीजं' विभाजकता-
वच्छेदकं, 'हेत्वाभासमाधिक्येति हेत्वाभासविभाजकतावच्छेदकाधि-
क्येत्यर्थः, 'साधारणे' साधारणमात्रस्य, 'विरुद्धप्रवेशः' विरुद्धमध्ये
प्रवेशः, तथाच साध्याभावसमानाधिकरणहेतोरेव विरुद्धत्वे द्रव्यं
सत्त्वादित्यादिसाधारणमात्रे विरुद्धव्यवहारापत्तेरिति भावः ।

'विरुद्धलक्षण इति विरुद्धस्य इतरभेदानुमान इत्यर्थः, 'न
व्यर्थत्वमिति साध्याभावव्याप्यत्वघटकस्य साध्यासहचरितत्वं दलस्य न
व्यर्थत्वमित्यर्थः, 'साधारणस्य' साध्यसमानाधिकरणसाधारणस्य ।
'असाधकतानुमिताविति, विद्यमानापि व्यर्थता नासाधकत्वसाध-
कत्वविघटिकेति शेषः, 'एतस्यापीति केवलसाध्याभावसमानाधिक-
रणत्ववत् साध्यासहचरितत्वे सति साध्याभावसहचरितत्वरूपसाध्या-
भावव्याप्यत्वस्याप्यसाधकताव्याप्यत्वादित्यर्थः, व्यर्थविशेषणस्य व्याप्य-
विघटकत्वादिति भावः । नन्वेवं वक्तिमान्नीलधूमादित्यादावपि

त्वात्, नीलधूमादौ च व्याप्तिरस्त्वेवेति न स्वार्थानु-
माने दोषः परस्य तु व्यर्थत्वमधिकं । न च विरुद्धत्वा-
दित्यत्र शब्दाधिक्यमिति, तन्न, अर्थोहि लिङ्गं, न च
व्यभिचारावारकविशेषणावच्छेदेनापि व्याप्तिः, गौर-
वादिति वक्ष्यते, न चार्थगत्या व्यर्थत्वेऽपि विरुद्धत्वादित्यत्र

व्यर्थविशेषणता दोषो न स्यादित्यत्र दृष्टापत्तिमाह, 'नीलेति ।
नन्वेवं कथायां परप्रयुक्तहेतौ व्यर्थविशेषणता निग्रहस्थानं न स्यादि-
त्यत आह, 'परस्येति कथायां परप्रयुक्तसाधनस्येत्यर्थः, 'अधिकं'
अधिकाख्यनिग्रहस्थानान्तर्गतं । नन्वेवं विरुद्धत्वेनासाधकतासाधने-
ऽप्यधिकेन निग्रहापत्तिरित्यत आह, 'न चेति, 'अर्थोहीति, 'अर्थः'
साध्याभावव्याप्यत्वरूपः विरुद्धत्वशब्दस्यार्थः, 'लिङ्गं' लिङ्गत्वेनाभिमतं
व्याप्यत्वेनाभिमतमिति यावत् । 'अर्थगत्येति विरुद्धशब्दार्थं साध्या-
भावव्याप्यत्वे व्यर्थविशेषणत्वेऽपीत्यर्थः, 'उद्भावेनेति विरुद्धशब्दार्थ-
विवेचनात् प्राक् तस्योद्भावेनाशक्यत्वमित्यर्थः, तत्पूर्वं तदुद्भावेने-
वादिना विरुद्धशब्दस्यार्थान्तरकरणे निरनुयोज्यानुयोगापत्तेरिति
भावः । 'आवश्यकतद्विवेचन इति अर्थविवेचनस्यावश्यकतयेत्यर्थः,
तदुत्तरमेवेति शेषः । व्यर्थत्वमधिकमिति प्रागुक्तं दूषयति, 'हेत्विति,
अवधारणार्थकचकाराद्ध्यर्थत्वव्यवच्छेदः, 'अधिकं' अधिकाख्यनिग्रह-
स्थानं, 'कृतकर्तव्यताया इति हेत्वभिधानप्रयोजकाकाङ्क्षाविषयसि-
द्धिरूपस्य द्वितीयहेतोः कर्तव्यस्य प्रथमेनैव कृतस्येत्यर्थः । 'विशिष्ट-

उद्भावनाशक्यत्वम्, आवश्यकतद्विवेचने तदुद्भावनस्य
शक्यत्वादिति हेतुद्वयोपन्यासे चाधिकं प्रथमेन द्विती-
यस्य कृतकर्तव्यताया दुष्टिवीजत्वात् । न च नीलधू-
मादित्यादौ विशिष्टकर्तव्यमन्येन केनापि कृतं, धूमव-
त्त्वादित्यनेनैव कृतमिति चेत् । न । तथानुपन्यासात्
अन्यथा नीलानन्वयापत्तेः ।

अपरे तु साध्यानवगतसहचारः साध्याभावसह-
चारी विरुद्धः अन्यथा पृथिव्यां मेयत्वेनेतरभेदानुमानं

कर्तव्यमिति हेत्वभिधानप्रयोजकाकाङ्क्षाविषयसिद्धिरूपविलक्षणक-
र्तव्यमित्यर्थः, 'तथानुपन्यासादिति धूमादितिभागेन प्रथमं धूम-
ज्ञानज्ञायो वक्तिरित्यन्वयबोधजननादित्यर्थः, 'अन्यथा' धूमादि-
भागेन प्रथमं तादृशान्वयबोधजनने, 'नीलानन्वयेति धूमेन समं
नीलानन्वयापत्तेरित्यर्थः, धूमपदस्य जनितान्वयबोधजनकत्वेन निरा-
काङ्क्षत्वादिति भावः ।

केचित्तु^(१) 'तथानुपन्यासादिति केवलधूमहेतुत्वस्य प्रतिज्ञा-
वाक्यार्थान्वये तत्तात्पर्येणैव नीलधूमवत्त्वस्यानुपन्यासादित्यर्थः, 'अन्य-
थेति तत्तात्पर्येणैव तस्योपन्यास इत्यर्थः इत्याहुः ।

'साध्यानवगतेति साध्यसहचरितत्वेनानिश्चितत्वे सति साध्या-
भावसहचरित इत्यर्थः, 'अन्यथा' साध्याभावव्याप्यस्यैव विरुद्धत्वे,

न विरुद्धं स्यात् साध्याभावाव्याप्यत्वात् । न च नत्साधारणं, सपक्षासत्त्वात् । न च साध्यसहचाराज्ञानदशायां साधारणातिव्याप्तिः, तदा तस्यापि विरुद्धत्वादिति-
प्राहुः । तन्न । विपक्षगामित्वं दूषकताप्रयोजकमित्युक्त-
त्वात् । अत एव व्यभिचरितो व्यतिरेक्यनैकान्तिक एव ।

नापि साध्याभावसाधकत्वं तत्प्रमापकत्वं वा, साध्या-
भावसम्बन्धबुद्धिं विना तदज्ञानात् । नापि साध्यवद-

‘सपक्षासत्त्वादिति निश्चितसाध्यवद्वृत्तित्वादित्यर्थः, निश्चितसाध्य-
वद्वृत्तित्वे सति साध्याभाववद्वृत्तेरेव साधारणत्वादिति भावः ।
‘साधारणातिव्याप्तिरिति द्रव्यं सत्त्वादित्यादि साधारणातिव्याप्ति-
रित्यर्थः, ‘विपक्षगामित्वमिति, ‘दूषकताप्रयोजकं’ साधारण्यरूपो
दोषः, तथाच तद्वृत्तितया विशिष्टो न दोष इति भावः । ननु यदि
तादृशविशिष्टो न विरोधस्तदा तदाश्रयस्य हेतोः कुत्रान्तर्भाव-
इत्यत आह, ‘अत एवेति ‘व्यभिचरितः’ साध्याभावसहचरितः,
‘व्यतिरेकी’ अनवगतसाध्यसहचारकः ।

‘साध्याभावसाधकत्वमिति साध्याभाववत्ताप्रतीतिविषयवृत्तित्व-
मित्यर्थः, एतच्च वज्र्यादौ साध्ये धूमादावप्यागतमत आह, ‘तत्प्र-
मापकत्वं वेति साध्याभाववत्ताप्रमिति विषयवृत्तित्वमित्यर्थः, ‘साध्या-
भावसम्बन्धेति हेतौ साध्याभावसामानाधिकरण्येत्यर्थः, ‘तदज्ञाना-
दिति तज्ज्ञानस्य व्याप्तिज्ञानाप्रतिबन्धकत्वादित्यर्थः, तथाच हेत्वा-

न्यत्वव्याप्यत्वं, व्याप्यत्वविवेचने व्यर्थविशेषणत्वात् ।
नापि स्वव्यापकाभावप्रतियोगिसाध्यकत्वं, साध्याभा-
वस्य हेतुव्यापकत्वप्रतीतौ हेतु-साध्याभावसम्बन्धभान-
स्यावश्यकत्वादिति ।

इति श्रीमद्भग्वेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ
अनुमानाख्य-द्वितीयखण्डे विरुद्धपूर्वपक्षः ।

भाससामान्यलक्षणानाक्रान्ततया नास्य हेत्वाभासोपाधित्वमिति
भावः । पूर्वोक्तं अन्योन्याभावगर्भं लक्षणमपि दूषयति, 'नापीति,
पूर्वोक्तमिति शेषः, तेन न पौनरुक्त्यं, 'व्यर्थेति साध्यवदवृत्तित्वे सति
साध्यदङ्गिन्नवृत्तित्वस्य साध्यवदन्यत्वव्याप्यत्वरूपतया सत्यन्तदलवैयर्थ्या-
दित्यर्थः । 'स्वव्यापकेति 'स्व' साधनत्वेनाभिमतं, स्वव्यापकत्वं स्वसा-
मानाधिकरणघटितमित्यभिप्रायेण दूषयति, 'साध्याभावस्येति,
'सम्बन्धः' सामानाधिकरण्यं, तथाच बाधविशिष्टव्यभिचारादिव-
द्दोषान्तरघटिततया नास्य हेत्वाभासोपाधित्वमिति भावः ।

इति श्रीमथुरानाथतर्कवागीश-विरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये
अनुमानाख्य-द्वितीयखण्डरहस्ये विरुद्धपूर्वपक्षरहस्यम् ।

अथ विरुद्धसिद्धान्तः ।

उच्यते । साध्यव्यापकाभावप्रतियोगित्वं विरुद्धत्वं ।
न च प्रतियोगिनोरन्वये भासमान एव तदभावयो-

अथ विरुद्धसिद्धान्तरहस्यम् ।

‘साध्यव्यापकेति हेत्वभावस्य साध्यवन्निष्ठाभावाप्रतियोगित्वरूप-
साध्यव्यापकत्वज्ञानं हेत्वभावाभावस्य हेतोः साध्यासामानाधिकरण्य-
ज्ञानपर्यवसन्नं तच्च हेतोः साध्यसामानाधिकरण्यज्ञानं प्रत्येव प्रति-
बन्धकमिति भावः ।

अथ तदभावाभावत्वेन साध्यसामानाधिकरण्याभावज्ञानेऽपि तत्त्वेन
साध्यसामानाधिकरण्यग्रहो न विरुद्धः, न वा हेत्वभावस्य साध्यव्याप-
कत्वज्ञानं हेत्वाभावाभावे साध्यासामानाधिकरण्यज्ञानरूपं विशेषण-
विशेष्यभावभेदादिति चेदेतदस्वरसेनैव ‘यदेत्यादेर्वक्ष्यमाणत्वादिति
भट्टाचार्याः ।

स्वतन्त्रास्तु ‘साध्यव्यापकेत्यस्य साध्यव्यापकाभावप्रतियोगिहेतु-
मत्यक्षत्वं विरोधत्वमित्यर्थः । न चैवं सुरभिर्गौरश्वत्वादित्यादेरवि-
रुद्धत्वापत्तिः, इष्टत्वात्, एतज्ज्ञानञ्च साध्याभावसाधकव्यतिरेकपरा-
मर्शतया अनुमितिं प्रत्येव साक्षात्प्रतिबन्धकं । न चैवं सत्प्रतिपक्षा-
भेदः, तत्र हेत्वन्तरं घटकमत्र तु प्रकृतहेतुरेव घटक इत्येव विशे-
षात् । न च तथाप्यसाधारणभेदः ग्रन्थकारनये सर्वसपक्षव्यावृत्त-
हेतुमत्यक्षस्यासाधारणतया साध्यव्यापकाभावप्रतियोगिहेतुमत्यक्ष-

व्याप्तिग्रहः, भिन्नग्राहकसामग्रीकत्वात् अन्यथा व्यतिरेकिविलयापत्तेः । यद्वा वृत्तिमतः साध्यवद्वृत्तित्वं साध्यवद्वृत्तित्वानधिकरणत्वं साध्यासमानाधिकरणधर्मत्वं

स्यैव तथात्वादिति^(१) वाच्यं । एतदस्वरमादेव 'यद्वेत्यादेर्वक्ष्यमाणत्वादित्याहुः ।

'प्रतियोगिनोरिति साध्यस्य प्रतियोगी साध्याभावः हेत्वभावस्य प्रतियोगी हेतुरनयोः सामानाधिकरण्यं विषयीकृत्यैवेत्यर्थः, 'अभावयोर्व्याप्तिग्रहः' साध्याभावाभावस्य साध्यस्य हेत्वभावे व्यापकताग्रहः, तथाच हेतौ साध्याभावसामानाधिकरण्यात्मकव्यभिचारज्ञानमेव प्रतिबन्धकमस्तु किमेतज्ज्ञानस्य प्रतिबन्धकत्वेनेति भावः । यद्यपि प्रतिबन्धतावच्छेदकभेदादेकेनान्यस्य नान्यथासिद्धिसम्भवः, तथापि स्फुटतरं दोषमाह, 'भिन्नेति परस्परसामग्र्यनियतसामग्रीकत्वादित्यर्थः, 'अन्यथेति यदि प्रतियोगिनोरन्वयसहचारं विषयीकृत्यैवाभावयोर्व्यापकताग्रहः तदेत्यर्थः, 'व्यतिरेकिविलयेति पृथिवी इतरेभ्यो भिद्यते इत्याद्यप्रसिद्धसाध्यके व्यतिरेकव्याप्तिग्रहविलयापत्तेरित्यर्थः, पृथिवीतरभेदस्याप्रसिद्ध्या पृथिवीत्वेन समन्तस्य सहचारग्रहासम्भवादिति भावः । 'वृत्तिमत इति वृत्तिमत्त्वे सति साध्यवद्वृत्तित्वमित्यर्थः, वक्षिमानाकाशादित्यादावतिव्याप्तिवारणाय सत्यन्तं । वस्तुतस्तु सत्यन्तमनुपादेयमेव वक्षिमानाकाशादित्यादेरपि लक्ष्यत्वात्

साध्यवद्वृत्तित्वानधिकरणधर्मत्वं वा तत्त्वं । न च व्यतिरेक्यतिव्याप्तिः, तत्र साध्याप्रसिद्ध्या तथा ज्ञान-विरहात्, असाधारणे च सङ्कर एव अनेनापि रूपेण तस्य दोषत्वात् । न च साध्यवद्वृत्तित्वे सति वृत्ति-

अन्यथा साध्यवद्वृत्तित्वांशमात्रग्रहस्यापि विरोधित्वेन तद्वृत्तित्वस्य^(१) हेत्वाभासत्वासम्भवादिति^(२) ध्येयं । 'साध्यवद्वृत्तित्वानधिकरणत्वमिति, वृत्तिमत्त्वे सतीत्यत्राप्यनुषञ्जनीयं, पूर्वत्र साध्यवद्वृत्तित्वात्यन्ताभावोऽत्र तु तदधिकरणत्वात्यन्ताभाव इति भेदः,^(३) 'साध्यासमानाधिकरणधर्मत्वमिति साध्यसमानाधिकरणभिन्नत्वे सति वृत्तिमत्त्वमित्यर्थः, विशेष्य-विशेषणभावभेदात्^(४) अत्यन्तान्योन्याभावभेदाच्च द्वितीयतो भेदः । ज्ञानातिव्याप्तिं निराकरोति, 'न चेति, 'व्यतिरेक्यतिव्याप्तिः' व्यतिरेकिणि साध्यवद्वृत्तित्वज्ञानाभावेन साध्यवद्वृत्तित्वज्ञानापत्तिः, 'साध्याप्रसिद्ध्येति, इदमुपलक्षणं कदाचित्तथा ज्ञानेऽपि क्षतिविरहाच्च । नन्वेवं नित्यः शब्दः शब्दत्वात् इत्यसाधारणस्यापि विरुद्धत्वापत्तिरित्यत्रेष्टापत्तिमाह, 'असाधारणे चेति, 'सङ्कर एव' विरुद्धाभेद एव, 'दोषत्वात्' दुष्टत्वात् । 'न चेति, 'ज्ञानात्' ज्ञापकात्, 'तेन विना' साध्याभाववद्गामित्वज्ञानेन विना,

(१) तद्वृत्तित्वस्य वृत्तिमत्त्वघटितस्येत्यर्थः, तथाच विरोधितायामनुपयोगिभागस्य न हेत्वाभासघटकत्वमिति भावः ।

(२) तस्यापि हेत्वाभासत्वसम्भवादित्येति ग० ।

(३) अखण्डाभावघटकतया नाधिकरणत्वांशस्य वैयर्थ्यमिति ।

(४) विशेषण-विशेष्यभावभेदादिति य० ।

सत्त्वज्ञानात् साध्याभाववद्ज्ञामित्वज्ञानमावश्यकं तेन
विना साध्यवदवृत्तित्वाज्ञानादिति वाच्यम् । उपजीव्य-
त्वेन भिन्नत्वात् उपजीव्यत्वेऽपि साध्यवति न वर्तत-
इति ज्ञानं न स्वतोदूषकमिति चेत् । न । असहचार-

‘साध्यवदवृत्तित्वाज्ञानात्’ वृत्तिमत्त्वविशिष्टसाध्यवदवृत्तित्वज्ञानानु-
त्पादात्, वृत्तिमत्त्वविशिष्टसाध्यवदवृत्तित्वज्ञानोत्पत्तेः साध्याभाव-
वद्ज्ञामित्वज्ञानोत्पत्तिव्याप्यत्वादिति यावत्, एकविशेषबाधग्राहक-
सामग्रीसहकृतसामान्यग्रहसामग्र्यास्तदितरविशेषप्रकारकज्ञानजनक-
त्वनियमादिति भावः । यद्यपि वृत्तिमत्त्वे सति साध्यवदवृत्तित्व-
ज्ञानस्य साध्याभाववद्ज्ञामित्वविषयकत्वावश्यकत्वे न कापि चतिः प्रति-
वध्यतावच्छेदकभेदादेकेनापरस्यान्यथासिद्ध्यसम्भवात्, तथापि तदु-
पेक्ष्य स्फुटतरमस्य समाधानमाह, ‘उपजीव्यत्वेनेति वृत्तिमत्त्वे सति
साध्यवदवृत्तित्वज्ञानस्य इतरबाधनिश्चयविधया तत्र साध्याभाववद्-
वृत्तित्वज्ञाने कुत्रचिदुपजीव्यत्वमात्रेणेत्यर्थः, सात्रपदात् तस्य तदा-
त्मकत्वनियमव्यवच्छेदः, ‘भिन्नत्वादिति कुत्रचित्तत्र तद्भिन्नत्वस्यापि
सत्त्वादित्यर्थः, साध्याभावाद्युपस्थितिविरहेण तेन विनापि क्वचित्त-
दुत्पादादिति भावः । ‘उपजीव्यत्वेऽपि’ क्वचिदुपजीव्यमात्रसत्त्वेऽपि
तस्य तदात्मकत्वनियमाभावेऽपीति यावत्, ‘न स्वतो दूषकमिति
नानुमिति-तत्कारणान्यतरं प्रति साक्षात् प्रतिबन्धकमित्यर्थः, तथाच
साध्यवदवृत्तित्वं कथं हेत्वाभास इति भावः । ‘असहचारज्ञानस्य’
साध्यवदवृत्तित्वज्ञानस्य, ‘विरोधितया’ सहचारांशग्रहविरोधितया,

ज्ञानस्य विरोधितया व्याप्तिग्रहप्रतिबन्धकत्वात् व्यभि-
चाराज्ञानविरोधित्वेन व्यभिचारज्ञानवत् । ननु विरु-
द्धस्य स्वार्थानुमानदोषत्वेऽपि परार्थानुमानेऽपार्थकत्वं
अयोग्यताज्ञानेन निश्चितानन्वयादिति चेत् । न ।
अयोग्यताज्ञानस्य विरुद्धत्वज्ञानोपजीवकत्वेन तस्यैव
दोषत्वात् बाधेऽप्येवं । स चायं विधिसाधने त्रिविधः

‘व्यभिचाराज्ञानेति व्यभिचारस्याज्ञानं यस्मादिति व्युत्पत्त्या अव्यभि-
चारज्ञानेत्यर्थः । ‘नन्विति, ‘अपार्थकत्वं’ अपार्थकत्वमेव उद्गायमिति
शेषः, यतः शाब्ददोषस्य पुरस्कृत्तिकतया तस्मिन् सति हेत्वाभासो-
द्भावनं निरनुयोज्यानुयोगमावहतीति भावः । ननु कुतोऽपार्थक-
त्वमित्यत आह, ‘अयोग्यतेति एकपदार्थेऽपरपदार्थाभावप्रमाया-
अयोग्यतात्वेन प्रकृते साधने साध्यसामानाधिकरण्याभावप्रमैवायो-
ग्यता तस्याः ज्ञानेनेत्यर्थः, ‘निश्चितेति निश्चितायोग्यताकत्वादित्यर्थः,
तथाच निश्चितायोग्यताकत्वेनापार्थकत्वं यत्रानन्वयावगतिः
तदेवापार्थक्यमिति परिशिष्टकृताभिधानादिति भावः । ‘अयोग्य-
ताज्ञानस्येति विरुद्धत्वप्रमाया ज्ञानमेवात्रायोग्यताधीः तत्र च विष-
यविधया विरुद्धत्वज्ञानमुपजीव्यमिति भावः । ‘दोषत्वात्’ दोषत्वे-
नोद्गायत्वात्, ‘बाधेऽप्येवमिति, ‘एवं’ तज्ज्ञानस्यायोग्यताज्ञानोप-
जीव्यत्वेन परार्थस्थले उद्गायत्वं । ‘स चायमिति, ‘अयं’ विरोधः,
‘विधिसाधने’ विधिसाधकतया परोपन्यस्ते विरुद्धसाधने, ‘त्रिविधः’
लिङ्गत्रयेणैव कथावसरेऽनुमेयतया कथकसम्प्रदायसिद्धः, किं लिङ्ग-

साक्षात्साध्याभावव्याप्यत्वात् साध्यव्यापकाभावव्याप्य-
त्वात् साध्यव्यापकविरुद्धोपलम्भात् यथा धूमवानयं
योग्यधमवत्तया अनुपलभ्यमानत्वात् । निरग्निकत्वात्
जलाशयत्वात् । न च सर्वत्र साध्यव्यापकविरुद्धोपलम्भ-

त्रयं तदाह, 'साक्षात्साध्याभावेति साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्न-
साध्याभावेत्यर्थः, 'साध्यव्यापकाभावव्याप्यत्वादिति व्याप्यपदस्य
स्वरूपार्थकतया साध्यव्यापकाभावत्वादित्यर्थः, साध्यव्यापकाभावत्वञ्च
साध्यव्यापकतावच्छेदकरूपावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावत्वं, 'साध्यव्या-
पकविरुद्धोपलम्भादिति उपलम्भपदस्याभेदपरतया साध्यव्यापक-
विरुद्धत्वादित्यर्थः, साध्यव्यापकविरुद्धत्वञ्च साध्यव्यापकतावच्छेदक-
रूपावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावव्याप्यत्वं, हेतुभेदेन त्रयाणामुदा-
हरणं क्रमेणाह, 'यथेति, 'धूमवानयमिति, 'अयं' धूमवत्त्वेनानुप-
लभ्यमानोद्देशः, 'योग्यधूमेति 'योग्यः' बाधितः, तथाच धूमवत्त्वे-
नानुपलभ्यमानोऽयं देशः धूमवान् धूमवत्ताप्रमित्यविषयत्वात् इति
वादिना प्रयुक्ते साध्याभावव्याप्यत्वेन साध्यविरुद्धत्वमुन्नीयते, अयं
देशोद्धूमवान् निरग्निकत्वादिति परेण प्रयुक्ते साध्यव्यापकाभावत्वेन
साध्यविरुद्धत्वमुन्नीयते, अयं देशोद्धूमवान् जलाशयत्वात् इति
वादिना प्रयुक्ते साध्यव्यापकवज्रादिविरुद्धत्वेन साध्यविरुद्धत्वमुन्नीयते
इत्यर्थः, स्वरूपाभिद्धत्ववारणाय प्रथमहेतौ प्रमात्वप्रवेशः, तत्सत्त्वे
तस्यैव दोषस्यातिस्फुटतया तदपह्नाय विरुद्धोन्नयनस्यानुचितत्वा-
पत्तेः, इदमुपलक्षणं गोत्वान् अश्वत्वादित्यादावेकस्मिन्नपि हेतौ

इति न त्रैविध्यम्, एतदज्ञानेऽपि साध्याभाव-तद्व्याप-
काभावव्याप्यत्वेनापि ज्ञातस्य दोषत्वात् । न च धूम-
वानयं तदभाववत्त्वादिति त्रयाधिकं, स्वसमानाधिक-
रणात्यन्ताभावाप्रतियोगित्वं हि व्यापकत्वं तच्चाभेदेऽपि
धूमवानयं धूमाभाववत्तथोपलभ्यमानत्वात् तद्वत्तया-

कालभेदेन पुरुषभेदेन च त्रयाणामुन्नायकत्वं द्रष्टव्यं । 'साध्यव्याप-
कविरुद्धोपलम्भ इति साध्यव्यापकविरुद्धत्वेनैव साध्यविरुद्धोन्नयनं
कथावसरे कथकसम्प्रदायसिद्धमित्यर्थः, 'न त्रैविध्यमिति कथावसरे
कथकानां विरुद्धत्वोन्नायकस्य न त्रैविध्यमित्यर्थः, 'एतदज्ञानेऽपि'
साध्यव्यापकविरुद्धत्वस्याज्ञानेऽपि, 'साध्याभावेति व्याप्यपदव्यत्यासात्
साध्याभावव्याप्यत्वेन साध्यव्यापकाभावत्वेनापीत्यर्थः, 'ज्ञातस्य' ज्ञानस्य,
'दोषत्वादिति कथावसरे विरुद्धत्वदोषोन्नायकतायाः सकलतान्त्रि-
कसिद्धत्वादित्यर्थः, 'इति त्रयाधिकमिति इत्यत्र विरुद्धत्वोन्नायकं
त्रयाधिकमित्यर्थः, तत्र साध्याभावव्याप्यत्व-साध्यव्यापकाभावत्वादीनां
हेतौ स्वरूपासिद्धतया तेषां तदुन्नायकत्वासम्भवादित्यभिमानः,
'तच्चाभेदेऽपीति, तथाच तत्रापि साध्यव्यापकाभावत्व-साध्यव्यापक-
विरुद्धत्वाभ्यामेव विरुद्धत्वोन्नयनसम्भव इति भावः । इदमुपलक्षणं
साध्याभावव्याप्यत्वस्यापि भेदाभेदसाधारणतया तेनापि तत्र तदुन्न-
यनसम्भव इति द्रष्टव्यम् । ननु तथापि धूमवानयं धूमाभाववत्तया
ज्ञायमानत्वादित्यादावुक्तत्रयेण न विरुद्धत्वोन्नयनसम्भवः तत्तयस्य
तत्रासत्त्वादित्यत-आह, 'धूमवानयमिति, अत्र हेतावुपलम्भोन्नयन-

नुपलभ्यमानत्वादित्यनैकान्तिकमेव । निषेधसाधनेऽपि
त्रिविधः प्रतियोग्युपलम्भात् साध्यव्यापकाभावोपल-
म्भात् साध्यव्यापकविरुद्धोपलम्भात् यथा निरग्निर्को-

प्रमासाधारणोनिविष्टः, 'तद्वत्तयेति धूमप्रकारकलौकिकमात्रात्का-
राविषयत्वादित्यर्थः, 'अनैकान्तिकमेवेति न तु विरुद्धमित्यर्थः,
प्रथमस्य धूमाभाववत्ताभ्रमविषये धूमवति द्वितीयस्य चातीन्द्रिये
धूमवति साध्यसमानाधिकरणत्वादिति भावः । 'निषेधसाधनेऽपीति
निषेधसाधकतया परप्रयुक्ते विरुद्धसाधनेऽपीत्यर्थः, 'त्रिविधः'
कथावसरे लिङ्गत्रयेणैवानुमेयतया कथकमम्रदायमिद्वः, किं लिङ्ग-
त्रयं तदाह, 'प्रतियोग्युपलम्भादिति उपलम्भपदस्याभेदपरतया
साध्यप्रतियोगित्वादित्यर्थः, एवमग्रेऽपि, हेतुभेदेन त्रयाणामुदाहरणं
क्रमेण दर्शयति, 'यथेति अर्थस्तु पूर्ववत्, 'मर्व्वश्चायमिति विरोध-
साधकोधर्म इति शेषः । 'विशेषणद्वारापि' हेतुतावच्छेदकघटक-
विशेषणद्वारापि, अनुमितः सन् क्वचिद्विरोधोन्नायक इति शेषः ।

साम्प्रदायिकास्तु 'स चायमिति अयं विरुद्धोहेतुः विधि-
साधने विधिरूपसाध्यसामानाधिकरणग्रहे विधिरूपसाध्यानुमितौ
वा, 'त्रिविधः' त्रिधा प्रमितः सन् प्रतिबन्धकः, केन त्रयेण प्रमित-
स्तदाह, 'साक्षात्साध्याभावेत्यादि, सर्व्वत्र प्रकारिता पञ्चम्यर्थः,
प्रमित इति शेषः, शेषं पूर्व्ववत्, हेतुभेदेन त्रयाणामुदाहरणं क्रमे-
णाह, 'यथेति, एकस्मिन्नपि हेतौ कालभेदेन पुरुषभेदेन च त्रयाणा-
मुदाहरणं बोध्यं, 'विरुद्धोपलम्भः' विरुद्धत्वप्रकारकोपलम्भः, प्रति-

इयमग्निमत्त्वात् धूमाभावशून्यत्वात् धूमवत्त्वात् सर्व-
श्चायं विशेषणद्वारापि यथा कृष्णागुरुप्रभववह्निमानयं

बन्धक इति शेषः । 'इति त्रयाधिकमिति, अत्र साध्याभावव्याप्यत्व-
साध्यव्यापकाभावत्वाद्यभावेन तद्वत्तया प्रमितत्वाभावादित्यभिमानः ।
अभिमानं निराकृत्य समाधत्ते, 'स्वसमानेति, इदमुपलक्षणं साध्या-
भावव्याप्यत्वस्यापि भेदाभेदसाधारणतया तद्वत्तयापि प्रमितत्वस्य
तत्र सम्भवः । ननु धूमवानयं धूमाभाववत्तया ज्ञायमानत्वादित्या-
दिकं तत्त्वयाधिकमेव तत्र साध्याभावव्याप्यत्वादीनां अभावादित्यत-
आह, 'धूमवानयमिति, 'निषेधसाधनेऽपि' निषेधरूपसाध्यसामा-
नाधिकरणग्रहेऽपि, 'त्रिविधः' त्रिधा ज्ञानात् प्रतिबन्धकः, 'प्रति-
योग्युपलम्भात्' साध्यप्रतियोगित्वप्रकारकज्ञानात्, एवमग्रेऽपि, धर्म-
परोनिर्देशः, 'सर्व्वश्चायमिति अयं दूषकताप्रयोजकोधर्मः साध्या-
भावव्याप्यत्वादिरूपः, 'विशेषणद्वारापीति अनुमेय इति शेषः,
अस्योदाहरणमाह, 'यथेति इत्याहुः । तद्वत्, साध्याभावव्याप्य-
त्वादिज्ञानस्य साध्यसामानाधिकरणग्रहप्रतिबन्धकत्वे मानाभावात्
विरोध्यविषयकत्वात् साध्यासामानाधिकरण्यादिग्रहस्यापि प्रति-
बन्धकतया विभागस्य न्यूनत्वप्रसङ्गाच्च ।

प्राञ्चसु 'स चायमिति अयं विरुद्धोहेतुः, 'विधिसाधने' विधि-
साध्यकः, 'त्रिविधः' त्रिधा तान्त्रिकैर्विभक्तः इत्यर्थः, इत्याहुः ।
तद्वत्, 'एतदज्ञानेऽपीत्याद्यग्निमसुलामङ्गते' ।

'अयञ्चेति विरोधः इति शेषः, 'बाधेति बाधसङ्कीर्णः कश्चिद्यथा

कटुकासुरभिपाण्डुरधूमवत्त्वात् । अयञ्च बाधाश्रया-
सिद्ध-स्वरूपासाधारणसङ्कीर्णः कश्चित् ।

इति श्रीमद्भङ्गेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ
अनुमानाख्यद्वितीयखण्डे विरुद्धसिद्धान्तः ॥ १ ॥

अश्वोगौरश्वत्वादित्यादौ, आश्रयासिद्धिसङ्कीर्णः कश्चिद्यथा काञ्चन-
मयी गौरश्वो गोत्वादित्यादौ, स्वरूपासिद्धिसङ्कीर्णः कश्चिद्यथा
सुरभिगौरश्वत्वादित्यादौ, 'असाधारणसङ्कीर्णः कश्चिद्यथा नित्यः
शब्दः शब्दत्वादित्यादावित्यर्थः । प्रचीननये सपक्ष-विपक्षगामित्वस्यैव
साधारणतया तत्साङ्कर्यं नाभिहितं, नव्यनये वृत्तिमति विरुद्धे
तत्साङ्कर्यमपि बोध्यं, बाधपदं सत्प्रतिपक्षस्य, असाधारणपदञ्चानुप-
संहारित्वस्याप्युपलक्षणं, साध्याव्यभिचरितत्वे सति साध्यसामाना-
धिकरण्यरूपव्याप्त्यभावासिद्धिसङ्करो बाध-स्वरूपासिद्ध्यन्यतरसङ्करश्च
सर्वत्रैव. साध्यविशेषणासिद्धि-साधनविशेषणासिद्धि-सङ्करश्च न कापि,
साध्यतावच्छेदकविशिष्टसाध्यसामानाधिकरण्याभावविशिष्टहेतुताव-
च्छेदकावच्छिन्नहेतोरेव विरोधतया तस्य तत्राप्रसिद्धत्वादिति
ध्येयम् ।

इति श्रीमथुरानाथतर्कवागीश-विरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये
अनुमानाख्य-द्वितीयखण्डरहस्ये विरुद्धसिद्धान्तरहस्यम् ।

अथ सत्प्रतिपक्षपूर्वपक्षः ।

सत्प्रतिपक्षत्वं न समानबलवोधितसाध्यविपर्यय-
लिङ्गत्वं, परस्परप्रतिबन्धेनोभयोरवोधकत्वात्, बलञ्च

अथ सत्प्रतिपक्षपूर्वपक्षरहस्यम् ।

‘समानबलवोधितेति समानबलवलिङ्गज्ञानजन्य-तत्कालीन-
तत्पुरुषीयवोधविषयसाध्यविपर्ययकलिङ्गत्वं^(१) तत्कालीन-तत्पुरुषीय-
सत्प्रतिपक्षितत्वमित्यर्थः, बलनिष्ठसमानत्वञ्च तत्कालीन-तत्पुरुषीय-
साध्यानुमितिजनकस्वनिष्ठबलज्ञानसमानाधिकरणसमानकालीनज्ञा-
नविषयत्वं, स्वपदं लक्ष्यीभूतहेतुपरं^(२) । दूषणान्तरमाह, ‘बलञ्चेति,
‘पक्ष-सपक्षसत्त्वादीति^(३) पक्षवृत्तित्व-सपक्षवृत्तित्वादीत्यर्थः, आदि-
पदात् विपक्षावृत्तित्वपरिग्रहः, प्रथमे सपक्षत्वं साध्यवत्त्वेन निश्चितत्वं,
विपक्षत्वञ्च तदभाववत्त्वेन निश्चितत्वं, द्वितीये सपक्षत्वं साध्याभाव-
वत्त्वेन निश्चितत्वं विपक्षत्वं साध्यवत्त्वेन निश्चितत्वं, प्रतिहेतौ स्वहेतु-
साध्याभावस्यैव साध्यत्वात्, ‘व्यतिरेकिणीति केवलव्यतिरेकिणीत्यर्थः,
तत्र सपक्षाप्रसिद्धेरिति भावः । इदमुपलक्षणं अन्वयिनि सपक्ष-

(१) समानबलेन बोधितः साध्यविपर्ययो येन एतादृशं लिङ्गं वस्येति
वृत्त्यन्त्या एतादृशार्थज्ञात इति ।

(२) लक्ष्यीभूतलिङ्गपरमिति ख०, ग० ।

(३) ‘सपक्षसत्त्वादि’ इत्यत्र ‘पक्ष-सपक्षसत्त्वादि’ इति कस्यचिन्मूल-
पुस्तकस्य पाठमनुसृत्य एतादृशपाठधारणमित्यनुमीयते ।

न सपक्षसत्त्वादि व्यतिरेकिण्यभावात् । नापि समान-
व्याप्ति-पक्षधर्मतावत्त्वं, विरोधेनैकत्र तद्गङ्गनियमात् ।
नापि व्याप्ति-पक्षधर्मतया ज्ञातत्वं विरोधिव्याप्तिपक्ष-

प्रसिद्धिसत्त्वेऽप्येकत्र हेतौ तदभावस्यावश्यकत्वात् । 'समानव्याप्तीति
समानसाध्याभावनिरूपितव्याप्ति-पक्षधर्मतावत्त्वमित्यर्थः, समानवल-
वत्त्वमिति शेषः, व्याप्ति-पक्षधर्मतयोः समानत्वञ्च तत्कालीन-तत्पु-
रुषीयसाध्यानुमितिजनकस्वनिष्ठसाध्यनिरूपितव्याप्ति-पक्षधर्मताज्ञान-
समानाधिकरण-समानकालीनज्ञानविषयत्वं, स्वनिष्ठत्वं व्याप्ति-पक्ष-
धर्मताविशेषणं, स्वपदं लक्ष्यीभूतलिङ्गपरं, 'विरोधेनेति साध्य-तद-
भावयोर्विरोधेनेत्यर्थः, 'तद्गङ्गेति स्वसाध्यनिरूपितव्याप्ति-पक्षधर्मता-
न्यतरभङ्गंत्यर्थः, 'व्याप्ति-पक्षधर्मतयेति समानसाध्याभावनिरूपितव्या-
प्तिविशिष्टपक्षधर्मताज्ञानविषयत्वमित्यर्थः, समानवलवत्त्वमिति शेषः ।
ज्ञाननिष्ठसमानत्वञ्च तत्कालीन-तत्पु-रुषीयसाध्यानुमितिजनकस्ववि-
षयकसाध्यनिरूपितव्याप्तिविशिष्टपक्षधर्मताज्ञानसमानाधिकरणसमा-
नकालीनत्वं, लिङ्गविशेष्यक साध्य-तदभावव्याप्तिविशिष्टपक्षधर्मता-
प्रकारकपरामर्शविव सर्वत्र सत्प्रतिपक्षौ तादृशपरामर्शस्यापि
प्राचीनमते^(१) अनुमितिजनकत्वादिति भावः । 'विरोधिव्याप्तिपक्ष-
धर्मताविशिष्टज्ञानयोरिति परस्परविरुद्धयोर्व्याप्ति-पक्षधर्मतयोरेका-
धिकरणे ज्ञानस्येत्यर्थः, 'अन्यतरभ्रमत्वनियमेनेति व्याप्ति-पक्षधर्म-

धर्मताविशिष्टज्ञानयोरन्यतरभ्रमत्वनियमेन नित्यत्व-
व्याप्तश्रावणत्वादिवैशिष्ट्याप्रसिद्धारोपयितुमशक्यत्वात् ।

तान्यतरांशे भ्रमत्वनियमेनेत्यर्थः, एतच्चाप्रसिद्धेत्यत्र हेतुः, 'नित्यत्व-
व्याप्तेति 'व्याप्तं' व्याप्तिः, 'श्रावणत्वपदं शब्दधर्मत्वपरं, नित्यत्वव्याप्ति-
शब्दधर्मत्ववैशिष्ट्याप्रसिद्धेत्यर्थः, 'आरोपयितुमिति साध्याभावव्याप्ति-
विशिष्टपक्षधर्मताया आरोपयितुमित्यर्थः । तथाच शब्दोऽनित्यः
कृतकत्वात् शब्दोऽनित्यः श्रावणत्वादित्यादौ श्रावणत्वादिना सत्प्रति-
पक्षिते कृतकत्वादौ लक्षणस्यासम्भवः, नित्यत्वादिरूपसाध्याभावव्याप्ति-
पक्षीभूतशब्दादिधर्मत्वयोरेकाधिकरणवृत्तित्वाभावात् नित्यत्वादि-
रूपसाध्याभावनिरूपितव्याप्तिविशिष्ट-पक्षीभूतशब्दादिधर्मत्वाप्रसिद्धा
तज्ज्ञानस्यासम्भवादिति भावः । 'साध्यव्याप्त्येति साध्याभावरूपसाध्य-
व्याप्त्येत्यर्थः, 'साध्यव्याप्यता' साध्याभावरूपसाध्यव्याप्यता, तथाच
यत्र पक्षे साध्यमबाधितं तत्र क्वचित् साध्याभावव्याप्ये पक्षधर्मता-
रोपः, क्वचिच्च पक्षधर्मे साध्याभावव्याप्यतारोपः, एवं यत्र पक्षे
साध्यं बाधितं तत्र क्वचित् साध्यव्याप्ये पक्षधर्मतारोपः, क्वचिच्च
पक्षधर्मे साध्यव्याप्यतारोप इत्यर्थः । इत्यञ्च समानज्ञानीयसाध्या-
भावव्याप्यनिष्ठपक्षधर्मतानिरूपितविषयतावत्त्वं समानज्ञानीयपक्षधर्म-
निष्ठसाध्याभावव्याप्यतानिरूपितविषयतावत्त्वं समानबलवत्त्वं, ज्ञान-
निष्ठसमानत्वमपि द्वयं साध्यव्याप्यवृत्तिपक्षधर्मतानिरूपितस्वनिष्ठ-
विषयताप्रतियोगिज्ञानसमानाधिकरणसमानकालीनत्वं, पक्षधर्म-

न च साध्यव्याप्तस्य पक्षधर्मता पक्षधर्मस्य वा साध्य-
व्याप्यतारोप्येति वाच्यम् । एकत्र तदुभयाभावादिशिष्ट-

वृत्तिसाध्यव्याप्यतानिरूपितस्वनिष्ठविषयताप्रतियोगिज्ञानसमानाधि-
करणसमानकालीनत्वञ्च, स्वपदं लक्ष्यीभूतलिङ्गपरं, एकविशिष्टे-
ऽपरवैशिष्ट्यमिति न्यायेन साध्य-तदभावव्याप्ति-पक्षधर्मतोभयावगाहि-
लिङ्गविश्लेष्यकपरामर्शाविव सर्वत्र सत्प्रतिपक्षौ तादृशपरामर्गस्यापि
प्राचीनमतेऽनुमितिजनकत्वादिति भावः । 'एकत्रेति एकस्मिन् पक्षे
साध्यव्याप्य-साध्याभावव्याप्ययोरुभयोरभावादित्यर्थः, एतच्चाप्रसिद्धेत्यत्र
हेतुः, 'विशिष्टस्याप्रसिद्ध्या' क्वचित् साध्याभावव्याप्तिविशिष्टपक्षधर्म-
त्वस्य क्वचिच्च साध्यव्याप्तिविशिष्टपक्षधर्मत्वस्याप्रसिद्ध्या, 'तद्वैशिष्ट्या-
रोपेति यत्र साध्याभावव्याप्यत्वविशिष्टपक्षधर्मत्वमप्रसिद्धं तत्र तद्वै-
शिष्ट्यस्य यत्र च साध्यव्याप्तिविशिष्टपक्षधर्मत्वमप्रसिद्धं तत्र तद्वैशिष्ट्य-
स्थारोपासम्भवादित्यर्थः । यद्यपि साध्याभावव्याप्तिविशिष्टपक्षधर्मत्वा-
देरप्रसिद्ध्या तज्ज्ञानासम्भवेऽपि साध्याभावव्याप्यादौ पक्षधर्मतारोपस्य
पक्षधर्मं साध्याभावव्याप्यत्वारोपस्य च सम्भवादिदमयुक्तं, तथापि
यथोक्तं समानत्वद्वयं समानबलवत्त्वद्वयञ्च समुचितं न कापि सम्भवति
प्रत्येकञ्च परस्परमव्याप्तमतः प्रागुक्तमेव समानबलवत्त्वं निर्व्याच्यं
तच्चाप्रसिद्ध्या न सम्भवतीति निगूढाभिप्रायः । अथ समानज्ञानीय-
पक्षतावच्छेदकावच्छिन्नपक्षविषयतानिरूपितसाध्याभावव्याप्यत्वावच्छि-
न्नविषयतावत्त्वं समानबलवत्त्वं, समानत्वञ्च पक्षतावच्छेदकावच्छिन्न-
पक्षविषयतानिरूपितसाध्यव्याप्यत्वावच्छिन्नस्वनिष्ठविषयताप्रतियोगि-

स्याप्रसिद्धा तद्वैशिष्ट्यस्यारोपासम्भवात् । नाप्यनिर्द्धारितविशेषेण बोधितसाध्यविपर्ययकत्वम् उभयोरबोधकत्वात् विशेषश्च न व्याप्तिभङ्गाभङ्गरूपः एकत्र तद्भङ्गनियमात् ।

ज्ञानसमानाधिकरण-समानकालीनत्वं, पक्षतावच्छेदकावच्छिन्नत्वञ्च वैज्ञानिकं तेन क्वचित् पक्षतावच्छेदकविशिष्टपक्षादेरप्रसिद्धावपि न चतिः, पक्षविशेष्यकसाध्य-तदभावव्याप्यवत्तापरामर्शौ साध्य-तदभावव्याप्यविशेष्यक-पक्षप्रकारकपरामर्शौ वा सत्प्रतिपक्षौ तादृशपरामर्शयोरेव साध्य-तदभावानुमितिजनकत्वादिति चेत् तथापि 'परस्परविरोधेनोभयोरेवाबोधकत्वादिति प्रागुक्तदोषस्य दुरुद्धरत्वात् रत्नकोषकारमतस्य चाग्रे निरसनीयत्वादिति निगमः । 'अनिर्द्धारितविशेषेणेति अनिर्द्धारितविशेषकेनेत्यर्थः, वैशिष्ट्यं तृतीयार्थः, अन्वयश्चास्य बोधितसाध्यविपर्ययकेत्यत्र, तथाचानिर्द्धारितविशेषकपरामर्शविशिष्टबोधितसाध्यविपर्ययकलिङ्गत्वं सत्प्रतिपक्षितत्वमित्यर्थः, अनिर्द्धारितविशेषकत्वञ्च अगृहीतसाध्यव्याप्याभाववद्विशेष्यताकत्वं अगृहीतभ्रमत्वकत्वं इति यावत् । दूषणान्तरमाह, 'विशेषश्चेति, 'व्याप्तिभङ्गाभङ्गरूपः' व्याप्तिभङ्गाभङ्गत्वरूपः साध्यव्याप्याभाववद्विशेष्यताकत्वरूप इति यावत्, 'व्याप्या' साध्यव्याप्यत्वरूपेण, 'भङ्गः' अभावः यत्र तत् 'व्याप्तिभङ्गं' साध्यव्याप्यत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभाववदिति यावत्, तस्य विशेष्यतासम्बन्धेन 'अभङ्गः' सत्त्वं यत्रेति

इति श्रीमद्भङ्गेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ
अनुमानाख्य-द्वितीयखण्डे सत्प्रतिपक्षपूर्वपक्षः ॥

व्युत्पत्तेः, 'एकत्र' एकस्य साध्यव्याप्य-साध्याभावव्याप्ययोरन्यतरस्येति
यावत्, 'भङ्गनियमात्' पक्षे भङ्गनियमात्, तथाच साध्यव्याप्याभाव-
वद्विशेष्यकत्व-साध्याभावव्याप्याभाववद्विशेष्यकत्वान्यतरत्वरूपेण तद्व-
धारणं सर्वत्रैवास्तीति भावः ।

इति श्रीमथुरानाथतर्कवागीश-विरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये
अनुमानाख्यद्वितीयखण्डरहस्ये सत्प्रतिपक्षपूर्वपक्षरहस्यम् ।

अथ सत्प्रतिपक्षसिद्धान्तः ।

उच्यते । साध्यविरोध्युपस्थापनसमर्थसमानबलोप-

अथ सत्प्रतिपक्षसिद्धान्तरहस्यम् ।

यद्यपि साध्याभावव्याप्यवान् पक्षः सत्प्रतिपक्षः येन केनचित् सम्बन्धेन तद्वान् हेतुः सत्प्रतिपक्षितः, तथापि तन्न सत्प्रतिपक्षितत्वव्यवहारौपयिकं साध्यवत्यपि पक्षे साध्य-तदभावव्याप्यवत्तापरामर्शयोः सम्बलनदशायां^(१) सत्प्रतिपक्षव्यवहारात् साध्याभाववत्यपि पक्षे साध्य-तदभावव्याप्यवत्तापरामर्शयोः असम्बलनदशायां तादृशपरामर्शयो-रेकत्राप्रामाण्यग्रहदशायां वा सत्प्रतिपक्षितत्वव्यवहाराभावाच्चेत्यतो व्यवहारौपयिकं लक्षणमाह, 'साध्यविरोधीति 'साध्यविरोधी' साध्याभावः, तदुपस्थापनसमर्था तदनुमितिजननस्वरूपयोग्या या 'समाना' समानकालीना, 'बलोपस्थितिः' बलवती उपस्थितिः, तथा 'प्रतिरुद्धः' विशिष्टः, यः 'कार्यलिङ्गः' साध्यानुमितिरूपकार्यजनन-समर्थः साध्यव्याप्यवत्तापरामर्शः, तद्विशिष्टत्वमित्यर्थः, वज्रव्रीहिसमा-साश्रयणाद्वैशिष्ट्यलाभः, 'व्याप्ति-पक्षधर्मते' इति साध्याभावव्याप्तिसम्बन्धित्व-पक्षसम्बन्धित्वे इत्यर्थः, साध्याभावव्याप्तिसम्बन्धित्वं साध्याभाव-व्याप्यत्वावच्छिन्नविषयतानिरूपितपक्षतावच्छेदकावच्छिन्नपक्षविषयत्वं, पक्षसम्बन्धित्वञ्च पक्षतावच्छेदकावच्छिन्नविषयतानिरूपितसाध्याभाव-

(१) समूहालम्बनदशायामिति ग० ।

स्थित्या प्रतिरुद्धकार्यलिङ्गत्वं तत्त्वं, बलञ्च व्याप्ति-पक्ष-

व्याप्यत्वावच्छिन्नविषयत्वं, अनयोर्विनिगमनाविरहेण वैकल्पिकसुपा-
दानं, अत्र साध्याभावव्याप्यवत्तापरामर्शनिष्ठाप्रामाण्यग्रहसत्त्वे सत्प्रति-
पक्षितव्यवहाराभावात् तद्वारणाय स्वरूपयोग्यान्तमुपस्थितिविशेषणं,
एवं साध्यव्याप्यवत्तापरामर्शनिष्ठाप्रामाण्यग्रहसत्त्वेऽपि सत्प्रतिपक्षित-
व्यवहाराभावात्तद्वारणाय समर्थान्तं परामर्शविशेषणं, अप्रामाण्य-
ज्ञानाक्रान्तपरामर्शश्च नानुमितिजननस्वरूपयोग्यः अगृहीताप्रामाण्य-
कपरामर्शत्वेन कारणत्वात्, गृहीताप्रामाण्यकपरामर्शस्यापि विशे-
षणज्ञानादिविधया अनुमितिजननस्वरूपयोग्यतया अगृहीताप्रामा-
ण्यकनिरुक्तबलवदुपस्थितित्वेन स्वरूपयोग्यतालाभाय बलवत्त्वमुपस्थि-
तिविशेषणं, उपस्थितित्वमपि न विशेषणीयं यथोक्तस्वरूपयोग्यतायाः
अन्यत्राभावात्^(१) साध्यव्याप्यवत्तापरामर्शविशिष्टत्वञ्च विलक्षणविषय-
तासम्बन्धेन^(२) विवक्षितं तेन साध्यादौ नातिप्रसङ्ग इति ध्येयं । न च
तथापि पक्षतावच्छेदकसामानाधिकरण्येन साध्य-तदभावव्याप्यवत्ता-
परामर्शयोः सम्बलनदशाद्यामपि सत्प्रतिपक्षितव्यवहारापत्तिर्दुर्वारा
इति वाच्यं । पक्षतावच्छेदकावच्छेदेनानुमित्यनुत्पत्त्या तत्रापि सत्प्र-
तिपक्षितव्यवहारस्येष्टत्वादिति भावः । अत्र यद्यप्यप्रामाण्यज्ञानं पृथक्

(१) अगृहीताप्रामाण्यकपरामर्शत्वरूपस्वरूपयोग्यत्वस्य इच्छादावभावा-
दित्यर्थः ।

(२) सनिरूपितपक्षतावच्छेदकावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपितहेतुतावच्छेद-
कावच्छिन्नप्रकारतासम्बन्धेनित्यर्थः ।

धर्मेते । विरोधिवोधकान्यगमकतौपयिकरूपसम्पत्ति-

प्रतिबन्धकं न तु परामर्शनिष्ठकारणतायां तदवच्छेदकं तदा अप्रा-
माण्यज्ञानास्कन्धितपरामर्शस्थानुमितिजननस्वरूपयोग्यत्वाद्भवहारा-
तिप्रसङ्गोदुर्वारः ।

किञ्च यद्यप्रामाण्यज्ञानानाक्रान्तसाध्य-तदभावोभयव्याप्यवत्तापरा-
मर्शसत्त्वेऽपि साध्याभावाभावत्वादिरूपेणैकत्र बाधावतारेण न सत्यति-
पक्षितव्यवहारः तदातिप्रसङ्गोदुर्वार इत्यस्वरसात् लक्षणान्तरमाह,
'विरोधिवोधकान्येति साध्याभावानुमितिविरोधी यो बोधः अप्रा-
माण्यग्रहादिस्तत्समवहितान्यत्वविशिष्टेत्यर्थः, एतच्च गमकतौपयिक-
रूपविशेषणं, विरोधिता च साध्यव्याप्यवत्तापरामर्शनिष्ठविरोधिता-
तिरिक्ता ग्राह्या तेन नासम्भवः, 'गमकतौपयिकरूपसम्पत्तिमत्तयेति
वैशिष्ट्यं तृतीयार्थः, 'ज्ञायमानेनेति भावसाधनं वर्तमानत्वमात्रं ह्यत्र-
त्ययार्थः, तथाच गमकतौपयिकरूपविशिष्टस्वसमानकालीनज्ञानेन
'प्रतिरुद्धः' विशिष्टः यः कार्यः यः साध्यानुमितिकरणे स्वरूपयोग्यः
साध्यव्याप्यवत्तापरामर्शस्तद्वत्त्वमित्यर्थः, करणे शक्तः कार्य इति
व्युत्पत्तेः^(१) गमकतौपयिकरूपञ्च पक्षतावच्छेदकावच्छिन्नपक्षविषयता-
निरूपितसाध्याभावव्याप्यत्वावच्छिन्नविषयित्वं, साध्यानुमितिस्वरूप-
योग्यत्वञ्च साध्यानुमिति विरोधिवोधासमवहितत्वं, विरोधिता च

(१) अत्र 'कार्यपदेन कारणताणाभाच्च' इत्यधिकः पाठः ग-चिह्नित-

पुस्तके वर्तते इति ।

मत्तया ज्ञायमानेन प्रतिरुद्धकार्यत्वं वा तत्त्वं,

साध्याभावव्याप्यवत्तापरामर्शनिष्ठविरोधिताव्यावृत्ता ग्राह्या तेन नासम्भवः । न चैवं साध्य-तदभावव्याप्यवत्तापरामर्शयोरेकत्र प्रामाण्य-निश्चये अपरत्र च तद्विरहेऽपि सत्प्रतिपक्षव्यवहारापत्तिः विरोधि-बोधासमवहितत्वस्येव प्रामाण्यग्रहासमवहितत्वस्यापि निवेशे साध्य-तदभावव्याप्यवत्तापरामर्शयोरुभयत्रैव प्रामाण्यग्रहदशायामपि सत्प्र-तिपक्षितव्यवहारानुपपत्तिरिति वाच्यं । तादृशपरामर्शयोरुभयत्र प्रामाण्यग्रह इव एकत्र प्रामाण्यग्रहे अपरत्र च तदग्रहेऽपि सत्प्रति-पक्षितव्यवहारस्येष्टत्वात् । अथैवं “समानबलौ हि सत्प्रतिपक्षौ न तु हीनबलाधिकबलौ^(१) । न हि भवति तरक्षुः सत्प्रतिपक्षो हरिणशावकस्य” ॥ इति सत्प्रतिपक्षस्थलीयटीकाकारग्रन्थविरोधः^(२) ‘तरक्षुः’ मृगादनापरनामा क्षुद्रव्याघ्रविशेषः, तथाच कथमत्रेष्टा-पत्तिरिति चेत्, न, प्रामाण्यग्रहस्य बलत्वाभावात् सत्यगृहीताप्रा-माण्यकविरोधिपरामर्शं गृहीतप्रामाण्यकादपि तद्व्याप्यवत्तापराम-र्शादनुमित्यनुत्पादात् परन्तु अप्रामाण्यग्रहाभाव एव बलं एकत्रा-प्रामाण्यग्रहे यत्र न तद्ग्रहः तस्मादनुमित्युत्पादात् । न चैवं साध्य-तदभावव्याप्यवत्तापरामर्शयोरुभयत्रैवाप्रामाण्यग्रहे सत्प्रतिपक्षता न स्यात् अप्रामाण्यग्रहाभावस्य बलतया बलवत्त्वाभावात् इति वाच्यं । द्रष्टव्यमिति भावः ।

(१) न तत्तमहीनबलाविति ख० ।

(२) टीकाविरोध इति ख० ।

स्थापनाया व्याप्ति-पक्षधर्मत्वमुभयवादिसिद्धं वादिना
तदभावानुपन्यासात्, द्वितीयस्य तु तच्चमन्यतरासिद्ध-
मिति प्रथमेन द्वितीयं बाधितमिति स्वार्थानुमान-
एवायं दोष इत्येके । तन्न । एकदा निरन्तरयोर्वोभयो-

विवादातिरिक्तस्थल एव सत्प्रतिपक्षत्वं सम्भवति,^(१) न तु विवादस्थल-
इति केचिद्वदन्ति तन्मतमुपन्यस्य दूषयति, 'स्थापनाया इति,
'स्थापनायाः' साधनस्येत्यर्थः, 'उभयवादिसिद्धं' उभयवादिसिद्धत्वेन
निश्चितं, मध्यस्थस्येति शेषः । 'वादिना' प्रतिस्थापनावादिना, 'तद-
भावानुपन्यासादिति व्याप्ति-पक्षधर्मत्वाभावमनुपन्यस्य सत्प्रतिपक्षोप-
न्यासादित्यर्थः । 'द्वितीयस्य तु' प्रतिस्थापनासाधनस्य तु, 'अन्य-
तरासिद्धमिति स्थापनावाद्यनुमतत्वेनानिश्चितमित्यर्थः । तेन तत्र
तदभावं विहाय दूषणान्तरानुपन्यासादिति भावः । 'प्रथमेन'
प्रथमसाधने व्याप्ति-पक्षधर्मतयोरुभयवादिसिद्धत्वनिश्चयेन स्थापना-
साधने व्याप्ति-पक्षधर्मतयोरुभयवादिसिद्धत्वनिश्चयेनेति यावत्,
'द्वितीयं' प्रतिस्थापनासाधनं, 'बाधितं' व्याप्ति-पक्षधर्मतान्यतरा-
भाववन्तया निश्चितं, 'स्वार्थानुमान एव' विवादातिरिक्तस्थल एव,
'अयं दोषः' सत्प्रतिपक्षरूपो दोषः, सम्भवतीति शेषः । 'निरन्तर-
योरिति सप्तमी, क्रमिकक्षणदयोरित्यर्थः, 'व्याप्ति-पक्षधर्मतयेति
साध्य-तदभावनिरूपितव्याप्ति-पक्षधर्मतयेत्यर्थः । 'निरन्तयोर्वेति-

(१) सत्प्रतिपक्षः सम्भवतीति ख०, ग० ।

व्याप्ति-पक्षधर्मतया ज्ञातयोः प्रतिपक्षत्वात् युगपदु-
पस्थितेश्च कारणवशेन स्वपरसाधारणत्वात् ।

अथ वस्तुनोऽऽद्यात्मकत्वात्^(१) व्याप्ति-पक्षधर्मता-
भङ्ग एकत्रावश्यक इति स एव दोषः । न च

पक्षसु प्रथमपरामर्शपूर्वं सिद्धादिसत्त्वे बोध्यः, अन्यथा द्वितीय-
परामर्शोत्पादसमये पूर्वणानुमितिजनने बाधकाभावेन नैरन्तर्या-
सम्भवात्, 'युगपदिति, क्रमेण वेति शेषः, 'कारणवशेन' सामग्री-
वशेन, 'स्वपरेति विवादस्थल-तदतिरिक्तस्थलसाधारणत्वादित्यर्थः ।
न चोक्तरीत्या विवादस्थले द्वितीयहेतौ व्याप्ति-पक्षधर्मतान्यतरा-
भावनिश्चयरूपस्य प्रतिबन्धकस्य सत्त्वात् सामर्थ्येव न सम्भवतीति
वाच्यं । सर्वत्र तन्निश्चये मानाभावात् । न च स्थापनाहेतौ व्याप्ति-
पक्षधर्मतयोरुभयवासिद्धत्वनिश्चयस्य सत्त्वात् सर्वत्र द्वितीयहेतौ
तन्निश्चय आवश्यक इति वाच्यं । एकनिष्ठव्याप्ति-पक्षधर्मतयोरु-
भयवासिद्धत्वनिश्चयस्याहत्यापरत्र^(२) तदन्यतराभावनिश्चायकत्वा-
भावात्^(३) तन्निश्चयस्यापि सार्वत्रिकत्वे प्रमाणाभावाच्च । न च तद-
भावानुपन्यासादेव सर्वत्र तन्निश्चयस्यावश्यकत्वमिति वाच्यं । अप्रति-
षेधमात्रस्याभ्युपगमासाधकत्वात् । न हि सम्भवन्तः सर्व एव दोषाः

(१) वस्तुनोऽऽद्यात्मकत्वेनेति क० ।

(२) हेतावपरत्रेति ख० ।

(३) तदन्यतराभावानिश्चायकत्वादिति ख०, ग० ।

तयोर्विरोधभङ्गेऽप्युपपत्तेर्न व्याख्यादिभङ्गनियम इति वाच्यम् । अविरोधेऽप्यनुमित्यविरोधात् विरोधे तु व्याख्यादिभङ्गनियमादिति चेत्, न, प्रतिरुद्धत्वज्ञानानन्तरं व्याख्यादिभङ्गज्ञानमित्युपजीव्यत्वेन

समुद्भावाः, आभिक्यप्रसङ्गादिति भावः । 'अद्यात्मकत्वादिति साध्य-तदभावोभयानाश्रयत्वादित्यर्थः, 'व्याप्ति-पक्षधर्मताभङ्गः' तदन्यतरभङ्गग्रहः, 'एकत्र' स्थापनाहेतौ,^(१) 'स एव दोष इति, एतच्च व्याप्ति-पक्षधर्मत्वाभावज्ञानस्य साक्षादनुमितिप्रतिबन्धकत्वमभ्युपेत्य, 'तयोः' साध्य-तदभावयोः, 'विरोधभङ्गेऽपि' विरोधित्वाग्रहदशायामपि, 'उपपत्तेः' साध्याभावव्याप्यवत्तानिश्चयस्य सम्भवात्, 'न व्याख्यादिभङ्गनियमः' न व्याख्यादिभङ्गग्रहनियमः, 'अविरोधे' विरोधित्वाग्रहे, 'अनुमित्यविरोधादिति, साध्य-तदभावयोर्विरोधित्वज्ञानं विना साध्याभावव्याप्यवत्ताज्ञानं न प्रतिबन्धकमित्यभिमानः । 'विरोधे' विरोधित्वग्रहे, 'व्याख्यादिभङ्गे'ति तद्ग्रहेत्यर्थः । 'प्रतिरुद्धत्वज्ञानानन्तरमिति साध्य-तदभावव्याप्यवत्तापरामर्शानन्तरमित्यर्थः, 'व्यभिचारवत्' तज्ज्ञानवत् । न चोपजीव्यत्वेऽपि न साक्षात्प्रतिबन्धकमिति वाच्यं । तथा सति व्याप्यभावज्ञानोत्पत्तिकाले अनुमित्यापत्तेः वक्तव्याप्यधूमवान् वज्र्यभावव्याप्यवांश्च इति परामर्शात्

(१) स्थापनाहेतौ इत्यनन्तरं प्रतिस्थापनायां वा इत्यधिकः पाठः, ख चिह्नितपुस्तके वर्तते ।

व्यभिचारवदस्यापि दोषत्वात् । ननु साध्य-तद-
भावयोरिव तद्व्याप्यत्वेनावधारितयोर्विरोधादेकत्र न
निश्चयः किन्तु संशयः, निर्णये वान्यतरव्याप्ति-
संशय इति व्याप्यत्वासिद्धिरिति चेत्, न, उभयोरे-

साध्याभाव साध्ययोर्युगपदनुमित्यापत्तेश्चेति भावः । 'साध्य-तदभाव-
योरिवेति 'न निश्चयः' इत्यत्र दृष्टान्तः, 'विरोधात्' परस्परभाव-
व्याप्यत्वात् । ननु साध्यव्याप्य-तदभावव्याप्ययोर्वस्तुगत्या परस्पर-
भावव्याप्यत्वरूपविरोधसत्त्वेऽपि तत्प्रकारेण ज्ञानाभावादेकत्र निश्चयो
न विरुध्यत इत्यस्वरसादाह, 'निर्णये वेति, तदनन्तरमिति शेषः,
'अन्यतरेति उभयेत्यर्थः, 'व्याप्यत्वासिद्धिः' व्याप्यत्वनिश्चयाभावः,
तथाच कारणाभावादेवानुमित्यनुत्पादसम्भवान्नासौ प्रतिबन्धक-
इति भावः । पूर्वं व्याप्यभावज्ञानेनान्यथासिद्धेर्निराकरणेऽपि
व्याप्तिनिश्चयाभावेनान्यथासिद्धेरनिराकरणान्न पौनरुक्त्यं । 'उभयोः'
साध्यव्याप्य-तदभावव्याप्ययोः, 'अन्यतरव्याप्तिसंशयः' उभयत्र व्याप्ति-
संशयः, 'अस्य भिन्नत्वादिति अस्य पृथक्प्रतिबन्धकत्वादित्यर्थः ।
नन्वस्योपजीव्यत्वेऽपि पृथक्प्रतिबन्धकत्वे किं मानमित्यत-
आह, 'दूषकताबीजन्विति साक्षात्प्रतिबन्धकताकल्पकन्वित्यर्थः ।
'विरोधिसामग्रीप्रतिबन्धेन' विरोधिनिर्णयासाधारणकारणविरो-
धिपरामर्शविशिष्टेन परामर्शान्तरेण, 'निर्णयाजनकत्वं' अनुभव-
सिद्धं निर्णयाजननं अनुभवसिद्धोऽनुमित्यनुत्पाद इति यावत्,

कच निश्चयानन्तरमन्यतरव्याप्तिसंशयद्वत्युपजीव्यत्वे-
नास्य भिन्नत्वात् दूषकतावीजन्तु समबलविरोधि-
सामग्रीप्रतिबन्धेन निर्णयाजनकत्वं, न तु व्याप्ति-
पक्षधर्मताविरह एव सङ्गेनोरपि सत्यतिपक्षत्वात्,
एकत्र व्याप्तिभङ्गज्ञानद्वारा वास्य दूषकत्वं, चक्षुरा-
देश्च नानुमानेन प्रतिरोधः तदुपस्थितावपि फल-

तादृशपरामर्शस्यैव व्याप्तिनिश्चयरूपतया व्याप्तिनिश्चयाभावेनान्य-
थासिद्ध्यसम्भवादिति भावः । ननु विरोधिपरामर्शेन ज्ञायमानो
व्याप्ति-पक्षधर्मताविरह एव हेतुनिष्ठतया तत्रानुमित्यनुत्पाद-
प्रयोजक इत्यत-आह, 'न त्विति न तु विरोधिपरामर्शेन ज्ञाय-
मानोव्याप्ति-पक्षधर्मताविरह एवेत्यर्थः, तत्रानुमित्यनुत्पादप्रयोजक-
इति शेषः, स्वरूपसद्वाप्ति-पक्षधर्मताविरहस्यानुमित्यनुत्पादप्रयोज-
कत्वे काप्यव्याप्यापक्षधर्मलिङ्गाद्याप्यादिभ्रमेणानुमितिर्न स्यात् अतो
ज्ञायमानान्तं विरहविशेषणं, 'सत्यतिपक्षत्वादिति विरोधिपरा-
मर्शसत्त्वदशायामनुमित्यजनकत्वादित्यर्थः, 'एकत्र' परामर्शान्तर-
विषये हेतौ, 'अस्य' विरोधिपरामर्शस्य, 'दूषकत्वं' प्रतिबन्ध-
कत्वं, वाकारोऽनास्थायां परमुखनिरीक्षकत्वेन हेत्वाभासत्वायोगात्
व्याप्यभावज्ञानस्य साक्षादनुमितिप्रतिबन्धकत्वे मानाभावाच्चेति
ध्येयम् । ननु विरोधिपरामर्शा यदि विपरीतनिर्णयविरोधौ कथं
तर्हि विशेषदर्शने सत्यपि दोषवशाच्चक्षुरादिना पीतत्वादिभ्रम-
इत्यत-आह, 'चक्षुरादेश्चेति, 'चस्त्वर्थः, 'नानुमानेन' न विशेष-

दर्शनेन तस्याधिकबलत्वात् । नन्वेवं वादिवाक्य-

दर्शनेन, 'प्रतिरोधः' कार्यप्रतिबन्धः, 'तदुपस्थितावपि' तत्सत्त्वेऽपि, 'फलदर्शनेन' चक्षुरादेः फलदर्शनेन, 'तस्य' चक्षुरादेः फलस्य, 'अधिकबलत्वादिति विशेषदर्शनाप्रतिबध्यत्वात्, एतच्च प्रत्यक्षातिरिक्तज्ञानमेव तदभावव्याप्यवृत्तानिर्णयस्य प्रतिबध्यमिति जरत्तरमतानुसारेण । यद्वा 'प्रतिरोधः' दोषाधीनकार्यप्रतिरोधः, 'तदुपस्थितावपि' सत्सत्त्वेऽपि, 'फलदर्शनेन' दोषवशाच्चक्षुरादेः फलदर्शनेन, 'तस्य' दोषवशाच्चक्षुरादेः फलस्य, 'अधिकबलत्वात्' विशेषदर्शनेनाप्रतिबध्यत्वात्, तथाच दोषविशेषाजन्यज्ञानमेव विशेषदर्शनस्य प्रतिबध्यमिति भावः । यद्वा ननु विरोधिपरामर्शा यदि विपरीतनिर्णयविरोधी कथन्तर्हि आनुमानिकविशेषदर्शने सत्यपि चक्षुरादिना लौकिकोऽनुभव इत्यत आह, 'चक्षुरादेश्चेति, 'नानुमानेन' नानुमानिकविशेषदर्शनेन, 'प्रतिरोधः' लौकिकानुभवात्मककार्यप्रतिबन्धः, 'तदुपस्थितावपि' तत्सत्त्वेऽपि, 'फलदर्शनेन' लौकिकानुभवात्मकस्य तत्फलस्य दर्शनेन, 'तस्य' तादृशस्य फलस्य, 'अधिकबलत्वात्' आनुमानिकविशेषदर्शनाप्रतिबध्यत्वात्, तथाच लौकिकसन्निकर्षाजन्यज्ञानमेवानुमित्यादिरूपविशेषदर्शनस्य प्रतिबध्यं, लौकिकसन्निकर्षजन्यज्ञानन्तु समानेन्द्रियजन्यलौकिकविशेषदर्शनस्यैव प्रतिबध्यमिति भावः । 'नन्वेवमिति, 'एवं' विरोधिपरामर्शा यदि विपरीतनिश्चयविरोधी तदा, 'वादिवाक्यमात्रस्य'

मात्रस्य प्रतिरोधकत्वेनानुमानमात्रोच्छेदः । न च विरोधिवाक्यस्य न्यूनबलत्वे लक्षणायोगः समबलत्वे

वादिनोः प्रतिज्ञावाक्यमात्रज्ञानस्य, 'मात्रपदं साकल्यार्थकं, 'प्रति-
रोधकत्वेन' स्व-स्वसाध्यविपरीतज्ञानप्रतिबन्धकत्वेन, 'अनुमानमात्रो-
च्छेद इति विवादस्थले स्थापनासाध्य-प्रतिस्थापनासाध्ययोरुभयो-
रेवानुमित्युच्छेद इत्यर्थः, विरोधिपरामर्शनिष्ठप्रतिबन्धकतावच्छेद-
कस्य विरोधिनिर्णयसामग्रीत्वस्य विरोधिविषयकशाब्दनिर्णयजनके
प्रतिज्ञावाक्यज्ञानेऽपि सत्त्वादिति भावः ।

ननु विवादस्थले वादिनोः प्रतिज्ञावाक्यज्ञानात् स्थापनासाध्य-
प्रतिस्थापनासाध्ययोरुभयोरेवानुमित्युच्छेदः कुत्रापाद्यते किं यत्र
स्थापनाप्रतिज्ञावाक्यज्ञानं स्वसाध्यशाब्दधीजनकसकलकारणसम-
वहितं प्रतिस्थापनाप्रतिज्ञावाक्यज्ञानञ्च न तत्समवहितं तत्र, किं
वा द्वयमेव यत्र स्वसाध्यशाब्दधीजनकसकलकारणसमवहितं तत्र,
अथवा यत्र स्थापनाप्रतिज्ञावाक्यज्ञानं न स्वसाध्यशाब्दधीजनकसकल-
कारणसमवहितं, प्रतिस्थापनाप्रतिज्ञावाक्यज्ञानञ्च तत्समवहितं तत्र,
नाद्य इत्याह, 'विरोधिवाक्यस्येति प्रतिस्थापनाप्रतिज्ञावाक्यज्ञानस्ये-
त्यर्थः, 'न्यूनबलत्वे' स्वसाध्यशाब्दधीजनकसकलकारणसमवहितत्वे,
'लक्षणायोगः' विरोधिनिश्चयसामग्रीत्वस्य प्रतिबन्धकतावच्छेदक-
स्यायोगः । न द्वितीय इत्याह, 'समबलत्व इति स्थापनाप्रतिज्ञा-
वाक्यज्ञान-प्रतिस्थापनाप्रतिज्ञावाक्यज्ञानयोरुभयोरेव स्वसाध्यशा-

प्रतिरोध एव अधिकबलत्वे नरशिरःशौचानुमान-
वत्तेन बाध एवेति वाच्यम् । अगृह्यमाणविशेषदशायां
प्रतिवादिवाक्येन सर्वानुमानप्रतिरोधापत्तेः, अनु-

ब्धधीजनकसकलकारणसमवहितत्वे इत्यर्थः, 'प्रतिरोध एव' स्थाप-
नासाध्य-प्रतिस्थापनासाध्ययोरुभयोरेवानुमितिप्रतिरोधः सर्वसिद्ध
एव, तथाचेष्टापत्तिरेवेति भावः । न तृतीय इत्याह, 'अधिकबलत्व-
इति यदि स्थापनाप्रतिज्ञावाक्यज्ञानं न स्वसाध्यशाब्दधीजनकस-
कलकारणसमवहितं, प्रतिस्थापनाप्रतिज्ञावाक्यज्ञानञ्च तत्समवहितं
तदेत्यर्थः, 'नरशिरःशौचेति षष्ठ्यन्तादितिः, यथा बलवत्तरागमप्रति-
रोधेन नरशिरःकपालं शुचि प्राण्यङ्गत्वादित्यनुमानफलबाध एव न
त्वनुमानेन श्रुतिफलबाधस्तथेत्यर्थः, 'तेन' प्रतिस्थापनाप्रतिज्ञा-
वाक्यज्ञानेन, 'बाध एव' स्थापनानुमानफलबाधएव न तु
प्रतिस्थापनानुमानफलबाधः, तथाचोभयोनानुमित्युच्छेद इति
भावः । यत्र स्थापनाप्रतिज्ञावाक्यज्ञानं प्रतिस्थापनाप्रतिज्ञावाक्य-
ज्ञानञ्च द्वयमेव स्वसाध्यशाब्दधीजनकसकलकारणसमवहितं किन्तु
स्थापनासाध्यव्याप्यवत्ताज्ञानमेव वर्तते न तु प्रतिस्थापनासाध्यव्याप्य-
वत्ताज्ञानं तदानौमपि प्रतिस्थापनासाध्यानुमितेरिव स्थापनासाध्या-
नुमितेरपि प्रतिरोधापत्तिरित्यभिप्रायेण समाधत्ते, 'अगृह्यमाणेति
प्रतिस्थापनासाध्यव्याप्यवत्ताज्ञानविरहदशायामपीत्यर्थः, 'प्रतिवादि-
वाक्येन' स्वसाध्यशाब्दधीजनकसकलकारणसमवहितेन प्रतिस्थापना-
प्रतिज्ञावाक्यज्ञानेन, 'सर्वानुमानेति स्वसाध्यानुमितिसकलकारणसम-

मानात् पूर्वं पश्चाद्वा अनुमानान्तरेण तस्य न्यूना-
धिकबलत्वानिरूपणात् निरूपणे वानुमानवैयर्थ्यात्^(१)
मैवम् । विरोधिवाक्यमात्रस्य समबलत्वाभावात्, उक्तं

वहितस्य स्थापनानुमानस्येर्थः, सर्वैः सहितमनुमानं सर्वानुमानमिति
व्युत्पत्तेः, 'सर्वपदञ्च साध्यानुमितिजनकसर्वपरं, 'पूर्वानुमानप्रति-
रोधापत्तेः' इति पाठस्तु न साधुः । 'प्रतिरोधापत्तेः' स्वसाध्यानु-
मितिजननप्रतिरोधापत्तेः । न च तत्र साध्यविरोधिनिर्णयसाम-
ग्येव नास्ति साध्यव्याप्यवत्तापरामर्शाभावस्यापि तत्सामर्थ्यन्तर्गतत्वा-
दिति वाच्यं । साध्यविरोधिनिर्णयसामग्रीत्वेन प्रतिबन्धकतायां
साध्यव्याप्यवत्तापरामर्शाभावेतरकारणकलापस्यैव सामग्रीघटकत्वात्
अन्यथा सत्यतिपक्षद्वयसम्बलनदशायां अनुमित्यापत्तेरिति भावः ।
ननु तत्र प्रतिस्थापनाप्रतिज्ञावाक्यज्ञाने न्यूनबलत्वज्ञानसत्त्वात् स्थाप-
नासाध्यव्याप्यवत्तानिश्चये अधिकबलत्वज्ञानसत्त्वाद्वा स्थापनासाध्यानु-
मितिर्नानुपपन्ना न्यूनबलत्वं भ्रमजनकत्वं, अधिकबलत्वं प्रमाजन-
कत्वमित्यत आह, 'अनुमानादिति स्थापनानुमानादित्यर्थः, 'तस्य'
स्थापनासाध्यानुमितिमतः पुरुषस्य, 'अनुमानवैयर्थ्यादिति वैयर्थ्य-
सम्भवात् स्थापनासाध्यानुमितेरसम्भवादित्यर्थः, न्यूनबलत्वाधिकब-
लत्वावगमस्य विषयबाध-तत्सत्त्वावगमाधीनत्वेन सिद्धसाधनादिति
भावः । 'विरोधिवाक्यमात्रस्य' तज्ज्ञानमात्रस्य, 'व्याप्ति-पक्षधर्मतेः'

हि व्याप्ति-पक्षधर्मते बलमिति । प्रत्यक्षादेर्लिङ्गभावे-
नैवानुमानप्रतिरोधः कथायां तदुपन्यासानर्हत्वात् ।

यत्तु विरोधिव्याप्यद्वयस्यासाधारणत्वात् संशय-
जनकत्वं दूषकताबीजमिति । तन्न । एकैकं हि सत्प्रति-
पक्षं न तु विशिष्टं एकैकञ्च न संशयकमित्यनुमिति-

इति साध्याभावव्याप्यत्वावच्छिन्नविषयतानिरूपितपक्षतावच्छेदकाव-
च्छिन्नविषयतावत्त्व-पक्षतावच्छेदकावच्छिन्नविषयतानिरूपितसाध्या-
भावव्याप्यत्वावच्छिन्नविषयतावत्त्व इत्यर्थः, तथाच तादृशविषयता-
शालिनिश्चयत्वेनैव विरोधिपरामर्शस्य प्रतिबन्धकत्वं न तु साध्य-
विरोधिनिश्चयसामग्रीत्वेनेति भावः । ननु कथं तर्हि विपरीतप्रमा-
फलकं चक्षुरादि प्रतिबन्धकतया कथायामुपन्यस्यत इत्यत आह,
'प्रत्यक्षादेरिति चक्षुरादेरित्यर्थः, 'लिङ्गभावेनैव' लिङ्गताज्ञानेनैव
साध्याभावनिरूपितव्याप्ति-पक्षधर्मताज्ञानेनैवेति यावत्, 'एवकारात्
स्वरूपसच्चक्षुरादिव्यवच्छेदः, अत्र हेतुः 'कथायामिति स्वरूपसच्चक्षु-
रादेर्विरोधिने इत्यादिः ।

'विरोधिव्याप्यद्वयस्येति मिलितस्येति शेषः, 'असाधारणत्वात्'
सपक्ष-विपक्षव्यावृत्तत्वात्, 'दूषकताबीजमिति सत्प्रतिपक्षस्थलेऽनु-
मित्यनुत्पादबीजमित्यर्थः, संशयसामग्र्या निश्चयप्रतिबन्धकत्वादिति
भावः । 'सत्प्रतिपक्षमिति प्रतिबन्धकमित्यर्थः, 'न तु विशिष्टमिति
न तु मिलितं हेतुद्वयमित्यर्थः, 'एकैकञ्चेति, असाधारणत्वाभावा-

द्वयस्य प्रामाण्यग्राहकाप्रवृत्तिर्दूषकतावीजमित्यन्ये,
तन्न, परस्परप्रतिबन्धेनानुमितेरेवानुत्पत्तेः ।

रत्नकोषकारस्तु सत्प्रतिपक्षाभ्यां प्रत्येकं स्वसाध्यानु-
मितिः संशयरूपा जन्यते विरुद्धोभयज्ञानसामग्र्याः

दिति भावः । 'प्रामाण्यग्राहकाप्रवृत्तिरिति प्रामाण्यग्रहानुत्पत्ति-
रित्यर्थः, (१) 'दूषकतावीजं' सत्प्रतिपक्षस्य दोषव्यवहारविषयतावीजं ।
'परस्यरेति, विरोधिव्याप्यवत्तानिश्चयस्यानुमित्यप्रतिबन्धकत्वे तद्वि-
षयस्य हेत्वाभासत्वायोगादिति भावः ।

ननु तद्विशिष्टबुद्धिं प्रति तदभावनिश्चयस्य तदभावविशिष्टबुद्धिं
प्रति च तद्वत्त्वनिश्चयस्य कार्यसहभावेन प्रतिबन्धकत्वादेकदा कथं
साध्य-तदभावयोरनुमितिः (२) इत्यत उक्तं 'संशयरूपेति । ननु संश-
यत्वस्य प्रत्यक्षत्वव्याप्यतया विरुद्धोभयकोटिकप्रत्यक्षजनकसामर्थ्येव संश-
यजनिका अनुमितिसामग्री तु न तथेति कथं संशय इत्यत आह,
'विरुद्धोभयेति विरुद्धोभयकोटिकज्ञानसामान्यसामग्र्या एवेत्यर्थः,
विशेष्यतावच्छेदकावच्छेदेन तत्तद्विरुद्धान्यतरकोटिविषयक-समान-
विशेष्यतावच्छेदकतत्तद्विरुद्धोभयकोटिकज्ञानमेव संशयो न तु
तादृशप्रत्यक्षमेव, अत एव विप्रतिपत्तिवाक्यादपि शाब्दसंशय इति

(१) प्रामाण्यग्राहकानुत्पत्तिरित्यर्थ इति क० ।

(२) तथाच विरोधनिश्चयाभावस्य कार्यकालवृत्तित्वेन कारणत्वात्
साध्य-तदभावानुमितिप्राक्क्षणे विरोधनिश्चयाभावस्य सत्त्वेऽपि कार्यकाले
तदसत्त्वान्नानुमितिसम्भव इति भावः ।

संशयजनकत्वात् संशयद्वारा अस्य दूषकत्वं । न च संशयरूपा नानुमितिः बाधस्येव विरोध्युपस्थितेरनुमितिसामग्रीविघटकत्वेनावधारणात् अन्यथा बाधे-

भावः । ननु सत्प्रतिपक्षस्थलेऽप्यनुमित्युत्पादे तत्र कथं दोषव्यवहार-
इत्यत-आह, 'संशयद्वारेति संशयजनकत्वेन निर्णयविरोधितये-
त्यर्थः, (१) 'अस्य' सत्प्रतिपक्षस्थ, 'दूषकत्वं' दोषव्यवहारविषयत्वं । न
चैवं पक्षतावच्छेदकसामानाधिकरण्येन साध्य-साध्याभावव्याप्यवत्ता-
परामर्शरूपयोः सत्प्रतिपक्षयोः दोषव्यवहारो न स्यात् पक्षतावच्छे-
दकावच्छेदेनानुमितिं प्रति पक्षतावच्छेदकावच्छेदेन हेतुमत्तापरा-
मर्शस्यैव हेतुतया तयोः संशयजनकत्वासम्भवात् विग्रेह्यतावच्छेदका-
वच्छेदेनान्यतरकोटिविषयकज्ञानस्यैव संशयत्वादिति वाच्यं । येन
सम्बन्धेन हेतोर्याप्यता गृहीता तेनैव सम्बन्धेन हेतुमत्तापरामर्श-
स्यानुमितिहेतुतानियमात् पक्षतावच्छेदकसामानाधिकरण्येनानुमि-
तिमिव तदवच्छेदेनानुमितिं प्रत्यपि पक्षतावच्छेदकसामानाधिक-
रण्येन हेतुमत्तापरामर्श एव हेतुः यत्र च पक्षतावच्छेदकावच्छेदेना-
नुमित्युत्पत्तिप्रतिबन्धकबाधादेर्नावतारः तत्र नियमतोऽनुमितेर्द्वि-
विधविषयत्वमिष्टमेव इत्यभिप्रायात् । 'बाधस्येवेति साध्याभावनि-
श्चयस्येवेत्यर्थः, 'विरोध्युपस्थितेरिति साध्याभावव्याप्यवत्त्वोपस्थितेरि-
त्यर्थः, 'अनुमितिसामग्रीविघटकत्वेन' अनुमित्यनुत्पादप्रयोजकत्वेने-
त्यर्थः, 'अन्यथेति तदुपस्थितेरनुमित्यनुत्पादाप्रयोजकत्वे इत्यर्थः,

ऽप्यनुमित्यापत्तेरिति वाच्यम् । अधिकबलतया बाधेन प्रतिबन्धात् तुल्यबलत्वादनुमितिः स्यादेव सामग्री-सत्त्वात् । साध्याभावबोधस्य च तत्र प्रतिबन्धकत्वं न तु तद्वोधकस्य चक्षुरादेः । प्रत्येकं निर्णायकत्वेनावधारितात् कथं संशय इति चेत्, न, प्रत्येकाद्वि ज्ञानमुत्पद्यमानमर्थात् संशयो न तु प्रत्येकं संशयजनकत्वमिति

‘बाधेऽपीति, साध्यविरोधिविषयकनिश्चयत्वेनैव बाधस्यानुमितिप्रतिबन्धकत्वात् साध्याभावव्याप्यवत्त्वोपस्थितेरनुमित्यनुत्पादाप्रयोजकत्वे च व्यभिचारेण तेन रूपेण प्रतिबन्धकत्वासम्भवादिति भावः । ‘अधिकबलतयेति पक्षतावच्छेदकावच्छिन्नविशेष्यकसाध्याभावप्रकारकनिश्चयतयेत्यर्थः, ‘बाधेन प्रतिबन्धादिति बाधनिश्चयस्यानुमितिप्रतिबन्धकत्वादित्यर्थः, ‘तुल्यबलादिति तादृशसाध्याभावप्रकारकनिश्चयाद्यभावविशिष्टात् साध्याभावव्याप्यवत्तापरामर्शादित्यर्थः, उत्तरत्वं पञ्चम्यर्थः । ननु चक्षुरादिना बाधोत्पत्तिकाले विशिष्टबुद्ध्यनुदयाद्बाधसामग्रीत्वेन चक्षुरादीनामपि प्रतिबन्धकत्वं वाच्यं तच्च विशेषदर्शनतया तत्राप्यविशिष्टमित्यत आह, ‘साध्याभावेति, ‘तत्र’ साध्यविशिष्टबुद्धौ, तदभावस्य कार्यसहभावेन हेतुतया बाधोत्पत्तिकाले न तदुत्पत्तिरिति भावः । शङ्कते, ‘प्रत्येकं निर्णायकत्वेनेति प्रत्येकविषयकानुमितित्वावच्छिन्नं प्रति जनकेत्वेनेत्यर्थः, ‘कथं संशय इति संशयत्वस्य कार्यतानवच्छेदकत्वादिति भावः ।

मेने, तन्न । साध्य-तदभावयोर्विरोधेन यथैकज्ञानस्या-
परधीप्रतिबन्धकत्वं तथा साध्याभावव्याप्यवत्त्वस्यापि
साध्यविरोधित्वात्तदुद्धेरपि साध्यधीप्रतिबन्धकत्वात्
विरोधिज्ञानत्वस्य प्रतिबन्धकत्वे तन्त्रत्वात् ।

निबन्धे तु हेत्वाभासानां फलद्वारकं लक्षणं, अ-

‘प्रत्येकाद्धीति प्रत्येककोटिव्याप्यवत्ताविषयकज्ञानाद्धीत्यर्थः, ‘ज्ञानं’
प्रत्येककोटिविषयकज्ञानं, ‘अर्थात्’ कोटिद्वयविशिष्टबुद्धिसामग्री-
समाजात्, ‘न तु प्रत्येकं संशयजनकत्वमिति न तु प्रत्येककोटि-
विषयकज्ञानस्य संशयत्वावच्छिन्नं प्रति जनकत्वं, संशयत्वस्य निश्चय-
त्वस्येवार्थसमाजग्रस्तत्वेन कार्यतानवच्छेदकत्वादित्यर्थः, तथाच संश-
यत्वं यस्य कार्यतावच्छेदकं तस्मादेव संशयोत्पत्त्यभ्युपगमे प्रत्येक-
कोट्युपस्थितितोऽपि संशयो न स्यादिति भावः । बाधस्य पक्षविशे-
ष्यकसाध्याभावनिश्चयत्वेन न प्रतिबन्धकत्वं तादृशसाध्यवदन्योन्याभाव-
निश्चयस्याप्रतिबन्धकत्वापत्तेः तस्य पृथक्प्रतिबन्धकत्वापत्तेर्वा किन्तु
साध्यविरोधिविषयकनिश्चयत्वेनैव प्रतिबन्धकत्वं तच्च पक्षविशे-
ष्यकसाध्याभावव्याप्यवत्तानिश्चयेऽप्यविशिष्टमित्यभिमानेन दूषयति,
‘साध्य-तदभावयोरिति, ‘प्रतिबन्धकत्वे तन्त्रत्वादिति प्रतिबन्धक-
तायामवच्छेदकत्वादित्यर्थः । एतच्चापाततः लाघवादिति शेषः ।

नव्यास्तु सत्यपि तदभावव्याप्यवत्तानिश्चये तद्गोचराप्रामाण्य-
ज्ञानात् तदुत्तरं बुभुत्सातो वा तदुपनीतभानस्योदयात् न साक्षा-

नैकान्तिकानामन्वयाद्यतिरेकाद्वा कोऽप्युपस्थापकतया
संशयः फलं, विरुद्धस्य साध्यविपरीतस्य ज्ञानं, अपक्ष-

त्कारत्वानिरूपिततद्वत्ताबुद्धिमात्रं प्रति तदभावव्याप्यवत्तानिश्चयत्वेन
प्रतिबन्धकत्वं किन्तु तादृशनिश्चयवदन्यतद्वत्ताबुद्धिर्वावच्छिन्नं^(१) प्रत्येव
तथाविधनिश्चयत्वेन विरोधित्वं वाच्यं तथाच वक्तेः संशयाकारानु-
मितिः पर्वतत्वावच्छेदेन वज्रभावव्याप्यवत्तानिश्चयवतीति न तस्यां
तादृशनिश्चयः प्रतिबन्धकः, निश्चयात्मिका पर्वतत्वावच्छेदेन वज्र-
नुमितिसु पर्वतत्वावच्छिन्नधर्मिकवज्रभावव्याप्यवत्तानिश्चयवदन्येति
तस्यामवश्यं^(२) तथाविधविरोधिनिश्चयः प्रतिबन्धक इति तद्दृष्ट्यां
तस्या नोत्पत्तिरिति प्राज्ञः ।

‘अन्वयात्’ साध्य-तदभावयोरन्वयसहचारात्, ‘व्यतिरेकादिति
उक्तान्वयस्य व्यतिरेकादित्यर्थः, ‘संशयः फलमिति, तथाच किञ्चि-
द्धर्मिकयद्रूपावच्छिन्नवत्तानिश्चयत्वेन यादृशसाध्यसंशयं प्रति जन-
कत्वं तद्रूपविशिष्टत्वमेव तत्साध्यकानैकान्तिकत्वमिति भावः । ‘साध्य-
विपरीतस्य’ साध्याभावस्य, ‘ज्ञानं’ अनुमितिः, ‘फलमिति पूर्व्वेणा-

(१) अत्र निश्चयवत्त्वं अत्यवहितोत्तरत्व-सामानाधिकरण्योभयसम्बन्धेन
बोध्यं ।

(२) ‘वज्रमत्यर्व्वतत्वावच्छिन्ने द्रव्यत्वस्य नीलपर्व्वतत्वावच्छिन्ने वज्रेरनुमि-
तिसु पर्व्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यकवज्रभावव्याप्यवत्तानिश्चयवदन्यैवेति
पर्व्वतांशे वज्रमत्त्वावगाहिन्यां’ इति पाठः ‘तादृशनिश्चयः प्रति-
बन्धकः’ इत्यस्यानन्तरं ‘तस्यामवश्यं’ इत्यस्य प्राक् क-ग-पुस्तकद्वये
वर्त्तते परन्तु तादृशः पाठो न समीचीनः ।

धर्मोऽपि विरुद्धोऽन्यत्र विपरीतज्ञानसमर्थ एव, बाधे-
 ऽन्यतोविपरीतज्ञानं न तु हेत्वभिमतदेः, घटो नित्यः
 कार्यत्वादिति^(१) विरुद्धे बाधसङ्करेऽप्यदोषः, असिद्धे
 अनैकान्तिकादिचतुष्टयज्ञानान्यालिङ्गत्वज्ञानं, बाधे

न्ययः, तथाच तद्रूपावच्छिन्नसाध्याभावानुमित्यौपयिकरूपवत्त्वं तद्रू-
 पावच्छिन्नसाध्यकविरुद्धत्वमिति भावः । ननु घटोगौरवत्वादित्यत्र
 विरुद्धेऽव्याप्तिः गोलाभावव्याप्यस्यापि हेतोर्घटात्मकपक्षावृत्तित्वेन
 तादृशरूपाभावादत आह, 'अपचेति उपन्यस्तपक्षावृत्तिरपि,
 'विरुद्धः' साध्यासमानाधिकरणः, 'अन्यत्र' स्वाश्रये, 'विपरीतज्ञान-
 समर्थः' साध्याभावज्ञानौपयिकरूपवानित्यर्थः, गगनादिकन्तु^(२)
 तादात्म्येनैव वज्रादेर्विरुद्धमिति भावः । हृदोवज्जिमान् द्रव्यत्वा-
 दित्यादौ बाधितेऽतिव्याप्तिं निरस्यति, 'बाध इति, 'अन्यतः' जल-
 त्वादितः, 'न त्विति, हेत्वभिमतस्य द्रव्यत्वादेः साध्याभावानुमित्यौ-
 पयिकव्याप्तिविरहादिति भावः । ननुक्तलक्षणं घटोनित्यः कार्य-
 त्वादित्यादौ बाधसंकीर्णतादशायां अतिप्रसक्तं^(३) अत आह, 'घट
 इत्यादि, 'अदोष इति, फलभेदाद्भिन्नहेत्वाभासत्वसम्भवादिति भावः ।
 'अनैकान्तिकादीति, 'चतुष्टयेत्यविवक्षितं, निबन्धकृन्नये सत्यति-

(१) नित्योघटः कार्यत्वादिति क०, ख० ।

(२) ननु वज्जिमान् गगनात् इत्यत्र गगनरूपविरुद्धहेतौ कुत्रापि धर्मिणि
 अवर्तमानत्वेनाव्याप्तिरित्यत आह गगनादिकन्त्विति ।

(३) बाधसङ्कीर्णत्वादयुक्तमत आहिति ख०, ग० ।

पक्षधर्महेतौ व्याप्तिबाधः, प्रकरणसमे तु न व्याप्ति-
पक्षधर्मताबाधः फलं, नाप्यलिङ्गत्वज्ञानं, व्याप्यादि-
बुद्धिसत्त्वात् । नापि विपरीतबुद्धिः, स्वसाध्यविपरी-
तेनानियमात् । नापि संशयः, प्रत्येकं कोटिद्वयानुप-

प्रतिपक्षस्य ज्ञानफलकत्वाभावेन तन्निवेशस्य व्यर्थत्वात्, तथाचानै-
कान्तिक-विरुद्ध-बाधितानां यानि फलानि साध्यसंशय-साध्यविप-
रीतबोध-स्वधर्मिकसाध्याव्याप्यत्वज्ञानानि तेभ्यो भिन्नं 'अलिङ्गत्व-
ज्ञानं' लिङ्गत्वग्रहविरोधिज्ञानं प्रकृतपक्षधर्मिक-प्रकृतसाध्यव्याप्यप्र-
कृतहेतुमत्त्वग्रहविरोधिज्ञानमिति यावत्, 'फलमिति पूर्वेणान्वयः,
तथाच तादृशज्ञानौपयिकं यद्रूपं तदेव प्रकृतहेतोरसिद्धत्वमिति
भावः । 'व्याप्तिबाधः' व्याप्यभावज्ञानं, 'फलमित्यनुषज्यते, तथाच
प्रकृतपक्षधर्मत्वे सति प्रकृतसाध्यव्याप्यभावोन्नायकरूपवत्त्वमेव प्रकृत-
पक्ष-साध्यबाधितत्वं हृदोवक्त्रिमान् धूमादित्यादिकञ्च न बाधितं
किन्त्वसिद्धमेवेति भावः । प्रकृतमनुसरन्नाह, 'प्रकरणसमे त्विति
साध्य-तदभावयोः परामर्शात्मकप्रतिपक्षस्थले त्वित्यर्थः, 'न व्याप्ती-
त्यादि, न व्याप्तेः पक्षधर्मत्वस्य वा 'बाधः' विरहज्ञानं, 'फलमित्यग्रे-
तनेनान्वयः, 'नाप्यलिङ्गत्वज्ञानमिति, 'अलिङ्गत्वस्य' लिङ्गत्वधौवि-
रोधन्तरस्य, ज्ञानमित्यर्थः, 'व्याप्यादीत्यादिना पक्षधर्मत्वस्योपग्रहः,
तथाच न बाधिते स्वरूपासिद्धे वा अस्यान्तर्भावः । 'विपरीतबुद्धिः'
साध्याभावानुमितिः, 'फलमित्यनुषज्यते, 'अनियमादिति व्याप्य-

नयात् । किन्तु कथमत्र तत्त्वनिर्णय इति जिज्ञासा
फलं, तथाच प्रकृतसाध्य-हेत्वोः किं तत्त्वमिति जि-
ज्ञासाजनिका व्याप्ति-पक्षधर्मतोपस्थितिः प्रकरण-
समः । न ह्यनुपस्थिते प्रतिपक्षे एकस्माज्जिज्ञासा, किन्तु
निर्णय एव । अथ ज्ञातुमिच्छा जिज्ञासा सा च
ज्ञानेष्टसाधनताज्ञानात् संशयादेति कथं तेन विना

त्वानियमादित्यर्थः, तथाच हृदोवक्त्रिव्याप्यद्रव्यत्वान् वज्रभाव-
व्याप्यसत्तावांश्च इत्यादिप्रतिपक्षहेत्वोः स्वसाध्यव्यतिरेकोन्नयनौप-
यिकव्याप्तिविरहान्न तयोर्विरुद्धेऽन्तर्भावः, 'संशय इति साध्यस्ये-
त्यादिः, 'प्रत्येकमिति विरोधिव्याप्ययोः प्रत्येकस्य सपक्ष-विपक्षो-
भयवृत्तित्वाद्यभावेन साध्य-तदभावयोः कोटिद्वययोः विशिष्टबुद्ध्य-
जनकत्वादित्यर्थः । तथाच नानैकान्तिकेऽन्तर्भावः । 'प्रकृतेति
प्रकृतसाध्यसिद्धिजनकविषयतापन्नयोर्हेत्वोः, 'किं तत्त्वं' किं व्याप्या-
दिमत्तया प्रामाणिकमित्यर्थः, व्याप्तीत्यादिकन्तु स्वरूपकथन-
मात्रं, निरुक्तजिज्ञासाजनकोपस्थितेरेव सम्यक्त्वेन तन्निवेशस्य व्यर्थ-
त्वात् व्याप्यादेरननुगतत्वेनाव्याप्तिकरत्वाच्चेति ध्येयं । ननु साध्यमात्रस्य
परामर्शोऽपि तादृशजिज्ञासाजनक इति तत्रातिव्याप्तिरत आह,
'न हीति, 'अनुपस्थिते' असति, 'प्रतिपक्षे' विरोधिपरामर्शे, 'एक-
स्मात्' साध्यस्यैव परामर्शात्, न तादृशौ जिज्ञासा किन्तु साध्यस्य
निर्णय एव विरोधिपरामर्शयोः सत्त्वे तु जिज्ञासासामग्र्या प्रतिब-

विरोधिसाधनज्ञानमात्रादिति चेत्, न, असति प्रति-
पक्षे न जिज्ञासा सति तु सेत्यन्वय-व्यतिरेकाभ्यां प्रक-
रणसमस्यापि जिज्ञासाजनकत्वात् । न चानैकान्ति-
कातिव्याप्तिः, तत्र हि संशयद्वारा साध्ये जिज्ञासा
अत्र तु हेतुसमीचीनत्व इति । ननु परामर्शयोरेक-
दानुत्पादात् कथं प्रतिरोधः, क्रमेत्पन्नयोरेकदा स-

न्धान्न स इति भावः । 'ज्ञानेष्टसाधनताज्ञानादिति स्वमते, 'संशया-
दिति तु निबन्धकमते, तैः साध्यसंशयद्वारा अनैकान्तिकस्य साध्य-
जिज्ञासाजनकताया अनुपदं वक्ष्यमाणत्वात्, 'ज्ञानमात्रादित्यत्र
सेत्यनुषज्यते, 'जिज्ञासाजनकत्वादिति, कार्यतावच्छेदकस्य सङ्कोचाच्च
न व्यभिचार इत्याशयः । लक्षणस्य प्रकृतसाध्य-हेत्वोरित्यस्य हेतु-
पदव्यत्यासेन प्रकृतहेतुकज्ञानविषययोरित्यर्थं मत्वा शङ्कते, 'न चेति,
जिज्ञासायाः साक्षाज्जनकत्वं वक्तव्यं हेत्वोः प्रामाणिकत्वजिज्ञासा वा
निवेशितेत्याशयेन परिहरति, 'तत्र हीति । न च जिज्ञासाजनक-
स्यापि विरोधिपरामर्शद्वयस्य ज्ञानं यदि नानुमितिप्रतिबन्धकं तर्हि
कथायां तदुपन्यासो न स्यादिति वाच्यं । प्रमाणादूषणस्यापि
तस्याधिकत्वादेरिव^(१) निग्रहस्थानविधयोद्भाष्यत्वमिति निबन्धकता-
माश्रयादिति ध्येयं ।

(१) तस्यार्थान्तरत्वादेरिवेति ख०, ग० ।

त्वादिति चेत्, न, एकानन्तरमपरहेतुव्याप्ति-पक्षधर्म-
ताज्ञानाभ्यामग्रिमव्याप्तिविशिष्टज्ञानोत्पत्तिकाले पूर्व-
परामर्शनाशात् । न चोभयहेतुव्याप्ति-पक्षधर्मता-
ज्ञानानां परस्पराप्रतिबन्धात् परामर्शोत्पाद इति
वाच्यं । व्याख्यादिज्ञानचतुष्टयस्य यौगपद्याभावात् ।

यत्तु व्याप्तिद्वयसंस्कारोद्बोधकहेतुद्वयज्ञानयोः पर-
स्परप्रतिबन्धात् नोभयव्याप्तिस्मृतिरिति दूषकतावीज-
मिति । तन्न । व्याप्तिस्मृतिं विना सत्प्रतिपक्षाभावात्
वादिभ्यां व्याख्युद्भावनाच्चेति । मैवम् । हेतुद्वयसमूहा-
लम्बनाद्युगपदुभयव्याप्तिस्मृतावुभयपरामर्शरूपं ज्ञान-
मुत्पद्यते, अत एकदा विरुद्धकार्यद्वयकारणान्नैकमपि
कार्यमुत्पद्यते, तादृशपरामर्शश्च स्वार्थानुमाने प्रत्य-
क्षादितः, परस्य तु वाद्युपन्यस्तन्यायोत्थापितप्रमाणा-

शङ्कते, 'नन्विति, ज्ञानद्वययोर्यौगपद्याभावादिति भावः ।
सिद्धान्तयति, 'क्रमेति, 'सत्त्वादिति 'प्रतिरोध इत्यन्वयः, एकानन्तरं,
एकहेतोः परामर्शानन्तरं, 'अपरेति अपरहेतौ व्याप्तेः पक्षधर्मत्वस्य
च ज्ञानेनेत्यर्थः, तथाच द्वित्वमविवक्षितं, 'ज्ञानेति एकहेतुकव्याप्ति-
ज्ञान-तत्परामर्श-हेतुन्तरव्याप्तिज्ञान-तत्परामर्शात्मकज्ञानचतुष्टयस्ये-
त्यर्थः । साध्यस्य केवलान्वयित्वधीदशायां पक्षधर्मिक-तत्तदभावोभय-
व्याप्यवत्तापरामर्शसम्भवात्तदानीं तत्प्रतिपक्षो नास्तीति सोन्दडमतं

वतारात् । अस्य च केवलान्वयिन्यपि सम्भवः घटो-
ऽभिधेयः प्रमेयत्वादित्यत्राभिधेयत्वं घटनिष्ठात्यन्ता-
भावप्रतियोगिजात्यन्यत्वे सति घटमात्रवृत्त्यन्यधर्म्म-
त्वात् घटान्योन्याभाववत् पटरूपवच्च, घटनिष्ठात्यन्ता-
भावोऽभिधेयत्वप्रतियोगिकः घटवृत्तिनित्याभावत्वात्
घटनिष्ठान्योन्याभाववदिति विशेषादर्शनदशायां, न

निरस्यति, 'अस्य चेति, 'अस्य' विरोधिपरामर्शात्मकप्रतिपक्षस्य,
'केवलान्वयिनि' तत्त्वेन गृहीतसाध्यके, 'घटेत्यादि, प्रतियोगित्वं
स्वरूपसम्बन्धेन ग्राह्यं तेन संयोगेनाभिधेयत्वस्याभावमादाय न
सिद्धसाधनं, सत्ताद्याश्रयत्वे व्यभिचारस्य वारणाय 'सत्यन्तं जात्या-
श्रयतान्यत्वे सतीत्यर्थकं, घटत्वादिप्रकारकप्रमाविशेष्यत्वे तद्वारणाय
'घटमात्रेत्यादि, घटवृत्त्यन्यत्वं अभिधेयत्वे स्वरूपासिद्धमतो मात्रपदं ।
ननु घटनिष्ठत्वं अवश्यं दैशिकविशेषणतया वाच्यं अन्यथा जातिम-
त्वादेरभावस्यापि कालिकादिसम्बन्धेन घटनिष्ठत्वाद्धेतोर्व्यर्थविशेषण-
त्वापत्तेः तथाच घटान्यत्वाभावस्य घटत्वस्वरूपस्य तादृशसम्बन्धेन
घटावृत्तित्वात् तत्प्रतियोगिनो घटान्योन्याभावस्य दृष्टान्तत्वायोगा-
दाह, 'पटरूपवच्चेति, 'पेटत्यविवक्षितं, 'घटनिष्ठेति, अत्राप्यत्यन्ता-
भावः स्वरूपसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताको ग्राह्यः तेन न पूर्ववत्
सिद्धसाधनं, हेतौ च घटवृत्तित्वं घटत्वाभावे नित्यत्वं घटनिष्ठध्वंसे-
ऽभावत्वं घटत्वादौ व्यभिचारस्य वारणाय, 'अन्योन्येति घटवृत्त्य-

च पक्षैक्यमपि तन्त्रं, विरोधस्यैव दूषकत्वेऽधिकस्य
व्यर्थत्वादिति ॥

इति श्रीगङ्गेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ
अनुमानाख्यद्वितीयखण्डे सत्प्रतिपक्षसिद्धान्तः ॥

भिधेयत्वभेदवदित्यर्थः । ननूक्तहेतुद्वयमपि पटत्वाद्यभावे व्यभिचा-
रीत्यत आह, 'विशेषेति उक्तहेत्वोर्व्यभिचाराग्रहदशायामित्यर्थः,
'पक्षैक्यं' एकधर्मिकत्वं, 'तन्त्रं' प्रतिपक्षताव्यापकमित्यर्थः, (१) घटो-
ऽभिधेयत्वव्यापकाभाववान् इत्येवं व्यतिरेकपरामर्शेन पक्षैक्यस्य
सम्भवाच्चेत्यपि द्रष्टव्यं ।

इति श्रीमथुरानाथतर्कवागीश-विरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये
अनुमानाख्य-द्वितीयखण्डरहस्ये सत्प्रतिपक्षसिद्धान्तरहस्यं ॥

अथासिद्धिपूर्वपक्षः ।

असिद्धिस्तु न व्याप्ति-पक्षधर्मताविरहः, प्रत्येक-
मननुगमात् । अथ प्रत्येकाभावेऽनुगतोव्याप्ति-पक्ष
धर्मताविशिष्टाभावोऽसिद्धिः, यद्यपि विशिष्टस्यान्यत्वे
प्रत्येकाभावाव्याप्तिरपसिद्धान्तश्च अनन्यत्वे प्रत्येकाभाव-

अथासिद्धिपूर्वपक्षरहस्यं ।

‘व्याप्नोति, तथाच व्याप्ति-पक्षधर्मताभाववान् हेतुरसिद्ध इति
भावः । अत्र घटो द्रव्यं सत्त्वादित्यादौ^(१) व्याप्यत्वासिद्धेः संग्रहाय
व्याप्यत्वस्य, अयोगोलकं वक्षिमात् धूमादित्यादौ स्वरूपासिद्धेः
संग्रहाय च पक्षधर्मत्वस्य प्रवेशः, व्याप्तिश्च साध्याभाववदवृत्तित्वे सति
साध्यसामानाधिकरण्यरूपा ग्राह्या न तु हेतुव्यापकसाध्यसामानाधि-
करण्यरूपा द्रव्यं सत्त्वादित्यादिसाध्यव्याप्यत्वासिद्धिस्थले तदप्रसिद्ध्या^(२)
असम्भवापत्तेः । पक्षधर्मत्वञ्च हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेन पक्षवृत्तित्वं तेन
हृदो वक्षिमान् धूमादित्यादौ स्वरूपासिद्धे कालिकादिसम्बन्धेन
हेतोः पक्षवृत्तित्वेऽपि न क्षतिः । व्याप्ति-पक्षधर्मत्वयोः प्रत्येकाभाव-
द्वयमसिद्धिः व्याप्तिविशिष्टपक्षधर्मताभावो वा आद्ये आह, ‘प्रत्येक-
मिति प्रत्येकाभावस्येत्यर्थः, ‘अननुगमात्’ सर्वासिद्धासाधारणत्वात्,

(१) जलज्जदो वक्षिमान् धूमादित्यादाविति ख०, ग० ।

(२) सत्त्वसमानाधिकरणाभावाप्रतियोगिद्रव्यत्वसामानाधिकरण्याप्रसि-

एव स इत्यननुगमः, तथापि विशेषणावच्छिन्नप्रति-
योगिको विशेष्याभावो विशेषण-विशेष्यसम्बन्धाभावे
वा विशिष्टाभावोऽनुगत इति चेत्, न, विशिष्टाभावा-
ज्ञानेऽपि व्याप्त्यादिप्रत्येकाभावज्ञाने उद्भावने चानु-
मितिप्रतिबन्धो वादिनिवृत्तिश्चेति तत्प्रत्येकाभावा-
व्याप्तिः, अन्यथा तेषां हेत्वाभासान्तरतापत्तेः, न च

हृदो वक्त्रिमान् धूमादित्यादिस्वरूपासिद्धे व्याप्यत्वाभावस्य घटो द्रव्यं
सत्त्वादित्यादिव्याप्यत्वासिद्धे च पञ्चधर्मत्वाभावस्यासत्त्वादिति भावः ।
अन्त्याभिप्रायेणाशङ्कते, 'अथेति, 'प्रत्येकाभावेऽनुगतः' प्रत्येकाभाव-
मात्रवत्यपि वर्त्तमानः, 'प्रत्येकाभावाव्याप्तिरिति प्रत्येकाभावमात्र-
वत्यव्याप्तिरित्यर्थः । ननु विशिष्टस्यातिरिक्तत्वेऽपि तदभावः प्रत्येका-
भावस्यत्वेऽपि वर्त्तत एवेति नाव्याप्तिरित्यत आह, 'अपसिद्धान्तश्चेति,
'अननुगम इति तदवस्य इति शेषः, 'अनुगत इति प्रत्येकाभाव-
मात्रवत्यपि वर्त्तमान इत्यर्थः, 'निवृत्तिश्चेति, व्याप्त्यादिप्रत्येकाभाव-
द्वयस्याप्यसिद्धितयेति शेषः, 'तत्प्रत्येकाभावाव्याप्तिरिति व्याप्त्यादि-
प्रत्येकाभावद्वये असिद्धिलक्षणाव्याप्तिरित्यर्थः, विशिष्टाभावत्वस्याति-
रिक्तत्वात्^(१) तस्य च प्रत्येकाभावयोरसत्त्वादिति भावः । इदमुपलक्षणं
अयोगोलकं धूमवत् वक्त्रेहृदो वक्त्रिमान् धूमादित्यादौ बाधसङ्की-
र्णसिद्धे असिद्धिलक्षणस्याव्याप्तिः तत्र विशिष्टस्याप्रसिद्धतया तदभाव-

विशिष्टाभावधीद्वारा प्रत्येकाभावो दोषो न तु स्वतः
इति वाच्यं । प्रत्येकाभावस्य स्वतएव दोषत्वसम्भवात् ।
वस्तुतो विशिष्टाभावो दोष एव न प्रत्येकस्य समर्थत्वे

स्थापयित्वाऽपि बोध्यं । ननु प्रत्येकाभावज्ञानस्यानुमितिप्रतिबन्ध-
कत्वेऽपि न तस्यासिद्धत्वमतो नाव्याप्तिरित्यत आह, 'अन्यथेति, 'तेषां'
प्रत्येकाभावानां, हेत्वाभाससामान्यलक्षणाक्रान्तानामिति शेषः । सा-
ध्यादिभेदेन व्याप्यादीनां नानात्वादङ्गवचनं, 'प्रत्येकाभावः' प्रत्येका-
भावज्ञानं, 'न तु स्वतः' न तु साक्षात्, तथाच हेत्वाभाससामान्य-
लक्षणाक्रान्तत्वमेव तत्र नास्ति अनुमिति-तत्कारणपरामर्शयोः
साक्षात्प्रतिबन्धकत्वस्य तल्लक्षणघटकत्वादिति भावः । 'स्वत एव' साक्षा-
देव, ग्राह्याभावावगाहित्वादिति भावः । इदमुपलक्षणं आश्रया-
सिद्धि-साध्यविशेषणासिद्धि-हेतुसिद्धिषु चाव्याप्तिरित्यपि बोध्यं ।
'दोष एव नेति हेत्वाभासएव नेत्यर्थः, कुतस्तद्विशेषोऽसिद्धिरिति
शेषः, (१) 'प्रत्येकस्य' प्रत्येकाभावस्य, 'समर्थत्वे' दूषणसमर्थत्वे, हेत्वाभा-
सत्वे इति यावत्, 'अन्यथासिद्धेरिति विशिष्टाभावस्य हेत्वाभासत्वं
विनापि विशिष्टाभाववतः साधनस्य दुष्टत्वव्यवहारोपपत्तेरित्यर्थः,
विशिष्टाभाववति प्रत्येकाभावस्यावश्यकत्वादिति भावः । ननु
साध्यव्याप्यो हेतुः पक्षवृत्तिरित्याकारकविषयकलितव्याप्ति-पक्षलोभय-
विषयकपरामर्शस्यानुमितिहेतुत्ववादिनां प्राचां नये साध्यव्याप्यत्वे
सति पक्षवृत्तित्ववान् हेतुरिति व्याप्तिविशिष्टपक्षधर्मात्प्रकारकपरा-

तेनैवान्यथासिद्धेर्व्यर्थविशेषणत्वात् प्रत्येकाभावमज्ञात्वा

मर्गस्याप्यनुमितिहेतुतया तद्विरोधित्वेन विशिष्टाभावस्यापि हेत्वा-
भासत्वं^(१) दुर्वारं विनिगमकाभावेन तादृगविशिष्टप्रकारकपरामर्ग-
प्रतिबन्धकत्वस्यापि सामान्यलक्षणघटकत्वात् साध्यव्याप्यहेतुमान् पक्ष-
इति पक्षविशेष्यकपरामर्गस्यैवानुमितिहेतुत्वमिति नव्यमतानुयायित्वे
व्याप्ति-पक्षधर्मत्वयोः द्वयोः प्रत्येकाभावस्यापि दोषत्वाभ्युपगमासङ्गतेः
पक्षवृत्तिर्वाभावज्ञानस्य तादृगपक्षविशेष्यकपरामर्गप्रतिबन्धकत्वादित्य-
रुचेराह, 'व्यर्थविशेषणत्वादिति इदमसाधकं व्याप्तिविशिष्टपक्ष-
धर्मत्वाभावादित्यसाधकतानुमाने पक्षधर्मत्वाभावादित्यस्यैव सम्यक्त्वे
व्यर्थविशेषणत्वादित्यर्थः । तथाच हेत्वाभासत्वस्यासाधकताव्याप्यत्वनिय-
माद्व्यर्थविशेषणतया च विशिष्टाभावे तदभावेन न तस्य हेत्वाभासत्वं ।
न चैवं तत्र सामान्यलक्षणातिव्याप्तिरिति वाच्यं । तस्य हेत्वाभासत्वा-
भावेनानायत्या विषकलितव्याप्ति-पक्षधर्मत्वोभयविषयताशालिपरा-
मर्गप्रतिबन्धकत्वस्यैव सामान्यलक्षणे निवेशनीयत्वादिति भावः ।
नन्विदमप्ययुक्तं व्यर्थविशेषणत्वेऽपि व्याप्तिसत्त्वात्^(२) विशिष्टाभावत्वस्य
प्रत्येकाभावत्वाघटिततया^(३) विशिष्टाभावस्यातिरिक्तत्वेन धूमप्राग-

(१) तत्त्वमिति ग० ।

(२) तथाच व्याप्तिशरीरे प्रयोजनविरहेण व्यर्थविशेषणाघटितत्वस्यानि-
वेशनीयत्वेन व्यर्थविशेषणाघटितस्यापि व्याप्यत्वमिति भावः ।

(३) प्रत्येकाभावत्वस्य व्याप्यतावच्छेदकधर्मान्तरत्वेऽपि तदघटितत्वेन न
व्यर्थविशेषणाघटितत्वमिति भावः ।

न विशिष्टाभावज्ञानमित्युपजीव्यत्वादिविशिष्टाभावानु-
द्भावनेऽपि प्रत्येकोद्भावने वादिनिवृत्तेश्च । अत एव

भाववद्भिन्नधर्मिकतया^(१) च वैयर्थ्यशङ्कानवकाशाच्च इत्यरुचेराह,
'प्रत्येकाभावमिति, 'उपजीव्यत्वादिति प्रत्येकाभावज्ञानस्योपजीव्य-
त्वादित्यर्थः, तथाच प्रत्येकाभावज्ञानस्योपजीव्यतया प्रत्येकाभाव एव
हेत्वाभासो न तु विशिष्टाभावः तज्ज्ञानस्य प्रत्येकाभावज्ञानस्योप-
जीवकत्वात् सामान्यलक्षणे चानायत्या विषकलितव्याप्ति-पक्षधर्मत्वो-
भयविषयताशालिपरामर्शप्रतिबन्धकत्वस्यैव निवेशान्नातिव्याप्तिरिति
भावः । नन्विदमप्ययुक्तं प्रत्येकाभावमज्ञात्वापि प्रत्यक्ष-शब्दाभ्यां लि-
ङ्गान्तरजन्यानुमानेन च विशिष्टाभावज्ञानसम्भवात् । न च तथापि
प्रत्येकाभावलिङ्गकानुमानेन विशिष्टाभावज्ञानं, प्रति प्रत्येकाभाव-
ज्ञानस्योपजीव्यत्वमस्येवेति वाच्यं । विशिष्टाभावलिङ्गकानुमानेन
प्रत्येकाभावज्ञानं प्रति विशिष्टाभावज्ञानस्याप्युपजीव्यत्वेन काचि-
त्कोपजीव्योपजीवकभावस्याविशेषादित्यरुचेराह, 'विशिष्टाभावानु-
द्भावनेऽपीति, एतदप्यापाततः, एवञ्च विरुद्धत्वादेरपि हेत्वाभासत्वं
न स्यात् तदनुद्भावनेऽपि बाध-स्वरूपासिद्ध्यादेरुद्भावने वादिनि-

(१) धूमप्रागभावत्वस्य व्याप्यतावच्छेदक-धर्मान्तरधूमत्व-घटितत्वेऽपि
धूमत्वस्य धूमप्रागभावत्वासमानाधिकरणत्वात् यथा न तेन धूम-
प्रागभावत्वस्य व्यर्थविशेषणघटितत्वं तथा प्रत्येकाभावत्वस्य विशि-
ष्टाभावत्वासमनाधिकरणत्वात् न तेन विशिष्टाभावत्वस्य व्यर्थविशे-
षणघटितत्वमिति भावः ।

व्याप्ति-पक्षधर्मताविशिष्टज्ञानविषयाभावत्वं प्रत्येकाभा-
वानुगतमसिद्धत्वं व्यभिचारादावसिद्धत्वेऽप्युपजीव्यत्वेन

वृत्तेः । न च तत्र बाधादेरनुज्ञावनेऽपि विरुद्धमात्रोज्ञावने वादौ
निवर्तते अतो विरुद्धस्यापि हेत्वाभासत्वं अत्र तु प्रत्येकाभावानुज्ञा-
वने विशिष्टाभावमात्रोज्ञावनेऽपि न वादिनिवृत्तिरिति न विशिष्टा-
भावस्य दोषत्वमिति वाच्यं । विशिष्टाभावमात्रोज्ञावनेऽपि वादिनि-
वृत्तेः, तस्मात् साध्यव्याप्यत्वे सति पक्षवृत्तित्ववान् हेतुरिति परा-
मर्गस्याप्यनुमितिहेतुत्ववादिनां प्राचान्नये व्याप्तिविशिष्टपक्षधर्मत्वा-
भाववद्धेतुरपि हेत्वाभासः स च व्याप्यत्वासिद्धावेवान्तर्भूत इति तत्त्वं ।
'अत एवेति 'निरस्तमित्यनेनान्वयः, 'व्याप्तीति व्यप्ति-पक्षधर्मलोभय-
मात्रमुख्यविशेष्यकबुद्धिमुख्यविशेष्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिता-
काभावत्वमित्यर्थः, नातो विशेषाभाव-सामान्याभावविकल्पाभ्याम-
तिव्याप्यसम्भवशङ्कावकाशः, (१) अधिकं सिद्धान्ते वक्ष्यामः, 'प्रत्ये-
काभावानुगतमिति व्याप्ति-पक्षधर्मतयोः प्रत्येकाभावद्वये वर्त्त-
मानमित्यर्थः, 'असिद्धत्वं' असिद्धित्वं । नन्वेवं व्यभिचारादेः कथं
दोषत्वं तद्वति हेतौ असिद्धेरावश्यकत्वेन तस्यैव दोषत्वसम्भवादि-
त्यत आह, 'व्यभिचारादाविति व्यभिचारादिमिति हेतावित्यर्थः,
आदिना विरोधपरिग्रहः, 'उपजीव्यत्वेनेति असिद्धत्वज्ञानं प्रति

(१) व्याप्ति-पक्षधर्मताविशिष्टज्ञानविषयाभावत्वं यदि तादृशविषयप्रति-
योगिकाभावत्वं तदा विशेषाभावे अतिव्याप्तिः, यदि तादृशविषय-
त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावत्वं तदा सर्वत्रासम्भव इति तात्पर्यं ।

प्राथम्यात्तदुद्भावने वादिनिवृत्तेश्च स स्वत एव दूषकः
तत्र व्याप्त्यसिद्ध्यर्थमुपाधौ तूद्भाविते विप्रतिपद्यतेऽपि
तस्य दुरूहत्वात् व्यभिचारेणैव तदुन्नयनाच्च, यदि च
व्यभिचारादिकमंज्ञात्वाप्यसिद्धिबुद्धिः तथाप्युपधेयस-

लिङ्गविधया व्यभिचारादिज्ञानस्य उपजीव्यत्वेनेत्यर्थः, 'प्राथम्यात्'
प्रथमोपस्थितत्वात्, 'तदुद्भावने' व्यभिचारादिमात्रोद्भावने, विरो-
धित्वाविशेषाच्चेत्यपि द्रष्टव्यं, 'सः' सोऽपि व्यभिचारादिरऽपीति
यावत् । नन्वेवमसिद्धिज्ञानोपजीव्यत्वेन उपाधिरपि हेत्वाभासान्तरं
स्यादित्यत आह, 'तत्रेति व्यभिचारादिमति हेतावित्यर्थः, 'व्याप्त्य-
सिद्ध्यर्थं' व्याप्त्यज्ञानार्थं, 'उपाधौ' त्विति, 'तुशब्दो' भिन्नक्रमे, 'उद्भा-
वितइत्यनन्तरं' योज्यः, 'विप्रतिपद्यतेऽपीति' व्याप्तौ विप्रतिपद्यते-
ऽपीत्यर्थः, विप्रतिपत्तिर्भ्रमः, तथाचोपाध्युद्भावनेऽपि व्याप्तिभ्रमोदया-
त्तस्य साक्षाद्विरोधित्वाभावेन हेत्वाभासान्तरत्वमिति भावः । किञ्च
उपाधिज्ञानं नासिद्धिज्ञानोपजीव्यं किन्तु तद्व्यभिचारज्ञानमेवेत्याह,
तस्येति असिद्धत्वस्येत्यर्थः, 'दुरूहत्वात्' उपाधितोदुर्ज्ञेयत्वात्, 'व्यभि-
चारेणैव' उपाधिव्यभिचारेणैव, 'तदुन्नयनात्' असिद्ध्युन्नयनात्, एत-
च्चापाततः व्यभिचारितासम्बन्धेन उपाधेरप्युन्नायकतासम्भवात् तथापि
उपाधेर्यव्यभिचारस्यैव हेत्वाभासान्तरताया दुर्वारत्वाच्च, किन्तु पूर्वोक्त-
युक्तिरेव समीचीनेति द्रष्टव्यं । 'असिद्धिबुद्धिरिति' प्रत्यक्ष-शब्दाभ्यां
लिङ्गान्तरजन्यानुमानेन चासिद्धिबुद्धिरित्यर्थः, 'उपधेयेति', 'उप-
धेययोः' असिद्ध-व्यभिचारिणोर्धर्मिणोः, 'सङ्करेऽपि' अभेदेऽपि,

ङ्करोऽप्युपाधेरसङ्कर एवेति निरस्तं । व्यर्थविशेषणत्वा-
देव । एतेन व्याप्ति-पक्षधर्मतान्यतराभावोऽसिद्धिरिति

‘उपाधेः’ असिद्धत्वव्यभिचारादर्धर्मस्य, ‘असङ्कर एव’ ज्ञानासङ्कर-
एव परस्परग्रहकाक्षीनग्रहविषयत्वमेवेति यावत्, तथाचासिद्धत्वा
ज्ञानदशायामपि व्यभिचारादिमात्रज्ञानाद्याप्तिज्ञानानुदयेन तस्यापि
स्वतः प्रतिबन्धकत्वमावश्यकमेवेति भावः । ‘अत एवेति विवृणोति,
‘व्यर्थेति तथाविधबुद्धिमुख्यविशेष्यतावच्छेदकत्वरूपस्य विशेषणस्य
दूषकतायामप्रयोजकत्वात् तथाविधबुद्धिमुख्यविशेष्यतावच्छेदकत्व-
प्रकारकज्ञानस्यानुमिति-तत्कारणपरामर्शाविरोधित्वादिति यावत्,
यद्रूपेण ज्ञानं अनुमिति-तत्कारणपरामर्शान्यतरप्रतिबन्धकं तदेव
च विभाजकतावच्छेदकमित्यभिमानः । यद्वा ‘व्यर्थविशेषणत्वात्’ अयं
हेतुरसाधकः निरुक्तबुद्धिमुख्यविशेष्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगि-
ताकाभाववत्त्वादित्यसाधकतानुमाने निरुक्तबुद्धिमुख्यविशेष्यतावच्छे-
दकत्वरूपस्य विशेषणस्य व्यर्थत्वात् व्याप्तितावच्छिन्नप्रतियोगिता-
काभावत्वनैव व्याप्यभावस्य पक्षधर्मतात्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभाव-
त्वनैव पक्षधर्मत्वाभावस्य हेतुत्वसम्भवादित्यर्थः, असाधकतानुमापक-
तावच्छेदकरूपमेव विभाजकतावच्छेदकमित्यभिमानः । एतच्चापा-
ततः विरोधितावच्छेकरूपमेव विभाजकतावच्छेदकमिति नियमे
मानाभावात् विरोधितानवच्छेदकरूपेणापि पूर्वं व्यभिचारादेर्वि-
भजनात्, एवमसाधकतानुमापकतावच्छेदकरूपमेव विभाजकताव-
च्छेदकमिति नियमेऽपि मानाभावात् व्यर्थविशेषणत्वस्य व्याप्यवि-

प्रत्युक्तम् अन्यतरत्वाज्ञानेऽपि प्रत्येकाभावस्य दोषत्वात्
व्यर्थविशेषणत्वाच्च ।

घटकतया तत्सत्वेऽप्यसाधकतानुमापकत्वसम्भवाच्च तथाविधबुद्धिमु-
ख्यविशेष्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावत्वस्य व्याप्तिवाद्यव-
च्छिन्नप्रतियोगिताकाभावत्वाघटिततया व्यर्थविशेषणताशङ्काया अप्य-
नवकाशाच्च । वस्तुतस्तु अत्राप्याश्रयासिद्धि-साध्यविशेषणासिद्धि-हेतु-
विशेषणासिद्धि-हेत्वसिद्धिष्वव्याप्तिरेव दोषो बोध्यः, एवमग्रेऽपि ।
'व्याप्तीति व्याप्तिव-पक्षधर्मतात्वान्यतरधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताका-
भावोऽसिद्धिरित्यर्थः, यद्वा 'अन्यतरपदव्यत्यासेन व्याप्तिसामान्याभाव-
पक्षधर्मतासामान्याभावयोरन्यतरोऽसिद्धिरित्यर्थः, यथाश्रुते सामा-
न्याभाव-विशेषाभावविकल्पाभ्यां अव्याप्यतिय्याप्तिप्रसङ्गस्य^(१) दुर्वार-
त्वादिति ध्येयं । 'प्रत्येकाभावस्येति प्रत्येकाभावत्वप्रकारेण प्रत्येकाभाव-
ज्ञानस्येत्यर्थः, 'दोषत्वात्' प्रतिबन्धकत्वात्, प्रत्येकाभावाद्यज्ञाने चान्य-
तरत्वप्रकारकज्ञानस्याप्रतिबन्धकत्वादिति शेषः । तथाच विरोधि-
तानवच्छेदकतया कथमस्य विभाजकतावच्छेदकत्वमित्यभिमानः ।
'व्यर्थेति असाधकतानुमानेऽन्यतरत्वरूपस्य विशेषणस्य व्यर्थत्वादित्यर्थः,

(१) व्याप्ति-पक्षधर्मत्वान्यतराभावपदस्य तादृशान्यतरत्वावच्छिन्नप्रति-
योगिताकसामान्याभावपरत्वे अव्याप्तिः, अत्राव्याप्तिपदं असम्भव-
परं, तादृशान्यतरत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावस्य असिद्धानात्मक-
त्वात्, तादृशान्यतरप्रतियोगिकाभावपरत्वे विशेषाभावे अतिय्याप्ति-
रिति तात्पर्यं ।

यत्तु व्याप्ति-पक्षधर्मताप्रमितिविरह आश्रयासि-
द्ध्याद्यनुगतोऽसिद्धिः, तत्प्रमितिसत्त्वे तत्रानुमितिप्रमि-
त्यापत्तेरिति । तदपि व्यर्थविशेषणत्वात् तदज्ञानेऽपि
प्रत्येकज्ञानस्य दोषत्वाच्च निरस्तं ।

प्रत्येकं व्याप्तित्वाद्यवच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावत्वेनैव गमकत्वसम्भवा-
दिति भावः ।

‘व्याप्ति-पक्षधर्मतेति हेतुतावच्छेदकावच्छिन्नहेतुविशेष्यक-साध्य-
तावच्छेदकावच्छिन्नसाध्यनिरूपितव्याप्तिविशिष्ट-पक्षतावच्छेदकावच्छि-
न्नपक्षधर्मताप्रकारकभ्रमभिन्नज्ञानविरह इत्यर्थः, ‘आश्रयासिद्ध्याद्यनु-
गत इति आश्रयासिद्ध्यादिरूपसकलासिद्धिव्यापक इत्यर्थः, तत्र तादृश-
ज्ञानस्य पक्षतावच्छेदाद्यंशे भ्रमत्वनियमादिति भावः । ‘आदिना
स्वरूपासिद्धि-साध्य-साधनविशेषणासिद्धि-व्याप्त्यसिद्धीनां परिग्रहः,
‘तत्प्रमितिसत्त्वं इति आश्रयासिद्ध्यादिषु तादृशपक्षधर्मत्वप्रकारक-
ज्ञानस्य भ्रमभिन्नत्वे इत्यर्थः, ‘अनुमितिप्रमित्यापत्तेरिति अनुमिते-
रपि भ्रमभिन्नत्वापत्तेरित्यर्थः, एवञ्च तादृशज्ञानविरहवान् हेतु-
रसिद्ध इत्यसिद्धलक्षणमिति भावः । ‘तदपीति ‘निरस्तमित्यनेना-
न्वयः, निरासे हेतुमाह, ‘व्यर्थेति विशेषणस्य प्रमित्यंशस्य व्यर्थत्वात्
दूषकतायामप्रयोजकत्वादित्यर्थः, परामर्शे प्रमितेरविशेषणतया तद-
भावज्ञानस्याप्रतिबन्धकत्वादिति भावः । हेत्वन्तरमाह, ‘तदज्ञाने-
ऽपीति, ‘प्रत्येकज्ञानस्य’ व्याप्त्यभावादिप्रत्येकज्ञानस्य, तथाच प्रत्येका-
भावस्याप्यसिद्धितया तत्राव्याप्तिरिति भावः । प्रत्येकाभावेऽप्यसिद्धि-

वस्तुतस्तु प्रकृतहेतुव्याप्ति-पक्षधर्मतावैशिष्ट्यस्य तत्प्र-
मितेश्चाप्रसिद्ध्या तदभावो ज्ञातुमुद्भाविष्यतुच्चाशक्य एव ।

लक्षणस्याव्याप्तिमभिधाय साधनविशेषणासिद्ध्यादिस्थले हेतुतावच्छे-
दकविशिष्टहेत्वादेरप्रसिद्ध्याऽसिद्धिलक्षणस्यासम्भवमाह, 'वस्तुतस्त्विति,
'प्रकृतहेत्विति हेतुतावच्छेदकविशिष्टहेतोरित्यर्थः, एतदप्रसिद्धिश्च
पर्वतो वक्त्रिमान् काञ्चनमयधूमादित्यादिसाधनविशेषणाऽसिद्धि-
स्थले बोध्या, 'व्याप्तीति साध्यतावच्छेदकविशिष्टसाध्यनिरूपितव्याप्ते-
रित्यर्थः, एतदप्रसिद्धिश्च पर्वतः काञ्चनमयवक्त्रिमान् धूमादित्यादि-
साध्यविशेषणासिद्धिस्थले बोध्या, 'पक्षधर्मतेति पक्षतावच्छेदकवि-
शिष्टपक्षनिरूपितधर्मत्वस्येत्यर्थः, एतदप्रसिद्धिश्च काञ्चनमयः पर्वतो
वक्त्रिमान् धूमादित्याद्याश्रयासिद्धिस्थले बोध्या, 'वैशिष्ट्यस्येति व्याप्ति-
पक्षधर्मतोभयवैशिष्ट्यस्येत्यर्थः, एतदप्रसिद्धिश्च अयोगोलकं धूमवत्
वक्त्रेः हृदो वक्त्रिमान् धूमादित्यादिबाधसङ्कीर्णासिद्धिस्थले बोध्या ।
न च 'वैशिष्ट्यस्येत्यत्र द्वन्द्वसमासे बहवचनापत्तिः समाहारद्वन्द्वस्य
नियतविषयतया अत्र तदसम्भवादिति वाच्यं । "सर्वोद्वन्द्वो विभा-
षया एकवचनं भवति" इति पाणिन्यनुशासनादितरेतरद्वन्द्वेऽप्येक-
वचनसम्भवात् । न चैवं धव-खदिरद्वयपि प्रयोगापत्तिरिति
वाच्यं । "द्वन्द्वैकत्वं" इति सूत्रेण द्वन्द्वस्य एकवचनत्वे नपुंसकलिङ्गता-
वश्यकत्वबोधनात् । न चैवं समाहारेतरेतरयोः कोभेद इति वाच्यं ।
समाहारद्वन्द्वस्य समाहारत्वप्रकारकबोधजनकत्वेनैव भेदान्तथैव च^(१)

यत्किञ्चिद्व्याप्ति-पक्षधर्मताविशिष्टप्रमितिविरहः सङ्घेतु-
साधारणः स्वप्रमितिविरहो यत्किञ्चित्प्रमितिविरहो

नियतविषयत्वात् इत्यलमधिकेन । नन्वत्र हेतुतावच्छेदकादिवैशिष्ट्यं
वैज्ञानिकं न तु वास्तविकं ग्राह्यं येन साधनविशेषणासिद्धादिस्थले
ऽप्रसिद्धिः स्यात् तथाच हेतुतावच्छेदकरूपेण हेतौ साध्यतावच्छे-
दकरूपेण साध्यव्याप्यत्वं पक्षतावच्छेदकरूपेण पक्षधर्मत्वञ्चावगाहते
या साध्यव्याप्यो हेतुः पक्षवृत्तिरित्याकारिका भ्रमभिन्ना प्रतीति-
स्तद्विरहवत्त्वमसिद्धित्वमिति फलितार्थ इत्यत आह, 'तत्प्रमितेश्चेति
असिद्धस्थले भ्रमभिन्नतादृशप्रतीतेश्चेत्यर्थः । ननु व्याप्ति-पक्षधर्मता-
प्रमितिपदेन प्रकृतहेतुविशेष्यक-प्रकृतसाध्यनिरूपितव्याप्यादिप्रमितिर्न
विवक्षिता किन्तु यत्किञ्चित्साध्यनिरूपितव्याप्तिविशिष्ट-यत्किञ्चि-
त्पक्षधर्मत्वप्रकारक-यत्किञ्चिद्धेतुविशेष्यकप्रमितिरेव विवक्षिता तद्वि-
रहश्च न तत्सामान्याभावः किन्तु तत्प्रतियोगिकाभावमात्रं तेन
हेत्वन्तरे साध्यान्तरौयव्याप्यादिप्रमितिसत्त्वदशायां नाव्याप्तिरित्यत-
आह, 'यत्किञ्चिद्व्याप्तीति 'यत्किञ्चिदिति पक्षेऽपि सम्बध्यते, यत्कि-
ञ्चिनिरूपितव्याप्तिविशिष्ट-यत्किञ्चित्पक्षधर्मत्वप्रकारक-यत्किञ्चिद्धे-
तुविशेष्यकप्रमितिप्रतियोगिकविरह इत्यर्थः । ननु हेतुतावच्छे-
दकरूपेण हेतौ साध्यतावच्छेदकरूपेण साध्यनिरूपितव्याप्यत्वं पक्ष-
तावच्छेदकरूपेण पक्षधर्मत्वञ्चावगाहते या प्रतीतिर्भ्रमानिरूपित-
विशेष्यतावच्छेदकतासम्बन्धेन हेतुतावच्छेदके तदभावोऽसिद्धिर्भ्रमा-
निरूपितविशेष्यतावच्छेदकतासम्बन्धावच्छिन्नतादृशप्रतीत्यभाववद्धेतु-

वा सङ्केतावपि सकलतत्प्रमितिविरहो दुर्निरूपः व्या-
प्त्यभावादेव तद्ग्रहे स एव दोष उपजीव्यत्वात् । यदि
च प्रमितिविरहः स्वरूपसन्नेव दोषः कारणाभाव-
त्वात् तदा व्याप्तादिभ्रमादनुमितिर्न स्यात् न स्याच्च
हेत्वाभासता ज्ञानगर्भतल्लक्षणाभावात् । एतेन व्याप्ति-
प्रमिति-पक्षधर्म्माप्रमितिविरहान्यतरत्वमसिद्धिः अ-

तावच्छेदकवान् हेतुरसिद्ध इति न कोऽपि दोष इत्यत आह,
'स्वप्रमितीति भ्रमानिरूपितविशेष्यतावच्छेदकतासम्बन्धेन स्वीयता-
दृशप्रतीतिविरहो वा विवक्षितः तेन सम्बन्धेन यस्य कस्यचित्
पुरुषस्य तादृशप्रतीतिविरहो वा तेन सम्बन्धेन तादृशप्रतीतिसा-
मान्याभावो वा, नाद्यौ सङ्केतावपि सत्त्वात्, नान्यः दुर्ज्ञेयत्वात्
परकीयप्रतीतेरयोग्यत्वादित्यर्थः । ननु व्याप्त्यभावादिहेतुना स्व-
परसाधारणतादृशप्रतीतिविरहो ज्ञेय इत्यत आह, 'व्याप्त्यभावा-
दिति । ननु स्वरूपसन्नेवायं प्रतिबन्धकोऽतो दुर्ज्ञेयत्वेऽपि न चतिः
इत्यत आह, 'यदि चेति, 'प्रमितिविरहः' भ्रमानिरूपितविशेष्य-
तावच्छेदकतासम्बन्धेन तादृशप्रतीतिसामान्याभावः, 'तदेति, असि-
द्धहेताविति शेषः । तादृशाभावस्य प्रतिबन्धकस्य सत्त्वादिति भावः ।
'तल्लक्षणाभावादिति हेत्वाभाससामान्यलक्षणाभावादित्यर्थः । 'अन्य-
तरत्वमिति अन्यतरवत्त्वमित्यर्थः, यथाश्रुतेऽन्यतरत्वस्यासिद्धिनिष्ठ-
धर्मतयाऽसिद्धिरित्यस्यानन्वयापत्तेः । नन्वन्यतरवत्त्वमनयोः प्रत्येक-

न्यतरत्वञ्च तदन्यान्यत्वं तेनोभयविरहेऽपि नाव्याप्ति-
रिति निरस्तं । व्यर्थविशेषणत्वादेव । स्यादेतत्
व्याप्ति-पक्षधर्मताभ्यां निश्चयः सिद्धिः तदभावोऽसिद्धिः,
अतएवाव्याप्तेऽपक्षधर्मे च तदारोपरूपा सिद्धिरि-
त्यनुमितिः न तु व्याप्त-पक्षधर्मादपि तदनिश्चये । न
चैवं हेतोरप्याभासत्वं तदाभासस्यापि हेतुत्वं स्यात्,

मात्रवत्त्वं तथाच प्रमितिदयाभावस्थलेऽव्याप्तिरित्यत आह, 'अन्य-
तरत्वमिति, 'एतेनेति विवृणोति, 'व्यर्थविशेषणत्वादेवेति पूर्ववत् ।
'व्याप्तीति स्वीयव्याप्ति-पक्षधर्मतोभयप्रकारकनिश्चय इत्यर्थः, 'तद-
भावः' विषयतासम्बन्धेन प्रकृतहेतौ तदभावः, 'व्याप्यादिभ्रमादनु-
मितिर्न स्यादिति पूर्वोक्तवाधकमुद्धरति, 'अतएवेति यत एव विष-
यतासामान्येन भ्रम-प्रमासाधारणस्वीयतदुभयप्रकारकनिश्चयसामा-
न्याभावोऽसिद्धिर्न तु भ्रमानिरूपितविषयतासम्बन्धेन^(१) स्व-परसा-
धारणतादृशनिश्चयाभावोऽत एवेत्यर्थः, 'तदा' व्याप्यादिभ्रमदशायां,
'सिद्धिः' व्याप्ति-पक्षधर्मतोभयप्रकारकनिश्चयः, 'तदनिश्चय इति
स्वीयतदुभयप्रकारकनिश्चयाभाव इत्यर्थः, पुरुषान्तरीयतदुभयनिश्च-
यादनुमितिरिति शेषः । 'न चैवमिति, 'एवं' स्वीयतदुभयनिश्चया-
भावस्यासिद्धित्वे, 'हेतोरपि' पर्वतो वल्गिमान् धूमादित्यादिसङ्केतो-
रपि, स्वीयतदुभयनिश्चयाभावदशायामिति शेषः, 'तदाभासस्यापि'

(१) प्रमानिरूपितविषयतासम्बन्धेनेति ख० ।

दशाविशेषदृष्टत्वात् सेयं स्वरूपसती दूषिका कारणा-
भावत्वात् । न च व्याप्तादिप्रत्येकनिश्चयाभावएव दूषक-
आवश्यकत्वादिति वाच्यं । विशिष्टनिश्चयस्य हेतुत्वे
तदभावस्य कार्यानुत्पादकत्वादिति । मैवम् । एवं स-
व्यभिचारादेरप्यत्रैवान्तर्भावप्रसङ्गात् असिद्धेः स्वरूप-

पर्वतो वङ्गिमान् आकाशादित्याद्यसिद्धहेतोरपि, स्वीयभ्रमात्मक-
तदुभयनिश्चयदशायामिति शेषः, 'हेतुत्वं' सद्धेतुत्वं । न च भ्रमा-
त्मकतदुभयनिश्चयदशायामपि असाधारण्य-विरोधान्यतरस्य हेत्वा-
भासत्वप्रयोजकस्यावश्यं सत्त्वेन सद्धेतुत्वासम्भव इति वाच्यं । पक्ष-
वृत्तित्वे सति साध्यव्यापकीभूताभावप्रतियोगित्वरूपस्यासाधारण्यस्य
वृत्तिमत्त्वे सति साध्यवदवृत्तित्वरूपस्य पूर्वोक्तविरोधस्य च तत्रासत्त्वा-
दिति भावः ।

केचित्तु 'हेतुत्वमित्यस्य असिद्धिशून्यहेतुत्वमित्यर्थः इत्याहुः ।

'सेयमिति, पूर्वोक्तञ्च न हेत्वाभासलक्षणमिति भावः । 'न
चेति, न तदुभयप्रकारकनिश्चयाभाव इति भावः । 'आवश्यकत्वात्'
कारणाभावत्वेन तस्य दोषताया आवश्यकत्वात् । 'विशिष्टेति तदुभय-
प्रकारकनिश्चयस्येत्यर्थः, 'तदभावस्य' तदभावस्यापि, 'कार्यानुत्पा-
दकत्वात्' इति कार्यानुत्पत्तिप्रयोजकत्वादित्यर्थः । 'अत्रैवेति
असिद्धावेवेत्यर्थः, व्याप्ति-पक्षधर्मातानिश्चयाभावेनैवानुमित्यभावसम्भ-
वादिति भावः । ननु प्रतिबन्धकीभूतामिद्विज्ञानोपजीव्यतया व्यभि-

सत्या एव दोषत्वे स्वज्ञानार्थं व्यभिचाराद्यनुद्भावनात् ।
 यदि च तस्मात् सिद्धिर्नोपपद्यत इति तस्योपजीव्यत्वं
 तदाश्रयासिद्ध्यादिज्ञानात् सिद्धिर्नेति स एव पृथग्दोषः
 स्यात् असिद्धिश्च ज्ञाता परस्योद्भावेति स्वज्ञानार्थ-
 मुद्भावितासिद्धिनिर्व्वहार्थञ्चाश्रयासिद्ध्यादिज्ञानमाव-
 श्यकं, कथञ्च हेतु-तदाभासविवेकः सिद्धौ द्वयोरपि

चारादिर्दोष इत्यत आह, 'असिद्धेरिति, 'स्वज्ञानार्थं' प्रतिबन्धकौ-
 भूतासिद्धिज्ञानार्थं, 'अनुद्भावनात्' अनपेक्षणात् । ननु प्रतिबन्ध-
 कौभूतासिद्धिज्ञानं प्रति व्यभिचारादेरनुपजीव्यत्वेऽपि असिद्धि-
 स्वरूपे तस्योपजीव्यत्वमस्येव व्याप्ति-पक्षधर्मतानिश्चयरूपसिद्धिप्रतिव-
 न्धकत्वेनैवासिद्धिस्वरूपोपजीव्यत्वादतः पृथग्दोषत्वं इत्यत आह, 'यदि
 चेति, 'तस्मात्' व्यभिचारादिज्ञानात्, 'सिद्धिः' व्याप्ति-पक्षधर्मता-
 निश्चयः, 'तस्य' व्यभिचारादेः, 'उपजीव्यत्वं' असिद्धिस्वरूप उपजी-
 व्यत्वं, 'स एवेति, 'एवकारो भिन्नक्रमे, 'दोष इत्यनन्तरं योज्यः,
 स पृथग्दोष एव स्यादित्यर्थः, असिद्धिस्वरूपे उपजीव्यत्वात् तथाच
 हेत्वाभासाधिक्यापत्तिरिति भावः । नन्वसिद्धिपूर्वं आश्रयासिद्ध्यादि-
 ज्ञानाभावात् तस्य नोपजीव्यत्वं, न च व्यभिचारादावपि तुल्यं,
 तज्ज्ञानार्थं तत्स्वरूपनिर्व्वहार्थञ्च तत्पूर्वं तज्ज्ञानस्यावश्यकत्वादित्यत-
 आह, 'असिद्धिश्चेति, 'आश्रयासिद्ध्यादिज्ञानं' आश्रयासिद्ध्यादि-
 ज्ञानमपि । दूषणान्तरमाह, 'कथञ्चेति कथं वेत्यर्थः, 'हेतु-तदा-
 भासविवेक इति पर्व्वतो वज्जिमान् धूमादित्यादेरसद्हेतुभिन्नत्वेन

हेतुत्वात् असिद्धौ तदाभासत्वात् व्यभिचारादेः सद्धेतौ
सिद्धिमखण्डयतश्च हेत्वाभासत्वाभावात् । अथ सुष्ठुतौ

पर्वतो वन्निमानाकाशादित्यादेश्च सद्धेतुभिन्नत्वेन व्यवहार इत्यर्थः,
'सिद्धाविति व्याप्ति-पक्षतानिश्चयरूपसिद्धिस्तत्र इत्यर्थः, 'हेतुत्वात्'
सद्धेतुत्वात्, 'आभासत्वात्' द्वयोरप्यसद्धेतुत्वात्, अन्योन्याभावस्तु
नाव्याप्यवृत्तिरिति भावः । किञ्च यदि व्यभिचारादेरसिद्धिस्वरूपं
प्रत्युपजीव्यतयैव हेत्वाभासत्वं तदा व्यभिचार्यादिहेतौ सद्धेतुत्वग्रह-
दशायां व्यभिचारादेः सिद्धिविघटकत्वाभावेनासिद्धिस्वरूपोपजीव्य-
त्वाभावात् तस्य तदानीन्तनहेतुदोषत्वाभावप्रसङ्गः तस्य तदानीन्तन-
हेत्वाभासत्वाभावे तत्सम्बन्धेन तद्वतो हेतोरपि तदानीन्तनहेत्वाभासत्वं
न स्यात् तथाच व्यभिचार्यादिहेतोर्नित्यदुष्टत्वभङ्गप्रसङ्ग इति दूष-
णान्तरमाह, 'व्यभिचारादेरिति, 'सद्धेतौ' व्यभिचार्यादिहेतोः
सद्धेतुत्वग्रहदशायां व्यभिचार्यादिहेतोर्व्याप्ति पक्षधर्मतानिश्चयदशा-
यामिति यावत्, 'सिद्धिमखण्डयतः' व्याप्ति-पक्षधर्मतानिश्चयरूपां
सिद्धिमविघटयतः, 'हेत्वाभासत्वाभावात्' तदानीन्तनहेतुदोषत्वा-
भावप्रसङ्गात्, भिन्नक्रमस्यचकारोऽत्रैव योज्यः । न चेष्टापत्तिः, तथा
सति तत्सम्बन्धेन तद्वतो हेतोरपि तदानीन्तनहेत्वाभासत्वासम्भवात्
व्यभिचार्यादिहेतोर्नित्यदुष्टत्वभङ्गप्रसङ्गापत्तिरिति भावः । एतच्चापा-
ततः व्यभिचारादेस्तदानीं सिद्धिप्रतिबन्धफलानुपहितत्वेऽपि सिद्धि-
प्रतिबन्धस्वरूपयोग्यत्वस्य तस्य तदानीमपि सत्त्वादेव तदानीन्तन-
हेतुदोषत्वसम्भवात् तत्सम्बन्धेन तद्वतो हेतोरपि तदानीन्तनहेत्वा-

जागरेऽपि व्याप्ति-पक्षधर्मतासत्त्वे तदनिश्चयेऽनुमित्य-
नुत्पादे हेत्वाभासप्रयोज्यः सव्यभिचारादौ तथा-
वधारणादित्यसिद्धिरज्ञातापि हेत्वाभासः । न चैवं

भासत्वस्य सुग्रहत्वात् अन्यथा सिद्धान्तिनयेऽपि व्याप्ति-पक्षधर्मता-
निश्चयात्मकसिद्धिविघटकतयैव व्यभिचारादेर्हेतुदोषतयैतदनुयोगस्य
तुल्यत्वात् ।

केचित्तु 'हेतु-तदाभासविवेक इति पर्वतो वज्जिमान् धूमादि-
त्यादेरसङ्केतुभिन्नत्वेन द्रव्यं सत्त्वात् गोत्वान् अश्वत्वादित्यादेश्च सङ्के-
तुभिन्नत्वेन व्यवहारइत्यर्थः । 'सिद्धावित्यादिग्रन्थस्तु पूर्ववत् । ननु
सिद्धिसत्त्वे द्वयोरपि सङ्केतुत्वादिदमयुक्तं सिद्धिसत्त्वेऽपि द्रव्यं सत्त्वा-
दित्यादेर्यव्यभिचारादिहेतुदोषवत्त्वेन दुष्टत्वादित्यत आह, 'व्यभिचा-
रादेरिति, अप्यर्थकाग्रिमचकारोऽत्रैव योजनीयः व्यभिचारादेरपी-
त्यर्थः । 'सङ्केतौ' सङ्केतुत्वग्रहसत्त्वे व्याप्ति-पक्षधर्मतानिश्चयरूपसिद्धि-
सत्त्व इति यावत्, 'सिद्धिमखण्डयतः' व्याप्ति-पक्षधर्मतानिश्चयरूपां
सिद्धिमविघटयतः, 'हेत्वाभासत्वाभावात्' हेत्वाभासत्वप्रयोजकत्वा-
सम्भवात्, भवन्नये सिद्धिविघटकत्वरूपस्यासिद्ध्युपजीव्यत्वस्यैव व्यभि-
चारादेर्हेतुदोषत्वप्रयोजकत्वादिति भावः, इति व्याचक्रुः ।

'व्याप्ति-पक्षधर्मतासत्त्व इति व्याप्ति-पक्षधर्मतासत्त्वेऽपीत्यर्थः,
'तथावधारणादिति अनुमित्यनुत्पादस्य हेत्वाभासप्रयोज्यत्वावधार-
णादित्यर्थः, 'अज्ञातापीति, तत्रानुमित्यनुत्पादस्य हेत्वाभासप्रयोज्य-
त्वान्यथानुपपत्त्येति भावः । 'हेत्वाभासाधिक्यमिति आश्रयासिद्ध्यादे-

हेत्वाभासाधिक्यं कृतान्तर्भावो वा, तेन रूपेण व्या-
प्तसिद्धादेरेव संग्रहादिति चेत्, न, एवं सव्यभिचा-
रादिरप्यसिद्धिः स्यादित्युक्तत्वात् उपजीवनाद्भेदे आ-
श्रयासिद्धादिरपि पृथक् स्यात् सुषुप्तादावनुमित्य-
भावः कारणाभावात् कार्यानुत्पादो हि न प्रतिब-
न्धकमात्रात् किन्तु कारणाभावादपि असत्यपि प्रति-
बन्धके बल्यभावेन दाहानुत्पत्तेः । अथानुमित्यनुत्पादो
हेत्वाभासप्रयुक्त एवेति चेत्, तर्ह्यनुमितौ मनेयोगा-
दिरपि न हेतुः हेत्वाभासादेवानुमित्यनुत्पादे तद्व्यति-

रतिरिक्तहेत्वाभासत्वमित्यर्थः, 'कृतान्तर्भाव इति कृतानां व्यभिचा-
रादीनां असिद्धान्तर्भाव इत्यर्थः, (१) 'तेन रूपेण' तत्साधारणाश्रया-
सिद्धाद्यन्यतमत्वरूपेण, 'व्याप्तिसिद्धादेरेवेति व्याप्तिनिश्चयाभावादे-
रेवेत्यर्थः, 'सङ्गहात्' विभागस्यासिद्धिपदेन सङ्गहात्, 'एवकारा-
द्व्यभिचारादिव्यवच्छेदः । 'असिद्धिः स्यादिति असिद्धित्वेनैव सूत्रज्ञता
विभक्तः स्यादित्यर्थः, 'उपजीवनादिति असिद्धिस्वरूपं प्रति उप-
जीव्यत्वादित्यर्थः, 'भेदे' पृथग्विभजने, 'पृथक् स्यात्' पृथक्विभक्तः
स्यात् । नन्वेवं व्याप्ति-पक्षधर्मतासत्त्वेऽपि सुषुप्तादौ कथमनुमित्यभावः
हेत्वाभासाभावादित्यत आह, 'सुषुप्तादाविति, 'कारणाभावात्'
परामर्शात्मककारणाभावात्, 'कारणाभावादपि' भावरूपकारणाभा-

(१) कृतानां व्यभिचारादीनां अन्यतमत्वरूपेण सङ्गहे असिद्धावन्तर्भाव-
इत्यर्थ इति क० । व्यभिचारादीनामिद्धान्तर्भाव इत्यर्थ इति ग० ।

रेकेणानुमित्यनुत्पादाभावात् सिद्धेरेव तद्धेतुत्वे चर-
मकारणमेव हेतुः स्यात् ।

अन्ये तु गमकतौपयिकप्रतिद्वन्द्वव्याप्ति-पक्षधर्मता-
विरह-तन्नियतयोरन्यतरत्वं हेत्वाभासत्वं तत्राधिक-

वादपि, 'न हेतुरिति, स्यादिति शेषः, 'अनुमित्यनुत्पादे' अनुमित्यनु-
त्पादाभ्युपगमे, 'तद्व्यतिरेकेणेति आत्म-मनोयोगादिव्यतिरेकेणेत्यर्थः,
यद्व्यतिरेकेण कार्यानुत्पादः तस्यैव च कारणत्वादिति भावः ।
नन्विदमिष्टमेवेत्यत आह, 'सिद्धेरेवेति व्याप्ति-पक्षधर्मतानिश्चयस्यै-
वेत्यर्थः, 'हेतुः स्यादिति सर्वत्र हेतुः स्यादित्यर्थः, तथाच कार्यं
निष्करणकं स्यादिति भावः । इदमापाततः भवन्मतेऽपि कथमात्म-
मनोयोगो हेतुः इतरकारणसत्त्वे तद्व्यतिरेकेणानुमितिव्यतिरेका-
सिद्धेः । अथानुमित्यादिकमसमवायिकारणवत् भावकार्यत्वादि-
त्यनुमानात् तत्सिद्धिस्तदा ममापि तुल्यं चरमे सत्यपि कार्यं
सकरणकमिति व्याप्तिवलात् व्याप्तिज्ञानादेः करणतासिद्धेः अन्यथा
तवापि व्याप्तिज्ञानादिकं करणं न स्यात् परामर्शादिचरमकारणे
सति तद्व्यतिरेकेण कार्यव्यतिरेकाभावात्, परमार्थतस्तु तादृशव्या-
प्तिरप्रयोजिकेत्येव तत्त्वं ।

केचित्तु हेत्वाभाससामान्यलक्षणं तद्विशेषलक्षणानि च प्रकारा-
न्तरेणाहुः तन्मतमुपन्यस्यति, 'अन्ये त्विति, अत्र गमकतौपयिक-
प्रतिद्वन्द्वी च व्याप्ति-पक्षधर्मताविरहश्च गमकतौपयिकप्रतिद्वन्दि-
व्याप्ति-पक्षधर्मताविरहं तादृशपक्षधर्मताविरहश्च तन्नियतश्च ता-

बलसमानबलौ बाध-प्रतिरोधौ प्रतिद्वन्द्विनौ व्याप्ति-
पक्षधर्मताविरहश्चासिद्धिः तन्नियतौ च सव्यभिचार-
विरुद्धौ । न चानयोरप्यसिद्धान्तर्भावः, व्याप्तिविरहनि-
यतत्वेन ज्ञातयोः स्वातन्त्र्येणैव दूषकत्वात् भ्रमे विशेष-

दृष्टपक्षधर्मताविरह-तन्नियतौ तयोरित्येकवचनान्तसमाहारद्वन्द्वगर्भ-
इतरेतरद्वन्द्व इति न वज्रवचनापत्तिरिति द्रष्टव्यं । तथाच गमक-
तौपयिकप्रतिद्वन्द्विव्याप्ति-पक्षधर्मताविरह-तद्व्याप्यानामन्यतमत्वं हेत्वा-
भाषसामान्यलक्षणमित्यर्थः, गमकतौपयिकप्रतिद्वन्द्वित्वञ्च साक्षादनु-
मितिप्रतिबन्धकत्वं, गमकतौपयिकस्यावाधितत्वासत्यप्रतिपक्षितत्वस्य
विरोधित्वमित्यपि केचित् । 'तत्र' तेषु मध्ये, 'अधिकबल-समान-
बलाविति, 'अधिकबल-समानबलौ' 'प्रतिद्वन्द्विनौ' 'बाध-प्रतिरोधा-
विति योजनया समानबलप्रतिद्वन्द्वी प्रतिरोधः अधिकबलप्रतिद्वन्द्वी
बाधः इत्यर्थः, समानबलप्रतिद्वन्द्वित्वं बाधनिश्चयत्वाद्यनवच्छिन्नसा-
क्षादनुमितिप्रतिबन्धकतावच्छेदकत्वं, असाधारणत्वमप्येतन्मते प्रति-
रोधान्तर्गतमेव, तन्निश्चयत्वाद्यनवच्छिन्नत्वेनापि वा प्रतिबन्धकता
विशेषणीया, अधिक-बलप्रतिद्वन्द्वित्वञ्च साध्याभावव्याप्यवत्तानिश्चय-
त्वाद्यनवच्छिन्नसाक्षादनुमितिप्रतिबन्धकतावच्छेदकत्वमिति भावः ।
'तन्नियतौ' व्याप्ति-पक्षधर्मताविरहव्याप्तौ, 'सव्यभिचारेति, धर्म-
प्रधानो निर्देशः । ननु यदि तौ तन्नियतौ तदा तदुन्नयनद्वारैव
दोषत्वसम्भवेन कथं तयोः पृथक् दोषत्वमुपेयते इत्याशङ्क्य निरा-
करोति, 'न चेति, 'असिद्धान्तर्भावः' अमिदुपनयनद्वारा दूषकत्वं,
'अनयोः' व्यभिचारि-विरुद्धयोः, 'स्वातन्त्र्येणैवेति व्याप्यादिविरह-

दर्शनस्यैवेति, तन्न, अत्रापि व्याप्ति-पक्षधर्मताविरह-
 एवासिद्धिः पर्यवस्यति तच्च चेत्तमेवान्यतरत्वञ्च न
 लक्ष्णं व्यर्थविशेषणत्वात् हेत्वाभासान्तरवहिष्कृतस्य
 व्याप्ति-पक्षधर्मतानिश्चयविरोधिना रूपस्य विवक्षित-
 त्वात् तच्चाश्रयासिद्ध्यादिकमेवेति ।

इति श्रीमद्भङ्गेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ
 अनुमानाख्य-द्वितीयखण्डे असिद्धिपूर्वपक्षः ॥०॥

निश्चयं विनैवेत्यर्थः, व्याप्तिविरहव्याप्यत्वेनेत्युपलक्षणं व्यभिचारव-
 त्त्वादिनेत्यपि बोध्यं । नचेवं व्याप्ति-पक्षधर्मताविरहत्वमेवासिद्धि-
 लक्षणं पर्यवसितं तच्च दूषितमेवेत्यत आह, 'अत्रापीति अस्मिन्मते-
 ऽपीत्यर्थः, 'उक्तमिति अननुगमरूपं दूषणमिति शेषः । नन्वन्यतर-
 त्वेनानुगमोऽस्त्वित्यत आह, 'अन्यतरत्वञ्चेति, 'व्यर्थेति असाधक-
 तानुमानेऽन्यतरत्वरूपस्य विशेषणस्य व्यर्थत्वादित्यर्थः, प्रत्येकं व्याप्ति-
 त्वाद्यवच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावत्वेनैव गमकत्वसम्भवादिति भावः ।
 ननु विशिष्टाभाव एव सामान्यलक्षणघटको न तु व्याप्यादिप्रत्ये-
 काभावः तथाच विशिष्टाभावस्यैवासिद्धित्वेन व्याप्यादिप्रत्येकाभाव-
 स्यात्तथात्वान्नानुगम इत्यत आह, 'हेत्वाभासान्तरेति, 'वहिष्कृतस्य'
 भिन्नस्य, 'विवक्षितत्वात्' अत्र शास्त्रेऽसिद्धित्वेन विवक्षितत्वात्, 'आश्र-
 यासिद्ध्यादिकमेवेति न तु विशिष्टाभाव इत्यर्थः, 'आदिपदाद्या-
 प्यादिप्रत्येकाभावपरिग्रहः ।

इति श्रीमथुरानाथतर्कवागीश-विरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये
 अनुमानाख्यद्वितीयखण्डरहस्ये असिद्धिपूर्वपक्षरहस्यम् ।

अथासिद्धिसिद्धान्तः ।

उच्यते आश्रयासिद्धिः स्वरूपासिद्धिः व्याप्यत्वा-
सिद्धिश्च प्रत्येकमेव दोषः प्रत्येकस्य ज्ञानादुद्भावना-
दानुमितिप्रतिबन्धात् न तु विशिष्टाभावः परा-
मर्शविषयाभावो वा व्यर्थविशेषणत्वात् तस्य ज्ञान-

अथासिद्धिसिद्धान्तरहस्यं ।

‘ज्ञानादिति प्रत्यक्षादितो ज्ञानादित्यर्थः, तेनोद्भावनादिति सङ्ग-
च्छते, एवमग्रेऽपि, ‘विशिष्टाभाव इति व्याप्तिविशिष्टपक्षधर्मत्वाभाव-
इत्यर्थः, एतच्च साध्यव्याप्यहेतुमान्पक्षः इति पक्षविशेष्यकपरामर्श-
स्यैव हेतुतावादिनां नयानां नयेन, साध्यव्याप्यत्वे सति पक्षवृत्ति-
त्वान् हेतुरिति परामर्शस्यापि हेतुत्वनये तु विशिष्टाभाववद्धेतुरपि
दोष इत्युक्तमधस्तात् । ‘परामर्शविषयाभावो वेति परामर्शविषय-
प्रतियोगिकाभावत्वरूपेण व्याख्यादिप्रत्येकाभावो वेत्यर्थः, दोष-
इत्यनुषज्यते, ‘व्यर्थविशेषणत्वात्’ विशिष्टाभावत्वपरामर्शविषयप्रतियो-
गिकाभावत्वरूपस्य विशेषणस्य दूषकतायामप्रयोजकत्वात्, तेन रूपेण
ज्ञानस्याप्रतिबन्धकत्वादिति यावत् । नन्वेवं तद्रूपेण ज्ञानादिसत्त्वे-
ऽप्यनुमितिः स्यादित्यत आह, ‘तस्येति, प्रकारित्वं षष्ठ्यर्थः, तद्रूपेण
ज्ञानमुद्भावनञ्च ‘अनुमितिप्रतिबन्धात् विनापीति योजना, यत्र
नानुमितिप्रतिबन्धस्तत्रापि तत्प्रकारकज्ञानमुद्भावनञ्च तिष्ठतीत्यर्थः,
तथाच तद्रूपेण ज्ञानादिसत्त्वेऽनुमिताविष्ठापत्तिरिति भावः ।

मुद्गावनं विनाप्यनुमितिप्रतिबन्धात् अनुभवसिद्धे हि लक्षणं न तु लक्षणानुरोधेनानुभवकल्पना, परामर्शविषयाभावत्वेनानुगतेन त्रयाणामसिद्धत्वेन संग्रहो महर्षिणा कृत इति न विभागविरोधो हेत्वाभासाधिक्यं वा ।

केचित्तु तद्रूपेण ज्ञानस्यानुमितिप्रतिबन्धकत्वाभावे हेतुमाह, 'तस्येति, तेन रूपेण ज्ञानमुद्गावनञ्च विनाप्यनुमितिप्रतिबन्धात्तेन रूपेण ज्ञानमनुमित्यप्रतिबन्धकमित्याहुः । तदसत् । तथा सति व्यभिचारादिज्ञानं विनाप्यनुमितिप्रतिबन्धात् व्यभिचारादिज्ञानस्याप्यप्रतिबन्धकत्वापत्तेरिति ध्येयं । ननु परामर्शविषयप्रतियोगिकाभावस्य महर्षिप्रणीतासिद्धिलक्षणतया तद्रूपेण ज्ञानादप्यनुमितिप्रतिबन्धो भवतीत्यनुभवः कल्प्यत इत्यत आह, 'अनुभवसिद्धे हीति लक्षणप्रकारकज्ञानादनुमितिप्रतिबन्धेऽनुभवसिद्धे हीत्यर्थः, 'लक्षणं' लक्षणस्यानुमितिप्रतिबन्धकतावच्छेदकत्वं । ननु त्रयाणां प्रत्येकमेव दोषत्वे त्रितयसाधारणैकरूपाभावेन विभागस्य वा न्यूनत्वं त्रयाणां मध्ये कयोश्चिद्वयोः^(१) हेत्वाभासव्यतिरिक्तत्वं वा स्यादित्यत आह, 'परामर्शविषयेति परामर्शविषयाभावत्वरूपेणानुगतेनासिद्धित्वेन त्रयाणां सङ्गः इति योजना, 'विरोधः' न्यूनत्वं, 'हेत्वाभासाधिक्यं' वेति त्रयाणां मध्ये कयोश्चिद्वयोर्हेत्वाभासव्यतिरिक्तत्वं वेत्यर्थः । ननु परामर्शविषयाभावत्वं परामर्शविषयत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावत्वं

तत्प्रतियोगिकाभावत्वमात्रं वा नाद्यः, व्याख्यादिप्रत्येकाभावेऽव्याप्तेः
तादृगाभावस्याप्रसिद्धेय, 'न ह्येवं पदार्थोऽस्ति यत्र परामर्शविषयो
नास्ति, अन्ततः परामर्शविषयाभावस्यैव सर्वत्र वृत्तेः । न द्वितीयः,
वैगिद्य-व्यामज्यवृत्तिधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकव्याख्याभावकेवल-
साध्याभाव-साधनाभावादौ चानाभासेऽतिव्याप्तेः । अथ हेत्वाभासत्वे
सति परामर्शविषयप्रतियोगिकाभावत्वमसिद्धित्वं अतो नाभासभिन्ने-
ऽतिव्याप्तिः परामर्शपदञ्च साध्याव्यभिचरितसम्बन्धिहेतुमान्पक्षः^(१)
इत्याकारकातिरिक्ताविषयकान्वयव्याप्तिघटितपरामर्शपरमतो हेतु-
निष्ठव्यतिरेकव्याप्त्यभावरूपानुपसंहारित्वे नातिव्याप्तिः, सप्तमपदार्थ-
रूपाभावस्य घटकतया^(२) च हेतुनिष्ठसाध्याभाववृत्तित्वरूपे साधा-
रण्ये नातिव्याप्तिः तस्य भावत्वादिति चेत् । न । गोत्वान् अश्वत्व-
दित्यादौ हेतोः साध्यसमानाधिकरण्याभावरूपे विरोधे, हृदो
वन्निमान् धूमादित्यादौ यत्र भावस्य साध्यता तत्र पक्षवृत्तिसाध्या-
भावरूपे बाधे, गोत्वाभावः सास्त्रादिमान् गोत्वाभावादित्यादौ
यत्राभावस्य पक्षता हेतुता च तत्र साध्याभाववत्पक्षरूपे बाधे,
साध्याभावव्याप्यवत्पक्षरूपे सत्प्रतिपक्षे, साध्याभाववृत्तिहेतुरूपे
साधारण्ये साध्यासमानाधिकरणहेतुरूपे विरोधे चातिव्याप्तेः तेषां
हेत्वाभासत्वात् परामर्शविषयप्रतियोगिकाभावत्वाच्च । यत्र भावस्य
पक्षता तत्र पक्षतावच्छेदकाभाववत्पक्षरूपाश्रयासिद्धौ साधनाभाव-

(१) साध्याभाववद्वृत्ति-साध्यसमानाधिकरणहेतुमान् पक्ष इत्यर्थः ।

(२) घटपदार्थातिरिक्तस्वरूपस्याभावस्य घटकतयेत्यर्थः ।

वत्पक्षरूपस्वरूपासिद्धौ चाव्याप्तेः तस्याभावत्वाभावात्, एवं यत्र भावस्य साध्यता तत्र साध्यतावच्छेदकाभाववत्साध्यात्मकसाध्यविशेषणासिद्धौ, यत्र भावस्य साधनता तत्र साधनतावच्छेदकाभाववत्साधनात्मकसाधनविशेषणासिद्धौ, व्याप्यभाववत्साधनात्मकव्याप्तिविरहरूपासिद्धौ चाव्याप्तेः। अथ साध्याव्यभिचरितसम्बन्धिहेतुमान् पक्ष इत्याकारकातिरिक्ताविषयकान्वयिपरामर्शेन यद्वर्मावच्छिन्ने यद्वर्मावच्छिन्नवत्त्वं विषयीक्रियते तद्वर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभाववत्तद्वर्मावच्छिन्नमसिद्धिरिति विवक्षितं। न चैवं हेतुनिष्ठपक्षवृत्त्यभावप्रतियोगित्व-हेतुनिष्ठपक्षवृत्त्यन्यत्वादिरूपे स्वरूपासिद्ध्यादावव्याप्तिरिति वाच्यं। समानप्रकारकज्ञानस्यैव प्रतिबन्धकत्ववादिनां नव्यानां नये साधनाभाववत्पक्षादेरेव स्वरूपासिद्ध्यादितया तस्य स्वरूपासिद्धित्वादिविरहादिति चेत्। न। साध्यसामानाधिकरण्याभाववद्धेतुरूपे विरोधे साध्याभाववदवृत्ति-त्वाभाववद्धेतुरूपे साधारण्ये चातिव्याप्तेः साधनात्यन्ताभाववत्पक्षादेरिव साधनात्यन्ताभावव्याप्यवत्पक्ष-साधनवद्विन्नपक्ष-साधनवद्धेदव्याप्यवत्पक्षादेरपि स्वरूपासिद्ध्यादितया तत्राव्याप्तिश्चेति^(१)। मैवं। परामर्शविषयाभावत्वपदेन परामर्शविरोधितावच्छेदकरूपत्वस्य विवक्षितत्वात्, परामर्शविरोधितावच्छेदकत्वन्तु निश्चयनिष्ठं यादृशविशिष्टनिरूपितविषयित्वसामान्यं परामर्शप्रतिबन्धकतानतिरिक्तवृत्ति तादृशविशिष्टत्वं, हेत्वाभाससामान्यलक्षणोक्तदिग्वैवात्रापि

तच्चद्वलप्रयोजनमवसेयं । एतेनावच्छेदकत्वमत्र न स्वरूपसम्बन्धवि-
 शेषः माणिक्यमयः पर्वतो वक्लिमान् धूमादित्यादौ माणिक्यमय-
 त्वाभाववत्पर्वतादिरूपे आश्रयासिद्ध्यादावसम्भवापत्तेः पर्वतत्वादि-
 रूपेण वस्त्वन्तरे माणिक्यमयत्वाभाववरूपेण यत्किञ्चिदसुज्ञान-
 द्यापि वक्लिष्याप्यधूमवान् माणिक्यमयः पर्वत इत्यादिपरामर्श-
 मतिवन्धकतया प्रतिवन्धकतावच्छेदकपर्वताद्यप्रवेशात्, अत एव
 विषयितासम्बन्धेनान्यूनवृत्तित्वमपि न, नापि विषयितासम्बन्धेनान-
 तिरिक्तवृत्तित्वं माणिक्यमयत्वाभाववत्पर्वतादिरूपाश्रयासिद्ध्यादेः
 केवलपर्वताद्यनतिरिक्ततया पर्वत इत्यादिकेवलपर्वतादिविषयक-
 निश्चयेऽपि विषयितासम्बन्धेन तत्सत्त्वादावसम्भवापत्तेरिति निरस्तं ।
 माणिक्यमयः पर्वतो वक्लिमानित्यादौ पर्वतत्वविशिष्टपर्वतनि-
 रूपितस्य माणिक्यमयत्वाभाववान् पर्वत इति निश्चयनिष्ठस्य
 माणिक्यमयत्वाभाववत्पर्वतत्वविशिष्टनिरूपितविषयित्वस्य परा-
 मर्शप्रतिवन्धकतानतिरिक्तवृत्तितया केवलपर्वतत्वविशिष्टपर्वतादा-
 वतित्याप्तेर्वारणाय सामान्यपदं, यन्निरूपितविषयितासामान्यमि-
 त्युक्तौ माणिक्यमयत्वाभाववत्पर्वतादावसम्भवः पर्वत इतिनिश्चय-
 निष्ठपर्वतनिरूपितविषयित्वस्यापि माणिक्यमयत्वाभाववत्पर्वत-
 निरूपितत्वेन सामान्यान्तर्गतत्वात् तस्य च प्रतिवन्धकतानवच्छेद-
 कत्वादतो यादृशविशिष्टनिरूपितेति, पर्वत इतिनिश्चयनिष्ठपर्व-
 तविषयित्वञ्च न माणिक्यमयत्वाभाववत्पर्वतत्वविशिष्टपर्वतनिरू-
 पितं विशिष्टसत्तानिरूपिताधारत्ववद्विशिष्टपर्वतनिरूपितविषयि-
 त्वस्य विलक्षणस्य माणिक्यमयत्वाभाववान् पर्वत इतिज्ञान एव

सत्त्वात्, पर्वतो माणिक्यमयो न वेति संशयनिष्ठस्य तादृश-
विषयित्वस्य सामान्यान्तर्गतस्य प्रतिबन्धकतातिरिक्तवृत्तित्वात्
असम्भववारणाय निश्चयनिष्ठमिति, निश्चयश्चागृहीताप्रामाण्यकत्वेन
निवेशनीयः नातस्तद्दोषतादवस्थ्यं ।

न चात्र विशिष्टनिरूपितविषयितासामान्यनिवेशे प्रतिबन्धक-
तायाः स्वरूपसम्बन्धरूपावच्छेदकत्वमेव निवेश्यतां किमनतिरिक्त-
वृत्तित्वनिवेशेनेति^(१) वाच्यं । माणिक्यमयत्वाभाववान् पर्वतोरूपवान्
इति निश्चयनिष्ठस्य रूपप्रकारित्वावच्छिन्नमाणिक्यमयत्वाभाववत्-
पर्वतत्वविशिष्टपर्वतनिरूपितविशेष्यकत्वस्य माणिक्यमयत्वाभावप्रका-
रित्वावच्छिन्नकेवलपर्वतत्वविशिष्टविशेष्यकत्वातिरिक्तस्य तादृशविष-
यितासामान्यान्तर्गतस्य स्वरूपसम्बन्धरूपतादृशपरामर्शविरोधिताव-
च्छेदकत्वविरहादसम्भवापत्तेः । न च तथापि साधारण्ये साध्या-
समानाधिकरणहेत्वादिरूपविरोधे साध्यव्यापकीभूताभावप्रतियोगि-
त्वाभाववद्धेतुरूपे अनुपसंहारित्वे चातिव्याप्तिर्दुर्वारेति वाच्यं । साधा-
रणत्व-विरुद्धत्वानुपसंहारित्वाविषयकत्वेन निश्चयस्य साधारण्यत्व-
विरुद्धत्वानुपसंहारित्वानिरूपितत्वेन यादृशविशिष्टनिरूपितविषयि-
त्वस्य वा विशेषणात् । न चैवं वज्रव्यभिचारिमेयत्ववान् पर्वतो
वज्रिमान् मेयत्वादित्यादौ वज्रव्यभिचारिमेयत्वरूपाश्रयासिद्धेः
साधारण्यरूपत्वादव्याप्तिः एवं वज्रसमानाधिकरणहृदत्ववान् पर्वतो
वज्रिमान् हृदत्वादित्यादौ वज्रसमानाधिकरणहृदत्वरूपाश्रयासिद्धे-

(१) किमनतिरिक्तवृत्तित्वपर्यन्तेनेति ग० ।

विरोधत्वरूपत्वादव्याप्तिः वज्रभावव्यापकीभूताभावप्रतियोगिहृदत्व-
वान् पर्वतो वज्रिमान् हृदत्वादित्यादौ वज्रभावव्यापकीभूताभाव-
प्रतियोगित्वाभाववद् हृदत्वादिरूपाश्रयासिद्धेः अनुपसंहारित्वरूपत्वा-
दव्याप्तिरिति वाच्यं । साध्य-साधन-पक्षभेदेनासिद्धिलक्षणस्य विभि-
न्नतया वज्रव्यभिचारिमेयत्ववानित्यादौ आश्रयासिद्ध्यात्मकसाधा-
रणाद्यविषयकत्वादिविशेषणस्य लक्षणाघटकत्वात् शब्दानुगमस्या-
किञ्चित्करत्वात् । अत एव माणिक्यमयः पर्वतो वज्रिमान् धूमा-
दित्यादौ साधारणाद्यप्रसिद्धावपि न क्षतिः तत्र तदविषयकत्व-
विशेषणस्यानुपादेयत्वात् । परामर्शे च व्यतिरेकव्याप्तेरप्युपादानाद्य-
तिरेकव्याप्तिविशिष्टहेत्वभाववत्पक्षरूपायां व्याप्यत्वासिद्धौ नाव्याप्तिः ।
ननु तथापि पर्वतान्यः पर्वतोदहनान्यदहनवान् धूमान्यधूमात्
इत्यादौ पर्वतान्यत्वाभाववत्पर्वतादिरूपाश्रयासिद्ध्यादावव्याप्तिः तत्रा-
नाहार्यपरामर्शप्रसिद्ध्या तत्प्रतिबन्धकत्वाप्रसिद्धेः । न च तत्तदि-
च्छानामुत्तेजकत्वनये आहार्यज्ञानस्यापि प्रतिबन्धतया आहार्य-
परामर्शविरोधितामादायैव तत्र लक्षणसम्भव इति वाच्यं । पर्वता-
न्यत्वाभाववान् पर्वत इत्यादिबाधनिश्चयविरहदशायामपीच्छाविरहे
पर्वतान्यः पर्वत इत्यादिप्रत्यक्षोत्पादवारणाय तादृशप्रत्यक्षं प्रती-
क्षाया हेतुत्वावश्यकत्वे तत्र तादृशबाधनिश्चयस्य प्रतिबन्धकत्वे
मानाभावात् । न च यादृशविशिष्टनिरूपितविषयिताशाल्यगृही-
ताश्रमाण्यकनिश्चयाव्यवहितोत्तरवर्त्यनाहार्यज्ञानसामान्यं न प्रकृत-
परामर्शात्मकं तादृशविशिष्टमसिद्धिरिति विवक्षितं पर्वतान्यः पर्वत-
इत्यादावाहार्यरूप एव परामर्शः प्रसिद्धः परामर्शप्रतिबन्धकत्वस्य

अतएव “ये व्याप्तिविरह-पक्षधर्म्मताविरहरूपास्ते-
ऽसिद्धिभेदमध्यमध्यासते तदन्ये च यथायथं व्यभिचा-
रादयः” इति सिद्धान्तप्रवादेऽपि । न चैवं साक्षात्-
प्रतिबन्धकत्वेन बाध-प्रतिरोधयोर्व्याप्तिविरहलिङ्गत्वेन
सव्यभिचार-विरुद्धयोरपि सङ्गहे विभागव्याघातः,
स्वतन्त्राभिप्रायस्य निषेधुमशक्यत्वात् अन्यथा शास्त्रे
परिभाषोच्छेदापत्तेः सव्यभिचारादेरप्येवंरूपसत्त्वेऽप्यु-
पजीव्यत्वेन पृथक्त्वम् उपधेयसङ्करेऽप्युपाधेरसङ्करात् ।

लक्षणेऽप्रवेणात् तस्याप्रतिबन्धत्वेऽपि न चतिरिति वाच्यं । वस्तुमात्र-
विषयकनिश्चयाव्यवहितोत्तरवर्त्यनाहार्यज्ञानसामान्यस्यैव तादृशपरा-
भर्मानात्मकतया वस्तुमात्रस्यैव तत्रासिद्धित्वापत्तेरिति चेत्, न,
पर्वतान्यः पर्वत इत्यादेरपार्थक्यतया^(१) तत्र पर्वतान्यत्वाभाववत्पर्व-
तादेराश्रयासिद्धित्वानभ्युपगमादित्यास्तां विस्तरः ।

‘अत एवेति यत एव एकोविशिष्टाभावो नासिद्धिः किन्तु
नानारूपेत्यर्थः, अन्यथा ये इत्यादौ वज्रवचनमसङ्गतं स्यादिति
भावः । ‘लिङ्गत्वेन’ व्याप्यत्वेन, ‘सङ्गहे’ सङ्गहसम्भवे, ‘विभागव्याघातः’
विभागस्य पञ्चविधत्वविरोधः, ‘परिभाषेति, एवं कथं न कृतमिति
सर्व्वचानुयोगसम्भवादिति भावः । ‘एवंरूपसत्त्वेऽपि’ उक्तरूपासिद्धि-
त्वसत्त्वेऽपि, ‘उपजीव्यत्वेनेति, ज्ञानकृतेनेति भावः । हेतुन्तरमाह,

(१) अपार्थक्यत्वं यादृशबोधत्वावच्छेदेन आहार्यत्वं तादृशबोधार्थप्रयुक्त-
वाक्यत्वं ।

नन्वाश्रयाप्रसिद्धा कथमाश्रयासिद्धिरुद्भावा । न च
शशीयतया गवि शृङ्गनिषेधवत् व्योमकमलमिति
वाच्यं । शशशृङ्गनिषेधो न गवीत्युक्तत्वादिति चेत्,

‘उपधेयेति, ‘असङ्करात्’ ज्ञानासङ्करात्, यदा ननु उपजीव्यत्वमेव
कथं विषयाभेदादित्यत आह, ‘उपधेयेति, ‘असङ्करात्’ भेदात् ।
पक्षाप्रसिद्धापि आश्रयासिद्धिः यथा व्योमकमलं सुगन्धि कमल-
त्वादित्यादिभ्रमेणाशङ्कते, ‘नन्विति, ‘कथमिति, पक्षोऽसिद्ध इत्यत्र
सिद्धसिद्धिव्याघातादिति भावः । ‘व्योमकमलमिति, निषेधमिति
शेषः, व्योमीयतया कमलं नास्तीत्युद्भाव्यमित्यर्थः । ‘शशशृङ्गेति
शशीयतया शृङ्गनिषेधोनास्तीत्युक्तत्वादित्यर्थः । आश्रयासिद्धेर्नाक्त-
सुदाहरणमिति परिहरति, ‘व्योमेति व्योमकमलं सुरभीत्यर्थः,
‘निश्चितानन्वयत्वेन’ व्योमकमलस्य निश्चितान्वयकत्वाभावेन व्योम-
कमलस्याप्रसिद्धत्वेनेति यावत्, ‘अपार्थक्यं’ अनुमित्यजनकं, न
वाश्रयासिद्धिनिबन्धनमिति भावः । इदन्वसतोव्योमकमलस्य पक्ष-
तातात्पर्य्यदशायामुक्तं, यदा तु गगनीयत्वेन प्रसिद्धकमलमेव पक्ष-
स्तदा तु पक्षविशेषणभावरूपाश्रयासिद्धिरेवेति बोध्यं । नन्वेवं
आश्रयासिद्धेराश्रयासिद्धित्वाभावे का तर्ह्याश्रयासिद्धिरित्यत आह,
‘आश्रयेति, आश्रये पक्षे विशेषणस्य पक्षतावच्छेदकस्यासिद्धिरभावः
आश्रयासिद्धिरित्यर्थः, धान्येन धनवानिति वदभेदे तृतीया, उदा-
हरणञ्च माणिक्यमयः पर्वतोवन्निमान् धूमादित्यादौ माणिक्यमय-

व्योमकमलमिति निश्चितानन्वयत्वेनापार्थक्यम् आश्र-
यविशेषणासिद्ध्या चाश्रयासिद्धिरसङ्कीर्णा ।

त्वादिविशेषणस्य पर्वते अभावादिति भावः । 'असङ्कीर्ण' इति सा च
हेत्वाभासान्तरेणासङ्कीर्णापि माणिक्यमयः पर्वतोवह्निमान् धूमा-
दित्यादावित्यर्थः, एतत्तु सम्भवप्राचुर्येणोक्तं, वस्तुतो हेत्वाभासान्तर-
सङ्करेऽपि न दोष इत्युक्तमेव । इदन्ववधातव्यं न केवलं पक्षे पक्ष-
तावच्छेदकाभावः^(१) आश्रयासिद्धिः किन्तु पक्षे पक्षतावच्छेदकाभाव-
व्याप्यः, पक्षे पक्षतावच्छेदकवदन्योन्याभावः, पक्षे तादृशान्योन्याभाव-
व्याप्यः, पक्षतावच्छेदके पक्षतावच्छेदकतावच्छेदकाभावः, पक्षतावच्छे-
दके पक्षतावच्छेदकतावच्छेदकाभावव्याप्यः, पक्षतावच्छेदके पक्षताव-
च्छेदकतावच्छेदकवदन्योन्याभावः, पक्षतावच्छेदके तादृशान्योन्याभाव-
व्याप्यः, पक्षतावच्छेदकाभाववान् पक्षः, तद्व्याप्यवान् पक्षः, पक्षताव-
च्छेदकवदन्योन्याभाववान् पक्षः, तद्व्याप्यवान् पक्षः, पक्षतावच्छेदक-
तावच्छेदकाभाववत्पक्षतावच्छेदकं, तद्व्याप्यवत्पक्षतावच्छेदकं, पक्षता-
वच्छेदकतावच्छेदकवदन्योन्याभाववत्पक्षतावच्छेदकं, तद्व्याप्यवत्पक्ष-
तावच्छेदकमित्यादिरप्याश्रयासिद्धिः । समानप्रकारकज्ञानस्य प्रति-
वन्धकत्ववादिनां नयानां नये तु पक्षतावच्छेदकाभाववान् पक्षः,
तद्व्याप्यवान् पक्षः, पक्षतावच्छेदकवदन्योन्याभाववान् पक्षः, तद्व्याप्यवान्
पक्षः इत्यादिरेवाश्रयासिद्धिः, न तु पक्षे पक्षतावच्छेदकाभावः
तद्व्याप्यादिरपि^(२) तज्ज्ञानस्यानुमिति-तत्कारणपरामर्शाप्रतिवन्धक-

(१) पक्षवृत्तित्वविशिष्टपक्षतावच्छेदकाभाव इत्यर्थः ।

(२) पक्षतावच्छेदके पक्षतावच्छेदकतावच्छेदकाभावस्तद्व्याप्यादिरपीति क० ।

तथा हेत्वाभासत्वस्यैव तत्राभावात् वक्ष्यमाणानुगताश्रयासिद्धिलक्षणस्य
तत्रासत्त्वाच्च । सर्वसाधारणाश्रयासिद्धानुगतलक्षणानु पक्षतावच्छेदक-
प्रकारकपक्षग्रहविरोधितावच्छेदकत्वं, तादृशग्रहविरोधितावच्छेद-
कत्वञ्चाप्यत्रागृहीताप्रामाण्यकनिश्चयनिष्ठं यादृशविशिष्टनिरूपित-
विषयित्वसामान्यं तादृशपक्षग्रहप्रतिबन्धकतानतिरिक्तवृत्ति तादृश-
विशिष्टत्वं तेन नासिद्धिसामान्यलक्षणवदवच्छेदकत्वविकल्पावकाशः,
प्रत्येकदलव्यावृत्तिरपि तत्रोक्तदिशाऽवसेया । पक्षतावच्छेदकप्रकारक-
ग्रहपदेन पक्षतावच्छेदकवान् पक्ष इत्याकारकातिरिक्ताविषयकग्रहो
ग्राह्यः तेन स्वरूपासिद्धि-व्याप्यत्वासिद्धादेरपि परामर्शात्मकपक्षता-
वच्छेदकप्रकारकग्रहविरोधितावच्छेदकत्वेऽपि नातिव्याप्तिः पक्षता-
वच्छेदकांशे वा प्रतिबन्धकत्वं ग्राह्यं । एवं स्वरूपासिद्धिरपि नाना-
विधा साधनतावच्छेदकावच्छिन्नसाधनाभाववत्पक्षः, तादृशसाधना-
भावव्याप्यवत्पक्षः, साधनवदन्योन्याभाववान् पक्षः, तादृशान्योन्याभाव-
व्याप्यवान् पक्षः, पक्षे साधनतावच्छेदकावच्छिन्नसाधनाभावः, पक्षे
तादृशसाधनाभावव्याप्यः, पक्षे साधनतावच्छेदकावच्छिन्नसाधनवद-
न्योन्याभावः, पक्षे तादृशान्योन्याव्याप्यश्चेति क्रमेणाष्टविधत्वात् ।
समानप्रकारकज्ञानस्यैव प्रतिबन्धकत्ववादिनां नव्यानां नये तु
साधनतावच्छेदकावच्छिन्नसाधनाभाववत्पक्ष इत्यादिरूपा चतुर्विधैव
स्वरूपासिद्धिः न तु पक्षे साधनतावच्छेदकावच्छिन्नसाधनाभावादिरू-
पापि तज्ज्ञानस्थानुमिति-तत्कारणपरामर्शाप्रतिबन्धकतया हेत्वा-
भासत्वस्यैव तत्राभावात् वक्ष्यमाणानुगतस्वरूपासिद्धिलक्षणस्य तत्रा-
सत्त्वाच्च । पक्षतावच्छेदकावच्छिन्नपक्षविशेष्यक-साधनतावच्छेदकाव-

च्छिन्नसाधनप्रकारकग्रहविरोधितावच्छेदकत्वं स्वरूपासिद्धित्वं, भवति
 च हृदोवन्निमान् धूमादित्यादौ धूमाभाववद् हृदादिरूपा स्वरूपा-
 सिद्धिः धूमवान् हृद इत्यादिपक्षविशेष्यकग्रहविरोधितावच्छेदिकेति
 लक्षणसमन्वयः, हृदोवन्निमान् धूमादित्यादौ द्रव्यसामान्याभाववद्-
 हृद-धूमसामान्याभाववद् द्रव्यादिष्वतिव्याप्तिवारणाय पक्षतावच्छेदक-
 साधनतावच्छेदकयोः प्रवेशः । न चैवं हृदोवन्निमान् धूमादित्यादौ
 हृदवृत्तित्वाभाववद् धूमादिरूपस्वरूपासिद्धौ वन्निमानाकाशादित्यादौ
 वृत्तित्वाभाववदाकाशादिरूपस्वरूपासिद्धौ चाव्याप्तिः नयनये ग्राह्या-
 भावावगाहिनिश्चयस्यैव प्रतिबन्धकतया तज्ज्ञानस्य पक्षतावच्छेदका-
 वच्छिन्नविशेष्यक-साधनतावच्छेदकावच्छिन्नप्रकारकग्रहाविरोधित्वा-
 दिति वाच्यं । नयमते तस्य स्वरूपासिद्धित्वविरहात् । न चैवं तस्या-
 धिक्यापत्तिरिति वाच्यं । हृदो मन्निमान् धूमादित्यादौ हृद-
 वृत्तित्वाभाववद् धूमादेर्हृत्वाभासत्वस्यैवाभावात् वन्निमानाकाशादि-
 त्यादौ वृत्तिमत्त्वाभाववदाकाशादेश्च साध्यसामानाधिकरण्याभाववद्धे-
 त्वादेरिवासाधारणत्वे विरोधे वान्तर्भावात् । पक्षतावच्छेदकावच्छिन्न-
 विशेष्यक-साधनतावच्छेदकावच्छिन्नग्रहविरोधावच्छेदकत्वञ्चात्रापि
 अगृहीताप्रामाण्यकनिश्चयनिष्ठयादृशविशिष्टनिरूपितविषयितासा-
 मान्यं तादृशग्रहविरोधितानतिरिक्तवृत्ति तादृशविशिष्टत्वं, तेन
 नासिद्धिसामान्यलक्षणवदवच्छेदकत्वविकल्पावकाशः, प्रत्येकदलव्यावृ-
 त्तिरपि पूर्वोक्तदिशाऽवसेया, तादृशग्रहविरोधित्वञ्च तादृशग्रहत्वा-
 वच्छिन्नप्रतिबन्धतानिरूपितविरोधित्वं तेन पर्वतो वन्निमान् हृद-
 त्वादित्यादौ वज्रभाववद् वृत्तिहृदत्वादिरूपसाधारण्य-वन्निमदवृत्ति-

हृदत्वादिरूपविरोध-वज्रभावव्यापकीभूताभावाप्रतियोगिहृदत्वादि-
रूपानुपसंहारित्व-वज्रव्यभिचरितसम्बन्धिताभाववद् हृदादिरूपव्याप्य-
त्वासिद्धिषु परामर्शात्मकतादृशग्रहविरोधितामादाय नातिव्याप्तिः ।
न वा आश्रयासिद्धि-साधनविशेषणासिद्धोरतिव्याप्तिः तेषां ज्ञानस्य
तादृशग्रहत्वावच्छिन्नप्रतिबन्धतानिरूपितप्रतिबन्धकत्वाभावात्, अत-
एव हृदो वज्रिमान् धूमादित्यादौ वज्रभाववद्वृत्तिधूमाभाववद्-
हृद-वज्रिसमानाधिकरणधूमाभाववद् हृद-वज्रभावव्यापकीभूताभा-
वप्रतियोगिधूमाभाववद् हृद-वज्रव्यभिचरितसम्बन्धिधूमाभाववद् हृ-
दादिषु व्याप्यत्वासिद्ध्यन्तर्गतेषु नातिव्याप्तिः तेषां परामर्शात्मकतादृ-
शग्रहविरोधितावच्छेदकत्वेऽपि तादृशग्रहत्वावच्छिन्नप्रतिबन्धतानिरू-
पितप्रतिबन्धकतावच्छेदकत्वविरहात्, स्वरूपासिद्धेरसङ्कीर्णोदाहरणञ्च
पूर्वं वज्रिमान् महानसत्वादित्यादिकमेव, आश्रयासिद्धि-स्वरू-
पासिद्धिभिन्नासिद्धिस्तु व्याप्यत्वासिद्धिः, यादृशविशिष्टमाश्रयासि-
द्धिर्यादृशविशिष्टञ्च स्वरूपासिद्धिस्तदुभयविशिष्टानिरूपितं साधा-
रणत्व-विरुद्धत्वानुपसंहारित्वानिरूपितञ्च निश्चयनिष्ठं यादृशविशिष्ट-
निरूपितविषयितासामान्यं परामर्शविरोधितानतिरिक्तवृत्ति तादृश-
विशिष्टं व्याप्यत्वासिद्धिरिति तु निष्कर्षः, तेन हृदो वज्रिमान्
धूम.दित्यादौ वज्रिव्याप्यधूमाभाववद् हृदादिरूपव्याप्यत्वासिद्धेर्विशि-
ष्टस्यानतिरिक्ततया धूमाभाववद् हृदाद्यात्मकस्वरूपासिद्धिभिन्नत्वा-
भावेऽपि नातिव्याप्तिः, न वा काञ्चनमयहृदो वज्रिमान् धूमादित्यादौ
वज्रिव्याप्यधूमाभाववद् हृदादिरूपव्याप्यत्वासिद्धेर्विशिष्टस्यानतिरिक्त-
तया काञ्चनमयत्वाभाववद् हृदादिरूपाश्रयासिद्धेर्भिन्नत्वाभावेऽप्य-

व्याप्तिः, पक्षादिभेदेन व्याप्यत्वासिद्धिर्भेदात् पर्वतो धूमवान् वक्त्रे-
रित्यादौ यत्राश्रयासिद्ध्यादिकमप्रसिद्धं तत्र तदनिरूपितत्वविशेषणं
नोपादेयं शब्दानुगमस्याकिञ्चित्करत्वात् तेन तत्रत्यव्याप्यत्वासिद्धौ
नाव्याप्तिः । एतेन वक्त्रिव्याप्यहृदत्वान् पर्वतो वक्त्रिमान् हृद-
त्वादित्यादौ वक्त्रिव्याप्यत्वाभाववद् हृदत्वादिरूपव्याप्यत्वासिद्धेरश्र-
यासिद्धिरूपत्वादव्याप्तिः हृदत्वाभाववत्पर्वतरूपाश्रयासिद्ध्यन्तरेऽति-
व्याप्तिवारणाय तत्राश्रयासिद्धिभिन्नत्वस्यावश्यं प्रवेशनीयत्वात्, एवं
काञ्चनमयवक्त्रिसमवायौ पर्वतः काञ्चनमयवक्त्रिमान् धूमादित्यादौ
काञ्चनमयत्वाभाववद्वक्त्रिरूपसाध्यविशेषणासिद्ध्यात्मकव्याप्यत्वासिद्धेर-
श्रयासिद्धिभिन्नत्वाभावादव्याप्तिः वक्त्रिसमवायित्वाभाववत्पर्वतरूपा-
श्रयासिद्ध्यन्तरेऽतिव्याप्तिवारणाय तत्राश्रयाश्रयासिद्धिभिन्नत्वस्यावश्यं
प्रवेशनीयत्वात्, एवं वक्त्रिः काञ्चनमयवक्त्रिमान् काञ्चनमयत्वादि-
त्यादौ काञ्चनमयत्वाभाववद्वक्त्र्यादिरूपसाध्यविशेषणासिद्ध्यात्मकव्या-
प्यत्वासिद्धौ स्वरूपासिद्धिभिन्नत्वाभावादव्याप्तिः । न च तद्द्वयं न
व्याप्यत्वासिद्धिः किन्वाश्रयासिद्धिः स्वरूपासिद्धिरेव इति वाच्यं ।
विनिगमकाभावादत्राश्रयासिद्ध्यादिभिन्नत्ववदाश्रयासिद्ध्यादिलक्षणे-
ऽपि व्याप्यत्वासिद्धिभिन्नत्वविशेषणस्य वक्तुमशक्यत्वात् कथकसम्प्रदा-
यव्यवहारस्य च सन्दिग्धत्वादिति दूषणमपि प्रत्युक्तं । आश्रया-
सिद्ध्यादीनां प्रातिस्विकरूपेण भेदस्यैव लक्षणघटकतया वक्त्रिव्याप्य-
हृदत्वान् पर्वतो वक्त्रिमान् हृदत्वादित्यादौ हृदत्वाभाववत्पर्व-
त्तादिरूपाश्रयासिद्ध्यन्तरभेदस्यैव तत्र लक्षणघटकतया उक्तरूपाश्र-
यासिद्ध्यात्मकव्याप्यत्वासिद्ध्याव्याप्तिविरहात् । न चैवं तस्योभयरूप-

त्वापत्तिरिति वाच्यं । विनिगमकाभावेनाश्रयासिद्धि-व्याप्यत्वासिद्ध्यु-
 भयरूपत्वस्य तत्रेष्टत्वात् । सा च व्याप्यत्वासिद्धिस्तिविधा साध्यविशे-
 षणासिद्धिः साधनविशेषणासिद्धिः व्याप्तिविरहरूपा च, साध्यताव-
 च्छेदकप्रकारकसाध्यग्रहविरोधितावच्छेदकरूपं साध्यविशेषणासिद्धिः,
 विरोधितावच्छेदकत्वादिकमाश्रयासिद्धिलक्षणवदवसेयं, तादृशं रूपञ्च
 साध्यतावच्छेदकाभाववत्साध्यं, तादृशाभावव्याप्यवत्साध्यं, साध्यताव-
 च्छेदकवदन्योन्याभाववत्साध्यं, तादृशान्योन्याभावव्याप्यवत्साध्यं, साध्य-
 तावच्छेदकतावच्छेदकाभाववत्साध्यतावच्छेदकं, तादृशाभावव्याप्यव-
 त्साध्यतावच्छेदकं, साध्यतावच्छेदकतावच्छेदकवदन्योन्याभाववत्साध्य-
 तावच्छेदकं, तादृशान्योन्याभावव्याप्यवत्साध्यतावच्छेदकमित्यादि,
 भिन्नप्रकारकज्ञानस्यापि प्रतिबन्धकत्वनये साध्ये साध्यतावच्छेदका-
 भावः, साध्ये तादृशाभावव्याप्यः, साध्ये साध्यतावच्छेदकवदन्योन्या-
 भावः, साध्ये तादृशान्योन्याभावव्याप्यः, साध्यतावच्छेदके साध्यताव-
 च्छेदकतावच्छेदकाभावः, साध्यतावच्छेदके तादृशाभावव्याप्यः, साध्य-
 तावच्छेदके साध्यतावच्छेदकतावच्छेदकवदन्योन्याभावः, साध्यता-
 वच्छेदके तादृशान्योन्याभावव्याप्य इत्यादिकं बोध्यं, एतदसङ्की-
 र्णोदाहरणञ्च पर्वतः काञ्चनमयवज्जिमान् धूमादित्यादि । साध-
 नतावच्छेदकप्रकारकसाधनग्रहविरोधितावच्छेदकरूपं साधनविशे-
 षणासिद्धिः, विरोधितावच्छेदकत्वादिकमाश्रयासिद्धिलक्षणवदवसेयं,
 तादृशञ्च रूपं साधनतावच्छेदकाभाववत्साधनादिकमेवेत्युक्तप्रायं,
 एतदसङ्कीर्णोदाहरणञ्च पर्वतो वज्जिमान् काञ्चनमयधूमादित्यादि ।
 साध्यविशेषणासिद्धि-साधनविशेषणासिद्धि-स्वरूपासिद्ध्याश्रयासिद्धि-

व्याप्तिविरहस्तु व्यर्थविशेषणादौ, तदुक्तं, एकाम-
सिद्धिं परिहरतो द्वितीयापत्तेरिति ।

भिन्नासिद्धिर्याप्तिविरहरूपासिद्धिः, निष्कर्षस्तु व्याप्यत्वासिद्धिमा-
मान्यलक्षणवदवसेयः, तत्स्वरूपञ्च साध्याव्यभिचरितसम्बन्धित्वरूपा-
न्वयव्याप्यभाववत्साधनं, तादृशव्याप्यभावव्याप्यवत्साधनं, तादृशव्याप्ति-
मदन्योन्याभाववत्साधनं, तादृशव्याप्तिमदन्योन्याभावव्याप्यवत्साधनं,
तादृशव्याप्तिमत्साधनाभाववत्पक्षः, तादृशव्याप्तिमत्साधनाभावव्याप्य-
वत्पक्षः, तादृशव्याप्तिमत्साधनवदन्योन्याभाववत्पक्षः, तादृशव्याप्तिम-
त्साधनवदन्योन्याभावव्याप्यवत्पक्षः, एवं साध्याभावव्यापकीभूताभाव-
प्रतियोगित्वरूपव्यतिरेकव्याप्तिमत्साधनाभाववत्पक्षादि, साध्याभाव-
वदवृत्तिसाधनाभाववत्पक्षादि, साध्यसमानाधिकरणसाधनाभाववत्प-
क्षादि, भिन्नप्रकारकज्ञानस्यापि प्रतिबन्धकत्वनये साधने तादृश-
न्वयव्याप्यभावादिरपि बोध्यः । ननु साध्यविशेषणासिद्धि-साधनविशे-
षणासिद्धिरूपव्याप्यत्वासिद्धेरसङ्कीर्णादाहरणसत्त्वेऽपि व्याप्तिविरह-
रूपव्याप्यत्वासिद्धेरसङ्कीर्णादाहरणं दूर्लभमित्यत आह, 'व्याप्तिवि-
रहस्त्विति, 'व्यर्थविशेषणादाविति, 'असङ्कीर्णं इति लिङ्गविपरिणा-
मेनानुषज्यते, आदिपदाङ्गव्यर्थविशेष्यत्वपरिग्रहः, तदुदाहरणञ्च द्रव्यं
गुणं कर्मान्यत्वविशिष्टसत्त्वादित्यादि तत्र हेतुतावच्छेदकविशेष्यीभूतस्य
सत्तात्वस्य व्यर्थत्वात् न तु पर्वतो वन्निमान् धूमप्रागभावादित्यादि
भिन्नधर्म्मिकत्वात् । व्यर्थविशेषणस्य व्याप्यत्वासिद्धित्वे आचार्य्यसंवाद-
माह, 'तदुक्तमिति चितिरकर्तृका शरीराजन्यत्वादिति ईश्वरज्ञा-

उपाधिस्तु न व्याप्तिविरहः वह्निव्यापकधूमाव्यापक-
धर्मस्याप्रसिद्ध्या धूमे तद्विरहासिद्धेः, किन्तु यावत्स्व-

नानुमाने सत्यतिपचानुमान इति शेषः । 'एकामसिद्धिं' स्वरूपा-
भिसिद्धिरूपां असिद्धिं, 'परिहरतः' शरीरविशेषणेन परिहरतः,
'द्वितीयापत्तेः' शरीरविशेषणस्य व्यर्थतया व्याप्यत्वासिद्ध्यापत्तेः, एतच्च
प्राचीनमतानुसारेण । वस्तुतो व्यर्थविशेषणत्वेऽपि स्वव्यापकसाध्य-
सामानाधिकरणरूपा साध्याव्यभिचरितसम्बन्धित्वरूपा वा व्याप्ति-
दुर्भारा । न चैवं वक्त्रिमान् नीलधूमादित्यादिप्रयोगे कथं निग्रह-
इति वाच्यं । उद्भावितादृष्टान्तस्य साध्यादिवैकल्यवदधिकप्रयोगस्यापि
निग्रहस्यानत्वात् निग्रहस्यानविभाजकसूत्रस्यचकारेणानुक्तसमुच्चयप-
रेण उद्भावितादृष्टान्तस्य साध्यवैकल्यादिवत्तस्यापि समुच्चयात् । न
चैवं एकामसिद्धिमित्याचार्याभिधानविरोध इति वाच्यं । व्यर्थविशे-
षणतया व्याप्तिविरहस्याभ्युपगमेऽपि तदभिधानस्याशुद्धत्वात् शरी-
रजन्यत्वाभावस्याखण्डतया व्यर्थविशेषणत्वस्यैव तत्र विरहात् । न
चैवं व्याप्तिविरहस्यासङ्कीर्णदाहरणभाव इति वाच्यं । तद्विरहेऽपि
न चतिरित्यसङ्गदावेदितत्वादिति पुनर्नव्यमतानुयायिनी राङ्गान्त-
सरणिः ।

केचित्तु उपाध्यभावस्य व्याप्तिरित्या तदभावत्वेन उपाधिरपि
व्याप्यत्वासिद्धिरिति वदन्ति प्रसङ्गान्तन्मतं निराकरोति, 'उपाधि-
स्त्विति उपाध्यभावस्य व्याप्तिरित्या तथा स्यान्न चैतदित्याह, 'वक्त्रौति ।
नचैवं अनौपाधिकत्वं व्याप्तिरित्युच्छिद्येतेत्यत आह, 'किन्त्विति ।

व्यभिचारिव्यभिचारिसाध्यसामानाधिकरण्यमनौपा-
धिकत्वं^(१) व्याप्तिः साध्यव्यापक-साधनाव्यापकश्च धर्मा-
न्तरं न तु तद्विरहः अपि तु तन्नियतः । न चैवमुप-
जीव्यत्वेन उपाधिर्हेत्वाभासान्तरम्, उपजीव्यत्वेऽपि
स्वतोऽदूषकत्वेन तदर्थं परमुखवीक्षकत्वात्, न हि
साध्यव्यापकाव्याप्यत्वमनुमितिर्विरोधि, किन्तु व्यभि-
चारोन्नयनेन स्वव्यतिरेकेण सत्प्रतिपक्षतया वा, तदाह
उपाधाववश्यं व्यभिचार उपाधेरेव व्यभिचारशङ्केति,
अप्रयोजकान्यथासिद्धौ च सोपाधी नासिद्धौ ।

नन्वेवं तद्विरहरूपत्वेनोपाधिव्याप्यत्वासिद्धिः स्यादत आह, 'साध्येति,
'उपजीव्यत्वेन' व्याप्तिज्ञानाभावोपजीव्यत्वेन, 'हेत्वाभासान्तरं' स्यादिति
शेषः । 'तदर्थं' व्याप्तिज्ञानप्रतिबन्धार्थं, 'अनुमितिर्विरोधि' साक्षा-
दनुमिति-तत्कारणयोर्विरोधि, 'सत्प्रतिपक्षतया' साक्षात्साध्याभावो-
न्नायकतया । ननु साध्यव्यापकाव्याप्यत्वस्य स्वतोऽदूषकत्वे साध्यव्या-
पकाभाववृत्तित्वरूपमप्रयोजकत्वं साध्यव्यापकविरहाव्यापकाभावक-
त्वरूपमन्यथासिद्धत्वञ्च कुतोऽसिद्धिः तयोरेव साध्यव्यापकाव्याप्यत्व-
रूपत्वादित्यत आह, 'अप्रयोजकान्यथासिद्धौ चेति प्रथमाद्विवचनं,

- (१) खं हेतुः व्यभिचारि येषां ते स्वव्यभिचारिणः, यावन्तः स्वव्यभिचा-
रिणः यावत्स्वव्यभिचारिणः, तेषां व्यभिचारि यावत्स्वव्यभिचारि-
व्यभिचारि, तादृशं यत्साध्यं तत्सामानाधिकरण्यमिव्यर्थः, हेतौ
यावतां व्यभिचारित्वं तावतां व्यभिचारि यत्साध्यं तत्सामानाधि-
करण्यं व्याप्तिरिति फलितार्थः ।

प्रतिकूलतर्कानुकूलतर्काभाववुपजीव्यत्वे सति स्व-
तोदूषकावपि न हेत्वाभासौ स्वरूपसतोरेव प्रतिबन्ध-
कत्वादित्युक्तम् ।

इति श्रीमद्भजेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ
अनुमानाख्यद्वितीयखण्डे असिद्धिसिद्धान्तः ।

धर्मप्रधानञ्च निर्देशः, अप्रयोजकत्वमन्यथासिद्धत्वञ्चेत्यर्थः । 'सोपाधी'
सोपाधी अपि उपाधिसमानाधिकरणे अपीति यावत्, 'नासिद्धौ'
नासिद्धौ, सर्वत्र प्रथमादिवचनं ।

केचित्तु प्रतिकूलतर्कोऽनुकूलतर्काभावश्चासिद्धान्तर्गत इत्याहुः
तन्मतं निराकरोति, 'प्रतिकूलेति, 'उपजीव्यत्वे सतीति अनुमि-
त्यनुत्पादप्रयोजकत्वे सतीत्यर्थः, स्वतोदूषकावपीति व्याप्तिग्रहकार-
णभावावपीत्यर्थः, 'स्वरूपसतोरेव' ज्ञायमानत्वावच्छिन्नयोरेव,
'प्रतिबन्धकत्वादिति व्याप्तिज्ञानकारणीभूताभावप्रतियोगित्वादि-
त्यर्थः, ज्ञायमानत्वावच्छिन्नानुमिति-तत्कारणज्ञानान्यतरकारणी-
भूताभावप्रतियोगित्वाश्रयस्यैव च हेत्वाभासत्वादिति भावः ।

इति श्रीमथुरानाथतर्कवागीश-विरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये
अनुमानाख्य-द्वितीयखण्डरहस्येऽसिद्धिसिद्धान्तरहस्यं सम्पूर्णम् ॥

अथ बाधपूर्वपक्षः ।

बाधो न साध्याभाववत्पक्षकत्वं पक्षवृत्त्यभावप्रति-
योगिसाध्यकत्वं वा, पक्षे साध्याभावज्ञानमात्रस्य प्रमा-
त्वज्ञानं विना अधिकबलत्वाज्ञानेन बाधाभावादिति
वक्ष्यते । अतएव साध्याभाववत्पक्षवृत्तित्वमपि न अ-

अथ बाधपूर्वपक्षरहस्यं ।

‘बाध इति बाधितत्वमित्यर्थः, ‘साध्याभाववत्पक्षकत्वमिति येन
केनचित् सम्बन्धेन साध्याभाववत्पक्षसम्बन्धित्वमित्यर्थः, अतो नाग्नि-
माभेदः । साध्याभाववत्पक्षादिकं यदि बाधः स्यात्तदैव तत्सम्बन्धित्वं
बाधितत्वं स्यात्तदैव च न बाध इत्याह, ‘पक्ष इति, ‘मात्रपदं
साकल्यार्थकं सर्वेषां पक्षनिष्ठसाध्याभावज्ञानानामित्यर्थः, ‘अधिक-
बलत्वाज्ञानेन’ अधिकबलत्वाभावेन अनुमितिप्रतिबन्धकत्वाभावेनेति
यावत्, अत्र हेतुः ‘प्रमात्वज्ञानं विनेति सर्वत्र पक्षे साध्याभावज्ञान-
निष्ठप्रमात्वविषयकत्वानावश्यकत्वेनेत्यर्थः, ‘बाधाभावादिति तद्विषयस्य
साध्याभाववत्पक्षादेर्बाधत्वाभावादित्यर्थः, पक्षे साध्याभावज्ञाननिष्ठ-
प्रमात्वविषयकज्ञानस्यैवानुमितिप्रतिबन्धकतया ज्ञाननिष्ठस्य तद्वि-
षयत्वस्यानुमितिप्रबन्धकतानतिरिक्तवृत्तित्वाभावेन हेत्वाभाससामा-
न्यलक्षणस्यैव तत्राभावादित्यभिमानः । ‘अत एवेति उक्तरीत्या
साध्याभाववत्पक्षस्य बाधत्वाभावादेवेत्यर्थः, ‘साध्याभाववदिति हेतु-
तावच्छेदकसम्बन्धेन साध्याभाववत्पक्षसम्बन्धित्वं न बाधितत्वमित्यर्थः,

सिद्धिसङ्कीर्णवाधाव्याप्तेश्च किन्तु साध्याभाववत्त्वप्रमा-
विषयपक्षकत्वं प्रमितसाध्याभाववत्त्वपक्षकत्वं पक्षनिष्ठ-
प्रमाविषयत्वप्रकाराभावप्रतियोगिसाध्यकत्वं वेति, वि-
वक्षितविवेकेन साध्याभावादिप्रमैव दोषः, सा च

‘असिद्धिसङ्कीर्णं हृदो वन्निमान् धूमादित्यादौ स्वरूपासिद्धि-
सङ्कीर्णवाधाश्रयेऽव्याप्तेरित्यर्थः,’^(१) ‘साध्यभाववत्त्वप्रमेति विषयतासम्ब-
न्धेन साध्याभाववत्त्वविशेष्यक-साध्याभावप्रकारकज्ञानसम्बन्धित्वमि-
त्यर्थः, सर्वत्रान्ततो भगवत्तादृशसमूहालम्बनज्ञानविषयतामादायैव
लक्षणसमन्वय इति भावः । ‘प्रमितेति येन केनापि सम्बन्धेन
साध्याभाववद्विशेष्यक-^(२)साध्याभावप्रकारकज्ञानविषयसाध्याभाववत्त्व-
सम्बन्धित्वमित्यर्थः, ‘विषयत्वप्रकारेति सप्तमीसमासः, तथाच पक्ष-
निष्ठप्रमाविषयतायां प्रकारौभूतो योऽभावस्तत्प्रतियोगिसाध्यसम्ब-
न्धित्वमित्यर्थः, एतच्चातिरिक्तविषयतावादिनये, स्वमते तु पक्ष-
निष्ठप्रमाप्रकारौभूतेत्यादि बोध्यं । ‘विवक्षितविवेकेनेति वाधसम्ब-
न्धित्वस्यैव वाधितत्वरूपत्वेनेत्यर्थः, ‘साध्याभावादिप्रमैवेति साध्याभाव-
वत्त्वविशेष्यक-साध्याभावप्रकारकज्ञानादिरेवेत्यर्थः, ‘दोषः’ वाधः,
‘आदिपदात्प्रमितसाध्याभाववत्त्व-पक्षनिष्ठप्रमाप्रकारौभूताभावप्रति-

(१) एतदनन्तरं ‘वङ्गभाववद्गङ्गादादौ हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेन वृत्तिम-
त्त्वस्य हेतावसत्त्वादयामिरिति भावः’ इत्यधिकः पाठः क० पुस्तके
वर्तते इति ।

(२) साध्याभाववत्त्वविशेष्यकेति ग० ।

प्रमात्वेन ज्ञाता न स्वरूपसती हेत्वाभासत्वात् ।
 प्रमात्वज्ञानं विना अधिकबलत्वाभावेनादोषत्वात्
 अप्रमायामपि प्रमात्वज्ञानेऽनुमितिप्रतिबन्धाच्च । अथ
 साध्याभाववति पक्षे हेतोः सत्त्वज्ञाने व्यभिचारः,

योगिसाध्योः परिग्रहः । 'प्रमात्वेन ज्ञातेति, अनुमितिप्रतिबन्धि-
 केति शेषः, 'हेत्वाभासत्वादिति हेत्वाभासत्वानुरोधादित्यर्थः । एत-
 देव विवृणोति, 'प्रमात्वज्ञानं विनेति प्रमात्वप्रकारकतज्ज्ञानस्यानु-
 मितिप्रतिबन्धकत्वेन विनेत्यर्थः, 'अधिकबलत्वाभावेनेति ज्ञाननिष्ठ-
 तद्विषयित्वस्यानुमितिप्रतिबन्धकतावच्छेदकत्वाभावेनेत्यर्थः, 'अदोष-
 त्वात्' हेतुदोषत्वासम्भवात् । ननु हेत्वाभासत्वानुपपत्तिर्न प्रतिबन्ध-
 कतायां मानमित्यस्वरसादाह, 'अप्रमायामपीति, इदमुपलक्षणं
 सत्यामपि प्रमायां तत्र प्रमात्वनिश्चयं विना अनुमितिप्रतिबन्धान-
 भ्युपगमाच्चेत्यपि बोध्यं । निरुक्तप्रमात्वग्रहे पक्षे साध्याभाववत्त्वग्रहो-
 ऽप्यावश्यक इत्यभिप्रायेण 'प्रमितसाध्याभाववत्पक्षो बाध इति
 द्वितीयलक्षणाभिप्रायेण वा शङ्कते, 'अथेति, 'साध्याभाववति पक्ष-
 इति निरुक्तप्रथमबाधज्ञाने निरुक्तद्वितीयबाधज्ञाने वा पक्षताव-
 च्छेदकावच्छिन्ने साध्याभाववत्त्वस्य हेतौ च पक्षतावच्छेदकावच्छिन्न-
 वृत्तित्वस्य ज्ञान इत्यर्थः, 'व्यभिचारः' व्यभिचारज्ञानं, हेतौ यद्वर्मा-
 वच्छिन्नवृत्तित्वं विषयीक्रियते तद्वर्मावच्छिन्ने साध्याभाववत्त्वविषय-
 कस्यापि समूहालम्बनज्ञानस्य व्यभिचारज्ञानत्वादित्यभिमानः, तथाच
 तत एवानुमित्यनुत्पादसम्भवादनुमितिं प्रति पृथग्बाधज्ञानस्य प्रति-

तदज्ञानेऽसिद्धिः, संशययोग्यत्वाभावेन पक्षत्वाभावा-

बन्धकत्वे मानाभावः, । एतच्चानुमितिं प्रत्येव साध्याभाववद्वृत्तित्वरूप-
व्यभिचारज्ञानं प्रकिवन्धकं न तु तत्कारणीभूतव्यापकसामानाधि-
करणरूपव्याप्तिज्ञानं प्रति प्राचीननये तादृशव्याप्तिज्ञानस्यैवानुमिति-
हेतुत्वादित्यभिप्रेत्य । ननु पक्षतावच्छेदकावच्छिन्ने साध्याभाववत्त्वमेव
तत्र विषयो न तु हेतौ पक्षतावच्छेदकावच्छिन्नवृत्तित्वमपीत्यत-
आह, 'तदज्ञान इति हेतौ पक्षतावच्छेदकावच्छिन्नवृत्तित्वाज्ञान-
इत्यर्थः, 'असिद्धिः' परामर्शविरहः, पक्षधर्माहेतुः साध्यव्याप्य इति
लिङ्गविशेष्यकपरामर्शस्यानुमितिजनकस्य प्रथमं हेतौ पक्षवृत्तित्वग्रहं
विनाऽनुपपत्तेः । न च बाधग्रहोत्तरं हेतौ पक्षवृत्तित्वग्रहः ततस्तृ-
तीयक्षणे परामर्शो न तु बाधग्रह एव हेतौ साध्याभाववत्पक्षवृत्तित्व-
ज्ञानमिति वाच्यं । तथापि परामर्शोत्पत्तिक्षण एव बाधग्रहनाशात्
तस्यानुमितिप्रतिबन्धकत्वे मानाभावात् । न च हेतौ पक्षवृत्तित्वज्ञाना-
नन्तरं बाधग्रहस्ततः परामर्श इति वाच्यं । तथा सति बाधग्रहेऽपि ।
हेतौ पक्षवृत्तित्वभावे बाधकाभावात् व्यभिचारज्ञानेन अन्यथासिद्धे-
त्तादवस्थ्यात् इत्यभिमानः । स चायुक्तः, साध्यव्याप्यहेतुमान्यत्र इति
पक्षविशेष्यकपरामर्शस्यानुमितिजनकतया यत्र हेतौ पक्षवृत्तित्वा-
विषयकबाधनिश्चयोत्तरं तादृशपरामर्शः तत्रैव बाधज्ञानस्य पृथक्-
प्रतिबन्धकतावश्यकत्वात् यत्र हेतौ पक्षवृत्तित्वग्रहोत्तरं शाब्द-स्रष्ट्या-
द्यात्मकं हेतौ पक्षवृत्तित्वाविषयकं बाधज्ञानं ततः पक्षवृत्तिर्हेतुः
साध्यव्याप्यइति लिङ्गविशेष्यकः परामर्शः, यत्र वोच्छृङ्खलपक्षवृत्तित्व-

दाश्रयासिद्धिश्च । न च पक्षभिन्ने व्यभिचारो दोषः,
व्यर्थविशेषणत्वात् सर्व्वोपसंहारप्रवृत्तव्याप्तेः साध्या-
भाववति साधनमित्यवगमादेव भङ्गात् । न चैवं
सन्दिग्धसाध्यदृष्टान्ते सन्दिग्धानैकान्तिकवत्पक्षे व्यभि-
चारसंशयादनुमानमात्रोच्छेद इति, पक्षे साध्यसन्देहो-

विषयकबाधनिश्चयोत्तरं तादृग्लिङ्गविशेष्यकः परामर्शः, पक्ष-
वृत्तित्वाविषयकबाधनिश्चयोत्तरं स्मरणात्मकः तादृग्लिङ्गविशेष्यकः
परामर्शो वा तत्रापि बाधज्ञानस्य पृथक्प्रतिबन्धकत्वावश्यकत्वाच्चेति
बोध्यं । 'संग्रहयोग्यत्वाभावेनेति पक्षे साध्य-तदभावनियम्याभावस्य
संग्रहयोग्यतात्वादिति भावः । 'पक्षत्वाभावादाश्रयासिद्धिरिति पक्ष-
त्वाभावरूपाश्रयासिद्धिरित्यर्थः, तथाचासङ्कीर्णस्थलाभावाद्बाधज्ञान-
स्यानुमितिप्रतिबन्धकत्वे मानाभाव इति भावः । पूर्व्वोक्तव्यभिचार-
ज्ञानस्य प्रतिबन्धकरूपबाधकमुद्धरति, 'पक्षेति, 'व्यभिचारः'
व्यभिचारज्ञानं, 'व्यर्थेति पक्षभिन्नत्वविशेषणस्य प्रतिबन्धकतायाम-
प्रयोजकत्वादित्यर्थः, एतदेवोपपादयति, 'सर्व्वेति साध्याभाववृत्तित्व-
सामान्याभावादिविषयकव्याप्तिबुद्धेरित्यर्थः, 'अवगमादेवेति, 'एव-
कारोऽप्यर्थे, 'भङ्गात्' अनुत्पादात् । 'न चेति, 'अनुमानमात्रोच्छेद-
इत्यग्रेणान्वयः, 'दृष्टान्ते' पक्षभिन्ने, पक्षत्वं प्रतिज्ञाविषयत्वं, 'अनुमान-
मात्रोच्छेदः' संग्रहोत्तरकालीनानुमानमात्रोच्छेदः, 'पक्ष इति. तथाच
फलवलात्पक्षीयव्यभिचारसंग्रहान्यव्यभिचारसंग्रह एव दोषः, व्यभि-
चारनियमस्तु पक्षीयोऽपि प्रतिबन्धक इति भावः । यद्यप्यप्रयोजकत्व-

अनुमानाङ्गमिति । व्याप्तस्य पक्षधर्मज्ञानादनुमित्यु-
त्पादेन संशयनिवृत्तेः, अन्यथा विशेषदर्शनस्य संशय-
विरोधिता भज्येत । न च पक्षे साध्याभावं प्रतीत्य

स्थले पक्षीयव्यभिचारसंशयस्यापि प्रतिबन्धकत्वादिदमसङ्गतं तथापि
प्राचीनमताभ्युपगमवादेन इदमभिहितं ।

भट्टाचार्यास्तु 'पक्षे साध्यसन्देहः' हेतुमति पक्षे साध्यसन्देहः
पक्षीयव्यभिचारसंशय इति यावत्, 'अनुमानाङ्ग' सति शब्दादिना
व्याप्तिनिश्चयेऽनुमित्यनुकूलः,^(१) तथाच पक्षीयव्यभिचारसंशयसत्त्वेऽपि
यत्र शब्दादिना व्यभिचारनिश्चयस्तत्रैव नानुमानोच्छेदः,^(२) व्याप्ति-
निश्चयासत्त्वे तु तस्मात्तदुच्छेद इष्ट एवेति भावः इत्याहुः ।

ननु परामर्शपूर्वं साध्यसन्देहासम्भवात् कथं साध्यसन्देहोऽनुमि-
त्यङ्गमित्यत आह, 'व्याप्त्येति, 'अनुमित्युत्पादेन' अनुमित्युत्पादेन
च,^(३) तथाच परामर्श-तज्जन्यानुमित्योरेव संशयप्रतिबन्धकत्वं न
तु परामर्शसामग्र्यपि कार्यसहवर्त्तितया साध्यसन्देहप्रतिबन्धिकेति
भावः । ननु तथापि साध्यसन्देहसत्त्वे कथं परामर्शोत्पाद इत्यत-
आह, 'अन्यथेति ग्राह्यसंशयस्य परामर्शप्रतिबन्धकत्वे चेत्यर्थः, 'संशय-
विरोधिता' संशयोत्तरं संशयानुत्पादप्रयोजकता ।

(१) अनुमित्यप्रतिकूल इति ख०, ग० ।

(२) नानुमानमात्रोच्छेद इति ग० ।

(३) चकारपूरणेन व्याप्तस्य पक्षधर्मज्ञानस्येव अनुमित्युत्पादस्यापि
संशयनिवर्त्तकत्वं सूचितं ।

व्यभिचारज्ञानमित्युपजीव्यत्वादाधः पृथक्, पक्षे साध्या-
भावप्रतीतिरेव हि साध्याभाव-हेत्वोः सम्बन्धोऽस्ति-
नीत्येकवित्तिवेद्यत्वेन नोपजीव्यत्वम्, अन्यथा बाध-

भट्टाचार्यानुयायिनस्तु ननु यदि व्याप्तिनिश्चयसत्त्वे पक्षीय-
व्यभिचारसंशयो न प्रतिबन्धकस्तदा परामर्शोत्तरं हेतुमति पक्षे
साध्यसन्देहोत्पत्तावपि अनुमित्यापत्तिरित्यत आह, 'व्याप्त्येति
परामर्श-तज्जन्यानुमित्योः संशयप्रतिबन्धकत्वादित्यर्थः, तथाच परा-
मर्शोत्तरं साध्यसन्देहोत्पत्तिरेव न सम्भवतीति भावः । यद्यप्यनुमितेः
संशयप्रतिबन्धकत्वाभिधानं प्रकृतानुपयुक्तं तथापि फलतोऽपि परा-
मर्शस्य संशयप्रतिबन्धकत्वबोधनाय दृष्टान्ततया वा तदभिधानं,
'अन्यथेति परामर्शस्य सन्देहविरोधित्वाभाव इत्यर्थः, 'संशयविरो-
धिता' प्रामाणिकानां संशयविरोधिताप्रवाद इत्याहुः ।

'पक्ष इति हेतौ साध्याभाववत्पक्षवृत्तित्वात्मकव्यभिचारज्ञान-
मित्यर्थः, 'बाधः' साध्याभाववत्पक्षज्ञानं, 'पृथगिति, अनुमितिप्रति-
बन्धक इति शेषः, तथाच साध्याभाववत्पक्ष एव बाधो न तु प्रमा-
त्वान्तर्भाव इति भावः । यद्यप्युपजीव्यत्वेऽपि तज्जन्यव्यभिचारज्ञानमेव
प्रतिबन्धकमावश्यकत्वादित्येव समाधानं सुकरं तथापि तदुपेक्ष्य
उपजीव्यत्वमेव निराकरोति, 'पक्ष इति, साध्याभाववत्पक्षज्ञानं विनापि
विशेष्ये विशेषणमिति न्यायेन विशिष्टवैशिष्ट्यबुद्ध्युत्पत्तौ बाधका-
भावादिति भावः । 'एकवित्तिवेद्यत्वेन' एकवित्तिस्वरूपत्वेन । ननु
सर्वत्र बाधग्रहे हेतौ पक्षवृत्तित्वमाने मानाभाव इत्यत आह,

दशायां पक्षे हेतोरज्ञानादसिद्धिरेव । न चोद्भावित-
व्यभिचारनिर्व्वाहाय बाधाद्भावनमावश्यकमित्युपजी-
व्यत्वं, व्यभिचारोद्भावने परकथन्तानावश्यकत्वात् तत्त्वे
वा तन्निर्व्वाहमेव दूषणं कृतत्वात् । वह्निरुष्णः कृतक-
इत्युद्भावनादह्निरुष्ण इत्युद्भावने लाघवमिति बाधः पृथ-
गिति कश्चित्,^(१) तन्न, पक्षे साध्याभावप्रमा स्वार्थानु-

‘अन्यथेति, ‘बाधदशायां’ बाधग्रहदशायां, ‘पक्षे हेतोरिति हेतौ
पक्षवृत्तित्वस्येत्यर्थः, ‘असिद्धिरेव’ परामर्शविरह एव, तथाच सुषु-
यादिदशायामिव कारणविरहादेवानुमित्यनुत्पादः^(२) किं बाध-
ज्ञानस्य प्रतिबन्धकत्वेनेति भावः । परार्थस्थले व्यभिचारज्ञानं प्रत्यु-
द्भावनद्वारा बाधज्ञानस्य उपजीव्यत्वमाशङ्कते, ‘न चेति, ‘उद्भावित-
व्यभिचारेति तेजोऽनुष्णं कृतकत्वादित्यादावुद्भावितव्यभिचारसिद्ध्यर्थ-
मित्यर्थः, ‘कथन्तेति व्यभिचारस्यासिद्धत्वाशङ्केत्यर्थः, ‘तत्त्वे वेति
उद्भावनद्वारा साध्याभाववत्पक्षज्ञानस्योपजीव्यत्वे वेत्यर्थः, ‘तन्निर्व्वाह-
मिति, साध्यव्यभिचारित्वमिति शेषः । ‘वह्निरुष्णः कृतक इति
उष्णत्ववद्वह्निवृत्तिकृतकत्वमित्यभिचारोद्भावनादित्यर्थः, ‘इत्यु-
द्भावन इति साध्याभाववत्पक्षरूपबाधोद्भावने इत्यर्थः, ‘लाघवं’ शब्द-
लाघवं, ‘बाधः’ साध्याभाववत्पक्षः, ‘पृथगिति, परार्थस्थले दोष इति

(१) कश्चित्तु वह्निरुष्णः कृतक इत्युद्भावनादह्निरुष्ण इत्युद्भावने लाघव-
मिति बाधः पृथगिति मेने इति ग० ।

(२) कारणविरहप्रयोज्य एव तदानुमित्यनुत्पाद इति ख०, ग० ।

माने यदि न दोषः । न परं प्रत्यपि न स्यादविशेषा-
दिति तदुद्भावनस्य दूरनिगस्तत्वात् । अथोपनीतका-
ञ्चनमयत्वविशिष्टवक्ष्यनुमितेः सल्लिङ्गजन्यायाः आभा-
सत्वं हेत्वाभासाधीनं । न चानुमितेः पूर्वं तत्र व्यभि-
चारज्ञानं, विशिष्टस्याप्रसिद्ध्या तद्भावस्याज्ञानात्, अत-

शेषः, 'साध्याभावप्रमेति साध्याभावसत्तेत्यर्थः, 'अविशेषादिति कृत-
दोषान्तरसाङ्ख्यस्याविशेषादित्यर्थः, 'तदुद्भावनस्य दूरेति, इदमुप-
लक्षणं शब्दगौरवमपेक्ष्य प्रतिवध्य-प्रतिबन्धकभावान्तरकल्पनागौरव-
स्यैव जघन्यत्वाच्चेत्यपि द्रष्टव्यं^(१) । 'अथेति, पर्वतो वक्त्रिमान् धूमा-
दित्यादाविति शेषः, 'उपनीतेति, एतच्चानुमितावप्युपनीतभानम-
भ्युपेत्य, 'आभासत्वमिति भ्रमत्वमित्यर्थः, 'हेत्वाभासाधीनमिति
दुष्टहेतुकत्वव्याप्यमित्यर्थः, हेतुदोषश्चान्यः कोऽपि तत्र नास्तीति
बाधस्यैव तत्र दोषत्वसिद्धिः । न च काञ्चनमयत्वाभाववदक्त्रिरूपा
साध्यविशेषणासिद्धिरेव दोष इति वाच्यं । अनुमितिजनकपरा-
मर्गाविघटकतया तस्य प्रकृतेऽसिद्धित्वासम्भवादिति भावः । ननु
धूमे काञ्चनमयवक्त्रिव्यभिचारज्ञानात्सादृशानुमितिरेव न सम्भवति
कुतस्तस्याभासत्वमित्यत आह, 'न चेति, 'विशिष्टस्याप्रसिद्धेति अनु-
मितेः पूर्वं काञ्चनमयत्वप्रकारकवक्त्रिज्ञानाभावेनेत्यर्थः, 'तद्भाव-
स्येति, काञ्चनमयत्वावच्छिन्नप्रयोगिताकवक्ष्यभावस्य व्यभिचारघट-

एव पक्षासिद्धिरपि न, अतः काञ्चनमयवङ्ग्यभावरू-
पाद्वाधात्तत्राभासत्वं व्यधिकरणप्रकारावच्छिन्नप्रतियो-
गिकश्चात्राभावइति चेत्, न, वस्तुतोव्यभिचारस्यापि
तत्र सत्त्वात् ज्ञानञ्च तस्य बाधस्येवानुमित्यनन्तरमेव ।

कस्य ज्ञानासम्भवादित्यर्थः, प्रतियोगितावच्छेदकप्रकारकप्रतियोगि-
ज्ञानस्याभावधीहेतुत्वादिति भावः । इदमुपलक्षणं काञ्चनमयवङ्ग्य-
व्यभिचारज्ञानेऽपि सामान्यतोवङ्ग्यव्याप्यवत्तापरामर्शादुपनीतकाञ्च-
नमयत्वप्रकारकवङ्ग्यनुमितौ बाधकाभावाच्चेत्यपि द्रष्टव्यं । 'अत-
एवेति अनुमितेः पूर्वं काञ्चनमयत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकवङ्ग्यभाव-
ज्ञानासम्भवादेवेत्यर्थः, 'पक्षासिद्धिरपीति पक्षविशेष्यक-काञ्चनमयत्व-
विशिष्टवङ्ग्यभावनिश्वयप्रयुक्तो बाधकमानाभावरूपपक्षत्वाभावोऽपि
नेत्यर्थः, 'बाधादिति स्वरूपसतो बाधादित्यर्थः, 'आभासत्वं' भ्रमत्वं ।
ननु काञ्चनमयवङ्गेरसिद्धौ कथं तदभावरूपोबाध इत्यत आह,
'व्यधिकरणप्रकारेति व्यधिकरणधर्मेत्यर्थः, 'प्रतियोगिकः' प्रति-
योगिताकः, यदि व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकसाध्याभाव-
मादाय बाधस्तदा तादृशसाध्याभावमादाय व्यभिचारोऽपि तत्र
सम्भवतीत्यभिप्रायेण समाधत्ते, 'वस्तुत इति स्वरूपसत इत्यर्थः ।
नचनुमितेः पूर्वं तज्ज्ञानासम्भवात् तत्सत्त्वे किम्मानमित्यत आह,
'ज्ञानञ्चेति, अन्यथा बाधसत्त्व एव किम्मानमिति भावः । ननु
सामान्यधर्मावच्छिन्नव्याप्यवत्तापरामर्शजन्यानुमितौ विशेषव्यभिचारो

किञ्च वज्रै काञ्चनमयत्वस्यानुमितावेव भाने काञ्चनमयवह्निमानित्यनुमितिर्न स्यात् विशिष्टस्य पूर्वमज्ञानाद्वज्रै काञ्चनमयत्वांशेऽनुमितेराभासत्वं वज्रै लिङ्गस्यासिद्धेः व्यभिचाराच्च । न चानुमितेर्विषयाभावाधीनमप्रमात्वं, किन्तु हेत्वाभासाधीनं, यस्य हि ज्ञानमनुमितिप्रतिबन्धकं स हेत्वाभासः । न च साध्याभावा-

न हेत्वाभासः कारणीभूतपरामर्शविघटकत्वादित्युच्येति, 'किञ्चेति, 'विशिष्टस्येति, विशेषणतावच्छेदकप्रकारकविशेषणज्ञानस्य च विशिष्टवैशिष्ट्यधीहेतुत्वादिति भावः । ननु विशिष्टस्य पूर्वमज्ञानेऽपि विशेष्ये विशेषणमिति न्यायेन तादृशानुमितिः स्यादित्यस्वरसादाह, 'वज्राविति, 'लिङ्गस्य' धूमादेः, 'असिद्धेः' स्वरूपासिद्धेः, 'व्यभिचाराच्चेति धूमादेः पर्वतादौ काञ्चनमयत्वव्यभिचाराच्चेत्यर्थः, तथाच तत्राभासताप्रयोजकं दोषान्तरमेव सम्भवति किं बाधस्य दोषत्वेनेति भावः । ननु यथोक्तस्वरूपासिद्धि-व्यभिचारयोर्न दोषत्वं अनुमितितत्कारणीभूतपरामर्शयोरविघटकत्वादित्यतो दोषान्तरमाह, 'न चेति, 'विषयाभावाधीनमिति विषयाभावमात्राधीनमित्यर्थः, 'किन्त्विति, तथाच प्रकृते हेत्वाभासविरहात्कथमुपनीतकाञ्चनमयत्वप्रकारिका भ्रमानुमितिः^(१) स्यादिति भावः । नन्वसामान्ये वाधे एव हेत्वाभासोऽस्तीत्यत आह, 'यस्य हीति । 'साध्याभाव इति

ज्ञातः प्रतिबन्धकइति न स हेत्वाभासः । वस्तुतस्तु
उपनीतस्यानुमितौ भाने मानाभावः प्रत्यभिज्ञादौ च
प्रतीतिवलेन तत्कल्पनम् अन्यथा पूर्वोपस्थितसकल-

काञ्चनमत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकवज्जभाव इत्यर्थः, अनुमितिं विना
विशिष्टस्याप्रसिद्ध्या तदभावस्य ज्ञानासम्भवादिति भवतैवाभिधा-
नात् । न चानुमित्यनन्तरं तदभावज्ञानसम्भव इति वाच्यं । तथा
सति तस्यानुमितिप्रतिबन्धकत्वे मानाभावादिति भावः । ननु कचि-
दनुमितेः पूर्वं विशिष्टस्याप्रसिद्धत्वेऽपि न सर्वत्र तदसिद्धिः । न च
तथापि व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावस्य प्रागेव निरा-
कृततया पर्वते काञ्चनमयवज्जभावस्यैवाप्रसिद्धत्वात् कथं तस्य दोष-
त्वमिति वाच्यं । तथापि पर्वतो वन्निमान् धूमादित्यादावुपनीत-
महानसीयत्वादिविशिष्टवज्जनुमितेर्भ्रमत्वप्रयोजकतया पर्वते तादृश-
वज्जभावस्य दोषत्वावश्यकत्वादित्यस्वरसादोषान्तरमाह, 'वस्तुतस्त्विति,
'उपनीतस्येति पक्षतावच्छेदकत्वापकतावच्छेदकादिविधया परामर्शा-
विषयीभूतस्याप्युपनीतस्येत्यर्थः, वाधादिसहायं विनेति शेषः । नन्वेवं
सोऽयमित्यादिप्रत्यभिज्ञादेरपीदन्वादिविशिष्टे उपनीततत्ताद-
वैशिष्ट्यविषयकत्वे मानाभावः क्रमोत्पन्नज्ञानद्वयस्यैव तत्र सुवचत्वा-
दित्यत आह, 'प्रत्यभिज्ञेति, 'प्रतीतिवलेनेति^(१) इदन्वादिविशिष्टे
तत्तादिवैशिष्ट्यविषयकत्वस्यानुव्यवसायवलेनेत्यर्थः,^(२) 'तत्कल्पनं' इद-

(१) प्रतीतिवलादित्येति क०, ख० ।

(२) अनुव्यवसायवलादित्यर्थः इति क०, ख० ।

पदार्थभाने यथार्थानुमित्युच्छेदः । अपिचैवं परार्था-
नुमानेऽप्युपनीतभाने बाधितोऽर्थ उपनीतोऽयं मम

न्वादिविशिष्टे उपनीततत्तादिवैशिष्ट्यविषयकत्वकल्पनं । न चानु-
मितावपि तादृशस्याप्युपनीतस्य भाने सामर्थ्येव मानमिति वाच्यं ।
तदसिद्धेः ज्ञानलक्षणायास्तत्प्रकारकप्रत्यक्षत्वस्यैव कार्यतावच्छेदक-
त्वात् । न च विशेषणज्ञानादिरूपविशिष्टबुद्धिसामान्यसामग्रीमर्थ्या-
दयैवानुमितौ तादृशोपनीतस्य भानापत्तिर्दुर्वारेति वाच्यं । प्रत्यक्षा-
दिरूपविशेषसामग्रीसहिताया एव विशिष्टज्ञानसामान्यसामग्र्याः
प्रत्यक्षफलोपधायकत्वादनुमितिसामग्र्या बलवत्त्वेन च उपनीतप्रत्य-
क्षादिसामग्रीविरहात् । न चानुमित्यात्मकविशेषसामर्थ्येव वर्तते
इति वाच्यं । पक्षतावच्छेदकत्व-विधेयत्व-तदवच्छेदकत्वातिरिक्तस्यानु-
मितिप्रकारत्वस्यालौकतया तदवच्छिन्नं प्रति सामर्थ्यन्तराकल्पनात् ।
न च पक्षतावच्छेदकादिविधयैव तादृशस्याप्युपनीतस्यानुमितौ भान-
मस्तु इति वाच्यं । तदवच्छिन्नपक्षकानुमितिं प्रति तदवच्छिन्नपक्षक-
परामर्शस्य तदवच्छिन्नविधेयताकानुमितिं प्रति तदवच्छिन्ननिरूपित-
व्याप्त्यादिज्ञानस्य हेतुत्वादिति भावः । साधकाभावमुक्त्वा बाधकमप्याह,
'अन्यथेति तादृशस्याप्युपनीतस्यानुमितौ भाननियम इत्यर्थः, 'सकल-
पदार्थभान इति सकलपदार्थानां साध्य-पक्षोपरि प्रकारतया भाने
इत्यर्थः, 'यथार्थानुमितौति भ्रमभिन्नानुमितौत्यर्थः, एतच्चापाततः
अस्ति बाधक एव पूर्वोपस्थितपदार्थभानाभ्युपगमात् यत्र च न बाधकं
तत्रानुमितेर्भ्रमत्वस्य तेनेष्टत्वात् अन्यथा प्रत्यक्षेऽप्युपनीतस्य प्रकार-

भातइत्युद्भावनादेव विजयेत वादी, उद्देश्यानुमितेरप्र-
तिबन्धान्न तत्र बाधोदोषइति चेत्, तुल्यं स्वार्थानुमाने-
ऽपि । अत एव यत्र सामान्यतोद्दष्टानुमानमेवेतरबाधस-

तया भानाभ्युपगमे तत्रापि स्थलविशेषे भ्रमत्वापत्तेः सुवचवादिति^(१)
ध्येयं । शङ्कते, 'उद्देश्यानुमितेरिति यद्वर्मावच्छिन्नव्याप्यवत्तापरामर्श-
स्तद्वर्मावच्छिन्नानुमितेरित्यर्थः, 'बाधः' उपनीतपदार्थस्य बाधः,
'दोषः' दोषपदवाच्यः । परामर्शाविरोधिनोरूपस्य दोषत्वे परामर्श-
विषयतावच्छेदकावच्छिन्नविधेयताकानुमितिप्रतिबन्धकत्वस्य तन्त्र-
वादित्यभिमानः । 'स्वार्थानुमानेऽपीति स्वार्थानुमानेऽप्युपनीतकाच्च-
नमयत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकवद्भ्यभावो न दोषः परामर्शविषय-
तावच्छेदकवन्नितावच्छिन्नविधेयताकानुमित्यप्रतिबन्धकत्वादित्यर्थः ।
नन्विच्छा द्रव्याश्रिता गुणत्वादित्यादौ द्रव्याश्रितत्वव्याप्यगुणत्ववतीच्छा
इति सामान्यधर्मावच्छिन्नव्याप्यवत्तापरामर्श एव पृथिव्याश्रितत्वाति-
रिक्तद्रव्याश्रितत्वाभाववतीच्छा इति भ्रमात्मकबाधज्ञानसहकारा-
दिच्छा पृथिव्याश्रितेति विशेषप्रकारकभ्रमानुमितिं जनयति तद्-
नुमितेर्भ्रमत्वञ्च स्वरूपसद्देवाभासाधीनं हेत्वाभासान्तरञ्च तत्र
नास्तीतीच्छायां पृथिव्याश्रितत्वाभावरूपस्य बाधस्यैव हेत्वाभासत्वं
सिद्धतीति केचिददन्ति तन्मतमुपन्यस्य दूषयति, 'अत एवेति
'इत्यपास्तमित्यग्रेतनेनान्वयः, 'सामान्यतोद्दष्टानुमानमेव' सामान्य-

हायं विशेषानुमापकं तत्र बाधकानामाभासत्वे सिद्धे
तत्प्रयुक्तं सामान्यतोदृष्टस्याप्याभासत्वमिति बाधस्यासा-
ङ्कर्यात् । न च यदि विशेषविप्रतिपत्तौ सामान्यप्रतिज्ञा
तदा अर्थान्तरं सामान्यविप्रतिपत्तौ तु नेतरबाधका-
पेक्षेति वाच्यं । स्वार्थानुमानएवैवं बाधासङ्करस्योक्त-
त्वादित्यपास्तम् । अनुमित्यप्रतिबन्धेन तत्र बाधस्याद्वा-

धर्मावच्छिन्नव्याप्यवत्तापरामर्श एव, 'इतरबाधसहायं' इतरबाध-
ज्ञानसहकृतं, 'विशेषानुमापकं' विशेषधर्मप्रकारकानुमितिजनकं,
'बाधकानां' इतरबाधज्ञानानां, 'आभासत्वे' भ्रमत्वे, 'तत्प्रयुक्तं'
स्वरूपसद्बाधमात्रप्रयुक्तं, 'आभासत्वं' भ्रमानुमितिजनकत्वं, 'असाङ्कर्यं'
दोषान्तरासाङ्कर्यं, 'सामान्यप्रतिज्ञेति, विशेषप्रतिज्ञायान्तु व्यभि-
चार एव स्फुट इति भावः । 'सामान्यविप्रतिपत्तौ' त्विति, अनु-
मितेरपि सामान्यधर्मप्रकारकत्वादिति शेषः, विप्रतिपत्तिविषयता-
वच्छेदकधर्मप्रकारेणैव परार्थस्थलेऽनुमितिनियमादिति भावः ।
'नेतरेति, न वानुमितेरप्रमात्वमित्यपि बोध्यं । 'अनुमित्यप्रति-
बन्धेनेति यद्वर्मावच्छिन्नव्याप्यवत्तापरामर्शस्तद्वर्मावच्छिन्नप्रकारता-
कानुमित्यप्रतिबन्धकत्वेनेत्यर्थः, 'बाधस्य' विशेषतोबाधस्य, तथाचा-
नुमितेर्भ्रमत्वस्य दोषप्रयुक्ततया तदभावात्तत्र विशेषप्रकारकानु-
मितिरेव न जायत इति भावः । एतच्चापाततः अनुमिति-तत्कार-
णीभूतपरामर्शान्यतरप्रतिबन्धकतामात्रस्यैव हेत्वाभासत्वप्रयोजकतया
परामर्शविषयतावच्छेदकावच्छिन्नानुमित्यप्रतिबन्धकत्वेऽपि विशेषप्र-

यत्वात् । ननु पक्षे साध्याभावग्रहवत्साध्याभावव्या-
प्ययहेऽपि दूषकोविरोधित्वाविशेषात् तथाच साध्या-
भावसम्बन्धोव्यभिचारः साध्याभावव्याप्यसामानाधि-

कारकानुमितिप्रतिबन्धकत्वादेव हेतुदोषत्वसम्भवात् । न च तथापि
परार्थानुमाने बाधस्यासङ्कीर्णस्यलाभाव इति वाच्यं । स्वार्थानु-
माने दोषान्तरासाङ्ग्येण तस्य हेत्वाभासत्वव्यवस्थितौ परार्थानु-
मानेऽपि तथात्वस्य दुर्वारत्वात् परार्थस्थलेऽपि बाधादिज्ञानसह-
कारेण विप्रतिपत्तिविषयतानवच्छेदकधर्मप्रकारेणानुमित्यभ्युपगमा-
च्चेति ध्येयं । 'दूषक इति अनुमितिप्रतिबन्धक इत्यर्थः, 'विरोधि-
त्वाविशेषादिति अनुमित्यनुत्पादप्रयोजकत्वाविशेषादित्यर्थः । यद्यपि
'पक्षे साध्याभावग्रहवदित्यसङ्गतं पूर्वपक्षिणा तद्ग्रहस्यानुमितिप्रति-
बन्धकत्वानभ्युपगमात् अन्यथा तत्र हेत्वाभासत्वस्य दुर्वारत्वात्,
तथाप्यस्य दोषस्य ग्रन्थकृतैवानुपदं वक्ष्यमाणत्वान्नासङ्गतिः । 'साध्या-
भावसम्बन्ध इति हेतौ साध्याभावसामानाधिकरण्यमित्यर्थः, 'साध्या-
भावव्याप्येति हेतौ येन केनापि सम्बन्धेन साध्याभावव्याप्यवत्पक्ष-
सम्बन्धित्वमित्यर्थः, तेन जलहृदोवन्निमान् धूमादित्यादौ नाव्याप्तिः,
अत्र हेतुनिष्ठत्वसम्पादनाय सम्बन्धित्वप्रवेशः न तु तदन्तर्भावेन
बाधत्वं प्रतिबन्धकतायामनुपयोगित्वात्, बाधस्तु साध्याभावव्याप्य-
वत्पक्ष एव । न चैवं सत्प्रतिपक्षाभेद इति वाच्यं । साध्याभावव्याप्य-
वत्तापरामर्शकालीन-साध्यव्याप्यवत्तापरामर्शस्यैव सत्प्रतिपक्षत्वात्, प्र-
तिबन्धकत्वमपि तस्य तथैव बाधज्ञानस्य तु प्रतिबन्धकत्वं केवल-

करणं बाधः साध्याभावव्याप्यञ्च वह्नित्वादिकमेवेति चेत्, न, पक्षे हि साध्याभावे ज्ञायमाने ज्ञाते वा यदि साध्याभावव्याप्यसामानाधिकरणबुद्धिस्तदा व्यभिचार एव । अथ पक्षे साध्याभावबुद्धिं विनैव सा, तर्हि हेतु-साध्याभावव्याप्ययोरगृह्यमाणविशेषयोः सत्प्रतिपक्षत्वम् । अथ तुल्यबलेन सत्प्रतिपक्षोऽधिकबलेन बाध-इति चेत्, न, गमकतौपयिकरूपसाकल्यं हि बलं तच्च

साध्याभावव्याप्यवत्पक्षनिश्चयत्वेनेत्यभिमानः । ‘साध्याभावव्याप्यञ्चेति, वह्निरनुष्णः दहतकत्वादित्यादाविति शेषः । ‘पक्षे हीति हेतुविशिष्टपक्षे हीत्यर्थः । ‘साध्याभावव्याप्यसामानाधिकरणबुद्धिः’ हेतुमति पक्षे साध्याभावव्याप्यवत्त्वबुद्धिः, ‘व्यभिचार एव’ व्यभिचारज्ञानमेव, दोष इति शेषः । ‘तर्हीति, हेतौ साध्यव्याप्यवत्त्वज्ञाने बाधकाभावेनेति शेषः । ‘हेतु-साध्याभावव्याप्ययोरिति पक्षे साध्यव्याप्यहेतुमत्त्व-साध्याभावव्याप्यवत्ताज्ञानयोरित्यर्थः, ‘अगृह्यमाणेति ‘विशेषोऽप्रामाण्यं, सत्त्वादिति शेषः । ‘सत्प्रतिपक्षत्वं’ सत्प्रतिपक्षस्यैव दोषत्वं । मतान्तरमाशङ्कते, ‘अथेति, ‘तुल्यबलेनेति तुल्यबलेन साध्यव्याप्यवत्तापरामर्शेन समवहितः साध्याभावव्याप्यवत्तापरामर्श-इत्यर्थः, ‘अधिकबलेनेति अधिकबलेन साध्याभावव्याप्यवत्तापरामर्शेन समवहितः साध्यव्याप्यवत्तापरामर्श इत्यर्थः, ‘गमकतौपयिकेति गमकतौपयिकं रूपमप्रामाण्यज्ञानाभावस्तद्युक्तत्वमित्यर्थः, ‘तच्च’

द्वयोर्ज्ञातमिति कथं न सत्प्रतिपक्षत्वं गमकतावहि-
र्भूतञ्च न बलम् । अथ साध्याभावव्याप्यवृद्धेरनन्यथा-
सिद्धत्वं बलं, तदा ततः साधनवति पक्षे साध्याभावानु-
मितावनैकान्तिकत्वमेव पक्षे साध्याभावग्रहवदिति

ननुक्तञ्च, 'ज्ञातमिति भावसाधनं द्वयोर्ज्ञानमेवेत्यर्थः । 'गमकता-
वहिर्भूतञ्चेति अप्रामाण्यज्ञानाभावातिरिक्तञ्चेत्यर्थः । न च यत्र सा-
ध्याभावव्याप्यवत्तापरामर्शोऽप्रामाण्यज्ञानानास्कन्दितः साध्यव्याप्यव-
त्तापरामर्शश्च तदास्कन्दितः तत्रैव बाधस्य दोषत्वमिति वाच्यं ।
तथा सति कारणाभावादेव साध्यानुमितेरसम्भवादलं बाधस्य
दोषत्वेन अप्रामाण्यज्ञानानास्कन्दितपरामर्शस्यैवानुमितिजनकत्वादिति
भावः । 'अनन्यथासिद्धत्वमिति प्रामाण्यग्रहविशिष्टत्वमित्यर्थः,
साध्यव्याप्यवत्तापरामर्शस्य तदभावविशिष्टत्वमेव दुर्बलत्वमिति शेषः ।
निश्चितप्रामाण्यकपरामर्शस्यैवानुमितिहेतुतया प्रामाण्यग्रह-तदभाव-
स्यैव बलावलत्वादित्यभिमानः । अभिमानमभ्युपेत्यैव दूषयति,
'तदेति तदापीत्यर्थः, 'ततः' तत एव साध्यव्याप्यवत्तापरामर्शस्य
प्रामाण्यज्ञानविरहादेवेति यावत्, 'साधनवतीति साध्यव्याप्यसाधन-
वन्तया ज्ञात इत्यर्थः, 'साध्याभावानुमितौ' साध्याभावस्यैवानुमित्यु-
क्तदसम्भवं इति यावत्, निश्चितप्रामाण्यकपरामर्शस्यैवानुमिति-
हेतुवाभ्युपगमादिति भावः । 'अनैकान्तिकत्वमेवेति निरुक्तबाधस्या-
पतियन्त्वकत्वमेव ।

वाञ्छसु 'ततः' निश्चितप्रामाण्यकसाध्याभावव्याप्यवत्तापरामर्शतः,

यदुक्तं तदप्यसिद्धं तस्य दोषत्वानभ्युपगमात् अन्यथा
हेत्वाभासान्तरतापत्तिः ।

अथ हेतुतः साध्यसिद्धिसम्भावनायां व्यभिचारा-
सिद्धेः बाधेन हेतोरसाधकत्वे सिद्धे व्यभिचारसिद्धि-

‘साधनवति’ साधनवत्तया ज्ञायमाने, ‘साध्याभावानुमितौ’ साध्या-
भावस्यानुमितेरावश्यकत्वे, ‘अनैकान्तिकत्वमेव’ व्यभिचारज्ञानमेव,
तथाच व्यभिचारज्ञानसामग्रीतयैवास्य प्रतिबन्धकता न तु बाधत्वे-
नेति भाव इत्याहुः ।

तदसत् व्यभिचारज्ञानस्यानुमितिप्रतिबन्धकत्वमतेऽपि तत्सामग्र्या-
अनुमितिप्रतिबन्धकत्वानभ्युपगमात्, न हि प्रतिबन्धकसामग्री अवश्यं
प्रतिबन्धिकेति नियमः ।

केचित्तु ‘अनैकान्तिकत्वमेवेति, तथाच व्यभिचारज्ञानमेव कार्य-
सहवर्त्तितया प्रतिबन्धकमस्तु किं निरुक्तबाधस्य पृथक् प्रतिबन्ध-
कत्वेनेति भाव इत्याहुः ।

पूर्वमते दृष्टान्तासिद्धिमपि आह, ‘पक्ष इति, ‘तस्य’ पक्षे
साध्याभावग्रहस्य, ‘अन्यथा’ पक्षे साध्याभावग्रहस्यापि प्रतिबन्धकत्वे,
‘हेत्वाभासान्तरतेति साध्याभाववत्पक्षस्यातिरिक्तहेत्वाभासतापत्तेरि-
त्यर्थः, साध्याभावव्याप्यवत्पक्षस्यैव तन्मते बाधतया बाधे तदनन्तर्भा-
वादिति भावः ।

‘हेतुतः साध्यसिद्धिसम्भावनायामिति हेतोः साध्यसिद्धिस्वरूप-
योग्यत्वसन्देहे सतीत्यर्थः, ‘व्यभिचारासिद्धेरिति पाठः व्यभिचार-

रित्युपजीव्यत्वाद्बाधः पृथक्, अन्यथा हेतोरसाधकत्वे सिद्धे साध्यसिद्धिसम्भावनाविरहाद्व्यभिचारबुद्धिः तस्याञ्च सत्यां हेतोरसाधकत्वधीरित्यन्योन्याश्रयइति चेत् । न । साध्यसिद्ध्युन्मुखहेतुज्ञानस्य प्रमितसाध्याभावसहचरितहेतुविषयत्वेन व्यभिचारज्ञानतयाऽदूषकत्वात् । तथापि व्यभिचारे साध्याभावप्रमा तन्त्रं

ज्ञानासम्भवादित्यर्थः, 'बाधेन' प्रमितसाध्याभाववत्पक्षात्मकबाधज्ञानेन, 'असाधकत्वे सिद्धे इति साध्यसिद्धिस्वरूपायोग्यत्वनिश्चयइत्यर्थः, 'उपजीव्यत्वात्' व्यभिचारज्ञानं प्रत्युपजीव्यत्वात्, 'पृथगिति, दोषइति शेषः, क्वचित् 'व्यभिचारसिद्धेरिति पाठः तत्र व्यभिचारसिद्धेर्बाधेनेति योजना व्यभिचारसिद्धेरसम्भवेनेत्यर्थः, 'हेतोरित्यस्य पूर्वं बाधज्ञानादिति पूरणीयं । ननु व्यभिचारज्ञानमेव हेतोः साध्यासाधकत्वनिश्चायकमस्त्वित्यत आह, 'अन्यथेति व्यभिचारज्ञानस्यैव साध्यासाधकत्वनिश्चायक इत्यर्थः, 'सिद्धिसम्भावना' हेतोः साध्यसाधकत्वसम्भावना, 'तस्याञ्च' व्यभिचारबुद्धौ च । 'साध्यसिद्ध्युन्मुखहेतुज्ञानस्येति साध्यसिद्धिस्वरूपयोग्यतया हेतुज्ञानस्येत्यर्थः, क्वचिदिति शेषः । अदूषकत्वादित्यकारप्रश्लेषः हेतौ साध्यसाधकत्वज्ञानस्य व्यभिचारज्ञानाप्रतिबन्धकत्वादित्यर्थः । न च पूर्ववर्त्तितयैव तज्ज्ञानं प्रतिबन्धकं न तु कार्यसहवर्त्तितयेति वाच्यं । पूर्वं तत्सत्त्वेऽपि^(१) व्यभिचारज्ञानोदयान्मानाभावाच्चेति भावः । शङ्कते, 'तथापीति

तां विना तदभावादिति सैव दोषइति चेत्, सत्यं,
किन्तु साध्याभावप्रमा व्यभिचारज्ञानत्वेन दूषिका
क्लृप्तत्वात् न तु स्वतन्त्रा, अत एव पक्षे साध्याभावज्ञान-
त्वेन प्रतिबन्धकत्वं न तु साध्याभावसमानाधिकरण-
साधनज्ञानत्वेनेति प्रत्युक्तं, तस्य लघुत्वेऽप्यक्लृप्तत्वात् ।
अथ प्रत्यक्षादौ प्रमामात्रं प्रति स्वातन्त्र्येण बाधा-
दोषत्वेन क्लृप्तइत्यनुमितावपि स एव दोषइति चेत्,
न, तर्हि हेत्वाभासः अनुमित्यसाधारणदोषस्य त-

व्यभिचारे साध्याभाववत्पक्षवृत्तिर्हेतुरिति विशिष्टवैशिष्ट्यबोधात्मक-
व्यभिचारनिश्चये, 'साध्याभावप्रमेति पक्षे साध्याभावप्रकारकप्रमेत्यर्थः,
'तां विनेति, विशिष्टवैशिष्ट्यबोधं प्रति विशेषणतावच्छेदकप्रकारक-
निश्चयस्य हेतुत्वादिति भावः । 'साध्याभावप्रमेति साध्याभाववत्पक्ष-
वृत्तिर्हेतुरिति व्यभिचारनिश्चयरूपा फलीभूता साध्याभावप्रमेवे-
त्यर्थः, 'न तु स्वतन्त्रेति न तु कारणीभूता साध्याभावप्रमेवेत्यर्थः,
'साध्याभावज्ञानत्वेन' साध्याभावप्रकारकनिश्चयत्वेनेत्यर्थः, 'प्रतिबन्ध-
कत्वमिति फलीभूतव्यभिचारनिश्चयस्य प्रतिबन्धकत्वमित्यर्थः, 'प्रमा-
मात्रं प्रतीति पक्षविशेष्यक-साध्यविशिष्टानुभवं प्रतीत्यर्थः, 'स्वातन्त्र्येण'
साध्याभाववत्पक्षनिश्चयत्वेन, 'बाधः' साध्याभाववत्पक्षनिश्चयः, 'स एव
दोषः' स दोष एव, 'न तर्हीति तर्हि न हेत्वाभास इति योजना,
'अनुमित्यसाधारणेति अनुमिति-तत्कारणयोरसाधारणेत्यर्थः । नन्व-
नुमितिदोषत्वमेव हेत्वाभासत्वप्रयोजकं न तु तदसाधारणदोषत्व-

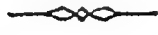
ज्ञात् मनोयोगाभाववत् स्वरूपसत एव प्रतिबन्धक-
त्वात् हेतुत्वाभिमतवृत्तित्वेनासाधकतालिङ्गत्वाभा-
वाच्च^(१) । बाधितपक्षकत्वं लिङ्गमिति चेत्, न, अन्यत्र
तथा दूषकत्वाकल्पनात् ॥

इति श्रीमद्भग्वेत्तेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ
अनुमानाख्यद्वितीयखण्डे बाधपूर्वपक्षः ॥०॥

मित्यरुचेर्दोषान्तरमाह, 'मनोयोगाभाववदिति । ननु साध्याभाव-
वत्पक्षनिश्चयो न बाधः किन्तु तद्विषयीभूतः साध्याभाववत्पक्ष-
एव बाधः स च न स्वरूपसत्प्रतिबन्धक इत्यतो दोषान्तरमाह,
'हेतुत्वाभिमतेति क्वचिद्धेतुत्वाभिमतवृत्तित्वसम्भवेऽपि सर्वत्र तदस-
म्भवेनेत्यर्थः, 'असाधकतेति, असाधकतासाधकस्यैव च हेत्वाभासत्वा-
दिति भावः । 'बाधितेति येन केनापि सम्बन्धेन साध्याभाववत्पक्षो
लिङ्गमित्यर्थः, 'अन्यत्रेति प्रत्यक्षादावित्यर्थः, 'तथा दूषकत्वेति पक्ष-
विशेष्यक-साध्यविशिष्टानुभवसामान्यं प्रति साध्याभाववत्पक्षनिश्चय-
त्वेन प्रतिबन्धकत्वाकल्पनादित्यर्थः ।

इति श्रीमथुरानाथतर्कवागीश-विरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये
अनुमानाख्य-द्वितीयखण्डरहस्ये बाधपूर्वपक्षरहस्यम् ॥

अथ बाधसिद्धान्तः ।



उच्यते । पक्षे साध्याभावनिश्चयः साध्याभावज्ञान-
प्रमात्वनिश्चयात् ज्ञानमात्रादर्थनिश्चये प्रामाण्यग्रहवै-

अथ बाधसिद्धान्तरहस्यं ।

यथोक्तत्रयं न बाधः किन्तु पक्षविशेष्यक-साध्याभावप्रकारक-
ज्ञाननिष्ठं साध्याभाववद्विशेष्यकत्वे सति साध्याभावप्रकारकत्वरूपं
प्रमात्वमेव बाधः, तथाच पक्षे साध्यभावज्ञानं प्रमेत्याकारकं ज्ञान-
मनुमितिप्रतिबन्धकं । न च तज्ज्ञानस्यानुमितिप्रतिबन्धकत्वे किम्मान-
मिति वाच्यं । साध्याभावांग्रे निश्चयाकार-साध्याभाववत्पक्षवृत्तित्व-
रूपव्यभिचारनिश्चयाधीनमनुमित्यनुत्पादं प्रति पक्षविशेष्यक-साध्या-
भावप्रकारकनिश्चयनिष्ठप्रमात्वज्ञानस्योपजीव्यतया तन्निष्ठप्रमात्वज्ञा-
नस्यापि पृथक्प्रतिबन्धकत्वादित्यभिप्रेत्य समाधत्ते, 'पक्ष इति,
'प्रमात्वनिश्चयादिति निश्चयत्वेन स्वप्रयोज्ये वस्तुनि प्रयोजक इति
शेषः, निश्चयत्वेन तद्विशेष्यक-तत्प्रकारकनिश्चयप्रयोज्यस्य च तद्विशे-
ष्यक-तत्प्रकारकनिश्चयनिष्ठप्रमात्वग्रहसापेक्षत्वनियमादिति भावः ।
ननु तादृशनियम एवासिद्ध इत्यत आह, 'ज्ञानमात्रादिति तद्वि-
शेष्यक-तत्प्रकारकनिश्चयमात्रादित्यर्थः, (१) मात्रपदेन प्रमात्वग्रहव्यव-
च्छेदः, 'अर्थनिश्चये' निश्चयत्वेन तद्विशेष्यक-तत्प्रकारकनिश्चयप्रयो-

(१) तद्विशेष्यक-तत्प्रकारकज्ञानमात्रादित्यर्थ इति क० ।

यर्थं भ्रमत्वेन ज्ञातादर्थनिश्चयप्रसङ्गश्च तथाचोपजीव्य-
त्वेनाधिकबलत्वेन वा पक्षे साध्याभावज्ञानस्य प्रमात्व-
निश्चये सव्यभिचारो नान्यथेत्युभयथापि साध्याभाव-
निश्चयाधीनव्यभिचारज्ञानात् पूर्व्वं ज्ञातं साध्याभाव-

ज्यस्य निर्व्वाहे, 'प्रामाण्यग्रहवेयर्थमिति निष्कल्पप्रवृत्त्यादिजनके दृष्ट-
साधनत्वादिनिश्चये प्रामाण्यग्रहवेयर्थप्रसङ्ग इत्यर्थः, 'भ्रमत्वेन ज्ञाता-
दिति, तद्विशेष्यक-तत्प्रकारकनिश्चयादिति शेषः, 'अर्थनिश्चयप्रसङ्ग-
श्चेति निश्चयत्वेन तद्विशेष्यक-तत्प्रकारकनिश्चयप्रयोज्यस्य उत्पत्ति-
प्रसङ्गश्चेत्यर्थः, 'तथाचेति तादृशनियमे चेत्यर्थः, 'उपजीव्यत्वेन' प्रति-
बन्धकतावच्छेदकत्वेन, 'अधिकबलत्वेन वा' अधिकबलस्वरूपत्वेन वा,
अप्रमात्वग्रहनिवर्त्तकत्वेन वेति यावत्, अपेक्षणीय इति शेषः,
'सव्यभिचार इति व्यभिचारेण सह वर्त्तते इति व्युत्पत्त्या साध्या-
भावांशे निश्चयाकारो यथोक्तविषयको ग्रह इत्यर्थः, अनुमित्यनु-
त्पादप्रयोजक इति शेषः, क्वचित् 'व्यभिचार इति पाठः तत्राप्यय-
मेवार्थः, 'उभयथापीति निश्चितप्रामान्यकसाध्याभावनिश्चयाकार-
व्यभिचारनिश्चयत्वेन प्रतिबन्धकत्वपक्षेऽगृहीताप्रामाण्यकसाध्याभाव-
निश्चयाकारव्यभिचारनिश्चयत्वेन प्रतिबन्धकत्वपक्षेऽपीत्यर्थः, 'साध्या-
भावनिश्चयाधीनव्यभिचारज्ञानादिति व्यभिचारज्ञानस्य साध्याभाव-
निश्चयाधीनत्वादिति योजना, व्यभिचारज्ञानपदञ्च साध्याभावांशे
निश्चयाकारव्यभिचारज्ञाननिष्ठानुमित्यनुत्पादप्रयोजकत्वपरं. साध्या-
भावनिश्चयपदन्तु साध्याभावोनिश्चीयते येनेति व्युत्पत्त्या पक्षविशे-

ज्ञानप्रमात्वमेव द्वापउपजीव्यत्वात् । यदि च पक्षे
साध्याभावज्ञानस्य प्रमात्वनिश्चयो नानुमितिविरोधी,
तदा व्याप्ति-पक्षधर्म्मतया हेतुज्ञानं विशेषदर्शनत्वेन
पक्षे साध्याभावज्ञानं परिभूय साध्यं साधयेद्देव पर्वते

यक-साध्याभावप्रकारकज्ञाननिष्ठप्रमात्वग्रहपरं, तथाच साध्याभावांशे
निश्चयाकारसाध्याभाववत्पक्षवृत्तित्वरूपव्यभिचारज्ञाननिष्ठानुमित्यनु-
त्पादप्रयोजकत्वस्य पक्षविशेष्यक-साध्याभावप्रकारकज्ञाननिष्ठप्रमात्व-
ग्रहाधीनत्वादित्यर्थः, 'पूर्वं ज्ञातमिति तादृशव्यभिचारज्ञानाधीना-
नुमित्यनुत्पादकालात् पूर्वं ज्ञातमित्यर्थः, 'दोषः' बाधः, 'उपजीव्य-
त्वादिति तादृशव्यभिचारनिश्चयाधीनानुमित्यनुत्पादं प्रत्युपजीव्यत्वेन
तज्ज्ञानस्यानुमितिप्रतिबन्धकत्वादित्यर्थः । ननूपजीव्यत्वेऽपि तज्ज्ञानस्य
साक्षादनुमितिप्रतिबन्धकत्वे मानाभावः, न हि यज्ज्ञानमुपजीव्यं
तज्ज्ञानमेव साक्षात्प्रतिबन्धकमिति नियम इत्यत आह, 'यदि
चेति, 'विशेषदर्शनत्वेनेति साध्यसाधकदर्शनत्वेनेत्यर्थः, 'पक्षे साध्या-
भावज्ञानं परिभूयेति पक्षे साध्याभावज्ञानं यस्मादिति व्युत्पत्त्या पक्षे
साध्याभावज्ञानपदं पूर्ववत् तादृशज्ञाननिष्ठप्रमात्वग्रहपरं, तं परिभूय
तत्सत्त्वेऽपीत्यर्थः, 'धूम इवेति साधकत्वांशे दृष्टान्तः न तु परिभवां-
शेऽपि असिद्धेः । ननु प्रमात्वग्रहो यदि साध्याभावांशे निर्द्धर्मिता-
वच्छेदकस्तदा तत्सत्त्वेऽपि परामर्शात् साध्यसिद्धिरिष्टैव, यदिच पक्ष-
तावच्छेदकं तद्धर्मितावच्छेदकं तदा पक्षतावच्छेदकावच्छिन्नविशेष्यक-
साध्याभावनियत्यत्वेनैव प्रतिबन्धकत्वं लाघवादन्यत्र कृत्तत्वाच्चेत्यभिप्रेत्य

धूमइव वह्निं । न च साध्याभावबुद्धिरेवागृह्यमाण-
विशेषा सत्प्रतिपक्षवत् प्रतिबन्धिकेति वाच्यं । रजते
नेदं रजतमिति ज्ञानेऽपि विशेषदर्शनेन रजतत्वस्य
शङ्के पीतत्वज्ञाने शुक्लत्वस्य चानुमानात् वादिवाक्येन
पक्षे साध्याभावज्ञानादनुमानोच्छेदप्रसङ्गाच्च^(१) । अथ
पक्षे साध्याभावप्रमेव साध्याभाव-हेतुविषया व्यभि-

शङ्कते, 'न चेति, 'साध्याभावबुद्धिः' पक्षतावच्छेदकावच्छिन्नविशेष्यक-
साध्याभावनियमः, 'अगृह्यमाणविशेषा' अगृहीताप्रामाण्यका, 'विशे-
षदर्शनेन' रजतत्वव्याप्यवत्तानियमेन, 'पीतत्वज्ञाने' शुक्लत्वाभावज्ञाने,
शुक्लत्वव्याप्यवत्तानियमेनेति शेषः, 'वादिवाक्येन' वादिप्रतिज्ञा-
वाक्येन । नन्विदमयुक्तं तत्र रजतत्वाभावादिज्ञाने भ्रमत्वादिग्रहा-
नन्तरमेव रजतत्वाद्यनुमित्यभ्युपगमात् । न च तथापि प्रागुक्तरीत्या
हेतौ पक्षतावच्छेदकावच्छिन्नवृत्तित्वविषयकत्वस्यापि तत्रावश्यकतया
आवश्यकव्यभिचारनियमप्रतिबन्धकत्वेनान्यथासिद्धिर्दुर्व्वारिति वाच्यं ।
प्रमात्वग्रहे साध्याभावांशे पक्षतावच्छेदकस्य धर्मितावच्छेदकत्वे
प्रमात्वग्रहप्रतिबन्धकतायामपि तद्दोषतादवस्थात् इति चेत्, एतदस्व-
रसेनैव 'पक्षधर्मतावलेनेत्यादिना स्वमतस्य वक्ष्यमाणत्वान्नामङ्गतिः ।
'साध्याभाव-हेतुविषयेति पक्षतावच्छेदकावच्छिन्ने साध्याभाववत्त्व-
विषयिका सती हेतौ पक्षतावच्छेदकावच्छिन्नवृत्तित्वविषयिकेत्यर्थः,

चारज्ञानत्वेन दोषो न तु तस्याः प्रमात्वज्ञानमपीति चेत्, तर्हि प्रमायाः अप्रमात्वज्ञाने भ्रान्तानुमितिर्न स्यात् न स्याच्च पक्षे साध्याभावज्ञानप्रमात्वप्रमादनुमितिप्रतिबन्धः । ननुपजीव्यत्वेऽप्यत्र साध्याभावप्रमेति ज्ञानं न स्वतोदूषकं क्लृप्तत्वात्^(१) पक्षे साध्याभावनिश्चयं कुर्वत् व्यभिचारज्ञानद्वारेति चेत् । न । अत्र साध्याभावप्रमेति ज्ञानान्नियमतः साध्यज्ञानानुदयात्

‘व्यभिचारज्ञानत्वेन’ साध्याभावांशे प्रमात्मकव्यभिचारज्ञानत्वेन,^(२) ‘दोषः’ अनुमितिप्रतिबन्धकः, रजते नेदं रजतमित्यादिज्ञानञ्च न वस्तुगत्या साध्याभावप्रमेति भावः । ‘नन्विति, ‘अत्र’ पक्षे, एवमग्रेऽपि, ‘न स्वतो दूषकमिति न साक्षात्प्रतिबन्धकमित्यर्थः, तथाच प्रमात्वं कुतो हेत्वाभास इति भावः । ‘नियमत इति व्यभिचारज्ञानं विनापीत्यर्थः, ‘तस्यैवेति, ‘एवकारोऽप्यर्थे, ‘प्रतिबन्धकत्वात्’ साक्षात्प्रतिबन्धकत्वात्, ‘शब्दादाविति शब्दजन्यबोध इत्यर्थः, ‘तथा दर्शनादिति एकपदार्थेऽपरपदार्थसंसर्गाभावप्रमेति ज्ञानस्यायोग्यताज्ञानत्वेन प्रतिबन्धकत्वदर्शनादित्यर्थः । ननु तथापि हेत्वभिमतवृत्तित्वेन पक्षे साध्यप्रत्ययाजनकत्वरूपासाधकतालिङ्गत्वाभावात् कुतो हेत्वाभासत्वमित्यत आह, ‘साध्याभावप्रमेति साध्याभावप्रमात्वस्य

(१) किन्तु क्लृप्तत्वादिति ग० ।

(२) प्रमात्मकनिश्चयाकारव्यभिचारज्ञानत्वेनेति क० ।

प्रमात्वश्चियाकारव्यभिचारज्ञानत्वेनेति ख० ।

तस्यैव प्रतिबन्धकत्वात् शब्दादौ तथा दर्शनात्,
साध्याभावप्रमाविषयवृत्तित्वस्य हेतुवृत्तित्वादसाधक-
त्वेन साध्याभावप्रमाया हेत्वाभासत्वं साधारण्येऽपि
ज्ञायमानं सत् यदनुमितिं प्रतिबध्नाति तस्यैव हेत्वा-
भासत्वं । न च साध्याभावप्रमाचेति निश्चयदशायां
पक्षे साध्याभाव-हेत्वोर्ज्ञानाद्यभिचारइति वाच्यं ।

स्वाश्रयविशेषीभूतपक्षवृत्तित्वसम्बन्धेन हेतुवृत्तित्वादित्यर्थः, 'असा-
धकत्वेनेति पाठः हेतोरसाधकत्वसाधकत्वेनेत्यर्थः, 'असाधनत्वेनेति
पाठेऽप्ययमर्थः, 'असाधारणत्वेनेति पाठस्त्वप्रामाणिकः, (१) 'साध्या-
भावप्रमाया इति भावप्रधानो निर्देशः, 'हेत्वाभासत्वमिति, अनेनैव
परम्परासम्बन्धेन तस्यासाधकतासाधकत्वात् । न च स्वरूपासिद्धि-
यङ्गीर्णं कथमनेन सम्बन्धेनासाधकतासाधकत्वं तस्येति वाच्यं । येन
केनचित् सम्बन्धेन पक्षवृत्तित्वस्यैव तत्र घटकत्वात् इति भावः ।

ननु तथापि शाब्दबोधेऽप्येतज्ज्ञानस्य प्रतिबन्धकतया न हेत्वा-
भासत्वसम्भवः अनुमित्यसाधारणदोषस्यैव हेत्वाभासत्वादित्यत आह,
'साधारण्येऽपीति, साधारण्येनासाधारण्येन वा यज्ज्ञानमनुमिति-
प्रतिबन्धकं तस्यैव हेत्वाभासत्वमित्यर्थः । व्यभिचारज्ञानेनान्यथासिद्धिं
निराकर्तुं शङ्कते, 'न चेति, 'अत्र' पक्षतावच्छेदकावच्छिन्ने पक्षे,

प्रमात्वज्ञानस्य साध्याभावनिश्चयहेतुत्वेन तदृशायां
तदभावात् । पक्षधर्मतावलेन प्रसिद्धं बाधान् सिध्य-

‘साध्याभाव-हेतुर्ज्ञानादिति^(१) पक्षतावच्छेदकावच्छिन्ने साध्याभाव-
वत्त्वस्य हेतौ च पक्षतावच्छेदकावच्छिन्नवृत्तित्वस्य ज्ञानादित्यर्थः,
‘व्यभिचारः’ व्यभिचारग्रहः, हेतौ यद्वर्मावच्छिन्नवृत्तित्वमवगाहते
तद्वर्मावच्छिन्ने साध्याभाववत्त्वविषयकस्यापि समूहालम्बनज्ञानस्य
व्यभिचारज्ञानत्वादिति भावः । ‘प्रमात्वज्ञानस्य’ यथोक्तप्रमात्वप्रका-
रकज्ञानस्य, हेतुतावच्छेदकप्रकारकज्ञानविधया इति शेषः । ‘सा-
ध्याभावनिश्चयहेतुत्वेनेति साध्याभावप्रमाविशेष्यत्वेन हेतुना पक्षता-
वच्छेदकावच्छिन्ने अनुमित्यात्मकसाध्याभावनिश्चयहेतुत्वेनेत्यर्थः, ‘त-
दृशायां’ प्रमात्वज्ञानदृशायां, ‘तदभावादिति पक्षतावच्छेदकावच्छिन्ने
साध्याभावनिश्चयानावश्यकत्वादित्यर्थः, प्रमात्वस्य साध्याभाववत्त्व-
घटितत्वेऽपि तदंगे निर्द्वर्मावच्छेदकत्वात्, यद्वर्मावच्छिन्नवृत्तित्वं
हेतौ विषयीक्रियते तद्वर्मापलक्षिते निर्द्वर्मावच्छेदकसाध्याभा-
ववत्त्वज्ञानन्तु न व्यभिचारज्ञानमिति भावः । पूर्वोक्तास्वरसेन स्वम-
तमाह, ‘पक्षधर्मतावलेनेत्यादिना ‘वयमित्यन्तेन, ‘पक्षधर्मतावलेन’
वक्तव्याप्यो धूमः पर्वतवृत्तिरिति सामान्यतः परामर्शेन, ‘प्रसिद्धं’
दृष्टान्तेन ज्ञातं महानसीयवज्रादिकं, ‘बाधात्’ बाधादेव पक्षता-
वच्छेदकावच्छिन्ने तदभावनिश्चयादेवेति यावत्, ‘इति बाधः पृथगिति

(१) साध्याभाव-हेतुज्ञानादिति क०, ग०, साध्याभाव-हेतुज्ञानादिति
कस्यचिन्मूलपुस्तक ३ पाठः ।

तीति बाधः पृथक् । प्रसिद्धवज्रभाववति पक्षे व्यभि-
चारान्न तत्सिद्धिरिति चेत्, तर्ह्यप्रसिद्धवज्रभाववति
सपक्षे व्यभिचारात् तमपि न साधयेत् तदज्ञाना-
त्तत्साधनेऽनुमितिप्रमा स्यात् । अथ पक्षवृत्तेरन्य-
एव धूमादिः सपक्षे, तर्हि गोत्व-पृथिवीत्व-द्रव्यत्वादे-

अतः पक्षविशेष्यक-तदभावनिश्चयत्वेनापि तदनुमितौ प्रतिबन्धकत्व-
मावश्यकमित्यर्थः, तथाच तदभाववत्पक्ष एव पक्षविशेष्यक-तदनुमितौ
बाधइति भावः । 'प्रसिद्धवज्रभाववतीति प्रसिद्धवज्रभाववत्त्वेन विष-
यौक्यतस्य पक्षतावच्छेदकावच्छिन्नस्य हेतौ वृत्तिमत्त्वज्ञानादित्यर्थः, 'न
तत्सिद्धिरिति व्यभिचारज्ञानादेव न तत्सिद्धिरित्यर्थः । गूढाभि-
सन्धिमाह, 'तर्हीति, 'अप्रसिद्धवज्रभाववतीति दृष्टान्ते अज्ञातस्य
पक्षीयसाध्यस्याभाववतीत्यर्थः, 'व्यभिचारात्' हेतौ वृत्तिवज्ञानात् ।
ननु यदैवाप्रसिद्धवज्रभाववत्त्वज्ञानं न सपक्षे तदैव तत्साधयेदित्यत-
आह, 'तदज्ञानादिति, 'तत्साधने' तत्साधनसम्भवेऽपि, 'अनुमितिप्रमा
स्यादिति व्यभिचारिहेतुजन्यत्वेनानुमितिप्रमा स्यादित्यर्थः, एत-
च्चस्मात्ततः व्यभिचारिलिङ्गजन्यत्वेऽपि विषयबाधाभावेनानुमितेर-
प्रभावासम्भवात्^(१) अन्यथा घटो द्रव्यं सत्त्वादित्यादावप्यनुमितेरप्र-
भात्वप्रसङ्गादिति ध्येयं । 'अथेति, तथाच पक्षवृत्तिहेतौ पक्षीयसाध्य-
व्यभिचारज्ञानाभावात् तद्वेतुकपक्षीयसाध्यानुमितौ न किमपि
बाधकमिति भावः । 'तर्हि' तथापि, 'अप्रसिद्धसाक्षाद्येति पक्षवृत्तिसा-

(१) अप्रमात्वाभावसम्भवादिति क० ।

इष्टापत्तिः भिन्नप्रकारकत्वेन तादृशबाधज्ञानस्य तत्र प्रतिबन्धक-
त्वानभ्युपगमात् वायौ पार्थिवादिसकलविशेषरूपाभावग्रहेऽपि वायू-
रूपवान्न वेति संशयस्य वायूरूपवानिति निश्चयस्य चोत्पादात्
द्वितीयकल्पस्य च तद्रूपेण परामर्शविरहादेवासम्भवः तद्रूपेण परा-
मर्शसत्त्वे च व्यभिचारज्ञानेनान्यथासिद्धिस्तदवस्थेति । मैवं । इतर-
बाधादिसहकारात्^(१) व्यापकतानवच्छेदकेनापि रूपेणानुमितौ साध्यं
प्रकारौभवति यथा अयं जीवन-मरणान्यतरप्रतियोगी प्राणित्वादि-
त्यत्र जीवनप्रतियोगित्वत्वेन जीवनप्रतियोगित्वं, इत्यञ्च वक्तव्याप्यो
धूमः पर्वतवृत्तिरिति सामान्यतः परामर्शो महानसीयवक्त्रौतरवज्र-
भाववान् पर्वत इतीतरबाधज्ञानं महानसीयवक्त्रिकल्पने लाघवमिति
लाघवज्ञानं वा वर्त्तते अथ च महानसीयवज्रभाववान् पर्वत इति
महानसीयवक्त्रेरपि बाधज्ञानं वर्त्तते तत्र महानसीयवक्त्रित्वरूपेणा-
नुमितिवारणाय बाधज्ञानस्य पृथक्प्रतिबन्धकत्वावश्यकत्वात् । न
चैवं 'साध्यतावच्छेदकेन प्रकारेणेति मूलासङ्गतिरिति वाच्यं ।
तस्याप्रसिद्धमिवेत्यत्रैवान्वयात् प्रसिद्धमपि साध्यमित्यस्य च महा-
नसीयवक्त्रित्वादिनेति शेषः, इति न काप्यनुपपत्तिः ।

नव्यास्तु अयं वृत्तः कपिसंयोगी एतत्त्वादित्याद्यव्याप्यवृत्ति-
साध्यके यदा केवलविशेषणताविशेषसम्बन्धेन पक्षे साध्यतावच्छेदक-
संनवायसम्बन्धावच्छिन्नसाध्याभाववत्त्वज्ञानमस्ति अव्याप्यवृत्तित्वज्ञा-
नञ्च साध्याभावे नास्ति तदा तत्रानुमितिवारणाय पक्षविशेष्यक-

धूम-गोत्वादिकं साधयेत् यदि बाधा न दौष इति वयम् । साध्याभाववन्मात्रसहचारो न व्यभिचारः

तदभावनिश्चयत्वेन^(१) पृथक्प्रतिबन्धकत्वमावश्यकं तस्य हेतौ पक्षता-
वच्छेदकावच्छिन्नवृत्तित्वविषयकत्वेऽपि व्यभिचारज्ञानत्वाभावात् अन-
वच्छिन्नाधिकरणतासम्बन्धेन साध्याभाववत्त्वस्य व्यभिचारघटकत्वात्
बाधज्ञानस्य तु केवलविशेषणताविशेषसम्बन्धेन साध्याभावावगाहित्वेऽपि
अव्याप्यवृत्तित्वग्रहविरहदशायां प्रतिबन्धकत्वात् । न चैवं केवलविशेष-
णताविशेषसम्बन्धेन साध्याभावतः पक्षस्यापि बाधतया अव्याप्य-
वृत्तिसाध्यक-व्याप्य-पक्षधर्महेतोरपि बाधितत्वापत्तिरिति वाच्यं ।
हेत्वाभासविभाजकतावच्छेदकबाधितत्वस्य तत्रेष्टत्वात् बाधितव्यवहा-
रनियामके चानवच्छिन्नाधिकरणतासम्बन्धेन साध्याभाववत्त्वस्य घट-
कत्वात् “बाधितोऽयमपक्षधर्मो हेतुरनैकान्तिको वा” इति प्रवादस्य
व्याप्यवृत्तिसाध्यकबाधपरत्वात् अन्यथा यादृशविशिष्टविषयित्वमि-
त्यादिप्रागुक्तहेत्वाभाससामान्यलक्षणस्य केवलविशेषणताविशेषसम्बन्धेन
कपिसंयोगाद्यभाववति वृत्तादावतिव्याप्यापत्तेः तत्राप्रामाण्यज्ञाना-
नास्कन्दितत्ववदव्याप्यवृत्तित्वग्रहानास्कन्दितत्वस्यापि निश्चयविशेषण-
त्वावश्यकत्वादिति तत्रैव स्फुटमिति प्राहुः ।

ज्ञानासाङ्कर्यं व्यवस्थाप्य विषयासाङ्कर्यं व्यवस्थापयति, ‘साध्या-
भाववन्मात्रेति, ‘सहचारः’ वृत्तित्वं, ‘साध्याभावमात्रेति पाठे ‘सहचारः’

साध्यप्रागभाव-ध्वंसवद्वृत्तित्वेन व्यभिचारितया पृथिवीत्वादिना गन्धादेः द्रव्यत्वादिना गुणस्यानुमान-भङ्गप्रसङ्गात्, किन्तु साध्यात्यन्ताभाववद्गामित्वम् एवञ्च स्वप्रागभाव-ध्वंसावच्छिन्नतदाश्रये तत्प्रतियोगिसाधने पक्षे व्यभिचारोनेति बाधादूषणम् । अथा-

सामानाधिकरण्यं, 'अनुमानभङ्गप्रसङ्गादिति अनुमाने व्यभिचार्यहेतुकत्वभङ्गप्रसङ्गादित्यर्थः, तथाच गन्धवान् पृथिवीत्वात् गुणवान्द्रव्यत्वादित्यादावतिव्याप्तिप्रसङ्गादिति फलितं । 'साध्यात्यन्ताभावेति साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्न-साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभाववद्गामित्वमित्यर्थः, एतादृशाभावविशेषलाभायैवात्यन्ताभावपदं अन्यथा अत्यन्ताभावपदोपादानेऽपि वैशिष्ट्य-व्यासज्यवृत्तिधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावमादायैव गन्धवान् पृथिवीत्वादित्यादावतिव्याप्तितादवस्थात् । 'स्वप्रागभावेति स्वप्रागभाव-स्वध्वंसकालविशिष्टेत्यर्थः, 'तदाश्रय इति, 'पक्ष इत्यग्रेतनमत्र सम्बध्यते, तन्मात्रवृत्तिना हेतुनेति शेषः, 'तत्प्रतियोगीति कर्मधारयः तद्रूपप्रतियोगिसाधन-इत्यर्थः, 'व्यभिचारो नेति ध्वंस-प्रागभावाधिकरणे देशे सामान्यात्यन्ताभावाभावेन यथोक्तव्यभिचारस्य तत्रासम्भवादिति भावः । 'बाधो दूषणमिति प्रागभावादिरूपसाध्याभावत्यचात्मको बाधः स एव दोष इत्यर्थः, तथाचैतद्गन्धप्रागभावकालीनैतद्गन्धध्वंसकालीनो बाधो घट एतद्गन्धवान् एतद्वृत्तादित्यादावेव बाधस्य व्यभिचारासङ्कीर्ण-दाहरणमिति भावः । प्रागभाव-ध्वंसकालस्य पक्षतावच्छेदकलाभिधानं

वच्छेद्ये सिद्धसाधनम्, अवच्छेदके हेत्वसिद्धिः, वि-

वक्ष्यमाणरीत्या सिद्धसाधनवारणायेति ध्येयं । प्रतियोगिमत्ताज्ञानं विना दैशिकविशेषणताविशेषसम्बन्धेन प्रागभावादिसत्त्वज्ञानं न सम्भवतीत्यभिमानेन शङ्कते, 'अथेति, 'अवच्छेद्य इति विशेय्यीभूते पक्षे इत्यर्थः, 'सिद्धसाधनमिति साध्यप्रागभावादिसत्त्वज्ञानकाले साध्यनिश्चय इत्यर्थः, तथाच तदानीं सिद्धिसत्त्वादेवानुमित्यनुत्पाद-सम्भवात् तज्ज्ञानस्यानुमितिप्रतिबन्धकत्वे मानाभावेन प्रागभावादिरूपसाध्याभाववत्पक्षो न बाध इति भावः । ननु प्रागभावादिरूपसाध्याभाववत्पक्षस्य बाधत्वाभावेऽपि प्रकृतहेतुना पक्षतावच्छेदकीभूतप्राग-भावादिकालेऽपि कदाचिदवच्छेदकतासम्बन्धेन प्रकृतसाध्यानुमित्यु-त्पत्त्या तत्प्रतिबन्धकज्ञानविषयत्वेन पक्षतावच्छेदकप्रागभावादिकाले अवच्छेदकतासम्बन्धावच्छिन्नप्रकृतसाध्यात्यन्ताभाववत्त्वं बाध एव तथाच एतद्गन्धप्रागभावाद्यधिकरणक्षणः एतद्गन्धवान् एतद्वटत्वादित्यादावेव बाधस्यासङ्कीर्णोदाहरणं सुलभमित्यत आह, 'अवच्छेदक इति, पक्ष-तावच्छेदकप्रागभावादिकाल इत्यर्थः, 'हेत्वसिद्धिरिति, तथाच तस्य व्यभिचारासङ्कीर्णत्वेऽपि स्वरूपासिद्धिसङ्कीर्णतया स्वरूपासिद्धि-व्यभि-चारान्यतरासङ्कीर्णं बाधोदाहरणं दुर्लभमेव अन्यथा हृदो वन्निमान् धूमादित्यादावेव केवलव्यभिचारासङ्कीर्णोदाहरणस्य सौलभ्यादिति भावः । ननु तथापि साध्यतावच्छेदकसमवायसम्बन्धावच्छिन्नसाध्या-त्यन्ताभाववान् पक्षतावच्छेदकप्रागभावादिकालविशिष्टः पक्षो बाध-एव । न चैवं तत्र हेतोः सत्त्वासत्त्वाभ्यां व्यभिचार-स्वरूपासिद्ध्यन्यतरस-

शिष्टञ्च नान्यदिति चेत्, तर्हि प्रागभाव-ध्वंसप्रति-
योगिनोरेकवृत्तित्वेनैकसमयतापि स्यात् । अथ यत्स-
मयावच्छेदेन तत्र प्रागभावः प्रध्वंसो वा न तत्सम-
यावच्छेदेन प्रतियोगीति चेत्, तर्हि तदवच्छेदेन

ङ्करो दुर्वार एवेति वाच्यं । प्रतियोगिव्यधिकरणसाध्याभावस्यैव व्यभि-
चारघटकत्वात् बाधे च प्रतियोगिव्यधिकरणत्वस्याघटकत्वात् इत्यत-
आह, 'विशिष्टञ्चेति, तथाच तस्यापि प्रागभावाद्यधिकरणदेशतया
नात्रात्यन्तभावसम्भव इति भावः । गूढाभिसन्धिमाह, 'तर्हीति विशि-
ष्टस्यानतिरिक्तत्वे हीत्यर्थः, 'प्रागभाव-ध्वंसप्रतियोगिनोरिति प्रागभा-
वस्य ध्वंसस्य प्रागभाव-ध्वंसं प्रागभाव-ध्वंसञ्च प्रतियोगी च प्रागभाव-
ध्वंसप्रतियोगिनोरित्येकवचनान्तद्वन्द्वगर्भः इतरेतरद्वन्द्वः "सर्व्वो द्वन्द्वो
विभाषया एकवचनं भवति" इत्यनुशासनादितरेतरद्वन्द्वस्यापि कदा-
चिदेकवचनान्तता, 'प्रागभाव-ध्वंसप्रतियोगिनामिति वज्रवचनान्त-
पाठस्तु सुगम एव, 'एकवृत्तित्वेन' एकदेशवृत्तित्वेन, 'एकसमयतापीति
एककालविशिष्टैकदेशनिरूपितवृत्तित्वापीत्यर्थः, विशिष्टस्यानतिरिक्त-
त्वादिति भावः । अभिसन्धिसुद्धाटयितुमाह, 'अथेति, तथाचैक-
समयावच्छिन्नैकदेशवृत्तित्वस्याभावात् विशिष्टनिरूपितवृत्तित्वाभाव-
इति भावः । 'तर्हीति एकसमयावच्छिन्नस्यैकदेशवृत्तित्वस्याभावेऽपी-
त्यर्थः, 'तदवच्छेदेनेति स्वप्रागभावादिसमयावच्छिन्नपक्षवृत्तित्वप्रका-
रेण प्रतियोग्यनुमितिप्रतिबन्धकं सिद्धसाधनं नेत्यर्थः, शुद्धप्रतियोगि-

प्रतियोगिसाधने न सिद्धसाधनं किन्तु बाध एव,
अन्यथा भावात्यन्ताभावयोरप्यव्याप्यवृत्तित्वभङ्गः एक-
वृत्तित्वात् अवच्छेदकभेदेन वृत्तिरिहापि तुल्या तत्र

मत्तानिश्चयस्य तादृशप्रतियोग्यनुमितावप्रतिबन्धकत्वादिति भावः ।
एतच्च देशः कालो वा यत्र पक्षतावच्छेदकस्तत्र पक्षतावच्छेदका-
वच्छिन्नपक्षवृत्तित्वं साध्ये प्रकारीभूय भासते अवच्छिन्नत्वञ्च स्वरूप-
सम्बन्धविशेष इति जरत्तरमतानुसारेणाभिहितं । 'किन्तु बाध-
एवेति किन्तु प्रागभावादिरूपसाध्याभाववत्त्वेन पक्षज्ञानमेवेत्यर्थः,
तादृशानुमितिप्रतिबन्धक इति शेषः । तथाच प्रागभावादिरूप-
साध्याभाववत्पक्षोऽपि बाध इति भावः ।

ननु साध्याधिकरणदेशेऽपि साध्यप्रागभावादिसत्त्वे प्रागभावादेर-
व्याप्यवृत्तित्वभङ्गप्रसङ्गः प्रतियोग्यधिकरणदेशावृत्तित्वस्याव्याप्यवृत्ति-
त्वरूपत्वात् किन्तु प्रतियोग्यवृत्तिप्राक्कालादिवृत्तिरेव प्रागभावादिः
अतएव प्रागभाव इति व्यावहार इत्यत आह, 'अन्यथेति प्रतियोग्य-
धिकरणदेशावृत्तित्वस्याव्याप्यवृत्तित्वरूपत्वे इत्यर्थः, 'भावात्यन्ताभाव-
योरिति पाठः, भावस्य संयोगादेस्तदत्यन्ताभावस्य चेत्यर्थः, 'अन्यो-
न्यात्यन्ताभावयोरिति पाठस्तु प्रामादिकः, 'एकवृत्तित्वात्' प्रति-
योगिना सममेकदेशवृत्तित्वात् । इदमुपलक्षणं समवायादिसम्बन्धा-
वच्छिन्नगोत्वाद्यभावस्याव्याप्यवृत्तित्वप्रसङ्ग इत्यपि बोध्यं, तस्मात्प्रति-
योग्यनवच्छेदकावच्छेदेन प्रतियोग्यधिकरणवृत्तित्वमेवाव्याप्यवृत्तित्वं
तच्चेहाप्यस्तीत्यभिप्रेत्याह, 'अवच्छेदकभेदेनेति 'तत्र' संयोगादि-

देशभेदोऽवच्छेदकोऽत्र तु समयभेदइति । असिद्धेरपि

तदत्यन्ताभावेपु, 'अत्र तु' ध्वंस-प्रागभावयोस्तु, एतच्चापाततः अव्याप्य-
वृत्तित्वादिग्रहाभावविशिष्टस्य पक्षविशेषक-साध्यतावच्छेदकसम्बन्धाव-
च्छिन्न-साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताकसाध्याभाववत्त्वज्ञानस्यै-
वानुमितिप्रतिबन्धकतया तादृशसाध्याभाववत्पक्षस्यैव बाधत्वेन साध्य-
प्रागभावादिमत्पक्षस्य बाधत्वविरहात् तज्ज्ञानस्यानुमितिप्रतिबन्धकत्वे
मानाभावात् । न चैवं स्वरूपासिद्धि-व्यभिचारान्यतरासङ्कीर्णबाधो-
दाहरणमेव दुर्लभमिति वाच्यं । घटो गन्धवान् पृथिवीत्वात् अयं
वृक्षः कपिसंयोगवान् एतद्वृत्तत्वादित्यादिकालिक-दैशिकाव्याप्यवृत्ति-
साध्यकव्याप्य-पक्षधर्मव्याप्यवृत्तिहेतुमात्रस्यैव तादृशबाधोदाहरणस्य
सुलभत्वात् ध्वंस-प्रागभावयोरत्यन्ताभावविरोधित्वे मानाभावात्
गन्धवत्यपि घटे उत्पत्तिकालावच्छेदेन गन्धात्यन्ताभावसत्त्वात् अग्रा-
वच्छेदेन कपिसंयोग-तद्ध्वंस-प्रागभाववत्यपि वृक्षे मूलावच्छेदेन कपि-
संयोगाभावसत्त्वात् व्याप्तिलक्षणे प्रतियोगिव्यधिकरणभावस्य घटक-
तया व्यभिचारलक्षणेऽपि तादृशसाध्याभावस्यैव घटकत्वेन व्यभिचार-
विरहात् हेतोर्व्याप्यवृत्तितया न तत्र स्वरूपासिद्धिरिति बोध्यं । न
च प्रतियोगिव्यधिकरणसाध्याभाववत्पक्षस्यैव बाधतया बाध एव तत्र
कथमिति वाच्यं । प्रतियोगिवैयधिकरणस्य बाधज्ञानप्रतिबन्धकता-
यामघटकतया साध्याभाववत्पक्षमात्रस्यैव बाधत्वात् अन्यथा यादृश-
विशिष्टविषयित्वमित्यादिहेत्वाभाससामान्यलक्षणस्य बाधलक्षणस्य च
तत्रातिव्याप्तिप्रसङ्गात् प्रतियोगिव्यधिकरणसाध्याभाववत्पक्षस्य प्रति-

बन्धकतावच्छेदकविशिष्टान्तरघटितत्वेन हेत्वाभासत्वाभावस्येष्टत्वात्^(१)
 पर्वतो वक्त्रिमान् पर्वतत्वात् कालो गोत्वान् गोत्वादित्यादेरपि
 बाधासङ्कीर्णदाहरणस्येष्टत्वात् । न च प्रतियोगिवैयधिकरण्या-
 विषयकव्याप्तिज्ञानस्याप्यनुमितिहेतुतया तत्प्रतिबन्धकज्ञानविषयत्वेन
 केवलसाध्याभाववृत्तिसाधनमपि व्यभिचारस्तस्य च यथोक्तस्यलेष्वपि
 सत्त्वात् कथं व्यभिचारासाङ्कर्यमिति वाच्यं । यथोक्तस्यलेषु व्यभिचा-
 रित्वस्य व्यवहारविरहेण प्रतियोगिव्यधिकरणसाध्याभावस्यैव व्याप्य-
 वृत्तिसाध्यकस्यले व्यभिचारघटकत्वात् अत एव तत्साध्यकहेत्वाभा-
 ससामान्यलक्षण-व्यभिचारसामान्यलक्षण-साधारणलक्षणेऽप्यथनायत्या
 प्रतियोगिव्यधिकरणभावघटितैव व्यभिघटिका अन्यथा भट्टाचार्या-
 दीनां स्वोत्पत्तिकालीनो घटो गन्धवान् पृथिवीत्वादित्यादेः स्वरू-
 पासिद्धिव्यभिचारान्यतरासङ्कीर्णबाधोदाहरणत्वाभिधानस्यासङ्गत-
 त्वापत्तेः गन्धादेः कालिकाव्याप्यवृत्तितया साध्याभाववृत्तित्वस्य
 तत्रापि सत्त्वात् । यदि च शुद्धसाध्याभाववृत्तिसाधनस्यापि व्यभि-
 चारित्वमुपेयते हेत्वाभासादिलक्षणेऽपि प्रतियोगिव्यधिकरणसाध्या-
 भाववृत्तित्व-शुद्धसाध्याभाववृत्तित्वयोरुभयोः सङ्गहाय प्रतियोगि-
 वैयधिकरण्याघटिता व्याप्तिरेव निवेश्यते भट्टाचार्यादीनां वचनं
 नाद्रियते उक्तहेतुषु बाधितत्वव्यवहारवद्भ्यभिचारित्वव्यवहारोऽपि
 स्वीक्रियते, तदा तु स्वरूपासिद्धि-व्यभिचारान्यतरासङ्कीर्णत्वं बाधस्य
 न क्वापीति समासः । ननु बाधज्ञाने सति सिषाधयिषाया असम्भवात्
 पक्षताविरहादाश्रयासिद्धिसत्त्वादेव नानुमितिर्भविष्यति किं बाधस्य

(१) तत्त्वाभावस्येष्टत्वादिति ग० ।

बाध एवोपजीव्यः । न चैवमुपजीव्यत्वाद्बाधवत् सिद्ध-
साधनमपि पृथक्, उपजीव्यत्वेऽपि स्वतोऽदूषकत्वात् ।
न हि साध्यज्ञानं तद्वृद्धिविरोधि, धारावाहिकज्ञानो-
दयात् । नाप्यनुमितिविरोधि अनुमित्तया प्रत्यक्ष-
सिद्धेऽप्यनुमानदर्शनात्, तदुक्तं प्रत्यक्षदृष्टमप्यनुमानेन
बुभुत्सन्ते तर्करसिका इति अवगणानन्तरं मननदर्श-
नाच्च तस्मात् सिद्धिमात्रार्थिनः सिद्धौ न तदिच्छा

पृथग्दोषत्वेनेत्यत आह, 'असिद्धेरपीति सिषाधयिषात्मकपक्षता-
विरहरूपाश्रयासिद्धेरपीत्यर्थः, 'उपजीव्य इति, तथाचोपजीव्यत्वात्
बाधोऽपि दोष इति भावः । इदमुपलक्षणं बाधज्ञानसत्त्वे सिषा-
धयिषोत्पत्तौ बाधकाभावाच्चेत्यपि बोध्यं । 'उपजीव्यत्वादिति सिषा-
धयिषाविरहरूपपक्षताविरहं प्रत्युपजीव्यत्वादित्यर्थः, 'सिद्धसाधनं'
साध्यवत्पक्षः, 'पृथगिति, हेत्वाभासः स्यादिति शेषः । 'स्वतोऽदूषक-
त्वादिति तज्ज्ञानस्य साक्षादनुमितिप्रतिबन्धकत्वासम्भवादित्यर्थः,
'साध्यज्ञानं' साध्यवत्पक्षज्ञानं, 'तद्वृद्धिविरोधीति पक्षे साध्यज्ञान-
सामान्यविरोधीत्यर्थः, 'ज्ञानोदयात्' प्रत्यक्षोदयात्, 'प्रत्यक्षसिद्धे-
ऽपीति प्रत्यक्षतोनिश्चितेऽपीत्यर्थः, 'बुभुत्सन्ते' अनुमित्तया जानन्ति,
मननदर्शनाच्चेति, अवगणानन्तरं मननबोधनाच्चेत्यर्थः, 'सिद्धिमात्रा-
र्थिन इति सामान्यतः सिद्धित्वप्रकारकफलसाधनताज्ञानमात्रवत्-
इत्यर्थः, 'सिद्धौ' प्रत्यक्षतः सिद्धौ सत्यां, 'न तदिच्छा' न सिद्धीच्छा,

सिद्धिविशेषार्थिनः सास्तीति तस्यानुमितिरेव, एवञ्च
 सिषाधयिषितपक्षविघटनद्वारा सिद्धसाधनं दूषणं न
 स्वतः । नन्वभावधीरपि न भावधीप्रतिबन्धिका नेदं
 रजतमिति भ्रमानन्तरं रजतनिश्चयात् । नचाभाव-
 प्रमा तथा, अपीतः शङ्कुइति प्रमापयतएव पीतोऽय-
 मिति भ्रमदर्शनादिति चेत्, न, विरोधिज्ञानं हि प्रति-

‘सिद्धिविशेषार्थिन इति अनुमित्यादिरूपसिद्धिविशेषत्वप्रकारक-
 फलसाधनताज्ञानवत् इत्यर्थः, ‘सास्ति’ प्रत्यक्षतः सिद्धौ सत्यामपि
 सिद्धौच्चास्ति, ‘सिषाधयिषितेति सिषाधयिषारूपपक्षताविघटन-
 द्वायेत्यर्थः, ‘सिद्धसाधनं’ साध्यवत्पक्षनिश्चयः, ‘दूषणं’ कचिदनु-
 मितिविघटकं, ‘न स्वत इति न साक्षादित्यर्थः, एतच्च सिषाध-
 यिषायाः पक्षतात्वमतेन, मणिकृन्मते तु साध्यवत्पक्षो यथा न
 हेत्वाभासस्तथोक्तं सामान्यलक्षणविचारावसर इति ध्येयं । ‘भ्रमा-
 नन्तरमिति सति विशेषदर्शन इति शेषः । तथाच साध्याभाववत्पक्ष-
 रूपस्यैव बाधस्य कथं हेत्वाभासत्वमिति भावः । ‘अभावप्रमेति
 अगृहीताप्रामाण्यकाभावज्ञानमित्यर्थः, नेदं रजतमिति भ्रमे च विशे-
 षदर्शनोत्पत्तिकाले अप्रामाण्यवहादिति भावः । ‘प्रमापयतः’ अगृ-
 हीताप्रामाण्यकज्ञानवतः, ‘भ्रमदर्शनादिति दोषविशेषजन्यचाक्षुष-
 भ्रमदर्शनादित्यर्थः, ‘विरोधिज्ञानमिति विरोधितावच्छेदकावच्छिन्नं

बन्धकं प्रत्यक्षभ्रमस्य च प्रत्यक्षप्रमा विरोधिनी सा च
शङ्खादौ दोषात् नास्त्येव अनुमितौ त्वभावप्रमामात्र-
मेव विरोधीति कथमभावप्रमायां भावानुमितिरिति ।
स चायं दशविधः धर्मिग्राहकमानवाधितं घटोऽव्या-
पकः सत्त्वादिति प्रत्यक्षेण परमाणवः सावयवा मूर्त्त-

ज्ञानमित्यर्थः, 'प्रतिबन्धकं' प्रतिबन्धानुत्पादप्रयोजकं, 'प्रत्यक्षभ्रमस्य
चेति लौकिकप्रत्यक्षात्मकभ्रमस्य चेत्यर्थः, 'प्रत्यक्षप्रमेति समानेन्द्रिय-
जन्यलौकिकप्रत्यक्षप्रमेत्यर्थः, लौकिकप्रत्यक्षं प्रति समानेन्द्रियजन्य-
लौकिकग्राह्याभावनिश्चयस्यैव प्रतिबन्धकत्वादिति भावः । 'सा चेति
लौकिकचाक्षुषापीतत्वप्रमा चेत्यर्थः, एतच्चापाततः यत्रापीतः शङ्ख-
इति लौकिकचाक्षुषोत्पत्तिसमकालं तदुत्तरकालं वा दोषोत्पत्तिस्तत्र
तदनन्तरं पीतः शङ्ख इति भ्रमानुत्पत्तेर्दुर्वारत्वात् । वस्तुतस्तु दोष-
विशेषाद्यजन्यत्वस्य प्रतिबन्धतावच्छेदकत्वान्नायं दोष इत्येव तत्त्वं ।
'अभावप्रमामात्रमिति अगृहीताप्रामाण्यकाभावनिश्चयमात्रमित्यर्थः,
'अभावप्रमायां' अगृहीताप्रामाण्यकाभावनिश्चये, 'स चायमिति स-
चायं बाधितो हेतुरित्यर्थः, 'दशविध इति धर्मिग्राहकमानवाधितं
त्रयं, साध्यप्रतियोगिग्राहकमानवाधितं त्रयं, साध्यग्राहकमानजाती-
यज्ञानवाधितमेकं, हेतुग्राहकमानवाधितं त्रयं, क्रमेण दशविधमि-
त्यर्थः, एतदेव विवृणोति, 'धर्मिग्राहकमानवाधितमिति, त्रयमिति
शेषः, 'धर्मी' पक्षः, तदेव त्रयं क्रमेण दर्शयति, 'घट इत्यादिना आग-
मेनेत्यन्तेन, 'व्यापकः' विभुः, 'प्रत्यक्षेणेति धर्मिणो घटस्य ग्राहकं यत्र-

त्वादित्यनुमानेन मेरुः पाषाणमयः पर्वतत्वादिति सु-
वर्णमयत्वबोधकागमेन, साध्यप्रतियोगिग्राहकवाधितं
वह्निरनुष्णः कृतकत्वादिति प्रत्यक्षेण शब्दोऽश्रावणो
गुणत्वादित्यनुमानेन गवयत्वं गवयपदाप्रवृत्तिनिमित्तं
जातित्वादित्युपमानेन, साध्यग्राहकवाधितं शुचि नर-

त्यक्षं तेनेत्यर्थः, 'वाधितमिति सर्वत्र सम्बध्यते, 'अनुमानेनेति धर्मिणः
परमाणोर्ग्राहकानुमानेनेत्यर्थः, 'पाषाणमयः' असुवर्णमयः, 'सुवर्ण-
मयत्वबोधकेति धर्मिणो मेरोः सुवर्णमयत्वबोधकेत्यर्थः । यद्यपि गव-
यत्वविशिष्टं गवयादिपदवाच्यत्वं न गवयसम्बन्धि वाच्यतात्वादिति
धर्मिग्राहकोपमानवाधितमप्यतिरिक्तं सम्भवति तथाप्युपलक्षणमेत-
दिति द्रष्टव्यं । 'साध्यप्रतियोगिग्राहकवाधितमिति, त्रयमिति शेषः,
तदेव त्रयं क्रमेण दर्शयति, 'वक्त्रोत्पादिना 'उपमानेनेत्यन्तेन, 'प्रत्य-
क्षेणेति साध्यप्रतियोगिग्राहकप्रत्यक्षेणेत्यर्थः, 'अनुमानेनेति साध्य-
'प्रतियोगिग्राहकानुमानेनेत्यर्थः, 'उपमानेनेति साध्यप्रतियोगिग्रा-
ऽकोपमानेनेत्यर्थः । यद्यपि स्वर्गो नाग्निष्टोमकरणकः सुखत्वात्सौक्तिक-
सुखवदिति साध्यप्रतियोगिग्राहकागमवाधितमप्यतिरिक्तं सम्भवति,
तथाप्युपलक्षणमेतदिति द्रष्टव्यं । 'साध्यग्राहकवाधितं' साध्यग्राहक-
जातीयमानवाधितं, एकमिति शेषः, तदेव दर्शयति, 'शुचीति
नरशिरः कपालं शुचीति योजना, 'आगमेनेति दृष्टान्ते शङ्खे
शुचितारूपसाध्यग्राहकं यद्वाक्यमागमत्वरूपेण तत्सजातीयेन नरशिरः

शिरः कपालं^(१) प्राण्यङ्गत्वादित्यत्रागमेन, हेतुग्राहक-
बाधितं जलानिलावुष्णौ पृथिवीतो विपरीतस्पर्शव-
त्त्वात् तेजोवदिति प्रत्यक्षेण मनोविभु ज्ञानसमवाय्या-
धारत्वादित्यनुमानेन राजसूयं ब्राह्मणकर्त्तव्यं स्वर्ग-
साधनत्वाद्भिष्टोमवदिति राजसूयकर्त्तव्यताबोधकाग-
मेनेति ।

कपालं अशुचीति वाक्येनेत्यर्थः, 'हेतुग्राहकबाधितमिति, त्रयमिति
शेषः । तदेव त्रयं दर्शयति, 'जलेत्यादि, 'उष्णौ' उद्भूतोष्णौ, 'प्रत्यक्षे-
णेति हेतुग्राहकप्रत्यक्षेणेत्यर्थः, महति वायावुद्भूतरूपसामान्याभाव-
वत् उद्भूतोष्णस्पर्शसामान्याभावस्यापि प्रत्यक्षत्वसम्भवादिति भावः ।
'अनुमानेनेति मनसि ज्ञानसमवायिसंयोगाधारत्वरूपग्राहकानुमाने-
नेत्यर्थः, 'राजसूयकर्त्तव्यतेति राजसूयस्य चत्रियकर्त्तव्यताबोधक-
हेतुग्राहकागमेनेत्यर्थः, "स्वाराज्यकामो राजसूयेन यजेत" इत्यादि-
श्रुत्या चत्रियकर्त्तव्यतां राजसूयस्य बोधयन्त्या अर्थाद्ब्राह्मणकर्त्तव्य-
तानिषेधादिति भावः । उपलक्षणमिदं, गवयपदं न पशुवाचकं
गवयत्ववाचकत्वादिति हेतुग्राहकोपमानबाधितमप्यतिरिक्तं द्रष्टव्यं ।
अपि वङ्गिरनुष्णः कृतकत्वादित्यादिकं सर्वमेव धर्म्मिग्राहकमान-

(१) 'नरशिरः कपालं शुचि' इति कचिह्नितपुस्तकपाठः परन्त्वयं न
समीचीनः तथा सति 'नरशिरः कपालं शुचीति योजना' इति
रहस्यसन्दर्भस्यासङ्गत्यापत्तेः ।

बाधितं वज्रादावुष्णत्वादिग्राहकमानस्यापि वज्रादिरूपधर्मिग्राहक-
त्वात् । न च धर्मिग्राहकत्वं धर्मितावच्छेदकविशिष्टधर्मिग्राहकत्व-
मिति वाच्यं । घटो व्यापक इत्यादावप्यतथात्वात्, तथाप्युद्भावने
कथकसम्प्रदायसिद्धप्रकारभेदोऽनेन दर्शित इति न काप्यनुपपत्ति-
रिति संक्षेपः ।

इति श्रीमथुरानाथतर्कवागीश-विरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये
अनुमानाख्य-द्वितीयखण्डरहस्ये बाधसिद्धान्तरहस्यं^(१) ॥

(१) बाधनिरूपणप्रस्तावे हेत्वाभासनिष्ठासाधकतासाधकत्वव्यवस्थापकः
'अथेत्यादिसन्दर्भः यदि रहस्यकृता व्याख्यातः तदा एतत्समाप्ति-
सूचकं ब्राह्मं अत्र लेखकप्रमादादायातमिति सम्भाव्यते ।

अथ हेत्वाभासानामसाधकता- साधकत्वनिरूपणं ।

अथ हेत्वाभासानामसाधकतासाधकत्वेन सदुत्तरत्वं जात्यादीनाञ्चासाधकतासाधारण्येन परासाधकतासाधकतया स्वव्याघातकत्वादसदुत्तरत्वं, अथ विरुद्धत्वादिज्ञानादेव स्वार्थानुमितेरिव परार्थानुमितेरपि प्रतिबन्धे किमसाधकतानुमानेन यद्वचसि वाद्युक्तदूषणावगतिः स निगृहीत इति समयबन्धेन कथाप्रवृत्तौ दूषणमात्रमुद्भाव्यमन्यथार्थान्तरत्वादिति चेत्, न, इयं ह्युद्देश्यं परार्थानुमितिप्रतिबन्धः, स्थापनाया असाध-

अथ हेत्वाभासानामसाधकतासाधकत्व- निरूपणव्याख्यानं ।

असाधकतासाधकत्वनिर्वचनाय उपोद्घातसङ्गतिमाह, 'हेत्वाभासानामिति, तथाचासाधकत्वाज्ञाने सदुत्तरत्वापरिचये हेत्वाभासनिर्वचनमेव व्यर्थमापद्येतेति भावः । नन्वसाधकतासाधकत्वं न सदुत्तरत्वं असाधकतासाधनस्यैवाभावात् इत्याह, 'अथेति, 'परेति परेण यामनुमितिमुद्दिश्य प्रयोगः कृतस्तस्या इत्यर्थः, अन्यथा यदपेक्षया परत्वं तदीयविरुद्धत्वज्ञानस्य प्रतिबन्धकत्वप्राप्तेरसङ्गत्यापत्तेः, विरुद्धत्वाद्युद्भावनस्य तत्प्रयुक्तानुमानाद्विरुद्धत्वादिप्रतिहतात् मेऽनुमितिरित्यर्थो न तदुद्भावेन प्रयोक्तुरनुमितिप्रतिबन्ध इत्यर्थ इति

कतासाधनत्वञ्च, तत्राद्यं दूषणमात्रज्ञानाद्देव, द्विती-
यन्तु अलिङ्गत्वज्ञापनात् प्रतिबन्धकत्ववदनेनापि
रूपेण दूषकत्वसम्भव इत्यभिप्रायेण वा असाधकता-
साधनं । नन्वेवं पञ्चावयवप्रयोगापेक्षा स्यात् अन्यथा
न्यूनतापत्तिरिति चेत् । न । दूषणस्यासाधकताव्या-
प्यत्वमङ्गीकृत्य कथेति तत्पक्षधर्मताया एवोद्भाव्यत्वात्
अन्यथा अधिकत्वापत्तेः । नन्वेवं कृतकत्वेनानित्य-
त्वानुमानेऽपि व्याप्तिर्नाभिधेया उभयसिद्धत्वादिति
चेत् । न । कथायां समयविषयतया दूषणे त्वसाध-

भावः, एवमग्रेऽपि, 'द्वितीयन्त्विति, असाधकतासाधनं न तावद्-
यावद्विरुद्धत्वादिलिङ्गत्वेन हेतुपञ्चम्यन्तत्वेन उच्यत इत्यर्थः । ननु
द्वयमुद्देश्यमित्यत्रैवाक्षेपः स एव च समाधिरित्यसङ्गतेर्दयोरुद्देश्यत्वे
वीजमाह, 'प्रतिबन्धकत्ववदिति, 'दूषणस्योद्भाव्यतया' दूषणत्वस्यो-
भयरूपतया तदुभयरूपोद्भावनमुद्देश्यमित्यर्थः, वस्तुगत्यासाधकेऽसा-
धकतानुमितावपि न स्वपक्षसिद्धिरित्यनुमितिप्रतिबन्धकोपन्यास-
आवश्यकः तेनासाधकतानिर्वाहात् असाधकतानुमितिश्च नावश्यकौ
तदभावेऽपि स्वपक्षसिद्धेः दूषणत्वप्रकारापेक्षया काचित्कस्तदुप-
न्यासः सामयिक इति सर्व्वतात्पर्य्यार्थः । 'पक्षधर्मताया इति,
यद्यप्यसाधकतानुमाने विरुद्धत्वादित्येव प्रयोज्यं न तु पक्षधर्मतापि
धूमवत्त्वादित्यत्रैवानाकाङ्क्षितत्वात्, तथापि विरुद्धोऽयमिति प्रथमो-
द्भावनमभिप्रेत्येतद्दृष्टव्यं । 'अधिकेति आकाङ्क्षितादधिकमनाकाङ्क्षित-

कताव्याप्त्युपस्थितेरावश्यकत्वात् अन्यथा कथकत्ववि-
रोधात् । नन्वेवं कृतकत्वेनानुमाने तद्व्याप्तिमनङ्गीकृ-
त्यापि कथासम्भवात् यस्तु कथारम्भे बाधस्यासाधकत्व-

मर्थान्तरमिति यावत् । हेतुद्वयाद्यपन्यासेन यथाश्रुतस्यासङ्गतेरिति ।
'अन्यथेति, नन्वनुमितिप्रतिबन्धकतावच्छेदकरूपदूषणत्वनिश्चयादेव
कथकत्वनिराहृतात् कथमेवं, न हीदमेवासाधकत्वव्याप्तिः, अपि
विदमसाधकत्वमेव, तथाच तद्व्याप्तिप्रतिसन्धानं कथकत्वेऽतन्त्रमेव ।
न चानुमितिप्रतिबन्धकतावच्छेदकरूपवत्त्वमनुमित्यभावनियतं यज्-
ज्ञानं तद्वत्त्वं तथाच यत्र विरुद्धत्वादिसत्त्वानुमित्यभाव इति व्याप्ति-
र्भातैवेति वाच्यं । अनुमित्यभावस्यासाधकत्वरूपत्वाभावात् अपि-
त्वनुमित्यभावप्रयोजकज्ञानविषयतावच्छेदकवत्त्वस्य तत्त्वं तद्व्याप्तिश्चा-
प्रतिसंहितैवेति । मैवं । विरुद्धत्वस्यैवानुमितिप्रतिबन्धकतावच्छेदक-
तया यत्र विरुद्धत्वं तत्र प्रतिबन्धकतावच्छेदकवत्त्वमिति सहचार-
धीधौव्येण व्याप्तिग्रहावश्यकत्वादित्युत्तरकल्पे प्रथमकल्पे च स्फुटैव
प्रतीतिरित्युपगमात्, अतएवानुमित्यभावस्य ज्ञानेन साध्यनिश्चये
पक्षत्वाभावानुमितिः सम्भवतीत्यनुमित्साधीनपक्षतया अनुमिति-
रिति सामयिकमसाधकतासाधनं सर्वसिद्धमिति । 'अनङ्गीकृत्येति
तथाचाङ्गीकारनियमो नात्रेव तत्रापीति भावः । नन्वेवं पृथिवी-
त्वेन पक्षतावच्छेदकेनैव इतरभेदानुमानेन पक्षधर्मत्वं न प्रदर्श्यत
उभयसिद्धत्वात् । न च तत्राप्यभ्युपगमानियमोऽनभ्युपगमे व्याघाता-
पत्तिरिति दूषणान्तरं न त्वभ्युपगमनियम इति वाच्यं । तर्ह्यत्राप्य-

व्याप्तिं नाङ्गीकरोति तं प्रति तद्वृक्षकत्वं प्रसाध्य पञ्चा-
वयवप्रयोगः कर्त्तव्य एव । यत्तु दूषणे पक्षधर्मतामात्र-
मुद्भावं तत्र, यत्र वादिनोस्तथा समयोऽन्यत्र तु पञ्चा-
वयवप्रयोग एवेति । तन्न । कथासम्प्रदायविरोधात् ।
अथासाधकत्वं^(१) न पक्षे साध्यप्रत्ययाजनकत्वं । ते-
नापि तत्त्वेनाज्ञानदशायां पक्षे साध्यभ्रमजननात्
कदाचिदजनकत्वं सङ्केतावपि । नन्वेतत्काले साध्यवि-
शिष्टपक्षज्ञानाजनकं तत्, न हि दूषणत्वज्ञानदशायां
पक्षे भ्रमरूपाप्यनुमितिः, साध्यविशिष्टपक्षज्ञानञ्च
हेतुत्वेन ज्ञानदशायां प्रसिद्धमिति चेत्, न, सङ्केता-

भ्युपगमाभावे व्याघातोऽस्य दोषो न त्वभ्युपगमनियम इत्यत आह,
'यस्त्विति यस्य व्याप्तिमात्रानङ्गीकर्त्ता चार्वाकादिः, 'बाधस्य' दोष-
मात्रस्य, 'दूषकत्वम्' असाधकत्वव्याप्यत्वं, 'प्रसाध्य' व्याघातेनैव, 'प्रयोग-
इत्यनन्तरं' समाचार इति शेषः । तेनासिद्धिरुत्तरं घटते अन्यथा
पञ्चावयवप्रयोगः कर्त्तुमर्हतीत्युक्तौ समाचारविरोधो नोत्तरं घटते
अनर्हताया अत्र युक्त्वादित्यवधेयं । हेतुत्वेनेत्युपलक्षणं हेतुन्तरेण
प्रसिद्धमित्यपि द्रष्टव्यं । अन्यथा वन्निमानयं वन्निविरहादित्यादौ
हेतुत्वभ्रमस्याप्यभावादसङ्गत्यापत्तेरिति । विशेषणत्वमग्रे सिद्धान्त-
एवेति स्वकालस्योपलक्षणत्वपक्षमालम्ब्य दृषयति, 'सङ्केताविति ।

वसत्प्रतिपक्षतादशायामपि पूर्वकाले साध्यविशिष्ट-
पक्षज्ञानाजनकत्वमस्तीत्यसाधकताप्रसङ्गात् । अध पक्षे
साध्यभ्रमजनकत्वं तत् बाध-विरुद्धयोरपि तत्त्वाज्ञान-
दशायां भ्रमजनकत्वादिति चेत्, न, सङ्गतौ सत्प्रतिपक्षे-
ऽसाधारणे च तत्त्वेन ज्ञानदशायां साध्यभ्रमजनकत्वात्
अज्ञाने साध्यभ्रमाजनकत्वात् । नापि व्याप्ति-पक्षधर्म-
तान्यतरराहित्यं, सत्प्रतिपक्षासाधारणसङ्गतोरभावात्
दशाविशेषे तस्य दोषत्वात् साध्याप्रसिद्धौ प्रकृतसाध्य-
व्याप्त्यप्रसिद्धेश्च । नाप्यनैकान्तिकाद्यन्यतमत्वं, यत्कि-
ञ्चिदनैकान्तिकत्वस्यातिव्याप्तेः प्रकृतसाध्यानैकान्तिक-
त्वस्याप्रसिद्धत्वेन केवलान्वयिसाधनेऽप्रसिद्धेः अंशतः
सिद्धसाधनात् साध्याविशेषाच्च । यत्तु एतत्कालीनै-
तत्पक्षीयत्वावच्छिन्नप्रतियोगिकैतत्साध्यप्रमाकरणत्वा-
भावः, तत्तत्काल-तत्तत्पक्षविषयसाध्यत्वाभिमतानित्य-

‘साध्याप्रसिद्धाविति, न च वक्ष्यमाणमप्यसाधकत्वं साध्यगर्भं तत्र न
सम्भवतीति तदसङ्गाह्यत्वेन न युक्तमव्याप्तिप्रदर्शनं तस्य केवला-
पार्यकत्वादिति वाच्यं । साध्याप्रसिद्धेरपि तद्व्यत्ययसिद्धेः शुक्ति-
रजतप्रत्ययादौ तथा दर्शनेन तदजनकत्वलक्षणवक्ष्यमाणासाधकत्वस्य
प्रकृते समर्थनीयत्वादिति भावः । ‘केवलेत्याद्युपलक्षणं सत्प्रतिपक्षा-
द्यनुपहितेऽन्यत्राप्यप्रसिद्धिर्द्रष्टव्या । ‘अंशतः सिद्धेति संग्रहस्य सिद्ध-

त्वादिप्रमाजनकत्वाभावे वाऽसाधकत्वं । न च प्रतियोग्यप्रसिद्धिः, एतत्कालीनैतत्पक्षीयत्व-तत्तत्काल-तत्तत्पक्षविषयत्वयोर्व्यधिकरणयोरेव प्रतियोगितावच्छेदकत्वादिति । तन्न । सङ्केतोः सत्प्रतिपक्षत्वाज्ञानदशायामपि तादृशप्रमायामकरणभावेनासाधकतापत्तेः । नापि तृतीयलिङ्गपरामर्शस्याप्रमात्वं तत्, विरुद्धादौ परामर्शभावात् सङ्केतौ सत्प्रतिपक्षेऽसाधारणे च तत्प्रमात्वाच्च । नाप्यनुमितिहेतुभूताभावप्रतियोगिज्ञानविषयत्वं तत् सङ्केतावपि कदाचित् व्यभिचारित्व-सत्प्रतिपक्षत्व-ज्ञानस्यानुमितिप्रतिबन्धकत्वात् । अथानुमितिप्रतिबन्धकप्रमाविषयत्वमसाधकत्वं सङ्केतौ व्यभिचारादिभ्रमः प्रतिबन्धकः अनुमितिप्रतिबन्धकत्वञ्च व्यभिचारादिप्रमायास्तृतीयलिङ्गपरामर्शविघटनद्वारा तुल्यबलताविषयतया वेति चेत् । न । सत्प्रतिपक्षयोर्विरुद्धयोर्व्यास्तवतुल्यबलत्वाभावेन तद्भ्रमस्य प्रतिबन्धकत्वात् । न च तुल्यबलतया ज्ञायमानेन बोधितसाध्यविपर्ययकत्वज्ञानं प्रतिबन्धकं तच्च प्रमैवेति वाच्यं । तुल्यबलताज्ञानमेव हि प्रतिबन्धकं न तु ज्ञाय-
 सैव साधनादित्यर्थः । एवमग्रेऽपि 'तुल्यबलतेति' अत्र वस्तुगत्या यत्तुल्यबलमगृहीतविशेषबलं तद्विषयतया उभयविरुद्धबलविषयतया

मानत्वज्ञानं गौरवादसिद्धेश्च । न च सत्यप्रतिपक्षेऽन्य-
तराङ्गवैकल्यप्रमैव प्रतिबन्धिकेति वाच्यं । अन्यतरत्वं
तदतद्वृत्ति, न च तदतद्वृत्तिसामानाधिकरण्येन ज्ञाथ-
मानस्य दोषत्वं, धर्ममात्रस्य व्यभिचारज्ञानादनुमित्यु-
च्छेदापत्तेः अन्यतराङ्गवैकल्यज्ञानोपजीव्यस्य तुल्यबल-
त्वज्ञानस्यैव प्रतिबन्धकत्वाच्च । अन्यथा व्याप्यत्वासिद्ध-
न्तर्भावापत्तेः । अथानैकान्तिकादिज्ञानस्य तत्तदनु-
मितिप्रतिबन्धकत्वमसाधकत्वं तथा हीदमनैकान्ति-
कादिज्ञानमेतत्साध्यवत्तयैतत्पुरुषस्यैतत्कालीनैतत्पक्ष-
कानुमितिप्रतिबन्धकम् एतदनैकान्तिकादिज्ञानत्वात्
एतदन्यतज्ज्ञानवदिति चेत् । न । एतत्साध्यवत्तयैतत्प-
क्षकानुमितेः कदाचिल्लिङ्गभ्रमात् प्रसिद्धावप्येतत्का-
लीनैतत्पुरुषस्य तादृशानुमित्यप्रसिद्धेः । नापि समी-
चीनसाध्य-पक्षविषयानुमित्यजनकत्वं,^(१) बाध-विरु-
द्वासिद्धेषु साध्यानधिकरणे पक्षे सत्यसाध्यप्रतीत्य-

वेत्यर्थः, न तु तुल्यत्वमपि विषय इति ध्येयं । नन्वन्यतराङ्गवैकल्य-
संशयाधायकतया दोष इत्यनुभवसिद्धमित्युच्छेदीषान्तरमाह,
'अन्यतरेति, 'एकेति सास्त्रासून्यायामपि गवि तदारोपाङ्गोत्वा-

(१) समीचीनसाध्यविशिष्टपक्षप्रत्ययजनकत्वमिति ख० ।

प्रसिद्धेः वह्निमिति वाष्पे धूमभ्रमात् वज्रानुमितेः
 सत्यत्वाच्च । न चान्य एव वह्निस्तत्र भासते, मानाभा-
 वात् तद्वहेः प्रत्यभिज्ञानात् एकव्यक्तिके तदसम्भवाच्च ।
 न च सानुमितिर्लिङ्गविषयत्वेन भ्रमः, अनुमितौ
 लिङ्गविषयत्वे मानाभावात् । किञ्च भावोऽभावो-
 वोभयथापि प्रमेयमिति सत्यानुमितौ भावत्वाभावत्व-
 वति प्रमेयत्वज्ञाने एकत्र तयोरभावादसत्यानुमितिः
 स्यात् । न चान्यतरत्वं लिङ्गं, तद्व्याप्तिमविदुषोऽप्यनु-
 मितेर्व्यर्थविशेषणत्वाच्च । अथ साध्यव्याप्यत्वमेव तत्र
 तन्त्रं तत्र च बाधेनास्तीति चेत्, तर्हि कूटलिङ्गा-
 दनुमितौ वह्निव्याप्यवत्त्वमेव तन्त्रं वह्निव्याप्यञ्च कि-
 ञ्चित्तत्राख्येव । अथ कूटलिङ्गे वह्निव्याप्याभेदः प्रती-
 यते तथाच वह्नौ कूटलिङ्गव्यापकाभेदोऽपि, अन्यथा
 कूटस्यैव वह्निव्याप्यत्वाप्रतीतेः एवञ्च कूटलिङ्गव्यापको
 वह्नित्वेन भासत इति वज्रानुमितिरसत्यैवेति चेत् ।
 न । वह्निव्याप्यालोके धूमारोपात् यवानुमितिस्तत्रा-
 सिद्धिभेदेऽसत्यत्वाभावापत्तेः आलोकव्यापके धूमव्या-
 पकाभेदात् । अथ लिङ्गमनुमितिर्विषयानियमतः पक्ष-

द्यनुमितावित्यर्थः । 'लिङ्गं' लिङ्गतावच्छेदकं, 'वह्निव्याप्येति, एत-
 चाभ्युपेत्य समाहितं, वस्तुतो वह्निव्याप्याभेदे वह्निस्तद्व्यापकतया-

धर्मताज्ञानविषयत्वात् व्याप्तिज्ञानविषयत्वात् निय-
मेनानुमितिहेतुविशेषणधीविषयत्वाच्च पर्व्वतत्ववत्सा-
ध्यवच्च । किञ्चैकविशेषणवत्त्वेन ज्ञाते विशेषणान्तर-
धीसामग्री तत्रैव विशिष्टवैशिष्ट्यज्ञानमिति धूमवि-
शिष्टएव वह्निवैशिष्ट्यानुमितिरिति । ननु चानुमितौ
व्यापकत्वभावेऽनुमित्यविच्छेदः । न च फलीभूतज्ञान-
न्यूनविषयस्यैव परामर्शस्यानुमितिहेतुत्वं, गौरवात्,
विषयान्तरसञ्चारात् नानुमितिरित्यपि न, परामर्शस्य
चरमकारणत्वात् प्रत्यक्षादिसामग्रीतो बलवत्त्वाच्चेति
चेत् । न । सिद्धसाधनेन विच्छेदात् । यद्यप्येवं लि-
ङ्गांशेऽप्रमात्वेऽपि साध्यप्रमात्वात् कथं तस्यासाधकत्वं,
तथाप्युक्तसाधकत्वमस्त्येवेति चेत्, अस्तु तावदेवं, त-

भासते न तु कूटव्यापके वज्रित्वं सामग्रीविरहादिति ध्येयं । 'नियमत-
इति सिद्धं आवश्यकतया निश्चीयमानतया चेत्यर्थः । तेनाद्येन
आकस्मिकं द्वितीयेन तु व्यापकतावच्छेदकावच्छिन्नमपि सन्दिग्ध-
मुदाहृतभावादि वार्थत इति भावः । मध्यहेतावपि नियमेनेति
पूरणीयं आकस्मिकस्य तत्रापि वारणीयत्वादिति । नांशविवक्षयेद-
मसाधकत्वं निरुच्यत इत्याह, 'तथापीति । 'अस्तु तावदेवमिति,
अभ्युपगमवादोऽयं वस्तुतो नोक्तानुमानादपि तथा सिद्धिरित्येवम्परः
तदसिद्धिवीजन्तु अनुमानं सामग्र्यभावेन फलाभावाद्वाधितं तथाहि

थापि दैवात्तत्र धूमसत्त्वे कथं तदंशेऽप्यसत्यता । अतएव
 आर्द्रेन्धनप्रभवो वह्निर्धूमव्यापको नान्यः । न च वह्नि-
 त्वेन व्यापकत्वादन्योऽपि तथा, तेन विनापि धूम-
 सत्त्वात्, एवं वाप्ये धूमश्चमाद् धूमव्यापको वह्निर्भा-
 सते स च तत्र नास्त्येवेति न सानुमितिः सत्येति
 निरस्तं दैवाद्धूमसत्त्वे सत्यत्वादिति । उच्यते । स्वज्ञान-
 दशायां पक्षे साध्यप्रत्ययाजनकत्वमसाधकत्वं, तथाहि
 विरुद्धत्वादिज्ञानदशावर्तीदं पक्षे साध्यप्रत्ययाजनकं

किं साध्यविशिष्टपक्षकानुमितित्ववत् तत्र लिङ्गमपि विषयतया
 कार्यतावच्छेदकं विशेष्यानुमितिं प्रति व्याप्तिज्ञानादीनां हेतुतेति
 मन्यसे, अथवा सामान्य एव प्रमाणमात्रस्य उपनीतभानजनकत्वं
 सुरभि चन्दनमित्यादौ क्लृप्तमित्यत्राप्येवमिति । आद्योगौरवानुभव-
 विरोधाभ्यामेव निरसनीयो द्वितीयस्तु स्यादेव यदि सौरभांशे
 संस्काररूपप्रत्यक्षसन्निकर्षवदिहापि व्याप्तिरूपलिङ्गसन्निकर्षो लिङ्गे-
 नापि भवेत् । अतएव शक्तेः शब्दसन्निकर्षस्याभावाच्छब्दो न शाब्द-
 ज्ञानविषयः विशेष्याभाने संसर्गाभाने च विशिष्टबुद्धिसिद्धेरन्यथा-
 नुपपत्त्यैव पक्षसंसर्गावन्तर्भाव्यैवानुमिति-शाब्दौ प्रति लिङ्ग-शब्दयो-
 र्हेतुतेति व्याप्तिशक्तिविरहेऽपि पक्षसंसर्गगोचरे ताभ्यां ते जन्येते
 इति सर्वं सुखं । स्वज्ञानकालस्य विशेषणत्वमादाय सिद्धान्तयति,
 'स्वज्ञानेति, 'साध्यप्रत्ययाजनकत्वं' साध्यप्रत्ययजनकतावच्छेदकरूप-
 विरुद्धः, तानि च अव्यभिचरितत्वादीनि अबाधितत्वासत्प्रतिपत्ति-

विरुद्धादित्वात् पक्षविशेषणमहिम्ना तदृशायां पक्षे

तत्त्वान्तानि तदभावः कदाचित् सत्प्रतिपक्षोत्तीर्णोऽपीति, स्वज्ञान-
कालीनतया सविशेषितः स च न तादृशोऽन्यदा तथा ज्ञानरूप-
विशेषणाभावेन विशिष्टाभावात् । एवञ्च सति सव्यभिचारित्वादि-
रेव पर्यवसितः तथा सत्यपि यथा न साध्याविशेषः तथाकरएव
स्फुटं । ननु स्वज्ञानकालीनतया जनकत्वाभावे विरुद्धत्वादित्या-
दिव्यभिचारितस्य तज्जनकतावच्छेदकरूपविरहरूपत्वेऽपि स्वज्ञान-
विरहकाले विशिष्टाभावात् तथा जनकत्वाभावे यथाश्रुते जन-
कतावच्छेदकाभावरूपे विवचितेऽपि साध्ये स्वज्ञानाप्रवेशे विरुद्धत्वा-
दिति व्यर्थविशेषणं कदाचिदजनकत्वस्य ज्ञायमानत्वलक्षणजनकता-
वच्छेदकरूपविरहात्मनोऽज्ञायमानत्वस्य च केवलान्वयित्वादित्यभि-
सन्धिना साध्यं निष्कृत्याह, 'तथाहीति, तथाच ज्ञानकालस्य पक्ष-
तावच्छेदकतया तत्कालीनत्वं साध्यस्य न तु तस्यापि साध्ये प्रवेशो
येन व्यभिचारः । न च व्यर्थविशेषणता, विवचितसाध्यस्यासार्व-
त्रिकत्वात्, साध्यसिद्धिजनकतावच्छेदकत्वन्तु तत्प्रत्ययजनकज्ञाने
विषयतावच्छेदकत्वं अतएवासत्प्रतिपक्षत्वं तुल्यवत्त्वज्ञानाभावरूपं
प्रतिबन्धकाभावतया स्वरूपसदेवानुमितिजनकं न तु ज्ञातमिति
मतावकाशेनेदं घटत इत्यस्या लक्षणान्तरं वक्ष्यते, तथाच ज्ञाय-
मानत्वज्ञानमपि यद्यनुतिहेतुः स्यात् तदा ज्ञायमानत्वमपि तथा
जनकतावच्छेदकं भवेत् येनाज्ञातत्वमवच्छेदकाभावः स्यात् एवञ्च
सङ्गतौ सत्प्रतिपक्षाद्यनवतारे नोक्तावच्छेदकाभावः कोऽपीति न

साध्यप्रत्ययाजनकत्वं सिद्धति, बाधितादावपि लिङ्ग-
त्वभ्रमात् पक्षे साध्यप्रत्ययजनकत्वमिति न प्रति-
योग्यप्रसिद्धा साध्याप्रसिद्धिः ।

यदा अनुमितिप्रतिबन्धकतावच्छेदकरूपवत्त्वमसा-

केवलान्वयित्वमिति न व्यर्थविशेषणता । न च सर्व्वी वक्त्रिव्याप्यवान्
वक्त्रिमान् तत्त्वादित्यनुमाने स न तद्वान् मेयत्वादित्यादिना सत्प्र-
तिपक्षेणैवमन्यत्रापीति सर्व्वमेव सत्प्रतिपक्षितमिति वाच्यं । सर्व्वस्य
सर्व्वत्रैवमवताराभावात् । न च स्वज्ञानदशायामित्यत्र ज्ञाने यथा-
र्थत्वायथार्थत्वविकल्पः, ज्ञानमात्रस्य विवक्षितत्वात् भ्रममादायाति-
प्रसङ्गस्य तादृशावच्छेदकाभावस्वरूपसत्त्वाभावादेवाभावात् । न हि
व्यभिचारिभ्रमे वास्तवः सः । न च सत्प्रतिपक्षे विरुद्धव्याप्यादौ
लिङ्गान्तरे कुतो वास्तवसत्त्वमिति वाच्यं । प्रतीतिबलेन तत्र तत्त्व-
बन्धाभ्युपगमात् स च स्वरूपसम्बन्धविशेष एव इत्युक्तं हेत्वाभास-
लक्षणे । ये तु यथाश्रुते साध्ये व्यर्थविशेषणत्वाभावेन स्वज्ञानकालमपि
साध्ये प्रवेशयन्ति तेषां ज्ञानमात्रगर्भतायां सङ्केतावतिप्रसङ्गः प्रमा-
त्वपर्य्यन्ते च वक्तव्ये सत्प्रतिपक्षेऽव्याप्तिरित्यपि दोषो भवति, अस्मा-
कन्तु न दोषलेश इति संक्षेपः । ननु बाधिते तथा साध्यप्रत्य-
यासिद्ध्या तज्जनकतावच्छेदकाभावोऽप्रसिद्ध इत्यत आह, 'लिङ्गेति
तस्यान्यस्य वा लिङ्गत्वभ्रमदशायामित्यर्थः ।

उक्ताख्या लक्षणान्तरमाह, 'यद्वेति, तत्त्वज्ञात्र तद्वर्त्तमानत्वं
विवक्षितमतो न सत्प्रतिपक्षोत्तीर्णोऽतिप्रसङ्गः, न हि पूर्व्ववेवात्रापि

धकत्वं, तथाहीदानीमिदमनुमितिप्रतिबन्धकतावच्छे-
दकरूपवदनैकान्तिकादित्वात् ज्ञानवत् अनुमितिप्रति-
बन्धकतावच्छेदकञ्च रूपं ज्ञाने विषयतयानैकान्तिका-
दित्वमेव । न च साध्याविशेषः, उपाधिविशेषस्यानुमे-
यत्वात् तोयत्वेन पिपासोपशमनसमर्थतावच्छेदकरूप-
परत्वानुमानवत् ।

खज्ञानदशायामित्यस्ति, अतएव तद्वर्तमानत्वस्य तदवच्छिन्नत्वरूपस्य
साम्बन्धिकत्वादिरुद्धत्वादित्यादौ न व्यर्थविशेषणतेति भावः ।

केचित्तु नात्र व्यर्थविशेषणता व्याप्तेरुभयगृहीततया व्याप्ति-
ग्राहकसामग्रीसत्त्वादनाय हेतुन्युपन्यासादपि तु समयबन्धादुपन्यस्तस्य
हेतुत्वप्रतिपादनाय तद्व्याप्यतानवच्छेदकस्य विशेषणस्य प्रवेशेऽपि
नचतिः, प्रतिबन्धप्रयोजकतयोपन्यस्तस्य विशिष्टस्योभयसिद्धव्याप्तिकस्य
पञ्चम्या हेतुत्वाभिधानादित्यपि वदन्ति ।

ननु व्यभिचारित्वादि न प्रतिबन्धकतावच्छेदकं तत्सत्त्वेऽप्यप्रति-
बन्धादित्यत आह, 'अनुमितीति तथाचानुमितिप्रतिबन्धकज्ञान-
विषयतावच्छेदकत्वमसाधकत्वमिति पर्यवसितोऽर्थः । ननु साध्या-
प्रसिद्धावव्याप्तकमिदमिति चेत्, न, आद्ये खज्ञानदशायामिति
विशेषणदानादेव तदसङ्गच्छत्वलाभात्, अन्येऽपि न पदार्थरूपसाध्य-
स्याप्रसिद्धिः जवगडदशादिवन्निरर्थकत्वात् किन्तु वाक्यार्थरूपसाध्या-
प्रसिद्धिर्याच्या तथाच साध्यज्ञानस्य प्रकृतहेतुनिष्ठव्याप्तिप्रतियोगि-
कत्वाप्रकारकत्वमनुमितिप्रतिबन्धकतावच्छेदको धर्मः स चात्रा-

अन्ये त्वनैकान्तिक-बाधित-विरुद्धेष्वव्याप्यत्वं व्या-
प्यत्वासिद्धेऽनैकान्तिकत्वं स्वरूपासिद्ध-सत्प्रतिपक्षासा-
धारणेषु दशाविशेषेऽनुमितिप्रतिबन्धकज्ञानविषयत्व-
मसाधकत्वं । न चैवमनैकान्तिकोऽसाधक इति सह-
प्रयोगानुपपत्तिः, तत्राव्याप्यत्वस्यासाधकशब्दार्थत्वात्,
असाधकताननुगमे हेत्वाभासत्वमनुगतमेव यस्य ज्ञा-
नमनुमितिप्रतिबन्धकं तस्य हेत्वाभासत्वादिति^(१) ।

प्रसिद्धावपि साध्यस्य तद्भ्रमे तथा प्रतियोगित्वप्रकारकत्वाभावा-
दक्षतः । वस्तुतः साध्याप्रसिद्धिः शुद्धमपार्थक्यं हेत्वाभासानामेवा-
साधकतासाधकत्वात् अज्ञानरूपासिद्ध्यादौ नान्त्यपार्थक्यत्वं हेत्वर्थान्वय-
योग्यताविरहनिश्चयात् हेत्वाभासानान्त्यत्वेऽप्युपजीव्यतया पृथग्दो-
षत्वं । न चाज्ञाने किञ्चिदाभासान्तरं तथोपजीव्यमस्ति, अतएव
तेषामनाभासत्वे निग्रहान्तरत्वाभावेऽपि कथायामुद्भावनं, अन्यथा
अपार्थकाप्रवेशे अन्यत्राप्रवेशे द्वाविंशत्यधिकनिग्रहस्थानानामभावे
तदुद्भावनं न स्यादेव । “हेत्वाभासाश्च यथोक्ताः” इत्यत्रानुक्तसमुच्चय-

(१) बाधनिरूपणप्रस्तावे ‘अथ हेत्वाभासानामसाधकतासाधकत्वेनेत्या-
दिना ‘तस्य हेत्वाभासत्वादित्यन्तेन सन्दर्भेण मणिकृता हेत्वाभा-
सस्यासाधकतासाधकत्वं व्यवस्थापितं, तादृशमणिकृतसन्दर्भस्य मथु-
रानाथकृतव्याख्यायाः सप्तसु मथुरानाथकृतटीकापुस्तकेषु अदर्श-
नात् तादृशसन्दर्भो मथुरानाथेन न व्याख्यातः अथ वा बहुका-
लाध्ययनाध्यापनाभावेन मथुरानाथकृततादृशसन्दर्भव्याख्याविभागो
विलुप्त इत्यनुमाय जयदेवकृतव्याख्यया सहितः तादृशसन्दर्भो मुद्रित-
इति ।

इति श्रीमद्भक्तेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ
अनुमानाख्यद्वितीयखण्डे हेत्वाभासानामसाधकता-
साधकत्वनिरूपणं ।

॥०॥समाप्तश्च अनुमानखण्डो बाधान्तः ॥०॥

परतया चकारव्याख्यानात् तत्सङ्ग्रहः, अनुक्तप्रकारसमुच्चयार्थत्वेन
तत्र व्याख्यानात् । न हि धर्म्यवानुक्तोऽपि तत्तस्य व्याप्तिसिद्धादे-
रनुक्तसाध्यविकलदृष्टान्तादिप्रकारलाभाय चकारकरणात् तदपि
तथोद्भावनाय, तेन व्याप्तिसिद्धिवद्दृष्टान्तवैकल्यं तेनैव रूपेणोद्भाव्यत-
इति लभ्यते, तद्वदिहापि साध्याप्रसिद्धिलिङ्गांशज्ञानाद्यपार्यकान्त-
कृतमेव साध्याप्रसिद्धलादिनैव उद्भाव्यं न तन्यथेति सर्वं समञ्जसं ।

अनुगतसम्भवेऽननुगतं हेयमित्यर्चि मनसि कृत्याह, 'अन्येति' ।

इति श्रीजयदेवमिश्रविरचितः हेत्वाभासानामसाधकतासाध-
कत्वनिरूपणालोकः ।

समाप्ता बाधान्तानुमानखण्डटिप्पणी ।



